

केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व

(पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

किरल्लु बन्नु हार्मा एम० ए० (हिन्दी और संस्कृत) पी-एच० डी०

प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

महेन्द्र कलेज, पटियाला

१९९१

भारती साहित्य मन्दिर

सम्भार ५ - दिल्ली

भारती	साहित्य	मन्दिर
(एस० एन्ड एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)		
रामनगर		नई दिल्ली
फर्रुखाबाद		दिल्ली
माई हीरा बेट		जालंधर
सप्त बाग		लखनऊ
सिद्धिपटन रोड		बम्बई

मूल्य १५ रुपये

परीक्षक सभी मैनेजर, भारती साहित्य मन्दिर दिल्ली द्वारा प्रकाशित
एवं सुपर ग्रेस, पहाड़गंज नई दिल्ली में मुद्रित ।

भूमिका

"केदारबास बीबती कसा घीर कृतित्व" मेरे मित्र डा किरण चर्य की समी की प्रौढ़ मननशक्ति घीर गंभीर अध्ययन का निरर्जन है। केदारबास के बीबन समीकी रचनाओं घीर हिन्दी साहित्य में उनके स्थान का इसमें सगोपांग विवेचन है। डा० समी ने इस विषय का सुब अध्ययन-मनन किया है घीर उनका विवेचन बहुत समुचित हुमा है। उन्होंने विभिन्न विद्वानों के मतों को बिस्तारपूर्वक आँचा है। अपने सत्यामेपी की मीति में आग्रहरहित है। इस पुस्तक से केदार-साहित्य घीर उसका वैशिष्ट्य समी मीति समझ में आ जाता है। ऐसे भी स्थान पुस्तक में हैं जहाँ समी उनके निष्कर्षों से सहमत नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ बिहारी घीर केदार का पिता-पुत्र सम्बन्ध। समी की का निष्कर्ष है कि बिहारी केदार के पुत्र थे। सब इससे सहमत नहीं हो सकते। परन्तु इस विषय का विवेचन करते समय उन्होंने पल या विपक्ष में की जाने वाली समी युक्तियों का समुह कर दिया है। पाठक स्वयं अपना निर्णय कर सकता है। उनके विवेचन की यह विशेषता है। वे अपने निर्णयों को पाठक पर मारना नहीं चाहते। समी शांत चर्चा घीर प्रमाण स्पष्ट रूप में रख देते हैं।

इन्होंने केदार-रचित ग्रन्थों का विस्तार परिचय दिया है। परवर्ती कवियों घीर भावकारिकों पर पड़े प्रभाव का सविस्तर विवेचन किया है। सर्वत्र उनकी पद्धति यह है कि पाठक परपक्ष से भी पूर्वव परिचित रहे।

इस विद्वत्तापूर्ण प्रबन्ध को प्रकाशित कैसकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यह केदारबास का पूर्ण विवेचन तो है ही परोक्ष रूप से प्रज्जाया साहित्य का भी प्रबन्ध विवेचन है। इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना करके वे समी सहृदयों के सम्बन्ध भाजन हुए हैं। मैं उनकी सफलता पर हार्दिक बधाई देता हूँ।

अध्यय हिन्दी विभाग

हमारी प्रसार द्विवेदी

पंजाब विश्वविद्यालय, लुधियाना।

प्राक्कथन

मध्ययुग के महाकवि एवं भाषार्य केशवदास पर सिधे चार आलोचनात्मक ग्रन्थ मेरे देखने में आए हैं—१ केशव की काव्यकला (कृष्णशंकर सुक्म) २ केशवदास—एक प्रथमयन (रामरत्न भटनागर) ३ भाषार्य केशवदास (डा० हीरालाल दीक्षित) तथा ४ केशवदास (चन्द्रबन्दी पांडे)। इनके अतिरिक्त 'हिन्दी नकरत्न' हिन्दी के इतिहास-ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं में भी केशवदास-सम्बन्धी आलोचनाएँ हुई हैं किन्तु भाषार्य केशवदास की कृतियों का महत्त्व और उनके व्यक्तित्व की गरिमा इतनी विद्याम है कि उपर्युक्त रचनाओं के होते हुए भी बहुत कुछ अवशिष्ट रह जाता है। इस बात को दृष्टि में रखते हुए मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध में केशवदास के जीवन व्यक्तित्व तथा उनके काव्य—विशेषतया रीतिकार्य के मूल्यांकन का प्रयास किया है। केशवदास विषयक सभी उपलब्ध सामग्री का ध्यान रखकर यह प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस प्रबन्ध रचना का एक और भी कारण है। आधुनिक युग के कुछ आलोचकों ने केशवदास को कठिन काव्य का प्रेत हृदयहीन तथा नीरस कह डाला है। इस प्रकार के कथन को अतिरंजना से पूर्ण समझकर मैंने यह उचित समझा कि कवि का एक ऐसा प्रथमयन प्रस्तुत किया जावे जिससे यह स्पष्ट हो सके कि केशव के काव्य के प्रति ऐसी अनुदार नजरआएँ प्रकट करना कवि के साथ अन्याय करना है। फलतः मैंने विद्वानों के कथनों का परीक्षण करते हुए यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि 'रसिकप्रिया' का लेखक हृदयहीन एवं सरसता से शून्य नहीं था। उसमें सरसता तथा रसिकता पूरी-पूरी माणा में विद्यमान थी। 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' रीतिकार्य ग्रन्थों के अनेक छन्द इसके मधुर छासी हैं। माया की दृष्टि से भी केशव की अधिकांश रचना प्रसाद-शुद्ध-पूर्ण है। हाँ 'रामचरित्रिका' के कुछ छन्द और 'कविप्रिया' के चार-पाँच छन्द अवश्य निसिद्ध हैं अथवा शेष ग्रन्थों के अधिकांश छन्द प्रसाद-शुद्ध-पूर्ण हैं। 'रामचरित्रिका' एवं 'कविप्रिया' के कठिन छन्दों की निसिद्धता भी कवि की आती-समझी निसिद्धता है जो पाश्चात्य प्रवर्तन के लिए जान-बूझकर उत्पन्न की गई है।

केशवदास का प्रथमयन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। केशव भाषार्य हैं महा कवि हैं और इतिहासकार हैं। रीतिकार्य ग्रन्थों में केशव के वर्णन भाषार्य एवं कवि दोनों ही रूपों में होते हैं। भाषाय-रूप में केशवदास हिन्दी के सबसे पहले भाषाय हैं जिन्होंने संस्कृत रीतिशास्त्र को हिन्दी में अवतरित करते हुए दर्शनकार और रस दोनों सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा की और इस प्रकार काव्यशास्त्र के विविध धर्मों का विस्तृत विवेचन कर हिन्दी साहित्य में रीति-परम्परा का निर्वाच मार्ग खोल दिया।

यद्यपि केदार द्वारा निरिष्ट रीति-पद्धति का हिन्दी के परबर्ती भाषायों में अनुसरण नहीं किया, फिर भी उन्होंने कवियों का ध्यान एक निरिष्ट दिशा की ओर प्रवृत्त सादृष्ट कर दिया। कवि के रूप में केदार की रीतिकाम्य-धर्मों—धुक्क ब्रम्हों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। मुक्तक कवि के रूप में भावार्जुना के शेष में रीतिकामीन प्राम' सभी कवियों ने केदार को धारण के रूप में ग्रहण किया है। प्रबन्ध-काव्य के क्षेत्र में भी केदार के संवाद उनके मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण के परिणामक हैं। संवादों से इतर रूपों पर भी कवि ने विभिन्न मानव भावों की सुन्दर व्यंजना की है। इसके प्रतिरिक्त इतिहासकार की दृष्टि से भी केदार का विशेष महत्त्व है। उनके ग्रन्थों में उन्मिषित सामग्री के द्वारा भोड़छा राज्य का सच्चा और विस्तृत इतिहास जाना जा सकता है। भक्त सम्प्रदायी साहित्य एवं इतिहास के विद्यार्थी के लिए अध्ययन के ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में केदारदास की पूर्ववर्ती तथा समकालीन साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए यह विश्लेषण का प्रयत्न किया गया है कि विभिन्न परिस्थितियों का सामोध्य कवि के काव्य पर कौशा और विरुद्ध प्रभाव पड़ा है।

दूसरे अध्याय में केदार के जीवन चरित पर विस्तार से विचार किया गया है और उनके जीवन से सम्बद्ध सभी उपलब्ध सामग्री को आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं। केदार के बचपन से प्राप्त बचपन का भी हवाला दिया गया है जिसका संक्षेप प्रबन्ध नहीं मिला। केदार और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में मैंने विभिन्न विद्वानों के मतों का परीक्षण करते हुए पञ्चाध्याय निम्नलिखित रहकर अपना मत इस सम्बन्ध के पक्ष में देने का दुस्ताहस किया है। केदार के व्यक्तित्व तथा उनकी जानकारी के सम्बन्ध में भी विस्तार विचार किया गया है।

तीसरे अध्याय में इतिहास-ग्रन्थों के आधार पर केदारदास के ग्रन्थों की संख्या एवं नामों के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है। नागरी प्रचारिणी सभा की ओर रिपोर्टों में केदारदास केदार दास केदारदास के नाम से मिलने वाले ग्रन्थों का भी जल्ल किया गया है। इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा रचनाकाल का भी विश्लेषण किया गया है। इस विषय में सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुसंधान करते समय मुझे केदारदासकृत दो गौण ग्रन्थ 'छन्दमाला' तथा 'पिबलन' मिले हैं जिनकी मैं धन्य प्रकाशित करना चुका हूँ। सप्त गौण ग्रन्थों की उपलब्धि के लिए मैं भी धन्य प्रकाशित करना चुका हूँ। 'छन्दमाला' की एक प्रमुखी हस्तलिखित प्रति भी मुझे मेरे मित्र तथा सहयोगी प्राध्यापक प्रीतमसिंह के छोकर है उपलब्ध हुई है जिसके प्रथम पृष्ठ का फोटो प्रिंट भी साथ ले लिया गया है। अन्त में केदारदास के प्रामाणिक ग्रन्थों तथा उनके काव्य-स्वरूप और विषय-कर्म की दृष्टि से विभाजन का भी संक्षेप कर दिया गया है।

'केदार के प्रबन्धों का काव्य विश्लेषण' शीर्षक चौथे अध्याय में केदार के प्रबन्ध-सीटल धर्षकार-धोवना छन्द प्रयोग तथा भाषा पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। प्रबन्ध-काव्य के धारणकीय तत्त्वों के आधार पर सामान्यिकता

बीरसिंहदेव-चरित' 'विज्ञानगीता' 'रत्नवाचनी' तथा 'बहुवीर-वस-चरित्रका' का विवेचन करते हुए उनका मूल्यांकन किया गया है।

प्राथम्य में केशव की विचारधारा और केशव का इतिहास ज्ञान—इन की विषयों का विस्तार के साथ अध्ययन किया गया है। पहले विषय की सामग्री सात प्रयोगों में की गई है—१. केशव से दार्शनिक सिद्धान्त, २. केशव की सकृत् ३. केशव की शक्ति एवं वर्ण, ४. शास्त्रात्मक जीवन, ५. केशव का नाट्य-दर्शन ६. बुद्ध महिमा तथा ७. आह्वान प्रकृत। इतिहास-ज्ञान के अन्तर्गत 'बीरसिंहदेव-चरित' 'बहुवीर-वस-चरित्रका' तथा 'रत्नवाचनी' ग्रन्थों में संक्षिप्त इतिहास-सामग्री का धीरे-धीरे वर्णन किया गया है जो छोड़कर राज्य का विस्तृत एवं यथार्थ इतिहास जानने के लिए विषय महत्वपूर्ण है। इन ग्रन्थों में छोड़कर-राज्य से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी ऐसी बातों का सूत्रातिशुद्ध वर्णन है जिनका अन्तर्गत इतिहास-ग्रन्थों में या तो निम्नता ही नहीं और यदि निम्नता भी है तो बहुत ही संक्षेप में। अन्त में छोड़कर राज्य का संक्षेप 'कविप्रिया' 'बीरसिंहदेव चरित' तथा 'छोड़कर गणितपर' के अनुसार देकर उनका तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

छठे अध्याय में केशव के रीतिकार्य का विवेचन है। पहले रीतिकार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और फिर उनके काव्य-यत्न पर विस्तार के साथ विचार किया गया है जिसके अन्तर्गत भाव्यकला प्रकृति-वर्णन वस्तु तथा दूर-वचन नय चित्र बनन धर्मकार-भोजना छन्द-भोजना भावा आदि का विवेचन है।

सातवें अध्याय केशव के रीतिविवेचन (वाचार्थ्य) को समर्पित है। केशव के वाचार्थ्य के प्रतिष्ठापक मुख्यतया दो ग्रंथ हैं—'कविप्रिया' और 'रचितप्रिया'। इनही ग्रन्थों के आधार पर केशव के रीतिविवेचन का विस्तार के साथ अध्ययन किया गया है। कवि-रीति-वर्णन काव्यबोध-वर्णन धर्मकार निरूपण तथा रस एवं नायक-नायिका भेद-बनन केशव ने किस संस्कृत क ग्रन्थों के आधार पर किया है और उनमें कौन-सी बातें वाचार्थ्य केशव की निजी अनुमानता हैं उनका भी सम्यक् रूप से निरूपण किया गया है।

आठवें अध्याय में वाचार्थ्य केशव तथा हिन्दी के अन्य प्रमुख वाचार्थ्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। धर्मकार-विवेचन के क्षेत्र में चिन्तामणि मतिराम कुम्भपति मिश्र देव भिन्नापी दास और पद्याकर से केशवदास की तुलना की गई है और रस तथा नायक-नायिका भेद निरूपण के क्षेत्र में चिन्तामणि मतिराम देव दास और पद्याकर से। धर्मकार विवेचन के क्षेत्र में केशवदास की चिन्तामणि, मतिराम कुम्भपति मिश्र और पद्याकर तथा रस और नायिका-भेद विवेचन के क्षेत्र में मतिराम चिन्तामणि तथा दास से एक नए दृष्टिकोण से तुलना की गई है।

नवें अध्याय में हिन्दी के परवर्ती गुजराती मुख्यक कवियों पर केशव का क्या प्रभाव पड़ा है यह विवेचने का प्रयास किया गया है। मुख्य रूप से बिहारी मतिराम देव दास और बेनीप्रवीण—इन तीन कवियों की ही अपने अध्ययन का आधार बनाया गया है।

यसमें धर्म्याय में कमरा भाठमें धीर नमें धर्म्याय के प्रत्यर्पित किए गये तुलनात्मक धर्म्ययन के आधार पर धार्याओं एवं नृपारी कथियों में केवल का स्थान निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पञ्चाश विरचविद्यालय की पी एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत योग्य प्रबन्ध है। मूल नीति के लिए संघर्षी में विषय या केशवदास विरचलेखन रैप्रिमेन्स टू हिज पीटि पोइटी। प्रकाशित कराते समय मैंने इसका नाम केशवदास—वीरभो कसा धीर कृतित्व रस दिया है। विरचविद्यालय के मुद्राण पर उद्धरणों को कम कर दिया गया है धीर यथासम्भव इन्हें पाद-टिप्पणी के रूप में दिया है।

मूल प्रबन्ध का प्रणयन पंजाब विरचविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर डॉ० इन्द्रनाथ मदान की देख-रेख तथा निरीक्षण में हुआ है। जिनके सौहार्द तथा पथ प्रदर्शन के प्रभाव में इसका इस रूप में होना असम्भव था। सोच-कार्य करने की जो प्रेरणा मुझे डॉ० नरेश चरणल हिन्दी विभाग दिल्ली विरचविद्यालय दिल्ली से प्राप्त हुई है उसके लिए मैं उनका हृदय से धान्यारी हूँ। डॉ० हररथ मोन्दा रीडर हिन्दी विभाग दिल्ली विरचविद्यालय दिल्ली का भी मैं धामार मानता हूँ जिन्होंने प्रबन्ध लिखते समय अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये। काशी विरचविद्यालय के प्राध्यापक विरच नाथप्रसार मिश्र ठेठ क्यूँसा ज्ञान पोहार तथा अनवरत नाइरा ने अपने संग्रहालयों के हस्तलिखित ग्रन्थों द्वारा मुझे समुपुष्टि किया है। अंत में मैं उन सभी संस्कारों सम्मानों एवं विद्वानों के प्रति भी कृतज्ञता से साधुर्न हूँ जिन्होंने मुझे इस प्रबन्ध को लिखने में तनिक भी सहायता प्रदान की है।

अन्त में डॉ० हुबारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भूमिका लिखकर इस ग्रंथ का मोरक बढ़ाया है। उनके प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रकट करना मेरा पुनीत कर्तव्य है। उनकी सेवनी से प्रशंसा का एक शब्द भी पा लेना मेरे लिए बड़ी बात है।

—किरतु नाम दर्मा

विषय-सूची

पहला अध्याय

विभिन्न परिस्थितियों का केशव पर प्रभाव (पृ० १-२१)

राजनैतिक परिस्थिति-पृ० १ शोरका राज्य की स्थिति-पृ० १ केशव के प्राय
महाता इन्द्रजित्सिंह पर समकालीन परिस्थिति का प्रभाव-पृ० ७ सामाजिक परिस्थिति-पृ०
५, धार्मिक परिस्थिति-पृ० ११ साहित्यिक परिस्थितियाँ-वीरगाथाकाव्य-भारा-पृ० १४
संस्कृतकाव्य-भारा-पृ० १३, मृच्छिकाव्य भारा-पृ० १६ रामकाव्य-भारा-पृ० १६ कृष्ण
काव्य भारा-पृ० १७ ऐतिहास्य-भारा-पृ० १८ संस्कृत काव्यशास्त्र का केशव पर
प्रभाव-पृ० २० निष्कर्ष-पृ० २१।

दूसरा अध्याय

केशव का जीवन-चरित्र (पृ० २२-७३)

केशव नामधारी अनेक कवि-पृ० २२ बंश-परिचय-पृ० २४ आचार्य केशवदास
का बंशवृक्ष-पृ० २६ के सामने केशव के पूर्वजों का वास-स्थान-पृ० २७ बस की
पाण्डित्य परम्परा-पृ० २८ अन्न-संबन्ध-पृ० २८, गीत गाथा आदि-पृ० ३१ केशव
का निवास-स्थान तथा स्वदेश प्रेम-पृ० ३१ विवाह और सन्तति-पृ० ३२, केशव और
बिहारी-पृ० ३३ केशव-पुत्र वधू-पृ० ३४, वृत्ति-पृ० ३३ प्रायमहाता-पृ० ३६ अन्य
व्यक्तियों से परिचय-पृ० ३१ भ्रमण-पृ० ६३ किवदन्तियाँ पृ० ६४ मृत्यु-सम्बन्ध
पृ० ६७।

केशव का व्यक्तित्व प्रकृति और स्वभाव-पृ० ६७ व्यवहारकुशलता आदि
पृ० ६८, स्वाभिमान और विद्यालब्धता-पृ० ६८ निर्मीकता एवं स्पष्टवादिता-पृ०
६९ नीति-निपुणता-पृ० ६९, माम्यवादिता-पृ० ६९, भास्त्रकता-पृ० ७०।

केशव की आतंकी राखनीति परिचय पृ० ७० धर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र
परिचय-पृ० ७० दर्शनशास्त्र-परिचय-पृ० ७१ संगीतशास्त्र-परिचय-पृ० ७१, इतिहास
पुराण-परिचय-पृ० ७१ पञ्चतन्त्र-परिचय-पृ० ७२ ब्रह्म-परिचय-पृ० ७२, धर्म-शास्त्र
तथा ह्यम-गण-परिचय-पृ० ७३।

तीसरा अध्याय

केशव के ग्रन्थ (पृ० ७४-९३)

हिन्दी के साहित्यकारों द्वारा निरिष्ट केशवदास के ग्रन्थों की संख्या तथा
नाम-पृ० ७४ नामधारी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित ग्रन्थ-पृ० ७६

दुस्सुखी तिति में प्राप्य 'छन्दमाता' के प्रथम पृष्ठ का काशी प्रिण्ट-पृ० ७१ के सामने
 कैशवदास की अमीपूट-पृ० ७७, कैशवदास का छन्द-शास्त्र का महीन प्रथ-छन्दमाता
 पृ० ७७, प्रर्थों की प्रामाणिकता एवं रचनाकाल रत्नदास्त्री-पृ० ७८ कमिप्रिया,
 रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका तथा विद्वानगीता-पृ० ७९, श्रीरसिकदेव-चरित-पृ० ८२,
 महीश्वर-अस-चन्द्रिका-पृ० ८३, शिखनख (नरसिंह) पृ० ८४, वारहमास-पृ० ८७,
 अदमाता पृ० ८८ रामाक्षरतर्मगो-पृ० ९१, शैलु की कथा-पृ० ९२, बाहि भद्रि की
 अनुमान-अस-हीता-पृ० ९२ रसकलित-पृ० ९३ इन्द्रलोक-प्रदूष-पृ० ९३, कैशवदास
 की अमीपूट-पृ० ९३ कैशवदास के प्रामाणिक छन्द और रचना विभाजन-पृ० ९४-९५।

चौथा अध्याय

केशव के प्रबंधों का काव्य विवेचन (पृ० ९६ २२३)

(घ) प्रकाश-सौष्ठव

(क) रामचन्द्रिका रचना की प्रेरणा पृ० ९६ प्रकाश-काव्य के उत्प-पृ० ९७
 कथानक-पृ० ९७ कथ का अभाव-पृ० ९८ अनुपात का अभाव-पृ० १०१ मति का
 अभाव-पृ० १०२ मार्मिक स्वभावों का चित्रण-पृ० १०३ पात्रों का स्वल्प चित्रण
 पृ० १०६ प्रकृति के वृक्षों और वस्तुओं का वर्णन-पृ० १०७ रस एवं भावार्थजना
 पृ० ११३ श्रीर और श्रीर रस-पृ० ११३ अमानक रस-पृ० ११६ शास्त्र रस-पृ० ११७
 भीमरस रस-पृ० ११७ कथ रस-पृ० ११८, साम्य रस-पृ० ११८ सज्जा ईन्व तथा
 एवं भादि भाव-पृ० ११९ संवाद एवं चरित-चित्रण-संवाद-पृ० १२० वसरप
 विरवाभिन्न सम्वाद-पृ० १२१ सुमति-विमति-संवाद-पृ० १२१ रावण-बाण-संवाद
 पृ० १२२ विस्वामित्र जनक-संवाद-पृ० १२२, परशुराम राम-संवाद-पृ० १२२
 कैकेयी भरत-संवाद-पृ० १२४ रावण-सीता-संवाद-पृ० १२४ रावण-हनुमान-संवाद
 पृ० १२४ रावण-अंगद-संवाद-पृ० १२५, लक्ष्मण विभीषण-संवाद-पृ० १२६ चरित
 चित्रण-पृ० १२६ राम-पृ० १२७ भरत-पृ० १३१ सीता पृ० १३३ कौशल्या पृ०
 १३५ वसरप और कैकेयी-पृ० १३५, निष्कर्ष-पृ० १३६।

(ख) श्रीरसिकदेव चरित पृ० १३६, कथावस्तु-पृ० १३६ वस्तु-वर्णन-पृ०
 १४० प्रकृति-वर्णन-पृ० १४३ लक्ष्मिक-वर्णन-पृ० १४५, भावार्थजना-पृ० १४७
 संवाद-पृ० १४८, चरित-चित्रण-पृ० १५०, निष्कर्ष-पृ० १५०।

(ग) विद्वानगीता विद्वानगीता और भागवत-पृ० १५१ कथावस्तु का स्वल्प
 पृ० १५० कथावस्तु-पृ० १५१ आचार और भीमिकता-पृ० १५१ विद्वानगीता तथा
 प्रबोधनश्रोत और योगवादिष्ठ-पृ० १५१ भावार्थजना-पृ० १५३ प्रकृति-वर्णन
 पृ० १५७, वस्तु-वर्णन-पृ० १५७ स्वक-चित्रण-पृ० १५८, पात्रों का चित्रण पृ० १५८,
 निष्कर्ष-पृ० १७०।

(घ) महीश्वर-अस चन्द्रिका कथावस्तु पृ० १७१ वस्तु-वर्णन-पृ० १७२,
 निष्कर्ष पृ० १७३।

(क) रत्नबावनी कथानस्तु-पृ० १७३ भावव्यवस्था-पृ० १७५ वस्तु-वर्णन पृ० १७६ स्वल्प-वर्णन-पृ० १७६ संवाद-पृ० १७७ उपसंहार-पृ० १७७ ।

(ख) प्रबन्ध-सौष्ठव की दृष्टि से केसव के प्रबन्ध-काव्यों का क्रम-पृ० १७७ ।

(घा) अलंकार-योजना

✓ रामचन्द्रिका में-पृ० १७८ वीरसिंहदेव-चरित में-पृ० १८१ विज्ञानमीठा में पृ० १८२, रत्नबावनी में-पृ० १८२ जहाँगीर-जय चन्द्रिका में-पृ० १८३ ।

(इ) छन्द-प्रयोग

केसव के पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य के कवियों द्वारा प्रयुक्त छन्द-पृ० १८४
✓ केसव द्वारा प्रयुक्त छन्द रामचन्द्रिका में-पृ० १८५ वीरसिंहदेव-चरित में-पृ० १८६, विज्ञानमीठा में-पृ० १८६, रत्नबावनी में पृ० १८६ जहाँगीर जय चन्द्रिका में-पृ० १८६ छन्द प्रयोग के क्षेत्र में केसव की मौलिकता-पृ० १८८, भावानुकूल छन्द पृ० २०१ रसानुकूल छन्द पृ० १०२, छन्द-सम्बन्धी कुछ शोध-पृ० २०४ ।

(ई) भाषा :

(क) छन्दकोष केसव की काव्य भाषा-पृ० २०४ संस्कृत का प्रभाव-पृ० २०६ मुन्दसलखी शब्द-पृ० २०७ संस्कृत और विदेशी भाषा के मेल से बने शब्द पृ० २१० शब्दों का बहसा हुआ रूप-पृ० २१० गढ़े हुए शब्द-पृ० २११, विहृत एवं अलतू शब्द-पृ० २११ अमचलित शब्द पृ० २११ पश्चिष्ठाक शब्द-पृ० २११ ।

(ख) सौष्ठव भाषा में समित-पृ० २१२, मुहावरें तथा लोकोक्ति-पृ० २१३ भाषा की समीक्षा पृ० २१३, भाषा में ग्रन्थ-मातृ-पृ० २१६ शब्द-पृ० २१६, प्रसाद-पृ० २१७ शोध व्युत्पत्ति-पृ० २१८ अक्षरीमत्त्व-पृ० २२०, अक्षरत्व-पृ० २२० अक्षि-पदत्व पृ० २२१ संक्षिप्तत्व-पृ० २२१ निहृताप्यत्व-पृ० २२१, समाप्तपुनरावृत्तत्व-पृ० २२२, अमव्यक्तसम्बन्धत्व-पृ० २२२, मूलपदत्व पृ० २२२ पदप्रकर्षता पृ० २२२, काव्यविशेषता-पृ० २२३ ।

पाँचवीं अध्याय

केसव की विचारधारा तथा उनका इतिहास ज्ञान (पृ० २२४ २७८)

(घ) केसव की विचारधारा

✓ (१) केसव के दार्शनिक सिद्धान्त : ब्रह्म-पृ० २२४ माया-पृ० २२६, बीज पृ० २२६, बीज की कोटि-पृ० २२७ सृष्टि पृ० २२८ जगत्-पृ० २३० भुक्ति के प्रमुख साधन-सत्संग-पृ० २३३ समय-पृ० २३४ संतोष-पृ० २३४ विचार-पृ० २३४ मुक्त बीजों के प्रकार-पृ० २३४ आशायाम-पृ० २३५, संन्यास-पृ० २३५, मनोनिग्रह-पृ० २३६ ।

(२) केसव की मति पृ० २३६ ।

(३) केसव की नीति एवं धर्म-पृ० २४० ।

[illegible]

श्रीपाद प्रणयः

देशीय के प्रभावों का अध्य-विशेष (१० ६९ २२१)

(ੳ) ਭਵਾਨ ਸੀਏਵ

[illegible]

(ग) श्रीनिहारेव परितः पु० १३६, बन्धानु-पु० १३७, बानु-वर्णन-पु० १४०, ग्रहवि-वर्णन-पु० १४१, ललाटिग-वर्णन-पु० १४२, साधन-वर्णन-पु० १४३, गङ्गा-पु० १४४, अरि-वि-वर्णन-पु० १४५, निष्कर्ष-पु० १४६ ।

(ग) विज्ञानपीठा विमानभोला धीर मानन-५० १२ कवावतु का रररर
 ५० १२० कवावतु-५० १२१ सापार धीर मीनितता-५० १२२ विज्ञानपीठा तथा
 प्रयोगशाला धीर मीनितता-५० १२३ भावमन्त्रना-५० १२४ ग्रहवि-वर्जन
 ५० १२५ वस्तु-वर्जन ५० १२६ रररर-विज्ञान ५० १२७ पार्श्व का विज्ञान ५० १२८
 विज्ञान ५० १३० ।

(घ) अहमोद-अन-बादला कवाबस्तु पृ० १७१ वस्तु-वर्णन-पृ० १७२
निष्कर्ष पृ० १७३ ।

(८) रत्नबावनी कथावस्तु-पृ० १७३ भावार्थवता पृ० १७३, वस्तु-वर्णन पृ० १७६ स्वल्प-वर्णन-पृ० १७६ संवाद-पृ० १७७ उपसंहार-पृ० १७७ ।

(९) प्रबन्ध-सीष्ठ्य की दृष्टि से केशव के प्रबन्ध-काव्यों का क्रम-पृ० १७७ ।

(१०) अलंकार-शोभना

✓ रामचन्द्रिका में-पृ० १७८ बीरसिंहदेव-चरित में-पृ० १८३ विज्ञानगीता में पृ० १८६, रत्नबावनी में-पृ० १८२ अर्जुनीर-अस चन्द्रिका में-पृ० १८३ ।

(११) छन्द-प्रयोग

केशव के पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य के कवियों द्वारा प्रयुक्त छन्द पृ० ११४
✓ केशव द्वारा प्रयुक्त छन्द रामचन्द्रिका में-पृ० ११५, बीरसिंहदेव चरित में-पृ० ११६ विज्ञानगीता में-पृ० ११६, रत्नबावनी में-पृ० ११६ अर्जुनीर अस चन्द्रिका में-पृ० ११६, छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में केशव की मौलिकता-पृ० ११६, भावानुकूल छन्द-पृ० २०१ रसानुकूल छन्द-पृ० १०२, छन्द-सम्बन्धी कुछ ध्येय-पृ० २०४ ।

(१२) भाषा

(क) सम्बन्ध केशव की काव्य भाषा पृ० २०४ संस्कृत का प्रभाव-पृ० २०६, बुद्धिमत्ता की शक्ति-पृ० २०७ संस्कृत और हिन्दी भाषा के मेल से बने सम्बन्ध पृ० २१० शब्दों का बहला कृपा रूप-पृ० २१० गढ़े हुए शब्द-पृ० २११, विरुद्ध एवं आमतौर सम्बन्ध-पृ० २११ अप्रचलित शब्द-पृ० २११ पश्चिमाञ्चल सम्बन्ध-पृ० २११ ।

(ख) सीष्ठ्य भाषा में शक्ति-पृ० २१२ सुहावरी तथा शोकोक्ति-पृ० २१३, भाषा की समीक्षा पृ० २१३, भाषा में वृत्त-माधुर्य-पृ० २१६, शोभ-पृ० २१६, प्रसाद-पृ० २१७ शोष-व्युत्पत्ति-पृ० २१६, अस्वीकृत-पृ० २२० अक्षय-पृ० २२० अक्षय पद-पृ० २२१ संक्षिप्त-पृ० २२१ निरुत्पत्ति-पृ० २२१ समाप्तगुणरहित-पृ० २२२, अक्षयपद-पृ० २२२, न्यूनपद-पृ० २२२ पदत्रय-पृ० २२२, अक्षयपद-पृ० २२३ ।

पाँचवाँ अध्याय

केशव की विचारधारा तथा उनका इतिहास-ज्ञान (पृ० २२४ २७८)

(अ) केशव की विचारधारा

✓ (१) केशव के दार्शनिक सिद्धान्त ब्रह्म-पृ० २२४ माया-पृ० २२६ जीव पृ० २२६ जीव की कोटि-पृ० २२८ सृष्टि पृ० २२८, जगत्-पृ० २३० मुक्ति के प्रमुख साधन-सर्तप-पृ० २३३ सम-पृ० २३४ सतोप-पृ० २३४, विचार-पृ० २३४ मुक्त जीवों के प्रकार-पृ० २३४ प्राणायाम-पृ० २३५, संन्यास-पृ० २३५, मनोनिग्रह-पृ० २३६ ।

(२) केशव की सक्ति पृ० २३६ ।

(३) केशव की नीति एवं धर्म-पृ० २४० ।

(क) रत्नबावनी कथावस्तु-पृ० १७३ मावस्यवना-पृ० १७३ वस्तु वर्णन पृ० १७६ समस्य-वर्णन-पृ० १७६ संवाद-पृ० १७७ उपसंहार-पृ० १७७ ।

(ख) प्रबन्ध-सौष्ठव की दृष्टि से केशव के प्रबन्ध-काव्यों का क्रम-पृ० १७७ ।

(ग) अलंकार-योगिता

✓ रामचन्द्रिका में-पृ० १७८ बीरसिंहदेव-चरित में-पृ० १८५ विज्ञानगीता में पृ० १८६, रत्नबावनी में-पृ० १८९, जहाँगीर-जस चन्द्रिका में-पृ० १८९ ।

(ह) छन्द प्रयोग

केशव के पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य के कवियों द्वारा प्रयुक्त छन्द पृ० १९४ / केशव द्वारा प्रयुक्त छन्द रामचन्द्रिका में-पृ० १९५, बीरसिंहदेव चरित में-पृ० १९६, विज्ञानगीता में-पृ० १९६, रत्नबावनी में-पृ० १९६ जहाँगीर जस चन्द्रिका में-पृ० १९६ छन्द प्रयोग के क्षेत्र में केशव की मौलिकता-पृ० १९९ भावानुकूल छन्द-पृ० २०१ रसानुकूल छन्द पृ० १०२, छन्द-सम्बन्धी कुछ दोष-पृ० २०४ ।

(ई) भाषा

(क) सम्बन्धीय केशव की काव्य-भाषा-पृ० २०४ संस्कृत का प्रभाव-पृ० २०६, बुनैसलखी शब्द-पृ० २०७ संस्कृत और बिदेसी भाषा के मेल से बने शब्द पृ० २१० शब्दों का बदला हुमा रूप-पृ० २१०, गढ़े हुए शब्द-पृ० २११, विकृत एवं कालप्त शब्द-पृ० २११ अप्रचलित शब्द-पृ० २११, पश्चिमाङ्क शब्द-पृ० २११ ।

(ख) सौष्ठव भाषा में अन्त-पृ० २१२, मुहावरें तथा सौकोक्तियाँ-पृ० २१३ भाषा की समीक्षा पृ० २१३, भाषा में शुद्ध-भाङ्ग-पृ० २१६ शब्द-पृ० २१६, प्रसाद-पृ० २१७ दोष अतिसंस्कृति-पृ० २१८, अस्मीमत्त्व-पृ० २२०, अश्रमत्व-पृ० २२० अधिक पदत्व पृ० २२१ संविधत्व-पृ० २२१ निहृताप्यत्व-पृ० २२१ समाप्तपुनरावृत्तत्व-पृ० २२२, अमरमतसम्भावत्व-पृ० २२२, व्युत्पत्तत्व पृ० २२२, पतत्रकर्मता पृ० २२२, कालविरुद्धता-पृ० २२३ ।

पाँचवीं अध्याय

केशव की विचारधारा तथा उनका इतिहास ज्ञान (पृ० २२४ २७८)

(अ) केशव की विचारधारा

✓ (१) केशव के दार्शनिक सिद्धान्त : ब्रह्म-पृ० २२४ माया-पृ० २२६ जीव पृ० २२६, जीव की कोटियाँ-पृ० २२८ सृष्टि-पृ० २२८, जगत्-पृ० २३० मुक्ति के प्रमुख साधन-संस्तंभ-पृ० २३३ सम-पृ० २३४ संतोष-पृ० २३४, विचार-पृ० २३४, मुक्त जीवों के प्रकार-पृ० २३४ प्राणावायु-पृ० २३३, सम्पाद-पृ० २३३, मनोनिग्रह-पृ० २३६ ।

(२) केशव की भक्ति-पृ० २३६ ।

(३) केशव की नीति एवं नर्म-पृ० २४ ।

प्रत्युक्ती निधि में प्राप्य छन्दमाता के प्रथम पृष्ठ का छोटी छिन्ट-पृ० ७६ के सामने
 केचवदास की प्रतीक-पृ० ७७, केचवदास का छन्द-शास्त्र का नवीन ग्रन्थ-छन्दमाता-
 पृ० ७७ प्रयोगों की प्रामाणिकता एवं रचनाकाल रत्नवल्ली-पृ० ७८ कमिष्ठिका,
 रत्नप्रतिमा, रामचन्द्रिका तथा विज्ञानवीता-पृ० ७९, वीरसिंहदेव-चरित-पृ० ८२,
 बह्मगीर-जस-चन्द्रिका-पृ० ८३, शिवनन्द (नक्षत्रिक) पृ० ८४, बारहमासा-पृ० ८७,
 छन्दमाता पृ० ८८ रामाक्षस्तम्भरी-पृ० ९१, जैमिनि की कथा-पृ० ९२ बालि चरित वीर
 हनुमान-छन्द-सीता-पृ० ९२, रत्नप्रतिमा-पृ० ९३, छन्दकोशा(अपूर्व)-पृ० ९३, केचवदास
 की प्रतीक-पृ० ९३ केचवदास के प्रामाणिक ग्रन्थ वीरचनका विभाजन-पृ० ९४ ९५।

चौथा अध्याय

केचव के प्रयोगों का काव्य-विवेचन (पृ० ९६ २२६)

(घ) प्रथम-सौष्ठव

(क) रामचन्द्रिका : रचना की प्रेरणा-पृ० ९६ प्रथम-काव्य-कृत-पृ० ९७
 कथानक-पृ० ९७ कर्म का प्रभाव-पृ० ९८, अनुपात का प्रभाव-पृ० १०१ मति का
 प्रभाव-पृ० १०२ मायिक स्मृतों का विमर्श-पृ० १०३ पार्श्वों का स्वल्प विमर्श
 पृ० १०६ प्रकृति के दृश्यों और वस्तुओं का वर्णन-पृ० १०७ रस एवं भावव्यञ्जना-
 पृ० ११३ वीर वीर रीति रस-पृ० ११३ भवानक रस-पृ० ११६ हास्य रस-पृ० ११७
 वीररस रस-पृ० ११७, कथन रस-पृ० ११८ शान्त रस-पृ० ११८ लज्जा ईश्वर तथा
 गर्व आदि भाव-पृ० ११९ संवाद एवं चरित-विमर्श-संवाद-पृ० १२ वचन
 विवक्षामित-सम्वाद-पृ० १२१ सुमति-विमर्श-संवाद-पृ० १२१ रावण-बाण-संवाद
 पृ० १२२ विवक्षामित-जनक-संवाद-पृ० १२२ परशुराम राम-संवाद-पृ० १२२
 कँकेयी भरत-संवाद-पृ० १२४ रावण-सीता-संवाद-पृ० १२४ रावण-हनुमान-संवाद
 पृ० १२४ रावण-मंगल-संवाद-पृ० १२५ सबकुछ विभीषण-संवाद-पृ० १२६ चरित
 विमर्श-पृ० १२६ राम-पृ० १२७ भरत-पृ० १२९ सीता पृ० १३३ कौसल्या पृ०
 १३५ वचन वीर कँकेयी-पृ० १३५, निष्कर्ष-पृ० १३६।

(ख) वीरसिंहदेव चरित-पृ० १३६ कथावस्तु-पृ० १३६ वस्तु-वर्णन-पृ०
 १४० प्रकृति-वर्णन-पृ० १४३ लक्ष्य-वर्णन-पृ० १४३ भावव्यञ्जना-पृ० १४७
 संवाद-पृ० १४९ चरित विमर्श-पृ० १५०, निष्कर्ष-पृ० १५०।

(ग) विज्ञानवीता विज्ञानवीता वीर मानस-पृ० १५ कथावस्तु का स्वल्प
 पृ० १५० कथावस्तु-पृ० १५१ आचार वीर मीथिकता-पृ० १५१ विज्ञानवीता तथा
 प्रबोधचन्द्रोदय वीर योगवासिष्ठ-पृ० १५१ भावव्यञ्जना-पृ० १५३ प्रकृति-वर्णन
 पृ० १५७, वस्तु-वर्णन-पृ० १५७ स्वक-विमर्श-पृ० १५९, पार्श्वों का विमर्श-पृ० १५९,
 निष्कर्ष पृ० १६०।

(घ) बह्मगीर-जस चन्द्रिका कथावस्तु पृ० १७१ वस्तु-वर्णन-पृ० १७२,
 निष्कर्ष पृ० १७३।

(क) रतनबावनी कपावस्तु-पृ० १७३ भाष्यार्चना पृ० १७३, वस्तु वर्णन पृ० १७६ स्वरूप-वर्णन-पृ० १७६ संवाद-पृ० १७७ उपसहार-पृ० १७७ ।

(ग) प्रबन्ध-सौष्ठव की दृष्टि से केशव के प्रबन्ध-काव्यों का क्रम-पृ० १७७ ।

(घा) अलंकार-योजना

✓ रामचन्द्रिका में-पृ० १७८ बीरसिंहदेव-चरित में-पृ० १८३ विज्ञानपीठा में पृ० १८२, रतनबावनी में-पृ० १८२ बर्हीवीर-जस चन्द्रिका में-पृ० १८३ ।

(इ) छन्द-प्रयोग

केशव के पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य के कवियों द्वारा प्रयुक्त छन्द पृ० १८४
✓ केशव द्वारा प्रयुक्त छन्द रामचन्द्रिका में-पृ० १८५, बीरसिंहदेव-चरित में-पृ० १८६
विज्ञानपीठा में-पृ० १८६, रतनबावनी में-पृ० १८६ बर्हीवीर जस चन्द्रिका में-पृ०
१८६, छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में केशव की मौलिकता-पृ० १८८, भावानुकूल छन्द-पृ०
२०१ रसानुकूल छन्द-पृ० १०२, छन्द-सम्बन्धी कुछ टीप-पृ० २०४ ।

(ई) भाषा

(क) शब्दकोष केशव की काव्य भाषा पृ० २०४ संस्कृत का प्रभाव-पृ०
२०६ बुद्धेलक्षणी शब्द-पृ० २०७ संस्कृत और विदेशी भाषा के मेल से बने शब्द
पृ० २१० शब्दों का बहला हूमा रूप-पृ० २१० पड़े हुए शब्द-पृ० २११ विकृत एवं
अलतु शब्द-पृ० २११ अप्रचलित शब्द-पृ० २११ पश्चिष्ठाक शब्द-पृ० २११ ।

(ख) सौष्ठव भाषा में शक्ति-पृ० २१२ मुहावरे तथा लोकोक्ति-पृ० २१३ भाषा
की समीक्षा-पृ० २१५, भाषा में शुभ-माधुर्य-पृ० २१६, शीघ्र-पृ० २१६ प्रसाद-पृ०
२१७ होप-व्युत्पत्ति-पृ० २१८, असमीक्षित-पृ० २२० अक्षमत्व-पृ० २२० अक्षिप्त
पदत्व पृ० २२१ संक्षिप्तत्व-पृ० २२१ निवृत्तार्थत्व-पृ० २२१ समाप्तपुनरास्तत्व-पृ०
२२२, अक्षमत्वसम्बन्धत्व-पृ० २२२ व्युत्पत्ति पृ० २२२, पदप्रकर्षता पृ० २२२,
काव्यविवक्षता-पृ० २२३ ।

पाँचवीं अध्याय

केशव की विचारधारा तथा जनका इतिहास ज्ञान (पृ० २२४ २७८)

(अ) केशव की विचारधारा

✓ (१) केशव के दार्शनिक सिद्धान्त : ब्रह्म-पृ० २२४, माया पृ० २२६ जीव
पृ० २२६, जीव की कोटियाँ-पृ० २२८ सृष्टि पृ० २२८ जगत्-पृ० २३० मुक्ति
के प्रमुख साधन-संस्कार-पृ० २३३ सम-पृ० २३४ संतोष-पृ० २३४ विचार-पृ०
२३४ मुक्त जीवों के प्रकार-पृ० २३४ प्राणायाम-पृ० २३५, संन्यास-पृ० २३५,
मनोनिग्रह-पृ० २३६ ।

(२) केशव की शक्ति-पृ० २३६ ।

(३) केशव की नीति एवं धर्म-पृ० २४० ।

(क) नीति—(१) राजनीति राजा-पृ० २४०, मंत्री-पृ० २४१ मन्त्र-पृ० २४१, राजपरम-पृ० २४२ (२) सामान्य नीति पृ० २४६ ।

(ख) वर्म पुत्रपरम-पृ० २४८ नारीपरम-पृ० २४८ निववापरम-पृ० २४९ ।

(४) केशव के समय का जीवन राजवर्म का जीवन-पृ० २४० धर्मरोष-पृ० २४१ शाही हरम-पृ० २४२ प्रजावर्म का जीवन-पृ० २४२ मठाधीशों की स्थिति पृ० २४४ ।

(२) केशव का नारी-दर्शन-पृ० २६४ ।

(६) पुत्र-महिमा-पृ० २४५ ।

(७) ब्राह्मण भक्ति-पृ० २४६ ।

(घा) केशव का इतिहास-ज्ञान

केशव की अपेक्षा-पृ० २४६ बीरसिंहदेव भरित में वर्णित इतिहास बीरसिंह का पराक्रम-पृ० २४७ मुगल सेना का आक्रमण-पृ० २४७ रामसाह तथा संग्रामसाह का बीरसिंह के विरुद्ध पराक्रम पृ० २४८ अकबर की जाल-पृ० २४९, बीरसिंह का पराक्रम पृ० २५० उर्बे सुवर्णकर की विज्ञान-पृ० २५० सरीखे लोहे में पेंट-पृ० २५१ जयम-ग्रहण-पृ० २५१ समीम के मग की बात-पृ० २५२ बीरसिंह का उपदेश-पृ० २५२, समीम का बीरसिंह को विषा करना-पृ० २५२ धनुषकल का निरूपण और उसका बीरसिंहदेव के विरुद्ध युद्ध में निरूपण-पृ० २५२ बीरसिंह का रामामिषक-पृ० २५३ इतिहासकारों का मत-पृ० २५४ रायरामान (विपुल) का आक्रमण-पृ० २५५ बीरसिंह और संग्रामसाह में सम्मिलित-पृ० २५६ रामसाह का वृत्त-पृ० २५७ जङ्गल के लोहे की छरिवाह-पृ० २५७ अकबर की नीति-पृ० २५७, समीम का संकट-पृ० २५८ बीरसिंह की पराक्रम पृ० २५९, अकबर का संग्राम और मृत्यु पृ० २६०, समीम साह ॥ बारसाह तथा बीरसिंह पर कथा-पृ० २६०, वर की कूट पृ० २६१ सम्मिलित-पृ० २६० बीरसिंह का आक्रमण-पृ० २६१ धनुस्ताह लोहे की नीति-पृ० २६१ विजय के उपरांत-पृ० २६२, बहाबीर-जय-नमिका तथा रतनबावनी में संक्षिप्त इतिहास-सामग्री-पृ० २६२ ओढ़का का राजवंश बीरसिंहदेव भरित के अनुसार-पृ० २६४ कविप्रिया के अनुसार-पृ० २६४ ओढ़का मंडेतिर ॥ अनुसार-पृ० २६५, बंधवों की तुलना-पृ० २६० ।

छठा अध्याय

केशव का रीतिकाम्य (पृ० २७१ ३१७)

(घा) रीतिकाम्यों का संक्षिप्त परिचय

(१) रीतिक्रिया-पृ० २७१, (२) कविप्रिया-पृ० २८० (३) विजय-पृ० २८२ (४) जयमाला-पृ० २८३ ।

(घा) रीतिकान्त-ग्रन्थों का काव्यपक्ष

(१) भावव्यञ्जना-यू० २८४।

(२) वर्णन प्रकृति-वर्णन-यू० २९१, वस्तु तथा वृत्त-वर्णन-यू० २९६ गद्यसिद्धि वर्णन-यू० २९७।

(३) प्रसंकार-योगना कविप्रिया-यू० २९८ चिन्तन-यू० २९९ रसिकप्रिया यू० ३००।

(४) छन्द रसिकप्रिया-यू० ३०४ कविप्रिया-यू० ३०४, चिन्तन-यू० ३०५ रसानुकूल छन्द-भङ्गार रस-यू० ३०६, कवण रस-यू० ३०६ शान्त रस-यू० ३०७ छन्द-सम्बन्धी कुछ शेष-यू० ३०७।

(५) भाषा

(क) शब्दकोष संस्कृत का प्रभाव-यू० ३०७ वेष्टी अनुशासन-यू० ३०८ बुद्धेयशब्दी शब्द-यू० ३०८ प्रवर्गी शब्द-यू० ३०९ विदेशी शब्द-यू० ३०९ गढ़े हुए शब्द-यू० ३१०।

(ख) शीघ्रतः मुद्रावरे-यू० ३१०, लोकोक्तिर्या-यू० ३११ व्यञ्जना-यू० ३११ भाषा की सजीवता-यू० ३१२ अलंकरण-यू० ३१३ अर्थव्यञ्जन-यू० ३१४ भाषा में प्रय-यू० ३१५।

सातवाँ अध्याय

किसम का रीतिविवेचन (यू० ३१८-४३८)

(प्र) कविप्रिया में रीतिविवेचन और उसका आचार

काव्य-शेष-यू० ३१८ मन्त्र-मन्त्र विचार-यू० ३२२, कवि प्रकार-यू० ३२३, कवि-रीति-यू० ३२६, प्रसंकार-वर्णन वर्णनकार-यू० ३२९ व्यञ्जनाकार-यू० ३३३ भूमिमी वर्णन-यू० ३३३ राज्यमी-वर्णन-यू० ३३४ विधिपटांशकार-वर्णन-यू० ३३९ विभिन्न प्रसंकारों का विवेचन और आचार स्वभाव-यू० ३४० विभावना-यू० ३४१ हेतु-यू० ३४१ विरोध-यू० ३४३ विरोध-यू० ३४४ उत्प्रेक्षा-यू० ३४५ प्राप्तेय-यू० ३४६ कम-यू० ३४७ यचना यू० ३४८ आधिप-यू० ३४८ प्रेम-यू० ३४८ शेष-यू० ३४९ सुकम-यू० ३४९ शेष-यू० ३४९ निर्वर्णना-यू० ३४९ ऊर्ध्व-यू० ३४९, रसवत् यू० ३४९ अर्थान्तरग्यास-यू० ३४९, व्यतिरेक-यू० ३४९, अपहृ-मुक्ति-यू० ३४९, चरित अश्लेषित-यू० ३४९ अग्योक्ति-यू० ३४९ व्यधिकरणोक्ति-यू० ३४९, विरोधोक्ति-यू० ३४९, चरितोक्ति-यू० ३४९, व्यावस्तुति और निम्बास्तुति यू० ३४९, अमित यू० ३४९ पर्यायोक्ति-यू० ३४९ मुक्त-यू० ३४९ समाहित-यू० ३४९ सुष्ठि प्रसिद्ध और विपरीत-यू० ३४९ ३४९ रूपक-यू० ३४९ शीपक-यू० ३४९, प्रहेसिका-यू० ३४९ परिशुत-यू० ३४९ उपमा-यू० ३४९ यमक-यू० ३४९ विभासकार-यू० ३४९ प्रसंकार विवेचन के क्षेत्र में केशव की मीलिकता-यू० ३४९ कुछ शेष-यू० ३४९।

(ग्रा) रत्तिकविद्या में रस तथा नायक-नायिका भेद निरूपण धीरे उसका आचार

आचारमूल ग्रन्थ-यू० १७८ रस लक्षण तथा भेद निरूपण-यू० १७९ नामक-
 वर्णन-यू० १८१ अनुकूल-यू० १८४ दक्षिण-यू० १८४, छठ-यू० १८९ मुष्ट-यू०
 १८९ नायिका भेद-वर्णन आदि के अनुसार नायिकाएँ-यू० १८९ पथिनी-यू० १८७
 विप्रिणी-यू० १८७ पंथिनी-यू० १८८ हस्तिनी-यू० १८९, कर्मानुसार नायिकाएँ-यू०
 १८९ स्वकीया नायिका-यू० १९० सुभा के भेद-यू० १९० मध्या के भेद-यू० १९२
 मध्या के धीरादि ग्रन्थ भेद-यू० १९४ प्रीड़ा के भेद-यू० १९५, प्रीड़ा के धीराधीरा
 आदि ग्रन्थ भेद-यू० १९६ परकीया नायिका-यू० १९७ चार प्रकार के वर्णन-यू०
 १९८ रस्यति-भेदा-वर्णन-यू० १९९, स्वयमुत्पन्न-वर्णन-यू० ४०० प्रथम-मिसन
 स्वान-वर्णन यू० ४०० रस के व्यवयव आचारि भाव-यू० ४०१ विभाव-यू० ४०२,
 अनुभाव-यू० ४०४ स्थायी भाव-यू० ४०४ सात्त्विक भाव-यू० ४०५, संघाटी भाव
 यू० ४०५, हाव-यू० ४०६ अवस्थानुसार नायिकाएँ-यू० ४११ पुणों के अनुसार
 नायिकाएँ-यू० ४१६ अगम्या-वर्णन-यू० ४१७ विप्रलम्भ शृंगार पूर्वानुराग-यू०
 ४१८, वस कामदशाएँ-यू० ४१९ मान विप्रलम्भ-यू० ४२१ मानमोक्षण के सपाय
 यू० ४२३ मान की रीति-यू० ४२५, कण विप्रलम्भ-यू० ४२६ प्रवास विप्रलम्भ
 यू० ४२६, सखी-निरूपण-यू० ४२७ सखीजन-कर्म-वर्णन-यू० ४२८ हास्य रस-यू०
 ४२९ विभिन्न रसों के वर्णन-यू० ४३० शृंगार तथा हास्य से उत्तर रसों का निरूपण
 कवण रस-यू० ४३१ रीति रस-यू० ४३१ नीर रस-यू० ४३१ भयानक रस-यू० ४३२
 बीमत्स रस-यू० ४३२ अद्भुत रस-यू० ४३२, सम (सान्द्र) रस-यू० ४३३ वृत्ति
 वर्णन-यू० ४३३, अनरस-वर्णन-यू० ४३४ सुख्य रस-यू० ४३६, मौलिकता-यू०
 ४३६ ।

(ह) केशव के काव्य-सम्बन्धी विचार-यू० ४३८ ।

आठवाँ अध्याय

केशव तथा हिन्दी के परवर्ती आचार्य (यू० ४३९ ११२)

प्रमुख आचार्य-कवि-यू० ४३९ ।

सुमनारम्भ अध्ययन

१—आलंकार-विवेचन के क्षेत्र में—

विष्णुमणि तथा केशव-यू० ४३९, मतिराम तथा केशव-यू० ४४४ कुतपति
 मिश्र तथा केशव-यू० ४४९ देव तथा केशव-यू० ४५४ दास तथा केशव-यू० ४६१,
 पद्माकर तथा केशव-यू० ४७१ ।

२—रस तथा नायक-नायिका-भेद विवेचन के क्षेत्र में—

विष्णुमणि तथा केशव-यू० ४७५, मतिराम तथा केशव-यू० ४८१ ॥ तथा
 केशव-यू० ४८७, दास तथा केशव-यू० ४९० पद्माकर तथा केशव-यू० ५०६ ।

नवीं अध्याय

केसव का हिन्दी के परचरती श्रुमारी कवियों पर प्रभाव (पृ० ५१३ ५२३)

केसव और बिहारी-पृ० ५१३ केसव और मतिराम-पृ० ५१३ केसव और
रेव-पृ० ५१७, केसव और बास-पृ० ५२३ केसव और बेनी प्रवीन-पृ० ५२४ ।

बसन्ती अध्याय

केसव का रमान (पृ० ५२६ ५३१)

(घ) बसन्तकार विवेचन के खेव में-पृ० ५२६ ।

(घा) रस तथा भाविका भेद-विवेचन के खेव में-पृ० ५२८ ।

(ङ) श्रुमारी कवियों में-पृ० ५३० ।

परिशिष्ट (पृ० ५३२ ५४२)

बुधमुखी लिपि में प्राच्य ग्रन्थमाला का लेखनायरी लिप्यन्तर-पृ० ५३२ ।

सहायक-ग्रन्थ (पृ० ५४३ ५४४)

१—हिन्दी भाषा के ग्रन्थ-पृ० ५४३ ।

२—हिन्दी सन्तकीय-पृ० ५४३ ।

३—संस्कृत भाषा के ग्रन्थ-पृ० ५४३ ।

४—पद्म तथा पद्मिकाई-पृ० ५४३ ।

५—संवेदी भाषा के ग्रन्थ-पृ० ५४३ ।

हमारे अनुसन्धान की विशेषताएँ (पृ० ५४४)

संकेत-मारिखी

६०	—	संकेत
६१	—	ईश्वरी
६२	—	संकेत
६३ मदि	—	संकेत
६४ कु० टर	—	संकेत
६५ दि०	—	संकेत
६६ दि० (नूत)	—	संकेत
६७ क० वति	—	संकेत
६८ प्र०	—	संकेत
६९ सु०	—	संकेत
७०	—	संकेत
७१ मा०	—	संकेत
७२ व० व०	—	संकेत
७३ प्र० पत्रिका	—	संकेत
७४ मा० प्र० खोज- निष्ठा	—	संकेत
७५ मा० डा०	—	संकेत
७६ परि०	—	संकेत
७७	—	संकेत
७८	—	संकेत
७९ प्र० मा०	—	संकेत
८० प्र० ख०	—	संकेत
८१ प्र० रा०	—	संकेत
८२ बी० ई० व०	—	संकेत
८३ दि०	—	संकेत
८४ रतनबागरी	—	संकेत
८५ सु०	—	संकेत
८६ रा० ख०	—	संकेत
८७ रा० व० मा०	—	संकेत
८८ रि० न०	—	संकेत
८९	—	संकेत
९०	—	संकेत
९१	—	संकेत
९२	—	संकेत
९३	—	संकेत
९४	—	संकेत
९५	—	संकेत
९६	—	संकेत
९७	—	संकेत
९८	—	संकेत
९९	—	संकेत
१००	—	संकेत

वि०	—	विक्रमी
वि० गो	—	विज्ञानगीता, बेकटेस्वर प्रेस, बम्बई
नृ० वि०	—	नृनारनिर्भय
वसो०	—	इलोफ
स०	—	सम्बत्
सम्पा०	—	सम्पादक
स० कु० कंठाभरण	—	सरस्वतीकुलकण्ठाभरण
सा० द०	—	साहित्यदर्पण
स्व०	—	स्वर्णीय
C.L.B. Gazetteer	—	Central India States Gazetteer (Eastern States-Orissa)
Sec.	—	.Section

विभिन्न परिस्थितियों का केशव पर प्रभाव

किठी साहित्यकार की कृतियों के उचित मूल्यांकन के लिए यह नितांत आवश्यक है कि उसके युग का सम्पूर्ण ज्ञान हो क्योंकि साहित्यकार अपने युग का ज्ञापक होता है और उसकी कृतियाँ भी एक विशिष्ट परिस्थिति की क्रिया और प्रति क्रिया का फल होती हैं। एब० ए० टेन महोदय अपने संघर्षी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि कोई साहित्यिक रचना केवल व्यक्तिगत कल्पना का खेल ही नहीं होती और न उल्लेखित मन का एकान्त विमोह ही होती है, बरन् समसामयिक साधारणिक का अनुलेख एक एक विशेष मानसिक अवस्था का प्रतिरूप होती है^१। टेन महोदय की यह उक्ति सत्य है और इसको ध्यान में रखते हुए हमें साक्षात् केशवदास का अध्ययन करना चाहिए। साहित्यकार पर समकालीन युग ही का नहीं अपितु पूर्ववर्ती युग का भी प्रभाव पड़ता है। अतएव केशवदास के काव्य का विवेचन करने के पूर्व उनकी पूर्ववर्ती तथा समकालीन राजनैतिक सामाजिक धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का विवरण करना आवश्यक है।

राजनैतिक परिस्थिति

भारत में मुगल साम्राज्य के बीजारोपण के पूर्व दिल्ली का साम्राज्य नष्ट भष्ट हो चुका था बड़े-बड़े प्रांतों में अलग-अलग राजा विद्यमान थे छोटे-छोटे जिले वहाँ तक कि प्रत्येक नगर या बुग का स्वामित्व बड़े-बड़े सरदारों या बघों के हाथ में था जिनके ऊपर अन्य कोई अधिकारी न था। यह छोटे-छोटे राजाघों मुसूक-मल-तर्क अवकाशकारी अधिकारियों का समय था। इन दिनों हिन्दू और मुसलमान राज्यों के सदा परस्पर युद्ध चलते रहते थे। एक साहसी तथा धर्मनिष्ठा विदेशी आक्रमणकारी के लिए यह एक सुन्दर अवसर था। फलतः भारत में बाबर का पदार्पण हुआ। इस देश में अपने पैर पुरातन जमाने के लिए बाबर को राणा सांगा जैसे गजपूत वीरों का सामना करना पड़ा। उनको पराजित करने में उसे न जाने कितने वीरों का शमिदान करना पड़ा। किन्तु साब ही साथ राजपूतों के धातम-मम्मान और उनकी उत्प्रेरणा एवं वीरता की भाव उनके हृदय में जमे बिना न रह सकी। बाबर अपने उद्देश्य में सफल रहा। भाग्य ने उनका साथ दिया। भागे बसकर हुमायूँ को भी

^१ A work of literature is not a mere individual play of imagination, a solitary caprice of a heated brain, but a transcript of contemporary manners and type of a certain kind of mind.

—Introduction, Vol I page 1; Translated by H. Van Lenn, Chatto and Windus Piccadilly London, 1871 A. D.

सुख-भोग में मग्न रहा। बाबर ने मरते समय हुमायूँ से कहा कि वह अपने भाइयों के साथ प्रेम का व्यवहार करे। हुमायूँ ने उसके आदेश का पालन तो किया किन्तु इससे उसको बड़ी क्षति पहुँची। कष्टों एवं आपत्तियों का कारण उसके भाई ही रहे। उसे भी अपने पिता के समान राजपूतों से मोहा सेना पड़ा। इस पर भी मुगल-साम्राज्य पूर्णतः संश्लिष्ट न हो सका। लोगों का बराकाहों के संश्लिष्ट शासन-काल में राजकीय संघटन तथा व्यवस्था का समर्थन ही रहा। ऐसी अवस्था में कोई राजनैतिक तथा धार्मिक विकास और उन्नति सम्भव न थी। अकबर को भी अपने राज्य के धारण में ही विपन्न स्थिति का सामना करना पड़ा। देश में उपद्रवों का जोशबोला था। पारों धोर अधान्ति असन्तोष एवं विद्रोह के कारण हुए थे। अधान्ति को दूर कर शांति स्थापित करना एक बड़ी भारी समस्या थी। सन् १५५६ में जब अकबर सिंहासन पर बैठा तब केवल पंजाब ही उसके अधिकार में था। उसके सरदार सरहिन्द, दिल्ली और भागलपुर की रक्षा में जुटे थे। राज्य-विस्तार उसे बहाना था। एक ओर सुरक्षा के उत्तराधिकारियों का प्रबल विरोध था तो दूसरी ओर हेमू भी दिल्ली की ओर बढ़ा चला आ रहा था। पूर्व में बंगाल के अकाल सातक दिल्ली के अधिपत्य से समझ में आता था। इसी प्रकार राजस्थान भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए हुए था। गुजरात और मालवा का भी दिल्ली से सम्बन्ध टूट चुका था। मोंडवाना और मध्यप्रान्त स्वामीय हिन्दू सरदारों के अधीन थे। जड़ीसा भी स्वतन्त्र हो चुका था और उसका शासन हिन्दू राजाओं के हाथ में था। विन्ध्यवास के बलिष्ठ की ओर लानदेव बरार, बीबर, अहमदनगर, बीजापुर और मोमकुम्हा अपने ही सुतानों द्वारा शासित थे जिनका दिल्ली के बराकाहों से कोई सम्बन्ध न था। उत्तर में काश्मीर, सिन्ध और बलोचिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र थे। परन्तु अकबर ने अपनी बुद्धि-नीतुष्य एवं अनुपम प्रतिभा से समस्त प्रदेशों को एक-एक करके अपने अधीन कर लिया और स्वामीय राजाओं तथा सरदारों से नवीन-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। किन्तु ही हिन्दू राजाओं ने उसका अधिपत्य स्वीकार कर लिया था। सन् १५६२ में आमेर के राजा बिहारीमस ने नवीन सम्राट के दरबार में पहुँचकर अपना उपहार भेंट किया। सम्राट ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और सहुर्वजनकी कन्या को प्रहण किया। इससे पूर्व भी सम्राट (अकबर) लखनौ और समीमा से विवाह कर चुके थे। ये दोनों राजपूत महिलाएँ ही थीं। सम्राट के हarem में पाँच हजार से अधिक हिन्दू परचियन मुगल और धारमोमियन महिलाएँ विद्यमान थीं।

अकबर को ही मुगल-साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक कहा जा सकता है। उसके समय में राजनैतिक सुव्यवस्था स्थापित हो जाने के कारण न केवल धार्मिक सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ ही बल्कि अर्थ, साहित्य और कला के क्षेत्र में भी अत्यन्त-व्यवस्थित स्थिति तथा समृद्धि हुई। इनके शासन-काल में विशेषतः हिन्दी-कविता अपनी उन्नति के चरम चिह्न पर पहुँच गई थी। स्वयं अकबर बराकाह और उसके दरबारी—राजा बीरमल राजा टोडरमस मरहुरि बन्दीजन प्रभृति हिन्दी के प्रणेता कवि थे।

आगे चलकर जो साम्राज्य जहाँगीर का अपने स्वर्गीय पिता से बाध के रूप

यें प्राप्त हुआ था वह विस्तार, जन-संख्या और शासन की दृष्टि से संसार में सबसे बढ़कर था। यद्यपि जहाँगीर में अपने पिता जैसे महान् गुरु तो न थे तथापि वह एक सुयोग्य शासक था इसमें सन्देह नहीं है। उसमें अकबर की नीति का अनुसरण करने की समझता एक योग्यता थी। उसके राजसभ-काल में कहीं-कहीं स्थानीय बकाई चढ़ाई अकबर हुए किन्तु सामान्यतः पुरखतया शांति ही रही। उसकी सरकार में बालिश्य एवं उद्योग-अर्थों की बृद्धि सम्पत्ति हुई। अवन-निर्माणकला और विनकला दोनों को आसानीय सफलता प्राप्त हुई, साहित्य की समृद्धि अस्मिन् हुई। जहाँगीर के काल में ही राजा जयसिंह बीकानेर के राजा रायसिंह राजा मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह, रामचन्द्र बुन्देला आदि की बैठियाँ पहुँच चुकी थीं।

अकबर और जहाँगीर के समय में खोरछा राज्य की राजनैतिक स्थिति के विषय में भी यहाँ बर्णन करना आवश्यक होया क्योंकि हमारे आलोच्य केशवदास की का अपिकांश जीवन खोरछा-वरणा में ही व्यतीत हुआ था।

खोरछा राज्य की स्थिति—जहाँगीर के समय में खोरछा राज्य का विस्तार बहुत अधिक था। इसका विस्तार उत्तर में जमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पश्चिम में अम्बाल नदी से लेकर टोंस नदी तक था^१। केसव के समय में कदाचित् खोरछा राज्य की यही सीमा रही होगी। आशंक्य इसके उत्तर तथा पश्चिम में भ्रंसी प्राप्त दक्षिण में सानर प्राप्त तथा बिजावर और पन्ना की रियासतें और पूर्व में करदासी और बिजावर रियासतें एवं गरौली आदीर स्थित हैं।

जमुनादेव के पुत्र मल्लानसिंह है। इनके राज्य-काल तक गङ्गकुमार में ही राजधानी थी। इनके छ पुत्र थे। उनमें से उद्भवाप्तसिंह (सन् १५०१-१५११) सबसे ज्येष्ठ थे और वे ही यहाँ पर बैठे। शेष को आदीरों की पई थी। इन्होंने ही ३ अगस्त सन् १५११ को खोरछा बसाया था^२। इनके समय में खोरछा की बड़ी सम्पत्ति एवं

१ Jahanqir's reign on the whole was fruitful of peace and prosperity to the Empire. Under its auspices industry and commerce progressed, architecture achieved notable triumphs.....literature flourished as it had never done before.

—History of Jahangir Vol. I pages 447-448.

२. खोरछा एन्सेक्लर, पृ. १ तथा इत जमुना उत नर्मदा, इत अम्बाल उत टोंस।

—बुन्देल देस जनक शाय, प्रथम पृष्ठ १०-१५।

३ बुन्देलखण्ड का इतिहास लिखित अम्बाल २३ पृ० १५५ (पद-टिप्पणी।)

४ सुप प्रताप स्र मु मये दिन क अनु रण दह।

×

×

×

नगर मोरछो जिन रही जन में आगति कृति।

—क० वि. म. १ अ० १५-१६।

तथा

हिम के सुत मये सीत समुद्र। प्रताप स्र अनु पद।

×

×

×

नगर मोरछो गुन मग्धीर। प्राग बसाओ धरनी और॥

—ली० ई० अ० ३-११।

अभिमुखि हुई। इनके दो विवाह हुए। प्रथम विवाह करेराबासे परमार रंभाबास की कन्या से और दूसरा यहराबासे बीबास भान्तिह भयेरे की कन्या से हुआ। करेराबासी रानी के गर्भ से धीम और भयेरेबासी छोटी रानी से नौ पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें से भारती बन्ध (सन् १३३१-१३३४) और मधुकरसाह को नहीं मिसी और शेष साठ को बागीरों तथा धीम की आत्मावस्था में ही मृत्यु हो गई^१। सन् १३३४ में जिस समय मधुकरसाह गद्दी के अधिकारी बने उस समय मुसलमानों का घातक छाया हुआ था। दिल्ली का राज्य अकबर के पास था। राजा का स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करना उसे बड़ा असह्य था^२। अकबर ने धीम बार उन्हें अपने बघ में लाने के लिए सेना भेजी^३। तीसरी बार सन् १३४४ में अकबर ने राजा घासकरण कछवाहा और अनुस्मा काँ की धोरछे पर आक्रमण करने के लिए भेजा^४। इस बार धोरछे के आधिपत्य, सिरीज और राजधानी के बीच के सभी जिसे मुगलों के हाथ आ गये पर मधुकरसाह न माने और बार में उन्होंने उनमें से कुछ जिसे फिर बापिस अपने बघ में कर लिये^५। मुघल के ऐकाग्रित्व में सन् १३६१ में फिर सेना भेजी गई। महाराज पराजित हो नरवर की पहाड़ियों में आश्रय निकले^६। धोरछा का राज्य मुगलों के हाथ में चला गया। एक वर्ष पश्चात् ही सन् १३६२ में राजा परलोक सिंघार मये। मधुकरसाह के समय में राज्य ने दिन डूनी और रात बीपुनी उत्पत्ति की। वे बड़े बमर्हिमा थे। निर्भीक इतने थे कि और कोई भी राजा व राज उनकी धोर घाँस उठाकर न देख सकता था^७। इनके साठ पुत्र थे। उनके पश्चात् धोरछा की गद्दी पर उनके ज्येष्ठ पुत्र रामसाह^८ (सन् १३६२-१९३) यही पर बैठे। बाद में उन्हें चन्देरी की बापीर मिसी। ये जहाँगीर के समकालीन थे। इनके साठ भाई और प्याछ पुत्र के जिनमें से संग्रामसाह सबसे ज्येष्ठ थे^९। राजा रामसाह का समस्त कार्य

१ बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, अन्वय १३ पृ. १२५।

२. वही, पृ. १२६।

३ वही, पृ. १२७।

४ वही, पृ. १२७।

५ All the districts of Orchha between Gwalior [Hiranj] and the capital now fell to the moghuls. Later on, however he managed to recover some of them.
—G. I. B. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section 1, page 19.

६ In 1601 Prince Mural attacked the Raja who was defeated and fled to the hill round Harwar where he died a natural death the next year.
—G. I. B. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section 1, page 19.

७. ज्ञान वर्म सुलतान की राजा राजत बाहि। —क. डि. म. १. ब. २५।

८. केदारनाथ मधुकरसाह के रामसाह नामक सिन्धी पुत्र का जन्मका मसी करते समय का रामसाह की ही उमर (रामसाह उमर मये—क. डि. म. १. ब. १) और हम्मीर का मर्ग सिन्धी है। मधुकरसाह के नौ पुत्र पूरुष राम थे (तिन के दूजह राम—क. डि. म. १. ब. २७) उमर का के पुत्र प्रसिद्ध मर्ग मयम दूजह राम—र. डि. म. १. ब. ३)। इनका राज होय अनुमलसिंह है। ऐत प्रसिद्ध होता है कि रामसाह सभी का बपनाम था।

९. तिन के मुत प्याछ मये जैठे साह संग्राम। —क. डि. म. १. ब. २५।

उनके छोटे भाई इन्द्रबीरसिंह ही करते थे^१। वे स्वयं तो अकबर के दरबार में रहते थे और अकबर ने भी उन्हें अपने दरबार में बैठक दी हुई थी^२। वे अपनी परिस्थिति में बीरसिंह इन्द्रबीर आदि अपने भाइयों के अधिकार में बुन्देलखण्ड विभिन्न-विभिन्न भाग छोड़ गये थे। होरसदेव तो ओरछा में सन् १५७७ में ही युद्ध मार दिये गये थे। उन्हें पिछोर की बागीर मिसी थी। इन्द्रबीर को कछीया^३ (यद्यपि उनके प्राचीन राजमन्त्र के अनुसारसेव भाग भी विद्यमान हैं) की बागीर, बीरसिंह बड़ौनी की हरसिंहदेव को असनेह प्रतापराव को कुछ पहोड़िया रतनसिंह गौरभमर और रणधीरसिंह को धिबपुर (जब ग्वालियर में सिवपुरी) की बागीर प्राप्त हुई थी। इस प्रकार ओरछा रियासत के घाट भाग हो गए। यद्यपि वे ओरछा के प्राचीन कहते थे पर यथार्थ में वे स्वतन्त्र ही^४। रामसाह में इतनी धर्मिता थी कि वे अपने प्राचीनस्व बागीरबारों को दबा सकें अतः वे सब स्वतन्त्र हो गये। स्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि समस्त रियासत में अन्तर्बिद्रोह हो गया जिसके फलस्वरूप ओरछा में बाईस बागीरे हो गई। घाट में तो इन्हीं के भाई-प्राप्त मजदुरसाह के साथ वे शेष चौख में परमार, कछवाहे और गोंड थे^५। सब भाइयों में बीरसिंह बड़े उग्र और महत्वाकांक्षी थे। इनकी मुख्य बागीर बड़ौनी थी। छोटी होने के कारण इन्होंने बड़ा असन्तोष बना रहता था। अल्पकाल में ही इन्होंने पवाबा तोमरा, नरव केनारस आदि मुगल-साम्राज्य के कुछ जिले अपने बस में कर लिये^६। ग्वालियर राजा और मुठमिय घाट सरकार भी इनके डर से घर-घर काँपते थे। अकबर ने इन्हें कुचलने के लिए राजा घासवरण^७ को भेजा और रामसाह को आज्ञा दी कि वे उसका सहायता करें। बीरसिंह की उनके भाई इन्द्रबीरसिंह और राजा प्रताप ने बड़ी सहायता की और फलतः मुगल सेना को भीषा देवना पड़ा। खीमकर अकबर ने इन्हें पकड़ने के लिए अकबुरहीम जालजाना और शीमल बाई को भेजा पर वे भी असफल रहे। उन्होंने जिसत और मनसब का सामान्य लेकर भी उन्हें अकबर के पक्ष में जाने का प्रयत्न किया और यह बात सफल भी हो चुकी थी परन्तु बीरसिंह एक छोटी सी बात पर अस्वस्थ होकर इनके अनुमति से शिकार के भिन्न साफ बच निकल। अन्त में रामसाह अकबर का सम्बन्ध बुरा हो गया। सन्देश-विचारण के लिए रामसाह ने गुप्त रीति से बीरसिंह को सोते समय मरवा डालने की भी चेष्टा की पर वे इस बार भी बच गये।

१ तबपि सबे इन्द्रबीर सिंह राजकाज को भार।—क. वि. प्र० १ अ. १

२ ताहि तहाँ बैठक बई, अकबर सो भवनीस।—क. वि. प्र० १ अ. १२

३ ताहि कछोवा कमल सो गढ़ दीन्हीं मूप राम।—क. वि. प्र० १ अ. ४

४ O. L. B. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Sec. II, p. 11

५ Things rapidly went from bad to worse until the whole state was plunged into civil war and dissension. There were twenty two jagirs in the state eight being those of Medhnikar's sons and fourteen held by Kachwahas, Parmar Gonds and others. —O. L. B. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Sec. II, page

६ दी दे व ५ १६।

७ दी दे व १० १०।

इन सब ने बीरसिंह को और भी सावधान कर दिया और वे एक प्रभावशाली मित्र की आवश्यकता अनुभव करने लगे। अकबर और सलीम के पारस्परिक वैमनस्य का साम ठठा कर वे सलीम ने पास पहुँचे। दोनों ने एक दूसरे की मित्रता की आवश्यकता प्रतीत हुई। दोनों ने धार्मिक मित्रता निमाने का प्रण किया। सबप्रथम उन्होंने अपने धार्मिकता सलीम की प्रार्थना पर अकबर के प्रिय मित्र तथा मंत्री अबुलफज्जल का रूप दिया। इस पर सलीम के हर्ष का तो पारावार न रहा किन्तु अकबर को अपार शोक हुआ। अकबर ने चातक बीरसिंह को पकड़ने का अनेक बार मन किया पर सब व्यर्थ ही रहा। अकबर की सहसा मृत्यु हो गई और जहाँगीर सिंहासन पर आसीन हुआ। उस फिर क्या था ! बीरसिंह का भाग्य कमरु सटा। सिंहासनावृद्ध होने के पहले ही वर्ष जहाँगीर ने उसे तीन हजारी^१ का मनसब दिया और फिर सात हजारी का की^२। कुछ दिनों बाद ए० १६०७ में जहाँगीर ने रामदाह को पदों से उतार दिया और बीरसिंह को दोरदे की पदों दे दी। इस प्रकार उसे समस्त कुम्हलजब का अधिकार बना दिया^३। दोरदे में बीरसिंह के समय में कुम्हल स्वतन्त्रता की पताका फहराने लगी। इस पर रामदाह ने जोड़ा विरोध किया पर बादशाह के मेरे कामपी के सुबेदार अबुल्लाह और जसतबी की सहायता से बीरसिंह अपना प्रभुत्व जमाने में पूर्णतः सफल हुए^४। बीरसिंह ने कुछ भी किया जिसमें इनकीत और सब भूपाल ने सहायता दी। अन्त में उसे बादशाह के सम्मुख से जाया गया। बादशाह ने उसे मुक्त कर दिया और जमेरी और वामपुर की जागीरें भी प्रदान कीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोरदा राज्य-बंध की एक विचित्र स्थिति थी। राज्य-बंध के कुछ लोग जैसे राजा रामदाह आदि तो अकबर के जमान से प्रभावित होकर उसी की ओर झुक रहे थे और कुछ लोग जैसे बीरसिंहदेव उसके परम विरोधी हो उसे चुनौती दे रहे थे। अकबर की वक्तव्य महापणा प्रतापसिंह और दोरदा-नरेव बीरसिंहदेव पर ही थी और वह चाहता था कि उनको भी धर्म सिद्ध राजाओं की भाँति अपने बंध में कर ल किन्तु वह अपने जीते की बीरसिंह को काबू न कर सका। जहाँगीर ने बादशाह होते ही समस्त कुम्हलजब का अधिकार बीरसिंहदेव के हाथों में सौंप दिया। समय से ही वहाँ तक कुम्हलों ने अपना सत्ता और मुगलों की नाक में बम कर दिया।

उमर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अकबर और जहाँगीर के समय में ही जागीर देने की प्रथा का प्रचलन हुआ था जिसके परिणामस्वरूप अनेक जागीरदार ऐसे हुए जिन्होंने अपनी जागीरों के बँसव की पूर्य अभिवृद्धि की। सामान्य जागीरदारों में से किसी की तो मुगलों से खूब पटती और किसी की खूब

१. Bir Singh was at once raised to the dignity of a mansab of 3,000 horses.
—C. I. B. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section II, page 21

२. Jahangir granted his favourite many honours...a mansab of 7,000.
—C. I. B. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section I, page 22.

३ की रे० प १ ६२।

४ जोरदा गजेटियर, पृ २।

उत्पत्ती थी। किन्तु वे मुगलों के कृपा-भाव पर ही अधिकतर आधारित रहते थे। वे नाम-मात्र को ही स्वतन्त्र कहलाते थे। उन्हें अर्ध-स्वतन्त्र (Semi-autonomous) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

केन्द्र के शासनबलात् इन्द्रजीत पर समकालीन राजनैतिक परिस्थिति का प्रभाव जब राजन्याय शासित्व से संबंधित हो गया हो और उसका स्वाभिमान ही मिट्टी में मिस भुका हो तो उन नाम-मात्र के हिन्दू राजाओं से क्या आशा की जा सकती थी? अकबर और जहांगीर के कृपा-भाव पर आधारित उन राजाओं के सम्मुख वाही दरबार की रीति-नीति के अतिरिक्त और अनुकरणीय ही क्या रह गया था। फलतः विमासिता और उसके विभिन्न साधनों के प्राप्त करने की ही सामंसा उनमें पीवतम होती चली गई। वे अपने साम्राटों का अनुकरण कर रहे थे। उस समय मूल्य एवं संगीत का वाजार गरम था। कला और कलावस्तुओं के प्रति विशेष आकर्षण था। अपने दरबारी कवियों द्वारा अपने कीर्ति-मान सुनने में ही वे अपने को बख्त समझते थे तथा किसी नायिका के सौन्दर्य वर्णन को सुनकर ही अपने भाव्य को सराहते और प्रामाण्यमान हो भूम उठते थे। ठीक वही वधा नाम-मात्र के शेरशाह मरेह रामदाह के अनुचर इन्द्रजीतसिंह की भी जिनके शासन में आचार्य केसवदास भी रहते थे। इन्द्रजीत कसोधा नामक गढ़ के स्वामी थे और वहीं रहते भी थे। वे काव्य, मूल्य और इत्यादि के बड़े रुचिक थे। इनके यहाँ साहित्य और संगीत का प्रसादा सबा जमा ही रहता था और वे स्वयं भी 'इन्द्र' के सङ्घ संगीत में ही मस्त रजा करते थे^१। यद्यपि इनका मन्त-पुर क्यबती पीसबती और मुखबती नवयुवतियों से परिपूर्ण था तथापि इनमें एक बेहमार्द अधिक विख्यात भी जिनके नाम हैं—प्रवीणराय नवरपराय विचित्रनयना तान चर्य रंगराय और रंगभूति^२। वैसे तो वे सभी मूल्य-वीर इत्यादि कलाओं में बड़ी निपुण एवं निप्यशास्त्र भी पर इनमें प्रवीणराय सबसे बढ़कर थी। कारसु बहु मूल्य-संगीत के अतिरिक्त काव्य-रचना में भी प्रवीण थी^३। ऐसे ऐश्वर्यपूर्ण वास का छोड़ केन्द्र कहाँ जाते? यथा जहाँ—

धृतम को इन्द्र इन्द्रजीत राजे यद-युग ।

केसोदास जाके राज राज तो करत हैं ॥^४

महाराजा इन्द्रजीत की सखझमा में पोषित केसवदास पर इन परिस्थितियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। समसामयिक परिस्थितियों से ऊपर उठने की सामर्थ्य केसव में नहीं थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अकबर और जहांगीर के समय में मुगल साम्राज्य भारत में पुरखत स्थापित हो चुका था और उसका बीमन अपने चरम बिन्दु पर पहुँच चुका था। ऐसे सुख-समृद्धिपूर्ण वातावरण में राजा तथा प्रजा

१ क. वि० प्र० १ पृ० ४१ ।

२ यही प्र० १ पृ० ४१ पृ० ।

३ यही प्र० २ पृ० १९ ।

४ यही प्र० ४ पृ० २१ ।

बोनों का विकासप्रिय हो जाना सामाजिक ही था। पाषाणों के व्यक्तित्व का प्रभाव उनके ज्ञान-भाव पर धारित सामन्तों एवं सरदारों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। साम्याधित कवि भी इस प्रभाव से बच नहीं सकते थे। केदार की श्रृंगारिक प्रवृत्ति इसी प्रभाव का परिणाम है।

सामाजिक परिस्थिति

चक्रवर्त के पूर्व सुलतान बादशाहों के शासन-काल में हिन्दुओं पर अनेक प्रति बन्ध थे। उन्हें सुलतानों की अपेक्षा कम सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। सामाजिक स्थिति-नीति भाषा के व्यवहार की भी उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता न थी। उनकी स्थिति अनिश्चित और अस्थायी थी^१। डा० ईश्वरीप्रसाद ने हिन्दुओं की राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक एवं धार्मिक दशा का बड़ा ही विषय वर्णन किया है। भारतवर्ष में इस्लाम की अभिवृद्धि उसके भारत सिद्धान्तों के कारण नहीं बल्कि इसलिये हुई कि वह एक ऐसी राजपक्षित का धर्म था जो कि कभी-कभी पद्म द्वारा वनपूर्वक विधित प्रजा को अपना धर्म अपीकार करने के लिए विवश करती थी। स्वासिद्धि और राज्य में उन्मत्त पद प्राप्त करने के मात्तब से भी कभी-कभी सोय अपने धर्म को त्याग देते थे। सिद्धान्तों से बाह्य हो अपनी इच्छा से तो इस्लाम को विरते ही प्रतीकार करते थे। क्योंकि न तो पद प्राप्ति का मात्तब ही और न राज्य की ओर से धार्मिक पुरस्कार ही^२। उस वर्ग के प्रति जिसने उनकी स्वाधीनता छोड़ी थी और जो उन्हें अत्यन्त शूणा की वृष्टि से देखता था हिन्दुओं की प्रबल विरोध-भावना पर काबू पाने में सफल हो सका। लगभग ५०० वर्षों तक हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग रहे। उभर सशक्त हिन्दुओं ने भी बटकर विरोध किया। धार्मिक एवं राजनैतिक दोनों दृष्टियों से हिन्दुओं को पीड़ित किया जाता था^३। मूर्तियों का सम्भन करना स्वीकृत सिद्धान्तों के प्रति हुर प्रफार की विरोध भावना को हुर करना तथा काफ़िरों (हिन्दुओं) को मुसलमान बनाना—ये कार्य एक आदर्श मुसलमान राज्य के कर्तव्य समझे जाते थे^४। हिन्दू जिन्मी कहे जाते थे। उन्हें अपनी रक्षा के लिए सरकार को बर्धिया देना पड़ता था^५। बर्नी लिखता है कि प्रतापसिंह के शासन-काल में कोई हिन्दू अपना मस्तक ऊँचा करके नहीं चल सकता था। उनके बरों में सोना बाँधी देखने में न आता था। सनान मासगुजारी से सम्बन्ध रखने वाले हिन्दुओं की तो बहुत ही दुर्दशा थी। चौधरी ब्रज भाषि ऐसे बर्णन हो गए थे कि न अच्छे वस्त्र पहन सकते थे न जोड़े पर चढ़ सकते थे न सस्त्र धारण सकते थे और न पान खा सकते थे। यह वह भी लिखता है कि उनकी स्त्रियाँ मुसलमानों के बरों में सेवा-शुभूपा के लिए बाधा करती थी^६। हिन्दू निर्बलता हीनता और कठिनता का जीवन व्यतीत करते

१. इ-कमलजीन पदों की सामाजिक अवस्था पृ० ५६।

२. History of Medieval India, page 525.

३. History of Medieval India, page 525.

४. Ibid. page 537.

५. भारत का इतिहास, भाग १ अध्याय ५५, पृ० १९६।

६. वही, पृ० १९५।

ने। उनकी धाम उनके अपने लिए और कुटुम्ब के लिए बड़ी कठिनता से ही पर्याप्त होती थी। विहित प्रथा में रहन-सहन की व्यवस्था बहुत ही मित्र कोटि की थी और राज्य-कर का भार विशेषतः उन्हीं पर होता था। ऐसी अवस्था और दीनता की वधा में उन्हें अपनी राजनैतिक प्रतिभा को पूर्णतः विकसित करने का कभी अवसर न मिल सका^१। अपने इन संकुचित अधिकारों के रहते भी हिन्दुधर्म में धार्माभिमान का मोर नहीं हो गया था। साथ ही विभासिता का भी धमाका न था। उच्च मर्यादा की स्त्रियों के सान्प्रत्य और ब्रह्माग्निहार का कृत्रिम प्रचलन था^२। वर्ण-व्यवस्था विशुद्ध रूप में थी। समाज में धर्मियों की संख्या अधिक थी, जो चारों प्रामाणिक बलों से भी नीचे थे। वे घाट मार्गों में विमग्न थे—बाजीगर बोबी मोबी बुसाहे, टोकरे और डाल बमाने वाले धीवर, मछिरे और व्याध। इन घाटों बाटियों की मयूरों और घामों के भीतर रहने की आशा न थी। इन पेसेवासी जातियों से भी नीचे हाड़ी डाय बाण्वाण और बिबातु थे। इन्हें अत्यन्त वृणित जाति का अछूत समझा जाता था^३। इस्लामी राज्य में छाही लोगों में विभासिता को काफ़ी प्रारम्भ मिलता। राज्य के उच्च पर मुसलमानों को ही मिलते थे। किसी भी सम्मानित पदोन्नति का निर्यय सामारयत बाधघाह की ही इच्छा पर निर्भर रहता था। सोमदा की कोई पूछ न थी। बुख-साम्य, बन-सम्पत्ति और बख्तारी उत्सवों में भाग लेना—ये पुण्यजन का कारण हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि ईसा की चौदहवीं सताब्दी के अन्त में मुसलमानों में पहले के-से बन और दीप का ह्रास होने लगा^४।

परन्तु अकबर ने अपने शासन-काल में हिन्दू-मुसलमानों के सम्पर्क को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने हिन्दुधर्म पर लगी पाबन्दियों को हटा दिया और दोनों के साथ समता की नीति का पालन किया। अकबर में धार्मिक सहिष्णुता झूट-झूटकर भरी हुई थी जिसके फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों ही उसे धार और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। हिन्दू-मुसलमान दोनों प्रायः एक स्तर पर आ गए थे। उन्हें अपने उत्सवों रीति रिवाजों आदि के मगाने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। परन्तु हिन्दू-सामाजिक जीवन में जो आचार सभ्यता आ चुकी थी वह एकबारगी दूर न हो सकी। पारस्परिक ईर्ष्या-वैषम्य श्रेष्ठ-भाव विषय-विभासिता, मर-पान आदि दुर्भ्यजन हिन्दुधर्म के उच्च वर्ग के लोगों में ज्यों के त्यों बने रहे। विपन्नता के कारण सामारण जनता अपेक्षाकृत संभव से काम लेती थी। अकबर का मुख पूरा वैभव का युग था। अफ़्रीम महिला जैसी नशीली वस्तुओं का सेवन नाब-यान धाम विभास आदि का उस समय दौर-दौरा था। सम्राट स्वयं कभी-कभी छपन अफ़्रीम के बने हुए पदावों का कृत्रिम सेवन करता था^५। साथे चलकर जहाज़ीर के राज-काल में भी यहो दशा रही। उसने अपने पिता की नीति का पालन किया। हॉकिन्स ने

१. हिन्दी अक्षर लिपि १० १११।

२. अकबरनामा धारण की सामाजिक व्यवस्था १ ४१।

३. गरी, १० १०-१५।

४. A Short History of Muslim Rule in India, Chapter XI, page 183.

५. Akbar the Great Moghul, page 338

धर्मों का विनाशप्रिय हो जाना सामाजिक ही था। शासकों के व्यक्तिगत का प्रभाव उनके कृपा-भाव पर आधारित सामन्तों एवं सरदारों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। साम्याधित कवि भी इस प्रभाव से बच नहीं सकते थे। केदार की भूमिगत प्रकृति इसी प्रभाव का परिणाम है।

सामाजिक परिस्थिति

मकदूर के पुत्र मुसलमान बादशाहों के शासन-काल में हिन्दुओं पर अनेक प्रति बन्ध थे। उन्हें मुसलमानों की अपेक्षा कम सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। सामाजिक रीति-नीति आदि के व्यवहार की भी उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता न थी। उनकी स्थिति अनिश्चित और अस्थायी थी^१। डा० ईस्मरीप्रसाद ने हिन्दुओं की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक दशा का बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया है। भारतवर्ष में इस्लाम की प्रतिक्रिया उसके चरम सिद्धान्तों के कारण नहीं बल्कि इसलिए हुई कि वह एक ऐसी राजसक्ति का धर्म था जो कि कभी-कभी धर्म द्वारा असमर्थ विविध प्रजा को अपना धर्म अंगीकार करने के लिए विवश करती थी। स्वार्थसिद्धि और राज्य में सम्मिलन प्राप्त करने के लक्ष्य से भी कभी-कभी लोग अपने धर्म को त्याग देते थे। सिद्धान्तों से बाधित हो अपनी इच्छा से ही इस्लाम को बिना ही अंगीकार करते थे। क्योंकि न तो यह-प्राप्ति का लालच ही और न राज्य की ओर से आर्थिक पुरस्कार ही^२ उस धर्म के प्रति जिसमें उनकी स्वाधीनता खीनी थी और जो उन्हें अत्यन्त भूला की दृष्टि से देखता था हिन्दुओं की प्रबल विरोध-भावना पर काम पाने में सफल हो सका। सम्भवतः १०० वर्षों तक हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग रहे। तब एक हिन्दुओं ने भी उठकर विरोध किया। धार्मिक एवं राजनीतिक दोनों दृष्टियों से हिन्दुओं को पीड़ित किया जाता था^३। मुसलमानों का सम्मान करना स्वीकृत सिद्धान्तों के प्रति हृदय प्रहार की विरोध भावना को दूर करना तथा काफ़िरों (हिन्दुओं) को मुसलमान बनाया—ये कार्य एक अपरिचित मुसलमान राज्य के कर्तव्य समझे जाते थे^४। हिन्दू धिम्मी कहे जाते थे। उन्हें अपनी रक्षा के लिए सरकार की सहायता देना पड़ता था^५। नहीं मित्रता है कि अमावसीय के शासन-काल में कोई हिन्दू अपना मस्तक ठोका करके नहीं चल सकता था। उनके घरों में सोना चांदी बेचने में न आता था। लगान मातगुजारी से सम्बन्ध रखने वाले हिन्दुओं की धो गल्ल ही दुर्दशा थी। बीबरी कुछ साक्षि ऐसे बरिष्ठ हो गए थे कि न धर्म बरन पहन सकते थे न कोड़े पर चढ़ सकते थे न घरन घरीष सकते थे और न पास जा सकते थे। यह यह भी मित्रता है कि उनकी स्थिति मुसलमानों के घरों में सेवा-सुधूपा के लिए जाना करती थी^६। हिन्दू निर्धनता हीनता और कठिनता का जीवन व्यतीत करते

१ मध्यकालीन भारत की सामाजिक व्यवस्था पृ० ४१।

२ History of Medieval India, page 325

३ History of Medieval India, page 325.

४ Ibid page 327

५ भारत का इतिहास पृष्ठ १ अथवा मध्यम, १ १६१।

६ अर्थ, १ १६४।

है। उनकी आज उनके अपने लिए और कुटुम्ब के लिए बड़ी कठिनाता से ही पर्याप्त होती थी। विविध प्रजा में रहने-सहने की व्यवस्था बहुत ही भिन्न कोटि की थी और राज्य-कर का भार विशेषतः उन्हीं पर होता था। ऐसी व्यवस्था और दीनता की वजह से उन्हें अपनी राजनैतिक प्रतिभा को पूर्णतः विकसित करने का कभी अवसर न मिला सका^१। अपने इन समुचित अधिकारों के रहते भी हिन्दुओं में धार्मिकमान का सोप नहीं हो गया था। साथ ही विनाशिता का भी धाम न था। सत्त्व धरानों की स्त्रियों में धामपण और ब्रह्म श्रुत्यार का कृम प्रवर्तन था^२। बल-व्यवस्था विमृक्षत रूप में थी। समाज में शत्रुता की संस्था अधिक थी जो चारों धार्मिक बलों से भी नीचे थे। वे घात मार्गों में नियुक्त थे—बाजीगर बोरी मोची बुताहे, टोकरे और हाथ बजाने वाले बीवर, मछिरे और व्याध। इन घातों वातियों को सबरों और प्रानों के भीतर रहने की आज्ञा न थी। इन पेशेवासी वातियों से भी नीच हाड़ी डोय आच्छास और विबाधु थे। इन्हें अत्यन्त बलित वाति का अछुत समझ जाता था^३। इस्लामी राज्य में साही सोपों में विनाशिता को काफी प्रोत्साहन मिला। राज्य के उच्च एवं मुसलमानों को ही विभते थे। किसी भी सम्मानित पदोन्नति का निर्णय साधारणतः वायसाह की ही इच्छा पर निर्भर रहता था। योग्यता की कोई पूछ न थी। मुक्त-साध्य सम-सम्पत्ति और हरवारी उत्सवों में भाग लेना—ये दुर्व्यसन का कारण हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि इसा की बौद्धही प्रताप्ती के अन्त में मुसलमानों में पहले के-से बल और शीर्ष का हास होने लगा^४।

परन्तु अकबर ने अपने शासन-काल में हिन्दू-मुसलमानों के वैषम्य को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने हिन्दुओं पर लगी पाबन्दियों को हटा दिया और दोनों के साथ समता की नीति का पालन किया। अकबर में धार्मिक सहिष्णुता छूट-छूटकर बरी हुई थी जिसके फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों ही उसे आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। हिन्दू-मुसलमान दोनों प्रायः एक स्तर पर आ गए थे। उन्हें अपने उत्सवों की रीति रिवाजों आदि के समाने की पूछ स्वतन्त्रता थी। परन्तु हिन्दू-धार्मिक जीवन में जो आचार अष्टता या बुरी की बहू एकबारगी दूर न हो सकी। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष भेद भाव विषय-विनाशिता मद्य-दान आदि दुर्व्यसन हिन्दुओं के उच्च वर्ग के लोगों में ज्यों के त्यों बने रहे। विपन्नता के कारण साधारण जनता अपेक्षाकृत संयम से काम लेती थी। अकबर का युग पूर्ण वैभव का युग था। अश्विनी अधिकृत ऐसी गयीकी वस्तुओं का सेवन आनन्द-मान भोग विनाश आदि का उस समय बीर-बोरा था। सम्राट् स्वयं कभी-कभी पराज अश्विनी के बने हुए पदावों का कृम सबन करता था^५। धार्मिक बलकर बहानीर के राजस्व-काल में भी बहो बसा रही। उसने अपने मिता की नीति का पालन किया। हाकिम ने

१ विभी अज्ज हरिदक पृ० २६१।

२ मन्वधर्मीय वात की सामाजिक व्यवस्था पृ० ४६।

३ बरी, पृ० ४०-४५।

४ A Short History of Muslim Rule in India, Chapter XI page 182.

५ Akbar the Great Moghul, page 336.

सम्राट के रहन-सहन परबारी शिष्टाचार, शासन-व्यवस्था एवं प्रजा के सामाजिक जीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वह लिखता है कि सम्राट् कृष्ण मंदिर सेवन करता था और दागते बहुत दिया करता 'या जिसमें सबसे अधिक उल्लेखनीय मीरोज की दागत थी। उसने यह भी लिखा है कि उत्तराधिकारी के प्रभाव में घर-बारों की सम्पत्ति का अन्तिम स्वामी सम्राट् ही होता था। इस प्रकार उसका राज्य कोप दिनों-दिन इतना बढ़ता जाता था कि उसकी गणना भी नहीं की जा सकती थी। घर-टामस रो ने भी अपने 'अरनस' में मुगल दरबार की शानो-शौकत तथा मुगल सम्राट् जहाँगीर के समय एक व्यक्ति का और मुगल सरबारों के सामन्तोत्सव और विदासपुण्य जीवन का बड़ा ही विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। किन्तु इसके साथ ही वह किसानों की शीन-शीन बसा छद्मों की घरस्थित अवस्था, शासन प्रबन्ध की दुर्म्यवस्था याचि का भी वर्णन करना नहीं भुला है। लिखता है कि सम्पूर्ण राज्य में बुझबोरी का बाजार गरम था। बाजार के विषय में वह लिखता है कि उसने रात के समय मंदिर-सेवन और मोक-विदास के बहुत से दृश्य देखे हैं। वह सम्राट् घराब पीकर विस्फुल बेहोश हो जाता था तो बसियाँ बुल कर दी जाती थी और मदिरोम्सल सरबार भी अपने घरों को लौट आते थे। वेस्टर्न और डी साट ने भी जहाँगीर के समय के भारतीय समाज का अच्छा वर्णन किया है। डी साट लिखता है कि सामन्तों का जीवन बड़ा समुद्र था। उनकी विभासिता का वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। वेस्टर्न के वर्णन से हमें पता चलता है कि राज्य में तीन प्रकार के वर्ग थे जिनका जीवन दुनामों का-सा था। इनमें मजदूर चपरासी या मीकर तथा दुकानदार विशेष उल्लेखनीय थे। मजदूरों की आय बहुत ही कम थी। प्रायः उनसे बेघार भी जाती थी। उन्हीं दिन में केवल एक बार खाने को मिलता था और वह भी खिचड़ी ही। उनके भक्षण प्रायः कच्चे होते थे। उच्चाधिकारियों के मीकरों की भी आय अधिक न थी। परिव्राम वह होता था कि वे अन्य अनुचित साधनों से अपना पैदा करने की विन्ता करते लगते थे। बस्तूरी मौमता दो साधारण-सी बात हो गई थी। दुकानदारों की अवस्था भी असन्तोषजनक थी। देश का अधिकतर व्यापार हिन्दुओं के ही हाथ में था। मुसलमान विशेषतः रंगरेज और बुलाहे का ही व्यवसाय अपनाते थे। ज्योतिष में हिन्दू और मुसलमान समान रूप से विश्वास रखते थे। ब्राह्मणों से मुसलमान अधिकतर प्रभावित थे क्योंकि इनसे धूम तिमि और बड़ी पूछे बिना वे कभी यात्रा तक को नहीं निकसते थे।

इस प्रकार घर-टामस रो याचि बिबेसी याचिबी के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एकतर और जहाँगीर तथा उनके परबानस सामन्त विभासिता के रंग में धाकण्ड डूबे हुए थे और अत्युत्त वासना रखने वाले साधकों के आदर्श को प्राप्त

१. A Short History of Muslim Rule in India, page 258

२. History of Jahangir Vol. I, pages 447-448.

३. भारत का इतिहास, भाग ३ पृ. २४३-२४४।

कर समाज का भी मुकाबल और विस्तारिता की ओर होना स्वाभाविक ही था। ऐसे वातावरण के प्रभाव से कैलाश का काव्य विशेषतः ऐतिहास्य भी प्रभूता नहीं रह सका और इसी कारण उसमें राजबंशकार के बिनासी जीवन के घुसुप्य अपेष्ट भुंति-कटा सा गई है। उनके 'रामचरित' तथा 'विद्यानपीठा' नामक ग्रन्थों में भी देश के इस सामाजिक सम-पतन की ओर संकेत किया गया है।

धार्मिक परिस्थिति

यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि मुसलमान बादशाहों ने राज्य की उत्तुंगता और धार्मिक व्यापारों के बल पर प्रभावी था। उनका उद्देश्य राज्य प्रसार के साथ मुसलमान धर्म का विस्तार करना भी था। उनको मुसलमान धर्म के प्रसार के लिए राज्य की ओर से अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। उधर हिन्दू जनता अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता भँवा बैठी थी और उसने अपना धर्म और संस्कृति सुरक्षित रखने के लिए समय-समय पर भिन्न भिन्न आन्दोलन भी कहे किये थे। इस प्रकार भारत में एक ओर मुसलमान धर्म का प्रचार था और दूसरी ओर हिन्दुओं में विभिन्न प्रकार के आन्दोलन और पक्ष रहे थे।

मुसलमानों के साथ ही सूफ़ी फकीर भी भारत आये। मुसलमानों की उत्तुंगता को काम न कर सकी उसे इन फकीरों ने करने का पूरा-पूरा प्रयास किया। मुसलमानों ने हिन्दुओं को जीता प्रवास्य पर थे उनके हृदयों को न जीत सके। हिन्दुओं ने विविध होकर भी मुसलमानी धर्म का एक विदेशी धर्म ही समझा। उधर सूफ़ी फकीरों की भी सुनिधि। उन्होंने हिन्दुओं के हृदय में भी प्रेम की कषायों को लेकर अपने माथों एवं विचारों की सुन्दर अभिव्यक्ति की किन्तु इन सूफ़ी फकीरों के उपदेश उच्च वर्ग के लोगों को प्रभावित न कर सके पर बहुत से साधकों पर अपना प्रभाव प्रभाव डालते रहे। इन सूफ़ियों ने निर्गुण और समुख दोनों धाराओं को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। निर्गुण संप्रदायों में आत्मा को पत्नी-रूप में और परमात्मा को पति रूप में स्वीकार कर उसके प्रेम और निरुद्ध में तल्लीन रहने और समुख संप्रदायों में प्रेमा-भक्ति का प्राधान्य होने का कारण सूफ़ी फकीरों की साधना प्रवृत्ति ही प्रतीत होता है। इस प्रकार सूफ़ी फकीरों की प्रवृत्ति को बार-बार सम-पने और हिन्दुओं पर भी सूफ़ी सन्तों के प्रभाव का अवसर था। सर्वप्रथम पंजाब और सिन्ध पर सूफ़ियों का प्रभाव पड़ा, क्योंकि प्राकृतिक और भौतिक कारणों से धर्मार्थ विदेशियों के समान ही सूफ़ी फकीर भी पहले वहीं पहुँचे थे^१। ग्यारहवीं शती में दागानब बरक या बुम्साबी नामक सुदिक्खाल मकदूम सीमा पर भी प्रसन्न हुआ कि वे लाहौर को अपने धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार-विश्व बनाया और वहीं उनका मोहकवाट हुआ। आज भी उसको दरगाह का बहुतेरे हिन्दू और मुसलमान आदर करते हैं^२। भारतीय सूफ़ियों में मुर्शिदाबिदी सबसे अधिक सम्मानित हैं। उनके कारण ही सूफ़ीमत के प्रभाव का प्रचार सम्पूर्ण भारत में हुआ। यहाँ तक कि कुछ

^१ Medieval Mysticism of India, page 11

^२ Ibid, page 12.

सम्राट के रहन-सहन दरबारी-सिंघाचार शासन-व्यवस्था एवं प्रजा के सामाजिक जीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वह लिखता है कि सम्राट नूतन मंदिर-संभन करता था और दावतें बहुत दिया करता था जिसमें सबसे अधिक उम्मेदवीय मोरोज की दावत थी। उसने यह भी लिखा है कि उत्तराधिकारी के प्रयास में दरबारों की सम्पत्ति का अन्तिम स्वामी सम्राट ही होता था। इस प्रकार उसका सम्म-कोप दिनों-दिन इतना बढ़ता जाता था कि उसकी परछाया भी नहीं की जा सकती थी। सर टामस रो ने भी अपने 'अरनज' में मुगल दरबार की घातों-झोझ तथा मुगल सम्राट जहाँगीर के वैभव एवं जगित का और मुगल सरबारों के सामन्तोत्सव और विनासपूर्ण जीवन का बड़ा ही विदार विवरण प्रस्तुत किया है। किन्तु इसके साथ ही वह किसानों की बीन-हीन तथा शर्कों की घरलित व्यवस्था शासन प्रबन्ध की दुर्भ्यवस्था आदि का भी वर्णन करना नहीं भुला है। वह लिखता है कि सम्पूर्ण राज्य में बूखबोरी का बाजार परम था। दरबार के विषय में वह लिखता है कि उसने रात के समय मंदिर-संभन और भोग-विनास के बहुत से दृश्य देखे हैं। जब सम्राट सराव पीकर बिसकुल बेहोश हो जाता था तो बतियाँ गुन कर ही जाती थी और मन्दिरोगमत्त सरबार भी अपने बरों को लौट आते थे। पेसर्ट और जी साट ने भी जहाँगीर के समय के भारतीय समाज का अच्छा वर्णन किया है। जी साट लिखता है कि सामन्तों का जीवन बड़ा समृद्ध था। उनकी विनासिता का वर्णन करना सैकड़ों की समित से बाहर है। पेसर्ट के वर्णन से हमें पता चलता है कि राज्य में तीन प्रकार के वर्ग थे जिनका जीवन गुजामों का-सा था। इनमें मजदूर, बपराही या नौकर तथा दुकानदार विशेष उल्लेखनीय थे। मजदूरों की घाय बहुत ही कम थी। प्रायः उनसे बेपार भी जाती थी। उन्हें दिन में केवल एक बार खाने को मिलता था और वह भी खिचड़ी ही। उनके मकान प्रायः कच्चे होते थे। उष्णविकारियों के नौकरों की भी घाय अधिक न थी। परिणाम यह होता था कि वे प्रायः अनुचित छावनों से खपा पैदा करने की विन्ता करने लगते थे। बस्तूरी माँगना तो सामान्य-सी बात हो गई थी। दुकानदारों की व्यवस्था भी असन्तोषजनक थी। बेध का अधिकतर व्यापार हिन्दुओं के ही हाथ में था। मुसलमान विशेषतः रंगरेख और बुझाड़े का ही व्यवसाय अपनाते थे। व्यापार में हिन्दू और मुसलमान समान रूप से विश्वास रखते थे। बाह्यलों से मुसलमान अधिकार प्राप्त थे क्योंकि इनसे शुभ छिनि और बड़ी पुखे बिना वे कमी याबा तक को नहीं निकसते थे।

इस प्रकार सर टामस रो आदि विविधी यात्रियों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मजदूर और जहाँगीर तथा उनके प्रचीनत्व सामन्त विनासिता के रंग में धाकट डूबे हुए थे और समृद्ध कायना रखने वाले छावनों के धावर्त को प्राप्त

१ A Short History of Muslim Rule in India, page 358

२ History of Jahangir Vol. I, pages 447-448.

३ सरावर्त का इतिहास, भाग १ पृ. २४३ २४४।

कर समाज का भी मुकाबल और विभासिता की ओर होना स्वाभाविक ही था। ऐसे बातावरण के प्रभाव से केसव का काव्य विशेषतः 'रीतिकाम्य' भी धसता नहीं रह सका और इसी कारण उसमें 'राजवरणार' के विभासी जीवन के अनुस्यू यथेष्ट शृंगारि-कथा पाए गई हैं। उनके 'राजचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानपीठा' नामक ग्रन्थों में भी केसव के इस सामाजिक धमपतन की ओर संकेत किया गया है।

धार्मिक परिस्थिति

यह निविदाव बड़ा जा सकता है कि सुसमाज बादशाहों ने राज्य का तलवार और धार्मिक धाशाओं के बल पर चलाया था। उनका उद्देश्य राज्य प्रसार के साथ सुसमाज धर्म का बिस्तार करना भी था। उनको सुसमाज धर्म के प्रसार के लिए राज्य की ओर से अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। उमर हिन्दू जनता अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता बँचा बँठी थी और उसने अपना धर्म और संस्कृति सुरक्षित रखने के लिए समय-समय पर मिला मिला धान्दोसम भी लड़े किये थे। इस प्रकार भारत में एक ओर सुसमाज धर्म का प्रचार था और दूसरी ओर हिन्दुओं में विभिन्न प्रकार के धान्दोसम और एकज रहे थे।

सुसमाजों के साथ ही सूफी फकीर भी भारत आये। सुसमाजों की तलवारों को काम न कर सकी उसे इन पजरीरों ने करने का पूरा-पूरा प्रयास किया। सुसमाजों ने हिन्दुओं को भीता धमकव पर के उनके हृदयों को न जीत सके। हिन्दुओं ने विजित होकर भी सुसमाजी धर्म को एक विदेशी बल ही समझा। अगर सूफी फकीरों की भी सुमिसे। उन्होंने हिन्दुओं के हृदय में भी प्रेम की कथाओं को लेकर अपने भावों एवं विचारों की सुन्दर प्रतिबिम्बित की किन्तु इन सूफी फकीरों के उपदेश उल्लेख बर्ष के सौर्यों को प्रभावित न कर सके पर बहुत से साधकों पर अपना प्रभाव धनस्य बालते रहे। इन सूफियों ने निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं को भी पर्वोष्ठ माना में प्रभावित किया। निर्गुण उपासकों में आत्मा को पत्नी-रूप में और परमात्मा को पति रूप में स्वीकार कर उसके प्रेम और विरह में तल्लीन रहने और सगुण उपासकों में प्रेमा-भक्ति का प्राधान्य होने का कारण सूफी फकीरों की सामना-पक्षि ही प्रतीत होता है। इस प्रकार सूफी फकीरों की प्रसिद्धा को बार बाद लग गये और हिन्दुओं पर भी सूफी सन्तों का प्रभाव का धमसर आया। सर्वप्रथम पंजाब और सिन्ध पर सूफियों का प्रभाव पड़ा क्योंकि प्राकृतिक भौगोलिक कारणों से अन्ध्याय विदेशियों के समाज ही सूफी फकीर भी पहुँचे वहीं पहुँचे हैं। प्यारहवीं धाटी में बलारम बहल या मुस्ताफी नामक सुबिख्यात मकसूम सैयद असी-मन हुनबिरी ने साहूँर को अपने धाध्यायिक सिद्धांशों का प्रचार-सैन बनाया और यहीं उनका योसोकवास हुआ। आज भी उसकी दरगाह का बहुतेरे हिन्दू और सुसमाज धावर करते हैं^१। भारतीय सूफियों में मुईद्दीन चिस्ती सबसे अधिक सम्मानित हैं। उनके कारण ही सूफीमत के प्रभाव का प्रचार सम्पूर्ण भारत में हुआ। यहीं तक कि कुछ

(1) Medieval Mysticism of India, page 11

२. Ibid, page 18.

ब्राह्मण भी उससे न बच सके^१। उत्तरी भारत के बहुत से भागों में सूफियों की बहुत प्रतिष्ठा थी। १५वीं सताब्दी से १७वीं सताब्दी के मध्य तक उसकी निरन्तर प्रसिद्धि होती गई^२। एक धीर हिन्दुओं धीर मुसलमानों में परस्पर मेस-बोल बढ़ाने का काम था। सुफ़ी साधक कर रहे थे वही दूसरी धीर कबीर-सन्धी निर्मुंखो-पासक भी कर रहे थे। उन्होंने हिन्दू-धर्म में प्रचलित अन्ध विश्वास, सुषा-भूत की भेद भावना मन्दिर-मस्जिद के समझे भारतीय संकीर्णता समातन शास्त्रों धीर धार्मिक प्रयाधों के अनुसरण का भी प्रबल विरोध कर जनताधारण के सम्मुख ज्ञान तथा प्रेम से उत्पुष्ट निर्मुंखोपासना का एक नवीन दृष्टिकोण सामने रखा। बाबू-धर्म भी समाज पर वही प्रभाव डाल रहा था जो कबीर-धर्म। बाबू के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने बालीस दिन तक एकबार के साथ बाद-विवाद किया था धीर उसे काफ़ी प्रभावित किया था^३। जिसके फलस्वरूप एकबार ने उसके से अपना नाम हटवाकर उसके स्थान पर एक धीर 'जलानुस्सुह' धीर दूसरी धीर 'अस्ता-हो अकबर' सिखाया था^४। सारांश यह है कि एकबार के समय में निगु सु-भारा का प्रबाह काफ़ी प्रबल था धीर केवल उससे किसी चीजा तक अवश्य ही प्रभावित हुए हैं।

केवल की पुनर्वर्ती तथा समकालीन सगुण-भारा के अन्ततः बंप्ताव भक्ति के प्रचारकों की धीर भी व्याप्त बना आवश्यक हुआ। पुनर्वर्त के राजत्व-काल में ईसा की चौबी सती से लेकर छत्ती सती के धर्मसमय तक बंप्ताव भक्ति तथा धाम-वत धर्म का सम्पूर्ण भारत में बोलबाला था। ज्यो ही पुन-साम्राज्य का अन्त हुआ त्यों ही उसका उत्तरी भारत में प्रचार कम होने लगा किन्तु दक्षिण भारत में उसकी कमजोर प्रसिद्धि होती लगी। दक्षिण भारत में बंप्ताव भक्ति-साहित्य के दर्शन हमें सबसे पहले रामिस भाषा में लिके पाठ्यकार मन्त्रों के गीतों में होते हैं। उत्तरी भारत में विष्णु भक्ति की धार्मिक प्रबलता तो बस्तुतः ईसा की १५वीं धीर १६वीं सताब्दी में ही हुई की। परन्तु दक्षिण भारत से आने वाले साधकों की रामानुजा-धर्म की मन्त्राधर्म की विष्णुस्वामी तथा निम्माकाधर्म के प्रयत्न से ईसा की १२वीं सती से लेकर १५वीं सती तक यह धर्म उत्तरी भारत में फैल गया था^५।

१. *Medieval Mysticism of India*, page 15.

२. *Ibid.*, page 32.

३. *His (Dadu's) fame as a man of deep spirituality reached the ears of the Emperor Akbar who was his contemporary and Birbal, it is said prevailed upon the sains to have an interview with the Emperor in response to an invitation from him.*

Rajjabdas refers to the event in one of his couplets—

एकबारसाहि बुलाइया गुरु दादु को धार।
छात्र भूठ ग्योरा हयो तब रह्यो नाम परताप ॥

—*Nirguna School of Hindi Poetry* page

४. *Medieval Mysticism of India*, page 111-112.

५. *मध्यम और उत्तरम सम्प्रदाय (मध्यम धर्म) पृ० १११।*

चौरहवीं शताब्दी के आरम्भ में स्वामी रामानन्दजी ने रामानुजाचार्य के विधिष्टा शैववादी श्री सम्प्रदाय को व्यापक और लोकप्रिय बना दिया और उत्तरी भारत में सगुण भक्ति का द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिया। उन्होंने विष्णु के स्थान पर मयौदा स्थापन करने वाले राम को ही परम आराध्य मानकर श्री सम्प्रदाय के स्थान पर रामानन्दी नामक एक नए सम्प्रदाय की स्थापना की जो ठात्थिर दृष्टि से रामानुजाचार्य के मत से भिन्न नहीं है। केवल व्यावहारिक क्षेत्र में ही थोड़ा बहुत भिन्न दिखलाई देता है। जिस प्रकार स्वामी रामानन्द द्वारा राम-भक्ति को प्रमत्त मिला उसी प्रकार निम्बार्काचार्य मध्वाचार्य विष्णु स्वामी या भानन्दतीर्थ चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विठ्ठलनाथ हितहरिबंध द्वारा कृष्ण भक्ति का प्रचार हुआ। निम्बार्काचार्य ने राधा-कृष्ण की सख्य-भाव की उपासना का प्रचार किया। विष्णु स्वामी बल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने उज्ज्वल भक्तवा मधुर भाव को उत्कृष्टता दी। हित-हरिबंध के राधावल्लभी सम्प्रदाय तथा चैतन्य सम्प्रदाय से उत्पन्न हरिवादी भक्तवा सभी सम्प्रदाय ने प्रेम सखाया भक्ति को प्रवर्धित किया। इस प्रकार इस सम्प्रदाय में सभी भाव से युक्त कैलि की उपासना को प्रधानता मिली। श्री बल्लभाचार्य के पुत्र श्री विठ्ठलनाथ ने सर्वोत्तम कृष्णोपासक कवियों को लेकर 'घट्टहाप' की स्थापना की। श्री बल्लभाचार्य और घट्टहाप के भक्त-कवियों ने अपने प्रचार का बन्ध-स्थल श्रीकृष्ण की पवित्र जन्मभूमि बन ही रखा। ब्रज प्रदेश की जनभाषा में ही कृष्ण भक्ति का प्रचार एवं प्रसार हुआ। इन पूर्वोक्त प्रचारकों के प्रतिरिक्त महाउष्ट्र के सन्त एकनाथ गुजरात के नरसिंह मेहता राजस्थान की मीरा आदि ने ब्रज-सम्प्रदाय से पृथक रहकर कृष्ण-भक्ति की तान छड़ी।

केसव के ग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि केसव पर रामानुजाचार्य विष्णु स्वामी मध्वाचार्य आदि आचार्यों के दार्शनिक बार्धों तथा राधाकृष्ण भूजा-सम्बन्धी विभिन्न सम्प्रदायों का कोई विशेष प्रभाव नहीं है। कृष्ण-भूजा-सम्बन्धी सम्प्रदायों में केसववास सभी-सम्प्रदाय से अवश्य ही घनमिश्र न है। उन्होंने इस सम्प्रदाय का परोक्ष रूप से उल्लेख 'विज्ञानगीता' में पाश्र्विक्यों के स्थल का वर्णन करते हुए किया है। वे इस सम्प्रदाय को भक्तवा की दृष्टि से ही देखते हैं^१। रामानन्द के शिष्याओं का भी थोड़ा-बहुत प्रभाव केसव पर परिमिश्रित होता है। राम उनके इष्टदेव हैं^२। और इसी कारण उन्होंने 'जमिन्का' में राम-नाम की महिमा का कीर्तन किया है और प्रत्येक वर्ण का राम-नाम का अधिकारी भी बताया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि केसववास किसी भयंकर रामानन्दी सम्प्रदाय से विद्यवा भूषमन्त्र 'धों रामाय नमः' है, अवश्य प्रभावित हुए हैं।

१ विज्ञानगीता प्र० ८ अ० १८-१९।

२ केसववास ठही कर्यो रामपन्न पू इष्ट। —उ० च० प्र १ अ० १८।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

केदार से पूर्व के हिन्दी साहित्य के इतिहास का धबलोकन करने से हिन्दी काव्य-दीप में निम्न निम्न धाराएँ प्रवाहित होती दिखाई पड़ती हैं। उनमें निम्न लिखित प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं—

- | | |
|-----------------------|--------------------|
| १. बीरगाथा-काव्य धारा | २. सप्त-काव्य धारा |
| ३. सुप्री-काव्य धारा | ४. राम-काव्य धारा |
| ५. कृष्ण-काव्य धारा | ६. रीति-काव्य धारा |

बीरगाथा-काव्य धारा—शिवसिंह सेंगर तथा मिथवन्धु आदि इतिहासकार बीरगाथा काल का प्रारम्भ वि० संवत् ७७० से मानते हैं^१। इन विद्वानों ने संवत् ७७० वि० में पुष्प या पुष्प कवि द्वारा अलंकार-ग्रन्थ के सिक्के जाने का उल्लेख किया है। परन्तु यह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। यों तो बीरगाथा-काव्य की स्पष्ट रचनाएँ विभिन्न की इसकी घटानवी के अन्तिम चरण से ही मिलने लगती हैं किन्तु उनकी धारा अविच्छिन्न रूप से प्रबन्धकाव्यों तथा बीरगीतों के रूप में सुलसमानों के आक्रमणों के प्रारम्भ से ही बहती दिखाई पड़ती है। बीरगाथा काल के प्रबन्धकाव्यों में केदार से पूर्व हसपति विजय का 'कुमार रासो' (अपूर्व प्रति) 'अद्भुतबाई का 'पुष्पीरास रासो', मद्रु कंदार का 'अपमर्त्य प्रकाश' मधुकर की 'अपमर्त्य-अस चम्रिका' शार्ङ्ग-बा का 'हम्सीरूठ', नरसिंह का 'विजयपति रासो' तथा बीरगीतों में तरपति मारु का 'बीरसदेव रासो' और जगनिक का 'आल्हाखण्ड' (गुरुद्वय सविम्ब) उल्लेखनीय हैं।

बीरगाथाओं का विषय आधारेणतया वीरों का शौर्य एवं पराक्रम विषय, अनुकम्पा-अपहरण आक्रमणवाताओं का पुण-कीर्तन आदि है। इस प्रकार ये गाथाएँ मुख्य रूप से बीर रस में ही मिली गई हैं। अधिकोष्ठ युद्धों का कारण सुन्दरी होने से इन गाथाओं में शृंगार रस के भी अन्तर्गम वर्धन होते हैं। कविता के लिए प्रायः इहा कवित पदरि अम्य आदि छन्दों को चुना गया है। इस धारा के लेखकों की भाषा 'दिगम' नाम से पुकारी गई है। इसमें हमें पिगम (बज) संस्कृत परवी और फारसी का मिश्रित रूप भी देखने को मिलता है।

इस काव्य धारा की बीर शैली का प्रभाव आज भीर भाषा वर्णों की दृष्टि से केदार पर स्पष्ट दीखता है। केदार की 'रतनबावनी' 'बीरसिंहदेव चरित' तथा 'अहानीर-अस-चम्रिका' नामक रचनाएँ बीरकाव्य का श्रेणी में आती हैं। बीरगाथा-काव्य की परम्परा के अनुकरण पर केदार ने अपने आत्मयवाता बीरसिंहदेव के चरित का प्रथमय शैली में धान किया है। 'अहानीर-अस-चम्रिका' में बीरसिंहदेव के आत्मयवाता सभाद् अहानीर के यक्ष का वर्णन है। इस ग्रन्थ में बीरकाव्यों की परम्परा के अनुक्रम बीर रस का स्फुरण मनी भाँति गड़ी हो चका है। 'रतनबावनी' में अत्यय बीरगाथा-काव्य के समान ही रतनदेव के शौर्य एवं पराक्रम का योजवसी वर्णन उपलब्ध होता है। यह निश्चय ही 'बीरसिंहदेव-चरित' की अपेक्षा अधिक उपलब्ध

बीरकाव्य है। जैसे बीरमाया-काव्यों में द्वित्वबर्ण टवर्ग तथा अन्त्यानुप्रास का प्रयोग देखने में आता है वैसे ही इस ग्रन्थ में भी उनका प्रचुर प्रयोग हुआ है^१। केन्द्र के बीरकाव्यों की भाषा पर द्विगत के प्रभाव के साथ-साथ संस्कृत शरबी और फरसी का भी प्रभाव परिलक्षित होता है किन्तु मुख्य रूप से उनकी भाषा ब्रज ही है। अन्त भी बीरमाया-काव्य में प्रचलित बोद्धा सृज्य कविता भावि ही अपनाये गए हैं।

सन्त-काव्य धारा—केन्द्र के समय तक की सन्त-काव्य-परम्परा मुद्ग गोरखनाथ (वि० की १३वीं सताब्दी का उत्तरार्ध) से चलकर बाबू (सन् १३४४-१६०३)^२ तक जाती है। बाबू तक गोरखनाथ रैदास कबीर नानक नामदेव आदि भिन्न-भिन्न सन्तों का आदिर्भाव हुआ उनमें से प्रायः सभी ने अपने-अपने स्वतन्त्र धार्मिक पन्थ बनाये। परन्तु केन्द्र के पूर्ववर्ती एवं समसामयिक पंथ-प्रचारकों में प्रधानतः नाथ-संनियों तथा कबीर-संनियों का ही विशेष प्रभाव था। बारणसी इन सन्तों की बाणियों में एक सामान्य उपासना-पद्धति निरूपित थी जो हिन्दू-मुसलमानों दोनों को ही सामान्य रूप से ग्राह्य हो सकती थी और जिसमें ऊँच-नीच का भेद-भाव भी विद्यमान न था। अतः धार्मिक दृष्टि से सन्त-काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। सन्त-काव्य में योगाभ्यास वैराग्य संसार की असरता गुरु-महिमा नाम-महिमा माया भीव आदि विषयों का निरूपण ही प्रधान है। इसकी भाषा पूर्वी हिन्दी पंजाबी राजस्थानी लड़ी बोली ब्रज आदि का सम्मिश्रित रूप है। सन्त कवियों ने पद्य और विविध छन्द दोनों में ही अपने उद्गार प्रकट किए हैं।

‘विद्यानपीठा’ में हम कवि को निर्गुण भक्ति के प्रतिपादक के रूप में पाते हैं। निर्गुणियों के समान ही इस ग्रन्थ में ज्ञान द्वारा भीव के माया के बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्म से सायुज्य प्राप्त करने का उपाय वर्णित है। ईश्वर-सम्बन्धी जो भावना हमें निर्गुण-सन्त-सम्प्रदाय में विखाई देती है वैसे ही ‘विद्यानपीठा’ में भी मिलती है। जिस प्रकार निर्गुण सन्त-कवियों ने हठयोग को ईश्वर प्राप्ति का साधन बतसाया है और आसन प्राणायाम आदि का महत्त्व स्वीकार किया है उसी प्रकार केन्द्र ने भी ईश्वर-प्राप्ति में प्राणायाम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। संसार की असरता गुरु-महिमा भीति की बातों आदि का वर्णन भी सन्त-कवियों के सङ्ग्रह ही यहाँ हुआ है। बुद्धिसङ्ग सन्त-सम्प्रदाय (कबीरपंथ) का केन्द्र रहा है। अतएव सम्भव है कि हमारे कवि को जीवन की सन्ध्या में पदचाप के रूप में सन्तकाव्य की ओर मुड़ना पड़ा

१ द्वित्वबर्णों के प्रयोग का एक उदाहरण देखिए—

आनि गुर सब सख्य प्रकट पंचम तनु पुस्मिय ।

साधु साधु यह वचन पाय मुख सब सों पुस्मिय ॥

—रत्नरावरी (विद्या-पञ्चजन) पृ ७ अं २०। अन्य उदाहरणों के लिए देखें रत्न-
रावरी (विद्या-पञ्चजन) पृ २ अं ६ पृ २६ अं १० पृ ३८ अं १३ तथा पृ ८ अं २५
१ और ३१।

हो। यह तो हुई भावों एवं विचारों की बात। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है केदार-पर सप्त-काव्य की अनिवार्य तथा मिथित भाषा का कोई प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता। छन्द के क्षेत्र में केदार ने सप्त-कवियों द्वारा प्रयुक्त विविध छन्द-शैली को ही अपनाया है, पर-सौंसी को नहीं।

सूझी-काव्य धारा—हिन्दी साहित्य में सूझी काव्य धारा की परम्परा का पारम्पर्य बीरभाषा काल में सुस्मा बाठव की 'भुरक बन्दा की कहानी' से होता है। सूझी प्रेम-काव्य के कवियों में जायसी प्रथमस्थ हैं। यद्यपि इनसे पहले भी कुछ प्रेम-काव्यों की रचना हो चुकी थी जिनका उल्लेख स्वयं जायसी ने अपने 'पद्यावत' में किया है तथा स्वभावती मुग्धावती मृगावती सम्भरावती मधुमावती तथा प्रभावती। इनमें से केवल दो 'मृगावती' तथा 'मधुमावती' उपलब्ध हैं, छेप अप्राप्य हैं। 'मृगावती' कुतबन (संवत् १५५०) की रचना है और 'मधुमावती' मंसूर की। दोनों ने 'महमउसेन पद्यावती' प्रेम-काव्य संवत् १५१९ में लिखा। इसके पश्चात् जायसी के पद्यावत (रचना-काल सं १५२७) का नाम धाता है जो प्रेम-भाषा-काव्य का जननीक रस है। इन सुलसमान प्रेम-भाषाकारों के अतिरिक्त हिन्दू प्रेम-भाषाकार 'हरराज' का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने संवत् १६०७ में 'डोहा माखणी बजपही' लिखी।

प्रेम-काव्य का विषय हिन्दू-धरमों से सम्बन्धित प्रेम-कथाएँ हैं जिनमें ऐतिहासिकता एक कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण है। सभी प्रेम-भाषाएँ प्रेम और प्रेम की वीर की सूचक हैं। इन प्रेम-भाषाओं की भाषा प्रबली है और ये दोहा चौपाई की प्रधान छेपी से लिखी गई हैं।

विषय की दृष्टि से सूफियों के प्रेम-काव्य का कदम पर कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। सूझी कवियों के समान ही केदार ने अपने 'बीरसिंहदेव चरित' नामक प्रबन्ध काव्य की रचना दोहा-चौपाई छन्दों में की है। प्रबन्ध काव्य के लिए दोहा चौपाई छन्दों के चुनाव में केदार का प्रेमभाषाकारों की अपेक्षा समसामयिक तुलसी से प्रभावित स्वीकार करना ही अधिक उचित मान पड़ता है।

राम-काव्य धारा—केदार से पूर्व रामकाव्य-परम्परा के अन्तर्गत भूपति कवि तुलसीदास तथा उनके समकालीन मुनिदास नामक कवियों का ही इतिहास-ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। भूपति कवि का समय बा० क्यामसुन्दर दास ने संवत् १७४४ माना है^१। ना० प्र० समा की सं० १२०१-७-८ की खोज-रिपोर्ट में भूपति कवि का उल्लेख मिलता है जिसने सं० १३४२ में दोहा-चौपाई में 'रामचरित रामायण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी किन्तु डा० बीनबयानु गुप्त मायासकर पाक्षिक सप्तशतक में बेसी हुई भूपति द्वारा रचित 'मायवत बचम स्कन्ध' की प्रति के आधार पर, जिसका रचना-काल संवत् १७४४ वि० दिया है, भूपति कवि की स्थिति संवत् १७४४ में मानना ही अधिक उपयुक्त सिद्ध है^२। हिन्दी साहित्य में रामकाव्य-परम्परा के सबसे

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २९१।

२ इतिहासिक हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त निरूपण भाग १ पृ० १११।

३ अष्टादश और पञ्चम सप्तशतक, भाग १ पृ० २६-२४।

प्रमुख कवि तुमसीदास हैं जो केदार के समसामयिक भी ठहरते हैं। तुमसीदास के ही समकालीन मुनिनाथ कवि ने सन् १६४२ में रामकथा पर 'रामप्रकाश' नामक ग्रन्थ रचा था^१। तुमसीदास ने अपने सुविख्यात ग्रन्थ 'रामचरितमानस' की रचना अयोध्या में बाकर संवत् १६३१ में प्रारम्भ की थीर उसे २ वर्ष ७ महीने में समाप्त किया^२। इस प्रकार स्पष्ट है कि रामकाव्य की परम्परा में तुमसी का 'मानस' ही सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है।

केदार के समस्त तुमसी का 'मानस' उनके जीवन-काल में ही था बुका था। इसी से प्रभावित हो उन्होंने राम-कथा पर भित्तने की ठानी। बीसा कि पहले बताया जा चुका है उनके राम भक्ति की धीर प्रवृत्त होने में तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का भी हाथ है। किन्तु मानस के-से ग्रन्थ उदात्त एवं लोक-उत्कृष्ट स्वल्प की भर्त्सना इस ग्रन्थ में प्रस्तुत नहीं हो सकी है। वस्तुतः राम-कथा के सहारे केदार ने अपना पाणिष्ठ्य ही प्रकटित किया है जिसके फलस्वरूप उनके इष्टदेव राम तत्कालीन मुख्य बादशाहों तथा राजा-महाराजाओं से बड़कर धीर कुछ न रह गए हैं। उस समय का प्रभाव ही इसका प्रमुख कारण है।

कृष्ण-काव्य द्वारा—कृष्ण-काव्यपरम्परा के अन्तर्गत सर्वप्रथम जयदेव का नाम आता है। जयदेव वास्तव में संस्कृत के कवि हैं। उन्होंने राजा-कृष्ण की विद्या-सीताओं का बर्णन संस्कृत भाषा की मधुर एवं कोमल-कान्त पदावली में किया है। उनकी प्रमद रचना 'गीतगोविन्द' से हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवि बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। कुछ लोगों का मत है कि उन्होंने हिन्दी में भी कुछ पदों की रचना की थी जिनमें से एक-दो 'गुरुग्रन्थ साहब' में उपलब्ध हैं जो भाव धीर भाषा की दृष्टि से अत्यन्त आभारणीय हैं^३। जयदेव की शृंगार-भावना का सबसे अधिक प्रभाव विद्यापति पर परिलक्षित होता है जिन्होंने मैथिली भाषा में रचनाएँ की हैं। विद्यापति की पदावली में भी जयदेव की ही छानि राजा-कृष्ण की सीताओं का वाचनामय चित्र प्रस्तुत हुआ है। इनके काव्य में शृंगार रस तथा उसके विभिन्न चरमों का निरूपण राजा-कृष्ण की विभिन्न विद्या-सीताओं के संमर्ग में किया गया है। कृष्ण-काव्यपरम्परा के तीसरे भक्त कवि नामदेव हैं, जिनके प्रेम तथा ज्ञानपूर्वक चरम तथा ब्रजभाषा में मिले पद सौरभ एवं साक्षियाँ प्रसिद्ध हैं। डा० शीतबामुनी इनकी भाषा के विषय में लिखते हैं कि इनकी ब्रजभाषा हमारे सम्मुख परिवर्तित रूप में आती है और इनके मूल रूप का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता^४। कृष्ण-भक्त कवियों में मुरदास का स्थान सर्वोपरि है जिसका ब्रजभाषा में रचित 'मुर-सागर' हिन्दी साहित्य की प्रमद कृति है। इस ग्रन्थ में भक्ति काव्य एवं संगीत के एक साथ वर्णन होते हैं। वात्मन्य तथा शृंगार विरोधित विप्रलम्भ के वर्णन में मुर

१ दिग्वी लक्ष्मण का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४८३।

२ दिग्वी लक्ष्मण का इतिहास पृ० १४४।

३ दिग्वी लक्ष्मण का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ७१६।

४ जयदेव और नामदेव लक्ष्मणाय शाय १ पृ० २४।

प्रतितीय हैं। इनके शृंगार में रस का पूर्ण परिपाक होते हुए भी भरसीमता का रस नहीं घाने पाया है। उनके आसम्भन विभाव नायक-नायिका राधा-कृष्ण विषय विभूतियों से विभूयित हैं^१। इन्हीं के समय में कुछ अन्य कवि भी थे जो कृष्ण-सीता-सम्बन्धी सुन्दर पदों की रचना करते थे। श्री बसन्तमाधव के पुत्र विदुसभाष ने इनमें से पाठ उच्च कोटि के कवियों का संगठन कर 'घण्टछाप' की स्थापना की। घण्टछाप के अत्यन्त सूरदास से इतर कवियों के ये नाम हैं—नन्ददास कृष्णदास परमानन्ददास कुभनदास चतुर्भुजदास और स्वामी तथा योगिन्द स्वामी। ये सभी बसन्त सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

घण्टछाप के कवियों के प्रतिरिक्त कृष्ण-काम्य-परम्परा में कई अन्य कवि भी घाते हैं यथा मीराबाई, गदाधर भट्ट सूरदास महनमोहन योगिन्ददास हितहरिबंस, स्वामी हरिदास आदि जिनमें मीरा और हितहरिबंस उल्लेखनीय हैं। कृष्ण-काम्य में मीरा की रचनाओं का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने कृष्ण की सीताओं का वर्णन करके दीनता से अपनी हृदय की समस्त भावनाओं को भक्ति के धुन में बाँधकर कृष्ण की आराधना की है^२। हितहरिबंस राधावत्सली सम्प्रदाय के प्रवर्तक कहे जाते हैं, जिसमें राधा की उपासना को ही प्राधान्य दिया गया है। उनके राधा के उन्मत्त-वर्णन में एक अपूर्व मनोहरता एवं सरसता के वर्णन होते हैं।

कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण भववान् की सीताओं का आचारमक चित्रण ही अपने काम्य का मुख्य विषय बनाया है। उन्होंने राम भक्त कवियों के सर्वथा विपरीत लोकमर्मण की महिमा को मुसकर कृष्ण के लोकरोचक रूप का ही चित्रण किया है। प्रमोदमत्त गोपिकाओं से भिरे हुए कृष्ण का आनन्दमय स्वरूप ही उन्हें घामा है। उनकी दृष्टि में कृष्ण और राधा यथवा गोपिकाओं का प्रेम बाधना से परे है। कृष्ण-काम्य मुक्तक-रूप में होने के कारण अधिकतर पदों में ही रचा गया है। नन्ददास आदि कुछ ही कवियों ने रोमा रोहा आदि छन्दों का प्रयोग किया है। कृष्ण भक्त कवियों ने काम्य-रचना के लिए एक मात्र शब्दभाषा को ही अपनाया है।

सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों का केदार पर कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। केदार ने इन कवियों की पद-शैली के अनुकरण पर किसी अन्य की रचना नहीं की और न उनके राधा-कृष्ण-सम्बन्धी ज्ञानों में भक्ति की उत्तनी उत्कृष्टता ही दृष्टिगोचर होती है। केदार के व्यक्तित्व ज्ञानों में राधा-कृष्ण का मीटिक नायिका-नायक के रूप में ही चित्रण किया गया है। इसका कारण उत्कालीन सर्व-विशेष—आद्यपदाता राधा-महाराजाओं की अभिवृत्ति है। इस प्रकार 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' में उद्धृत राधा-कृष्ण-सम्बन्धी ज्ञानों की प्रेरणाकेदार को बयदेव विद्यापति आदि शृंगारी कवियों से ही मिली जान पड़ती है।

रीति-काव्य धारा—हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार धनसिंह सेनर ने कर्नस टाड के आधार पर भोज के पूर्वपुरुष राधा मान की समा में एक बन्दीजन

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७६०।

२ वही, पृ० ७०८।

य या पूष्य (संवत् ७७० के लगभग) का होना लिखा है^१। उसने दोनों में हिन्दी या में संस्कृत-अर्थाकार-ग्रन्थ का अनुवाद किया था^२। परन्तु उसका विशेष विवरण प्राप्त है। अर्थाकारग्रन्थ के लेखकों में राज के दोम कवि तथा मुनिमान का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें मुनिमान को तो रीति-ग्रन्थों का प्रवर्तक ही समझा जाता है^३। इन दोनों लेखकों का विशेष विवरण अप्राप्य है। इनके ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार रीतिकार्य-परम्परा का सबसे प्रथम लेखक कृपाराम ही ठहरता है। उसने उस रीति पर 'हितवरिणी' (रचना-काल संवत् १३१८ वि०^४) नामक एक ग्रन्थ लिखा था। कृपाराम ने स्वयं लिखा है कि ग्रन्थ कवि बड़े कवियों में शृंगार रस वर्णन करते हैं किन्तु मैंने सुषुप्ता के विचार से दोहों में ही वर्णन किया है^५। इस कवन से ज्ञात होता है कि उनके पहले उस-रीति पर ग्रन्थ ग्रन्थों की भी रचना हुई थी किन्तु वे भी धाज अप्राप्य हैं। इसके बाद गोप (सं० १६१५ वि०) ने 'सुषुप्ता' और 'अर्थाकार चरित्रका' नामक अर्थाकार-सम्बन्धी दो ग्रन्थ लिखे^६ किन्तु इनका भी विशेष विवरण अनुपलब्ध है। संवत् १६१६ में मोहनसाल मिश्र का 'पूष्य सार' ग्रन्थ उस तथा नायिका-श्रेय पर रचा गया^७। किन्तु यह भी धाज उपलब्ध नहीं है। इसी समय के लगभग रहीम ने 'बरवै-नायिका-श्रेय' की रचना की^८। बि नन्ददास ने भी नायिका-श्रेय पर 'रसमंजरी' (रचनाकाल संवत् १६२४ के लगभग) नामक ग्रन्थ का निर्माण किया^९। इसी समय के लगभग मरहूरि के साथी करमैस बि ने अर्थाकार पर तीन ग्रन्थ 'कल्याणरस', 'शुषुप्ता' तथा 'सुषुप्ता' लिखे थे^{१०}। इन केसव के प्रत्येक बरसाल मिश्र ने 'पूष्य विचार' तथा 'मन्त्रशिख' का निर्माण

१. रिचर्ड्स एजेंड, पृ० ४१. मिश्रन्तु मिश्र एजेंड, पृ० ११ तथा हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ६।

२. रिचर्ड्स एजेंड, पृ० ४१ तथा पृ० ६ (नृसिंह)।

३. "A small beginning had been made prior to him (Keshava) by Kham [Bra] and one Mimi Lal who is regarded as the founder of the Technical School of Poetry."

—Introduction—Search for Hindi Man, 1906-8 by Dhyan Sunderdas.

४. स्व. सा. कल्याणसाल तथा स्व० श्रीरामचन्द्र चरणन्य ध्यानि पुस्तक मिश्रन्तु रिचर्ड्सिनी के मिश्ररी के नाद की रचना मानते हैं। श्री कल्याणसाल चरणन्य के अनुसार रचना-काल संवत् १०२८ वि० का है। चरणन्य में प्रस्तुत रचना की भाषा की अतिशय स्पष्टता के आधार पर ही मिश्रन्तु ने इसे ऐतिहासिक मान लिया है। किन्तु उसकी रचना-तिथि इतने अस्पष्टिग्रन्थ रूप में ही हुई है कि रिचर्ड्सिनी तथा स्व० चरणन्य में उस पर सही करना असंभव नहीं है।

५. मिश्रन्तु मिश्र एजेंड, पृ० १०३।

६. वही पृ० १०३।

७. वही पृ० १०३ तथा सा० प्र. सं० एजेंड रिचर्ड्स नं० ७० (संवत् १६०५ ई०)।

८. मिश्रन्तु मिश्र एजेंड, पृ० ११८।

९. हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ५१।

१०. मिश्रन्तु मिश्र एजेंड, पृ० ११३।

अद्वितीय हैं। इनके अनुसार मैं उस का पूर्ण परिपाक होते हुए भी घटसीलता का अर्थ नहीं माने पाया है। उनके आत्मन्वन विभाव गायक-नायिका राधा-कृष्ण विभूतियों से विभूषित हैं^१। इन्हीं के समय में कुछ अन्य कवि भी थे जो कृष्ण-सीता सम्बन्धी सुन्दर पदों की रचना करते थे। श्री बल्लभाचार्य के पुत्र विद्वत्नाथ ने इनमें से साठ उन्मत्त कोटि के कवियों का संगठन कर 'घट्टछाप' की स्थापना की। घट्टछाप के अन्तर्गत सूरदास से इतर कवियों के ये नाम हैं—नन्ददास कृष्णदास परमानन्ददास कुमनदास जगुर्भुवदास जीठ स्वामी तथा गोविन्द स्वामी। ये सभी बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

घट्टछाप के कवियों के अतिरिक्त कृष्ण-काव्य-परम्परा में कई अन्य कवि भी आते हैं यथा गीराबाई, यथापर मट्ट सूरदास भवनमोहन गोविन्ददास, हितहरिवंश स्वामी हरिदास आदि जिनमें मीरा और हितहरिवंश उत्प्रेक्षनीय हैं। कृष्ण-काव्य में मीरा की रचनाओं का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने कृष्ण की सीताओं का वर्णन करके बीमता से अपनी हृदय की समस्त भावनाओं को भक्ति के सूत्र में बाँधकर कृष्ण की आराधना की है^२। हितहरिवंश राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक कहे जाते हैं। जिसमें राधा की उपासना को ही प्राथम्य दिया गया है। उनके राधा के सौन्दर्य-वर्णन में एक अपूर्व मनोहरता एवं सरसता के वर्णन होते हैं।

कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण भगवान् की सीताओं का आध्यात्मिक चित्रण ही अपने काव्य का मुख्य विषय बनाया है। उन्होंने राम भक्त कवियों के सर्वथा विपरीत लोकमंगल की महिमा को नुमाकर कृष्ण के सोकरंजक रूप का ही चित्रण किया है। प्रमोदमत्त गोपिकाओं से घिरे हुए कृष्ण का आनन्दमय स्वरूप ही उन्हें नामा है। उनकी दृष्टि में कृष्ण और राधा बनना गोपिकाओं का प्रेम वासना से परे है। कृष्ण-काव्य मुक्तक-रूप में होने के कारण अधिकतर पदों में ही रचा बना है। नन्ददास आदि कुछ ही कवियों ने रोला बोझा आदि छन्दों का प्रयोग किया है। कृष्ण-भक्त कवियों ने काव्य रचना के लिए एक मात्र बलभाषा को ही अपनाया है।

सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों का केवल पर कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। केवल ने इन कवियों की पद-शैली के अनुकरण पर किसी अन्य की रचना नहीं की और न उनके राधा-कृष्ण-सम्बन्धी ज्ञानों में भक्ति की उतनी उत्प्रेक्षनीयता है। दृष्टिकोण से होती है। केवल के भक्तिकाव्य ज्ञानों में राधा-कृष्ण का मौकिक नायिका-नायक के रूप में ही चित्रण किया गया है। इसका कारण उत्प्रेक्षनीय अर्थ-विशेष—आभयदाता राजा-महाराजाओं की अभिवृत्ति है। इस प्रकार 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' में उद्धृत राधा-कृष्ण-सम्बन्धी ज्ञानों की श्रेणी केवल का अयोजन, विद्यापति आदि शृंगारी कवियों से ही मिली जान पड़ती है।

रीति-काव्य धारा—हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार सिवसिंह छेपर ने कर्नाट टाठ के आधार पर मोक्ष के पूर्वपुरुष राधा भाग की समा में एक बन्धीजन

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ७७०।

२ वही, पृ. ७७०।

से ध्यान दिया। ध्वन्य दीक्षित ने अपने 'काव्य-द्वय' में काव्य का जो लक्षण दिया है वह इस प्रकार है—

काव्यं ह्यनुप्रासीं कुपीं सव्यार्थो सवस्तु कृती १

केसवमिश्र के 'असंकारोच्चर' की भी रचना असंकार की दृष्टि में रखकर ही हुई है। उन्होंने विवेचना के काव्य के लक्षणों को धीरे धीरे व्यापक एवं सरल बनाने का प्रयत्न किया है^२ धीरे साथ ही सभी की परिभाषाओं को संशुद्ध का जो प्रयास किया है वह स्वाभ्य है^३। इस विवेचन से यह सिद्ध है कि केसव के समय में रस के साथ असंकार की भी पर्याप्त प्रतिष्ठा हो चुकी थी। निदान केसव की दृष्टि भी रस और असंकार दोनों पर ही गई और फलतः उन्होंने रसों पर 'रसिकप्रिया' तथा असंकारों पर 'कविप्रिया' की रचना की।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष यह निकला कि केसवदास पर पूर्ववर्ती तथा समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य ही पड़ा है। जहाँ उन्होंने एक ओर वीरभाषा काल के भाव्यों को ध्यान में रखकर 'रत्नभाषा' 'वीरसिंहदेव चरित' तथा 'हर्षोद्धार-अस-चन्द्रिका' की रचना की है वहाँ रामकाव्य के अन्तर्गत 'रामचन्द्रिका' भी लिखी है, यद्यपि इस ग्रन्थ में उनका आचार्यत्व ही प्रधानतः परिलक्षित होता है। साथ ही निरुद्ध सत्य-काव्य से प्रभावित हो उन्होंने 'विज्ञानपीठा' का निर्माण किया है। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' के प्रखन के द्वारा तो केसवदास ने हिन्दी साहित्य में रीति-परम्परा का निर्वाह मार्ग ही जोस दिया। उनके पूर्व किसी भी कवि ने शास्त्रीय पद्धति पर काव्य के विभिन्न वर्गों का विवेचन प्रस्तुत नहीं किया था। 'अन्यमात्रा' की रचना कर पितृ-निर्माण के क्षेत्र में भी केसव ने एक प्रयत्न किया है। इस प्रकार केसवदास पूर्ववर्ती तथा समकालीन परिस्थितियों से निमित्त होकर भी हिन्दी काव्य-क्षेत्र में एक विशिष्ट पद्धति के जन्म बाता एक प्रयत्नक हैं।

१ केसवदास, अज्ञेय पत्रि १, १४२।

२ काव्यं रसाविमहात्म्यं भुवं मुक्तविषेयकृत् ।

—असंकारोच्चर प्रथम रत्न अस्य रसिक, १, २।

३ निर्दोष गुणवत्काव्यसङ्ग कृतम् ।

रसान्वितं कविं भुवं प्रीतिं नीतिं च विन्दति ॥

—पद्यो १, २।

किया था^१ । इस प्रकार उस तथा धर्मकार-मित्रपक्ष का सूत्रपात तो केसर के पूर्व ही हो चुका था किन्तु पूर्ववर्ती किसी कवि ने भी काव्य के विभिन्न धर्मों का सम्यक् विवेचन शास्त्रीय दृष्टिकोण से नहीं किया था ।

तत्काल काव्यशास्त्र का केसर पर प्रभाव—यों तो तत्काल के धर्मकारशास्त्र में काव्य की धारणा के प्रश्न को लेकर विभिन्न-विभिन्न सम्प्रदाय केसर के पूर्व ही पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुके थे पर केसर के समय के लगभग केसर उस तथा धर्मकार सम्प्रदायों का ही बोलबाला था । भामह वन्धी, उद्भट आदि भाषाचार्यों ने धर्मकारों को काव्य के लिए अनिवार्य माना है । वन्धी ने धर्मकारों को शोभा का कारण बताया है^२ । पर आगे चलकर मम्मटाचार्य ने काव्य में धर्मकारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा और काव्य की यह परिभाषा की—

तद्बोधी सम्भार्यो समुच्चायनमकृती पुनः कदापि ।^३

विस्मयाच ने मम्मट की उक्त परिभाषा का भी खण्डन किया और रसात्मक वाक्य की ही काव्य की धारणा स्वीकार किया^४ । इस प्रकार जब धर्मकारों को हेतु समझा गया और रसात्मक वाक्य को ही काव्य में प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई तो धर्मकार-मित्र लोगों को एक बड़ा भारी स्रापान पड़ गया । फलतः लोगों की खिच फिर से धर्मकारों की ओर गई । इस फिर तो क्या था धर्मकार-धर्मों का ठाठ-ठा बँब पया । अतएव ने धर्मकार का पक्ष लेकर काव्य की परिभाषा इस प्रकार की—

निर्दोषा नमनवन्ती धरीविपुलपुष्पा ।

सातङ्ग काररसमेकवृत्तिर्वाक्यं काव्यमनमाह^५ ॥^६

उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि कोई काव्य को धर्मकार-रहित मानता है तो अपने को पण्डित मानने वाला धर्मि को भी उपलुता रहित क्यों नहीं मानता^७ । उनके धमन्तर धर्मय वीक्षित केसर मित्र आदि भाषाचार्यों ने धर्मकार पर विशेष रूप

१ मित्रकृतु विवेक भाग १ पृ० ३२५ तथा हिन्दी संहिता का दृष्टिकोण पृ २२३ ।

२ काव्यबोधाकरान् धर्मनित्कारान् प्रवक्षते ।

—अन्याधर्मा १ ५ ।

३ अन्वयप्रसङ्ग पृ ४ ।

४ वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।

१

—सहित-दर्पण पृ २ परिच्छेद १ धारिका सं० १ ।

५ अत्रात्रोक्तं मन्त्रं १ स्तो ७, पृ ९ ।

६ धर्मबोद्धरोति यः काव्यं सम्भार्यनितङ्ककृती ।

स्तो ७ मन्त्रं कस्मादनुप्यमनितङ्ककृती ॥

—वही, स्तो० = पृ ७ ।

से ध्यान दिया। प्रपञ्च दीक्षित ने अपने 'काव्य-वर्णन' में काव्य का जो लक्षण दिया है वह इस प्रकार है—

काव्यं ह्यनुप्यो मुनीं सन्धानां सखलङ्कृती ।^१

केशवमिश्र के 'प्रसङ्गारोहण' की भी रचना प्रसङ्गार की दृष्टि में रचकर ही हुई है। उन्होंने विषयनाम के काव्य के लक्षण को और भी व्यापक एवं सरस बनाने का प्रयत्न किया है^२ और साथ ही सभी की परिभाषाओं को समेटने का जो प्रयास किया है वह स्तम्भाभ्य है^३। इस विवेचन से यह सिद्ध है कि केशव के समय में रस के साथ प्रसङ्गार की भी पर्याप्त प्रतिष्ठा हो चुकी थी। निदान केशव की दृष्टि भी रस और प्रसङ्गार दोनों पर ही गई और फलतः उन्होंने रसों पर 'रसिकप्रिया' तथा प्रसङ्गारों पर 'कविप्रिया' की रचना की।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष यह निकला कि केशवदास पर पूर्ववर्ती तथा समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य है। पढ़ा है। जहाँ उन्होंने एक ओर बीरगाथा काल के पावसों को ध्यान में रखकर 'रतनबावनी' 'वीरसिंहदेव चरित' तथा जहाँमीर-जस-वसिष्ठा' की रचना की है वहाँ रामकाव्य के प्रसङ्गत 'रामचरित्रिका' भी लिखी है यद्यपि इस ग्रन्थ में उनका आचार्यत्व ही प्रमाणित परि लक्षित होता है। साथ ही निरुण सन्त-काव्य से प्रभावित हो उन्होंने 'विज्ञानदीपा' का निर्माण किया है। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' के प्रसङ्ग के द्वारा तो केशवदास ने हिन्दी साहित्य में रीति-परम्परा का निर्वाच मार्ग ही खोल दिया। उनके पूर्व किसी भी कवि ने शास्त्रीय पद्धति पर काव्य के विविध भ्रमों का विवेचन प्रस्तुत नहीं किया था। 'अनन्ताला' की रचना कर पित्रस-निर्माण के क्षेत्र में भी केशव ने पद प्रदर्शन किया है। इस प्रकार केशवदास पूर्ववर्ती तथा समकालीन परिस्थितियों से निमित्त होकर भी हिन्दी काव्य-क्षेत्र में एक विशिष्ट पद्धति के जन्म बाठा एवं प्रवर्तक हैं।

१ केशवदास क-प्रकाश पत्रिका, पृ० १४२।

२ काव्य रसाभिप्रेक्षायां युतं धुनविद्योपकृतम्।

—प्रसङ्गारोहण प्रथम रत्न प्रथम मरीचिका पृ० २।

३ निर्वर्णं गुरुवत्काव्यलङ्कृताम्।

रसाभिप्रेक्षा कवि-कुर्वन् प्रीति नीति च विन्यति॥

—वही पृ० १।

केशव का जीवन-चरित

केशव नामधारी प्रसन्न कवि—विश्वसिंह खेवर ने अपने 'विश्वसिंह सरोज' में प्रसिद्ध कवि केशवदास के घटितरिक्त जिनको उन्होंने सनातन सिय मुन्देसलखी कहा है, केशवराय प्रपदा केशवदास नाम के तीन और कवियों का उल्लेख किया है। इनमें से एक केशवराय बाबू हैं जिसको वे बदेसलखी और संवत् १७३६ वि० में उत्पन्न लिखते हैं^१। विश्वसिंह के अनुसार उन्होंने नाविका-मेघ पर एक बहुत सुन्दर छन्द की रचना की थी जिनके कवित्त बलदेव कवि ने अपने संग्रह छन्द 'छन्दविगिरा विमल' में रके हैं^२। इन केशवराय के अनुसार रस के दो छन्द 'सरोज' में उद्धृत हैं^३। काम्यत्व की दृष्टि से दोनों छन्द सुन्दर बन पड़े हैं। इनमें कवि केशवदास की छाप का कदाचित् ज्ञान हो सकता है किन्तु इनके और आलोच्य केशवदास के समय में कोई १२० वर्ष का अन्तर है इसलिए दोनों के विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति के लिए स्थान नहीं है। शेष दोनों कवियों का पूरा नाम केशवदास है। इनमें से एक के विषय में विश्वसिंह को कोई विशेष जानकारी नहीं प्राप्त पड़ती। उन्होंने इनका जन्म-संवत् नहीं दिया है। केवल इतना ही लिखा है कि इनकी कविता सामान्य है^४। सरोज में इनका एक ही छन्द दिया गया है, जो निम्नांकित है^५। वह छन्द कवित्व की दृष्टि से आलोच्य कवि केशवदास के कवित्तों से हीन है। दूसरे केशवदास ब्रजवासी कावलीर के रहने वाले हैं। इनका जन्म-संवत् 'सरोज' में १९०८

१ विश्वसिंह सरोज, पृ० १८२।

२ वही १८२।

३ वही १९१।

४ वही, १८२।

५. आली ऐंठार बँटी आली के तबत पर,
नैन फौजदार जड़े मखें बहूँ मोर है।
हावस ॥ भूपन के हावस बहिर जड़े
खोलह सियार भूप लखें बृणकोर है।
रूप को भुमान चीस मुकुट है जग नीर,
धेवर की नीवति बजति धाम मोर है।
कहि कवि केशवदास आली बरनी न आवि,
जोवन की मोर मामी बावसाही मोर है ॥

वि० दिया हुआ है। इनके विषय में सरोजकार ने लिखा है कि इनके पद 'रामसारोच्चम' में बहुत हैं इन्होंने विविधजय की घोर हज में धाकर श्रीकृष्ण चैतन्य से साक्षात् में पराबिभूत हुए^१। इनका भी एक पद 'सरोज' में उद्धृत है^२। यदि सरोजकार की मान्यता को बिपक्षित मान लिया जाय तो ये कवि प्रसिद्ध कवि केशवदास के समकालीन प्रबन्ध रहे होंगे। किन्तु इनके उपरोक्त सूत्र में घासोष्ण केशवदास के सूत्रों की-सी मधुरता एवं भाषा की प्रीति का अभाव घटकता है। इस प्रबन्धवादी केशवदास का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने भी किया है और इन्हें 'अमरवतीसी' नामक ग्रन्थ (रचना-काल संवत् १३६८) का रचयिता माना है^३। प्रियर्सन महोदय ने जिन केदार केशवदास प्रबन्ध केशवराय नाम के पाँच कवियों का उल्लेख किया है वे हैं, केशवदास सनाह्य मिश्र^४ केशवदास काश्मीर निवासी^५ केशवराय बाबू^६ केशव मट्ट (भी मट्ट)^७ और केशव मिश्र-निवासी^८। इनमें से प्रथम तीन नाम तो सरोजकार ने भी दिए हैं पर दोष दो नाम प्रियर्सन के मये हैं। मिश्र-निवासी केशव का समय (सन् १७७५)^९ हमारे घासोष्ण केदार से कोई २२४ वर्ष पश्चात् पड़ता है। अतः दोनों के विषय में किसी प्रकार के भ्रम का कोई स्थान ही नहीं है। केशव मट्ट (सन् १९४४)^{१०} प्रसिद्ध कवि केशवदास के समकालीन प्रबन्ध रहे होंगे। किन्तु इनके विषय में विद्वान् लेखक को विशेष जानकारी नहीं मालूम पड़ती केवल इतना ही लिखा है कि यह नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं का वर्णन में बहुत बढ़े-बढ़े हैं।^{११} अतः निश्चित रूप से कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता। खोज-रिपोर्टों में प्रसिद्ध कवि केशवदास के अतिरिक्त केशवराय केशवदास केशव प्रबन्ध केशवदास नाम के ११ १२ कवियों का विवरण पाया है किन्तु साधारणतः उनके और घासोष्ण केशवदास के काव्य-व्यक्तित्व तथा समय में इतना अधिक अन्तर है कि उनके विषय

१ शिवशिर सरोज, पृ ३६३।

२ मोर मये घाये हो मसन मीकी भवियाँ।

बावक के उर बीझ नीमपट प्यारी बीने मयन धालसभीने जामे सब रवियाँ।

सुटी बीबा बन बाम मस-कट अभिराम कैंते के दुरत ब्याम डगमगी गवियाँ।

केशवदास प्रभु मंदमुवन काहे मजात भले पू साँबरे-गात जामी सब भवियाँ ॥

—शिवशिर सरोज पृ ४६।

३ मिश्रबन्धु विवेक प्र भा ५ १४१।

४ दि गोर्धर कर्तव्यर मिश्र-र पाठ हिन्दुस्थान १ १२०।

५ वही १ १०।

६ वही, १ १३।

७ वही, १ १८।

८ वही, १ १९।

९ वही, १ १६।

१० वही, १ १८।

११ He is said to have excelled in describing the actions of a lover and his beloved.

—Modern Vernacular Literature of Hindustan, page 23

केशव का जीवन-चरित

केसव नामवारी घनेक कवि—शिर्वाडिह सेंगर ने अपने 'शिर्वाडिह सरोव' में प्रसिद्ध कवि केसवदास के प्रतिरिक्त बिनको उन्हींने उगाह्य मिथ बुन्देसबधी कहा । केशवदास अथवा केसवदास नाम के तीन धीर कवियों का उल्लेख किया है । इनमें से एक केशवदास बाबू हैं जिसको है बबैसबधी धीर संवत् १७३६ वि० में उत्पन्न मिलते हैं^१ । शिर्वाडिह के अनुसार उन्हींने नायिका-सेह पर एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ की रचना की थी जिसके कवित बबैस कवि ने अपने संग्रह ग्रन्थ 'सत्कविपरा विभास' में रखे हैं^२ । इन केशवदास के ग्यारह रस के वा छन्द 'सरोव' में उद्धृत हैं^३ । काव्यत्व की दृष्टि से दोनों छन्द सुन्दर बन पड़े हैं । इनमें कवि केसवदास की छाप का कदाचित् भ्रम हो सकता है किन्तु इनके धीर भासोध्य केसवदास के समय में कोई १२० वर्ष का अन्तर है इसलिये दोनों के विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति के लिए स्थान नहीं है । तैव दोनों कवियों का पूरा नाम केसवदास है । इनमें से एक के विषय में शिर्वाडिह की कोई विशेष जानकारी नहीं मालूम पड़ती । उन्हींने इनका जन्म-संवत् नहीं दिया है । केवल इतना ही लिखा है कि इनकी कविता सामान्य है^४ । सरोव में इनका एक ही छन्द दिया गया है जो निम्नांकित है^५ । यह छन्द कवित्व की दृष्टि से भासोध्य कवि केसवदास के कवितों से भिन्न है । दूसरे केसवदास बबैसधी काशीर के रहने वाले हैं । इनका जन्म-संवत् 'सरोव' में १६०८

१. शिर्वाडिह सरोव, पृ० ३८२ ।

२. वही, ३८३ ।

३. वही, ३९ ।

४. वही, ३८३ ।

५. घासी ऐंठवार मेठी ज्वाली के ठकत पर,
मैग जौंठवार कड़े मर्छे जहुं धोय है ।
डावस हू भूपम के डावस बहीर कड़े
सोतह विवार भूप कड़े दुगकोय है ।
कप को घुमान पीछ घुट्ट है जब पौर,
बेबर की नीयति बनीति साँझ मोय है ।
कहि कवि केसोदास घासी बरली न जाति
जोवन की जोय मानौं नाबजाही तोय है ॥

वि० दिया हुआ है। इनके विषय में सरोजकार ने लिखा है कि इनके पर
‘रामसारोजम्’ में बहुत हैं इन्होंने विविधय की धीर व्रज में घाकर श्रीकृष्ण
प्रेतम्य से वात्सान में पराजित हुए^१। इनका भी एक पद ‘सरोज’ में उद्धृत है^२।
यदि सरोजकार की मान्यता को बिचस्तर मान लिया जाय तो ये कवि प्रसिद्ध कवि
केशवदास के समकालीन धारण्य रहे होंगे। किन्तु इनके उपरोक्त सूत्र में घातोष्प
केशवदास के सूत्रों की-सी मधुरता एवं भाषा की प्रीति का समान छटकता है। इस
धनवासी केशवदास का उत्सेह मिश्रबन्धुओं ने भी किया है और इन्हें ‘भ्रमरवसीसी’
नामक ग्रन्थ (रचना-काल संवत् १३६८) का रचयिता माना है^३। वियर्सन महोदय
ने जिन केशव केशवदास धारणा केशवराय नाम के पाँच कवियों का उत्सेह किया है
वे हैं, केशवदास सनाइय मिय^४ केशवदास कावमी^५ निवासी^६ केशवराय बाबू^७
केशव मट्ट (भी मट्ट)^८ और केशव मिथिला-निवासी^९। इनमें से प्रथम तीन नाम तो
सरोजकार ने भी दिए हैं पर दोष वो नाम वियर्सन के नये हैं। मिथिला-निवासी केशव
का समय (सन् १७७५)^{१०} हमारे घातोष्प केशव से कोई २२४ वर्ष पश्चात् पड़ता है।
अतः दोनों के विषय में किसी प्रकार के भ्रम का कोई स्थान ही नहीं है। केशव मट्ट
(सन् १३४४)^{११} प्रसिद्ध कवि केशवदास के समसामयिक धारण्य रहे होंगे। किन्तु इनके
विषय में विद्वान् लेखक को विरोध जानकारी नहीं मागूम पड़ती केवल इतना ही
लिखा है कि यह नामक-नायिकाओं की चेट्याओं के वर्णन में बहुत बड़े-बड़े हैं।^{१२}
अतः निश्चित रूप से कोई गिराव नहीं दिया जा सकता। खोज-रिपोर्टों में प्रसिद्ध
कवि केशवदास के प्रतिरिक्त केशवराय केशवदास केशव धारणा केशवदास नाम के
११ १२ कवियों का विवरण आता है किन्तु साधारणतः उनका और घातोष्प
केशवदास के काव्य-व्यक्तित्व तथा समय में इतना अधिक अन्तर है कि उनके विषय

१ शिवसिंह सरोज पृ ३६६।

२ और मये धाये हो लसन नीकी भतियाँ।

बाबर के उर भीड़ नीसपट व्यापी होने नयन घाससमीने जाये सब रतियाँ।

कुटी सीमा इन नाम नक-क्षत भगिराम कैसे के कुरत वयाम डगमगी गतियाँ।

केशवदास प्रभु बंदासुवन काहे लजात भले जू साँभरे-गास जानी सब भतियाँ ॥

—शिवसिंह सरोज पृ ४६।

३ मिश्रबन्धु कियोध पृ ४० पृ ३४६।

४ दि गोर्धन कर्तव्यर किङ्कर पार दिभुतगान पृ २८।

५ गरी, ५० ३०।

६ गरी, ५० ३१।

७ गरी, ५० ३२।

८ गरी, ५० ३३।

९ गरी, ५० ३४।

१० गरी, ५० ३५।

११ He is said to have excelled in describing the sorrows of a lover and his beloved.

—Modern Vernacular Literature of Hindustan, page 23

केशव का जीवन-चरित

केशव नामधारी प्रसन्न कवि—शिवसिंह सेवर ने अपने 'शिवसिंह सरोव' में प्रसिद्ध कवि केशवदास के अतिरिक्त बिना कोई उम्होंने समाज्य मिय बुधेलसम्धी कहा है। केशवदास प्रबन्ध केशवदास नाम के तीन और कवियों का सम्बन्ध किया है। इनमें से एक केशवदास बाबू हैं जिसको वे यथेलसम्धी और संवत् १७१६ वि० में उत्पन्न लिखते हैं^१। शिवसिंह के अनुसार उम्होंने मायिका-मेर पर एक बहुत सुन्दर रत्न की रचना की थी जिसके कविता बलदेव कवि ने अपने संग्रह रत्न 'सत्कविपिरा विलास' में रखे हैं^२। इन केशवदास के शृंगार रस के दो रत्न 'सरोव' में उद्धृत हैं^३। काम्यत्व की दृष्टि से दोनों रत्न सुन्दर बन पड़े हैं। इनमें कवि केशवदास की स्थाप का कथाविद् प्रम हो सकता है किन्तु इनके और आलोच्य केशवदास के समय में कोई १२० वर्ष का अन्तर है इसलिए दोनों के विषय में किसी प्रकार की भ्रांति के लिए स्थान नहीं है। दोन दोनों कवियों का पूरा नाम केशवदास है। इनमें से एक के विषय में शिवसिंह को कोई विशेष जानकारी नहीं यादूम पड़ती। उम्होंने इनका नाम-संवत् नहीं दिया है। केवल इतना ही लिखा है कि इनकी कविता सामान्य है^४। सरोव में इनका एक ही रत्न दिया गया है जो निम्नोक्ति है^५। यह अन्ध कवित्व की दृष्टि से आलोच्य कवि केशवदास के कवित्तों से हीन है। दूसरे केशवदास बलदासी काश्मीर के रहने वाले हैं। इनका नाम-संवत् 'सरोव' में १९०

१ प्रिन्सिपल सरोव १ १८५।

२ वही १८५।

३ वही, १९।

४ वही, १८५।

५. भागी ऐश्वर्य बैठी ब्यामी के तखत पर,
नैन फौजदार लड़े लखें नई मोर है।
हाथ हू भुवन के हाथ बधीर लड़े
सोमह सिवार भूप लखें दृष्टकोर है।
जम को भुमान सीस धुनुट है खन और,
जेवर की नीमति बन्धि सांग मोर है।
कहि कवि केशवदास भागी बरनी न जाति
बोवन की मोर मागी बाबसाही मोर है ॥

वि० बिया हुआ है। इनके विषय में सरोजकार ने लिखा है कि इनके पद 'रागसामरोम्भ' में बहुत हैं। इन्होंने विविधय की धीर वज में धाकर श्रीकृष्ण चैतन्य से दास्वार्थ में पराजित हुए^१। इनका भी एक पद 'सरोज' में उद्धृत है^२। यदि सरोजकार की मान्यता को विवक्षित मान लिया जाय तो ये कवि प्रसिद्ध कवि केसवदास के समकालीन अवश्य रहे होंगे। किन्तु इनके उपरोक्त छन्द में धामोष्य केसवदास के छन्दों की-सी मधुरता एवं भाषा की प्रीकृता का अभाव चटकता है। इस अवभासी केसवदास का उत्सेख मिश्रबन्धुओं ने भी किया है और इन्हें 'भ्रमरवतीसी' नामक ग्रन्थ (रचना-काल सन् १५६८) का रचयिता माना है^३। प्रियर्सन महोदय ने जिन केसव केसवदास अथवा केसवराम नाम के पाँच कवियों का उत्सेख किया है, वे हैं, केसवदास सनाढ्य मिश्र^४ केसवदास काश्मीर निवासी^५ केसवराम बाबू^६ केसव मट्ट (भी मट्ट)^७ और केसव मिथिला-निवासी^८। इनमें से प्रथम तीन नाम तो सरोजकार ने भी दिए हैं पर दोष दो नाम प्रियर्सन के मते हैं। मिथिला-निवासी केसव का समय (सन् १७७१)^९ हमारे धामोष्य केसव से कोई २२४ वर्ष पश्चात् पड़ता है। अतः दोनों के विषय में किसी प्रकार के भ्रम का कोई स्थान ही नहीं है। केसव मट्ट (सन् ११४४)^{१०} प्रसिद्ध कवि कचवदाम के समकालीन अवश्य रहे होंगे। किन्तु इनके विषय में विद्वान् लेखक को विशेष जानकारी नहीं मालूम पड़ती केवल इतना ही लिखा है कि यह नामक-नायिकाओं की नेष्टाओं का वलन में बहुत बड़े-बड़े हैं।^{११} अतः निश्चित रूप से कोई मिलन नहीं किया जा सकता। खोज-रिपोर्टों में प्रसिद्ध कवि केसवदास के प्रतिरिक्त केसवराम केसदास केसव अथवा केसवदास नाम के ११ १२ कवियों का विवरण पाता है किन्तु साधारणतः उनके धीरे धामोष्य केसवदास के काव्य-व्यक्तित्व तथा समय में इतना अधिक अन्तर है कि उनके विषय

१ प्रियर्सन सरोज पृ १६९।

२ मोर मये धाये हो समय नीकी भवियाँ।

जावक के उर बीहू नीमपन प्यारी बीने नयन धालसमीने जाये सब रवियाँ।

कुटी वीबा बन राम नख-अन धमिराम कैसे के कुरत स्वाम डगमगी रवियाँ।

केसवदाम प्रभु नखमुबन काहे मयात भने पू साँवरे-मात बानी सब रवियाँ ॥

—शिवकिंद सरोज पृ ४३।

३ दिगम्बर निबोध प्र पृ ५ १४१।

४ दि मोर्न कर्मभूत विद्वेक पृ १८ दिगम्बर पृ १८।

५ वरी, ५ १०।

६ वरी, ५ ८५।

७ वरी, ५ २८।

८ वरी, ५ ३६।

९ वरी, ६६।

१० वरी, ५ २८।

११ He is said to have excelled in describing the actions of a lover and his beloved.

—Modern Vernacular Literature of Hindustan, page 23.

में परस्पर किंचित् भी भ्रम नहीं हो सकता । प्रसिद्ध कवि केशवदास का व्यक्तित्व इन सभी से पुष्कल है ।

ब्रह्म-परिचय—केशवदास का नाम हिन्दी साहित्याकाश के जयमयाते हुए ज्योति-मुग्ध सूर तथा तुमसी के साथ बड़े आदर एवं सम्मान के साथ निभा जाता है । उनके जीवन-कृत में बहुत कम गुत्थियाँ हैं । समकालीन सूर तथा तुमसी-से महाकवियों के समान उन्होंने अपनी जीवनी को धन्यकार में नहीं रखा है । यद्यपि उनका ब्रह्म-परिचय तथा उनके जन्म-मरण की तिथियाँ और जीवन-सम्बन्धी मुख्य बटनाएँ निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हैं तथापि उन्होंने अपने रचनाओं में इतना कुछ कह दिया है कि उसके आधार पर हम उनकी जीवनी से भसी भाँति परिचित हो सकते हैं । केशवदास ने अपने काव्यों में यद्य-तथा बहुत सी बातों का स्पष्ट रूप में उल्लेख कर दिया है जिसके सहारे उनके जीवन-कृत को जानने में विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता । केशव ने स्वयं 'कविप्रिया' के दूसरे प्रभाव में अपने ब्रह्म का परिचय भी दिया है^१—

- १ बड़ाबू के चित्त से प्रमट भये सनकादि ।
उपजे तिनके चित्त से सब सनौढ़िया आदि ॥१॥
- परगुराम मनुनन्द तब उत्तम विप्र विचारि ।
हवे बहुतर नाम तिन तिनके पाय पचारि ॥२॥
- जमपावन बंजुम्पति रामचन्द्र यह नाम ।
मनुरामचन्द्र में हवे तिनहँ साथ ही नाम ॥३॥
- सोमब्रह्म मनु-कुल कमल मिश्रण पाव नरेस ।
फेरि हवे कलिकास पुर तेहँ तिनहँ सुखेस ॥४॥
- कुम्भवार जईसकुल प्रमटे तिनके बस ।
तिनके देवानन्द सुत उपजे कुल सबतस ॥५॥
- तिनके सुत जयदेव जय बापे पृथ्वीराज ।
तिनके विनकर सुकुलसुत प्रगटे पण्डितराज ॥६॥
- दिल्लीपति भनाउही कीर्त्ती कृपा अपार ।
तीरब गया समेत बिन भकर करे बहु भार ॥७॥
- यथा यथाभर सुत भये तिनके आनन्दकन्द ।
जयानन्द तिनके भवे विद्यायुत जगज्जन्द ॥८॥
- भये त्रिविक्रम विप्र तब तिनके पण्डितराज ।
भोपाचलपद कुर्बपति तिनके पूजे पाय ॥९॥
- माव धर्म तिनके भये जिनके बुद्धि अपार ।
भये क्षीरोमणि विप्र तब पठ बर्षण यवतार ॥१०॥
- मानसिह सौं रोप करि बिन जीती बिसि चारि ।
जाम बीस तिनको हवे राजा पाँच पचारि ॥११॥

महाराजी के मन से सगकादि पुत्र उत्पन्न हुए और उनके मातसिक पुत्र सनाइय हुए । परमुराम ने सनाइयों को उत्तम ब्राह्मण मानकर उनके पैर पञ्जारकर उन्हें ७२ पाँव दिए । अगपावन वैकुण्ठपति रामचन्द्र जी ने उन्हें मयुरा-मण्डप में ७०० पाँव प्रदान किए । त्रिमुरवन-पालक श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कस्मियुग में उन्हें छिर गद्दी (मयुरा-मण्डप) देव दिया । उनके बंध के सहोदर-कुल में कुम्हार उत्पन्न हुए । उनके पुत्र कुम्हारतल देवानन्द हुए । उनके पुत्र जयदेव को पुष्पीराज के आश्रित ने और जयदेव के पुत्र पण्डितराज दिनकर हुए । इन पर समाजहीन बावघाह की विशेष कृपा थी । उन्होंने गया समेत अनेक तीर्थों की यात्रा कई बार की थी । दिनकर के पुत्र ग्रामन्दकन्द नमा-नवाधर, उनके जयस् प्रतिष्ठित जयानन्द और उनके त्रिविक्रम मिश्र हुए । योपाधन-मह कुम्भपति इन महाराज के चरण पुषते थे । त्रिविक्रम के पुत्र पावसर्मा और उनके पुत्र नन्दर्शन-नारंगत शिरोमणि मिश्र हुए । इनकी नामसिंह से जनकन थी । राणा ने उन्हें पाँव पञ्जारकर बीस गाँव दिये । इन शिरोमणि मिश्र के पुत्र हरिहरनाथ हुए । ये महाराज सोमर-पति के आश्रय में रहे और इन्होंने अम्य किसी के आगे झुककर भी हाथ नहीं पसारा । हरिहरनाथ के पुत्र कृष्णदेव हुए जिन्हें महाराज छ ने पुराण-वृत्ति प्रदान की । उनके पुत्र बुद्धि के समुद्र काशी नाथ हुए । उन्हीं काशीनाथ के बलभद्र केसवदास और कल्याणदास तीन पुत्र हुए । छ प्रयाग के पुत्र मधुकरसाह के यहाँ इन काशीनाथ मिश्र का बड़ा सम्मान था । बालकपन से ही मधुकरसाह को मिमबी के बड़े पुत्र बलभद्र पुराण सुनाया करते थे ।

तिन के पुत्र प्रसिद्ध जग कीन्हें हरि हरिनाथ ।
 सोमरपति तबि और छौं भूति न साइयी हाथ ॥१२॥
 पुन भये हरिनाथ के कृष्णदेव दुम बेल ।
 समा चाह संघाम की भीसी गद्दी असेव ॥१३॥
 तिनको वृत्ति पुराण की दीन्हें राजा छ ।
 तिनके काशीनाथ सुय छोने बुद्धि समुद्र ॥१४॥
 तिनको मधुकर साह नृप बहुत कर्यो सममान ।
 तिनके सुत बलभद्र दुम प्रसटे बुद्धिमिनाम ॥१५॥
 नामहि छे मधुसाह नृप तिनपै सुनै पुराण ।
 तिनके सोदर हैं भये केसवदास कमान ॥१६॥

—क जि म र अ ० १ १६ ।

१ व जाने किन अक्षर पर मिमलपुत्रों ने मधुकराजी के पुत्र का नाम 'सोमरपति' दिया है (मिन्नी पत्रिका, पृ ४२६) । 'कविमित्र' में छे शिरोमणि मिश्र ही लिखत है (पृ २ अ १०) । मिन्नी केसव की छापी के सामने मिमलपुत्रों का यह मत अधिक विश्वसनीय नहीं मान सकता ।

‘रामचन्द्रिका’^१ तथा ‘विज्ञानमीता’^२ के सारम्भ में भी केशव ने अपने बंध का परिचय दिया है जिससे कवि के विषय में ‘कविप्रिया’ में उल्लिखित परिचय से अधिक और कुछ नहीं विहित होता। ‘विज्ञान-मीता’ में केशव के निवास-स्थान तथा उनके बंध के मूल-मुख्य—वेदव्यास का निर्देश अत्यन्त अधिक हुआ है।

उपयुक्त ग्रन्थों में दिये विवरण से निष्कर्ष यह निकलता है कि केशव मिथ ‘उपाधिवारी’ समाज्य ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। वे कुण्डवास मिश्र के पौत्र और काशीनाथ मिश्र के पुत्र थे। वे तीन बार्हि थे। बड़े का नाम बलमह तथा छोटे का कस्यास था। केशव के बंध की वृत्ति पुराण है और उसका मूल-मुख्य वेदव्यास है। वेतना नहीं के तट पर स्थित ओरछा नगर इस बंध का निवास-स्थान है।

हमें भ्रांसी-निवासी श्री गोरक्षकर द्विवेदी ‘शंकर’ (जिनका सम्बन्ध केशव के बंध से जामाता होने का है के सौमन्य से एक बंध-बृक्ष की अवितिमि प्राप्त हुई है, जिसका संकसन केशव के बंधवर स्व० श्री अयराजदास मिश्र ‘अयराज’ ने दिया था। बंध-बृक्ष की मूल प्रति फुटेरा-निवासी भारद्वाजदास मिश्र तनय श्रीमन्नाथ मिश्र के पास अब भी सुरक्षित है। केशव के कोई भी बंधवर आजकल ओरछा में नहीं हैं। वे अपने-अपने उन धामों में रहते हैं जोकि केशव को जमीन में मिले थे। केशव के बंधवर प्रायः श्री भ्रांसी और फुटेरा (जो भ्रांसी से २३ मील दक्षिण की ओर हैं) में निवसन्त हैं। जो दो परिवार भ्रांसी में रहते हैं उनके पते निम्नांकित हैं—

- १ जनाह्व्य जाति गुणाह्व्य है जय सिद्ध सुख सुभाष ।
सुहृत्सुख प्रसिद्ध है महि मिथ पण्डितराज ॥
यणेश सो धुत पादबो बुध काशिनाथ भगव ।
भयेश शास्त्र विचारि के जिन जानयो मत्त साथ ॥४॥
उपम्यो तेहि कुल मंडपति सठ कवि केशवदास ।
उपम्यो की चन्द्रिका भाषा कवी प्रकाश ॥५॥

—पृ ३ म ११

- २ केशव गुणारम्भ में नहीं वेतनी तीर ।
बहाभीर पुर बहु बसे पण्डित मंडित भीर ॥१॥
ओढ़ई तीर छरपिछि वेतनी ताहि छर नर केशव को है ।

×

×

×

तहाँ प्रकाश सो निवास मिथ कुण्डवत्त को ।
भयेश पण्डिता गुणी गुहास विप्र भक्त को ।
धु काशिनाथ तस्य पुत्र जिन काशीनाथ को ।
सनाह्व्य कुम्भवार धन्य बंध देव व्यास को ॥३॥
तिनके केशवदास सुठ भाषा कवि मतिमान् ।
कवी ज्ञानमीता प्रकट श्री परमानन्द काह ॥६॥

—वि० टी०, पृ १ ।

- १ श्री मधुराप्रसाद मिश्र 'मधुरेश' पुत्र स्व० श्री बबलुप्रसाद मिश्र 'बबलुशेखर' ग्रन्थसमन्वित प्रेस गान्धी रोड बहावाबाद, झांसी ।
- २ श्री पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश' मनेजर स्वाधीन प्रेस माणिक चौक झांसी ।

इन उक्त परिवारों के प्रतिरिक्त और भी परिवार हैं जो झांसी में रहते सगे हैं । फुटेरा में प्रथम भी प्रायः ४०० १०० व्यक्ति उनके परिवार के विद्यमान हैं । कृषि कार्य ही उनकी आजीविका है । बगोवारी समाप्त हो गई है ।

बंश-वृक्ष (जो श्री बबलुशेखर श्री के सुपुत्र मधुरेश द्वारा बाद को संघोषित एवं परिवर्द्धित किया गया) सामने दिया गया है ।

केदार के पूर्वजों का वास-स्थान—श्री पौरीशंकर द्विवेदी 'धनर केदार के बचपनों से प्राप्त बंश-वृक्ष में दिये एक बोहे के आधार पर केदार के पूर्वजों का प्रादि-युद्ध ब्रजमण्डल के अन्तर्गत 'डीय-कुम्हेर' नामक ग्राम बताते हैं' । केदार के पूर्वज फिर कब वहाँ से कहीं गए इत्यादि बातों के विषय में केदार के ग्रन्थों से पूरी तो जानकारी नहीं होती किन्तु इतना तो सात हो ही जाता है कि 'बोपापस' के प्रताप के प्रजन रहते तक केदार के पूर्वज वहाँ रहे किन्तु उसके मरने के बाद भी अन्यत्र जा बसे । तोमर राज्य से इनका सम्बन्ध अभी तक बना रहा जब तक वह सद्यत एवं समर्थ था । जब वह दिल्ली से बोपापस आ गया तब केदार के पूर्वज भी वहाँ आए या गये और वहाँ के हो रहे । केदार के पूर्वज 'शिरोमणि' श्री राणा मानसिंह से जब कुछ मतभेद हो गई तब उन्होंने अपने पराक्रम से बलिष्ठ में पाँच पुत्रोंकर राणा से जीत प्राप्त से लिये । इस प्रकार इनका सम्बन्ध राणा-वंश से भी स्थापित हो गया परन्तु फिर भी शिरोमणि के पुत्र हरिहरनाथ ने तोमरपति को छोड़कर किसी और का आश्रय ग्रहण नहीं किया । जब तोमरपति का राज्य मुसलमानों के हाथ में आया तो हरिहरनाथ के पुत्र कण्ठदत्त वहाँ से निकलकर राबा खजुराव की धरण में जा पहुँचे और उनकी कृपा से केतवा नदी के तट पर धोरछा नगर में रहने लगे । जब केदार के पूर्वज वहाँ आकर रहने लगे । इस प्रकार इस वंश का सम्बन्ध धोरछा-नरेशों से हो गया और वह सगाव इतना बढ़ा कि केदार की दृष्टि में तोमर 'तुल' के समान हो गए । उन्होंने धोरछा-नरेश मधुकरदाह के पुत्र गीरसिंह की प्रशंसा में स्पष्ट शब्दों में कहा ।

१ अनेक करत समग आचार्य केदारदास के बंशधरों के पास जो बंश-वृक्ष मिले वह इसमें कई बोहे के ओझड़े बंशधरों के लिये थे । इनमें निम्नलिखित दोषा भी हैं—

उत्पत्ति निज तुल की सुनी जब मैं डीय-कुम्हेर ।

दिज सनाह्य मुनि मिश्र कहि मुनज देखि मोहि डेर ॥

—सप्तमि ज्योत्स्ना प्रथम माल, १ ६ ।

२ ओज य्यों पुत्र पंवार पुनार से तौवर तुल के तुल उड़ाए ।

सिंह य्यों बाध य्यों कण्ठदत्त बाहु हते गज य्यों पुनराव कड़ाए ॥

केदारदास प्रकाश मगस्थ य्यों छोड़ धनोक सगुन गुगाए ।

गीर मरेण के लक्ष्य कुमान के विक्रम व्यास सनेक बिताए ॥

—वि० टी० प्र० १ अ० १ ।

बंश की पाण्डित्य-परम्परा—संस्कृत की पाण्डित्य-परम्परा केशव के बंश में बहुत दिनों से चली आती थी। 'भावप्रकाश' नामक बौद्ध-ग्रन्थ इसके पूर्वज भावप्रम (मातराम) ने रचा था। स्मृतिप का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वीरबोध' इसके पिता काशीमाच जी ने बनाया था। कुछ लोगों का तो यहाँ तक विचार है कि 'प्रसन्नराज' के कर्ता जयदेव इसके पूर्वज थे। परन्तु द्रष्टु प्रमाण के अभाव में यह मत मान्य नहीं हो सकता। इनके पिता और पितामह धीरछात्रीयों के पौराणिक पण्डित थे। इनके बड़े भाई बलभद्र ने भी 'नखसिंह' 'भाववत-भाष्य' तथा हनुमन्नाटक-टीका नामक ग्रन्थों की रचना की थी। ये बातकपन से ही धीरछात्रीय मधुकरदास को पुराणों की रचा सुनाया करते थे। अपने बंश की विद्वत्ता के विषय में केशव स्वयं लिखते हैं कि उनके बंश के पास तक भी भाषा में बातें न कर संस्कृत बोलते थे—

भाषा बोलि न जानही जिनके कुल के पास ।

भाषा कवि जो मंदमति तेहि कुल कैलबदास ॥^१

कहा नहीं जा सकता कि केशव के इस कथन में कहीं तक सरासि है। यह भी सम्भव है कि वे अपने बंश की कीर्ति के धारण में ऐसा निबध्न हुए हों। परन्तु यह वितर्कित प्रसम्भव बात भी नहीं कि उनके बंश के सेवक भी संस्कृत से परिचित हों। बाईं कुछ भी सही इतना मानने में तो कोई आपत्ति नहीं कि केशव ने संस्कृत का काफ़ी अध्ययन किया था और अपने कुल की पाण्डित्य-परम्परा को बनाए रखने का बरतक प्रयास किया था। अभी तक उनके बंध में बराबर कवि होते चले आ रहे हैं। आजकल उनके बंध में द्वारिकाप्रसाद मिश्र मधुराप्रसाद मिश्र बिहारीमान मिश्र लक्ष्मीनारायण मिश्र रामचरण मिश्र आदि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि विद्यमान हैं।

जन्म-संवत्—केशवदास का जन्म-संवत् के विषय में विद्वानों में मतभेद नहीं है। शिवसिंह सेंसर ने इनका जन्म-संवत् १६२४ वि० माना है^२। किन्तु उन्होंने यह नहीं लिखा कि इस जन्म-संवत् के मानने के लिए उनके पास क्या प्रमाण और आधार हैं। प्रियदर्शन महोदय ने अपने मौलिक वर्तमान्तर सिद्धेश्वर धात्र 'हिन्दुस्तान' नामक ग्रन्थ में केशवदास के विषय में लिखा है कि वे संवत् ११८० ई० (संवत् १६३७ वि०) में जूते फूटे^३। इस समय के मानने का प्रमाण इन्होंने भी नहीं दिया है। ए० ई० के,^४ स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल^५ रामनरेश त्रिपाठी^६ डा० रामकुमार वर्मा^७ आदि भविष्यदा विद्वानों के अनुसार केशव का जन्म समय संवत् १६१२ वि० में हुआ था। मिश्रबन्धु ने अपने ग्रन्थ मिश्रबन्धु-विमोच (प्रथम भाग) में केशवदास का जन्म-

१ क मि प्र० पृ ३६ १० ।

२ शिवसिंह सेंसर, पृ ३५५ ।

३ वि० मोहन वर्तमान्तर सिद्धेश्वर धात्र हिन्दुस्तान, पृ ५५ ।

४ शिबू काक सिद्धेश्वर पृ ३४ ।

५ सिद्धेश्वर का कविता पृ ५११ ।

६ कनिष्ठा कोसुरी, प्रथम भाग, पृ २६० ।

७ हिन्दी सचित्र का आलोचनात्मक इतिहास, पृ २६२ ।

संवत् १६१२ वि० के लगभग माना है किन्तु आपने यह भी पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया है^१। 'हिन्दी मबरन' में वे सप्रमाण इसका जन्म-संवत् १६०८ वि० के लगभग बताते हैं—

“केसवदास ने संवत् १४८८ वि० में ‘रसिकप्रिया’ बनाई। यह एक संस्कृत ग्रन्थ है। आपने केसव साठ ग्रन्थ बनाए। अतः निश्चित होता है यह महासप्त ग्रन्थ बीरे बनाते थे। इससे विचार यह उठता है कि संभवतः बालीस बर्ष की अवस्था में इन्होंने यह ग्रन्थ बनाया होगा। कवि होने के प्रतिरिक्त आप संस्कृत के अच्छे पण्डित भी थे। इनके पिता काशीनाथ ने ‘श्रीधरोब’ नामक ज्योतिष का एक ग्रन्थ बनाया। इससे ज्ञान पड़ता है, उन्होंने केसवदास को भी ज्योतिष प्रवचन पढ़ाया होगा। फिर इनके पितामह को भोड़से में पुराण की वृत्ति मिली थी सो वही वृत्ति इनकी भी होगी। अतः यह पुराण भी खूब पढ़े होंगे। केसव की कविता से भी प्रकट होता है कि वह संस्कृत के पण्डित थे। इन्द्रजीत इनको गुस्सठ समझते थे। इस बात से भी मालूम होता है कि यह महासप्त संस्कृत के ज्ञाता होंगे। विज्ञानगीता देखने से निश्चित होता है कि इनका बर्धनशास्त्र पर भी अधिकार था। इन सब बातों से ज्ञात हुआ कि केसवदास ने विद्या प्राप्त करने में पूरा धन बरके उस काव्य करना आरम्भ किया होगा। अतः अनुमान से ज्ञान पड़ता है कि इनका जन्म-संवत् १६०८ वि० के लगभग हुआ था^२।”

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने भी बालीष्य कवि का जन्म-संवत् १६०८ वि० ही माना है और उनके अनुमान को आधारमिति भी प्रायः वहीं है जो मिश्रबन्धुओं की है। द्विवेदीजी लिखते हैं—

इतनी बड़ी अवस्था तक इन्होंने केसव पाँच या छः ग्रन्थ लिखे। इससे सिद्ध होता है कि इनके हरेक ग्रन्थ की रचना में बहुत पर्याप्त समय लगा होगा। ‘रसिकप्रिया’ इनका प्रथम ग्रन्थ है। इसमें काफ़ी समय लगा होगा। इसकी रचना संवत् १६४८ में पूरी हुई। इनके जीवन-काल से सम्बन्ध रखने वाली यही पहली तिथि है जो हमें निश्चय रूप से मालूम है। इससे अनुमान है कि उनकी अवस्था इस समय बालीस से कम चायब ही रही हो क्योंकि कम से कम तीस बर्ष तक संस्कृतार्थ्यवन रहा होगा। इसके बाद इस बर्ष हिन्दी में काव्य-जीवन प्राप्त करने तथा ‘रसिकप्रिया’ को पूरा करने में अवश्य लगे होंगे। अतः इनका जन्म-संवत् १६०८ के लगभग हुआ^३।”

केसवदास के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सबसे पहली निश्चित तिथि संवत् १६४८ वि० है जिसमें केसव की ‘रसिकप्रिया’ पूरा हुई। यह भी निश्चित ही है

१ मिश्रबन्धु-मिनोद प्रथम भाग पृ. २६५।

२ हिन्दी मबरन, पृ. ४३७।

३ हिन्दी के कवि और काव्य प्रथम भाग, पृ. १७२।

कि केसवदास ने पहले संस्कृत भाषा का अध्ययन और उसमें पूर्ण पाठ्य प्राप्त किया और फिर हिन्दी में काव्य-रचना आरम्भ की। 'रसिकप्रिया' की रचना करने से पहले केसव ने हिन्दी के अध्ययन में भी कुछ समय अवकाश समायोजित किया। उसका परिपक्व ज्ञान प्राप्त करने में केसव को एक-दो वर्ष से अधिक न लगा होगा। कारण उनके कुटुम्बी संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी से भी भली भाँति परिचित थे। इनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र हिन्दी व अष्टौ शाखा के और उन्होंने 'नखतिल' 'भागवत-मार्ग' तथा 'हनुमन्नाटक-टीका' आदि ग्रन्थ भी लिखे थे। दूसरे, केसव के पिता एवं पितामह आदि धीरे-धीरे-धीरे के यहाँ पौराणिक से और उन्हें पुराणों की कथा सुनाने तथा समझाने का कार्य बिना हिन्दी की सहायता के सम्भव न था। इसके उपरान्त एक-दो वर्ष 'रसिकप्रिया' के प्रारम्भ में गये होंगे। केसवदास जैसे व्युत्पन्न तथा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के लिए २२-२९ वर्ष की आयु में ही संस्कृत पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेना कोई असम्भव बात नहीं है और फिर जब कि समस्त कुटुम्बी संस्कृतों का ही हो। इस प्रकार केसवदास का जन्म 'रसिकप्रिया' के निर्माता के लगभग २२-३० वर्ष पहले अर्थात् सन् १६१८ विक्रमी में मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

स्व० सा० रामचन्द्रजीवजी केसव का जन्म सन् १६१८ ही मानते हैं^१। उन्होंने यह नहीं बतलाया कि आलोच्य कवि की यह जन्म-तिथि उन्होंने किस प्रमाण और आधार पर लिखी है। श्री जीपीचंकर त्रिवेदीजी के अनुसार भी केसवदास का जन्म-संवत् १६१८ वि में हुआ था। इस जन्म-तिथि का आधार वे उन दोहों को मानते हैं जो अम्बेपण करते समय केसव के बचपनों के पास प्राप्त बंश-वृत्त^२ में मिले थे और जिन्हें उनके बंशधर ने लिखा था। त्रिवेदीजी ने अपने 'मुकवि-सरोज' (प्रथम भाग) में इन दोहों को उद्धृत भी किया है जो नीचे दिए जा रहे हैं—

संवत् हावरा यह सुमय सोरह सौ बसुमास ।
तब कवि केसव को जन्म, नगर ओढ़े बास ॥
कल्पति निजकुल की सुनी, तब में डीग कुम्हरे ।
हिम समस्त्य मुनि भिन्न कहि सुनन देखि मोहि डेर ॥
यमुबेर अवधन सुनी, मोन सु भारदास ।
आका सुन कहि मावनी इत्येव रघुराज^३ ॥

हम स्वयं केसव के बंशधर श्री अक्षयप्रसाद जी 'अवशेष' से मिले हैं और उनसे इस विषय में पूछ-ताछ भी की है। उनसे हमें पता चला है कि केसवदास का जन्म श्रीरामचन्द्रजी को सन् १६१८ में हुआ था और उनकी जन्म-जयन्ती भी उस और मुम्बैनगर में इसी तिथि को मनाई जाती है। इस तिथि का आधार वे जीपीचंकर त्रिवेदी जी द्वारा उद्धृत बंश-वृत्त वाले दोहों ही बतलाते हैं। अतः

१. केसव-चरितम् आकाशिका—कवि चरितम् पृ० १।

२. बंश-वृत्त की मूल प्रति प्रकट करने पर ही लेखक को देखने को न मिल सकी।

३. अम्बेपण, प्रथम भाग, पृ० १६।

हमारे विचार में तो कछन का जन्म-संवत् १९१८ वि० धार्मिक समीचीन मान सकता है ।

घोष, शाखा आदि—केसवदास ने अपने 'रामचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ में अनामिक ही भारद्वाज मुनि उनके आश्रम तथा रूप का वर्णन विशेषतः किया है^१ । इससे विशिष्ट होता है कि केसवदास भारद्वाज गोत्रीय थे और स्वभावमिमान के कारण ही उन्होंने स्थान निकासकर ऐसा प्रसंग जोड़ा है । केसवदास के भारद्वाज-गोत्रीय होने का दूसरा प्रमाण उनके वंशपरों से प्राप्त वंश-वृक्ष में दिया हुआ निम्न-लिखित बोधा है—

यजुर्वेद ध्वजान सुप्तो घोष सु भारद्वाज
शाखा सुज कहि मार्वनी, इत्येवैव रघुराज ॥

इससे यह भी बात होता है कि उनके कुल की शाखा मार्वनी थी और वे यजुर्वेदीय ब्राह्मण थे ।

केसव का निवास-स्थान तथा स्वदेश-प्रेम—केसवदास का निवास-स्थान उनके अपने राज्य के अनुसार भोजपुरा राज्यान्तर्गत तुयारम्ब के समीप बैठवा नदी के तट पर स्थित भोजपुरा नगर था^२ ।

मनुष्य को अपनी जन्म-भूमि तथा वहाँ की प्रत्येक वस्तु से इतना प्रेम हो जाता है कि उसके सामने वह दूसरे स्थानों की महत्त्वपूर्ण वस्तुओं को हेय समझता है । केसवदास भी इस सत्य के अपवाद नहीं थे । उन्हें भी अपनी जन्म-भूमि एवं वहाँ के अरम्भ स्रिता आदि से अत्यन्त प्रेम था । यह उनके भोजपुरा नगर तुयारम्ब और बैठवा नदी आदि के वर्णन से प्रकट है । केसव की दृष्टि में जन्म नगर भोजपुरा नगर

१ रामचन्द्रिका प्र० १० अं १४११ ।

२ नदी बैठनी तीर जहाँ तीरज तुयारम्ब ।
नगर भोजपुरा बहु बसें बरणी तस में भव ॥३॥
बिल प्रति जहाँ कुनी जई जहाँ बया यव दान ।
एक तहाँ केसव सुकवि जागत सकल जहान ॥४॥

—र वि०, प्र ११

तथा

जहाँनीर पुर प्रपट दीह कुर्जन दिन रूपन ।
नदी बैठन तीर बसत भव भूतन भूषन ॥
तिहि पुर प्रसिद्ध केसव सुमति विप्रबन्त पबतन्त मुनि ।

—बी दे प्र० ११

(भारद्वाज वैश्वदेव ने भोजपुरा को फिर से बहाकर बल्लभ नाम की नदी पर एक भू)

कि केसवदास ने पहले संस्कृत भाषा का अध्ययन और उसमें पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त किया और फिर हिन्दी में काव्य-रचना आरम्भ की। 'रसिकप्रिया' की रचना करने से पहले केसव ने हिन्दी के अध्ययन में भी कुछ समय अवश्य लगाया होगा। उसका परिपक्व ज्ञान प्राप्त करने में केसव को एक-दो वर्ष से अधिक न लगा होगा। कारण उनके कुटुम्बी संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी से भी गहरी जाँति परिचित थे। इनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र हिन्दी के प्रथम छाता थे और उन्होंने 'नखशिख' 'मानवत-भाव्य' तथा 'हनुमन्नाटक-टीका' आदि ग्रन्थ भी लिखे थे। दूसरे, केसव के पिता एवं पितामह आदि घोरछा-नरेलों के गहरी पौराणिक वे और उन्हें पुराणों की कथा सुनाने तथा समझाने का कार्य बिना हिन्दी की सहायता के सम्भव न था। इसके उपरान्त एक-दो वर्ष 'रसिकप्रिया' के प्रत्ययन में लगे होंगे। केसवदास जैसे व्युत्पन्न तथा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के लिए २३-२६ वर्ष की आयु में ही संस्कृत पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेना कोई असम्भव बात नहीं है और फिर यह कि समस्त कुटुम्ब संस्कृतज्ञों का ही हो। इस प्रकार केसवदास का जन्म 'रसिकप्रिया' के निर्मास के समय २६-३० वर्ष पहले अर्थात् संवत् १६१८ विक्रमी में मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

स्व० सा० भवबालदीनजी केसव का जन्म वर्ष संवत् १६१८ ही मानते हैं^१। उन्होंने यह नहीं बतसाया कि आलोच्य कवि की यह जन्म-तिथि उन्होंने किस प्रमाण और आधार पर लिखी है। श्री गीरीशंकर द्विवेदीजी के अनुसार श्री केसवदास का जन्म-संवत् १६१८ वि० में हुआ था। इस जन्म-तिथि का आधार वे उन लोगों को मानते हैं, जो धन्यपरा करके समय केसव के बचपनों के पास प्राप्त बंध-बृद्ध^२ में मिले थे और जिन्हें उनके बंधवर ने लिखा था। द्विवेदीजी ने अपने 'सुकवि-सरोज' (प्रथम भाग) में इन लोगों को उद्धृत भी किया है जो नीचे दिए जाते हैं—

संवत् द्वादश पद् सुनय, सोरह सै मधुमास ।
तब कवि केसव को जन्म, नगर जोकेश वास ॥
उत्पत्ति मिश्रकुल की सुनी राज में बीग कुम्हार ।
द्विज क्षत्राह्व्य मुनि मिश्र कहि सुखन हैकि मोहि डेर ॥
मकुन्दर अवधन सुभी, पोष सु नारदाव ।
आका सुख कहि भार्गवी इच्छेव रघुराज^३ ॥

हम स्वयं केसव के बंधवर श्री भवराजदास श्री 'अवलीख' से मिले हैं और उनसे इस विषय में पूछ-ताछ भी की है। उनसे हमें पता चला है कि केसवदास का जन्म श्रीराजगढ़मी को चैत्र मास में संवत् १६१८ में हुआ था और उनकी जन्म-जयन्ती भी उस घोर कुम्हारकुल में होती थी जो मनाई जाती है। इस तिथि का आधार वे गीरीशंकर द्विवेदी जी द्वारा उद्धृत बंध-बस नामे बोहो ही बतलाते हैं। अतः

१. केसव-जीवन आकाशिका—कवि परिचय, १६१८।

२. बंध-बृद्ध की रूप प्रति प्रकाश करने पर श्री लेखक को देखने को न मिल सका।

३. सुकवि सरोज, प्रथम खण्ड, १०६।

हमारे विचार में तो कोशब का जन्म-संवत् १६१८ वि० अधिक समीचीन जान पड़ता है।

मोक्ष, शास्त्रा आदि—कोशबदास ने अपने 'रामचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ में अनामस्कृत ही भरद्वाज मुनि उनके आधम तथा रूप का वर्णन विशेषतः किया है^१। इससे निश्चित होता है कि कोशबदास भारद्वाज मोक्षीय के घोर स्वजात्यभिमान के कारण ही उन्होंने स्थान निकालकर ऐसा प्रसंग जोड़ा है। कोशबदास के भारद्वाज-मोक्षीय होने का दूसरा प्रमाण उनके वंशधरों से प्राप्त वंश-वृक्ष में दिया हुआ निम्न-लिखित दोहा है—

यमुर्वेण धनधान्य सुखी यौत्र तु भारद्वाज

शास्त्रा सुत्र कहि भार्दनी, इष्टदेव रघुराज ॥

इससे यह भी सात होता है कि उनके कुल की शाखा भार्दनी की घोर ये यमुर्वेदीय शास्त्राण थे।

कोशब का निवास-स्थान तथा स्वदेश-प्रेम—कोशबदास का निवास-स्थान उनके अपने साक्ष्य के अनुसार भोड़छा राज्यान्तर्गत तुगारण्य के समीप बैठवा नदी के तट पर स्थित भोड़छा नगर था^२।

मनुष्य को अपनी जन्म-भूमि तथा वहाँ की प्रत्येक वस्तु में इतना प्रेम हो जाता है कि उसके सामने वह दूसरे स्वार्थों की महत्त्वपूर्ण वस्तुओं को हेम समझता है। कोशबदास भी इस सत्य के अपवाद नहीं थे। उन्हें भी अपनी जन्म-भूमि एवं वहाँ के अरण्य सरिता आदि से अत्यन्त प्रेम था। यह उनके भोड़छा नगर, तुगारण्य घोर बैठवा नदी आदि के वर्णन से प्रकट है। कोशब की दृष्टि में अन्य नगर भोड़छा नगर

१. रामचन्द्रिका प्र० ० अ० १४ ११।

२. नदी बैठवा घोर वहाँ घोरव तुगारण्य।

नगर भोड़छा बहु वसे बरणी तस में धन ॥३॥

दिन प्रति वहाँ दूनी सही वहाँ दया धन धान।

एक वहाँ कोशब सुकवि जानत सकल ज्ञान ॥१॥

—र. वि० प० ११

तथा

वहाँमीर पुर प्रसद दीह दुर्जन दिन रूपन।

नदी बैठवा घोर वसत भव भूतन भूपन ॥

तिहि पुर प्रसिद्ध केसव सुमति मित्रबन्ध धनतन्ध मुनि।

—दी. दे० प० पृ० ११

(आर्यभट्ट-टीकालेख के अनुसार कोशब से कश्मीर वसत नाम बहिष्कृत राजा था।)

पर निष्कार करने योग्य हैं^१। बेटवा नदी का भी महत्व केसव के विचार में नया और यमुना से किसी प्रकार कम नहीं^२। बेटवा नदी के वर्धन से सारीरिक कष्ट और स्वर्ग से पाप मिटते हैं तथा स्नान से प्राणियों के हृदय में ज्ञान का उदय होता है^३। इसी प्रकार तु गारण्य को केसव ने पितृ के जटाजूट के समान पवित्र बतलाया है^४।

विवाह और सन्तति—केसवदास के अपने कवित्व के आधार पर यह विरचित रूप से कहा जा सकता है कि उनका विवाह हुआ था और इनकी पत्नी जीवन के अन्तिम दिनों तक इनके साथ रही। केसवदास 'विज्ञान-गीता' में लिखते हैं कि इस प्रश्न की रचना से प्रसन्न होकर जब महाराज वीरगिरिदेव ने उनसे कहा कि जो तुम्हारे मन का मनोरथ हो उसे माँगो तो केसवदास ने सविनय निवेदन किया कि मेरे बासकों को बाप-दादों काय ही हुई वृत्ति थीम दे दीजिए और मुझे अपना दास

१ बहुत भाग बाग बन मानहु सपन बन
सोमा की सी साना हंसमाना सी सरित नर ।
ऊँचि-ऊँचि घटनि पताका घटि ऊँची जनु,
कीचिक की कीन्हीं गंगा सेतत तरस तर ॥
अपने मुकनि पाये निन्दत नरेन्द्र और,
बर-बर देखियत देवता से नारिनर ॥
केसवदास नास जहाँ केसव वृष्टि ही को
बारिये नगर और घोरछा नगर पर ॥

—क. वि. म. अ. अ. १।

२ छोड़िये तीर तरंगिणि बेटवे ताहि तरै नर केसव को है ।
घञ्जु नवाहुप्रवाह प्रबोधित रेवा क्यों राजन की रब मोहै ॥
ज्योति जयै यमुना सी नई जय सास बिलोचन पाप बिपोहै ।
सूरसुता सुभ संवम तुय तरंग तरंगिणि गंग सी सोहै ॥

—वि० गी. प्र० १ अ० ४ क. वि. म. अ. अ. १५ (घञ्जु से)
तथा ही दे. म. इ. १०२ [कञ्जु से]।

३ नदी बेटवे परम विविध । बेबी नीर नरेख विविध ॥
बरसै बुरि करै उन ताप । परसै सोयै पाप कमाय ॥
स्नान करै सब पाठक हरै । देवत ज्ञान उबी जल करै ॥

श्री दे. म. इ. अ. १०२।

४ अचम अमसरंत सिन्धु सुरंगित पुन ।
संभु कँसी जटाजूट परम पुनीत है ॥

—क. वि. म. अ. अ. १०३।

समझकर रंग-रंग पर वास करने की आज्ञा दीजिए^१। उनकी आज्ञा पर महाराज बीरसिंह ने उनके बालकों को छीनी हुई वृत्ति एवं पदवी दी और केसव को आज्ञा दी कि वे परनी-सहित रंग-रंग पर वास करें^२। इस कथन से यह भी स्पष्ट है कि केसव की पत्नी 'विज्ञानपीठा' के रचनाकाम भर्त्सि संवत् १६६७ वि तक जीवित थी।

केसव के कथन से बालनि धामु^३ में प्रयुक्त 'बालनि' सम्भव बहुवचन है। यद्यपि इससे यह भी निश्चित ही है कि उनके एक से अधिक सन्तान थी परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनके दो ही पुत्र थे अथवा दो से अधिक। हाँ पीछे दिये हुए वक्तव्य के अनुसार अवश्य केसव के पुत्रों की संख्या पाँच ही ठहरती है। 'बालनि' शब्द से केसव का उत्पत्ति पुत्रों से ही है कन्या से नहीं क्योंकि कन्या के लिए वृत्ति देने का प्रश्न उस समय उठ ही नहीं सकता था।

केसव और बिहारी—केसव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में विद्वानों में मतभेद है। स्व० बाबू रामाकृष्णदास 'बीरसिंहकर द्विवेदी संकर' स्व० जगन्नाथदास रत्नाकर तथा पद्मवती पाण्डे इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध के पक्ष में हैं और निम्बबन्धु, स्व० डाक्टर ब्यामसुन्दरदास स्व० मायासिंहकर याज्ञिक गणेशप्रसाद द्विवेदी तथा डा० हीरानाथ बीजित विपक्ष में।

इस सम्बन्ध को प्रमाणित करने वाले विद्वानों में स्व० बाबू रामाकृष्णदास प्रमुख हैं। उन्होंने सबसे पहले संवत् १८६१ ई० (संवत् १९६२ वि०) में धनु मास के सहारे एक लेख छाप यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि केसव बिहारी के पिता थे। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने बार-बारों का उल्लेख किया था। पहली यह कि बिहारी ने स्वयं एक बोध में 'कचबराय' की वन्दना की है^४ जो कुछ टीकाकारों एवं विद्वानों के मतानुसार बिहारी के पिता का नाम था^५। दूसरे बिहारी के विषय में एक प्राचीन शोहा प्रसिद्ध है जिसमें बताया गया है कि उनका जन्म व्यासियर में हुआ था^६। तबसे ही बिहारी के पिता के नाम केसव का माना गया है।

- १ मुनि मुनि केसवराय सौं रीति कही नृपनाथ ।
माँहि मनोरथ चित्त क कीजै सब सनाथ ॥३१॥
वृत्ति दई पुरुषानि कीं देऊ बालनि धामु ।
मोहि आपनो जानि कै, रंग रंग देव बामु ॥३६॥

वि० पी० प्र० ११।

- २ वृत्ति दई पदवी दई, पूरि करो कुल नाथ ।
जाइ करो सकलज भीरंगा तट बस वास ॥३७॥

वि० पी० प्र० ११।

- ३ प्रगट भए द्विराज-कुल सुवस बसे बस धाढ़ ।
मेर हरी कलश सब केसव कचबराय ॥

विहारी रसद्वय, अं० ११।

(प्रगट का के स्थान पर 'जगम सिधे' पाठोद्घ भी मिलता है।)

४ कविर विहारीराज १०२।

मधुरा में तरणायत्ना प्राप्त की^१। तीसरे, दोनों ही कवि समसामयिक थे^२। और चौथे यह कि बिहारी की कविता में भी कुम्भेसखजी बापा के सङ्ग प्रयुक्त हैं। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय राजारूपदासजी ने जो धन्य उद्धृत किये हैं^३ उनमें से कुछ नीचे प्रस्तुत हैं—

मोरचण्डिका, त्याग-तिर जड़ि कत करति पुमानु ।
सखिजी पावन पर लठति सुनियतु रास-भानु ॥^४
 विष विजुरन की कुसह कुसु हरपु जाति प्योसार ॥
 बुरजोवन नीं देखति ललत प्रान इहि बार ॥^५

तथा

कौन भाँति रहिहैं बिरहु सब देखिबो मुरारि ।
 बीचे मौसौ घाड़ के गीचे धीरहैं तारि ॥^६

यही नहीं बरन् एक बाहे में तो जो नीचे लिखा गया है, बिहारी ने मधुकर शब्द का भी प्रयोग किया है जो स्व० बाबू राजारूपदासजी के विचार में शोकदा के सुयोग्य राजा मधुकटाह के उपयोग बंशवर की ओर सत्य करता है।

बहुकि बड़ाई घापनी कत रचित मतिदूत ।

बिहु मधु मधुकर के हिये गई न गुजर पूत ॥^७

श्री गौरीशंकर द्विवेदी ने बिहारी को केसवदास का ज्येष्ठ पुत्र तथा काशीनाथ मिश्र का पौत्र माना है^८। शङ्कोदास्य से बिहारी के सम्पर्क न रहने के विषय में द्विवेदी का कहना है कि केसव की मृत्यु के पूर्व बिहारी अधिकतर अपने नामा के ही यहाँ रहे। इसका कारण यह है कि बिहारी पर उनके नामा का जो कि ग्वालियर के दास-दास के किसी नाँव के रहने वाले ने बाध्यावस्था से ही अधिक प्रेम था।

१ जनम ग्वालियर जागिये लख बुनैने बान ।

तकड़ाई भाई सुख मधुरा मति सधुरास ॥

कविर विहारीदास ५ ॥

यह दोहा 'बिहारी रत्नाकर' तथा 'बिहारी-मूक शब्द' में नहीं मिलता है। पं० शोभनाथ द्विवेदी अन्य दोहे को निरासी-रत्न ही मानते हैं। वह बिहारी शब्दों में मधुराहीम कानकमल से मिले हैं तथा उनकी सधा में उन्होंने यह दोहा सुप्रकाश। (बिहारी वार्ता, पृ. १५)

विविध विस्मय प्रसन्न मित का कहना है कि यह बिहारी का ही रत्न कहा गया है। सम्भव है, वह उनके करिब के किसी भावकर का लिखा हो।

बिहारी पृ. ११२ (पाठ-विपरीत)

२ कविर विहारीदास ५ २।

३ यही २।

४ बिहारी रत्नाकर, अं. ३५५।

५ यही अं. १५।

६ यही अं. ३१।

७ यही अं. २८२।

८ कविर सटोम, प्रथम भाग, पृ. २५

टिबेटीजी का अनुमान है कि केदार की मृत्यु के उपरान्त भी बिहारी अपनी पिछा धारि क लिए बहुत दिनों तक वहीं रहे। वहाँ से भीटकर थोड़ा घाने पर रात-बरबार में बिहारी का उतगा मान चितना कि उनके पूर्वजों का होता जमा धामा या नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में टिबेटीजी ने कई कारणों का उत्प्रेष किया है। पहला यह कि बिहारी के बल जाने के पदचात किसी और कवि ने केरा डाला हो और बिहारी को भीटता देखकर उसने राग्य के कर्मचारियों धारि से मिसकर यह प्रयत्न किया हो कि बिहारी की पाक फिर से नजम मके। दूसरे, बिहारी के बंस-बरम्भरा के नैमज को देखकर कुछ सात इनसे बाह करने लगे हों और उन्हें इनका भीटना जमा हो। तीसरे, राज दरबार में बिहारी की कविता को पारखी रोप न रह गए हों और इनकी अपेक्षा किसी और अधोग्य अपित का सम्मान हो जमा हो। इस कारण बिबध हो स्वामिमान की रक्षा के निमित्त बिहारी को थोड़ा छाह देना पड़ा। इस अनुमान की पुष्टि में टिबेटीजी ने सतसई के कई दोहे उद्धृत किए हैं जिनमें से तीन यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं—

जिन दिन देखे थे पुसुम, पई नु बोलि बहार ।
 अब धनि, रही पुसाब में अपत कंठीली डार ॥^१
 मरतु प्यास पिजरा पयों मुधा समे के केर ।
 धारब दे है बोलियतु बाइसु बलि की डेर ॥^२
 बसो बाइ ह्रां को करे हाबिनु के ध्यावार ।
 नाहि जानतु, इहि पुर बसे थोबी थोड़ कुम्भार ॥^३

बिहारी का बीबे होना टिबेटीजी को माग्य नहीं है। वे इस विषय में कहते हैं कि यह तो हो सकता है कि बिहारी के नाता या समुरात बाने बीबे हों और क्योंकि उन्होंने अपना बाइकाल अपने नाता के यहाँ तथा तस्लाबस्था समुरात में बिताई थी अतः सम्भव है कि बिहारी का ठीन-ठीक इतिहास न मिसने के कारण लोगों ने धारके नाता या समुरात बाने महानुभावों के पटा (धात्यद) अनुसार आपको भी बीबे मान लिया हो क्योंकि सनाइमें में भी बीबे (धात्यद) होते हैं और मिमबंस के पुत्रों का बीबों के यहाँ म्याहा जाना सम्भव भी है। बज और ग्वालिपर की ओर उनके बंसजों के एक-दो नहीं धन भी इस-बीब सम्भव हैं। अतः यह भी सम्भव नहीं कि उनका उस ओर सम्भव न रहा हो^४।

बिहारी के निम्नलिखित दोहे—

जन्म ग्वालिपर जागिये धरब कुम्भेल बाल ।
 तस्नाई धाई सुबह मपुरा बलि समुरात ॥

१. लुहनि सरोज पृ० भा ६०-६१।
२. बिहारी ऊद्गच्छ, अं० २५२।
३. वही अं० २५३।
४. वही अं० २५६।
५. लुहनि सरोज प्रथम भाग, पृ० ६०-६१।

के विषय में द्विवेदी जी का कथन है कि फुटेरा ग्राम जिसमें बिहारी के बंसज प्रायः जी रहते हैं, भाँसी से दक्षिण की ओर ११ मील की दूरी पर है और 'फुटेरा पिछोर' के नाम से प्रसिद्ध है। भाँसी धीर उसके पास-पास के गाँव आसियर राज्य में बहुत दिनों तक रहे। सम्भव है उस समय उनके इस गाँव का सम्बन्ध आसियर प्रान्त से ही हो और इसलिये बिहारी ने ग्राम का नाम न लिखकर केवल प्रान्त का नाम लिख देना ही पर्याप्त समझा हो^१। इसके प्रतिरिक्त 'जनम लियो द्विजराज कुम' आदि दोहे के विषय में द्विवेदी जी का कथन है कि इसमें तो स्पष्ट रूप से ही उन्होंने अपने इष्ट देव धीर पिता को सम्बोधित किया है^२।

इस प्राप्ति के विषय में कि यदि केदार धीर बिहारी में पिता-पुत्र का सम्बन्ध होता तो कोई न कोई तो एक दूसरे के विषय में लिखता ही द्विवेदी जी ने लिखा है कि केदार से यह आशा करनी प्य है क्योंकि उन्होंने अपने से बड़ों का गुणगान तो अवश्य किया है पर अपने से छोटों का कहीं भी नहीं किया। यहाँ तक कि उन्होंने अपने अनुक कम्पाण के विषय में भी कोई विशेष बात नहीं लिखी है फिर पुत्रों के विषय में तो क्यों लिखने लगे थे। दूसरे, केदार की मृत्यु के समय बिहारी दक्षिण से दक्षिण कीस या बाईस बप के होंगे और उस समय उनकी प्रतिमा का विकास पूर्ण रूप से न हुआ होगा। यहाँ तक बिहारी का सम्बन्ध है द्विवेदी जी का कथन है कि उन्हें मूढी कुशाम्ब करना नहीं आता था। उनका सिद्धान्त कविता से दूसरों का उपकार करने का था कीर्ति कमाना नहीं। यहाँ तक कि बयसिह के लिए भी केवल दो-एक वास्तविक घटनाओं के विषयों के दोहों को जोड़कर उन्होंने कहीं उनकी प्रशंसा के दोहे नहीं लिखे और अपने लिए तो केवल एक ही दोहा 'जनम लियो द्विजराज-कुम सुबस बसे ब्रज धाई' आदि लिखकर ही संतोष किया^३।

केदार तथा बिहारी के ग्रन्थों की भाषा में वैषम्य होने के विषय में द्विवेदी जी कहते हैं कि केदार का सारा समय बुन्देलखण्ड में बीता और बिहारी का कुछ बुन्देलखण्ड में और दक्षिणकांश ब्रज में बीता। उसी के अनुसार उनकी कविताएँ भी हुई। इस पर भी बुन्देलखण्डी भाषा के ग्रन्थों लखिमी ब्योरति ज्यौहार आदि ने बिहारी का साथ नहीं छोड़ा। इस सम्बन्ध में उन्होंने पाषाणपुस्तक के समान ही बाबू योगानन्द तथा उनके पुत्र भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की भाषा की ओर ध्यान दिनाया है। ये दोनों प्राकृत्य एक ही स्थान पर रहे, तो भी उनकी भाषा में केदार और बिहारी की भाषा की तुलना में दक्षिण विषमता परिलक्षित होती है^४।

बिहारी के बंसज प्रायः तक अपने बंस का परिचय हिन्दी-बगत् के सम्युक्त नहीं रख सके हैं इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा है कि उन्हें बिहारी के बंसजों से पता चला है कि बिहारी की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रादि फुटेरा मोट प्राये थे,

१	मुझि छो-२, प्रथम पाण.	११।
२	वही	वही १२।
३	वही	१२-१२।
४	वही	१२-१३।

परन्तु बिहारी के परचात् उनके संबंधों पर एक प्रकार का भाव छा पड़ा और उनका रीसा रीसक न रहा । तभी से उनके बचप मोसे माने ग्रामबासी बनकर अपनी छाया रण एक मरि की खमीबारी पर ही शान्तिपूर्वक अपना जीवन-निर्वाह करते बने या रहे हैं और उन्हें इस सांसारिक उषस-पुष्प का कुछ भी पता नहीं है^१ ।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने विपक्षियों द्वारा उठाई गई आपत्तियों का निराकरण करते हुए अपने मत का समर्थन किया है ।

स्व० ब्रह्मदास रत्नाकरजी ने केदार और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध की सम्भावनाओं पर संवत् १९८४ और संवत् १९८७ वि की मायरी प्रचारिणी पत्रिकाओं में सिखे दो लेखों द्वारा यथेष्ट प्रकाश डालने का प्रयास किया है । उन्होंने अपने मत की पुष्टि में कई बातों का उल्लेख किया है । वे लिखते हैं कि बिहारी के सर्वप्रथम टीकाकार, हृष्टमास कवि ने जिनका बिहारी का पुत्र होना भी अनुमान किया जाता है, अपनी टीका में जो रत्नाकरजी के अनुमान से संवत् १७१९ वि० में समाप्त हुई, 'प्रमट भए द्विजराज-कुम' इत्यादि दोहे की टीका में लिखा है 'कैतो जो मेरो पिता और केसोराम जो श्रीकृष्ण पू' जिससे बिहारी पिता का नाम 'केसव' होना निश्चित होता है । रत्नाकरजी यह भी लिखते हैं कि इन बातों का समर्थन उक्त दोहे की 'अनवरचन्द्रिका' नामक टीका के इस वाक्य से भी होता है कि 'केदार केसराम बिहारी के बाप को नाम है । 'रसचन्द्रिका' 'हृष्टिकास' तथा 'मालचन्द्रिका' टीकाओं से भी बिहारी के पिता का नाम केदार होना सिद्ध होता है । रत्नाकरजी का विचार है कि इन ग्रन्थों तथा बिहारी के उक्त दोहे से यह भी सिद्ध है कि केदार बाह्यण से और स्वेच्छा से छोकर ब्रज में बसे थे^२ ।

इस विषय में डा० शीशिल का कथन है कि उक्त टीकाओं से प्रसिद्ध केदारदासजी का ही बिहारी का पिता होना सिद्ध नहीं जाता बल्कि 'अनवरचन्द्रिका' के वाक्य से तो रत्नाकरजी के मत के प्रतिकूल बिहारी के पिता का नाम 'केदार केसराम' होना प्रकट होता है^३ । इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि 'केदार केसराम' भी प्रसिद्ध कवि केदारदास से कोई मिल्न व्यक्ति नहीं जान पड़ते बिरोधत जब कि उनका समय भी वही निकाला गया है जो प्रसिद्ध कवि केदारदास का है ।

रत्नाकरजी ने बिहारी के कुछ दोहों और केदार के ग्रन्थों का मिसान करते उनके भाव एवं छन्द-साम्य के आधार पर प्रसिद्ध कवि केदारदासजी से बिहारी का कोई न कोई सम्बन्ध होना और बिहारी द्वारा केदार के कविप्रियादि ग्रन्थों का पढ़ना लिखा है^४ । इस सम्बन्ध में रत्नाकरजी ने जो छन्द अपने लेख में उद्धृत किए हैं उनमें से कुछ पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं—

१ शुद्धि स्रोत प्र भा १० ६३ ।

२ भा० प्र ५ भाग ८ संवत् १९८४ पृ ८८ ।

३ आचार्य केदारदास पृ ३८ ।

४ भा प्र० ५ भाग ८, सं १९८४, पृ १०८ ।

- १ घर मानिक की घरपत्नी उहल धरतु हय बागु ।
घनफनु बाहिर जरि मनी विपदिय को धनुरागु ॥^१
सोहत है घर में भवि यों मनु ।
आनिक की धनुरागि रह्यो मनु ॥
सोहत जगरत राम घर देखतु सितको भाग ।
आय मयो ऊपर मनो आनर को धनुराग ॥^२
- ५ वे ठाढ़े जमवाहु उत जल न मुझे बड़वापि ।
जाही सों माग्यो हियो, वाही के हिय मावि ॥^३
मेरो मुह बूमि सीरी पुरी साब बूमबे की,
घाढ़े घोस घोसु क्यों री रात प्यास ठाढ़े हैं ।
छोटे छोटे कर कहाँ छुवन छबीनी छाठी
झबावो पाके झबावबे के अभिसाव बाढ़े हैं ।
देसन को घाई हौ तौ बेसो बंसो केसियत
केसवदास की सों तैं वे दोस बीन बाढ़े हैं ।
फूमि फूमि भेदति है सीखि कहा मेरी भद्र,
भेदें किन आय के वे भठबे को ठाढ़े हैं ॥^४

ऊपर दिये हुए श्रव्यों के साक्षर्य के विषय में रत्नाकर जी लिखते हैं कि इस साक्षर्य से यह तो निश्चित ही प्रतीत होता है कि बिहारी ने केसव के श्रव्यों को पढ़ा था। दूसरा प्रश्न यह है कि उन्होंने इन श्रव्यों को कुम्हेशचन्द्र में ही पढ़ा या कहीं अन्यत्र। 'रामचन्द्रिका' तथा 'जबिप्रिया की समाप्ति' संवत् १६५८ तक हुई थी। यदि बिहारी का २०-२५ वर्ष की आयु में इन श्रव्यों को पढ़ना मान लिया जाय तो उस समय तक उक्त श्रव्यों को बने ११ या २ वर्ष से अधिक न हुए थे। उस समय न तो छात्रों का प्रचार या प्रीर न माना की सुविधाएँ ही प्राप्त थीं। इसके प्रतिरिक्त कुम्हेशचन्द्र में अनेक प्रकार के उपद्रव भी विद्यमान थे। ऐसी स्थिति में इतने बड़े समय में लिखते लिखाते किसी गण श्रव्य का धोखा दे ब्रह्मचर्य प्रवर्धन संन्यासी तक पहुँचना और उसके पठन-पाठन का वहाँ प्रचार हो जाना यदि असम्भव नहीं तो दुस्तर अवश्य था। इस कारण रत्नाकरजी का अनुमान है कि बिहारी के केसव के इन श्रव्यों के कुम्हेशचन्द्र ही में पढ़ने की अधिक सम्भावना प्रतीत होती है, विशेषता ऐसी परिस्थिति में जब कि उनका सङ्कलन में वहाँ रहना कहा मुना जाता है^१।

१ बिहारी रत्नाकर भाँ १५६।

२ टी० बी० प्र ३, भाँ २४-२५।

३ बिहारी रत्नाकर भाँ १८२।

४ टी० प्र ३, भाँ १०।

५ भा० प्र ५ भाग ८ पृ० १६५४ व १६५५।

इस अनुमान के विषय में डाक्टर दीक्षित ने लिखा है कि बिहारी के केसर के प्रयोगों को कुम्भेलखण्ड में पढ़ने से केसर तथा बिहारी का पिता-पुत्र-सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। बिहारी का कुम्भेलखण्ड में बचपन बीतना प्रसिद्ध है। सम्भव है, किसी समय बाद में वे कुम्भेलखण्ड आये हों वहाँ उन्होंने इन प्रयोगों को पढ़ा हो^१। बिहारी के केसर के प्रयोगों को कुम्भेलखण्ड में पढ़ने से केसर तथा बिहारी का पिता-पुत्र-सम्बन्ध स्थापित नहीं होता यह ठीक है किन्तु किसी निम्नलिखित प्रमाण के प्रभाव में बिहारी का किसी समय बाद में कुम्भेलखण्ड में आना सम्भवा-मान्य है।

बिहारी के एक दोहे में 'पातुरराज' शब्द^२ के आने से रत्नाकरजी का कहना है कि इस दोहे से बिहारी का बचपन में 'प्रवीणराय' पातुरी का गुरु देखना सिद्ध होता है। प्रवीणराय पातुरी का गुरु देखना इसके लिए बिना महाराज इन्द्रबीरसिंह की समा में यद् अलम्बन का। उन दिनों राधापों की समा में प्रवेश पामा बिना किसी विशेष सहायता के दुष्कर था। अतः रत्नाकरजी का अनुमान है कि बिहारी के पिता की पहुँच प्रसिद्ध केसरदास तक थी जिनके साथ बिहारी बचपन में महाराज इन्द्रबीरसिंह की समा में आते-जाते थे^३।

रत्नाकर के इस अनुमान का कोई सबम आधार नहीं जान पड़ता है। 'पातुरराज' शब्द 'प्रवीणराय' के लिए ही आया है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

केसर और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध पर विचार करते हुए रत्नाकरजी ने एक 'बिहारी विहार' नामक बोद्धान्तर मिश्रण का भी उल्लेख किया है जिसमें बिहारी का जीवन-वृत्त दिया हुआ है (भा० प्र० प० भाग ८, पृ० ६०-६२)। यह मिश्रण इस ढंग से लिखा गया है मानों बिहारी ने स्वयं रचना की हो किन्तु उसकी भाषा समीक तथा छन्द ऐसे अनन्य हैं जिससे इसका बिहारी द्वारा रचित होना सम्भव नहीं है। दूसरे, कुछ वाक्य संदिग्ध हैं। इस मिश्रण में बिहारी का जन्म संवत् १६२२ वि० अथवा संवत् १६२४ वि० की कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार का बताया गया है^४ तथा संसार-त्याग संवत् १७२१ वि० चैत्र शुक्ला अष्टमी सोमवार का^५। परन्तु गणना से विदित होता है कि संवत् १६२२ वि० कार्तिक की शुक्ला

१ अन्तर्य केसरदास, पृ० ४०।

२ सब धर्म करि राखी सुगर बादक नैह सिद्धाद ।

रसजुत नैति भगन्त मति पुतरी पातुर-राज ॥

बिहारी रत्नाकर, पृ० १८७।

३ भा० प्र० प०, भाग ८ पृ० ६२-६४।

४ संवत् पुन घर रस सहित मुनि दीप्ति जिन लीन्ह ।

कार्तिक शुक्ल अष्टमी जन्म हमहि विनि दीन्ह ॥१०॥

भा० प्र० प०, भाग ८ पृ० ६२।

५ संवत् सिद्धि संवत्क जसवि सधि मनुमास बजान ।

शुक्लपक्ष की अष्टमी सोमवार शुभ जान ॥४०॥

भा० प्र० प०, भाग ८ पृ० ६२।

सष्टमी बुधवार तथा संवत् १९३८ वि० में छनिवार की भी और संवत् १७२१ वि० की भी शुभला सप्तमी बुधवार की थी। इसके अतिरिक्त चारपक्ष में सबसे का निर्माण ११ वर्ष की आयु में बिहारी का बुन्दावन में रहना चाहिए बटनार्थ यदि सम्भव नहीं तो पुर्बट अवश्य है। रत्नाकरजी का विचार है कि इन सम्बन्ध बातों के होते हुए भी अधिकतर बातें सच्ची जान पड़ती हैं जैसे कुम जाति पिता पुत्र इत्यादि का कवन बुन्दावन जाना हरिदासी सम्प्रदाय का अनुयायी होना अस्तिम अवस्था में विरक्त होकर बुन्दावन में रहना तथा जन्म-मृत्यु संवत्^१।

इस निबन्ध के अनुसार माधुर जीबे प्रायः श्री स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय के अनुयायी होते हैं यद्यपि रत्नाकरजी के अनुसार बिहारी के पिता का भी उक्त सम्प्रदाय का सेवक होना संगत है। उनका विचार है कि उक्त ग्रन्थ में ११ वर्ष की आयु में बिहारी का अपने पिता के साथ बुन्दावन नागरीदासजी के पास जाना निश्चय में लेखक का कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। यद्यपि बुन्दावन और नागरीदास क्रमशः कुछी ग्राम और नरहरिदास के स्थान पर भूत से कहें माने जाय तो बिहारी के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है कि वे अपने पिता के साथ ११-१२ वर्ष की आयु में संवत् १९९२-१९९३ वि० में श्री नरहरिदासजी के पास गये थे जो उस समय निचिबन के महन्त श्री सरसदेवजी के सिष्य हो चुके थे। नरहरिदासजी ने बिहारी की बुद्धि से प्रसन्न होकर उनके पिता से उन्हें वहीं रहने के लिए कहा। उनके पास बहुत से पवित्र कवि महात्मा रहते तथा धामा-धामा करते थे। बिहारी वहीं रहकर विद्याभ्यास करने लगे। श्री नरहरिदासजी वचन से महात्मा सिद्ध हो चुके थे, यद्यपि जान पड़ता है कि शोकछ के राजा इन्द्रजीत तथा केसवदास भी उनके पास आते-जाते थे। नरहरिदासजी के पिता से शोकछ के राजा का व्यवहार होना 'निबन्ध सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ से ज्ञात भी होता है। इस कारण रत्नाकरजी का अनुमान है कि नरहरिदासजी ने केसवदासजी से बिहारी को पढ़ाने का अनुरोध करके उनके साथ कर दिया और फिर बिहारी और उनके पिता उनके साथ रहने लगे। बिहारी की बुद्धि से प्रसन्न होकर केसवदासजी उन्हें अपना पुत्रवत् मानने तथा सिखा देने लगे^२।

रत्नाकर के उक्त कवन का आधार यह अनुमान है कि सम्भव है बुन्दावन और नागरीदास क्रमशः कुछी ग्राम और नरहरिदास के स्थान पर भूत से निकले हों किन्तु यह अनुमान निराधार ही जान पड़ता है।

रत्नाकरजी अपने लेख में एक स्थान पर लिखते हैं कि बिहारीदास के पितामह का नाम बसुदेव तथा प्रसिद्ध केसवदास के पिता का नाम काशीराम होता, एवं बिहारीदास का भी रत्नाकर उक्त केसवदास का सहाय्य होता इन दो वीरपुत्रों के अतिरिक्त अन्य कोई बात ऐसी नहीं लिखाई गयी जो बिहारी के प्रसिद्ध केसवदास के पुत्र मानने में बाधा डालती हो अत्युक्त और जितनी भी बातें हैं वे उक्त अनुमान

के अनुकूल ही हैं जैसे केशवदास तथा बिहारी के समय तथा नाम बिहारी का बचपन में बुन्देलखण्ड में रहना केशवदास के ग्रन्थों से मली भाँति परिचित होना, प्रबीरराम पाहुरी का मृत्यु देखना केशव के बंसजों के समान ही पवित्र तथा उच्च कोटि की काव्य-प्रतिभा से सम्पन्न होना इत्यादि^१ ।

जाति के वैषम्य को रत्नाकरजी यह कहकर दूर करते हैं कि एक प्रकार के बीबे समाज्य बीबे भी कहलाते हैं^२ । इस विषय में डा० दीक्षितजी का कथन है कि इससे केशव तथा बिहारी का जाति-वैषम्य दूर नहीं होता । केशव मित्र आस्पद सनाइन बाह्यण के और यदि बिहारी सनाइन भी थे तो मित्र आस्पद न होकर बीबे प्रसिद्ध हैं । यद्यपि पिता-पुत्र का मित्र आस्पद नहीं हो सकता^३ । डा० दीक्षित के उत्तर में हमारा नम्र निवेदन है कि बिहारी मित्र नहीं बीबे के इसका ही क्या प्रमास है ? बिहारी ने कब और कहा अपना मधुरा का बीबे होना कहा है ? दूसरे, मधुरा के बीबों में मित्र भी तो होते हैं । इस प्रकार पिता-पुत्र के मित्र आस्पद होने का प्रसङ्ग ही नहीं उठता ।

केशव ने अपने पिता का नाम काशीनाथ बतलाया है परन्तु उक्त दोहा बड़ निबन्ध में बिहारी के पितामह का नाम बसुदेव दिया गया है^४ । इस वैषम्य के सम्बन्ध में रत्नाकरजी का विचार है कि 'बिहारी-बिहार' नामक निबन्ध में बिहारी के पितामह का नाम बसुदेव दिया होना कुछ ऐसा प्राभाणिक नहीं माना जा सकता है कि उनके आगे सब बातें नम्र समझी जायें । रत्नाकरजी का कहना है कि उक्त निबन्ध बिहारी-विषयक अनेक वृत्तान्त बताने वाले का सिद्धा प्रबन्ध जान पड़ता है किन्तु उसमें बहुत सी बातें भिन्नने वाले की गड़ी हुई भी निरस्येह हैं । ऐसी अवस्था में उक्त निबन्ध में बिहारी के पितामह का नाम बसुदेव देखकर, यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि बिहारी के पिता सुप्रसिद्ध केशवदास से भिन्न ही थे क्योंकि केशव ने अपने पिता का नाम स्वयं काशीराम लिखा है । रत्नाकरजी का अनुमान है कि जिस वृत्ता में केशवदासजी जब में आ गये उस वृत्ता में वे सम्भवतः अपनी पूर्वस्थाति को धिया कर रहे होयें । उस हीन वृत्ता में उन्होंने अपने को सबसामारण में छोड़के वाले महान् कवि बताना उचित न समझा होगा । दूसरे उनको बीरसिंहदेव की आज्ञा गंगा-तट पर बास करने की थी और वे एक व्रज में गए थे । यद्यपि उनके हृदय में उस बात का चटका भी रहा होना कि कहीं उनका गंगा-तट न आना सुनकर, बीरसिंहदेव उनके भड़के को प्रदान की हुई वृत्ति बन्द न कर दें । ऐसी स्थिति में बहुत सम्भव है कि उन्होंने अपने को धियाने के निमित्त अपने पिता का नाम प्रकाशित न किया हो और किसी महाशय के आग्रह

१ भाष्य प. ११५ व. ११५४ व. १२४ ।

२. गरी, गरी, गरी, गरी ।

३ आचार्य केशवदास पृ. ४२ ।

४ मम विदुषः पदविष ३ पिता तु केशव देव व३॥

पर, कहापितृ इस साम्य से कि केदार गंगानाथ के पिता का नाम बसुदेव था, बसुदेव ही वतसा दिया हो^१ ।

रत्नाकरजी लिखते हैं कि केदारनाथ जी की यही धारमगोपन की सम्भावना उन लोगों के उत्तर में भी कही जा सकती है जिनका यह कहना है कि यदि बिहारी सुप्रसिद्ध कवि केदारनाथ के पुत्र होते तो यह बात परम्परा से विख्यात होती और बिहारी भक्तवा कुसपति मिश्र ने कहीं न कहीं इसका स्पष्ट उल्लेख किया होता । रत्नाकर जी का विचार है कि यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो संकेत से बिहारी और कुसपति मिश्र दोनों ही कवियों ने कसब अपने पिता एवं पितामह का प्रसिद्ध कवि केदारनाथ होता कह दिया है । बिहारी का अपने पिता का नाम संकीर्तन-नाथ कर देना उनके पिता का कोई परम प्रसिद्ध कवि होना व्यक्तित्व करता है और कुसपति मिश्र का उनको कविपर कहना तो स्पष्ट ही उनका मोड़छे नामे प्रसिद्ध कवि होना प्रकट करता है क्योंकि यहाँ तक विवक्षित हुआ है उस समय केदार-नाथवादी और कोई कवि विख्यात नहीं था^२ ।

वहाँ तक रत्नाकरजी की उक्त धारमगोपन की संभावना का सम्बन्ध है, डा० बीमल ने लिखा है कि यह उनकी कल्पना-मात्र है । उनके विचार से बसुदेव बीरसिंहदेव ने केदार को गंगा-तट वास की आज्ञा न दी थी बल्कि रत्नाकरजी ने लिखा है, प्रत्युत कुछ कारणों से केदार के हृदय में संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया था और वे अपनी इच्छा से ही गंगा-तट वास चाहते थे । बीरसिंहदेव के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए ही केदार ने उनसे आज्ञा माँगी थी जो उन्हें सर्वप्रधान की गई थी । अतएव यदि किसी कारणवश वह गंगा-तट न जाकर जहाँ में हो सक गए तो बीरसिंहदेव द्वारा उनके पुत्रों को दी गई वरिष्ठ के बन्ध किए जाने की आज्ञाका निर्मूलक है^३ ।

केदार और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध का समर्थन करने वाली कुछ और बातें भी रत्नाकरजी ने बतलाई हैं । संवत् १९९२ वि० में धकबर की मृत्यु के उपरान्त यहाँगीर ने बीरसिंह देव का सम्पूर्ण कुलेश्वर्य का राज्य दे दिया और रामशाह के विरुद्ध जो उस समय बीरसिंह के राजा थे बीरसिंह की सहायता के लिए कुछ अपने दरबार एवं सेना भेजी । प्रेमा नामक एक व्यक्ति को कुटिलता एवं राम शाह की कन्यासुखे रानी की हठ के कारण केदार के सन्निध करने में सफल न होने पर युद्ध आ जिसमें विजय बीरसिंह के हाथ लगी । इनके साथ ही रामशाह का पराजित होकर बाघशाह (धकबर) से मिलने के लिये दिल्ली को प्रयास करना इन्द्रबीरसिंह का युद्ध में नाश होना धारि बटमाई 'बीरसिंहदेव चरित' से ज्ञात होती है । यह ग्रन्थ संवत् १९९३ वि० के प्रारम्भ में समाप्त हुआ था । विजय के बाद का कुछ वृत्तान्त इस ग्रन्थ में नहीं दिया है । अतः यह विदित नहीं होता कि फिर

१. जल० प्र० पृ० १२५४ पृ० १२४ ।

२. वही, वही, वही, पृ० १२४-१२५ ।

३. आचार्य केदारनाथ, पृ० ४३ ।

रामदाह और इन्द्रजीत की नया व्यवस्था हुई और केराव पर पना बीती । केराव के विषय में रत्नाकरजी का अनुमान है कि युद्ध के पश्चात् केरावदास मर चुके होंगे । थोड़े ही में, परन्तु उस पर राधा और उनके कर्मचारियों की दृष्टि कुर पड़ने लगी । उनकी वृत्ति आदि छिन्न थी और वे सामान्य ब्रमा के समान कुछ दिनों तक अपना जीवन व्यतीत करते रहे । केरावदास पण्डित व्यवहार-कुसल तथा समा-चतुर ने और उबर वीरसिंहदेव भी वरम ब्रह्मण्य गुण-दाहक तथा उदार-चरित ने अनेक धर्म-धर्म-कृत्य भक्त-मित्रादि हो गये । यद्यपि केरावदासजी की पहली-सी प्रविष्टा तो न हुई, पर वे राज-सभा में धामे-जाने लगे । संवत् १६६७ वि० में उन्होंने अपना ग्रन्थ 'विज्ञानपीठा' को कदाचित् वे पहले ही से रख रहे थे समाप्त करने की रीतिहरेव को समर्पित किया । उक्त ग्रन्थ के अन्त के तीन पोंहों से विदित है कि केरावदासजी को या पाँच इत्यादि भिन्ने वे वे छिन्न गए थे और उनकी प्रार्थना पर फिर उनकी सन्तान को पुन-पदवी-सहित दिये गए । यह भी विविक्त होता है कि उनकी एक से अधिक सन्तान थी क्योंकि दूसरे पोंहे में 'वासकनि' पद बहुवचन है । इस आधार पर रत्नाकर जी का विचार है कि बिहारी के या एक भाई और एक बहिन बनाए जाते हैं यह बात भी केरावदास के उनके पिता होने के विरुद्ध नहीं है । केरावदास जी ने भीरुछा तो संवत् १६६७ के कुछ दिनों बाद अवश्य छोड़ दिया पर सात होता है कि यदि वे अस्तुत् बिहारी के पिता थे तो वे अपने व्येष्ट पुत्र को तो माइसे की वृत्ति पर छोड़ गए और अपने अनिष्ट पुत्र तथा कन्या को, जो सब सन्तानों में छोटी थी साथ लेकर संघा-संघा कर वास करने के निमित्त चले गए । रत्नाकरजी का अनुमान है कि सोरों घाट को उन्होंने अपने निवास के लिए सोचा था किन्तु पद में ब्रज पड़ने के कारण वहीं ठहर गए । चित्त में उपराम तो था ही बस फिर महारामा नरहरिदास जी के गुरु महात्मा सरसदास से परिचित होने के कारण उनके पास अधिक धाने जाने लगे और कदाचित् उनका शिष्य नागरीदास जी के स्थान ही में ठहर गए हों तो कुछ आश्चर्य नहीं ।

'वासकनि' अर्थात् केरावदास पर रत्नाकरजी का यह कहना कि बिहारी के एक भाई तथा एक बहिन बनाये जाते हैं, यह बात केराव के उनके पिता होने के विरुद्ध नहीं है सभीथीन नहीं बचती क्योंकि इस धर्म से केराव इतना ही पठा चलता है कि केराव के एक से अधिक सन्तान थी किन्तु यह नहीं ज्ञात होता है कि उनके या ही पुत्र से प्रबन्ध हो से अधिक । इसके अतिरिक्त, इस धर्म से केराव का आशय कन्या से भी है इस विषय में भी कुछ नहीं कहा जा सकता । अनुमान नहीं होता है कि केराव का आशय कन्या के लिए नहीं हो सकता क्योंकि कन्या को वृत्ति देने का प्रण उपस्थित नहीं हो सकता । इस प्रकार ओझसा छोड़ने के पश्चात् केराव का अपने अनिष्ट पुत्र तथा कन्या के साथ ब्रज में जाना यदि काने रत्नाकरजी की कल्पना-मान जाय पड़ती है । संघा-संघा के लिए सोरों घाट की कल्पना करने का भी कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता ।

कुसुमपति मिश्र ने जो यह बोझ संग्रामसार^१ में लिखा है—

कबिबर मातामह सुमिरि कैसो कोसोराह ।

कहौं कथा भारत को भाषा छन्द बनाइ ॥

उससे हमके मातामह तथा बिहारी के पिता का कोई प्रसिद्ध 'कबिबर' होना सिद्ध होता है। रत्नाकरजी का कथन है कि वहाँ तक विरित है उस समय प्रोफ़ेसर बामे केशवदासजी को छोड़कर अन्य कोई ऐसा केशव नामक प्रसिद्ध कवि नहीं था जो कुसुमपतिजी का मातामह होना और जिसकी सम्मान कुसुमपतिजी ऐसा पम्बित एवं कवि ऐसी बड़ा से करता। अतः कुसुमपतिजी के बोझ में भी केशव से प्रसिद्ध कवि केशवदासजी ही का मर्याद करना अधिक संगत प्रतीत होता है^२।

रत्नाकरजी का यह उक्त विचारणीय है।

देवकीमन्त्रन वाली टीका में यह दिया हुआ है कि बिहारी की पत्नी बड़ी कवि थी और सतसई की रचना उसी ने की थी^३। रत्नाकरजी ने लिखा है कि इससे इतनी बात तो अवश्य धार्कवित होती है कि वह काव्य करती थी। 'मिस्रबन्धु विनोद' में 'केशव-पुन-बधू' नाम से एक स्त्री-कवि का उल्लेख है और उसकी कविता का 'संग्रहसार' ग्रन्थ में उपलब्ध होना बतलाया गया है। रत्नाकरजी का कथन है कि क्या आश्चर्य है जो वह त्रिपुरी बिहारी की ही पत्नी रही हो। यदि यह बात समाप्ति हो सके तो यह भी बिहारी के प्रसिद्ध केशवदास के पुत्र होने का पोषण करती है^४।

वीरचंकर द्विवेदी ने अपने 'मुन्देस-बीमर' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि 'केशव-पुन-बधू' के पति अन्धे बंधु थे जिन्होंने 'बेधमनोरथ' ग्रन्थ रचा था^५। केशव के पूर्वजों में छड़ी पीढ़ी में कोई माऊराम हुए हैं जिन्होंने 'भावप्रकाश' नामक एक प्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थ बनाया था। इस कारण पैतृक-रूप में केशव के बंधु में वैष्णव का साधारण ज्ञान ज्ञान ज्ञान और कालान्तर में अपने बंधु के पैतृक व्यवसाय का पुनरावृत्ति करना कोई असम्भव बात नहीं है।

केशव और बिहारी के पिता-पुन-सम्बन्ध के सीधे पोषक हैं श्री चन्द्रबसी पाण्डे। अपने मत की पुष्टि में पाण्डेजी ने कई बातें लिखी हैं। आपने लिखा है कि श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने जिस मोटी बात का कि बिहारी भापुर चौबे ने और केशवदास ने मिश्र उल्लेख किया है वह वस्तुतः मोटी ही है। उसके मूल में परम्परा के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं है। उनका कहना है कि बिहारी मिश्र नहीं चौबे ने

१. यह छन्द केशव को मकल करने पर भी उपलब्ध न हो सका।

२. भा. प्र. प. भाग ८, संस्करण १९५४, पृ. १२४।

३. मिश्र बिहारी द्वारा जो मर्यादती सुसूचित।

छा. त्रिपुरी की कविता निपुण सतसई विहि कीन ॥

भा. प्र. प. भाग ८, संस्करण १९५४, पृ. १२४।

४. भा. प्र. प. भाग ८, संस्करण १९५४, पृ. १२४।

५. मुन्देस ई.स. १९५४ भाग १, पृ. २२९।

इसका किसी के पास प्रमाण क्या ? बिहारी ने कब और कहाँ अपने को 'मधुरा का शीश' कहा है ? फिर मधुरा के शीशों में मिश्र भी तो होते हैं। रही 'जम्म-भूमि' और 'समुरास' की बात तो उसके साथ कुन्देलसख (घोड़छा) है ही फिर इतना प्रमाण क्यों ?^१

श्री बरौडप्रसाद द्विवेदी ने जो यह लिखा है कि इस बात का कहीं से भी प्रमाण नहीं मिलता कि केदार कभी भी ग्वासिमर में रहे हों इस विषय में पाण्डेजी लिखते हैं कि केदार के पूर्वजों को पहले ग्वासिमर में सम्मान मिला और फिर घोड़छे में। गोपाचलमण्ड पुर्वपति तिनके पूजे पायें तथा 'तोमरपति' तबि और छों मूल न घोड़्यी हाय' में यही तो दिखाया गया है। केदार की दृष्टि में गोपाचलमण्ड का कोई गढ़ नहीं है। इसकी ध्यान में रखते हुए, गोपाचल (ग्वासिमर) में केदार का कितना बनाव का यह तो स्पष्ट नहीं हो सकता पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि वह इतना अवश्य था कि वहाँ उनके पुत्र उत्पन्न हो सकता था। उनका अनुमान है कि क्या यह सम्भव नहीं कि यहाँ बिहारी के पिता की समुदाय रही हो और अपनी तनिहास में ही बिहारी का जन्म हुआ हो ?^२

बिहारी का जन्म ग्वासिमर में हुआ हो तो ठीक पर वास्तविक कुन्देलसख में ही बीठा प्रार्थ पावन कुन्देलसख में ही हुआ हो क्यों ? इस सम्बन्ध में पाण्डेजी ने लिखा है कि निश्चय ही कुन्देलसख में बिहारी का कोई रहा होना। तो क्या उसे केदारवास नहीं कहा जा सकता ? इस प्रसंग में वे इतना और भी कहते हैं—

श्री नरहरि नरनाह को बीनी बहू गहराह ।

सुमुन-आगरे आगरे, रहत माह लुलु पाह ॥

जिसके आधार पर उन्होंने बिहारी का सम्बन्ध आगरे से भी स्थापित किया है। इसका कारण उन्होंने यह बतसाया है कि किसी 'नरहरि' ने किसी 'नरनाह' को उन्हें सीप दिया था। पाण्डेजी के विचार से श्री नरहरि हैं 'नरसिंह' अथवा 'बीरसिंहदेव', जिसे मुगल इतिहास-लेखक तथा 'नरसिंह' ही लिखते हैं। अपने इस मत की पुष्टि में वे स्वयं बीरसिंह के ही प्रति स्वयं केदार के कथन को उद्धृत करते हैं—

दुस नरहरि नृप कीर्ने नाहु । कही कौन पर मेरे जाहु ॥^३

१ केदारवास पृ. ३।

२ केदारवास पृ. ७।

३ रत्नकरजी के अनुसार श्रीनरहरि का उक्ति है महात्मा श्री नरहरिदास को महात्म्य इतिहास श्री शिष्य-कर्मदा में वे और वरुण कुन्देलसख के रहने वाले थे। केदारवास, पृ. ८।

४ रत्नकरजी के मत में नरनाह का अर्थ 'राजपूत' है।

५ श्री दे० पृ. ५०-७९।

६ रत्न कर पर तो पाण्डेजी ने 'नरसिंह' का प्रयोग स्पष्ट ही 'बीरसिंह' के साथ कुछ दिखाया है। उद्धृत—

राजा बीरसिंह नरसिंह बीरसिंह

बीरसिंह कुसुह दुस वास्तु बिहारिये ॥

(श्री दे० पृ. १०-११) केदारवास, पृ. १०।

धीर मरनाथ से उनका संकेत है जहाँगीर, जो वस्तुतः उस समय का शासक था । उनका कहना है कि यह परिचय कामरामा भन्सुरहीम को दिया जा रहा है जो केसवदास के मित्र धीर मृगम बरवार के घर से धीर राखकुमार नीरजहंस से भसी भाँति परिचित थी । जहाँ तक रॉगरहूर का सम्बन्ध है पाण्डेजी ने लिखा है कि यह कहा नहीं जा सकता कि कामरामा जहाँ तक उनसे अभिन्न थे जो बिहारी ने इस प्रकार उनका नाम लिखा^१ ।

केसव का स्वयं से सम्पर्क कैसे हुआ इसका अनुमान पाण्डे जी के अनुसार हो क्यों में किया जा सकता है । एक तो यह कि वे मिथवा में फिर जाने धीर भुवन के हम्ह इन्वबीठ के उलझ जाने पर मगुठ में जा रहे । कारण क्याचित् यह था कि वही उनके पुत्र की संसारा भी । धीर वृत्त यह कि स्यात् बीरचिह्न देव ने जब प्रसिद्ध केसवराज के मन्दिर का निर्माण किया तब इन्हीं केसवदास को उसकी देख रक्ष का भार दीया । इस प्रकार उनको स्वयं भी नहीं मिला धीर उनका देख-निकासा भी हो गया^२ ।

बिहारी के 'प्रबल मए हिकराज कुल' शब्दों में टीकाकारों एवं विद्वानों ने जो बिहारी के पिता 'केसव' अथवा 'केसवराज' का वर्णन किया है धीर कृष्ण ने जो उन्हें प्रसिद्ध केसवराज माना भी है, इस विषय में चर्चा करते हुए पाण्डेजी ने निम्नलिखित कृष्ण विनका चरित्र पं० विष्णुनाथप्रसाद मिश्र ने भी किया है^३ उद्धृत किए हैं जिनमें 'केसो केसोराज' की स्वतन्त्र रूप है—

जानी कठपौड़ी मरपटी लथ बाँते कहे,
लठपटी नई बाँति प्राण लये पिय में ।
'केसो केसोराज' कहे बारक बिमोहि धायो,
लथ ही से बैयियो न बियो रह्यो हिय में ॥
पान कहै पान कर, पान हाव-पाइ नई
अमय के अमय न मुनि रही लिय में ।
धीरो बाँति लस्यो करे, लस्यो बाँति धीरो करे,
दुख न अमायो जाइ नैकु बाँध्यो लिय में ॥
लोक-जोड़ रहे नाहि, लाल न लहर लामे
कुल घर-बाइपी, बिलीनी हो नसतु है ।
अपबन्ध-बोध धाली । नैकु लखवाइ नाहि
बाली परबाहु पान लीने की हंसतु है ॥
'केसो केसोराज' पेंड पेंड पर भेंड होति,
जबियो कहाँ लें, जब-बीचिन बसतु है ।

१ केसवदास, पृ० ७-८ ।

२ केसवदास, पृ० १२ ।

३ बिहारी की कविशक्ति, अध्याय ५० २-४ ।

भनि-मोरचण्डिका, यथापि बिभु बांसुरी सो

फारो डोरा काहू की है कारे की इसतु है ॥

को बरजे गयी लैहक घासुरी मीन के भीतर मेसि मझी ही ।

कमल जान गई कनकी सरिकापन से भी लीं बंस बझी ही ॥

रेकते 'केसव केसवराह' तो है, निपुर्न बंड कोक पझी ही ।

छुटी उतें बजर कितहूँ, हहि बामक बाकु ऐवान बझी ही ॥

लैहपी काहू के प्रान न लैहू हो, ऐसे बिना कहां नाब कझी ।

नोपी गई तुम हो गयी मारि, कहा तुम सी बिबि छिर मझी ॥

'केसव केसवराह' बुरी धुनि लोप तिहारोई नाब रझंगो ।

बंठी रही घरपालनहारि बटान बझी कोऊ सुझ बझंगो ॥

उनका कहना है कि छन्दों की छाप यदि केवल केसव ही रहे तो भी ग्रंथ में कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती । केसव ने सम्भव भी 'केसव केसवराह' का एक साम प्रकाश किया है । उनका दिया हुआ एक छन्द यहाँ उद्धृत है—

सुन्दर सेस सरोवर में कण्ठाटक हाटक की बुति कोहे ।

तापर भीर मनो मनरोचन लोकविमोचन की रवि रोहे ॥

बेबि गई उपमा जलमेबिनी धीरघ बेबन के मन मोहे ।

केसव केसवराय मनो कामललन के सिर ऊपर सोहे ॥^१

पाण्डेजी के विचार से केसवदास ने केसव केसवदास और केसवराय की छाप से कविता की है किन्तु इनमें 'केसवराय' पर जैसा उनका ध्यान रहा है वैसा 'केसव' तथा 'केसवदास' पर नहीं । उनका कहना है कि एक तर्ही अनेक स्वतों पर इस छाप से विशेष काम लिया गया है । 'केसवराह की छों' तो उनके सब सामान्य बात ही हो गई है । इसके प्रतिरिक्त भी केसवराय का प्रयोग बहुत से स्वतों पर इस दृष्टि से हुआ है कि उसका अर्थ कवि धीर दुष्ण दोनों का दोषक हो^२ । इस सम्बन्ध में पाण्डे जी ने दो छन्द प्रस्तुत किए हैं जिनमें से एक नीचे दिया जाता है—

धीतन हू धीतन तिहारे न बसत बहु

तुम न तजत तिल ताको उर ताप-मेह^३ ।

धापने जो हीरा को पराये हाथ जमनाथ ।

हेके तो धकाय हाथ में न ऐसे मन लैहू ॥

ऐते पर केसीराय तुम्हें ना प्रवाह बाहि

बहु बक लागी मानी तुज तुज सुख्यो ॥^४

माँकी मुक छाबी छिन छपन छबीले भाल

ऐसी तो मंवारिन सो तुझहूँ निबाहो लैहू ॥^५

^१ पृ० ४८ अ १२, अं० ४६ तथा की ६० अ ५ १२, अं० १० ३ १०६ (उम्मेद से) ।

^२ केसवदास पृ ६११ ।

^३ २० मि पृ० १२, अ १२ ।

यह पाण्डेजी का अनुमान है कि एक बार केदारनाथ को 'केदार केदारनाथ' की सूझी तो वो-पार अन्ध ऐसे भी बन गए। वहाँ तक 'केदार केदारनाथ' के समय का सम्बन्ध है, उन्होंने सिखा है कि जब कवि का समय भी वही (सं० १६२ वि० के लगभग—बिहारी की वाक्पिप्पुति उपक्रम पृ० ७-८) निकाला गया है जो प्रसिद्ध कवि केदारनाथ का है। यह यह मानने में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती कि वास्तव में जब अन्ध भी वही केदारनाथ के हैं (केदारनाथ, पृ० १२)।

पाण्डेजी बिहारी के निम्नलिखित बोहे—

प्रगट नए द्विजराज-कुल सुखस बसे बरब दाह ।

मेरे हरी कनेस सब केदार केदारनाथ ॥

की ओर ध्यान आकर्षित करत हुए लिखते हैं कि इसका अर्थ यदि 'केदार' और 'केदारनाथ' पर प्रसंग-प्रसंग पड़ाया जाय तो कोई बाधा उपस्थित नहीं होती और 'केदार केदारनाथ' की उसमूल भी सामने नहीं आती। साथ ही उन्होंने कुलपति मिश्र के निम्नांकित बोहे—

कविबर दातायह सुमिरि, केसी केसीराय ।

कहीं कना नारन्य को भाया कन बनाय ॥

(कुलपतिमित्री, सं० २६)

का भी उल्लेख किया है और कहा है कि प्रकृत बोहे में केदार केदारनाथ से प्रत्यक्ष नहीं हो सकते। इसके प्रतिरिक्त उन्होंने कुलपति मिश्र के नीचे लिखे एक और बोहे—

जो भाया नाम्नी बहुत रसमय सरल सुमय ।

बसिता केसीराय की ली साखी बिलु नाय ।

(कुलपतिमित्री, सं० २६)

को भी उद्धृत किया है और लिखा है कि यहाँ कुलपति मिश्र ने बिना रसमय सरल सुमय केसीराय का उल्लेख किया है वह कठिन कविता का श्रेष्ठ केदारनाथ ही है, इसकी मानने में लोगों को अभी पूरा अन्धेह होमा पर धारा है कि केदारनाथ के निजी सम्बन्ध से वह भीम हुए हो जायगा। कुलपति मिश्र के अपने दातायह का नाम 'केसी केसीराय' लिखने के विषय में पाण्डेजी ने लिखा है कि मिश्र ने यह नाम इसीलिए दिया है, जिससे उस समय के बुरे केदारनाथ (पहिराये बकुलर सुर बम्पति केदारनाथ समूर—वी० रे ४०, पृ० १८८) से बिलभाव हो जाय (केदारनाथ, पृ० २३)।

केदार और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में पाण्डेजी ने एक और बात का निर्देश किया है*। कुलपति ने बिहारी के विषय में लिखा है—

१. बड़े सब सुनि गूँचि तबै जब मेडहु दृष्टि दे मोते चितैह ।

भूमि में धीक बनावत मेरव पोषी सिये खबरो दिन बँह ॥

पुहाई फकाव की साँची कहीं बति पीठम तुमझ कई बँह ।

मामो ता मानो सबै मजिया सुठ कँहूँ ककानु ली ताहि पँह ।

—कुलपतिमित्री, सं० १११ ।

मौलि मौलि रचना सरस, बैचिरा क्योँ ब्यास ।

हो भाया सब कविन में विमल बिहारीदास ॥

(बुद्धिदरशिणी पृ० १०)

बिहारीदास की इस विमलता को पाण्डेजी उनके अध्ययन और अध्यवसाय का परिणाम बतलाते हैं। उनके विचार से इसी अध्ययन और इसी अध्यवसाय का उत्प्रेष केसव की पुनः-पुनः के प्रसिद्ध छन्द में है (केसवदास, पृ० २२) ।

इस प्रकार पाण्डेजी ने यथासंभव विपक्षियों के तर्कों का खण्डन करते हुए, अपने मत की पुष्टि सबस प्रमाणों द्वारा करने की चेष्टा की है। पाण्डेजी का यह प्रवास निःसन्देह स्तुत्य है।

केसव और बिहारी के इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में मत रखनेवालों में मिश्रबन्धु प्रथम हैं। बिहारी द्वारा एक दोहे में 'मधुकर' शब्द के (अर्थात् से) ओझड़े के मधुकरसाह को सूचित करते हुए प्रयुक्त किये जाने से स्व० बापू राधाकृष्णदास जी का जो यह अनुमान है कि बिहारी प्रसिद्ध कवि केसवदास के पुत्र हैं, इसके विषय में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि 'मधुकर' शब्द से मधुकरसाह का व्यक्त होना निश्चित नहीं समझा जा सकता। 'मधुकर' अमर को कहते हैं और यह एक बहुत ही साधारण शब्द है। अतः उनका विचार है कि बिहारी के पिता का नाम 'केसव' अवश्य था और वह ब्राह्मण भी थे किन्तु प्रसिद्ध केसवदास नहीं (हिन्दी नवरत्न पृ० १४३) ।

'जनम लियो ठिबराय कुल' आदि दोहे में आए हुए 'केसवराम' शब्द के विषय में मिश्रबन्धु लिखते हैं कि यह शब्द श्रीकृष्ण के लिए आया है, न कि कवि ने पिता के लिए (हिन्दी नवरत्न, पृ० १४४) ।

मिश्रबन्धुओं का यह मत अपूर्ण है। दोहे पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि 'केसव' श्रीकृष्ण के लिए तथा 'केसवराम' बिहारी के पिता के लिए प्रयुक्त है वंसा कि रत्नाकर आदि टीकाकारों ने माना भी है (बिहारी रत्नाकर सं० १, १ की टीका पृ० ४०) ।

इस प्रकार मिश्रबन्धुओं ने विपक्षियों के तर्कों का खण्डन ही किया है अपने मत की पुष्टि में परोक्ष प्रमाण नहीं दिए हैं।

स्व० डा० ब्यासमुन्दरदास जी ने इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में तीन बातों का उत्प्रेष किया है। पहली यह कि यदि बिहारी प्रसिद्ध 'केसवदास' के पुत्र होते तो यह बात परम्परा से प्रसिद्ध होती परन्तु ऐसा नहीं है। दूसरे, किसी टीकाकार की टीका के आधार पर इस प्रकार के निष्कर्ष पर पहुँचना समीचीन नहीं है क्योंकि एक ही पंक्ति का मिन-मिन टीकाकार प्रसंग-प्रसंग भ्रम समझते हैं। तीसरे यह कि केसव के बंशज हरिसेवक द्वारा रचित 'कामरूप की कथा' शीर्ष में लिखा है 'प्रियमे बिहारी का कोई उल्लेख नहीं है'। 'कामरूप की कथा' में हरिसेवक ने अपने

बंध का परिचय यों दिया है^१ ।

स्व० बाबू जी के प्रथम तर्क के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इतिहास की ओर प्रवृत्ति होने के कारण यह बात कुछ सम्भव नहीं कि केसव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध की ओर में प्रसिद्धि न हो सकी हो । दूसरे, यह भी सम्भव है कि भारमरसावा से बिड़ होने के कारण बिहारी के हृदय ने यह स्वीकार न किया हो कि अपने पूर्वजों के बंध पर मैं गौरव प्राप्त करूं । बाबू जी का तीसरा तर्क विषय प्रवृत्ति नहीं है । ऊपर दिए हुए परिचय में यदि बिहारी का उल्लेख नहीं हुआ है तो उल्टा यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि केसव बिहारी के पुत्र न थे । हरिवेदक ने केशव का नाम प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रवर्धित करने की स्वामाजिक मनोवृत्ति के परिणाम-स्वरूप प्रारम्भ में केवल केसव उसी साक्षा का विवरण दिया है जिससे सीधा जनका सम्बन्ध है । इस प्रकार बाबू जी के अधिकतर तर्कों का खण्डन हो जाता है ।

स्व० मायासंकर याज्ञिक ने सं० १९८० वि० की नागरी प्रचारिणी पत्रिका के एक लेख में इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध की सम्भावना के विषय में कई बातें लिखी हैं^२ । पढ़नी यह कि केसवदास सनाह्य से बिहारी जीरे । याज्ञिक जी लिखते हैं कि बिहारी के बंधव बालकृष्ण के पुत्र योपासकृष्ण जीरे को यह जानते हैं । वे भरतपुर राज्यान्तर्गत 'जीरे' स्थान में बकामत करते हैं । उनके विवाहादि सब सम्बन्ध नैनपुरी इटावा प्रांति स्थानों में मिलने वाले जीरों में होते हैं । यदि बिहारी सनाह्य जीरे होते तो उनके बंधवों के विवाह-सम्बन्ध सनाह्य बाह्याणों में होते ।

दूसरे, यदि बिहारी केसवदास के पुत्र होते तो वे कुसपति मिश्र के नामा ठमी हो सकते हैं जब केसवदास जी की कन्या का विवाह कुसपति मिश्र के पिता परशुराम के साथ हुआ हो । केसवदास मिश्र से और परशुराम जी मिश्र से । मिश्र की कन्या का विवाह मिश्र के साथ सम्भव नहीं है ।

तीसरे, याज्ञिक जी के अनुसार बिहारी के पिता का नाम केसव प्रथमा केसवदास न होकर 'केसो केसोदास' था । उन्होंने अपने अनुमान के आधार-स्वरूप दो थोड़े माने हैं । पहला थोड़ा बिहारी का है—

प्रथम नए हिमराज-कुल सुवत्त बसे बब दाह ।

मेरे हरी कसेस सब केसव केसवदाह ॥^३

१ स्तुम्भू प्यास इहि गोट हुष मिश्र सनाहक बंध ।

नगर घोड़िछे बसत बर कस्तनवत मुष बंध ॥

कस्तनवत सुत पुन बजब कासिगाव परवाल ।

तिन के पुत्र प्रसिद्ध हैं केसवदास कस्यान ॥

कहि कस्यान के तपय हुष परमेश्वर इहि नाम ।

तिन के पुत्र प्रसिद्ध हुष प्रागदास इहि नाम ॥

तिन के पुत्र हर सेवक किमो बह प्रबल सुखदाय ।

—ना प्र० सभा कोम-रिपोर्ट, सन् १९०३, भूमिका ।

२ नए प्र० प० पत्र = सं० १९८० पृ १९३, १९० ।

३ बिहारी सनाहक, र्क० ११ ।

बिहारी के सर्वप्रथम टीकाकार कृष्णसाह जी के विचार से 'केसव' बिहारी के पिता हैं और 'केसवराय' भगवान् कृष्ण । रत्नाकर भी 'केसवराइ' को बिहारी का पिता बतसाते हैं । दूसरा बोहा कुसपति मिश्र का है जो उन्हीं याज्ञिक के विचार से 'संप्रदासार' ग्रन्थ में अपने बरा का परिचय देते हुए लिखा है—

कविचर भक्तानिहं सुमिरि केसो केसवराइ ।

कहीं क्या भारतन की भावा छन्द बनाइ ॥

उपयुक्त दोहों के विषय में याज्ञिक जी का कहना है कि बिहारी ने तो दो छन्द 'कंधव' और 'केसवराइ' इसलिए प्रयुक्त किये हैं कि उन्हें कथक और ऐसे से अपने पिता और भगवान् कृष्ण का वर्णन करना धर्मीष्ट वा किन्तु कुसपति मिश्र को ऐसी क्या आश्चर्यकथा थी कि उनके मातामह का नाम केवल 'केसोराइ' होने पर भी एक छन्द 'केसो' और साव जोड़ दिया । इस कारण याज्ञिक का अनुमान है कि 'केसो केसोराइ' ही उनका नाम था । कुसपति मिश्र बिहारी के भान्ने के बेटे बिहारी के पिता का भी यही नाम था । याज्ञिक जी ने लिखा है कि नवीनछन्द प्रबोधरस-सुधा-सागर' ग्रन्थ में 'केसो केसोराइ' कवि के छन्द मिलते हैं । याज्ञिक जी ने भी इस कवि के दो छन्द अपने लेख में उद्धृत किए हैं । वे नीचे प्रस्तुत हैं—

नमह निगोड़ी कमसुधा कीरे लागी रहै,
सासु सुनि है तो नह नाहर ली करिहै ।
केसो केसोराइ कनाजन कुने ली की ज्वाण,
तुम ठो निदुर परबस लो लीर डरिहै ।
जनि जेहै प्रब ली जगजग वृक्षवासिनि में
कहत सुनत कोन काकी बीन धरिहै ।
कह्यो बाह्यो लो तुम मोहि ली बुझाइ कह्यो,
आन जान पर है साजन जान परिहै ॥

तथा

कोक-कोक वोही करी कोकनद कूस्यो जिन,
लोह मुक्कन पीएँ प्रेमरस जागिये ।
लोहये न जागिये री हिय लो लनाइए वे
हिय की हुमास आली काहु लो न भाछिए ।
केसो केसोराइ लो बिपीन पनहु न होइ
बीजन अवध गुन प्रेम अनिसासिए ।
कपुरु छपाय कीजै ज्यन न नास बीन
जिन दाज दूध लीजे रातें करि रासिए ॥

याज्ञिक जी का प्रथम तर्क निवारणीय है दूसरा तर्क सामान्य रूप से तो ठीक ही जान पड़ता है परन्तु एक ही घासरा में बिवाह होने के भी अनेक उदाहरण देखने में आते हैं । केसो केसोराइ के बिहारी के पिता होने के सम्बन्ध में डा० बीधित ने

बंध का परिचय यों दिया है* ।

स्व० बाबू जी के प्रथम तर्क के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इतिहास की ओर धरति होने के कारण यह बात कुछ असम्भव नहीं कि केसव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध की सोच में प्रसिद्धि न हो सकी हो । दूसरे यह भी सम्भव है कि आत्मस्ताथा से चिढ़ होने के कारण बिहारी के हृदय में यह स्वीकार न किया हो कि अपने पूर्वजों के बल पर मैं वीरत्व प्राप्त करूँ । बाबू जी का तीसरा तर्क विशेष प्रबल नहीं है । उमर दिए हुए परिचय में यदि बिहारी का उल्लेख नहीं हुआ है तो उल्लेख का परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि केसव बिहारी के पुत्र न ब । हरिदेवक ने केसव का नाम प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रवर्धित करने की स्वाभाविक मनोवृत्ति के परिणाम-स्वरूप प्रारम्भ में देकर केवल उसी शाखा का विवरण दिया है जिससे सीधा उनका सम्बन्ध है । इस प्रकार बाबू जी के प्रतिकीर्ण तर्कों का खण्डन हो जाता है ।

स्व० मामाचंकर याज्ञिक ने सं० १९८७ वि० की नावटी प्रचारिणी पत्रिका के एक लेख में इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध की सम्भावना के विषय में कई बातें लिखी हैं* । पहली यह कि केसवदास समाज्य से बिहारी जीसे । याज्ञिक जी लिखते हैं कि बिहारी के बंधव बालकृष्ण के पुत्र योपालकृष्ण जीसे को बह जानते हैं । वे भरतपुर राज्यान्तर्गत 'बीर' स्थान में वकासत करते हैं । उनके विवाहादि सब सम्बन्ध मैनपुरी इटावा आदि स्थानों में मिलने वाले जीवों में होते हैं । यदि बिहारी सनातन जीसे होते तो उनके बंधवों के विवाह-सम्बन्ध सनातन जाह्नवों में होते ।

दूसरे, यदि बिहारी केसवदास के पुत्र होते तो वे कुसपति मिश्र के मामा समी हो सकते हैं जब केसवदास जी की कन्या का विवाह कुसपति मिश्र के पिता परशुराम के साथ हुआ हो । केसवदास मिश्र से और परशुराम जी मिश्र से । मिश्र जी कन्या का विवाह मिश्र के साथ सम्भव नहीं है ।

तीसरे, याज्ञिक जी के अनुसार बिहारी के पिता का नाम केसव दत्तवा केसवदास न होकर केसो केसोदास का । उन्होंने अपने अनुमान के आधार-स्वरूप दो चीहें माने हैं । पहला बोहा बिहारी का है—

प्रबल भए हिन्दुराम-कुल मुबल कसे सब जग ।

मेरे हरी कसेस सब केसव केसवदास ॥*

१ स्तुम्भ प्यास इहि गोत हुध मिध सनातन बंस ।

नगर भोड़िछे बसत नर कसनवत मुब बंस ॥

कसनवत मुब कुल बसत कासिनाथ परनाथ ।

तिन के पुत्र प्रसिद्ध हैं केसवदास कस्यान ॥

कवि कस्यान के तनय हुब परमेस्वर इहि नाम ।

तिन के पुत्र प्रसिद्ध हुब प्रागदास इहि नाम ॥

तिन के मुत हर सेवक कियो यह प्रबन्ध मुखदास ।

—ना० प्र० सया खोस-रिपोई, एम् १९०५, पृष्ठा १ ।

* स्व० प्र० ५ भाग ५ सं० १९८७ पु० १९५ १५ ।

१ बिहारी राज्यान्तर्गत ११ ।

बिहारी के सर्वप्रथम टीकाकार कृष्णनाथ जी के विचार से 'केसव' बिहारी के पिता हैं और 'केसवराय' भयवान् कृष्ण । रत्नाकर जी 'केसवराय' को बिहारी का पिता बतलाते हैं । दूसरा बोधा कुमपति मिश्र का है जो उन्होंने याज्ञिक के विचार से 'सप्रामसार' ग्रन्थ में अपने बंध का परिचय देते हुए लिखा है—

कविबर मातामहि सुमिरि कैसो केसवराह ।

कहौ कथा भारत्य की धावा धन्य बनाह ॥

उपमृक्त दोहों के विषय में याज्ञिक जी का कहना है कि बिहारी ने जो दो पद्य 'केसव' और 'केसवराह' इसलिए प्रयुक्त किये हैं कि उन्हें कथक और स्तेय से, अपने पिता और भयवान् कृष्ण का वर्चन करना अभीष्ट था किन्तु कुमपति मिश्र को ऐसी क्या आवश्यकता थी कि उनके मातामह का नाम केवल 'केसोराह' होने पर भी एक छन्द 'केसो' और साथ जोड़ दिया । इस कारण याज्ञिक का अनुमान है कि 'केसो केसोराह' ही उनका नाम था । कुमपति मिश्र बिहारी के मानने से अतः बिहारी के पिता का भी यही नाम था । याज्ञिक जी ने लिखा है कि गवीनकुव 'प्रबोबरस-सुभा-सागर' ग्रन्थ में 'केसो केसोराह' कवि के छन्द मिलते हैं । याज्ञिक जी ने भी इस कवि के दो छन्द अपने लेख में उद्धृत किए हैं । वे नीचे प्रस्तुत हैं—

नमह निमोड़ो कमसुभा कोरे लापी रहै
साधु सुनि है तो नह नहिर सौ करिहै ।
कैसो केसोराह बनाजन धुनै जी को ध्यान,
तुम तो मिदुर परबस सो तौर उरिहै ।
कैसि कैसु सब ही बनाव बुजवातिनि में,
कहत सुनत कौन काकी बीन करिहै ।
कहौ बाह्यो सो तुम मोहि छौं बुलाह कहौ
आग कान पर ते लाजन कान परिहै ॥

तथा

कोक-कोक बोझी करी कोकनद कूपी जिन,
सोह पुष्पन गौरें प्रेमरस जाखिये ।
सोइये न जागिये री हिय छौं लगाइएँ रं,
हिय की हुनास घाली काहु छौं न जाखिये ।
कैसो केसोराह सौं बियोग पलहू न होद,
जीवन सबब गुन प्रेम अनिलाखिये ।
काहुक उपाय कीजै जगन न मास बीजै,
दिन रात पूब सीजै रात करि राखिये ॥

याज्ञिक जी का प्रथम तर्क विचारणीय है दूसरा तर्क सामान्य रूप से तो ठीक ही लाग पड़ता है परन्तु एक ही माहसस में विवाह होने के भी अनेक उदाहरण देखने में आते हैं । 'केसो केसोराह' के बिहारी के पिता होने के सम्बन्ध में डा० बीरिय ने

वंश का परिचय या दिया है^१ ।

स्व० बाबू जी के प्रथम तर्क के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इतिहास की धीरे प्रगति होने के कारण यह बात कुछ असम्भव नहीं कि केसव धीर बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध की सोच में प्रसिद्धि न हो सकी हो । दूसरे, यह भी सम्भव है कि धारमदासा से बिड़ होने के कारण बिहारी के हृदय में यह स्वीकार न किया हो कि अपने पूर्वजों के बल पर मैं गौरव प्राप्त करूँ । बाबू जी का तीसरा तर्क विद्वेष प्रबल नहीं है । ऊपर दिए हुए परिचय में यदि बिहारी का उल्लेख नहीं हुआ है तो उससे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि केसव बिहारी के पुत्र न थे । हरिदेवदास ने केसव का नाम प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रदर्शित करने की स्वाभाविक मनोवृत्ति के परिणाम-स्वरूप प्रारम्भ में देकर केवल सही धाबा का विवरण दिया है जिससे सीधा ज्ञान सम्भव है । इस प्रकार बाबू जी के प्रतिकूल तर्कों का खण्डन हो जाता है ।

स्व० भासायकर यात्रिक ने सं० १९८७ वि० की नागरी प्रचारिणी-पत्रिका के एक लेख में इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध की सम्भावना के विषय में कई बातें लिखी हैं^२ । पहली यह कि केसवदास सनाह्य से बिहारी जीरे । यात्रिक जी लिखते हैं कि बिहारी के बंशज बालकृष्ण के पुत्र गोपालकृष्ण जीरे को यह जानते हैं । वे भरतपुर राज्यान्तर्गत 'बीग' स्थान में बकासठ करते हैं । उनके विवाहादि सब सम्बन्ध मैनपुरी इलाका प्रादि स्थानों में मिलने वाले जीरों में होते हैं । यदि बिहारी सनाह्य जीरे होते तो उनके बंशजों के विवाह-सम्बन्ध सनाह्य बाह्यजों में होते ।

दूसरे, यदि बिहारी केसवदास के पुत्र होते तो वे कुलपति मिश्र के मामा तभी हो सकते हैं जब केसवदास जी की कन्या का विवाह कुलपति मिश्र के पिता परशुराम के साथ हुआ हो । केसवदास मिश्र से धीरे परशुराम भी मिश्र थे । मिश्र की कन्या का विवाह मिश्र के साथ सम्भव नहीं है ।

तीसरे, यात्रिक जी के अनुसार बिहारी के पिता का नाम केसव अथवा केसवराय न होकर केसो केसोराय^३ का । उन्होंने अपने अनुमान के आधार-स्वरूप दो दोहें माने हैं । पहला बोहो बिहारी का है—

अपठ भए हिनराज-कुल सुवत्त बसे सब बाह ।

मेरे हरो कलैत सब केसव केसवराह ॥^४

१ स्तुम्भ प्याठ इहि गोठ हूय मिश्र सनाहक बंश ।

भगर भोड़िबे बसत बर कसनवत्त भुव भय ॥

कसनवत्त सुत पुन बनव कासिनाथ परनाथ ।

तिन के पुत्र प्रसिद्ध हैं केसवदास कस्यान ॥

कवि कस्यान के समय हूय परमेस्वर इहि नाम ।

तिन के पुत्र प्रसिद्ध हूय प्रागदास इहि नाम ॥

तिन के सुत हर देवक किमो बहु प्रबन्ध सुखदाय ।

—ना० प्र समा द्योम-सिरोई, अन् २६ ५ अंतिम ।

२ पृ० ३ प भाग ८ सं १९८७ पु० १९२ १९ ।

३ बिहारी सनाह्य, पृ० ११ ।

बिहारी के सर्वप्रथम टीकाकार कुल्लुमान जी के विचार से 'केसव' बिहारी के पिता हैं और 'केसवराइ' भगवान् कृष्ण । रत्नाकर जी 'केसवराइ' को बिहारी का पिता बतलाते हैं । दूसरा बड़ा कुलपति मिश्र का है जो उन्होंने याज्ञिक के विचार से संवत्सरा^१ ग्रन्थ में अपने बंध का परिचय देते हुए लिखा है—

कविराज मातामहि सुमिरि केसो केसवराइ ।

कही कथा भारतवर्ष की भाषा ध्वज बनाइ ॥

उपरोक्त दोनों के विषय में याज्ञिक जी का कहना है कि बिहारी ने तो दो शब्द 'केसव' और 'केसवराइ' इसलिए प्रयुक्त किये हैं कि उन्हें रूपक और रूप से अपने पिता और भगवान् कृष्ण का वर्णन करना अभीष्ट था किन्तु कुलपति मिश्र को ऐसी क्या आश्चर्यकता थी कि उनके मातामह का नाम केवल 'केसोराइ' होने पर भी एक शब्द 'केसो' और साथ जोड़ दिया । इस कारण याज्ञिक का अनुमान है कि 'केसो केसोराइ' ही उनका नाम था । कुलपति मिश्र बिहारी के नाम के से भव बिहारी के पिता का भी यही नाम था । याज्ञिक जी ने सिखा है कि नवीनकृत प्रबोधरस-मुखा-सागर^२ ग्रन्थ में 'केसो केसोराइ' कवि के छन्द मिलते हैं । याज्ञिक जी ने भी इस कवि के दो छन्द अपने लेख में उद्धृत किए हैं । वे नीचे प्रस्तुत हैं—

भगव निगोड़ी कनसुखा कीरे लागी रहै,
सासु सुनि है तो गह नाहुर ली करिहै ।
केसो कसोराइ जनाजब सुने जी को म्याल,
तुम ली मिकर बरबस लो लोर उरिहै ।
छेलि जेहूँ अब ही बहाव बुजवातिवि में
कहत सुनत कीज काकी बीच परिहै ।
कह्यो बाह्यो सो तुम मोहि सों बुलाइ कह्यो,
आन कान पर ते जाकन कान परिहै ॥

तथा

कीक-कीक बोही करी कीकनर फूम्यो जिन,
सोह सुखन जीऐं प्रेमरस बाजिये ।
लोइये न बाजिये री हिय सों लगइए वै,
हिय कीं हुलास भाली काहु लीं न बाजिए ।
केसो केसोराइ सों बियोग पलहू न होइ
जीवन अथव गून प्रेम अनिताक्तिए ।
कछुक सपाय कीज अगन न भास बीर
विन बाव बूझ लीजै रातें करि राजिए ॥

याज्ञिक जी का प्रथम तर्क विचारणीय है दूसरा तर्क सामान्य रूप से तो ठीक ही जान पड़ता है परन्तु एक ही घासब में बिबाह होने के भी अनेक उदाहरण देसने में पाते हैं । 'केसो केसोराइ' के बिहारी के पिता होने के सम्बन्ध में डा० दीक्षित ने

यह धारणा उठाई है कि याज्ञिक जी ने 'कैसो केशोराह' का समय नहीं बताया है। मगर जब तक यह बात न हो जब तक 'कैसो केशोराह' का जी बिहारी का पिता होता निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता (प्राचार्य केशवदास पृ० ४७)। इस विषय में यह कहा जा सकता है कि 'कैसो केशोराह' का जी वही समय निकाला गया है जो प्रसिद्ध कवि केशवदास का है। इसलिए 'कैसो केशोराह' के बिहारी के पिता होने में कोई धारणा न होनी चाहिये। याज्ञिक जी के इस तर्क के सम्बन्ध में कि कुनपति ने अपने मातामह का नाम 'कैसोराह' होने पर 'कैसो' शब्द और बर्ण जोड़ दिया था० पीछे ने लिखा है कि उन्होंने ऐसा अपने मातुल बिहारी के ही अनुकरण पर किया है (प्राचार्य केशवदास पृ० ४७)। किन्तु हमारे विचार से तो कुनपति मिश्र ने अपने मातामह का नाम 'कैसो केशोराह' इसीलिए दिया है जिससे उस समय के दूसरे केशवराय से पार्यन्त हो जाय। इस प्रकार इस मत के विरुद्ध याज्ञिक जी द्वारा उठाई गई धारणा सभी धारणियों का समाधान हो जाता है।

श्रीगणेश प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि बिहारी को केशव का पुत्र मानने में जो मुख्य कठिनाइयाँ पड़ सकती हैं इन पर उन लोगों का ध्यान करावित् नहीं गया और यथा भी तो ये बिहान् द्विवेदी संसार में भूमि मचा देने वाली एक नई और ज्वलंत सूरज को बिहानों के सामने रखने की उतावली में इन पर गम्भीर और घातक विचार करने में असमर्थ हुए। उन्होंने अपने मत के समर्थन में निम्नांकित तर्क उपस्थित किए हैं।

(१) बिहारी मातुल जीवे से और केशवदास से मिश्र।

(२) बिहारी की जन्म तिथि केशव के मृत्यु-काल के निकट सं० १६१ के समान्य मानी जाती है। और फिर सरोजकार के हिसाब से बिहारी का जन्म केशव के पहले ही हो चुका था।

(३) बिहारी स्वयं अपनी जन्म मुमि ग्वातिपर, अपना स्वामी-रूप से निवास अपनी ससुराल मधुर में करते हैं। कहीं ग्वातिपर और मधुर और कहीं भोड़का। इस बात का कहीं से भी प्रमाण नहीं मिलता कि केशव कभी भी ग्वातिपर या मधुर में रहे हों।

(४) यदि केशव वास्तव में बिहारी के पिता होते तो उन्होंने इस सम्बन्ध को कहीं न कहीं ध्यान ही स्पष्ट कर दिया होता जब कि उन्होंने अपनी जन्म मुमि धारि का ठीक-ठीक पता दे दिया है।

द्विवेदी जी के पहले तर्क के सम्बन्ध में श्री जगन्नाथ पाण्डे जी के अनुसार यह कहा जा सकता है कि बिहारी मिश्र नहीं जीवे से इसका किसी के पास प्रमाण क्या? इसके मूल में परम्परा के प्रतिष्ठित और कुछ नहीं है।

द्विवेदी जी ने जो यह लिखा है कि सरोजकार के हिसाब से बिहारी का जन्म केशव के पहले ही हो चुका था सही-सही नहीं बतलाया। कारण उनके सरोज

१ द्विवेदी के कवि और भाष्य प्रकाश पृ० १२४-१२५।

२ वही वही २२ १२५।

३ संवत् १९०२ सि (मिश्रिद सरोज पृ० ४५५)।

में संवत् १९१२ और १९१० के बीच ही मानते हैं। केदार का जन्म सं० १९१८ वि० में हुआ। इस प्रकार यदि बिहारी केदार के पुत्र हों तो अब उनका जन्म हुआ होना केदार की अवस्था ३७ या ४२ वर्ष के समय ठहरती है जो असम्भव नहीं है।

द्वितीय बी के तीसरे तर्क के विषय में गौरीशंकर द्वितीय लिखते हैं कि बिहारी के बंशज घानकस भौंसी से पश्चिम की ओर १३ मील दूर 'कुटेरा पिछोर' नामक ग्राम में रहते हैं। भौंसी और उसके पास-पास के गाँव ग्वाथियर राज्य में बहुत दिनों तक रहे। यदि यह मान लिया जाय कि बिहारी भी ऐसे ही किसी प्रदेश में उत्पन्न हुए थे तो थोड़ा से ग्वाथियर की जिस दूरी की ओर यथोक्तप्रसाद द्वितीय बी ने ध्यान दिखाया है वह मिट सकती है। वहाँ तक मन्त्राबास का सम्बन्ध है, श्री बन्धवजी पाण्डे ने इसका अनुमान दो स्तंभों में किया है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

द्वितीय बी के चौथे तर्क के विषय में हम यह कह सकते हैं कि यदि बिहारी ने अपनी जन्म भूमि का ठीक-ठीक पता दे दिया है तो यह आवश्यक नहीं था कि वे अपने पिता के नाम का भी निर्देश करते ही।

इस प्रकार द्वितीय बी के सभी तर्कों का खण्डन हो जाता है।

डा० दीक्षित ने अपने ग्रन्थ 'आचार्य केदारदास' (पृ० ४८ ४९) में केदार और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में जो तर्क उपस्थित किये हैं वे इस प्रकार हैं :

(१) बिहारी भी प्रसिद्ध हैं और केदारदास' सनाइय भिन्न थे। सनाइयों में भी भीने होते हैं यह ठीक है किन्तु यदि बिहारी सनाइय थे तब भी केदार तथा बिहारी के पासव भिन्न थे। पिता तथा पुत्र का पासव भिन्न नहीं हो सकता।

(२) यदि बिहारी केदार के पुत्र होते तो यह बात बता कि स्व० डा० स्वामिनन्दनदास जी ने लिखा है, परम्परा से प्रसिद्ध होती। केदार की जिस सन्तान ने धीरसिंहदेव द्वारा पुनः प्रवृत्त वृत्ति का थोड़ा में रहकर उपयोग किया, कम से कम उसे तो बिहारी का केदार का पुत्र होना अवश्य बात रहा होना और उसके द्वारा इस बात को छिपाये रखने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

(३) प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रदर्शित करने की मनोवृत्ति स्वभाविक है। यदि बिहारी केदार के पुत्र होते तो निश्चय ही अपने इस सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से प्रकट करने में मौरव प्रतीत करते। केदार के बंशज हरिसेवक ने नामरूप की कथा में इस मनोवृत्ति के फल-स्वरूप केदार का उल्लेख किया है, परन्तु जिस प्रकार केदार के बड़े भाई बसन्तदत्त मिश्र का उल्लेख नहीं है केदार का उल्लेख करने की भी आवश्यकता न थी क्योंकि हरिसेवक से केदार का सीधा सम्बन्ध न था। यदि बिहारी केदार के पुत्र होते तो हरिसेवक इसी मनोवृत्ति से प्रेरित हो बिहारी से प्रसिद्ध कवि से भी अपना सम्बन्ध लिखते।

(४) बिहारी ने स्पष्ट रूप से अपना जन्म ग्वाथियर में होना लिखा है। किन्तु केदार का कभी ग्वाथियर में रहना प्रमाणित नहीं होता।

डा० दीक्षित के प्रथम तर्क के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इसका ही क्या प्रमाण है कि बिहारी भिन्न नहीं चीबे थे। बिहारी ने अपने मधुरा के चीबे होने का कब धोर कही उल्लेख किया है? दूसरे, मधुरा के चीबों में भिन्न भी तो होते हैं। इस प्रकार पिता-पुत्र के भिन्न भास्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

डा० दीक्षित ने जो यह लिखा है कि जिस सन्तान ने भीरसिंहदेव द्वारा पुनः प्रयत्न कृति का प्रोद्गम में रहकर उपनीत किया कम से कम अब तो बिहारी का केशव का पुत्र होना अवश्य जात रहा होगा और उसके द्वारा इस बात को छिपाये रखने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता इसके उत्तर में दो बातें कही जा सकती हैं। प्रथम यह कि यदि केशव भी उस सन्तान में, बिहारी के केशव का पुत्र होने का पता होने के कारण, कहीं इसका उल्लेख किया भी हो तो भी जब तक उस सन्तान ही के विषय में कोई निश्चित ज्ञान न हो तब तक यह ही बात कही जा सकता है कि उसने इस पिता पुनः-सम्बन्ध का कहीं उल्लेख भी किया है या नहीं? दूसरे इतिहास में प्रसंग होने से उस सन्तान ने इस सम्बन्ध का उल्लेख करना आवश्यक ही न समझा हो।

डा० दीक्षित जी के तीसरे तर्क के विषय में हमारा निवेदन है कि हरिसेनक ने 'कामरूप की कथा' में जो बिहारी का कोई उल्लेख नहीं किया है इससे यह नहीं कहा जा सकता कि बिहारी केशव के पुत्र न थे। हरिसेनक ने केशव का नाम प्रसिद्ध व्यक्ति है सम्बन्ध प्रसिद्ध करने की स्वाभाविक मनोकृति के परिणामस्वरूप प्रारम्भ में देकर केवल उसी साक्षात् का उल्लेख किया है जिससे सीधा जगका सम्बन्ध है। मरु हरिसेनक ने बिहारी से प्रसिद्ध कवि के अपना सम्बन्ध सिखाने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी।

वहाँ तक डा० दीक्षित के चौथे तर्क का सम्बन्ध है वह भी पन्द्रहवीं पाछे द्वारा उपस्थित तर्क के कट जाता है। उन्होंने लिखा है कि ग्वासिंदर (गोपावन) के केशव का कितना सगाव था वह तो स्पष्ट नहीं हो सकता पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि वह लगभग इतना अवश्य था कि वहाँ उनके पुत्र उत्पन्न हो सकता था। उनका अनुमान है कि सम्भवतः यही बिहारी के पिता की समुदाय भी धोर अपनी गतिहास में ही बिहारी का जन्म हुआ था। इस प्रकार इस मत के विषय में दिये गए डा० दीक्षित के सभी तर्कों का खण्डन हो जाता है।

केशव और बिहारी के पिता-पुनः-सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गए तर्कों पर समष्टि रूप से विचार करने के अनन्तर हमारी तो यही धारणा बनी है कि बिहारी केशव के पुत्र थे। यदि भीछे दिया गया केशव का बंध-बुद्ध प्रामाणिक है तो हमारा मत धोर भी पुष्ट हो जाता है। फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ और अनुसन्धान-आवश्यक प्रेषित है।

केशव-पुनः-बन्ध—संवत् १८६१ वि० में असनी के ठाकुर कवि डा० बिहारी उठसई की सतसैया बर्वाण नामक टीका में उठसई के सम्बन्ध में कि यह बिहारी द्वारा लिखी न जाकर उनकी पत्नी द्वारा रचित है। उस-

१ मित्रभक्त-विशेष (अथ नाम) में केशव-पुनः-बन्ध नाम की एक कवि-
यहाँ पर ये लिखा है कि उनकी कविता 'उत्तरसैया' में है। १० १६४-१६

भी घाटी है जिसके आकार पर धीरे कुछ नहीं तो इतना प्रबन्ध कहा जा सकता है कि बिहारी की पत्नी भी कविता किया करती थी। बिहारी की पत्नी की प्रसिद्धि अपने नाम से प्रबन्ध अपने पति के नाम से न होकर बसुर के नाम से होना इस बात का द्योतक है कि बसुर कोई प्रसिद्ध व्यक्ति थे। अतः ये केसवदास भिन्न ही रहे होंगे जो एक प्रसिद्ध कवि थे। इसका समय भी बिहारी के समय से मिलता है। इस प्रकार संभव है यह बिहारी की ही पत्नी हो। यह भी कहा जाता है कि केसवदास की के जीवन-काल में जो यह प्रसिद्धि है कि उन्हें अपनी 'पुत्र-पत्नी' के ही कारण 'विद्यामयीता' की रचना करनी पड़ी, इससे केसवदास की पुत्र-पत्नी का उनके नाम पर प्रसिद्ध होना बहुत संभव है (बिहारी, पृ० ११२)।

वृत्ति—जहाँगीर के हाथ में शासन की बागडोर के घाते ही बीरसिंह के भाग्य में पतटा आया। प्रथम वे बिहारी न रहकर समस्त कुन्नेसख्त के शासक बन पड़े। उपर प्रकबर के राज्य-काल से ही उसे राजा रामदास की ओर से इन्द्रवीर भोग रहे थे। राजा रामदास को यह बात बहुत अच्छी। परिणाम यह हुआ कि रामदास और बीरसिंह में बंध गई। केसव ब्रूत बनकर बीरसिंह की सेवा में पहुँचे और उन्होंने हर प्रकार की ऊँच-नीच समझा-बुझकर बीरसिंह को मना भी लिया था किन्तु बिधाता को यह स्वीकार न था। बात बीच में ही यह बनी कि प्रेमा' (जो केसव के साथ गया था) ने सारा बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया। रानी कल्याणदे के पास गुरन्त पहुँच उसने निवेदन किया कि मुझे नहीं मालूम कि आपस में क्या निर्बन्ध हुआ है यह तो केसव भिन्न जानते हैं या बीरसिंहसे। यदि कोई ऊँच-नीच की बात हो गई तो मुझे खोप न बीबियेगा। यह सुन रानी को सन्देह हो गया और बीरसिंह के पास से भारतदास को लौटा जाने का उसे आदेश दिया। भारतदास को वापिस लाया गया। उस वही से बातचीत टूट गई और फिर केसव की बात किसी ने न सुनी। केसव ने परिस्थिति को देखकर उचित ही कहा था कि बीते भी राजा राम राज्य मोर्गे और उनके बाह बीरसिंह राजा बनें। पर माँ की ममता यह कैसे होने देती? परिणाम यह हुआ कि संघाम की टन गई। केसव ने इन्द्रवीर और राजमुपास को भी जो राजा रामदास और रानी के पास में थे समझाया-बुझाया कि हठ छोड़कर बीरसिंह को घर ले आओ और उसे राज्य सौंप दो। परन्तु रानी को केसव के वक्तों से प्रत्यन्त दुश्म हुआ। उसने एक न सुनी और अपनी हठ पर दृढ़ ही रही। केसव वापिस लौट दिये गये। उस फिर क्या था? दोनों घोर युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं और घोर संघाम हुआ। राजमुपास ने बड़ी बीरता प्रदर्शित की पर घन्ट में उनकी हार ही हुई। जहाँगीर के प्रभाव से बीरसिंह राजा बने और रानी की सब धाधाधों पर पानी फिर गया। इससे और नहीं इतना तो प्रबन्ध प्रकट होता है कि यद्यपि केसव का इस युद्ध में कोई भोग न था तो भी वे माने तो गये थे विपक्ष के ही। फलतः उन्हें अपनी वृत्ति और पत्नी से हाथ पीना पड़ा। बीरसिंह के राज्याभिषेक के प्रबन्ध पर छीतर मिथ मानसिंह भयवन्त बुझार राय,

हरमोर बाघराज अश्वमनि मरहरिदास कृष्णदास मामीदास बेनीदास, तुलसीदास बसन्तराय, लाल्लूदास कृपाराम कन्हूदास, बरधुनर अम्बरदास केसवदास साहिबदास आदि सब ही विस्वाइ पढ़ते हैं पर केसव सापता हैं। हाँ, उदयमणि मिश्र भी ऐसे घरघर पर कैसे पढ़ते। वे बीरसिंह को घाधीर्बाव देते हैं। सब दिन होत न एक समान। एक दिन ऐसा भी आया कि राजा बीरसिंह ने सहर्ष केसव से कहा कि भोगो जो कुछ माँगना हो^१। माँगने पर फिर मिला क्या? बड़ी पुरानी वृत्ति और पदवी ही ता^२।

विज्ञान भीता के रचना-काल सं० १६६७ के प्रसंग पर ही केसव को पुरानी वृत्ति मिली होगी।

आश्वयदाता—केसवदास की गणना हिन्दी के उन कवियों में है जो राजा महाराजाओं द्वारा विशेष रूप से सम्मानित हुए। साइलेंट महाराजा रामदास के छोटे भाई इन्द्रबीरसिंह केसव के प्रधान आश्वयदाता थे। इन्द्रबीरसिंह के यहाँ इनका विशेष आदर था। कहा जाता है कि जब एक बार अकबर बादशाह ने किसी कारण बग इन्द्रबीर पर एक करोड़ रुपये क्षमाणा कर दिया तब केसव ने बीरबल द्वारा उससे यह क्षमाणा माँग करवाया था। उसी से ओढ़का बरबार में उनका विशेष सम्मान हुआ। इन्द्रबीर के बरबार में केसव सुखपूर्वक अपने दिन बिताते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है—

भुलस को हन्त्र इन्द्रबीर राजी मुप मुप।

केसोदास जाके राज राज सो करत है ॥^३

यही कारण है कि उन्होंने स्वयं स्वयं पर अपने आश्वयदाता की पुनरिमा के गीत गाए हैं^४। उनका जो यहाँ ठक कहना है कि राजा इन्द्रबीर के सामने इन्द्र भी पानी भरता है। उनके समान न तो कोई हुआ है न है और न कोई होगा ही^५।

एक बार इन्द्रबीरसिंह तीर्थराज प्रयाग में यात्रा के लिए पहुँचे और केसव से कुछ माँगने को कहा। सम्मुख केसव ने यही माँगा कि सदैव आपकी एकरस हवा रहे^६।

१ मुनि मुनि केसवदास सों येकि कहाँ नृपनाथ।

मानि मनोरथ विस के कीजै सब सताथ ॥

—श्री गी प्र २१ अं २५।

२ वृत्ति दई पुछबानि की बैठ बालनि घामु।

भोहि अपनो जानिदै यना-सट बैठ बामु ॥

—श्री गी प्र २१ अं २६।

३ क० मि प्र ४ अं २१।

४ क० प्र ४ अं १३ तथा प्र ११ अ २२ २३ और २६।

५ क० प्र १४ अं २४।

६ इन्द्रबीर साधों कहाँ योगम मध्य प्रयाग।

मायुको सब दिग एकरस कीजै कथा संगान ॥

—क० मि प्र १२ अं २८।

इसी प्रकार बीरबल ने एक बार केदार से कहा था कि जो कुछ तुम्हारा मनोरथ हो माँगो तब केदार ने उनसे यही माँगा कि आपके दरबार में मेरी रोक टोक न हो^१। इन्द्रजीतसिंह ही के कारण भोजधेनु महाराज रामदाह इन्हें अपना मित्र एवं मंत्री समझते थे^२। घोरछा दरबार में केदार कपा-पाज हो नहीं थे बरन् मट्टा-पाज भी। इन्द्रजीत इनको प्रशस्तुत्य समझते थे और गुरु-वक्षिणा के रूप में उन्होंने केदार को २१ गाँव भी भेंट किये थे^३।

राजा रामदाह इन्द्रजीत से अत्यन्त प्रेम करते थे उसको अपना प्राण समझते थे^४। उनकी घोर से इन्द्रजीत ही (घोरछा का) सारा राज-काज चलाते थे। रामदाह स्वयं तो चन्देरी चले गये और इन्द्रजीत को कछौदा की जागीर दे गए थे। समीत क उच्चे रसिक थे और स्वयं कविता भी करते थे। 'सरोज' में उनका कविता का नाम 'बीरब नरिन्ध' दिया हुआ है। उनका एक छन्द 'सरोज' में उद्धृत है^५।

राज्य में सुन्दर साधन के साथ-साथ उन्होंने संगीत का असाढ़ा धमा रखा था। इन्द्र के समान संगीत में ही वे मस्त रहा करते थे। उनके यहाँ बहुत सी बेस्वार्थ भी थीं जिनमें रायप्रवीण नवरचराय बिचित्रनयना तातरण रगराय और रंगमूर्ति बहुत विख्यात थीं^६। ये बेस्वार्थ मूल्य धान और बाघ आदि कलाधर्मों में बड़ी प्रवीण थीं। कौं तो केदार ने इन सभी बेस्वार्थों का निकपण बड़ी मट्टा से किया है परन्तु रायप्रवीण पर उनकी विशेष दृष्टि है। भावातिरेक में कवि ने उसे तो सत्यमामा रमा सारखा तथा उमा के रूप में देखा है^७। प्रवीण राय बेस्वार्थ होत हुए भी एकनिष्ठ थी। मूल्य और संगीत में निपुण होने के साथ वह काव्य रचना भी कर लेती थी^८। कहा जाता है कि एक बार उसके प्रथम रूप सावध्य तथा प्रवीणता की प्रशंसा सुनकर शङ्कर बादशाह ने उसे बुला मेचा। प्रवीणराय सुरन्द महाराज इन्द्रजीतसिंह की समा में गई और उनके सामने 'भाई हों ब्रह्मन मंत्र तुम्हें' आदि^९ छीन झूट कवित्त पढ़कर उसने जाने के लिए आज्ञा माँगी।

१ यों ही कछो पू बीरबल माँगि पू मन में होय ।

माँग्यो तब दरबार में भोहि न रोके काय ॥

—क मि ५ २० अं ११।

२ क मि ५ २ अं २१।

३ वही, ५ २ अं २।

४ गहिरवार कुल को लज्जु जान । साहिराय को जानो प्राण ॥

—बी रे व ५ १७।

५ रिन्दसिंह सरोज ५ १५१।

६ क मि प्र १ अं ४६ ४४।

७ वही, अं ४६ तथा अं ५७-६८।

८ दिन में करत कवित्त इक रायप्रवीण प्रवीण । क मि प्र २ अं २५।

९ रिन्दसिंह सरोज १० १८ तथा विजयानु शिरोर (प्रथम भाग) ५ ६७५ (पाठ्यदे से)।

बादसाह के बरधार में पहुँचने पर बादसाह धीर प्रवीनराम में इस प्रकार बातचीत हुई—

“बादसाह—जुवन बसत तिय वैह ते बटकि बसत केहि हैत ?

प्रवीण—भगमय बारि मसाल को, सोंति सिद्धाये लत ॥

बादसाह—अँवे हूँ सुर बस किये, सम हूँ गर बस कोन ।

प्रवीण—अब पताम मत करन को हरकि पयानो कीन ॥”

बादसाह उसकी कवित्व-शक्ति पर बड़ा प्रसन्न हुआ । कहा जाता है कि प्रवीण ने जब यह बोला पढ़ा कि

बिकती राय प्रवीण की सुनिये ब्राह्म कुचान ।

बूढ़ी पतरी भक्त हूँ चारी जायस स्वाग ॥

तब बादसाह ने उसे बिदा किया और प्रवीण इन्द्रजीत के पास चली गई^१ । कहा जाता है कि प्रवीण जाति की लोहार की^२ अपनी पिम्पा प्रवीण राय के विषे ही केसव ने कविप्रिया^३ रची थी^४ ।

स्व० सा० भगवानदीन जी ने लिखा है कि यह भी किंबदन्ती है कि ‘सप्त छन्दमय चारी’^५ केसव ने प्रवीणराय पातुर से बनवा कर ‘रायचन्द्रिका’ में रची है । इन सात छन्दों में केसव ने अपना उपनाम नहीं रखा है । १० से ३९ तक एक ही छन्द है । ऐसा करना केसव की प्रकृति के विरुद्ध है । यत इस किंबदन्ती में कुछ सत्यता प्रत्यक्ष है ।^६ इन्द्रजीतसिंह बड़े ही बानी मंजीर धीर सूर थे ।^७

इन्द्रजीत सिंह क उपरान्त केसवदास बीरसिंहदेव की सम्झावा में रहे । पारम्पर्य में उनके पास केवल बङ्गोल की बापीर की परन्तु यकबर की मृत्यु के पश्चात् बहामीर के सिंहासनाब्ध होने पर उसने इन्हें समस्त बुद्धिमत्त्व के राज्य का स्वामी बना दिया था । ये बहामीर के विशेष कृपा-पात्र थे । कारण यकबर बादसाह के

१ शिवसिंह सरोज, पृ ४४३ ।

कही कब ‘हिन्दी नमरल’ में कुछ परिकल्प के साथ ही गई है । प्रवीणराय के ‘मर्द ही भुज्ज मर्ग’ शब्दादि श्रृंख के पन्ने पर इन्द्रजीतसिंह ये कते यकबर के मर्द य भेदा । उस यकबर ने ऊँच होकर ऊँच पर पथ करोड़ सारे का बुगुन कर दिया । केसरराज ने भागरे बाबर बैरबल हस्त यह बुगुन सार कराय और प्रवीणराय ने यकबर के मर्द किसी यकबर पर बिन्दी रायजीव की शब्दादि कब कबकर अपना शक्ति-मर्द बनाया । पृ ४५६ ।

२ हिन्दी नमरल पृ ४४३ ।

३ सविता वू कविता बने, ताकड़े परम प्रकाश ।

टाके काज कविप्रिया कीन्हों केसवदास ॥

—क० वि०, प्र १, बं ३२ ।

४ रा० बं० प्र ३, पृ १०-११ ।

५ रा० बं० प्र ३ पृ ८४ (शर-सिन्धवी) ।

६ कल्पवृक्ष सो बापि बिन सागर सो मंजीर ।

केसव सूर सूर सो धर्मन सो रणवीर ॥

—क० वि० प्र १, बं ३६ ।

बादशाह के दरबार में पहुँचने पर बादशाह और प्रवीणराय में इस प्रकार बातचीत हुई—

“बादशाह—जुबन बलत तिय बेह ते बटकि बलत केहि हेत ?

प्रवीण—मनमन बारि मसाल को छोति सिहारो मत ॥

बादशाह—अबे तूँ सूर मत किये, तम तूँ नर मत कोन ।

प्रवीण—मन पताल मत करन को बटकि पयानो कोन ॥”

बादशाह उसकी कवित्व-शक्ति पर बड़ा प्रसन्न हुआ । कहा जाता है कि प्रवीण ने जब यह बोला कि

बिगती राय प्रवीण की सुनिये आह पुजाल ।

कुठे पठरी मकत हैं चारो बामस स्वास ॥

तब बादशाह ने उसे बिना किया और प्रवीण इन्द्रबीर के पास चली गई^१ । कहा जाता है कि प्रवीण पाणि की सोहार थी ।^२ अपनी सिध्दा प्रवीण राय के विवे ही केशव ने ‘कविप्रिया’ रची थी^३ ।

स्व० सा० भगवानदीन जी ने लिखा है कि यह भी किम्बदन्ती है कि ‘सप्त छन्दम पाटी’^४ केशव ने प्रवीणराय पातुर से बनवा कर ‘रामचन्द्रिका’ में रची है । इन सप्त छन्दों में केशव ने अपना उपनाम नहीं रखा है । १० से १६ तक एक ही छन्द है । ऐसा करना केशव की प्रकृति के विरुद्ध है । यद्यपि किम्बदन्ती में कुछ सत्यता भ्रमर है ।^५ इन्द्रबीरसिंह बड़े ही बानी बंशीर और सूर थे ।^६

इन्द्रबीर सिंह के उपरान्त केशवराय बीरसिंहदेव की छत्रच्छाया में रहे । पारम्भ में उनके पास केवल बंजीन की बाजीर थी परन्तु भक्त्यर की मृत्यु के पश्चात् बहोलीर के सिंहासनाब्ध होने पर उसने इन्हें समस्त ब्रह्मसम्पत् के राज्य का स्वामी बना दिया था । ये बहोलीर के विशेष कृपा-भाव थे । कारण भक्त्यर बादशाह के

१ शिवसिंह सरोज, पृ ४४६ ।

कवी कव्य ‘विन्धी मराल’ में कुछ परिवर्तन के साथ दी गई है । प्रवीणराय के ‘भार्गव’ और ‘मृगमंथ’ अथर्वि जंत्र के लिये वर इन्द्रबीरसिंह ने उसे भक्त्यर के स्थान दिया । भक्त्यर ने झूठ होकर उन वर जंत्र कथों लिये का सुयोग्य कर दिया । केन्द्रबात ने अगले भाग बीरबल अथवा लक्ष्मण नामक कथा, और प्रवीणराय ने भक्त्यर के लिये किसी भक्त्यर पर ‘विन्धी राकसीय’ की अथर्वि जंत्र लक्ष्मण अथर्वि जंत्र-वर्णन किया । पृ ४५६ ।

२ विन्ही मराल पृ ४५६ ।

३ सविता वृ कविता यई, ताकई परम प्रकाश ।

ताके काज कविप्रिया, कीन्हीं केशवरास ॥

—क वि, प्र २, अ ५१ ।

४ पृ ५६, पृ ६०-६१ ।

५ पृ ५६, पृ ८४ (अ-विष्णु) ।

६ कल्पवृक्ष सो बानि दिन छावर सो बंशीर ।

केशव सूर सो सूर सो भर्तृन सो रणबीर ॥

—क वि, प्र २, अ ५६ ।

विषय विप्रोक्त करने पर ये जहाँगीर के साथ थे। इसीमें प्रभाव और ऐश्वर्य की प्राप्ति किसी भी अन्य भारतीय राजा को उस समय उतनी प्राप्त नहीं हुई बितमी कि बारसिंह को^१। मघासिख-उमरा के अनुबादक भी बजरल वास और घोड़छा मघासिख का कहना है कि वे बड़े शान्ति थे। उन्होंने अपने भाई का राज्य छीन लिया था उससे प्रायश्चित्त-स्वयम् केवल गुन्हावन में कहा जाता है इसकीस मन पक्का सोना दान कराया था। तीर्थयात्राएँ कीं चात्रायण व्रत रक्खे और सप्ताह सुने^२। वे बड़े स्यासी भी थे। कहते हैं कि उनके पुत्र बगतदेव ने एक ब्रह्मचारी को सिकारी कुत्तों से मरवा डाला था। यह सुनकर महाराज ने उसे भी कुत्तों द्वारा ही मारे जाने का दण्ड दिया^३। इससे बढ़कर न्यायसीसता का और क्या प्रमाण हो सकता है। उनकी स्पष्टबहिता और विद्याम-व्यवस्था भी बढ़ी-बढ़ी थी। जब साह समीम उन्हें मक्कर के प्रिय सखा धनुमज्जस को मारने के लिए वाध्य करता है तो वे साह की बातों में धाकर सहसा इस नृपस कर्म के लिए प्रेरित नहीं होते बरन् उसे सब प्रकार की ऊँच-नीच का ज्ञान कराते हुए कहते हैं कि प्रभु को सेवक की भूमि सदा समा कर देनी चाहिये^४। उनकी इपासुता के विषय में घोड़छा में यह प्रचलित है कि एक दिन जब जहाँगीर-महल की नींव रखने के विषय में सोच-विचार चल रहा था तो महाराज भगुर्मुख के बर्सन करने के बाद द्वार पर खड़े बैठवा मंत्री के प्रबाह की ओर निहार रहे थे। उसी समय उन्होंने सिर पर बोझ साधे एक गर्मबती ब्राह्मणी को देखा, जो बैठवा की बारा को पार करने का प्रयत्न कर रही थी। जब वह धारा के बीच ही में टापू के समीप पहुँची तो उसे प्रसन्न पीड़ा होने लगी। उसे इस प्रकार सन्तप्त देख उन्होंने उसकी सहायता के लिए नौकरों को भेजा। नौकरों ने धामानुसार हर प्रकार से उस ब्राह्मणी की सहायता की। यहीं उसके पुत्र उत्पन्न हो गया। महाराज ने उसको अपने धामपुत्र भाँति देकर बिदा किया। ब्राह्मणी ने महाराज को प्राचीर्वाद दिया। महाराज की यह प्रसिद्धि सब ओर फैल गई। ब्राह्मणी के बिदा होते समय सहसा एक साधु का आगमन हुआ। वह महाराज से कहने लगा कि आपने यह बहुत ही सराहनीय कार्य किया है। यह टापू जहाँ यह घटना घटी है एक महर्षि का निवास-स्नान है। यदि आप यहाँ महल बनाकर उसमें रहेंगे तो आपके वंश का राज्य सर्वत्र सुरक्षित रहेगा। साधु के वचनों पर विश्वास करके महाराज ने टापू पर महल बनवाना धारम्भ

१ मघासिख-उमरा प्र या पु ११७।

२ वही पु० ११८ (पार-विषय)।

Bir Singh seems in later days to have felt some remorse at the advantage he had taken of his elder brother and endeavoured to atone for his conduct by lavish expenditure and charitable objects. C I. S. Gazetteer (Orkha), Chapter I, Section II, page 22.

३ मघासिख उमरा, प्रयाग भाग, पु ११७।

४ यह प्रताप रूँ साहिब रस। तासों इतनी कीबहि रीस।

प्रभु सेवक की भूमि विचारि। प्रभुता यह सु सेह सम्हारी।

कर दिया । कहा जाता है कि जब सुवाई हो रही थी तो नीचे से एक धागम बिछाई दिया । वहाँ से एक साधु ने निकलकर धारोध दिया कि सुवाई भंग्य कर ली जाय । महाराज ने बैठा ही किया । वह स्वान धाग भी 'सिद्ध का स्वान' नाम से प्रसिद्ध है^१ । बोरसिंह की वीरता की भाव का तो ठिकाना ही क्या ? उन्होंने अकबर बादशाह के समय में मुघलों के बहुत से क़िले अपने अधीन कर लिये थे और मुगल-सेना को कई बार परास्त किया था । अकबर बीठे भी उन्हें अपने बख में न कर सका । उनकी अधीनता में ओढ़छा राज्य का कुछ विस्तार हुआ । योग्य धासक होने के साथ-साथ भवन निर्माण में उनकी विशेष अभिरुचि थी । ओढ़छा मजेटियर में लिखा है कि उन्होंने माघ सुदी पचमी रविवार के दिन सं० १६७३ वि० अर्थात् दिसम्बर सन् १६१८ में ३२ इमारतों की एक साथ नींव रखी थी (पृ० २३) । ऐसे धाग्य को पाकर केदार दास कब झुकने वाले थे ? बोरसिंह की प्रशंसा में उन्होंने छन्द के छन्द रख दाले^२ । यहाँ तक कि उन्हें महाराज शिरोमणि की पदवी भी दे जाती^३ ।

केदारदास का लगाव बोरसिंह के बड़े भाई रतनसिंह से भी किसी प्रकार कम न था । 'रतनबावनी' में उनकी ही तो बीरपावा वर्णित है । 'बोरसिंहदेव-चरित' में रतनसिंह के विषय में लिखा है कि बादशाह अकबर ने स्वयं अपने हाथों से रतनसेन के सिर पर पाग बाँध कर गौड़ देश पर धाक्रमण करने के लिए इन्हें बिदा किया था । इन्होंने गौड़ देश विजय कर अकबर को सौंपा था तथा वहीं युद्ध में बीरपति प्राप्त की थी^४ । 'कविप्रिया' में भी इस प्रकार का ही उल्लेख मिलता है कि अकबर ने स्वयं रतनसेन के सिर पर पगड़ी बाँधी थी^५ । किन्तु 'रतनबावनी' में कुछ और ही विवरण दिया हुआ है । यहाँ लिखा है कि एक बार मधुकरदाह ऊँचा कामा पहुँचकर अकबर बादशाह के दरबार में गए । बादशाह ने इसमें अपनी मान-हानि समझी और उनसे इसका कारण पूछा । तब मधुकरदाह ने कहा कि 'मिरा देश कंटीली मृत्ति है ।

१ ओढ़छा मजेटियर, पृ० २२-२३ ।

२ बी बी दे व ॥ २० अ २३, प्र ३, अ ४० प्र ३३ अ २६ १० अ ४२ तथा विमान गीत, प्र १ अ २१ २२, २३ और २४ ।

३ बी बी दे व पृ १ ।

४ रतनसेनि विनि तें मनु जानि । यहि जान्यो ठिगही जय पानि ।
जानी बाण्यो ताके माय । साहि अकबर अपने हाथ ॥
जानी बान्धि बिदा करि दियो । बीठि वीर की कृतम मित्रो ।
गौर जीत अकबर को दियो । पूछ आन बोरसिंह भयो ॥

—बी बी दे व ३० २६ २७ ।

५ रत्नसुरो बरसिंह पुनि रतनसेन सुत-द्वेष ।
बाण्यो साधु बनावरी नामो जाके दीप ॥

—बी नि प्र १ अ २८ ।

प्रकार को इन शब्दों में व्यंग्य दीष्ट पड़ा, अतः क्रुद्ध होकर वे गण्डुकरग्राह स घोत कि 'अथवा मैं तुम्हारा नयन और देख देखूँ' १ ।

गण्डुकरग्राह का ये वचन शीघ्र सु गये । उन्होंने गुरगुत्त इस घटना को मुखना रतनसेन के पास पत्र द्वारा नेहों और उस प्रकार के दिव्य मुद्र करन का भार सौंपा । मुगल सेना के आक्रमण करन पर रतनसेन की सेना न उठाका बटकर सामना किया । इस युद्ध में रतनसेन की चार हजार सना में से एक भी घोर जीवित न बचा २ । और रतनसेन स्वयं भी युद्ध में मर चुके हुए बीरगति को प्राप्त हुए ३ । ऐसी स्थिति में टोच-टोच निम्न पर पहुँचने के लिए इतिहास के अनिर्विक्त घाय कोई साधन नहीं होता । इतिहास-ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि बंगाल में अफगानों का बिद्रोह दमन करन के लिए सन् ११८० (स० १६३७ वि०) में मुगल शाँ खानखाना और टोडर मल का अमीनता में सेना नबी गई थी ४ । इसी बहाई में रतनसिंह भी साथ गए थे । वहीं पौड़ (बंगाल) में उनकी मृत्यु हुई । अतः 'रतनबावनी' में उल्लिखित बात प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती । रतनसिंह की मृत्यु-तिथि संवत् १६३७ वि० है । अस्तु, प्रतीत होता है कि रतनसिंह के निधन के उपरान्त केदार ने इन्द्रजीतसिंह का आग्रह ग्रहण किया ।

केदार की जहाँगीर 'अस-बन्धिका' अथवा उनके अग्र्य किमी भी प्रत्य से यह ज्ञात नहीं होता कि बादशाह जहाँगीर भी कभी केदार के आग्रह-गता रहे थे । वे तो केदार के आग्रह-गता के आग्रह-गता थे । भारत के समय जहाँगीर ने बीरसिंह की बाई पकड़ी थी । इसी विचार से समभवतः 'जहाँगीर-अस-बन्धिका' का निर्माण किया हो ।

अन्य व्यक्तियों से परिचय—केदार के परिचित व्यक्तियों में से प्रथमर की समा के मुखिया 'रतन बीरबल' का नाम अवप्रथम उल्लेखनीय है । बीरबल केदार के बनिष्ठ मित्र थे । केदार ने एक स्थान पर बीरबल के साथ 'मोरे हित' विषय का प्रयोग किया है ५ । कवि ने इनके बाल की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि बीरबल ने निधन पर दारिद्र्य के दरबार में हर्ष के नवाड़े बने ६ ।

१ देख अफगानग्राह उच्च जामा तिल करो ।

बोले बचन बिचारि कहीं बारन मही करो ॥

तब कहूँ भयव अहिममणि मम सुदेश कंटकि-अवन ।

करि कोप ओप बोले बचन मैं देखों तेरो मवन ॥

—रतनबावनी (काल पंचरत्न) अं० १ ।

२ जहाँ सहस्र बारि सेना प्रबल तिल महँ कोट न भर गयव ।

—रतनबावनी (काल पंचरत्न) अं० ४० ।

३ रतनबावनी (काल पंचरत्न) अं० १ ।

४ अथवा हि मेरु गुण १ १८१ १८१ ।

५ मोरे हित बरबीर बिना टुटु बीननि रोपी । —श्री रे अ० १० ११ ।

६ पाप के पूज पञ्चावज केदार शोक के दंत मुने मुगमा में ।

भूँठ, पूज पासोक के, पावज मुगल जाने जमा में ॥

एक बार इन्द्रजीतसिंह पर बाणघाह भक्तवर ने एक करोड़ रुपये का जुमाना कर दिया था। इसी जुमनि को माफ़ कराने के सम्बन्ध में कहते हैं कि केसवदास की वीरबल से सर्वप्रथम भेंट हुई थी। उन्होंने वीरबल की प्रशंसा में यह छन्द पढ़ा^१। इस छन्द से प्रसन्न होकर महाराज वीरबल ने केसव को छ लाख रुपये की हुशियारी पुरस्कार-स्वस्म दी। तब केसव ने सोत्साह निम्नलिखित छन्द पढ़ा—

केसवदास के पास लियो बिलि रंक को छक बनाय तबार्यो।

छोटे धुप्यो नहीं छोए धुप्यो बहुत तीरथ के जल जाय पबार्यो॥

छू गयो रंक से राठ वहीं जब वीरबली बलबीर मिहार्यो।

धूलि पयो जब की रक्ता बसुरामन जाय रह्यो मुझ बार्यो॥^२

इसके पश्चात् वीरबल ने केसव से कुछ माँगने को कहा तब केसव ने बरवार का मुक्त प्रणय ही माँगा^३। इससे प्रकट होता है कि केसवदास समय-समय पर वीरबल से मिलने जाया करते थे। इसलिये यह निर्दिष्ट कहा जा सकता है कि भक्तवर की समा के छन्द रत्न भक्तुरहीम जाना-जाना, प्रबुलप्रबल, फँसी भानसिंह आदि से भी केसवदास का परिचय था। वीरबल के 'बल' नामक दरबान से केसव का परिचय होना तो स्वाभाविक है। कवि ने उसके नाम को भी अपनी कविता द्वारा धमर कर दिया।^४ भक्तवर के कर विभाग के मुखियात मंत्री राजा टोडरमल से भी केसवदास परिचित थे परन्तु ने उन्हें अच्छी दृष्टि से न देखते थे। स्वयं केसव 'दान' के मुक्त से 'सोम' को कहलाते हैं—

टोडरमल मुब निज अरे सब ही सुब सोयो।

मोरे हित बरबीर बिना दुहु दीननि रोयो॥^५

केसव का वीर चरित्रसे से भी जोड़ा-बहुत परिचय था। कारण उन्होंने चन्द्रसेन की बहुर की प्रशंसा में एक छन्द लिखा है^६। इस चन्द्रसेन के विषय में ठीक-ठीक

भेद की भेरी बड़े डर के डूठ कीलुक ओ कलि के कुरमा में।

कुम्हरी ही बलबीर, जसे बहु पारिज के बरवार हमारें॥

—क डि म० १८, ब० २२।

१ पावक पंछी पसु नर नाग नबी मर सोक रहे पसचाटी।

केसव देव भवेन रहे मरवेन रहे रचना न विबाटी॥

कै बरबीर बली बलबीर मयो कृतकृत्य महाप्रतापी।

दैं करवापन आपन ताहि बई करतार बुबी करतारी॥

—हिन्दी भक्तवत्सल, पृ ४७ तथा रिमसिंह स्तोत्र, पृ १।

२ रिन्ही नन्दन पृ० ४३१।

३ क डि म ११, ब० ११।

४ सब सुख चाह्यो मोगियो ओ पिय एकहि बार।

जब मई जई राहु को ज्यो तेहि बरवार॥

—क डि म ११, ब० ११।

५ बी डे प पृ ११।

६ क डि, म० ११, ब० ११।

साध होता कठिन है क्योंकि इस छन्द में किसी प्रकार का अग्न्य कोई संकेत नहीं है। किन्तु प्रथम से तो यही जान पड़ता है कि वह कोई बुन्देला वीर ही है।

उदयपुर (मेवाड़) के राजा अमरसिंह के यहाँ भी केसव का एक बार जाना विदित होता है। केसव ने उनकी प्रशंसा में एक-दो गहीं एक साथ चार कवित्त लिखे हैं^१। उन्होंने एक अन्य स्थल पर राजा की वानशीभता का भी उल्लेख किया है^२।

एक और व्यक्ति जिससे केसव का अभिष्ट परिचय था पतिराम है। वह सुनार का काम करता था साधारण सी बीछक भी कर लेता था। किन्तु पढ़ना लिखना न जानता था। हाँ केसव की संगति से कविता का अर्थ जगता था^३। सोना चुराने में वह इतना निपुण था कि रनिवास का सोना चुराया तो इन महाशय ने पर वण्डक्य में उसका मूल्य चुकाना पड़ा अन्य सुनारों को ही। केसव मिथ के माय्य पर भी उसे काहू था^४। यहाँ तक कि कायस्थों की निपराजी होने पर भी राख भरते समय पतिराम सोना चुरा ही ले जाता था^५।

राजा रामसाहू की कामसेना नामक एक पातुरी से भी केसव परिचित थे। कवि ने उसकी प्रशंसा में एक छन्द लिखा है।^६

अमल—केसववास को वस्तुतः भ्रमणशील भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु फिर भी उनके ग्रन्थों के आधार पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि उन्होंने समय

१ क वि प्र ११ अ १०-११।

२ वही प्र १, अ ७२।

३ बाँधित धार्यं लिखि वस्तु जानत छाँह न धाम
अर्थ सुनारी बँदी करि आगत पतिराम।

—क वि प्र १, अ २१।

४ दिये सुनारन धाम राखर की सोनो हरो।
हुअ पायो पतिराम मोहित केसव मिथ सों॥

—क वि प्र ११ अ ११।

५ तुना-चोम-कसवान बनि कायय विज्ञत अपार।
राख भरत पतिराम पै सोनो हरति सुनार॥

—क वि प्र ११ अ १२।

६ सोहति मुनेछी मंसुभोपा रति छरबसी
रामा राम मोहिने को सूरति छोह्यो है।
कतरब कवित सुरमि राम रंग मुस
बहन कमल पटपट छवि छापी है॥
भूकुटी कुटिल वनु सोचन कटात्र चार
मदिमत तन-मग पति सुखदायी है।
प्रभुदित पयोधर दामिनी सी नाम साथ
काम की सी सेवा कामसेना बनि आयी है।

—क वि प्र ११ अ १२२।

समय पर प्रायः प्रयाग काशी हिस्नी यात्रियों का भ्रमण किया था। प्रायः वे महाराज बीरबल से मिलने जाते थे। प्रयाग में वे सम्भवत एक बार महाराज इन्द्रजीतसिंह के साथ तीर्थयात्रा को गये थे। तुमसीदास से उनकी भेंट काशी में हुई थी। इसका उल्लेख याने किया गया है। 'विज्ञान गीता' में उल्लिखित बाराधनी तथा हिस्नी की सामाजिक अवस्था के विवरण से यह प्रकट होता है कि केसव इन स्मार्तों में भी गए थे। इसके प्रतिरिक्त केसव को उदयपुर (मेवाड़) के राजा अमरसिंह के यहाँ भी एक बार जाने का अवसर प्राप्त हुआ था।

किबदतिर्वा—युनेसकाण्ड में केसव के विषय में कई किबदतिर्वा प्रस्तुत हैं। इन में तर्प्याच किटना है इस प्रश्न का एक सामान्य उत्तर नहीं दिया जा सकता। प्रत्येक किबदन्ती की सम्बन्ध परीक्षा के पश्चात् ही उसके तर्प्याच का निरूपण सम्भव हो सकता है। किबदतिर्वा निर्गुण नहीं होतीं। इनमें तर्प्य का कुछ न कुछ अंश तो निकाला ही जा सकता है। केसव से सम्बन्ध रखने वाली किबदतिर्वा में से कुछ का सम्बन्ध मुक्त पद्माद् अक्षर से है जिन्हें योरीशंकर शिवेशी ने अपने 'सुकुमि सरोज' (प्रथम भाग) में उद्धृत किया भी है। पाठकों के अवलोकनार्थ वे यहाँ भी पाठी हैं। एक बार अक्षर वादशाह विस्वनाथ पुरी काशी में थे और महात्माओं के दर्शनो से सामाजिक होकर उन्होंने अपने प्रतिष्ठित भन्नी द्वारा उस समय के सभी महात्माओं से विनय कराई कि वे कृपा कर मणिकर्णिका बाट पर पधार कर वादशाह को दर्शन दे इत्यादि करें। सभी महात्मा वादशाह की इच्छानुसार कष्ट बाट पर एकत्रित हुए। वादशाह ने सबों का दर्शन कर अपने को कृतार्थ किया और उनकी सुभूषा कर धीरों को सादर बिदा किया। केवल कुछ इने गिने महात्माओं से कुछ काम और ठहरने की प्रार्थना की। उनमें सूर, तुमसी और केसव के तीनों भी थे। संयोग से वादशाह अनायास बोल उठे कि आज आप तीन महान् कवियों में वह निर्वच करना कि वस्तुतः कवि कौन है असम्भव-सा प्रतीत होता है परन्तु केसवदास भी आप ही इसका निरूपण करें कि आप में कवि कौन है? केसव ने उत्तर दिया 'मैं'। वादशाह के तीन बार पूछने पर भी केसव ने वही उत्तर दिया। यह सुन अक्षर को बड़ा दुःख हुआ कि मैंने व्यर्थ ही ऐसा प्रश्न पूछकर जो महात्माओं का निरादर किया। इस बात को श्रेष्ठ ठाढ़ गये और वादशाह से निवेदन किया कि 'मैंने केवल आपके प्रश्न का उत्तर दिया है न कि आदरणीय एवं सत्य महात्माओं का अपमान किया है। ये कवि नहीं हैं वे तो बैककोटि के मुख्य-अवतारी महात्मा हैं। सुरदास भी उदय भी के धनतार हैं और तुमसीदास भी राम से भी पूजित बास्मीकि के। इन्हें मैं केवल कवि कह कर इनकी अप्रतिष्ठा नहीं कर सकता। ये तो पूजनीय देवता हैं किन्तु मैं केवल कवि ही हूँ।' वादशाह इस पर सन्तुष्ट हो प्रसन्न हुए।^१ इस किबदन्ती से और कुछ नहीं तो इतना प्रत्यक्ष स्पष्ट है कि केसव प्रत्युत्पन्नमति थे।

दूसरी किबदन्ती है कि बीरबल के मुमुक्षु पदियों के युद्ध पर जान के समय अक्षर ने घोषणा की कि शिवर बीरबल के प्रतिष्ठ की बात जिस किसी के भी मूढ़

से निकलनी उसे ही भीषण दण्ड सुगतना पड़ेगा। दुर्भाग्य से जब उसके मारे जाने की सूचना मिली तो समस्त बरवार के लोगों में सन्नाटा छा गया और सभी चिन्तित थे कि यह प्रथम समाचार बादशाह तक किस प्रकार पहुँचाया जाय। उसी समय लोगों को केसव का ध्यान धाया कि उनके प्रतिरिक्त भय कोई इस काम के उपयुक्त नहीं है। सीमाव्यवह उन दिनों केसव भी नहीं उपस्थित थे। अतः, सभी ने केसव से ही इस काम के लिए प्रार्थना की। केसव ने प्रार्थना स्वीकार कर सी और भक्तवर के समस्त आकर उन्होंने यह दुःख समाचार

प्राप्तक सब भूपति जैसे रह्यो न कोऊ लग।

इन्द्रज को हथ्या मई, पपी बीरवर देन ॥

इन शब्दों में सुनाया। यह सुनकर भक्तवर नील उठे कि हाय! क्या बीरबल का निधन हो गया? तब केसव ने कहा "अर्हपिनाह, इस प्रकार कहन की राबस्ता नहीं थी।" यह सुनते ही भक्तवर न सोकातुर हो

सब को सब कुछ बीन्ह बुझ न काहू को दियो।

सी भर हपको बीन्ह मसी निबाही बीरवर ॥

यह सोरठा पड़ा^१। इस घटना का इतिहास शब्दों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इनके प्रतिरिक्त एक और जनश्रुति प्रचलित है जिसका सम्बन्ध भक्तवर बादशाह से न होकर "फुटेरा" गाँव से है। इसे भी हिबेरी जी ने अपने "मुकमिल खरोब" (प्र० भा०) में उद्धृत किया है^२। एक बार केसव पालकी में बैठे हुए उस गाँव में होकर निकले। उन दिनों यह गाँव उग्रस यहीरों के अधीन था। जब पालकी उस गाँव में पहुँची तब पालकी के कहारों ने विधाम करने के विचार लें क्योंकि उन दिनों रैदाब या प्येठ का महीना था पालकी को "पटा" नामक कुएँ के पास उतार दिया और पानी पीने की व्यवस्था करने लगे। किसी कारणवश कुछ झगड़ा हो जाने से वहाँ के यहीरों ने उन कहारों के साथ बहुत ही दुर्व्यवहार किया। जब केसव घोड़छा पहुँचे तो यह दुर्व्यवहार की बात महाराज इन्द्रजीतसिंह तक भी पहुँची। महाराज को अत्यन्त दुःख हुआ और उन यहीरों को उस गाँव के अधिकार से बहिष्कृत कर उन्हें कड़ा दण्ड देने की घोषणा की। किन्तु उबार केसव ने उन्हें दण्ड से मुक्त कर दिया। इसके उपरान्त यह गाँव भी महाराज ने केसव को ही दे दिया। तब से धात्र तक "फुटेरा" केसव के बंशजों के ही अधिकार में है। दीप बापीरी गाँव कुम्हेस क्षत्रीय राज्य-वासियों के कारण उनके अधिकार से निवृत्त गये। यह भी सुनते हैं कि संवत् ११०० के लगभग केसव के कुछ बंधुधर घोड़छा राज्याधीनारों की बहुत सी सन्तों को केसवदास जी तथा उनके बंशजों को बापीर के सम्बन्ध में दी गई थी लेकर टीकमगढ़ में महाराज से यह निवेदन करने लगे कि "महाराज इन सन्तों के अनुसार या तो हमें धर्मों पर अधिकार दिया जावे सम्मया ये सन्तें लोटा भी जावें।" परन्तु किसी ने सुनवाई न की। यहाँ तक कि दरबार में उनका प्रवेश तक भी न हो सका।

१ मुकमिल खरोब (प्र भा०) पृ २५ २६।

२- वही, वही, पृ १२-१३।

फलतः भोवबस सगरी को बे नहीं गरी में बुबा कर बापिस बसे थाए । इतिहास में इस किंवदन्ती का समर्पण नहीं होता ।

बीरबस की सहायता से महाराज इन्द्रजीतसिंह पर भकबर द्वारा किए गए धूमनि को माफ कराने तथा भकबर के द्वारा प्रबीरराय पातुली को मुसरा मेजने से सम्बाध रखने वाली किंवदन्तियों का संक्षेप पीछे किया जा चुका है घटा बे फिर यही नहीं दी जाती ।

केशव के प्रेत होने की बात भी बहुत प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि इन्द्रजीत के हृदय में एक बार यह भावना हुई कि उनके पचाड़े का रागराग भगन्तकाल तक रहे । केशव ने इसके लिए उन्हें प्रेतपन्न करने का परामर्श दिया । तदनुसार प्रेतपन्न किया गया और उसने मित्र-भगवन्ती के साथ भरकर केशव भी प्रेत हो गए । प्रेत-योनि में केशव का मन न लगता था । एक बार ये एक कुएँ में बैठे हुए थे । सीताम्न से तुमसी दास जी ने पानी भरने के लिए उड़ी कुएँ में धाकर सोटा बासा । केशव-व्रत ने उन्हें पहचान लिया और उनका सोटा पकड़ लिया । तुमसीदास के छोड़ने के लिए बहुत कुछ कहने-सुनने पर वे बोले कि जब प्रेतयोनि से उधार करोगे तभी हम सोटा छोड़ेंगे । इस पर तुमसी ने उन्हें स्वरचित "रामचन्द्रिका" का २१ बार पाठ करने को कहा पर केशव को "रामचन्द्रिका" का पहला कवित ही स्मरण न आता था । सीताम्न जी ने उन्हें यह स्मरण कराया और केशव को "रामचन्द्रिका" के २१ पाठ करने पर प्रेत-योनि से मुक्ति मिली^१ । यदि इस किंवदन्ती में कुछ सत्य है तो यही कि इनकी मृत्यु तुमसी से पूर्व हुई थी ।

केशव के जीवन से सम्बन्धित सब से प्रसिद्ध किंवदन्ती यह है कि केशव एक बार किसी पनबट के पास से जा रहे थे । उस समय उस पनबट पर कुछ 'बम्रबदनी' धुवठियाँ पानी मछने के लिए फाई थीं । कहते हैं कि उनको बैसकर उनमें से किसी ने केशव को 'बाबा' कहकर पुकारा । यह सुन केशव की परतप्त बुद्धि दुधा । इस घटना का संकेत केशव के नाम से विख्यात निम्नलिखित दोहे में उपलब्ध होता है

केशव केसनि भस करि जस धरिछु ब कराहि ।

मुबसोबनि बम्रबदनि बाबा कहि कहि जाहि ॥^२

१ किन्ती नवरत्न, पृष्ठ ५४३ ।

बाबा केसीमानकास ने "मूलगोपार्थ-चरित" में लिखा है कि निम्नरूप से किसी दाते सम्म भोइका में तुमसीदास को केशव के प्रेत में बैरा उन गोन्वाणी जी के मृत्युपक्ष से किया प्रसन्न ही बैरा प्रेत-योनि से मुक्ति या किन्नर पर चढ़कर लगी गए ।

उड़की केशवदास प्रेत हवीं केरेउ मुनिहि ।

उमरे विगहि प्रयास, बड़ि विमान स्वर्गहि गबो ॥

मूलगोपार्थ-चरित दोहा १८ ।

यह कथा सं १६५६ वि० के आस-पास की है । अन्तःस्थाप से दलदल उपर्यन्त नहीं होख । कारण सं १६६६ वि तक केशव के जीवित रहने में लम्बे के लिए कोई स्थान ही नहीं है ।

२ यह दोहा केराव के किसी भी ग्रन्थ में देखने में नहीं आता किन्तु कन्नौड़-श्रुति-प्रति को ध्यान में रखते हुए यह दोजे में केशव की ही दाप दिखाई देती है ।

मृत्यु-संघत्—केशवदास क मृत्यु-संघत् क विषय में भी विज्ञान एक मत नहीं है । मिथवाङ्ग^१ एक० ई० क^२ गणेशप्रसाद द्विवेदी^३, रामनरेश त्रिपाठी^४ तथा स्व० रामचन्द्र शुक्ल^५ आदि विज्ञान केशव का मृत्यु-संघत् सं० १६७४ वि० मानते हैं । गीरीधरद्विवेदी^६ और स्व० सा० भगवान्‌गोन^७ क अनुसार उनकी मृत्यु-तिथि सं० १६८० है । केदार का मृत्यु-काष्ठ संघत् १६८० वि० मानना समीचीन नहीं जान पड़ता । तुमसीदास द्वारा केदार का प्रथ-मोनि से उद्धार किये जाने का उत्सव पीछे किया जा चुका है । किम्बदन्ती सर्वथा निमूल नहीं हुमा करती । यदि इस किम्बदन्ती में कुछ तथ्यता है तो केदार इतना ही कि केदार का वेहान्त तुमसी से पहले हो चुका था । गोस्वामी तुमसीदास जी का मृत्यु-संघत् १६८० वि० माना गया है^८ । अतः, केदार निश्चित रूप से संघत् १६८० वि० से पूर्व स्वर्गलोक विधाय चुके थे ।

केदार की सब से अन्तिम रचना 'जहाँगीर-जस-चरित्रा' है हिन्दी रचना संघत् १६६६ वि० में हुई थी^९ । इसके बाद उनकी कोई रचना नहीं मिलती । इस प्रकार यही परिणाम निकाला जा सकता है कि संघत् १६६६ क उपरान्त ही कभी कवि की मृत्यु हुई होगी । कब हुई कहा नहीं जा सकता किन्तु हुई है सं० १६७० वि० के आस-पास ही । संघत् १६७० के बाद केदार के कुछ और जीवित रहने के किसी प्रबल प्रमाण के अभाव में उनका मृत्यु-संघत् सं० १६७४ वि० मानना ठीक नहीं लगता । केदार के बंधारों से भी हमें उनकी मृत्यु-सम्बन्धी तिथि निर्दिष्ट न हो सकी । उनकी मृत्यु किस रोम में हुई और कहाँ हुई, यह निश्चित रूप से सात नहीं है ।

केदार का व्यक्तित्व

कोई भी कवि अपने काव्य को व्यक्तिगत राग-रूपों से अलग नहीं रख सकता । अतएव प्राप्त जीवन-सूत्रों क अतिरिक्त केदार काव्य के आधार पर भी केदार के व्यक्तित्व की स्पष्ट क-रेखा तैयार की जा सकती है ।

प्रकृति और स्वभाव—केदार प्रकृति के रसिक थे । पीछे दिया हुआ प्रसिद्ध श्लोक जिसमें उन्होंने 'मृगचोचनी' वृक्षियों द्वारा 'आवा' मुनकर बुझाये में अपने श्वेत

१ हिन्दी मन्तर ५ अक्षर तथा मिथक-मु-क्तीव प्रथम भाग, ५ २६३ ।

२ हिन्दी भाषा हिन्दी विद्वत्, ५ १४ ।

३ हिन्दी के कवि और नाम प्रथम भाग, ५ १८३ ।

४ कविता कोश, प्रथम भाग ५ २६८ ।

५ हिन्दी साहित्य का इतिहास, ५० १३१ ।

६ अक्षरि सरोज प्रथम भाग, ५ ४३ ।

७ केदार चरित्र का आकाशिका-कवि परिचय, ५ ३ ।

८ संघत् सोरह सौ पची पची वर्ष के तीर ।

सावन त्यागा तीस सति तुमसी लग्यो शरीर ॥ ११६ ॥

—मृगचोचनी-चरित, ५ २९ ।

९ सोरह सौ उनहतरा माघ भास विचार ।

जहाँगीर सक साहि की करी चरित्रा बाब ॥

बानों को बोसा है इस बात का साक्षी है कि केसव में जीवन के अंतिम दिनों तक रसिकता एक भावुकता पर्याप्त भाषा में रही। किन्तु केसव की यह रसिकता कोरी रसिकता न थी जिसका सम्बन्ध केवल भोग-विज्ञास से ही होता है। इसमें एक विशेष संभव भी था। 'रामचरित्रका' में राम के पसकाचार के अन्तर पर राम के गच्छाधिक (प्र० १ छं० ४६ ५८) और राम राज्याभिषेक के अन्तर मुक द्वारा सीता की दासियों के भलाधिक का वर्णन (प्र० ३१) इस बात का प्रमाण है। केसव में भक्ति की यह उत्तममता न थी जो तुलसी सुर धारि वैष्णव भक्त-कवियों में दृष्टिगोचर होती है। राजाचित्त धार्मिक कवियों की भक्ति ऐसी ही थी। भक्त न होते हुए भी वे भक्त बनने का दम भरते थे।

व्यङ्ग्य-सुखमता धारि—राजचरवारी कवि के लिए व्यङ्ग्य-सुखमता बान्धवमता विनोदात्मकता धारि विन पुणों की आवश्यकता होती है वे सभी केसव में विद्यमान थे। यही कारण है कि वे एक उचित आध्ययता प्राप्त करने में समर्थ रहे और उनके विधेय सम्मान के पात्र रहे। उनके प्रसाद से केसव को कभी स्वदे-वर्षे की कमी न रही। केसव में हास्य और विनोद भी पर्याप्त भाषा में था। किसी कर्कशा स्त्री पर व्यंग्य की बीजार करते हुए केसव लिखते हैं 'कौसी मन्दुर बाणी है कि मँडूरी की बाणी से भी बाणीक और रसीली है, टिटियरी की रदन को भी निमल मई है भुंपासी की बाणी से सवाई और चुईस की बोनी से बढ़कर है मँस की बोनी से घण्डी और अँटिनी की बोनी से अधिक स्पष्ट है। सुपरी संकोचवस और कुठिवा मयमीत होकर चुप हो रही चुबुकारिन की तो बात ही क्या है उसे सुनकर हृषिनी भी मोहित हो जाती है (क० वि प्र ६ अं ४४)। 'रामचरित्रका' के सम्बन्धों में अनेक स्वम ऐसे हैं जिन से केसव की वाकपटुता प्रकट होती है।

स्वाभिप्राय और विद्वान्मयता—केसवदास को अपने पारंगत्य का बड़ा अभिमान था। यही कारण है कि उन्होंने अपने लिए जानत सकल ज्ञान^१ सुजान^२ कवि शिरमौर^३ धारि विद्वानों का प्रयोग किया है। उनमें स्वजात्यभिमान की भाषा आवश्यकता से अधिक थी। उन्होंने अन्तर-अन्तर का ध्यान किए बिना ही सनातन मंत्र की उत्पत्ति तथा उसके पुणों का सीमा से अधिक वर्णन किया है^४ जो स्पष्ट ही उनके ज्ञान की संकीर्णता का श्रोतक है। किन्तु अपनी जाति को अपने स्वान में सुदृढ़ रूप में स्थापित रखने की विन्ता ने उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य किया था अथवा उनका ज्ञान विधान था। इसी विद्वान्-मयता के कारण ही वे परिचय और अन्य जैसे छोटे से छोटे व्यक्तियों से, जिनका उल्लेख पीछे हो चुका है मिलने में भी तनिक

- १ एक तहाँ केसव मुकवि जलित सकल ज्ञान । २ वि प्र ६, अं ३।
- २ तो विनिरति विनिरिये केसवदास सुजान । ३ वि प्र० ६ अं ४५।
- ३ विद्वान्म ताहाँ कही केसव कवि शिरमौर । ४ वि प्र ८ अं १।
- और-और बरमत कवि शिरमौर । वि की प्र १ अं १४।
- ताहाँ कहत विभावना कवि शिरमौर । ५ वि प्र० ८, अं ११।

४ रा अ० प्र० २ अं १२ २ अ० प्र २४ अं ४५, ४६ और ४७।

संकोच न करते थे। इन्द्रजीतिहि तथा बीरबल के केदार से यह कहने पर कि माँगो जो कुछ माँगना हो केदार उनसे क्रमशः 'एकरस कृपा' तथा 'बरबार का मुक्त-प्रवच' ही माँगते हैं^१। यह इस बात का प्रमाण है कि केदार की दृष्टि में मन की अपेक्षा प्रसिद्धा का अधिक मुख्य था।

निर्भीकता एवं स्पष्टबाहिता—केदार बड़े निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे। अपने माधवदाताओं की हूँ में हूँ मिमाना उन्हें न भगता था। जब महापुत्र बीरसिंहदेव माक्रमण करते हैं तो वे नि संकोच राजा रामदाह तथा उनके धुमन्तिक इन्द्रजीति तथा रामगुप्त को उनकी म्युनता का ध्यान दिखाकर हठ छोड़ देने और बीरसिंह देव को राज्य छोड़ देने का परामर्श देते हैं^२। बीरसिंह के पास जब मंगड पायक प्रेमा और केदार बिरस्याही सन्धि कराने के निमित्त भेजे जाते हैं तब कदाच नान और बलिष्ठ मायों का धमुरण करने की क्रमशः हानि और साम की चर्चा करते हुए उनकी बलिष्ठ नाम का धमुरण बर्बात् रामदाह के चरणों की सेवा करने की सम्मति देते हैं^३। इस प्रकार का धावरण केदार-सा निष्पक्ष एवं निर्भीक व्यक्ति ही कर सकता था। 'रामचरित्रका' से भी केदार की निर्भीकता के उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक उदाहरण देना यहाँ पर्याप्त होना। केदार के हृदय में राम द्वारा सीता का परि त्याग सर्वत्र बढकता रहा। इस कारण सब-कुछ द्वारा धमुरण और लक्ष्मण न पराजित होने का समाचार प्राप्त करने पर वे अपने इष्टदेव राम के प्रति भी मरत के मुख से यह कहसकाने में नहीं चूकते कि जिसके चरित का कीर्तन सुनने से सत्तार पवित्र हो जाता है ऐसी सीता को आपने किस पाप के कारण त्याग दिया। जो निर्वोप को बोपी ठहराता है उसे ऐसा फल भिन्नना स्वामाधिक ही है^४।

भीति-निपुणता—केदार बड़े ही भीति निपुण थे। परस्पर विरोधी माधव दाताओं की छत्रच्छाया में रहते हुए सबको प्रसन्न रखना तथा उनके कृपा-आजन बन रहना केदार की भीति-निपुणता का परिचायक है।

भाम्यबाहिता—केदार भाम्यबाही तो सबस्य थे पर साथ ही वे 'उद्यम' के भी प्रबल समर्थक थे^५।

१ क प्रि० प्र १ अं १५ १६।

२ बी० दे० व पु ७६।

३ बी० दे० व० पु ७२-७४।

४ पाठक कीम तबी तुम सीता। पावन होत मुने बग मोठा।
बोपबिहीनहि बोप लपारों। सो प्रभु ये फल काहे न पारै॥

—उ अं प्र १६ अं १२।

५. होनहार जग बात कहत हूँ ही रहै निदान।
बहामैं भेटन सये तज न भिटै परवान॥

—वि० गी० प्र १२ अं १६।

सिक्की कर्म की भेट न जाय। कहा रंक कह राजा राय॥

—बी दे व० पु ११।

जट बड़ि अपने कर्महि मानि। जहिम सब की कीरति जानी॥

—बी दे व० प्र १२।

प्रास्तिकता—ईश्वर में भी केशव की पूर्ण प्राप्ति थी। 'वीरसिंहदेव-चरित' में एक स्थान पर केशव ससीध के मुँह से कहलवाते हैं कि यह साहिबी ईश के हाथ है। कोई किसी की ही हुई नहीं पाता। एक से राजा और राजा से एक होते कुछ देर नहीं लगती^१।

केशव की जानकारी

केशव के बच में संस्कृत-साहित्य के पाण्डित्य की परम्परा बहुत दिनों से जमी प्राची थी, इसका उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। केशव ने स्वयं भी संस्कृत का विस्तृत अध्ययन किया था और उसमें उनकी बहुत पैठ थी। प्रसन्नार तथा काम्यशास्त्र के वे प्राचार्य थे। छन्दशास्त्र का ज्ञान भी उनका व्यापक एवं विस्तृत था। साहित्यिक ज्ञान के साथ लोकज्ञान भी उनमें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। लोक ज्ञान का कोई भी ऐसा विषय न था जहाँ उनकी थोड़ी-बहुत पहुँच न हो। इसके प्रतिरिक्त राजनीति धर्मनीति नमशास्त्र योगशास्त्र दर्शनशास्त्र संदीप्तशास्त्र पुराण इतिहास आदि विषयों की भी केशव को पूरी-पूरी जानकारी थी। केशव के ग्रन्थों में इन विषयों से सम्बन्धित वस्तुओं एवं बातों का यथ-तन उल्लेख मिलता है।

राजनीति-परिचय—केशव को राजनीति का भी अच्छा ज्ञान था। 'रामचन्द्रिका' ग्रन्थ के १७वें प्रकाश में राजन के मन्त्री ने चार प्रकार के राजा चार भाँति के मंत्री और चार ही प्रकार के मन्त्रों का विवेचन किया है (छं० २१ २६)। इसी ग्रन्थ के ३२वें प्रकाश में भी राज्य विवरण के उपरान्त रामचन्द्र की से पुत्रों एवं मन्त्रीयों की राजनीति की शिक्षा दिखाई गई है (छं० २२ ३६)। 'विज्ञानपीठा' के ८वें प्रभाव में भी संक्षिप्त रूप से राज-धर्म का वर्णन किया गया है और 'वीरसिंहदेव-चरित' में तो ३१वाँ सम्पूर्ण प्रकाश ही राज धर्म वर्णन में खन गया है। इस विषय पर संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है।

धर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र-परिचय—धर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र का भी केशव को कुछ परिचय अवश्य था। 'रामचन्द्रिका' के २१वें प्रकाश में दान के सात्त्विक राजसिक और तामसिक तथा उत्तम मध्यम और अधम नामक चारों का वर्णन किया गया है (छं० २-७)। साथ ही 'नित्यदान' और 'भौमसिद्धिदान' का भी उल्लेख किया गया है (छं० ८)। इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित' के २५वें प्रकाश में भी दान के इन्हीं चारों का निरूपण हुआ है।^२ सम्पूर्ण वर्णन शास्त्रसम्मत ही हुआ है। प्राणायाम

- १ रामदास मुनि भेरी गाथ । यह साहिबी ईश के हाथ ॥
स्वर्ग नर्क दसहु विधि पावै । काहु की कोठ बरैन पावै ॥
रंकहि राजा होत न बार । राजा रंक जयेति अपार ॥

—छं० २५ पृ० ५ ।

- २ तीन प्रकार कहावत दान । सत्य रजोगुन तपो निधान ॥
पात्र मुक्तिप्रदि दीवो दान । देस कास सो सात्त्विक जान ॥
अमाचार साधार ध्यानु । मूरख पक्षी कि साधु पसाधु ॥

इत्यादि का प्रसंग केदार ने 'विज्ञानगीता' तथा 'रामचन्द्रिका' में उठाया है जिसका विवेचन धार्ये किया गया है ।

व्यसनशास्त्र-परिचय—'विज्ञानगीता' के आधार पर यह कहना अत्युक्ति में होमी कि केदार ने वर्जितशास्त्र-सम्बन्धी धर्मों का खूब मनन किया था । इस धर्म में ईश्वर-जीम-सम्बन्धी प्रश्न का विस्तृत विवेचन हुआ है । 'रामचन्द्रिका' के २४वें प्रकाश में भी 'रामविरचित-वर्णन' और 'बीबीद्वार-रोति' के अन्तर्गत इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है ।

संगीतशास्त्र-परिचय—केदार ने संगीत मूल्य धारि के सिद्धांतों का शास्त्रीय पद्धति पर अध्ययन किया था । 'रामचन्द्रिका' तथा 'बीरसिंहदेव चरित' में गान सम्बन्धी शास्त्रीय बातों एवं नृत्य के अनेक भेदों का जो निरूपण केदार ने किया है उससे इस विषय का उनका ज्ञान प्रकट होता है । केदार का समीतशास्त्र-सम्बन्धी स्वर, नाद धाम आदि शास्त्रीय बातों से परिचय निम्नांकित छन्द से विदित होता है^१ । नृत्य के मुख्यधामि सम्बन्धि जड़दुपानि तियमपति पति धडास नाम धाड्य परमान उनका टेंकी, धामन दिड पदपतटी हुरमयी निधक तथा बिड नामक १७ भेदों का भी केदार ने वर्णन किया है (रा० प ३० छ० १) । इसी प्रकार 'बीरसिंहदेव-चरित' में भी समीतशास्त्र-विषयक नार धाम स्वर धाम तय ममक कला मुर्छना आदि शास्त्रीय सिद्धांतों एवं सम्बन्धि टेंकी धडास उनका धामन दिड हुरमति निधक आदि मूल के भिन्न भिन्न भेदों का निरूपण हुआ है (बी० दे ४० पु० १२३) ।

इतिहास-पुराण-परिचय—केदार ने रामायण महाभारत और पुराणों का अध्ययन ही अध्ययन किया होगा । पुराण-वृत्ति केदार के रस की प्राचीनिका ही थी । उनके प्रायः सभी धर्मों में अन्तर्गत रामायण महाभारत और पुराण धारि की कथाओं का उक्ति उपलब्ध होता है । इस प्रकार के तीन छन्द नीचे दिये जाते हैं—

१. धामि निधो धामिराम धर्मों कर धुली के धूल कपाल धली है ।
काम धर्मो जग धाम पर्यो बहि देय धर्मो धिध हाता हली है ।
तिधु धर्मो किन धामो धर्मो कहि देशध इध कुभास धली है ।
राम ह की हरी राबल धाम, धर्म धुग एक धर्म्य धली है ।
(क० धि ३० १ अ १४)

विध होत धर धुग धनुष्य । धर्मि विध धतिवि की धप ॥
धाधुन धिध देय धुग धाम । धर्मों कहिये धामधु धाम ॥
विध धडा धक देध धिधान । धाम देहि धं धामध धाम ॥
दीध्यी धामि धीनि धनुषार । उधम धध्यम धधम धिधार ॥

—बी० दे ४० पु० १२४

१. स्वर नाद धाम नृत्यत धतात । धुध धरन धिधिध धामध धाम ॥

कला धामि धुधधना धामि । धधमध धमक धुध धमध धामि ॥

—रा० प ३० छ० १

वास्तविकता—ईश्वर में भी केसव की पूर्ण भासा थी। 'वीरसिंहदेव चरित' में एक स्थान पर केसव सलीम के मुँह से कहलवाते हैं कि यह साहिबी ईश के हाथ है। कोई किसी की ही हुई नहीं पाता। एक से राजा और राजा से एक होते कुछ देर नहीं चलती^१।

केसव की जानकारी

केसव के बंध में संस्कृत-साहित्य के पाण्डित्य की परम्परा बहुत दिनों से चली आती थी इसका उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। केसव ने स्वयं भी संस्कृत का विस्तृत अध्ययन किया था और उसमें उनकी बहुतों पैठ थी। धर्मकार तथा काव्यशास्त्र के वे प्राचार्य थे। छन्दशास्त्र का ज्ञान भी उनका व्यापक एवं विस्तृत था। साहित्यिक ज्ञान के साथ लोकज्ञान भी उनमें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। लोक ज्ञान का कोई भी ऐसा विषय न था जहाँ उनकी बोझी-बहुत पहुँच न हो। इसके अतिरिक्त राजनीति वर्मनीति वर्मशास्त्र योगशास्त्र दर्शनशास्त्र संकीर्णशास्त्र पुराण इतिहास आदि विषयों की भी केसव को पुरी-पुरी जानकारी थी। केसव के ग्रन्थों में इन विषयों से सम्बन्धित तथ्यों एवं बातों का यथ-स्थ उल्लेख मिलता है।

राजनीति-परिचय—केसव की राजनीति का भी अच्छा ज्ञान था। 'रामचन्द्रिका' ग्रन्थ के १७वें प्रकाश में रावण के मन्त्री ने चार प्रकार के राजा चार माँति के मन्त्री और चार ही प्रकार के मन्त्रों का विवेचन किया है (छं० २१ २६)। इसी ग्रन्थ के ३२वें प्रकाश में भी राज्य विवरण के उपरान्त रामचन्द्र की से पुत्रों एवं मंत्रीजों की राजनीति की शिक्षा दिखाई गई है (छं० २२ ३६)। 'विज्ञानवीठा' के २वें प्रभाव में भी संक्षिप्त रूप से राज-वर्म का वर्णन किया गया है और 'वीरसिंहदेव चरित' में तो ३१वाँ सम्पूर्ण प्रकाश ही राज वर्म वर्णन में सन गया है। इस विषय पर संविस्तर आगे विचार किया गया है।

वर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र-परिचय—वर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र का भी केसव को कुछ परिचय अवश्य था। 'रामचन्द्रिका' के २१वें प्रकाश में दान के सात्त्विक राक्षसिक और तामसिक तथा उत्तम मध्यम और अधम नामक चारों का वर्णन किया गया है (छं० २-७)। साथ ही 'नित्यदान' और 'भौमिष्ठिक दान' का भी उल्लेख किया गया है (छं० ८)। इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव चरित' के २८वें प्रकाश में भी दान के इन्ही चारों का विवरण हुआ है।^२ सम्पूर्ण वर्म शास्त्रसम्मत ही हुआ है। प्राणायाम

- १ रामदास मुनि मेरी गाथ। यह साहिबी ईश के हाथ ॥
स्वयं मर्क बसतू बिसि चारै। काहू की कोठ बरि न पारै ॥
रंकहि राजा होत न बार। राजा रंक भयेति उपार ॥

—श्रुति ५३।

- २ तीन प्रकार कहावत दान। उत्तम रजोगुन समो दिवान ॥
पात्र भुविप्रहि बीजो दान। देस काल सो सात्त्विक जान ॥
अनाचार साचार अगाध। मूरख पक्षी कि साधु अगाध ॥

इत्यादि का प्रत्येक केदार ने 'विज्ञानपीठा' तथा 'रामचन्द्रिका' में उठाया है, जिसका विवेचन आगे किया गया है।

व्याख्यान-परिचय—'विज्ञानपीठा' के आधार पर यह कहना व्यर्थ नहीं होगी कि केदार ने वचनशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों का पूरा मनन किया था। इस ग्रन्थ में ईश्वर-जीव-सम्बन्धी प्रश्न का विस्तृत विवेचन हुआ है। 'रामचन्द्रिका' के २४वें प्रकाश में भी 'रामविरचित-वर्णन' और 'जीवोद्धार-रीति' के अन्तर्गत इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

संगीतशास्त्र-परिचय—केदार ने संगीत नृत्य आदि के सिद्धान्तों का शास्त्रीय पद्धति पर अध्ययन किया था। 'रामचन्द्रिका' तथा 'वीरसिंहदेव चरित' में मान सम्बन्धी शास्त्रीय बातों एवं नृत्य के अनेक भेदों का भी निरूपण केदार ने किया है जससे इस विषय का उनका ज्ञान प्रकट होता है। केदार का संगीतशास्त्र-सम्बन्धी स्वर, गान आदि शास्त्रीय बातों से परिचय निम्नांकित छन्द से विदित होता है। 'नृत्य के मुख्यभाषि शब्दभाषि उद्गुपानि त्रिषवपति पति प्रकाश साय चाठ चापरंगाम उसका ऐंकी घालम दिड पपपमदी हुरमपी निराक तथा बिड नामक १७ भेदों का भी केदार ने वर्णन किया है (रा० च० प्र० १ छ० १)। इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव चरित' में भी संगीतशास्त्र-विषयक गान गान स्वर गान लय गमक कला मूर्च्छना आदि शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं शब्दभाषि टेंकी प्रकाश उसका आनम दिड हुरमति निराक आदि नृत्य के भिन्न भिन्न भेदों का निरूपण हुआ है (वी० दे० च० पृ० १२१)।

इतिहास-पुराण परिचय—केदार ने रामायण महाभारत और पुराणों का अवरुद्ध ही अध्ययन किया होगा। पुराण-वृत्ति केदार के बंध की घाजीबिका ही थी। उनके प्रायः सभी ग्रन्थों में यत्र-तत्र रामायण महाभारत और पुराण आदि की कथाओं का संकेत उपलब्ध होता है। इस प्रकार के तीन छन्द नीचे दिये जाते हैं—

१. जानि विष्णो जलिराज बंध्यों कर धूनी से शूल कपाल बली है।

काल बरुयो जय काल बरुयो बंदि शेष बरुयो विष हाता हुनी है।

तिथु मय्यो किन काली मय्यो कहि बेछाव इन्द्र कुबाल बली है।

राम हू की हरी राजल बाग बहुत सुग एक अदृष्ट बली है।

(क प्रि० प्र० १ छ० १४)

विज्र होत जग सुग अनुकप । ताते विष घटिनि की बप ॥

घातुन देय देय सुग दान । तासों कहिँ राजमु बाज ॥

दिन भया भय बर विधान । बाज देहि ते तामस दान ॥

सीन्दी सीनि सीनि अनुसार । उत्तम मध्यम अधम विचार ॥

—वी दे० च० पृ० १२०।

१. स्वर गान गान नृत्यत सताल । सुभ बरन विविध आमाय काल ॥

बहु कला जाति मूर्च्छना मानि । बड़नाग समक सुभ चलत जानि ॥

—छ प्रि० प्र० २० छ० ३।

भास्तिबता—ईश्वर में भी केसव की पूर्ण भास्पा थी। 'बीरसिंहदेव-चरित' में एक स्थान पर केसव क्षत्रीय के मुँह से कहलवाते हैं कि यह साहिबी ईश के हाथ है। कोई किसी की ची हुई नहीं पाता। रक से राजा और राजा से रंक होते कुछ बेर नहीं समझी^१।

केसव की जानकारी

केसव के मन में संस्कृत-साहित्य के पाण्डित्य की परम्परा बहुत दिनों से बनी घाटी थी इसका उत्प्रेक्ष्य पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। केसव ने स्वयं भी संस्कृत का विस्तृत अध्ययन किया था और उसमें उनकी गहरी पक थी। जनकार तथा काव्यशास्त्र के वे प्राचार्य थे। छन्दशास्त्र का ज्ञान भी उनका व्यापक एवं विस्तृत था। साहित्यिक ज्ञान के साथ लोकज्ञान भी उनमें पर्याप्त मात्रा में विकसित था। लोक ज्ञान का कोई भी ऐसा विषय था जहाँ उनकी थोड़ी-बहुत पहुँच न हो। इसके प्रतिरिक्त राजनीति धर्मनीति वनशास्त्र योगशास्त्र वनशास्त्र धर्मशास्त्र पुराण इतिहास आदि विषयों की भी केसव को पूरी-पूरी जानकारी थी। केसव के ग्रन्थों में इन विषयों से सम्बन्धित ठप्पों एवं बातों का यथ-यथ उल्लेख मिलता है।

राजनीति-परिचय—केसव को राजनीति का भी अच्छा ज्ञान था। 'रामचरित' ग्रन्थ के १७वें प्रकाश में राजव के मन्त्री ने चार प्रकार के राजा चार भाँति के मन्त्री और चार ही प्रकार के मन्त्रों का विवेचन किया है (छं० २१ २६)। इसी ग्रन्थ के १८वें प्रकाश में भी राज्य विस्तार के उपरान्त रामचन्द्र की से पुत्रों एवं भतीजों को राजनीति की शिक्षा बिसाई गई है (छं० २६ ३६)। 'विज्ञानगीता' के ६वें प्रमाण में भी संक्षिप्त रूप से राज-वर्म का वर्णन किया गया है और 'बीरसिंहदेव चरित' में तो ३१वाँ सम्पूर्ण प्रकाश ही राज-वर्म वर्णन में लग गया है। इस विषय पर संविस्तर जाने विचार किया गया है।

वर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र-परिचय—वर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र का भी केसव को कुछ परिचय अवश्य था। 'रामचरित' के २१वें प्रकाश में वान के धार्मिक राजसिद्ध और रामसिद्ध तथा उत्तम मन्त्रम और धर्म नामक दोहों का वर्णन किया गया है (छं० २-७)। साथ ही 'नित्यदान' और 'नैमित्तिक दान' का भी उल्लेख किया गया है (छं० ८)। इसी प्रकार 'बीरसिंहदेव-चरित' के २८वें प्रकाश में भी वान के इन्हीं दोहों का निरूपण हुआ है।^२ सम्पूर्ण वर्णन शास्त्रसम्मत ही हुआ है। मान्यमान

- १ रामदास मुनि मेरी भाब। यह साहिबी ईश के हाथ ॥
स्वयं तर्क दसहु विधि जाई। काहु की कोठ बई न पाई ॥
रंकहि राजा होय न बार। राजा रंक भवति सपार ॥

—२० ई० ब० पृ ५ ।

- २ तीन प्रकार कहावत वान। सत्त रजोगुन तपो निधान ॥
पाव सुविप्रहि बीजो वान। रैत कास सो सात्विक वान ॥
भगत्पार साचार भगवतु। भूरक्त पद्यों कि साधु भसाधु ॥

इत्यादि का प्रथम केदार ने 'विज्ञानपीठा' तथा 'रामचन्द्रिका' में उठाया है जिसका विशेषण आगे किया गया है।

वैज्ञानशास्त्र-परिचय—विज्ञानपीठा के आधार पर यह कहना पर्याप्त न होमा कि केदार ने वर्तमानशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों का सूत्र मनन किया था। इस ग्रन्थ में ईश्वर-जीव-सम्बन्धी प्रश्न का विस्तृत विवेचन हुआ है। 'रामचन्द्रिका' के २४वें प्रकाश में श्री 'रामचन्द्रिका-वर्णन' और 'जीवोद्धार रीति' के अन्तर्गत इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

संगीतशास्त्र-परिचय—केदार ने समस्त नृत्य आदि के सिद्धान्तों का शास्त्रीय पद्धति पर अध्ययन किया था। 'रामचन्द्रिका' तथा 'वीरसिंहदेव चरित' में गान सम्बन्धी शास्त्रीय बातों एवं नृत्य के अनेक भेदों का जो निरूपण केदार ने किया है उससे इस विषय का उनका ज्ञान प्रकट होता है। केदार का संगीतशास्त्र-सम्बन्धी स्वर, नाद ग्राम आदि शास्त्रीय बातों से परिचय निम्नांकित छन्द से विदित होता है^१। नृत्य के मुख्यचालि सव्यचालि उद्धृष्टपाणि तिर्यगपति पति अङ्गल नाग धात रापरदान उसवा टोंकी आसम बिड परपमटी हुरमयी निर्यक तथा बिड नामक १७ भेदों का भी केदार ने वर्णन किया है (रा० चं० प्र० १० छं० २)। इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित' में भी संगीतशास्त्र-विषयक नाद ग्राम स्वर ताल मय ममक कला मूर्च्छना आदि शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं सव्यचालि टोंकी अङ्गल उसवा आसम बिड हुरमति निर्यक आदि नृत्य के भिन्न-भिन्न भेदों का निरूपण हुआ है (वी० दे० चं० पृ० १२३)।

इतिहास-पुराण-परिचय—केदार ने रामायण महाभारत और पुराणों का अध्ययन ही अध्ययन किया होगा। पुराण-वृत्ति केदार के बंस की धात्रीविना ही थी। उनके प्रायः सभी ग्रन्थों में यज्ञ-तज्ञ रामायण महाभारत और पुराण आदि की कथाओं का संकेत उपलब्ध होता है। इस प्रकार के तीन छन्द नीचे दिये जाते हैं—

१ बालि बिम्बो बलिराव बंम्बों कर सूनी के धूल कपाल घली है।

काम बर्यो जय काम बर्यो बहि शेष बर्यो जिय हाता हली है।

तिधु मम्बो किल कालो नम्बो कहि केशव इन्द्र कृपाल बली है।

राम हू की हरी रावण बाम, बहु युग एक प्रकृष्ट बनी है।

(क० प्रि० प्र० १ छं० २४)

विप्र होत जय जूग धनुक्य। तारीं विप्र प्रविधि की रूप ॥

धापुन हैय हैय जूग बान। तारीं कहियै राजसु बान ॥

बिन मट्टा धक बेर बिमान। बान देहि ते तामस बान ॥

धोग्यो सीनि सीनि अनुसार। उत्तम मध्यम अथम बिचार ॥

—वी० दे० चं० पृ० २२७।

२ स्वर नाद ग्राम नृत्यत लतास। गुप्त वरन विविध धानाप काम ॥

बहु कला जाति मूर्च्छना यानि। बड़नाग यमक गुप्त अमरत जामि ॥

—रा० चं० प्र० १ छं० ३।

- १ आसींचि, सिमुचि पावक सों नातो कहु
 हुनो प्रह्लाद सों पिता को प्रेम हुनो है ।
 होयवी की देखें सुनो हो कहा कुआसन,
 करोई जिसानो जेहि वसप न कुनो है ।
 पैठ में परीक्षित की चठि कैं बचाई नीचु,
 जब सवही को जल बिबिधान सुनो है ।
 केवल समान को नाथ जो न रघुनाथ,
 हाथी कहा हाथ कैं हप्पार करि छुनो है ॥
 (क० जे० प्र० ११ अं ११)

तथा

- १ गां हो बिछवनाथ सर्व सममान हो,
 बंजिरा गिरा बिरा गिरीश के समान हो ।
 कस्यपु कि बन्ध कैं प्रवेष्ट देख बंधियो
 जानु हो कि कहु सुनि गुरुपु पुण्य बंधियो ॥
 (वि० बी०, प्र० १६, अं० १०)

केदार का इतिहास से भी अच्छा परिचय था। उनके इतिहास ज्ञान की चर्चा माने की गई है।

ज्योतिष-परिचय—‘रामचरितका’ में महाराज रामचन्द्र के मन्त्रविद्या-वर्णन का प्रसंग केदार के ज्योतिष ज्ञान का सूचक है। ज्योतिष के अनुसार कतरपाड़ शवण घोर भविष्या के कुछ अंश मकर राशि में पड़ते हैं। इसी तथ्य का आभास निम्न लिखित छन्द में मिलता है^१।

बैद्यक-परिचय—‘रामचरितका’ में परशुराम के मुख से वैद्यक-सम्बन्धी सामान्य ज्ञान का जो परिचय दिलाया गया है उससे ज्ञात होता है कि केदार को वैद्यक का बोझा-बहुत ज्ञान अवश्य था। वैद्यक के अनुसार बिज खाए हुए व्यक्ति का उपचार रक्त भृत मक्का सुषा (बुने का पानी) दिलाया है। परशुराम के अनुसार नेह्यराज सहस्राक्ष न का मांसस्त्री हवाह्व खाया जा उसके अंग के लिए छठे शतक राबाओं की चर्बी भृत के समान चोसकर पिलाई गई किन्तु बिज की शान्ति न हुई। अब राम की रक्तकपी सुषा का पात्र ही एकमात्र उपचार है^२। इस प्रकार की ज्योतिष

- १ अथवा मकर-कुंडल अस्त सुख सुखया एकत्र ।
 अथि समीप सीद्धत मनो शवण मकर मखन ॥

—रा० अं० प्र० ६, अं० ५६।

- २ केदार हैह्यराज को मांस हवाह्व कौरव जाय तियो रे ।
 तातनि मेव महीपथ को भृत चोरि दियो न शिरायो दियो रे ॥
 मेरो कछरी करि भिज कुठार को बाहुत है बहुकाल दियो रे ।
 छी ली नहीं सुख जी सब तु न रघुवीर को योभ सुषा न दियो रे ॥

—रा० अं० प्र० ७, अं० ११।

बैद्यक-सम्बन्धी उक्तियों को देखकर स्व० सा० भगवानवीन ने केदार को बैद्यक का पूर्ण ज्ञाता ही मान लिया था। हमारे विचार से तो ऐसी सामान्य बातों का ज्ञान तो सभी को होता है। इसके लिए धामुर्वेदाचार्य होने की कोई आवश्यकता न थी।

अरुण शस्त्र तथा हृदय-गज परिचय—केदार ने 'रामचरित्रिका' में उन्नीसवें प्रकाश के ४६वें छन्द में मूसल पट्टिघ (बाँझा) परिघ (गंड़ासा) घघि तोमर (घाघसा) फरसा कृत (बरछी) धूम गदा मिदिपाल (डेलबाँध, फन्नी) मोगरा (मुखर) कटार, मेजा अंकुश बक्र, घमिल (घाँघा) धौर बाण भादि अरुण शस्त्र गिनाए हैं जो उनके इस विषय के ज्ञान के परिचायक हैं। इसके अतिरिक्त केदार हृदय-गज घादि के कलकों से भी परिचित थे। 'बीरसिंहदेव चरित' में 'हृदयसा-वर्णन' के अंश के अन्तवत् केदार ने जोड़ों की जाति धौर उनकी विदोषताओं घादि का सविस्तर वर्णन किया है (पृ० ११०-११२)। कविप्रिया में केदार ने संक्षेप में अस्त्रों के अतिरिक्त हाथियों के गुणों का भी उल्लेख किया है^१।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निश्चयता है कि केदारदास का व्यक्तिगत निरूपण ही भावुकता अध्ययन एवं अनुभव से समुदाय था।

१ तरल सतारि, ठैजपति मुक्त मुक्त सप्त दिन देखि ।

देघ, सुवेरा सुलसने बरगहु बाजि विदीलि ॥

मत्त महाजल हाथ में मँद जलनि जल कर्ष ।

मुक्तामय दम कुंभ दाम सुन्दर धूर, सुवर्ष ॥

क वि प्र० = अ० १२, २० ।

तीसरा अध्याय केशव के ग्रन्थ

(संख्या, प्रामाणिकता, रचनाकास और विभाजन)

केशव के ग्रन्थों और उनकी संख्या के विषय में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों एवं विद्वानों में मतभेद है। केशवदास के ग्रन्थों का सर्वप्रथम सम्लेख कांशीवी विद्वान् गार्गा व ठासीकृत 'इस्तबार ब ना बित्तपत्तूर ऐंहुई ए ऐंहुस्तानी' में मिलता है। ठासी ने केशवदास-कृत घाठ ग्रन्थों का सम्लेख किया है। उनके नाम हैं—रामचन्द्रिका कविप्रिया रसिकप्रिया, विज्ञानपीठा एकादशी वा (का) पंच (केव?), भक्त भीलामृत बीमिनी भारत तथा सतसई रोहरा^१। विद्वान् मेहता ने यह नहीं लिखा है कि अन्तिम चार रचनाओं को केशव-कृत मानने के लिए उनके पास क्या प्रमाण और आधार है। हिन्दी साहित्य के किसी भी इतिहास-ग्रन्थ प्रथम नापटी प्रचारिणी सभा की लोक रिपोर्ट में इनके केशव कृत होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। ठासी ने खुद से उन्हें आनोध्य केशव द्वारा रचित मान लिया है। इसके बाद 'द्विर्वाहि-संराज' में केशव के ग्रन्थों का सम्लेख उपलब्ध होता है। सरोजकार लिखत है—

(केशवदास सनाध्य मिथ है) प्रथम मङ्गुकर साह के नाप से विज्ञानगीता ग्रन्थ बताया और कविप्रिया ग्रन्थ प्रवीणराम पातुर के लिए रचा। रामचन्द्रिका राजा मङ्गुकर साह के पुत्र इन्द्रजीत के नाम से बनाई और रसिकप्रिया साहित्य और राम-असंख्य-मंजरी-पिकल—ये दोनों ग्रन्थ विद्वज्जनों के उपकारार्थ रचे^२। इस प्रकार सरोजकार के अनुसार केशव के ग्रन्थों की संख्या पाँच ठहरती है। सरोज में उल्लेखित उपर्युक्त ग्रन्थों के कुछ उदाहरण भी उद्धृत किये हैं^३। इन उदाहरणों के प्रतिरिक्त उन्होंने पाँच फुटकर पद्य भी दिये हैं^४। सरोजकार ने 'विज्ञानगीता' को केशव की स्वप्रथम रचना क्यों माना है इसका उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया है। अन्त-साध्य से इसका समर्थन नहीं होता। विमल महोदय ने भी सरोजकार के आधार पर उनके ग्रन्थों की संख्या पाँच ही रखी है। नाम और कम में भी कोई अन्तर नहीं

१. शिबुई साहित्य का इतिहास पृ. ४१-४२।

२. शिबुई सरोज, पृ. १०-११।

३. पृ. १, १८-१९।

४. पृ. १, १०-११।

है^१। डा० सुयकान्त साहनी^२ पं० लक्ष्मजीलाल मिश्र^३ तथा सूर्यनाथरायन शीमित^४ आदि विद्वानों ने श्री सम्भवतः सरोजवार ही के आधार पर केदार के इन्हीं पाँच ग्रन्थों के नामों का उल्लेख किया है। मिश्रबाबुधों ने केदार के ग्रन्थों की संख्या घाठ रखी है। उनके नाम इस प्रकार हैं—रसिकप्रिया कविप्रिया रामचन्द्रिका विज्ञानपीठा बीरसिंहदेव चरित जहाँगीर-अस चन्द्रिका नखसिख घोर रतनबावनी। अन्तिम दो ग्रन्थों के विषय में लिखा है कि उन्होंने इनको नहीं देखा^५। हो सकता है उन्हें इनकी सूचना-मात्र ही मिली हो। उन्होंने अपने 'हिन्दी नवरत्न' में घाठ के स्थान पर साठ ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उनके नाम ये हैं—रसिकप्रिया विज्ञानपीठा कविप्रिया रामचन्द्रिका बीरसिंहदेव चरित जहाँगीर-अन्द्रिका घोर नखसिख। इन ग्रन्थों के परिचित उन्होंने केदार द्वारा कुछ स्फुट छन्दों के सिखे जाने का भी उल्लेख किया है^६। इससे विदित होता है कि इनको 'हिन्दी नवरत्न' की रचना के समय 'नखसिख' तो देखने को मिल गया हो पर 'रतनबावनी' देखने को न मिली हो। इस प्रकार 'रतनबावनी' का उल्लेख न होने से ग्रन्थों की संख्या घाठ के स्थान पर साठ ही रह गई। ग्रन्थों की संख्या साठ ही मानने के विषय में मिश्रबाबु स्वयं सर्वथा भौन ही हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी कविता कौमुदी (प्रथम भाग) में केदार के घाठ ग्रन्थों का उल्लेख किया है^७। उनके नाम घोर कम मिश्रबाबुधों के समान ही हैं। एक० ई के ने श्री 'सरोज के आधार पर केदार के पाँच ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है। वे हैं—विज्ञानपीठा कविप्रिया रामचन्द्रिका रसिकप्रिया घोर राम चरितकृत मंजरी (विगम)^८। श्री गौरीशंकर द्विवेदी ने अपने 'सुकवि सरोज' (प्रथम भाग) में केदार के ७ ग्रन्थों के नाम दिये हैं—रसिकप्रिया रामचन्द्रिका कविप्रिया विज्ञानपीठा बीरसिंहदेव चरित जहाँगीर-अन्द्रिका घोर रतनबावनी। 'राम चरितकृत मंजरी' को वे लुप्त बतलाते हैं। उन्होंने 'नखसिख' का कोई उल्लेख नहीं किया है^९। हमने उनसे स्वयं पुष्टावधि की है पर वे कहते हैं कि उक्त दोनों ही ग्रन्थ उन्होंने नहीं देखे। स्वयं रामचन्द्र सुबल^{१०} डा० रामकुमार वर्मा^{११} आदि सभी हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने केदार द्वारा रचित साठ ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

१ दि. महर्षि कर्मासुर मित्र के मांड हिन्दुस्थान पृ. १५।

२ हिन्दी साहित्य का विश्वकोशमय इतिहास, पृ. १०।

३ सरस्वती संस्था १९, भाग ४ दिसम्बर सन् १९०३ ई० पृ० ४१ 'कवि केदारराय मिश्र सारंग मेख।

४ भागरी-मन्थारिणी गौड़का भाग ११ पृ. १६९, समग्रग्रंथों में प्राचीन ग्रंथ (मक १ का अध्याय)।

५ मिश्रबाबु विजय (प्रथम भाग) पृ० २१२।

६ हिन्दी नवरत्न पृ. ४६३।

७ कविता कौमुदी (प्रथम भाग) पृ० १६५।

८ हिन्दी व्याक हिन्दी मित्र, पृ. १४।

९ सुकवि सरोज, भा. भा. पृ. १६।

१० हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. २३३।

११ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ६९६।

उनके नाम ये हैं—रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका, कविप्रिया, बीरसिंहदेव-परित, विज्ञान गीता, रतनबावनी और जहाँगीर-जय चन्द्रिका । डा० रामकुमार वर्मा ने 'नवसिख' का भी उल्लेख किया है । इसके विषय में वे लिखते हैं कि सा० भगवानदीन जी के अनुसार उनका साठवाँ ग्रन्थ 'नवसिख' है जिसका कोई विषय मशहूर नहीं है^१ । छत्रपुर-निवासी योनिनारायण जी के अनुसार केदार के सात ग्रन्थों का नाम है—रसिकप्रिया कविप्रिया रामचन्द्रिका विज्ञानगीता राम-भक्तकृत-मंजरी, रतनबावनी और बीरसिंहदेव-परित^२ । बात पड़ता है कि उन्होंने रचना कम का कोई ध्यान नहीं रखा है । श्री परमेश्वर प्रसाद द्विवेदी ने इन ग्रन्थों के प्रतिरिक्त साठवें 'नवसिख' का और उल्लेख किया है । 'राम-भक्तकृत-मंजरी' के विषय में वे लिखते हैं कि यह ग्रन्थ न तो अभी प्रकाशित ही हुआ है और न इसकी कोई प्रति लम्ब है^३ । स्व० सा० भगवानदीन ने केदार के जिन ग्रन्थों का उल्लेख किया है उनके नाम ये हैं—रत्न-शास्त्र का कोई एक ग्रन्थ राम-भक्तकृत-मंजरी, जहाँगीर-चन्द्रिका बीरसिंहदेव-परित रतनबावनी रसिकप्रिया, कविप्रिया रामचन्द्रिका विज्ञानगीता तथा नवसिख । उन्होंने साथ ही यह भी लिखा है कि उनके फुटकर कथ भी जहाँ-तहाँ देखने-सुनने में पाते हैं^४ । स्व० डा० कामधुन्धरदास ने भी भाषा जी द्वारा निर्दिष्ट ग्रन्थों का ही उल्लेख किया है^५ ।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित ग्रन्थ

नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०० की खोज-रिपोर्ट नं० २२ में केदार बासमिश्रकृत कविप्रिया रसिकप्रिया विज्ञानगीता रामचन्द्रिका और रामभक्तकृत मंजरी नामक पाँच ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है^६ । सन् १९०१ की खोज-रिपोर्ट में केदारबासमिश्र-कृत छ ग्रन्थों के नाम मिलते हैं 'रामचन्द्रिका', 'नवसिख', 'रसिकप्रिया', 'जहाँगीर जय चन्द्रिका', 'बीरसिंहदेव-परित'^७ और 'रतनबावनी'^८ । सन् १९०६ १९०७ की खोज-रिपोर्ट में भी केदारबास मिश्र द्वारा रचित छ ही ग्रन्थों का उल्लेख उपलब्ध होता है, विज्ञानगीता, कविप्रिया रसिकप्रिया रामचन्द्रिका रतनबावनी

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १६६ ।

२. जज्ञी, साग ७ पंक्त ४ तथा १०, 'दुन्दुभसम्पन्न उपमाया' शीर्षक लेख ।

३ हिन्दी के कवि और काल प्र भा ३ १८६ १८६ ।

४ केदार-वन्दन, आध्यात्मिक-केदार के ग्रन्थ पृ० ७ ।

५ हिन्दी साहित्य, पृ० १६६ ।

६ सा० प्र स खोज-रिपोर्ट ३ ४३ ।

७. पृ० १ ।

८. पृ० ३३ ।

९. पृ० १ ।

१०. पृ० ३३ ।

११. पृ० १ १७७-१७८ ।

१२. पृ० १ १७८ ।

तथा वीरसिंहदेव-चरित^१। सन् १९१७-१९१८ की खोज रिपोर्ट नं० ६६ 'घ' खीर
 'अ' एवं रि० नं० ८२ 'स' में 'रसिकप्रिया' रि० नं० ६२ 'ब' खीर रि० नं० ६६
 में 'कविप्रिया' तथा रि० नं० ८२ 'य' में 'विज्ञानगीता' का केसवदास-पुत्र होगा
 सिद्ध है। सन् १९२१ की खोज-रिपोर्ट नं० २११ 'अ' खीर सन् १९२७ की खोज
 रिपोर्ट नं० ८२ में केसवदास-पुत्र 'वारहमाता' नामक ग्रन्थ का भी विवरण प्राप्त
 होता है। खोज रिपोर्टों में केसवदास के नाम से उपलब्ध उपर्युक्त ग्रन्थों के प्रतिरिक्त
 केसोराइ केसवरान शब्दा केसव के नाम से भी कुछ ग्रन्थ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता
 है। उनके नाम इस प्रकार हैं अमुन की कथा (केसोराइ-कृत)^२ हनुमान जगन्नीला
 खीर भागिचरित (केसव-कृत)^३ रसमिथ (केसवदास-कृत)^४ तथा कृष्ण-नीला
 (प्रभुप-नेशन उपहृष्ट कृत)^५।

केसवदास की धर्मवीर्य—खोज रिपोर्ट में उल्लिखित ग्रन्थों के प्रतिरिक्त
 केसवदास के नाम से धर्मवीर्य नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ भी देखने में आता है।
 इस ग्रन्थ में ११ पृष्ठ तथा ७७ पद्य हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ रायचरण (२१ पद्य) कुटुम्बर
 चण्ड (१६), रसदा (६) और साही (११) नामक धर्मवीर्यों में विभक्त है। इस
 ग्रन्थ का बीया संस्करण सन् १९३१ में हैपवेरिचर स्टीम प्रिंटिंग प्रक स इलाहाबाद
 से प्रकाशित हुआ था।

केसवदास का धर्मशास्त्र का नवीन ग्रन्थ—धर्मशास्त्र—बीकानेरनिवासी
 श्री मदनचन्द नाहटा के सीनियर से हमें केसवदास की धर्मशास्त्र पर लिखी एक
 नवीन रचना 'धर्मशास्त्र' का पता चला है जिसका उल्लेख अभी तक कहीं नहीं
 हुआ। जहाँ से हमें इस ग्रन्थ की प्रतिनिधि उपलब्ध हुई है। इसी ग्रन्थ की एक
 हस्तलिखित प्रति^६ हमें शुक्रगुप्ती सिधि में भी मिली है जिसके प्रथम पृष्ठ का छोटा
 मिष्ट सामने दिया गया है। पाठकों क धनोक्तान्त जसकी देवनागरी प्रतिनिधि भी
 'परिचिन्त' में जोड़ दी गई है। यह प्रति जहाँ-तहाँ पाठशेख के साथ देवनागरी सिधि
 में लिखित धारोच्य प्रति से विलक्षण मिलती है। उक्त प्रति का निम्न विवरण इस
 प्रकार है—

यह समस्त ग्रन्थ २४ पन्नों में समाप्त होता है। इसका साईज ६ १/२" X १"
 है। दोनों ओर हाथिये छोड़े हुए हैं। हाथियों तथा दोनों को कीड़ों से साया हुआ
 है। इसी प्रति में ग्रन्थ के दो पन्नों में पाँच कविता भी दिए हुए हैं। ग्रन्थ में निर्माय
 काम प्रतिनिधिकाल शब्दा प्रतिनिधिकार का कोई उल्लेख नहीं है।"

१ या म तथा खोज-रिपोर्ट १०७।
 २ यही सन् १९१७-१९१८।

३ मागन्ति-प्रचारिणी सभा खोज-रिपोर्ट, म १४२ 'अ' खीर 'ब' सन् १९०६ (१९११)।
 ४ जगन्ति-प्रचारिणी सभा खोज-रिपोर्ट नं० १४६ सन् १९०६ (१९११)।
 ५ यही 'ब' ८१ सन् १९१०-१९११।
 ६ यह मलि इने मरेख कालेख बरिदास के कथावी विभाग के अध्यक्ष तथा हमारे लक्ष्यो-
 ध्यायक सरदार प्रोत्तमसिंह के सीनियर से मिली है।

ग्रन्थों की प्रामाणिकता एवं रचनाकाल

सोमार्थ से केसवदास ने अपने विषय में अपनी कठियों में यत्र-तत्र बहुत कुछ कह दिया है। यद्यपि उनके ग्रन्थों के रचनाकाल तथा प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई गहरा मतभेद नहीं हुआ है। लगभग सभी ग्रन्थों के रचनाकाल से परिचित होने में कोई कठिनाई नहीं होती। प्रामाणिकता के विषय में भी स्वयं केसवदास के स्पष्ट साक्षी हैं। इसके अतिरिक्त जो छन्द एक ग्रन्थ में हैं वे लगभग दूसरे ग्रन्थों में भी कभी किसी पाठान्तर के साथ और कभी ज्यों के त्यों देखने में आते हैं।

रतनबावनी—बैचल यही एक ऐसी रचना है जिसकी प्रामाणिकता में हमें कुछ सन्देह है। मा० प्र समा की हस्तलिखित प्रति तथा 'केसव पंचरत्न' में 'रतनबावनी' के संकलित छन्दों के निरीक्षण से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इनमें कुछ सौंपक अवश्य है। वहाँ जो मुँह का कारण दिया हुआ है कि अकबर के आक्रमण करने पर कुंवर रतनसेन अपने बेश जी रक्षा के निमित्त वीरमति को प्राप्त हुआ वह इतिहास से सर्वथा विपरीत है। इतिहास ही क्या स्वयं केसव का भी कथन है कि रतनसेन ने अकबर को पीड़ बेश जीत कर दिया और नहीं लड़ते हुए वीरमति को प्राप्त हुआ^१। 'रतनबावनी' से और भी उद्धरण^२ दिए जा सकते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि रतनसेन को पीड़ बेश के पठनों ही से मोहा लेना पड़ा और उस ही मुँह में उसने अपने प्राण भी बचाए। अकबर के साथ मुँह में वह कहापि नहीं मारा गया। किन्तु फिर भी रतनसेन-से पताचारण और के कुलों का कीर्तन करने के लिए मोहका के दरबारी कवि केसवदास द्वारा इन्व का प्रणयन स्वामाधिक ही है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार इस ग्रन्थ में भोज गुण के अनुकूल सन्निध उद्धृत विजयभू आदि किरण बर्ण प्रयुक्त हैं वही प्रकार के छन्द मुँह तथा और रस के प्रसंग में कहीं-कहीं 'रामचन्द्रिका' और 'वीरसिंहदेव-चरित' में भी देखने में आते हैं^३। 'रतनबावनी' की रचना कम हुई, यह तो निश्चित रूप से

१ गौर जीत अकबर की बियो। बुरा व्याज बँकुळहि बयो ॥

—की रे पृ १७।

२ (घ) बहू प्रमाण पठान ठान हियवान सु उदित ॥

तहू बैराव कापी भरोख दल रोप मरिदित ॥

— " " " " "

बहू रतनसेन रन बहू अस्मि हस्तिप रंहि कंथो मयन ।

तहू हूँ ब्याव घोपान तब विप्रमोय बुद्धिय बयन ॥

—रतनबावनी, पृ १ ।

(घा) ठान ठान निव घान सुरकि पाठान सु पाए ।

काड़ काड़ तरवार तरन ता छिन तठ पाए ।

इक इक बात अस्मिब सबन रतनसेन रनबीर कहू ।

—रतनबावनी, पृ २१ ।

३ (घ) मत्तबति प्रमत्त हूँ मये बैलि बैलि न पयजही ।

ठौर-ठौर मुखे केसव बुझुनी नहि बजजही ॥

—पृ ३ प ७, पृ २१ ।

नहीं कहा जा सकता। कुर्माय से इस रचना के विषय में बहिस्त्याज्य का भी ध्यान है। स्वयं केसव भी इस विषय में मौन हैं। वस्तु तथा पंसी की दृष्टि से इतना भवस्य कहा जा सकता है कि प्राप्त कृतियों में यही केसव की सबसे पुरानी कृति है अफगानों के साथ लड़ते हुए सन् १६३७ वि० में रतनसेन का निधन हुआ और उसी के भास-पास उसका प्रणयन भी हुआ होगा। डा० वीक्षित का यह अनुमान कि इस ग्रन्थ का रचनाकाल 'बीरसिंहदेव चरित' के रचनाकाल स० १६६४ वि० के पुन तथा 'रामचन्द्रिका' के रचनाकाल स० १६३८ वि० के बाद किसी समय रहा होगा। (आचार्य केसवदास पृ० २३) समीचीन नहीं जचता।

कविप्रिया रसिकप्रिया रामचन्द्रिका तथा विज्ञानवीता—'कविप्रिया' 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानवीता' नामक ग्रन्थों में जो केसवदास ने अपने वर्ण पिता तथा पितामह आदि का उल्लेख किया है वह तीनों में ही समान रूप से उपलब्ध होता है। अतः हमारा निष्कर्ष है कि इन तीनों ही की रचना आलोच्य कवि केसवदास द्वारा हुई है। 'रसिकप्रिया' में कवि ने अपने बच का तो परिचय नहीं दिया है, परन्तु यह बताया है कि इस ग्रन्थ का निर्माण षोडशेन्द्र मधुकरदास के पुत्र हरजीत सिंह की आज्ञा से हुआ था^१। 'कविप्रिया' में केसवदास ने हरजीतसिंह को अपना आभयपाता बतलाया है^२। दूसरे 'कविप्रिया' में उवाहरण प्रस्तुत करते समय 'रसिकप्रिया' 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानवीता' नामक ग्रन्थों के नामों का भी साथ ही उल्लेख मिलता है^३। इस प्रकार 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' एक ही कवि की कृति ठहरती है।

उपसृत चारों रचनाओं के एक ही कवि द्वारा रचे जाने का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि एक ग्रन्थ में पाए जाने वाले बहुत से छन्द दूसरे में भी कभी कुछ पाठान्तर से और कभी ज्यों के त्यों उपलब्ध होते हैं। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' में जो छन्द कवित् पाठान्तर से मिलते हैं उनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं।

- १ ब्रिंह हुती नृपमानु कुमारि सखीन कि मण्डलि पंडि प्रवीनी ।
सँ कुम्हिलानो सो कंज परी इस पामन आशुवारिन बीनी ॥

(घा) सुख सोमा नसि जाइ सु पुनि यति प्रगट प्रमुक्कई ।

तच्छि म मच्छइ मच्छ नाउ सेत नि अय मुक्कई ॥

—बी ई च पृ० ८२ ।

१ हरजीत ठाको धनुष सकल धर्म को धाम ॥८॥

तिन कवि केसवदास सों कीन्हों बम सनेहु ॥

सब सुख ई करि यों कहुँ रसिकप्रिया करि देहु ॥१०॥

—२० वि पृ० ६ ।

२ क० वि प्र १ छन्द १८ और ४ ।

१ रसिकप्रियाम् सन्देश पृ ४१ रामचन्द्रिकाम् तथा २ कविप्रिया पृ ३ विज्ञानवीताम्, कविप्रिया, पृ० १४ ।

कामध छोड़ फिरकी यह बाकहं पान दये करतारस भीनी ।

कामध बिज कपोलन कोमि के धामन धावि बिदा करि बीनी ॥^१

२. कामध की मोरचुन मोरुन की मोर, सुनि, सुनि सुनि केमल धामन धसी जन को ।
कामिनी हमकि बैलि धोप की दीपति बैलि, सुल सेक बैलि-बैलि सुम्बर सुम्बर को ॥
ककुन की बास धमसार की सुबास मयो कूलन की बास मन कृति के निमन को ।
हंसि हंसि कोने शोक धनही मनाये मान सुखि मयो एक बार राधिका रमन को ॥^२

तथा

१. जन की कुमारिका के सीने सुक धारिका, पड़ाये कोक कारिकाज केसव सब निबाहि ।
मोरी मोरी मोरी मोरी मोरी मोरी बस फिरें, देवता ही मोरी मोरी धाई
मोरी मोरी बाहि ॥

बिन सुख तेरो धानि भूकृति कमल तानि, कृदिल कटाक्षबाल यह धरकर धाहि ।
एते मान कीठ कीठ तेरे की धरोठ मन, पीठ के बै नारली पं कूवती न कोक ताहि ॥^३

‘कमिप्रिया’ तथा ‘रामचन्द्रिका’ में कुछ पाठभेद है जिससे माने तीन छन्द

भीने दिए जाते हैं—

१. हमी न छागो न मोरे न कैरे न पाँव न छोव को नाँव मिलेहै ।
तस न मल न मित्र न पुत्र न धित न धाँग हूँ रवं न रहे ॥
केसव कान को राम बिसारत और निकरन न कामहि ऐहै ।
बेत है बेत धावी धित अन्तर अन्तर लोक धकेलहि केहै ॥^४
२. भौंहीं सुरसाप जात प्रसुवित पयोधर, सुख बराई जोति तदित रसाई है ।
भूरि करी सुख मुज सुखपा सबी की नन धमन कमल बल बलित निकाई है ॥
केशववास प्रबल करेनुका धमनहर, सुकृत सुखक-सबद सुखबाई है ।
अन्तर बलित नति भौंहीं भोलनठ बु की कालिका कि करपा हरवि हिव धाई है ॥^५

तथा

३. एक वनधन्वी ऐसी हुरै हृति हृति हंसवध, एक हंसिनी सी बिचहार हिये रोहिधे ।
भुवरा मिरत एक लल कृकि कोमि बीच मोन गति नीन हीन उपमान दोहिधे ॥
एकै मत के क कंठ भागि कृकि कृकि जात असदेवता-सी वृम देवता विमोहिधे ।
केशववास धास वास मरर धवंत जनकति में जनकभुजी असब-सी सोहिधे ॥^६

‘रामचन्द्रिका’ तथा ‘विज्ञानमीमा’ में भी कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें किंचित् पाठान्तर है परन्तु साम्य है । तीन छन्द नीचे उपस्थित किये जाते हैं—

१ १० मि० प्र ३, अं १२ तथा ३ मि० प्र ११ अं ०० (पद्यमर से) ।

२ म० प्र १ अं १० तथा म० प्र १२ अं १६ (पद्यमर से) ।

३ म० प्र १४ अं १२ तथा म० प्र १५ अं १२ (पद्यमर से) ।

४ कमिप्रिया प्र ६, अं १२ तथा प्र ७ अं १३ अं १३ (पद्यमर से) ।

५ म० प्र ७, अं १२ तथा प्र ८ अं १२ अं १२ (पद्यमर से) ।

६ म० प्र ८, अं १३, तथा म० प्र १२ अं १३ (पद्यमर से) ।

- १ जहाँ मामिनी, भोप तहाँ बिग मामिनि कहूँ भीष ।
मामिनि छूटे जग छूटे, जग छूटे सुख भोष ॥^१
- २ निशि बासर बस्तु बिचार करै मुख साँच हिये कछु न भगु है ।
अपनिग्रह संग्रह बर्मकषाम, परिग्रह साधुन को भगु है ॥
कहि केशव भोष जयै हिय भीतर, बाहर भोगन स्वों तनु है ।
मनु हाय सब बिनके तिनको बन हो यच हँ, यच ही भगु है ॥^२
- ३ पतिनी पति बिनु बीन प्रति पति पतिनो बिनु मंद ।
बाध बिना क्यों मामिनी क्यों बिनु मामिन चंद ॥^३
- इसी प्रकार 'कविप्रिया' तथा 'बिज्ञानगीता' में भी कहीं-कहीं चम्पावती समान रूप से मिलती है ।
- 'रसिकप्रिया' की रचना काठिक सुबी सप्तमी अष्टमवार संवत् १६४८ में हुई थी । ग्रन्थारम्भ में ही केशवदास ने इसे स्वरचित बताया है ।^४
- 'कविप्रिया' नामक ग्रन्थ फागुन सुबी पंचमी बुधवार सं० १६३८ को समाप्त हुआ था और कवि ने इसे स्वरचित होना स्वीकार किया है ।^५
- इससे स्पष्ट है कि संवत् १६४८ से संवत् १६३८ तक केशव का ध्यान

१ रा भ म० २४ अं० १४ तथा नि० गी० म २४ अं २१ (घट्यन्तर से) ।

२ मी०, म० १४, अं ३२ तथा मी०, म० २१ अं ४३ (घट्यन्तर से) ।

३ नि गी म० १४, अं ४० तथा रा भं म २४ अं २० ।

४ संवत् सोरह सँ बरस भीते भइतासीस ।

काठिक सुबि तिथि सप्तमी बार बरस रजनीस ॥

अतिरिछि पति मति एक करि, बिबिध बिबेक बिनास ।

रसिकन को रसिकप्रिया, कीन्हीं केशवदास ॥

—र वि म १ अं० २१ २२ ।

किन्तु प्रत्येक 'ग्रन्थ' के अन्त में उन्होंने इस ग्रन्थ का महापद्मनाभ रत्नसिंह के हाथ रचा गया निम्न है—'इति श्रीमन्महापद्मनाभ रत्नसिंहविरचितस्य रसिकप्रियार्थ ग्रन्थस्य आरम्भः सर्वप्रथमः प्रकाशः' (र वि पृ १३) । इससे विचार से तो केशवदास ने महापद्मनाभ रत्नसिंह के प्रति अपनी असम्यक् मजा एवं मति के कारण ऐसा शिष्ट शिष्ट है क्योंकि वह ग्रन्थ प्रमुख-रूप से उनकी के प्रतीक सिद्ध गया था ।

५ प्रगट पंचमी को मयो कविप्रिया भवतार ।

सोरह सँ सट्ठावनै फागुन सुबि बुधवार ॥

मृदकुल बरनौ प्रथम ही था कवि केशवदास ।

प्रगट करी जिन कविप्रिया कविता को भवतंस ॥

—क० वि म १ पृ ४५ ।

एव एव० मन्नामहीन के अनुसार अन्य तिथि को इस ग्रन्थ का अन्तम हुआ था (क ॥ दोहा अं ४ की टीका पृ ४) किन्तु 'ग्रन्थ' ग्रन्थ का अन्तम एव स्पष्ट करता है कि इस तिथि को ग्रन्थ की सम्पत्ति हो गई थी ।

मल्लकार-शास्त्र पर रहा । काविक सुखी बुधवार^१ संवत् १६२५ को ही घासोष्ण कवि केसवदास ने 'रामचन्द्रिका' को समाप्त किया^२ ।

'रामचन्द्रिका' और 'कविप्रिया' के रचनाकाल में कुल चार मास का अन्तर है । इसका तात्पर्य यह है कि 'रामचन्द्रिका' का भी निर्माण अर्धकार की विधा में ही हुआ है । और इसी कारण उसमें प्रारम्भ में पिप्पल का आग्रह दिखाई देता भी है । उनका ध्यान 'बहुध्वज' पर रहा है ।^३

रही 'विज्ञानपीठा' । इसकी रचना बीरसिंहदेव की प्रेरणा (वि० गी० प्र० १ छं० २७ और ३५) से संवत् १६६७ में हुई थी^४ ।

बीरसिंहदेव-चरित—'बीरसिंहदेव-चरित' की समाप्ति संवत् १६६४ के प्रारम्भ में अस्त अस्तु के सुस्तपल की सप्तमी^५ बुधवार को हुई थी । यह ग्रन्थ केसव ने ही रचा है इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं है । स्वयं उनका ही कथन है^६ ।

इस ग्रन्थ का प्रणयन बीरसिंह के ही शासन काल में सं० १६६४ में हुआ था । इसमें इस विधि से पूर्ण होने वाली बट्याएँ अंकित हैं और थोड़ा बरबार में सब केसवदास नाम के दो कवि लिखमान नहीं थे । इसके प्रतिरिक्त समस्त ग्रन्थ में यत्र-तत्र ऐसे छन्द बिखरे हुए दिखलाई पड़ते हैं जो साधारण कवि के द्वारा नहीं रच

१ स्व० अ० मन्मथरत्न 'भार' छन्द से भारत का झरती का वर्ण लेते हैं और उनके समर्पन में लिखते हैं कि कुल्लूकभट्ट ने ग्यारस बारस वेरस हल्दि बोझते हैं ।

श ५ (पूर्वार्ध) 'मिरोर' पृ० २ ।

२ उपन्यासों में कुल अंशमति पाठ कवि केसवदास ।

रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकाश ॥

सोरह छँ बट्यावने, काविक सुखी बुधवार ।

रामचन्द्र की चन्द्रिका तब सीम्हों अवतार ॥

—छं ५ प्र १ अं २ और ३ ।

३ कायल जाकी ज्योति जय एकद्वय स्वच्छन्द ।

रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हों बहु छन्द ॥

—छं ५ प्र १ अं २१ ।

४ सोरह छँ बीठे बारस विमल सतस्र पाइ ।

भई ज्ञान पीठा प्रगट सब ही को मुख बाइ ॥

—मि गी प्र १ अं २३ ।

५ अ० प्र सप्तमी की प्रति के अनुसार वह विधि सप्तमी के अन्त पर अष्टमी खरती है—
मिथ कोम मिथि बहु बुधवार, पृ० २ ।

६ संवत् सोरह छँ बीठठा । बीठ जने प्रगटे बीठठा ॥

अनस नाम सम्बत्सर लम्बी । भाषी बुख सब मुख जगमम्बी ॥

रितु अस्त है स्वच्छ विचार । सिम्ह जोग सतें बुधवार ॥

सुस्तपल कवि केसवदास । कीनी बीरचरित प्रकाश ॥

—श्री० दे व पृ० २ ।

सकते। ग्रन्थ के अन्तिम प्रकाशों के विनये राजाओं के कर्तव्यों का अस्सेह हुआ। प्रबलोकन करने से तो तमिक भी अस्सेह नहीं रह जाता कि इस ग्रन्थ का रचयिता कोई यनीर विद्वान् या जिसका शास्त्रविषयक ज्ञान पौराणिकों के बरा के लिए, जिससे उसका सम्बन्ध का प्रससा की बात थी १।

दूसरे, बीरसिंह देव के युद्धों का जैसा सुषम एवं विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ में प्रस्तुत हुआ है वैसा अत्यन्त निकट सम्पर्क में रहने वाले कवि के अतिरिक्त अन्य कोई प्रस्तुत नहीं कर सकता था और वह केदारदास को छोड़ अन्य हा ही कर सकता था। कारण उन्होंने स्वयं उनमें सक्रिय भाग लिया था। और भी 'बीरसिंहदेव चरित' में वर्षों धरतू सुयोदय चन्द्रोदय मगर चौपान राजलोक नक्षत्रिष्ठ नृप्य वन हाटिका जलकेलि हान आदि के बोधवर्णन मिलते हैं वे 'रामचरितका' के इन्हीं वर्णनों का परिशिष्ट रूप हैं। अनेक छन्द छोड़ा-बहुत पाठान्तर के साथ दोनों ग्रन्थों में समान हैं जिससे प्रमाणित होता है कि यह दोनों कृतियाँ एक ही लेखनी द्वारा प्रस्तुत हुई हैं। समानरूप से मिलने वाले कुछ छंद भीचे दिए जाते हैं—

१ बरनत केदार सकल कवि विषय गाढ़ तम धुष्टि ।
कुपुष्प सेवा क्यो नई संतत निरफस धुष्टि ॥^१

२ धरन गत अतिघात पणिनी प्राननाय भय ।
जन के सब हू गये कोकनर कोक प्रेममय ॥
किबो सब को सब महुयी मानिक मयुष पट ।
परिपुरन सिंगुर पर कीबो मगतपट ॥

सुम सोमित कलित कमाल के किल कारणिक काल की ।
सजित सासु केबो मस्तु विवि जानिनि के काल की ॥^२
तथा

३ सुन्दर सेत सरोवर में कर हाटक हाटक की बुति सोई ।
तापर भीर भसो मन रोजन लोक बिसोचन की बुति रोई ॥
देवि हई उपमा जम बैबिनि बीरघ देवनि के मन मोई ।
केदार केतवराइ मनो कमलासन के तिर ऊपर सोई ॥^४

जहाँभीर जल-चरित्रका—अहं ग्रन्थ निरचय ही केदारदास द्वारा रचा गया है इसका प्रथम संवत् १६९६ वि० के माघ (चैत्र) मास में हुआ है^३। इस समय मोड़छा बरवार में केदारदास मायवारी दो कवियों का कहीं अस्सेह नहीं मिलता। दूसरे, बीरसिंहदेव को प्रसन्न करने के लिये इनके ग्रामवर्षा तथा परम हितवी दिवसी

१ Calcutta Review May 1874-Din Singh Deo, Lala Bita Ram, pages 223-224

२ बी दे व पु ३ तब रा० ब० प्र २१ अ० १२ (पद्यर से)।

३ बी दे व पु ३ तब रा० ब० प्र २, अ० १ (पद्यर से)।

४ बी दे व पु ३ तब रा० ब० प्र २१ अ० ४६ (पद्यर से)।

५ सोरह से अनहतरा माघ मास विषय।

जहाँभीर सक साहि की करी चरित्रा पाव ॥

के बारम्बार जहाँगीर का कीर्तिगाण करना भी केदार के लिए नितास्त ही भावस्थक था। इसके प्रतिरिक्त इस ग्रन्थ में भी प्रायः ग्रन्थों के ही समान शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग बेकसरे में आता है। कहीं-कहीं कुछ छन्द तो 'रामचन्द्रिका' तथा 'नविप्रिया' में उद्धृत छन्दों का रूपान्तर हैं और कहीं-कहीं पाठान्तर ॥ परस्पर साम्य भी रहते हैं। तीन छन्द उदाहरण-स्वरूप नीचे उपस्थित किये जाते हैं—

१ बिधि के समान हैं बिमानी-कल राखहुँछ विविध विदुष पुत मेव सो प्रचलु है।
 बीपति विपति प्रति साती बीप बीपपुत दूसरो विनीप सो सुदक्षिमा को जनु है ॥
 सायब जनायद सो बहु बाहिनी को पति छन बान प्रिय किछो सुरज घमसु है।
 सब विधि रनमीर सोहै साहि जहाँगीर, तिलु पुर जाको बहु बंग को सो जनु है ॥^१
 विधि के समान हैं बिमानी-कल राखहुँछ विविध विदुष पुत मेव सो प्रचलु है।
 बीपति विपति प्रति साती बीप बीपपुत दूसरो विनीप सो सुदक्षिमा को जनु है ॥
 सायब जनायद सो बहु बाहिनी को पति छन बान प्रिय किछो सुरज घमसु है।
 सब बिधि समरब राब राबा बघरब मयीरब पधपामी रया रँति जनु है ॥^२

२ जाको अग सुवास तें बासित होत विगत।
 को यह सोमित है समा जागति जोति धनत ॥^३
 जाके सुख नुखबाह तें बासित होत विगत।
 सो पुनि कहि यह कोन नृप सोमित सोन धनत ॥^४
 तथा

३ महिय मैव नृप नृपन अज निरत भक्त नरराज।
 नरत कहुँ पाहक नरत मर कहुँ नरत नरराज ॥^५
 महिय मैव नृप नृपन कहुँ निरत भक्त नरराज।
 नरत कहुँ पाहक सुमर कहुँ नरत नरराज ॥^६

नक्षत्रिक—'नक्षत्रिक' के नियम में 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' नामक ग्रन्थ के पृ० ७४ पर यों उल्लेख है—'नक्षत्रिक-केदारदास-कृत नि० का० सं० १६२७ लि० का० सं० १२३३ वि० नायिका के अंग प्रत्यंगों का वर्णन। प्राप्ति-स्थान—महाराजा बनारस का पुस्तकालय रामनगर बनारस। के० पृ० २६।

हमने बिद्योप बागवारी के लिए उक्त पृ० २६ विवरण खोज रियो^७ (सन् १९०३)^८ को भी बेकार ही जतमें निर्माधिकार का तो शब्द में कहीं उल्लेख नहीं मिला केशवदास के नाम के छाने कोष्ठकों में केवल १६०० ए० बी० लिखा प्राप्य

१ अ अ अ० अ० ११।

२ अ अ अ० अ० १०।

३ अ० अ० अ० अ० १५।

४ अ० अ० अ० अ० २।

५ अ अ अ० अ० ४०।

६ अ अ अ० अ० २, अ० ३।

७. Description of the different parts of the body by the celebrated Keshava Dasa (1600 A.D.) The ms. is dated Samvats 1833 (1776 A.D.) Page 23.

हुआ है। विवरण में सम्भवतः इसी को रचनाकाल मान लिया प्रतीत होता है। रिपोर्ट का आवश्यक संशोधन भी किया जाता है।

“धारम्भ” श्री मलेसाय नमः ।
 धन्य कैशोबास कृत नखसिद्ध निरूपते ।
 हो । सतिता के परताप ज्यों बरने कविता धन ।
 कहे यथामति बरनि त्यों बनिता के प्रत्येक ॥ १ ॥
 वही नु पुरन पण्डितमि जाकी जितनी जानि ।
 तितनी धनयो धन की, उपमा कहौं बजानि ॥ २ ॥
 नय ते सिय लीं बरनिये देखो बीपति हैवि ।
 सिय ते नय लीं मानुषी केसवदास बिसेवि ॥ ३ ॥

ग्रन्थ सम्पन्न रूप में ।

महि मोहन मोहिनी रूप महिमा बलि करी
 महान मंत्र की । सिद्ध वेद की । पद्धति पूरी जीवन धुरि विविध किषी जग नीच मित्र
 की किषी बित्त की कृति मित्र धनिनाथ बित्त की केन्द्र परमानन्द की ।
 ध्यान सहकृति किषी बरनि ध्याहार रूप मन्त्रधारण की राधा श्रवणाध्याहार की ॥ ८२ ॥
 इति श्री केन्द्रदासकृत नखसिद्ध निरूपते सम्पूर्ण काशी जी मन्त्रे रूपबन्ध पीढ़ ।
 संवत् १८२३ मिति अष्टादश शुद्ध चतुर्थाश्विने । १४ पत्र में यह समाप्त हो गया
 धामे इसके तीन पत्र में और भी केसवदास का कुछ कविता-संग्रह है। प्रायः कविता
 है। (प्रति महाराज बनारस पुस्तकालय)।

स्व० लाला जी के ग्रन्थ की ‘नखसिद्ध’ रचना-विषयक कवन का आधार
 सम्भवतः यही उद्धरण प्रतीत होता है। किन्तु उपर्युक्त पद्यों को पढ़ने के उपरान्त
 ऐसा लगा कि सम्भवतः वे स्वतंत्र रूप से न रहे जाकर कवि के किसी ग्रन्थ से ही
 उद्धृत हैं। जब पं० विरजमान प्रसाद निम्न के पास मुद्रित बालकृष्णदास की हस्त
 लिखित (सं० १७२४)^१ यात्रिक संग्रह (काशी भागरी प्रचारिणी सभा) की हस्त
 लिखित (सं० १७२८) तथा हरिहरनारायण-दत्त सटीक (मुद्रित) ‘कविप्रिया’ को ध्यान
 से देखा तो ‘नखसिद्ध’ वर्णन वाले उपर्युक्त पद्य उन्हीं के १४वें प्रभाव के अन्त में
 और १२वें प्रभाव के धारम्भ में ज्यों के त्यों मिल गये। अतएव केशव के ‘नखसिद्ध’
 के रचने का उल्लेख यदि सन् ११०३ की रिपोर्ट के आधार-पर ही किया गया हो तो
 यह भ्रमपूर्ण सिद्ध हो जाता है। किसी दूसरी खोज-रिपोर्ट में केशव के किसी अन्य नख
 सिद्ध की प्रति का विवरण अभी तक देखने में नहीं आया है। इस प्रकार ‘नखसिद्ध’
 केशव की कोई स्वतन्त्र इति नही ठहराती वस्तुतः वह ‘कविप्रिया’ का अग्रभाग है।

कविप्रिया की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में १४वें प्रभाव के अन्त तथा १२वें
 प्रभाव के पहले ‘नखसिद्ध-बन्धन’ मिलने से लाला मगवानदीन जी इस ग्रन्थ को दोषक
 मानते हैं (क० प्रि० नोट पृ० १७१)। किन्तु सूक्ष्म परीक्षण करने पर यह ग्रन्थ
 वेदव्यवहारा रचा गया ही प्रामाणिक होता है। जो पाण्डित्य-अदर्शन की प्रशंसा एवं

भाषा विषयक प्रौढ़ता हमें केदार की 'रामचरित्रा', 'रसिकप्रिया' 'कविप्रिया' आदि ग्रन्थों में दृष्टिपूर्वक होती है। वहीं 'नक्षत्रिण' के छन्दों में भी देखने में आती है। साथ ही स्थान-स्थान पर बुन्देलखण्डी शब्द भी देखने में आते हैं जो इस ग्रन्थ को केदार की कृति सिद्ध करते हैं। दूसरे, 'नक्षत्रिण' एवं केदार के अन्य ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर संज्ञा मार्बों और शब्दों का साम्य भी दिखाई देता है। बुन्देलखण्डी भाषा के शब्दों के लिए निम्नलिखित घोड़ा उल्लेखनीय है—

सर्वमूर्च्छा वर्णन निक्षिप्ता जनैष्ट जाँके पुष्पक कराय जरी।

बेहरी छबीली सुत्र घण्टिका की जालिका ॥

मूँवरी उबार पौंकी कंकन धीर चुरी बाक।

कंठ कंठमात्र हार पक्षिरे गुप्तानिका ॥

बेदीपूज शीतपूज कर्तुपूज मंगपूज।

छुटिका तिलक नकुमोती छोड़ जालिका ॥^१

भाव एवं सज्ज-साधुत्व के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) अलकै कि अलिक अलक लटकति है।

(क० छि० (मू०)-नक्षत्रिण, वं ४२)

लहरी अलक अलक भीकनी।

(वी० दे० च० पृ० १२३ तथा रा० च० उत्तरार्द्ध पृ० ११५)

(२) बेली पिक बेली की जिबेली सी बनाई है।

(क० छि० (मू०)-नक्षत्रिण, वं ७८)

केदारदास बेली तो जिबेली सी बनाई। (र० छि० वं ४ पृ० १२१)

तथा

(३) गोरे गोरे घोल अति अमल अमीन तेरे,

ललित कपोल किनी मीन के मुकुर है।

(क छि० (मू०)-नक्षत्रिण, वं १२)

ललित ललित लावण्य कमीन। गोरे घोल अमीन कपोल ॥

(वी० दे० च० पृ० १२३)

'नक्षत्रिण' वासी उपयुक्त पद्य यद्यपि स्वतन्त्र कृति नहीं हैं फिर भी केदार ने इस विषय के पद्यों कासा एक ग्रन्थ व्यवस्थित बनाया था^२। गान्ध्या जी ने अपने इस कथन का आधार अनेकग्रन्थ में प्राप्त अठारहवीं शताब्दी की दो प्रतियों की बतलाया है। गान्ध्या जी को अपने संग्रह के एक अंश में 'ललितनक्षत्र' नामक एक ग्रन्थ कवि केदारदास-कृत प्राप्त हुआ है जिसमें एक संस्कृत स्तोक तथा १८ हिन्दी सर्वदा राजस्थानी भाषा-टीका-सहित दिये हुए हैं। इसका लेखन संवत् १७६२ मि० सु० ८

१ क० छि० उत्तरार्द्ध, पृ० १२३ क० छि० हरिदासदास, पृ० ३२ (चन्द्रप्रदे)
तथा कविप्रिया (मू०) पृ० १४५ वं ८५ (चन्द्रप्रदे)।

२ विमुक्तजी, अन्तर्गत-सिम्हर, सन् १६४७ अंक ४ भाग १७ पृ० १४६ 'कवि केदारदास की कविप्रिया रचणायें' शीर्षक लेख।

मौम मूत्र में जैन प्रति भागवन्त के द्वारा हुआ है। इसी ग्रन्थ की एक गुटकाकार प्रति जिसका रचनाकाल स० १७५१ बैशाख सुदी ११ है। बीकानेर के 'बृहत् शान भण्डार' से प्राप्त है। जिसमें मूस पद्य ही है। इसमें प्रारम्भ का श्लोक नहीं है एवं २७ के वाच के ४ पद्य भी हैं जो कि पद्यही प्रति में नहीं हैं। 'कविप्रिया' में उपसम्पन्न नक्षत्रिण' बचन वाले पद्यों का इस प्रति के पद्यों से मिसान करने पर सात होता है कि इसके चार पद्य (छं २८ ११) 'कविप्रिया' के पद्यों (छं ८४ ४६ ८८ तथा ८५) से किचित् पाठभेद के साथ मिलते हैं। शेष पद्य 'कविप्रिया' से नहीं मिलते। इस कारण इसे केशव की एक भिन्न ही कृति मानना पड़ता है। इसके रचनाकाल के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

बारहमासा—केशव की 'बारहमासा' नामक रचना का स्वतन्त्र कृति के रूप में उत्सेख खोज-रिपोर्ट सन् १९२६ नं० २३३ 'घ' और सन् १९२७ नं० ८२ में मिलता है। दोनों ही में निर्माण तथा निष्कर्ष नहीं दिया हुआ है। सन् १९२६ नं० २३३ 'घ' की खोज-रिपोर्ट का आवश्यक संघ नीचे उद्धृत किया जाता है—

'प्राप्तिस्थान'—पं० राजा राम घाम नरहोत० सीतापुर पो० सीतापुर जि० सीतापुर (प्रयाग)।

प्रारम्भ पद्य बारहमासा निम्न्यते । अथ बीज वरुण ॥छप्पै॥

कूनी लतिका ललित ललन लन फूले लखर फूले छरिता
सुमय सरित छव फूले लखर । फूली काभिन काम कये कर
कम्पनि पूरहि । सुक सारो फूल केनि फूल कोकिल कल
कुम्हि कहि केसव छडी फूल महि फूलहि फूल न लाइवैहि ।
पिय प्राप बचन की को कहे बित न बीत बसाइये ॥

इसके पश्चात् बैशाख से फागुन तक ११ मास के वर्णन में ११ छप्पय हैं।

धस्त का छप्पय इस प्रकार है—

अथ फागुन वर्त्तन ॥छप्पै॥

लोक लाल लजि राज रक निरसक बिदायत ।
जोई प्रायत सोइ कहत करत पुनि हूँसत न लायत ।
भर भर बुबडी जवनि जोक गहि गाठन बीरहि ।
बसन छीनि मुय भाँजि प्राज लोचन तव तोरहि ।
पटवात सुवास प्रकास जड़ि मुख मंडल सब मंडिये ।
कहि केसववास बिलासनिनि सु फागुन फागुन धरिदिये ॥१२॥
इति बारहमासा केसीवासकृत सम्पूर्ण समाप्तः ।

विषय—इस ग्रन्थ में स्त्री ने अपने पति को १२ महीने के मुख-मुख बटाकर परदेष्टा जाने से रोका है।

नोट—इस ग्रन्थ के रचयिता केसवदास जी थे जिन्होंने 'रामचन्द्रिका' रची है। इस छोटी-सी पुस्तक से और कुछ पता नहीं चलता।

सन् १९२७ की खोज-रिपोर्ट नं० ८२ के भी प्राप्ति और ग्रन्थ के मध्य निम्नलिखित है—

"प्राप्ति श्रीगणेशाय नमः। अथ बारहमास लिख्यते।

अथ रचयितुम् ॥छन्दः॥ पूनी ततिका जलित तन

पूने तकर पूने तरिता सुमय सरिध सब पूने सरवर—

विस्त न रीत जलाइये ॥१॥"

इसके पश्चात् बीधान से आठवुन तक ११ महीनों के वर्णन में ११ छन्द्य हैं। ग्रन्थ का छन्द्य यों है—

अथ आठवुन वर्णन ॥छन्दः॥ लोक नाम सवि राज रंक निरसक

विराजत—कहि केसवदास

विज्ञास निधि सु आठवुन फाठवुन प्राप्तिये इति बारहमास केसवदास-कृत तन्मूर्त समाप्तः।

उक्त खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित 'बारहमास' के प्रतिरिक्त बृहद् ज्ञान मण्डार, बीकानेर से प्राप्त उपयुक्त 'सिखनख' नामक ग्रन्थ की मुद्रकाकार प्रति में ही ग्रन्थ कवियों की रचनाओं के साथ कवि केसवदास की 'बारहमास' नामक एक और कृति भी उपलब्ध हुई है। इस प्रति के बारह छन्द्य तो खोज-रिपोर्टों में दिए गए छन्द्यों से कहीं-कहीं किञ्चित् पाठभेद के साथ मिलते हैं परन्तु इसका प्रारम्भिक बोझ जो नीचे प्रस्तुत है—

सुखहि सुख यह राखिये सिखहि सिख सुखवानि।

सिखासेय कह्यो बरनि छन्द बारह बानि ॥

खोज-रिपोर्टों की प्रतियों में नहीं मिलता। इससे अनुमान होता है कि उक्त 'बारहमास' केसव की कोई नवीन रचना है। किन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर उक्त प्रति के सभी पद्य (प्रारम्भिक बोझ तथा १२ छन्द्य) श्री हरिचरणास और सरवार कवि द्वारा लिखी गई 'कविप्रिया' की टीकाओं तथा काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पं. विरबनाथ प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित बालकृष्णदास जी की हस्तलिखित प्रति (सं. १७२४) में लिखासेयपार्श्वकार-वर्णन के समस्त कहीं-कहीं किञ्चित् पाठान्तर के साथ मिल जाते हैं। अतः हमारी समझ में तो यही पाला है कि 'बारहमास' केसव का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। यह 'कविप्रिया' का अंशमान है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचनाकाल वही ठहरता है जो 'कविप्रिया' का है।

अष्टमांश—यह ग्रन्थ भी केसवदास-कृत है। इस ग्रन्थ में विभिन्न कृतों के उदाहरणस्वरूप दिये गए छन्दों का 'रामचन्द्रिका' के छन्दों से मिलान करने पर बात होता है कि यहिनाथ छन्द किञ्चित् पाठभेद से दोनों ग्रन्थों में समान-रूप से मिलते हैं जो इस बात का प्रमाण है कि दोनों ग्रन्थ एक ही कवि की कृतियाँ हैं। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ दिए जाते हैं—

वर्णिक वृत्त—

(क) बरगिबो बरन सी । जयत जो सरण जी ।

(छं० मा० 'तरयिमा' का उदाहरण)

बरगिबो । बरगिबो । जयतको । सरण सी ॥

(रा० अ० प्र० १ छं० १२)

(ख) रघुवंस के बरतस । सुनि बान-मानस हुस ।

मन माहि जो धति नेहु । एक बात सो कहि बेहु ।

(छं० मा० 'तामर' का उदाहरण)

सुनि बान-मानस-हुंस रघुवंस के बरतस ।

मन माहि जो धति नेहु । एक बात सो कहि बेहु ।

(रा० अ० प्र० २ छं० ११)

(ग) मए जब राम जहाँ सुनि मात । कही यह बात सुनी बन जात ।

कछु बनि जी बुल पावहु भाइ । सु बेहु धसीस मिसीं फिरि भाइ ।

(छं० मा० 'भीतिप्रदान' का उदाहरण)

मए तहुं राम जहाँ निज मात । कही यह बात कि हों बन जात ।

कछु बनि जी बुल पावहु भाइ । सु बेहु धसीस मिसीं फिरि भाइ ।

(रा० अ० प्र० २ छं० ७)

(घ) राज तज्यो मन पाम तज्यो सब । नारि तज्यो सुत सोच तज्यो सब ।

आपुन दो अप नूतहि निबह । सरय न एक तज्यो हरिचन्द्र है ।

(छं० मा० 'सुन्दरी' का उदाहरण)

राम तज्यो बन पाम तज्यो सब । नारि तज्यो सुत सोच तज्यो सब ।

आपुन दो तज्यो अपपद है । सरय न एक तज्यो हरिचन्द्र है ।

(रा० अ० प्र० २ छं० २१)

(ङ) घरे एक बनी मिसीं भैसतारी । मूलासी बनी पंक लोकाधिकारी ।

सदा राम नाम ररै बीनबानी । जहुं धोर है राकसी क्लेशबानी ।

(छं० मा० 'मुकुटप्रपात' का उदाहरण)

घरे एक बेछो मिसीं भैसतारी । मूलासी बनी पंक लोकाधिकारी ।

सदा राम नाम ररै बीनबानी । जहुं धोर है राकसी दुःखबानी ।

(रा० अ० प्र० १३, छं० १३)

(च) बिबिध भारय राम बिराजहीं । सुखद नागर सुन्दरि साजहीं ।

बिबिध सिद्धि फसतु मनो कने । सकल साधन तत्पर नै बने ।

(छं० मा० 'हुतविष्टमित्र' का उदाहरण)

बिबिध भारय राम बिराजहीं । सुखद सुन्दरि सोबर साजहीं ।

बिबिध धौकस सिद्ध मनो फनो । सकल साधन सिद्धि हि नै बने ।

(रा० अ० प्र० २, छं० १३)

नोट—इस ग्रन्थ के रचयिता केशवदास जी के विन्मोहि 'रामचरित्रिका' रही है। इस छोटी-सी पुस्तक से और कुछ पता नहीं चलता।

सन् १६२७ की खोज-रिपोर्ट नं० ८२ के भी यादि धीर ग्रन्थ के ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

'यादि' श्रीगणेशाय नमः। ग्रन्थ बारहमास निम्नले।

ग्रन्थ श्रीवर्णन ॥ अथ ॥ पूनी लतिका ललित लवन लन

कूमे तक्षर कूमे सरिता सुनय सरित सब कूमे सरवर—

विस्त न रीत जगद्वर्य ॥१॥"

इसके पश्चात् बीसाल से अगुन तक ११ महीनों के वर्णन में ११ छन्द हैं। ग्रन्थ का अन्त्य यों है—

ग्रन्थ काव्युन वर्णन ॥ अथ ॥ लोक लाल ललि राख रंज निरसक

निरासक—

कहि केशवदास

विस्तार निधि सु काव्युन काव्युन आदि इति बारहमास केशीदास-कृत सम्पूर्ण समाप्त।

उक्त खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित 'बारहमास' के अतिरिक्त बृहद् ग्रन्थ मन्दार बीकानेर से प्राप्त उपर्युक्त 'विस्तार' नामक ग्रन्थ की पुटकाकार प्रति में भी ग्रन्थ कवियों की रचनाओं के साथ कवि केशवदास की 'बारहमास' नामक एक और कृति भी उपलब्ध हुई है। इस प्रति के बारह अन्त्य तो खोज-रिपोर्टों में दिए गए छन्दों से कहीं-कहीं किचित् पाठभेद के साथ मिलते हैं परन्तु इसका प्रारम्भिक बोधा जो नीचे प्रस्तुत है—

सुखहि सुख यह राखिये तिरहि विद्व सुखबानि।

शिक्षायेप कही बरनि अर्थ बारह बाणि ॥

खोज रिपोर्टों की प्रतियों में नहीं मिलता। इससे अनुमान होता है कि उक्त 'बारह मास' केशव की कोई नवीन रचना है। किन्तु ध्यातपूर्वक देखने पर उक्त प्रति के सभी पद्य (प्रारम्भिक बोधा तथा १२ अन्त्य) श्री हरिचरणदास धीर सरवर कवि द्वारा लिखी गई 'कविप्रिया' की टीकाओं तथा काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पं विष्णुनाथ प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित बाणकृष्णदास जी की हस्तलिखित प्रति (सं० १७२४) में शिक्षासेवासकार-वर्षों के अन्तर्गत कहीं-कहीं किचित् पाठान्तर के साथ मिल जाते हैं। अतः हमारी समझ में तो यही पाता है कि 'बारहमास' केशव का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। यह 'कविप्रिया' का संश्लेषण है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचनाकाल बही ठहरता है जो 'कविप्रिया' का है।

ग्रन्थमाता—यह ग्रन्थ श्री केशवदास-कृत है। इस ग्रन्थ में विभिन्न वृत्तों के उदाहरणस्वरूप दिये गए छन्दों का 'रामचरित्रिका' के छन्दों से मिलान करने पर प्राप्त होता है कि अधिकतर छन्द किचित् पाठभेद से दोनों ग्रन्थों में समान-रूप से मिलते हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि दोनों ग्रन्थ एक ही कवि की कृतियाँ हैं। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ दिए जाते हैं—

वर्णिक वृत्त—

(क) बरनबो बरन सो । जगत को सरन सो ।
(ई मा 'ताम्रिना' का उदाहरण)

बरनबो । बरनको । जगतको । सरन सो ॥
(रा नं प्र० १ ई १२)

(ख) रघुवंस के धनतल । सुन बान-मानस हत ।
मन माहि को धति नेहु । एक बात मो कहि वेहु ।
(ई० मा० 'तोमर' का उदाहरण)

सुनि बान-मानस-हंस रघुवंस के धनतल ।
मन माहि को धति नेहु । एक वस्तु मांघि वेहु ।
(रा० नं प्र० २ ई० १३)

(घ) गए सब राम कहीं सुनि मात । कही यह बात सुनी बन जात ।
कपु जानि जो बुख पावहु माइ । सु बैठु कसीस मिली किरि घाइ ।
(ई० मा० 'मीसिद्धराम' का उदाहरण)

गए तहँ राम कहीं निज मात । कही यह बात कि हों बन जात ।
कपु जानि जो बुख पावहु माइ । सु बैठु कसीस मिली किरि घाइ ।
(रा० नं प्र० ३ ई० ७)

(च) राज तजै धन धाम तजै सब । नारि तजै सब सोच तजै सब ।
आजुन दो जम भूठहि निबहु । सत्य न एक तजै हरिचमहु ।
(ई० मा० 'मुन्दरी' का उदाहरण)

राम तज्यो धन धाम तज्यो सब । नारि तज्यो सुख सोच तज्यो सब ।
आजुन दो जम भूठहि निबहु । सत्य न एक तज्यो हरिचमहु ।
(रा० नं प्र० २ ई० २१)

(ङ) परे एक बेनी मिली धनसारी । मुखाली मनौ एक सोकाधिकारी ।
सरा राम राम ररँ बीनबानी । बहुत धोर हँ राखसी कलेशरानी ।
(ई० मा० 'मुग्धपदा' का उदाहरण)

परे एक बेनी मिली धनसारी । मुखाली मनौ एक सोकाधिकारी ।
सरा राम राम ररँ बीनबानी । बहुत धोर हँ राखसी कुलबानी ।
(रा० नं प्र० १३, ई० १३)

(झ) बिबिन मारण राम बिराजहीं । सुखद भागर सुखरि लाजहीं ।
बिबिन सिद्धि फलनु मनौ कले । सकल साधन साधर न जने ।
(ई० मा० 'हुतभिलम्बिन' का उदाहरण)

बिबिन मारण राम बिराजहीं । सुखद भागर सुखरि लाजहीं ।
बिबिन सिद्धि फलनु मनौ कले । सकल साधन सिद्धि हिन जने ।
(रा० नं प्र० ३, ई० २६)

नोट—इस ग्रन्थ के रचयिता केसवदास जी वे विन्हीने 'रामचरित्रका' रची है। इस छोटी-सी पुस्तक से और कुछ पता नहीं चलता।

सन् १९२७ की खोज रिपोर्ट नं० ८२ के भी याचि और अन्त के सब निम्नलिखित हैं—

'याचि' श्रीगणेशाय नमः । अथ बारहमास लिख्यते ।

अथ कविचरित्रं ॥ अथ ॥ पूनी ललितका ललित तत्त्व तत्त्व

पूने तत्त्वतः पूने सतिता सुमय सतिता तत्त्व पूने सत्त्वतः—

विश्व न जित जगद्गुरु ॥१॥

इसके परबत्त ब्रह्माक्ष से अगुन तक ११ महीनों के वर्णन में ११ छन्द हैं । अन्त का छन्द यों है—

अथ कायुन वर्णनं ॥ अथ ॥ लोक नाम तत्त्व राज रत्न निरन्तर

विराजत— कवि केसवदास

विशाल निधि सु फागुन कागुन याचिमे इति बारहमास केटीदास-कृत सम्पूर्ण समाप्ति ।

उक्त खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित 'बारहमासा' के पठितरित बृहत् ज्ञान मन्थार, बीकानेर से प्राप्त उपर्युक्त 'विज्ञान' नामक ग्रन्थ की मुद्रकाकार प्रति में ही अन्य कवियों की रचनाओं के साथ कवि केसवदास की 'बारहमासा' नामक एक और कृति भी उपलब्ध हुई है। इस प्रति के बारह छन्द तो खोज-रिपोर्टों में दिए गए छन्दों से कहीं-कहीं किंचिद् पाठभेद के साथ मिलते हैं परन्तु इसका प्रारम्भिक बोधा जो नीचे प्रस्तुत है—

सुखहि सुख जहं राजिये सिखहि सिख सुखवनि ।

सिखासेप कह्यो बरनि अर्थ बारह बानि ॥

खोज रिपोर्टों की प्रतियों में नहीं मिलता। इससे अनुमान होता है कि उक्त 'बारह मासा' केसव की कोई नवीन रचना है। किन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर उक्त प्रति के सभी पङ्क्त (प्रारम्भिक बोधा तथा १२ छन्द) श्री हरिचरणदास और सरदार कवि द्वारा मिली गई 'कविप्रिया' की टीकाओं तथा काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पं० बिरबनाथ प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित बालकृष्णदास जी की हस्तलिखित प्रति (सं० १७२४) में सिखासेपासंकार-वर्णन के अन्तर्गत कहीं-कहीं किंचिद् पाठान्तर के साथ मिल जाते हैं। अतः हमारी समझ में तो यही पाता है कि 'बारहमासा' केसव का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। वह 'कविप्रिया' का अंशमान है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचनाकाल नहीं ठहरता है जो 'कविप्रिया' का है।

अथमासा—यह ग्रन्थ श्री केसवदास-कृत है। इस ग्रन्थ में विभिन्न वृत्तों के उदाहरणस्वरूप दिये गए छन्दों का 'रामचरित्रका' के छन्दों से मिश्रण करने पर ज्ञात होता है कि यथिकांश कुछ किंचिद् पाठभेद से दोनों छन्दों में समान-रूप से मिलते हैं जो इस बात का प्रमाण है कि दोनों ग्रन्थ एक ही कवि की कृतियाँ हैं। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ दिए जाते हैं—

(क) बरनको घरन सो । जपत को घरन जो ।
(खं मा० 'वर्णिक' का उदाहरण)
बरनिको । बरनको । जपतको । घरन सो ॥

(ख) रघुवंत के घरतस । सुन बान-मानस हंत ।
(रा नं प्र० १ खं १२)
मन माहि जो धति नेहु । एक बात मो कहि वेहु ।

(खं मा० 'तोर' का उदाहरण)
सुनि बान-मानस-हस रघुवंत के घरतस ।
मन माहि जो धति नेहु । एक बात मांयहि वेहु ।

(ग) गए जब राम जहाँ सुनि मात । कही यह बात सुनी बन जात ।
(खं मा० 'मीरकाम' का उदाहरण)
कछु जनि जी दुख पावतु माइ । सु वेहु धसीस मिली फिरि माइ ।

(खं मा० 'मीरकाम' का उदाहरण)
गए तहँ राम जहाँ निज मात । कही यह बात कि ही बन जात ।
कछु जनि जी दुख पावतु माइ । सु वेहु धसीस मिली फिरि माइ ।

(घ) राज तब मन मान तब सब । नारि तब सुत सोष तब सब ।
(खं मा० 'सुन्दरी' का उदाहरण)
घातुन दोँ बग झूठहि निबह । सत्य न एक तब हरिद्वन्द्व ।

(खं मा० 'सुन्दरी' का उदाहरण)
राम तगयो मन मान तगयो सब । नारि तब सुत सोष तगयो सब ।
घातयो तु तगयो अपमन्द है । सत्य न एक तगयो हरिद्वन्द्व है ।

(ङ) परे एक बेनी मिली नैनसारी । मुखानी मनी एक सोकायिकारी ।
(खं मा० 'सुन्दरी' का उदाहरण)
सदा राम रानी ररँ बीनबानी । बहुत छोर है राकसी कलसबानी ।

(खं मा० 'सुन्दरी' का उदाहरण)
परे एक बेनी मिली नैनसारी । मुखानी मनी एक सोकायिकारी ।
सदा राम नाम ररँ बीनबानी । बहुत छोर है राकसी कलसबानी ।

(च) विविन मारन राम बिराजहीं । सुख नागर सुखरि साजहीं ।
(खं मा० 'सुन्दरी' का उदाहरण)
बिबिध सिद्धि फलनु मनी कते । सकल साधन तत्पर न कते ।

(खं मा० 'सुन्दरी' का उदाहरण)
विविन मारन राम बिराजहीं । सुख नागर सुखरि साजहीं ।
बिबिध सिद्धि फलनु मनी कते । सकल साधन सिद्धि हिन कते ।

(रा नं प्र० १, खं २६)

नोट—इस ग्रन्थ के रचयिता केसवदास जी थे जिन्होंने 'रामचन्द्रिका' रची है। इस छोटी-सी पुस्तक से और कुछ पता नहीं चलता।

सन् १९२७ की खोज रिपोर्ट न० २२ के भी प्रादि और अन्य के प्रादि निम्नलिखित हैं—

‘सावि श्रीगणेशाय नमः । अब बारहमास तिथ्यते ।

अथ सर्ववर्णनं ॥ अथ ॥ फुली सति का जगति तव तव

कृते तद्वद कृते सपिता सुमय सविध तव कृते तद्वद—

विद्युत् न चेत्युक्तं जगदादयः ॥२॥”

इसके पश्चात् वैशाख से अश्विन तक ११ महीनों के वर्ष में ११ जन्म हैं।
शुभ का जन्म मों है—

अथ फलानु वर्णनं ॥ धृष्टी । शोक नाथ तथि रत्न रंज निरुद्ध

विराजत—कवि केवलराज

बिलास गिबि सु फावुन जावुन धाकिये इति बाष्पनात् कैसीदास-कृत सम्युक्तं
समाप्तः ।

उक्त खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित 'बारहमासा' के पतिरिक्त बृहद् ग्रन्थ भण्डार, बीकानेर से प्राप्त उपर्युक्त 'सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ की बृट्टाकार प्रति में ही अन्य कवियों की रचनाओं के साथ कवि केशवदास की 'बारहमासा' नामक एक गीत छति भी उपलब्ध हुई है। इस प्रति के बारह छन्दयों की खोज रिपोर्टों में दिए गए छन्दयों से कहीं-कहीं कविद् पाठमेव के साथ मिलते हैं परन्तु इसका प्रारम्भिक दोहा जो नीचे प्रस्तुत है—

सुखं हि धुतं जगत् राक्षस्ये सिद्धं हि सिद्ध सुखराशि ।

शिक्षाशेष काशी बरवि प्रप्य बाणु बालि ॥

खोज रिपोर्टों की श्रितियों में नहीं मिलता। इससे अनुमान होता है कि वक्त 'बारह मासा' केयब की कोई महीन रचना है। किन्तु व्याप्तपूर्वक देखने पर वक्त प्रति कै सनी पक्ष (प्रारम्भिक बोद्धा तथा १२ छन्द) की हरिकिरणवास और सरदार कवि द्वारा लिखी गई 'कविप्रिया' की टीकाओं तथा काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित बालकृष्णदास जी की हस्तलिखित प्रति (सं० १७२४) में शिवासेपालकार-वर्णन के अन्तर्गत कहीं-कहीं किचित् पाठान्तर के साध मिल जाते हैं। अतः हमारी समझ में तो यही भास है कि 'बारहमासा' केयब का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। वह 'कविप्रिया' का संश्लेषण है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचनाकाल नहीं ठहरता है जो 'कविप्रिया' का है।

अन्वयमात्रा—यह अन्व भी कैचमबास-कृत है। इस अन्व में विभिन्न मूर्तों के उदाहरणस्वरूप दिये गए अन्वों का 'रामचन्द्रिका' के अन्वों से मिलान करने पर प्राप्त होता है कि अधिकतर अन्व किचित् पाठभेद से दोनों अन्वों में समान-रूप से मिलते हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि दोनों अन्व एक ही कवि की कृतियाँ हैं। इस प्रकार के कुछ अन्व यहाँ दिए जाते हैं—

(क) बरनयो बरन छो । बगल को सरन जो ।
(छं मा० 'तरणिमा' का उदाहरण)
बरनियो । बरनको । बगलको । सरन लो ॥
(रा नं प्र १ छं १२)

(ख) रघुबंस के बगलस । सुन बान-मानस हस ।
मन माहि जो प्रति नेहु । एक बात मो कहि बैहु ।
(छं मा० 'तोमर' का उदाहरण)
सुनि बान मानस-हंस रघुबंस के बगलस ।
मन माहि जो प्रति बैहु । एक बस्तु मागहि बैहु ।
(रा० प प्र० २ छं १६)

(घ) पए जय राम जहाँ सुनि मात । कही यह बात सुनी बन जात ।
कसु जनि जी बुल पाबहु माह । सु बैहु प्रसीस मिलीं फिरि माह ।
(छं मा० 'भीरित्-दाम' का उदाहरण)
गए लहू राम जहाँ निज मात । कही यह बात कि हों बन जात ।
कसु जनि जी बुल पाबहु माह । सु बैहु प्रसीस मिलीं फिरि माह ।
(रा० नं प्र० ६ छं ७)

(च) राज तजै बन नाम तजै सब । नारि तजै सत सोच तजै सब ।
प्रापुन यो जय भूठहि निरह । सरय न एक तजै हरिबनह ।
(छं मा० 'मुन्दरी' का उदाहरण)
राम तज्यो बन नाम तज्यो सब । नारि तजो सुत सोच तज्यो सब ।
प्रापुनो तु तज्यो जयमाह है । सरय न एक तज्यो हरिबनह है ।
(रा० नं प्र० २ छं २१)

(ङ) परे एक बेनी मिसी मीततारी । मुखानी मनो पक सोकाधिकारी ।
सरा राम रानी रई बीनबानी । कहु सोर हूँ राकसी कलेतबानी ।
(छं मा० 'मुकेशदात' का उदाहरण)
परे एक बेनी मिसी मीततारी । मुखानी मनो पक सोकाधिकारी ।
सरा राम रानी रई बीनबानी । कहु सोर हूँ राकसी बुझबानी ।
(रा० नं प्र० १३, छं १३)

(ज) बिपिन मारग राम बिराजहीं । सुख नागर सुखरि साजहीं ।
बिबिध सिद्धि फलसु मनो फल । सकल साधन तत्पर सँ फल ।
(छं मा० 'दुतभिक्षित' का उदाहरण)
बिपिन मारग राम बिराजहीं । सुख नागर सुखरि सोबर भाजहीं ।
बिबिध फलसु सिद्ध मनो फल । सकल साधन सिद्धि हिसँ फल ।
(रा० नं प्र० ६, छं ३१)

नोट—इस ग्रन्थ के रचयिता केसवदास जी थे जिन्होंने 'रामचरित्रका' रची है। इस छोटी-सी पुस्तक से और कुछ पता नहीं चलता।

सन् १८२७ की खोज-रिपोर्ट पं० ८२ के भी धारि और प्रन्त के पंच निम्नलिखित है—

'दावि' श्रीगणेशाय नमः । अथ बारहमास लिख्यते ।

अथ चैत्रवर्त्तन ॥ अथ ॥ पृथ्वी ललित ललित तदन तन

पूने तकर पूने सरिता सुभय सरिस सब कूने सरवर—

— बिस न बीत जसाइये ॥१॥

इसके पश्चात् बँदास से फरव्रन तक ११ महीनों के वर्त्तन में ११ छन्द हैं। प्रन्त का छन्द यों है—

अथ फागुन वर्त्तन ॥ अथ ॥ लोक नाच तवि राज रंक विरसक

विराजत— कहि केसवदास

बिलास निधि सु फागुन फागुन जाकिये इति बारहमास केसवदास-कृत सम्पूर्ण समाप्त ।

उक्त खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित 'बारहमास' के अतिरिक्त बृहद् ज्ञान मण्डार बीकानेर से प्राप्त उपबुक्त 'विस्मय' नामक ग्रन्थ की गुटकाकार प्रति में ही अन्य कवियों की रचनाओं के साथ कवि केसवदास की 'बारहमास' नामक एक धीर कृति भी उपलब्ध हुई है। इस प्रति के बारह छन्द तो खोज-रिपोर्टों में दिए गए छन्दों से कहीं-कहीं किञ्चित् पाठभेद के साथ मिलते हैं परन्तु इसका प्रारम्भिक दोहा यों नीचे प्रस्तुत है—

सुखहि सुख सह राखिये सिखहि सिख सुखवानि ।

सिखायेन कहुँ नरनि सय्य बारह बानि ॥

खोज-रिपोर्टों की प्रतियों में नहीं मिलता। इससे अनुमान होता है कि उक्त 'बारहमास' केसवदास की कोई नवीन रचना है। किन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर उक्त प्रति के सभी पद्य (प्रारम्भिक दोहा तथा १२ छन्द) की हरिचरनदास और सरवर कवि द्वारा लिखी गई 'कविप्रिया' की टीकाओं तथा काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पं० विस्मय प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित बालकृष्णदास जी की हस्तलिखित प्रति (सं० १७२४) में सिखायेपाठकार-वर्णन के अन्तर्गत कहीं-कहीं किञ्चित् पाठान्तर के साथ मिल जाते हैं। अतः हमारी समझ में तो यही माता है कि 'बारहमास' केसवदास का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। वह 'कविप्रिया' का अंशभाग है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचनाकाल बही ठहरता है जो 'कविप्रिया' का है।

सम्बन्ध—यह ग्रन्थ भी केसवदास-कृत है। इस ग्रन्थ में विभिन्न वृत्तों के सहायकस्वरूप दिये गए छन्दों का 'रामचरित्रका' के छन्दों से मिलान करने पर ज्ञात होता है कि अधिकतर छन्द किञ्चित् पाठभेद से दोनों ग्रन्थों में समान-रूप से मिलते हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि दोनों ग्रन्थ एक ही कवि की कृतियाँ हैं। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ दिए जाते हैं—

भाषा का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। विशेषण प्रायः संस्कृत के हैं और क्रियाएँ ब्रजभाषा की। 'छन्दमाला' में संस्कृत के उत्तम शब्द ही नहीं अपितु कहीं-कहीं तो संस्कृत भाषा की विभक्तियाँ एवं क्रियाएँ भी प्रयुक्त हुई हैं जैसे भाग्यम्भी (सं० २) निवेष्टय्या ('उपेक्षय्या' छन्दः उदाहरण में) चण्डीकायते ('माया' छन्द के उदाहरण में) आदि। संस्कृत का प्रभाव यदि देखना है तो उपयुक्त 'रामचन्द्रपदपथ' आदि भाषा छन्द का उदाहरण द्रष्टव्य है।

केदार ने इस ग्रन्थ में इनके रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है। इसकी रचना कब हुई? कुछ कहा नहीं जा सकता। 'रामचन्द्रिका' में एकादशी छन्द से लेकर कवित्त-सर्दये तक के उदाहरणों को देखकर अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ के निर्माण के पूर्व केदार ने छन्दशास्त्र पर कोई ग्रन्थ अध्ययन किया होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विंगन पर मिली 'छन्दमाला' की रचना "रामचन्द्रिका" के पूर्व ही कभी हुई होगी। विविध छन्दों के उदाहरण प्रस्तुत करने के विचार से ही केदार ने 'रामचन्द्रिका' की रचना की थी ऐसा जान पड़ता है।

राम-धर्मकृत-मंजरी—शिबसिंह सेंसर, प्रियर्सन एफ० ई० के सूर्यकान्त शास्त्री सङ्गशीतसिंह आदि कुछेक विद्वान् 'राम धर्मकृत-मंजरी' को ही छन्दशास्त्र का ग्रन्थ कहते हैं पर उनमें से किसी ने न तो यही मिला है कि यह ग्रन्थ उन्होंने कहाँ देखा और न उन्होंने कोई उदाहरण ही दिया है। 'शिबसिंहसरोज' में इसके दो छन्द उद्धृत हुए हैं^१। सङ्गशीतसिंह और बाबू गोविन्ददास ने अपने लेखों में इन दोनों छन्दों के अतिरिक्त कोई भाग नए उदाहरण नहीं दिए हैं। अब इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ उनके देखने में नहीं आया। कबल सरोजकार के ही आधार पर उन्होंने इसे केदार-कृत जान लिया है। खोज रिपोर्टों में भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ साक्षात् की भी देखने में नहीं आया है। उनका कहना है कि नाम से तो यह धर्मकार-ग्रन्थ जान पड़ता है^२। प्रयत्न करने पर भी हमें इस ग्रन्थ का कुछ पता न चल सका। 'रामचन्द्रिका' में केदार की दृष्टि 'बहुछन्द' पर देखकर अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ की रचना के पहले उन्होंने विंगन पर किसी ग्रन्थ का निर्माण अवश्य किया होगा। स्व० साक्षात् भगवान् श्री ने 'केदार कौमुदी' नामक "रामचन्द्रिका" की टीका में बहुत से छन्दों के सहाय-स्वरूप पाठ-टिप्पणी में छन्द उपस्थित किए हैं जिनमें से कुछ में 'केदारदास' अथवा 'केदार' की छाप परिलक्षित होती है^३। हो सकता है विविध छन्दों के ये सहाय केदारदास की 'राम-धर्मकृत-मंजरी' के ही हों।

१ अरवि मुखाति मुलच्छनी मुचरन सरस मुवृत्त ।

भूपन विमा ग राजई कविता बनिता मिल ॥ १ ॥

प्रकट सब में धर्ष जहाँ अधिक चमत्कृत होइ ।

रस यह व्यङ्ग्य मुहल से धर्मकार कहि सोइ ॥ २ ॥

—शिबसिंहसरोज पृ० २ ।

२ वेदान्त-वैचर्य भाषाटीका केदार के ग्रन्थ, पृ० ७ ।

३ ए० च पृ० २४ (मरगद्विषय) पृ० २५ (चाम्पल) पृ० ३३ (द्विषय)

४ ६४ (वराह और शिरोरु) पृ० २२५ (शक्ति) । पाठ-टिप्पणी ।

मानिक धृष्ट—

(क) रामभद्रपदपद्मं बुधारकमुखाभिवन्दनीयम् ।
केशवमति तनया विलोचनं चंचरी कायते ॥

(अ० भा यथा' का उदाहरण अ० १२)

रामभद्रपदपद्मं बुधारकमुखाभिवन्दनीयम् ।
केशवमति भुवनया लोचनं चंचरीकायते ॥

(रा० अ० ३ १ अ० १३)

(क) रामभद्र धाये सुनि सब पाए पुरजन जैसे तेरे कहु ।
बरतनरत भुले तन मन धुले बनीं जाहि न जैसे कहु ।
दिय के संयगारी सब सुखकारी तिन सों रामहि बुझबोरी ।
कहु कहु कहु धोरनि मिली बकोरनि क्यों चाहत बन्ध बकोरी ॥

(अ० भा यथा' का उदाहरण)

रामभद्र धाये सुनि सब पाये पुरजन जैसे तेरे ।
बरतनरत भुले तन मन धुले कहु बरने जात न जैसे ॥
दिय के संयगारी सब सुखकारी ते रामहि यों बुझबोरी ।
कहु कहु कहु धोरनि मिली बकोरनि क्यों चाहत बन्ध बकोरी ॥

(रा० अ० ३० २२ अ० ११)

(घ) ऊँचे प्रकाश । प्रतिबुद्ध प्रकाश । सोना बिलास । सोई प्रकाश ।

(अ० भा मनुमत' का उदाहरण)

ऊँचे प्रकाश । बहुध्वज प्रकाश । सोना बिलास । सोई प्रकाश ॥

(रा० अ० ३ १ अ० १०)

अन्वमाणा' का निम्नलिखित छन्द—

अक्षिपान मिली सक्षिपान मिली पति धावत बरनि मिली तनि मीने ।
सुम ध्यान बिधान मिली मनहीं मन क्यों मिलि नैक मनोमय सीने ।
कहि केसर कैसेहु बेग मिलि ननु छूँ है बही हरि जो कछु होने ।
तहु पुरन समानि मिलि मिलि बही तुम्हें मिलहो फिर कोने ।

(‘मनुमन्तर’ का उदाहरण)

किञ्चित् पाठभेद से ‘रतिक प्रिया’ में इस प्रकार मिलता है—

अक्षिपानि मिली सक्षिपानि मिली पतिपान मिली बतिपाँ तनि मोने ।
ध्यान बिधान मिली मन ही मन क्यों मिलि एक मनो मिल सोने ॥
केसर कैसेहु बेग मिलि तन छूँ छू बही हरि जो कछु होने ।
पुरन प्रेम समानि मिलि मिलि बही तुम्हें मिलहीं तन कोने ॥

(रा० अ० ३० अ० ११)

इससे भी यही सिद्ध होता है कि दोनों रस एक ही कवि की रचनाएँ हैं ।

भाषा का जो रूप केवल की ‘रामभद्रिका’ में दृष्टिगोचर होता है वही इस ग्रन्थ में भी दिखाई पड़ता है । ‘अन्वमाणा’ की भाषा उच्च है जिस पर संस्कृत तथा दुर्लभशब्दों

भाषा का भी प्रमाण परिलक्षित होता है। विधेयण प्रायः संस्कृत के हैं और क्रियाएँ ब्रजभाषा की। 'छन्दमासा' में संस्कृत के तत्सम शब्द ही नहीं अपितु कहीं-कहीं तो संस्कृत भाषा की विभक्तियाँ एवं क्रियाएँ भी प्रयुक्त हुई हैं जैसे भाषमण्डो (छं० २) निवेष्टया ('उपेक्षया' छन्द के उदाहरण में) चण्डीकायते ('भाषा' छन्द के उदाहरण में) आदि। संस्कृत का प्रमाण यदि देखना है तो उपयुक्त 'रामचन्द्रपदवर्ष' आदि भाषा छन्द का उदाहरण इष्टम्भ है।

केदार न इस ग्रन्थ में इसके रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है। हमकी रचना कब हुई? कुछ कहा नहीं जा सकता। 'रामचन्द्रिका' में एकाधरी छन्द से सकर दक्षिण-पूर्वमें तक के उदाहरणों को देखकर अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ के निर्माण के पूर्व कदाचन छन्दशास्त्र पर कोई ग्रन्थ प्रकाशित मित्रा होगी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पिताजी पर लिखी 'छन्दमासा' की रचना "रामचन्द्रिका" के पूर्व ही करी हुई होगी। विविध छन्दों के उदाहरण प्रस्तुत करने के विचार से ही केदार ने 'रामचन्द्रिका' की रचना की भी ऐसा जान पड़ता है।

राम-धर्मकृत-मंजरी—विश्वसिंह सेंसर, प्रियदर्शन एफ० ई० के सूर्यकांत शास्त्री लक्ष्मणवीरसिंह आदि कुछेक विद्वान् 'राम-धर्मकृत-मंजरी' को ही छन्दशास्त्र का ग्रन्थ कहते हैं पर उनमें से किसी ने न तो यही लिखा है कि यह ग्रन्थ उन्होंने कहाँ देखा और न उन्होंने कोई उदाहरण ही दिया है। 'विश्वसिंहसरोव' में इसके दो छन्द उद्धृत हुए हैं^१। लक्ष्मणवीरसिंह और बाबू गोबिन्ददास ने अपने लेखों में इन दोनों छन्दों के प्रतिरिक्त कोई अन्य नए उदाहरण नहीं दिए हैं। अतः इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ उनके देखने में नहीं आया। कबल सरोवकार के ही आधार पर उन्होंने इसे रामचन्द्र-माल लिया है। बीज रिपोर्टों में भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ सासा की के भी देखने में नहीं आया है। उनका कहना है कि माम से तो यह धर्मकार-ग्रन्थ जान पड़ता है^२। प्रवल करने पर भी हमें इस ग्रन्थ का कुछ पता न चल सका। 'रामचन्द्रिका' में केदार की वृष्टि 'बहुछन्द' पर देखकर अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ की रचना के पहले उन्होंने पियल पर किसी ग्रन्थ का निर्णय प्रकाश किया होगा। स्व० साक्षात् भवबानदीन ने 'केदार कीर्तनी' नामक "रामचन्द्रिका" की टीका में बहुत से छन्दों के लक्षण-स्वरूप पाद-टिप्पणी में छन्द उपस्थित किए हैं जिनमें से कुछ में 'केदारदास' अथवा 'केदार' की छाप परिलक्षित होती है^३। जो सचता है विविध छन्दों के ये लक्षण केदारदास की 'राम-धर्मकृत-मंजरी' के ही हों।

१. अपि सुभाषि सुलभमयी मुखरम सरस मुपुत ।

भुवन विना न राजई कविता वनिता मित ॥ १ ॥

प्रकट सब में सर्व जहाँ प्रबिक प्रमल्लत होइ ।

रस प्रस भव्य बुद्धि ते धर्मकार कहि सोइ ॥ २ ॥

—विश्वसिंहसरोव १ २ ।

२. केदार-देवदास, आकाशिका केदार के ग्रन्थ पृ० ७ ।

३. छं० ५ पृ० २४ (मरमन्त्रिका) पृ० २८ (आम्पति) पृ० ३३ (उपनिषा)

४. ३४ (लक्षण और विशेषक) छन्द पृ० १९७ (रामचन्द्रिका)। पाद-टिप्पणी ।

परन्तु जब तक यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो जाता तब तक इसे निश्चित रूप से केसव रूप ग्रन्थ नहीं माना जा सकता।

जैमुन की कथा—‘जैमुन की कथा’ नामक ग्रन्थ जैमिनि-कृत भगवद्गीता का हिन्दी रूपांतर है। यह सुविख्यात कवि केशवदास द्वारा रचित नहीं हो सकता। कारण केशवदास ने अपने प्रामाणिक ग्रन्थों में अपनी छाप केशव केसव केसो केसो केसवराय केसवराह भगवा केसवदास धारि रखी है परन्तु इस ग्रन्थ में कवि की छाप ‘प्रधान केसोराह’ है।

इति की महाभारते दत्तमेव के पर्वने जैमुनि कृते ‘प्रधान केशोराह’ विरचितार्था कलस्तुति कलनो नाम सरस्वतमोष्याय। १७॥^१

दूसरे, खोज रिपोर्ट में केशवराय माधवदास के पुत्र श्रीर सुरभीधर के भाई दिए गए हैं। केसवराय ने किसी लाला गरसिंह को अपना साधनदाता तथा उनका कविसाह का वर्णपुत्र होने का उल्लेख किया है। ग्रन्थ स्थान पर कवि ने यह बताया है कि कविसाह (१९४६ ई० १७९१ ई०) ने उसे एक गाँव प्रदान किया था। इससे भी पट्टी पठा जपता है कि यह कवि निश्चित रूप से कविसाह का समकालीन था। उसने इस ग्रन्थ का प्रपदन संवत् १७५३ वि (१९२९ ई०) में किया। इससे भी उपर्युक्त बात की ही पुष्टि होती है^२। ‘शिबसिंह-सरोज’ में प्रधान केशवराय कवि (शासि होत्र), जिसने ‘शासिहोत्र भाषा’ की रचना की थी का नाम मारा है (शिबसिंह सरोज पृ० ४४७)। हो सकता है कि जैमुन की कथा भी भाषा में इसी कवि द्वारा रची गई हो।

बासि चरित्र और हनुमान-जन्म-सीता—‘खोज-रिपोर्ट’ में दिए हुए उदाहरणों के प्रबलोकन करने से पता चलता है कि बासिचरित्र और हनुमान-जन्म-सीता नामक ग्रन्थों की रचना इतनी शिथिल है जितनी केशवदास के किसी भी ग्रन्थ की नहीं है। दूसरे, इनकी भाषा ब्रज तथा भवभी भाषाओं का मिश्रण है। बुद्धेयसूक्ष्मी शब्दों का इनकी भाषा में प्रभाव है। अतः इन्हें केशवदास द्वारा रचित नहीं माना जा सकता। हनुमान-जन्म-सीता पर नोट है^३ हुए खोज-रिपोर्ट के लेखक स्वामिबिहारी मिश्र भी लिखते हैं^४। अतः मिश्रजी का अनुमान है कि हो सकता है कि इनका लेखक या तो बुद्धेयसूक्ष्म का केशवराय बहूधा हो जिसका जन्म १९८२ ई० में हुआ था या १९०२ ई० की रिपोर्ट न० ३४ में दिए हुए ग्रन्थ (अमरजतीटी) का लेखक केशवदास हो जो संभवतः राजपूताने (?) का निवासी था^५। स्व० सा० भगवानवीर जी का कथन है कि घोरछा में हनुमान जी का जो मन्दिर आज भी विद्यमान है वह केशव का ही संस्थापित किया हुआ है। यदि इस धारणा को सत्य मान लिया जाय तो सम्भव है

१ भा० प्र स खोज-रिपोर्ट, सन् १९१७-१९१८।

२ वही, सन् १९०५।

३ Keshava Das, the writer of Hanuman Janna Lila is an unknown poet. He was certainly not the famous poet of Orchha, but may be Keshava Rai Babua of Baghelkhand, who was born in 1682 A.D. or the author of the book noticed as No. 34 of 1802.

—भा० प्र स० खोज-रिपोर्ट में १४५, सन् १९०६ १९११।

४ भा० प्र स० खोज-रिपोर्ट में ४५४ सन् १९४१।

धार्मोप्य कृति केसवदास की ही हो। जो कुछ भी हो पर इन ग्रन्थों के केसवदास कहे होने में पूरा-पूरा सन्देह ही है।

रससन्निधित—‘रससन्निधित’ नामक ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय नायिका भेद है। परन्तु महाकवि केसवदास ने इस विषय पर ‘रसिकप्रिया’ नामक ग्रन्थ की रचना की है जिसमें इस विषय का बहुत ही विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन किया गया है। अतः ‘रसिकप्रिया’ के निर्माण के अनन्तर इसी विषय पर फिर केसवदास की सेवानी द्वारा ग्रन्थ ग्रन्थ प्रस्तुत किया जाना बुद्धि-संगत प्रतीत नहीं होता है। इस ग्रन्थ में श्रुमार रस का सत्य भव में है^१। परन्तु ‘रसिकप्रिया’ में ग्रन्थ के आरम्भ में दिया गया है। दोनों ग्रन्थों के सत्य मिलते हैं। दूसरे, ‘रससन्निधित’ की भाषा भी उतनी प्रौढ़ नहीं है जितनी कि प्रायः केसवदास के अन्य ग्रन्थों की है। अतः यह केसवदास की रचना नहीं मान पड़ती। जोब रिपोर्ट के लेखक का अनुमान है कि सम्भवतः इसकी रचना बबेलखण्ड निवासी केसवराय नामक कवि (जन्म १६८२ ई०) ने की थी। सरोजकार ने भी केसवराय बाबू बबेलखण्डी (जन्म सं० १७३६ अथवा १६८२ ई०) को नायिका-भेद पर लिखे एक ग्रन्थ का रचयिता बताया है (सिंहसिंह-सरोज पृ० ३८६)। उन्होंने ग्रन्थ का तो जल्लेख नहीं किया है पर जो पद्य अवश्य उद्धृत किए हैं^२। जोब रिपोर्ट के लेखक ने ‘हनुमान-जन्म-मीमांसा’ के कर्ता का भी बबेलखण्ड-निवासी होने का अनुमान किया है परन्तु ‘हनुमान-जन्म-मीमांसा’ और ‘रससन्निधित’ नामक ग्रन्थों का मिलान करने पर दोनों की भाषा में इतना अन्तर दिखाई पड़ता है कि दोनों का रचयिता एक ही कवि नहीं हो सकता।

हृत्पल्लवा (घण्टी)—जोब रिपोर्ट में दिए हुए उद्धरणों से विदित होता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता केसव का निवास स्थान उज्जैन के समीप ‘भटनावर’ नामक ग्राम का और परिहारकुलशिरोमणि कोई ‘बस्तावर’ उसका माधयदस्ता वा जिसकी छात्रा से इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ था^३। इससे प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ का कर्ता धार्मोप्य केसव न होकर कोई दूसरा केसव नाम का कवि है।

केसवदास की ‘अमीषूट’—इस ग्रन्थ के अध्ययन से विदित होता है कि यह ग्रन्थ केसवदास से भिन्न किसी अन्य विष्णु व-मार्गी केसवदास द्वारा रचित हुआ है। यह

१ अतः कथं श्रुमार रस सत्य है वृ पिया—पीय वी रीति बहि भाऊ ताहि
नहत् श्रुमार रस पंडित कवि समुद्राह। दोहा। विवि-विभि है श्रुमार रस
कहत् मुकवि मन धानि करनि प्रथम सजोग को पृ

—अ० प्र स जोब-रिपोर्ट नं १४६ सम् १६०२ १६११।

२ सिंहसिंह सरोज पृ १२।

३ सत्य जहाँ चारों बरग जहुं धोर है नाऊं।
मिकट उज्जैन के बसनु भटनावर गुम गाऊं ॥
बस्तावर के हुकुम तें कवि केसव करि प्यार।
नहीं कथ-मीमांसा मुखर निज बधि के समसार ॥ इति बंध बधन ॥

विषय, भाषा, छन्द आदि प्रायः सभी की दृष्टि से कबीर आदि सन्त कवियों की रच-
नाओं से साम्य रखता है। छन्द का आरम्भ गुरुमहिमा से होता है और आगे निरुंण
असक्त, निरन्तर आदि के गुणों का जल किया गया है। इस छन्द की भाषा और
विषय से परित्यक्त होने के लिए हम दो छन्द नीचे उद्धृत करते हैं।

- १ घामा काया सें प्रभु ग्यारा, जरनि यकास से बाहर पारा।
अगम अपार गिरनार बाधी हुसै न इतै अरम अधिनासी ॥
बा कहं अरुनत कय न रेखा, अगम पुण्य प्रभु सब्द असेखा।
निज मन जाय तहाँ प्रभु रेखा आदि न अत नाहि कछु यखा।
मिति अंजम पुण्य अहं समाया या बिनि केसो नितरी काया ॥^१
- २ सोई निज सत निज अंत माया लियो बियो जुय जुय अपन बुद्धि बाधी।
प्रान आपन असमान में फिर गया सुन के सिद्धार पर बिकिर नापी।
रहत घर बास बिनु स्वास का बीब है सक्ति मिली सीब सों सुरति पायी।
अकह धनिअ असेवा को ईकिया देखि केसो नयो कछु रागी ॥^२

उपयुक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि इस छन्द की भाषा में ब्रज लड़ी बोसी
राजस्थानी तथा पंजाबी का घुट है। साथ ही सबर सुन सुरति आदि कबीर-नामियों
के पारिभाषिक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। स्थान-स्थान पर घरबी घरबी भाषा के
शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जैसे 'सिद्धार, पाऊ लाऊ बिकिर आदि'। दूसरे इस
छन्द के लेखक ने अपने पुत्र का नाम 'पारी' बताया है^३। अतः केदारदास की
कवि क्वापि नहीं माना जा सकता। केदारदास जी की 'रामचरित्रिका' तथा 'विज्ञान
गीता' का एक छन्द कहीं-कहीं कुछ पाठान्तर के साथ अभीष्ट^४ में उपलब्ध होता है
परन्तु उक्त छन्द की भाषा इस छन्द की भाषा से भिन्न नहीं है। अतः हमारा
अनुमान है कि संग्रह-कर्ता भूष से इस छन्द को इस छन्द में ले गया है। छन्द
इस प्रकार है—

निज बासर बस्तु बिबाध सब भुज साँव द्विये कबना वन है।
अमनिअह संग्रह अर्म-कथा निपरिअह सावन को पुन है ॥
कह केसो भीतर जोय जये, इत बाहर भीष गई तन है।
मन हाव भये बिज के तिन के; मन ही घर है घर ही मन है ॥^२

इस प्रकार केदारदास के कुल मिलाकर भी ब्रज प्रामाणिक ठहरते हैं। उनके
नाम ये हैं—१ रतनदासजी २ रसिकप्रिया ३ छन्दमाला ४ रामचरित्रिका
५ कविप्रिया ६ बीरसिंहदेवचरित ७ विज्ञानगीता ८ जहाँगीर-अस-चरित्रिका
और ९ सिद्धमस।

१ अमर्षित, पृ. ६।

२ कबी. पृ. ६।

३ कबी. पृ. ८।

४ निरुंण राज समाज है अंबर सिंहासन छत्र।

देहि कवि पारी भुज दियो केसोहि अजपा रम ॥

—अमर्षित, पृ. २।

५ अमर्षित, पृ. ६, १० अं, प्र., १५ अं, १६ तथा वि. गी. पं. ११ अं ५६।

काव्य-स्वरूप और विषय की दृष्टि से कथावदास के प्रामाणिक ग्रन्थों का निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है—

अ—रीति काव्य—

- १ रसिकप्रिया (नायिका-भेद तथा रस-योगाभा) ।
- २ कविप्रिया (कविशिक्षा तथा प्रसकार) ।
- ३ शिक्षनका (महाशिक्ष) ।
- ४ छन्दमाहा (पियल) ।

आ—प्रबन्ध-काव्य—

- | | |
|------------------------|------------|
| १ रामचरित्रका | } नायिक |
| २ विद्वान्गीता | |
| ३ रत्नवावनी | } ऐतिहासिक |
| ४ बीरसिंहदेव-चरित | |
| ५ बह्मदीर-रस चन्द्रिका | |

केशव के प्रबन्धों का काव्य-विवेचन

(घ) प्रबन्ध-सौष्ठव

रचना-संज्ञी की दृष्टि से भारतीय समीक्षा-पद्धति में व्यङ्ग्यकाव्य के प्रबन्ध और मुक्तक नाम के दो भेद किए गए हैं। प्रबन्ध में पूर्वापर का तारतम्य रहता है मुक्तक में यह तारतम्य नहीं होता। प्रबन्ध में छन्द एक-दूसरे से कथानक की भृङ्गला में बने रहते हैं वे एक-दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। मुक्तक में छन्द स्वतः पूर्ण होते हैं एक छन्द दूसरे की अपेक्षा नहीं करता। प्रबन्ध-काव्य में जहाँ वर्णन प्रकृत एवं सामूहिक प्रभाव की प्रधानता रहती है वहाँ मुक्तक में एक-एक छन्द की साव-सम्भास पर ध्यान दिया जाता है। फिर भी दोनों ही प्रकार की रचियों की अपनी उपादेयता तथा महत्ता है। केशव ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही रचियों को अपनाया है। 'रामचन्द्रिका' बीरसिंहदेव भरित 'विज्ञानपीठा' 'रत्नबावनी' और 'जहाँगीर-बस चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ प्रबन्ध के अन्तर्गत हैं तथा 'रसिकप्रिया' 'कविप्रिया', 'सिकन्दर' और 'छन्दमाला' रीतिग्रन्थों की रचना मुक्तक रचनाओं में है।

(क) 'रामचन्द्रिका'

रचना की प्रेरणा—हिन्दी जगत् में केशवदास की अथर्व कीर्ति का आधार उनका प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' है। बाबा बेनीमाधवदास के मतानुसार कम्पी में संवत् १६४६ वि० के लगभग तुलसी की भेंट केशव से हुई थी तभी 'रामचन्द्रिका' का सुसंपाद हुआ। तुलसी केशव को प्राकट्य करि समझते थे। इस मौक़े से मुक्त होने के लिए ही केशव ने रात भर में 'रामचन्द्रिका' की रचना कर तुलसीदास के दायन किये थे। 'रवि रामचन्द्रिका रातिहि में। सुई केशव छु धरि बाटिहि में ॥

मिटि केशव को संकोच नयो। जर नीतर प्रीति की रीति रयो' ॥ इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि 'रामचन्द्रिका' तुलसीदास को प्रसन्न करने के लिए रची गई थी पर 'रामचन्द्रिका' के सादर से यह बात घबूढ़ ठहरती है। स्वयं केशवदास 'रामचन्द्रिका' की रचना का कारण वात्सीकि द्वारा स्वप्न-भोरना बताते हैं^१। मुनि ने

१ मूढगोपार्थ भरित बोला ३८ की चौधवाँ।

२ वात्सीकि मुनि स्वप्न माई बीम्हों वर्णन पाक।

केशव तिनहीं यों कह्यो क्यों पाठ्य सुधसाक ॥

बी बी । रौ बी ॥ राम नाम । सरय पाम ॥^१ का मंत्र दिया । केशव क पूछने पर कि कुछ बरों टरि है^२ मुनि ने उत्तर दिया—

ममो बुरी न तु गुने । बुरा कथा कहि सुने ॥

न राम देख पाइहै । न बैसलोक पाइहै ॥^३

यह आदेश पाकर केदार नाम ने रामचन्द्र जी को दृष्ट माना और राम उनकी दृष्टि में धनधार मान न रह कर 'धनधारो धनधारमणि' हो गए^४ । कनक केशव ने रामचन्द्र की चरित्रिका का वर्णन करने का निश्चय किया । 'रामचरित्रिका' राम का आद्योपान्त 'चरित' नहीं है । स्वयं कवि के शब्दों में यह केवल 'रामचन्द्र की चरित्रिका' है^५ ।

प्रभाव-काव्य के तत्त्व—यद्यपि 'रामचरित्रिका' रामचन्द्र की चरित्रिका का वर्णन-मात्र ही है फिर भी किसी गद्द है प्रबन्ध काव्य की धर्मो में ही । यह देखना यह है कि प्रबन्ध-काव्य के आचर्यकीय तत्त्वों जैसे कथा का शृंगारप्रधान प्रभाव कथा के बीच-बीच में प्रकृति के दृश्यों एवं वस्तुओं का वर्णन कथानक के नायिक स्वभावों का विषम संवाद चरित्रों का उत्तरोत्तर विकास प्रभाव का शरी में विभाजन आदि का 'रामचरित्रिका' में कहीं तक निर्वाह हो सका है ।

कथानक—'रामचरित्रिका' का कथानक चिरपरिचित रामकथा है । पर उस पर 'वाल्मीकि रामायण' का विरोध प्रभाव परिलक्षित नहीं होता । केवल कथानक का ढाँचा ही 'वाल्मीकि रामायण' से साम्य रखता है अथवा दोनों प्रश्नों के सूत्र शरीरों में पर्याप्त अन्तर है । यही बात सुमसी के 'मानस' के विषय में भी कही जा सकती है । कथानक में उन्होंने जहाँ-तहाँ मनमाना परिवर्तन भी किया है जो अनिवार्य की निति से चाहे जितना अच्छा बना हो पर प्रबन्ध की दृष्टि से उसका कोई महत्त्व नहीं है । वस्तुतः 'रामचरित्रिका' के कथानक पर संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' तथा 'प्रसन्नराज' नामक नाटकों का ही विरोध प्रभाव दिखलाई देता है । केदार ने जनक स्वभाव पर इन नाटकों से प्रेरणा ली है और कई स्थलों पर अपनी कल्पना द्वारा भौतिकता का समावेश किया है । राम-कथा के विश्लेषण से यह स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि सम्पूर्ण कथा दो भागों में विभक्त है । प्रथम भाग में विद्वामित्र के अवधारणन से लेकर राजदिवस तक की कथा है जो २६वें 'प्रकाश' तक चमती है । ३३वें 'प्रकाश' से ३६वें 'प्रकाश' तक सीता-निर्वासन की स्वतन्त्र कथा है । मध्य के छ 'प्रकाशों' में राम के राजनी डाट-बाट का वर्णन है । दोनों कथाओं में किसी प्रकार का अनुपान नहीं है । स्वातन्त्र्यवादी समिथोग सरयकेतु आदि व्यस्यद्वय उपासकानों मठवासी निम्न

१ ए० च० प्र १ पृ ८-१० ।

२ ए० च० पृ ११, पृ १२ ।

३ पृ १०, पृ १ पृ १३ ।

४ पृ १ पृ १ पृ १०-११ ।

५ ज्ञानेश्वर की उक्ति जय एकस्य स्वच्छन्द ।

रामचन्द्र की चरित्रिका अथवा हों यह छन्द ॥

मधुरा-माहात्म्य वर्णन, दान विभाग, सनातनोत्पत्ति-वर्णन रामकृत रागमयी-निष्ठा राम विरचित-वर्णन के अत्यंत आसक्तान, मुखावस्था तथा मूखावस्था के कुञ्चों का वर्णन जीवोद्धारयत्न रावनीति-वर्णन आदि अनेक अप्रासंगिक विषय बीच-बीच में आते हैं जो कथा-विकास में बाधा पहुँचाते हैं। 'रामचरित्रिका' की समस्त कथा ११ प्रकाशों में विभक्त है। इसमें कथा क्रम का अभाव तो नहीं किन्तु वह सुबद्ध एवं सुसूचित नहीं है। उसकी शृङ्खला अनेक स्थानों पर टूटी तथा बिखरी हुई प्रतीत होती है। 'रामचरित्रिका' की कथावस्तु में हमें १ क्रम का अभाव २ अनुपसर्ग का अभाव और ३ गति का अभाव—ये दोष दृष्टिगोचर होते हैं।

क्रम का अभाव—जब हम 'रामचरित्रिका' के चित्रों का अवलोकन करते हैं तो एक ऐसे चित्रकार की कल्पना होती है जो कुछ विधेय वस्तुओं में रम मरने में अत्यन्त प्रवीण है परन्तु बहुत-सी वस्तुओं के रंगों की रेंगाई या तो अस्पष्ट है या उसके रंग और रूप फीके तथा आकर्षणहीन हैं। केवल वे अपनी कथा को रामचरित्र से आरम्भ नहीं किया। उन्होंने राम की वाससीला भी नहीं दिखाई जिस पर तुलसी ने पूरे एक काण्ड में आत्मस्थ रस का सागर ही उल्लेख किया है। दशरथ का अत्यन्त ही संश्लेष में परिचय कराने तथा राम आदि चार भाइयों के नाम मात्र गिनाने के साथ कथारम्भ होती है। इसके अनन्तर ही अयोध्या में विश्वामित्र के आश्रम का वर्णन है। विश्वामित्र आते ही सरब, हाथी दान और अयोध्या का वर्णन करते हैं और अयोध्या के राजसी ठाट-बाट और सीमर्य के मुख्य हो राजा दशरथ की समा में पहुँचते हैं। दूसरे प्रकाश में मुनि विश्वामित्र का दशरथ की समा में आश्रम राजा से आर्वासाप और श्रीराम का मुनि के साथ उपोषन वाला वर्णित है। प्रथम केवल राजसभा के समासों का उल्लेख करते हैं और फिर वे राजसी विभास-क्रीड़ाओं का आनन्द मूढते दिखाई देते हैं जिसका सम्भवतः केवल को नगर के प्रचंड में व्याप्त नहीं रहा था। अस्तु हम उन्हें फिर राजसभा में प्रविष्ट पाते हैं। किन्तु वह सब कुछ मुनि जी ने अपनी दिव्य चक्षु से ही देखा होगा क्योंकि अभी तक वे पारौरीक रूप से राजसभा नहीं पहुँचे हैं (रा. चं० प्र० २ सं० ७)। विश्वामित्र राजा दशरथ को यज्ञ की रक्षा के लिए केवल राम की याचना करते हैं पर बिना होते समय सज्जन भी उनके साथ आते दिखाई पड़ते हैं। तीसरे प्रकाश में भी ऐसी ही असंगति अटकती है। विश्वामित्र के साथ आश्रम में पहुँचने पर लक्ष्मण-सहित राम सबब होकर यज्ञ की रक्षा के लिये यज्ञस्थल के निकट बैठे हैं। इतने में ही ताड़का यज्ञप्रद करने के लिये उसी स्थल पर प्रकट होती है। राम बाण तो चालते हैं पर स्त्री समझकर सब पर चमाते नहीं। इस पर मुनि का आदेश होता है—

कर्म करसि यह घोर विप्रन को बसहु विद्या।

मरत लहुत भव जोम नारी जानि न छीजिये ॥

(प्र० ३, सं० ९)

अब राम ताड़का-यज्ञ कर डालते हैं। उसी के साथ वे पारौरीक को धपाते और मुखाहु को मार डालते भी हैं जिनके मारने का पहले कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। इस प्रकार विश्वामित्र का यज्ञ निविण्य समाप्त होता है। इसमें मैं ही एक बाह्य

पवित्र जनकपुरी का भाता है और विद्वान्मित्र उत्तम मित्रिता के अनुप-युक्त की धूम कमा सुनने लपते हैं। एक ही स्थान पर बैठा ब्राह्मण अनुप-युक्त के उत्सव-समारोह और सुमति-विमति के संभाषणपूर्ण विभिन्न देशों के राजाओं के छीय एवं प्रताप की कथा सुनाता रहता है। कथावस्तु का यह अप्रासंगिक मुख्य वर्णन कथा क्रम में घटित होता है। सुनती ने अपने 'मानस' में यह सब बचन राम के मित्रिता पट्टे के बाने पर किया है। यदि केवल भी उनका ही अनुकरण करते तो यह असमति न होती और उसका प्रभाव भी निश्चय ही अधिक पड़ता। ब्राह्मण कहता है कि जब सब राजा महाराजा भी अनुप लोचन में असमय रहे और उनका न कोई स्वाम ही विद्व हमा और न परमार्थ ही बरत अपने हाथों अपनी मान-प्रतिष्ठा और गौराई उनी समय राजम और बाबापुर कही स पा टपकते हैं और फिर दोनों में कहा सुनी हो जाती है। यह कुछ मुख्य वस्तु के रूप में ही है। यदि यह भी कवि के मुख से ही वर्णित होता तो अधिक समत होता। फिर अनुप-युक्त में आकर भी बाप यह बहाना बना कर कि "यह अनुप तो मेरे दुष्टे सिव जी का है और सीता मेरी माता है। दोनों प्रकार से यह काय मेरे लिये असमंजस का है" स्थिति से बच निकलता है और सहृदय बना जाता है। इस ही में किसी धमुर के मारे जाने की घात बाणी सुनकर राजम भी स्वयंवर भूमि से छिड़क जाता है। राजम के छिड़कने का यह कारण भी कल्पित मान पड़ता है। अनुप-युक्त पूर्ण हो चुका अब भय हो चुका और राजा जनक अनुप भी अपने मन में बापिस रख चुक पर ब्राह्मण को कथा उसी प्रकार बत रही है कि ठीक उसी समय एक चमत्कार होता है। एक ऋषि-पत्नी घाती है जो हाथ में मीठा के भाजी बर के रूप में एक सुन्दर राजकुमार का बिज लिये है^१। इसी बेबी संकेत को पा विद्वान्मित्र मित्रिता के लिए बल पड़ते हैं और साथ में राम और लक्ष्मण भी हैं। दूसरे ही क्षण दृष्टि पड़ते ही राम सिता को एक सुन्दर स्त्री बना देते हैं। राजा राजम और भी वे सब प्रात मित्रिता पट्टे बने हैं। रामलक्ष्मण-सहित विद्वान्मित्र का मानमन सुनकर याज्ञवल्क्य सत्तात्म्य आदि ऋषि मुनियों ने उनका स्वागत किया। लक्ष्मण के इन प्रश्न का कि राजा जनक योगी और राजा दोनों एक ही साथ कैसे हो सकते हैं उत्तर विद्वान्मित्र न देकर राम देते हैं जिसका कदाचित् जनक से कोई पूर्व परिचय न था। यह उत्तर विद्वान्मित्र देते तो अधिक स्वाभाविक एवं उचित होता। रामचन्द्र का परिचय जनक से कराते समय विद्वान्मित्र कहते हैं कि रामचन्द्र 'भुवचन्द्र' है तो सीता 'अक्रोर लक्ष्मी'। दोनों एक भूमे के दोम्ब हैं पर यह बात जब तक कि अनुप न छोड़ा जाए कैसे बन सकती है। अब अनुप छोड़ना आवश्यक हो जाता है और राम को अनुप भी छोड़ना पड़ता है। पर सुनती ने स्वयम्बर के समारोह के प्रबल पर जो विभिन्न-देशीय राजा-महाराजाओं के समस्त रामचन्द्र का पराक्रम दिखनाया है उसे वैराग्य अपनी 'अभिज्ञान' में इस भीमिका के कारण न दिखना सके। उस विरम विस्माद घट का पालन चुपचाप हो जाता है।

१. सिद्धि साह प्रिय को बर ऐसी। राजकुमार हि देखिय रीति।

राजा जनक दशरथ के पास चारों भाइयों के विवाह का निर्वाह भेंटते हैं और तुरन्त ही राजा दशरथ भार बराधे सजा कर प्रा सके होते हैं, किन्तु बर्जित केवल राम-सीता के ही विवाह का किया गया है। विवाह के छह हज्ज बारोठे को चार (दशरथजी) मंगलगायी यज्ञ-हवन धान-बाद्य ज्योहार, पसकाचार समाप्त हो जाने पर केशव का कथन है। पता नहीं राजा दशरथ का क्या बना? 'राम-परशुराम सबाद' में कामदेव राम लक्ष्मण, भरत धनुष्ण और धृष्ट में महादेव सब अपना अपना भाग लेते हैं पर दशरथ का कहीं पता नहीं भगता। सम्भवतः उनकी उपस्थिति का केशव को ध्यान ही नहीं रहा है।

अयोध्याकाण्ड में हमर तो राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक के विषय में वशिष्ठ से यत्नका करते हैं और उधर कैकेयी राम के लिए वनवास का निश्चय कर लेती है और प्रतिज्ञाबद्ध राजा से दोनों घर भाग लेती है। तुलसी ने ऐसे मानिक स्वयं में दशरथ और कैकेयी दोनों के चरित्रों के उल्लेख और भक्ति पक्ष का बड़ी निपुणता के साथ उच्चाटन करते हुए पाठक को सम्मोहित कर दिया है। पर केशव को ऐसे मनोवैज्ञानिक एवं सरस संक्षेपों में कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता। हमर तो दशरथ तड़प उठते हैं और उधर राम ठमक कर बग की ओर प्रस्थान कर देते हैं। ऐसे प्रसंग में केशव की इतनी उवाचीनता एवं [सिध्दा बटवरी] यत्न है पर संतोष है कि राम ने अभी सम्मोहित बग की ओर प्रस्थान नहीं किया है। उन्हें अभी अपनी माता की मारी-बम और विधवा बर्ग का पाठ पढ़ाना शेष रहता है। दोनों ही बातें कितनी अशिष्ट और अमानसिक हैं। पता नहीं केशव में इतनी निष्ठुरता तथा हृदय हीनता कहाँ से आ गई? राम जानकी और लक्ष्मण से बिदा लेते हैं पर दूसरे ही क्षण वे जानकी और लक्ष्मण के साथ वनमार्ग में विराज रहे हैं। हमर राजा दशरथ रामचन्द्र का घर से बग को प्रस्थान सुनते हैं कि उधर बाबू की भाँति उनके प्राण झटपट ही कोड़कर स्वर्गलोक में आ रमते हैं। भरत का नमिहास से अयोध्यापुरी में सीटना माता से मिलना उसे धिक्कारना कीधस्वा के समीप जाकर अपना पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया करना बटाएँ तथा नरक वारण कर निपाह के साथ बंदा पार करना आदि प्रसंग अत्यन्त सकप में लिए हैं। भरत का सर्वान्व विवकट पर राम जी के पास पहुँचना समस्त पापका माँझकर लौट आना और मन्त्रीदाम में रहने लगना आदि प्रसंग भी बहुत अशिष्ट हैं। इस प्रकार के अत्यन्त सुन्दर स्वयं को छोड़ गये हैं। अति अनुसूया-मिश्र विराह-बध और रूपण-निधिरा आदि राखणों का बग राम का सीता-लक्ष्मण-सहित भगवत्पति आदि के माध्यम में पहुँचना मारी-बम राखण बटम-मुठ बालि-मुषी-मुख राम द्वारा बालिबध सम्पादि-कथा हनुमान जी का समुद्र को पार करना समुद्र के बीच में हनुमान जी को सूरदा और सिंहिका नाम की राक्षसियों का मिलना उनके द्वारा हनुमान जी का कथित किया जाना और

१ विरामिध बिदा भए जनक छिरे पहुँचाय ।

मिले आपसी पीठ को परमुराम धनुमाय ॥

हनुमान जी का बदन उदर बीरकर निकम घाना घादि प्रसंगों की घोर संवित मान ही किया गया है। समुद्र-अंध की कथा केवल एक ही छन्द में ही गई है^१। इस प्रकार केदारदास प्राचर्यक प्रसंगों की छोड़ देते हैं और प्रसासंगिक विषयों के बचन में ही अपना मन रमाते दिखाई पड़ते हैं। शौचिण्य प्रमोचिण्य की भी उम्हने उमेसा की है। बहुत स्थानों पर तो श्रिया-व्यापारों की केवल सूचना भर दे संतोष काटते हैं। इस कारण रामकथा का सांगोपांग विनय करने में वे सफल नहीं हो सके हैं।

धनुषाण का धमाका—केदार ने 'रामचन्द्रिका' के प्रथम प्रकाश में सरयू दरार के हाथी उपवन घोर घबकपुरी के बर्णन में छन्द के छन्द (छं० १७-१०) रख डाल है। दूसरे प्रकाश में दरार की राजनभा का बचन भी इकट्ठे प्यारह छन्दों में किया गया है (छं० १११)। किन्तु जिस स्वर्णों में हरण की घण्टियों की खोलकर बिसाले का घबहराता है वहाँ उनकी लैघनी खीन हो जाती है। कुछ ही छन्दों में केदार विश्वामित्र राम और लछमण को तपोवन में पहुँचा देता है। जनक के राजप्रासादों मण्डपों धनुष-यज्ञ राम-सीता के बिवाह में अन्तार मयत्पाटी पनकाचार घादि के प्रसंगों पर उनकी खीन अधिक उत्तर दिखलाई देनी है परन्तु राम-जनमन जैसे करुण प्रसंगों में उनका बलिष्ठ इच्छि नहीं हुआ है। ऐसे मानिक प्रसंग में भी गहरी घर्ष और विश्वास-धर्म के उपदेशों की घोर ही केदार की दृष्टि गई है जिससे कथा के प्रचलन पर घोर घापाट पहुँचा है। यद्यप्या बर्णन एक बार (पहले और दूसरे प्रकाश में) कर चुकन के समस्त भी केदार संतुष्ट नहीं हात और बिवाहोपरान्त राम-सीता के जनक-पुरी से लौटने पर लछमण-पुरी में प्रसंग करते समय फिर यद्यप्या का बर्णन करने लगते हैं और पूरा बाठवाँ प्रकाश हा निख डालते हैं। राम के वन जाते ही दरार का गरम हो जाता है। यदि केदार को मानिक स्वर्णों की पहचान होती तो ऐसे घबहरा पर वे हो-एक घाँस घबक ही गिरते किन्तु केदार तो हमारे ही छन्द में जनमार्ग में चलते हुए राम के रूप में उसभ जाते हैं। उपर भरत पिता का अन्वयष्टि स्वरूप करते हैं और उत्तर में बटावे और बरुन बरन बारन कर भटपट पैरन ही राम की के पास चल पड़ते हैं। भरत क्यों एक कम कम पड़ते हैं? इस विषय में केदार खीन हैं पर पाठक तुमही की बुपा से जानते हैं कि भरत राम को मताने जा रहे हैं। बराब न ऐसी सूचनाया की घोर ध्यान नहीं दिया है। सम्मरुपघाटी धूप को देखकर सीता का सम्मोहन सीता की रखा के निमित्त लछमण की निवृत्ति घोर मृग के पीछे धनुष-बाण लेकर राम का प्रस्थान—सब एक ही छन्द में वर्णित है^२। लछमण के जाने जाने के परवाना तो सीता-हरण एक ही छन्द में

१ जहाँ रघुनाथक बाध लियो। सबिधेय विघातित निधु दियो।

सब ही दिन कर मु पाइ गयो। नल सेतु रब यह मभ दियो॥

छं० अं० १२, दं० २७।

२ घाटयो बुरेय एक जाक हैम हीर को।

जानकी मयेत चित मोहि राम घोर का॥

रामपुत्रिका मभीष नाथु बधु राखि कै।

हाथ बाण बाण सँ मए गिरीय नाथि के॥

छं० अं० १२ दं० २१।

राजा जनक दशरथ के पास चारों भाइयों के विवाह का निर्माण भेजते हैं धीर तुरन्त ही राजा दशरथ चार बरातें सजा कर भा बड़े होते हैं । किन्तु गर्वम केवस राम सीता के ही विवाह का किया गया है । विवाह के सब ऋण बरातों को चार (चारपूजन) भगतगारी यज्ञ हुवन याम-वाघ ज्योहार पक्षकाचार, समाप्त हो जाने पर केवस का कथन है^१ । पता नहीं राजा दशरथ का क्या बना ? 'राम-नरशुराम संभाल' में नामदेव राम लक्ष्मण, भरत लघुधन धीर वंश में महादेव सब अपना अपना भाग लेते हैं पर दशरथ का कहीं पता नहीं लगता । सम्भवतः उनकी उपस्थिति का केवस को ध्यान ही नहीं रहा है ।

प्रमोघ्याकाश में इधर तो राजा दशरथ राम के राक्षसामयेक के विषय में वक्षिष्ठ से मन्त्रणा करते हैं धीर उधर कैंकेयी राम के लिए वनवास का निश्चय कर लेती है धीर प्रतिज्ञाबद्ध राजा से दोनों बर भाग लेती है । तुलसी ने ऐसे मार्मिक स्वप्न में दशरथ धीर कैंकेयी दोनों के चरित्रों के उलम्बन धीर मलिन पक्ष का बड़ी निपुणता के साथ उच्चाटन करते हुए पाठक को मन्त्रमुग्ध कर दिया है । पर केवस को ऐसे मनोवैज्ञानिक एवं सरस वंशों में कोई धाकड़पन नहीं दिखाई देता । इधर तो दशरथ तड़प उठते हैं धीर उधर राम समक कर बन की घोर प्रस्थान कर देते हैं । ऐसे प्रसंग में केवस की इतनी उबासीनता एवं क्षिप्रता खटबटी अवश्य है पर सन्तोष है कि राम के सभी सचमुच बन की घोर प्रस्थान नहीं किया है । उन्हें सभी अपनी माता को नारी-वर्म धीर विषया वर्म का पाठ पढ़ाना खेप रखा है । दोनों ही बरतें कितनी वक्षिष्ठ धीर अमानसिक हैं । पता नहीं केवस में इतनी निष्ठुरता तथा हृदय हीनता कहीं से आ गई ? राम जानकी धीर लक्ष्मण से बिदा लेते हैं पर दूसरे ही क्षण वे जानकी धीर लक्ष्मण के साथ वनमार्ग में विराज रहे हैं । इधर राजा दशरथ रामचन्द्र का घर से बन की प्रस्थान सुनते हैं कि उधर बाहु की भाँति उनके प्राण हृदयरस को छोड़कर स्वर्गलोक में आ रमते हैं । भरत का गतिज्ञान ॥ प्रमोघ्यापुटी में सीटना माता से मिलना उसे भिन्नकारणा कौशल्या के समीप जाकर सपन जाला पिता की प्रत्येष्टि-विधा करना बटाएँ तथा वस्त्र धारण कर विवाह के साथ पया पार करना प्राणि प्रसंग अत्यन्त सक्षेप में दिए हैं । भरत का सर्वन्य भिन्नकूट पर राम की क पास पहुँचना समस्त पापुका गमिकर सीट धाना धीर मन्वीधाम में रहने बनना प्राणि प्रसंग भी बहुत संक्षिप्त है । इस प्रकार वं अत्यन्त सुन्दर स्वप्नों को छोड़ पड़े हैं । प्राणि-अनुसूया-मिसम विराज-वज्र कर-भूपन-निधिरा प्राणि रासलों का वप, राम का सीता-सदमन-सहित भगवत्पति जपि के धाम्यम में पहुँचना मारीच-वज्र रामचन्द्र बटामु-मुड प्राणि-मुषीव-मुड राम द्वारा प्राणिबध सम्पाति-कथा हनुमान जी का समुद्र को पार करना समुद्र के बीच में हनुमान जी को सुरसा धीर सिद्धिका नाम की राक्षसिनियों का मिथना उनके द्वारा हनुमान जी का कवचित्त किया जाना धीर

१ विद्वत्प्राणि विद्या मए जनक फिरे पहुँचाय ।

मिले धानसी पीठ को परगुराम सकुलाय ॥

हनुमान की का उनका उदर चीरकर निकल घाना घादि प्रसंगों की घोर संकेत नाम ही किया गया है। समुद्र-जय की कथा कबचक एक ही छन्द में की गई है^१। इस प्रकार कैसबहास घावघटक प्रसंगों को छोड़ देते हैं। घोर घमासान्धिर्य विषयों के वर्णन में ही अपना मन रमाते दिखाई पड़ते हैं। घौचिर्य घनीचिर्य की भी उन्होंने उनसा की है। बहुत स्थानों पर तो क्लेश-व्यापारों की केवल सूचना भर दे संतोष करते हैं। इस कारण रामकथा का सौमोदाय विवर्ण करन में वे सफल नहीं हो सके हैं।

अनुपात का अभाव—केशव ने 'रामचन्द्रिका' के प्रथम प्रकाश में छरयू वधरय क हाकी उपवन घोर अवनपुरी के वर्णन में छन्द के छन्द (छं० १७-२०) रख डाले हैं। दूसरे प्रकाश में वधरय की रामसभा का वर्णन भी इषट्ट प्यारह छन्दों में किया गया है (छं० १११)। किन्तु त्रिज स्वसों में हृदय की घमियों को खोकर दिखाने का अवसर घाता है वहाँ उनकी लपानी मौन हो जाती है। कुछ ही छन्दों में केशव विस्वामित्र राम घोर सकयल को उपोवन म पहुँचा देत है। जनक के राजघासार्थो यशपूर्ण अनुप-यज्ञ राम-सीता के विवाह में क्योंकि मगरगारी पसकाचार घादि के प्रसंगों पर उनकी रचि घमिक वरर दिखनाई देती है परन्तु राम-जनगमन जैसे कबचक प्रसंगों में उनका कविरव जगित नहीं हुआ है। ऐसे नासिक प्रसंग में भी नारी-धम घोर बिबका-धर्म क उपदेशों की घोर ही कथन की दृष्टि गई है जिससे कथा के प्रबन्धत्व पर घोर घाघात पहुँचा है। घयोध्या वर्णन एक बार (पहले घोर दूसरे प्रकाश में) कर चुकन के अनन्तर भी केशव समुष्ट नहीं होते घोर विवाहोपयन्त राम-सीता के जनक-पुटी से लौटने पर अवध-पुरी में प्रवेश करत समय फिर घयोध्या का वर्णन करने लगत है घोर पूरा घाठवी प्रकाश ही निज डालते हैं। राम के जन जाते ही वधरय का मरव हो जाता है। यन् कथन को नासिक स्थलों की पहचान होती तो ऐसे अवसर पर वे दो-एक घामू अवस्थ ही पिटाते किन्तु केशव तो हमरे ही छन्द में जनमार्ग में चलते हुए राम के रूप में उलझ जाते हैं। उधर मरत पिता का घनलेष्टि संस्कार मरत है घोर उधर ब बटारें घोर बस्कर बरव घारम कर भटपट पैदल ही राम की के पास चल पड़ते हैं। मरत क्या एक हम जन पड़ते हैं ? हम विषय में मघव मौन है पर पाठक तुमसो की ह्वा से जानत है कि मरत राम को मनाने जा रहे हैं। केशव म ऐसी सूचनाओं की घोर ध्यान नहीं दिया है। छूमरुपघारी मूय को रैचकर सीता का सम्पोहन, सीता की रथा क निमित्त लहमन की निपुनित घोर मूय के पीछे अनुप-बाध सकर राम का प्रस्थान—सब एक ही छन्द में वर्णित है^२। लहमन के जाने क परघात तो सीता-हरण एक ही छन्द में

१. वहीँ रघुनायक बाध लियो। सबिदीप बिघोपित मिंधु हियो।

वह ही शिखर क म घाइ मयो। नल सेतु रव यह मत्र रियो॥

उ च म १५, ६ १७।

२. भारयो नुरंग एक बाक हैम हीर को।

जानकी समेत बित मोहि राम धीर को॥

राजनुनिदा मपीप सामु बधु रालि कै।

हाथ बाध बाध नै बए गिरीध नाथि कै॥

उ च म १२ द ११।

राजा जनक दशरथ के पास चारों भाइयों के विवाह का निमंत्रण भेजते हैं और तुरन्त ही राजा दशरथ चार बरातें बना कर भा बड़े होते हैं। किन्तु बर्बन केवल राम सीता के ही विवाह का किया गया है। विवाह के सब कष्ट बारातों को चार (चारपूजन) संयत्नगारी, यत्न-हवन पाग-वाद्य ब्योहार पसकाचार, समाप्त हो जाने पर केवल का कवन है। पता नहीं राजा दशरथ का क्या बना ? 'राम-परशुराम सबाह' में जामदेव राम लक्ष्मण परत उद्युध्न और अंत में महादेव सब अपना अपना भाग लेते हैं पर दशरथ का कहीं पता नहीं लगता। सम्भवतः उनकी उपस्थिति का केवल को ध्यान ही नहीं रहा है।

अयोध्याकाण्ड में इधर तो राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक के दिवस में अक्षिप्त से मगन करते हैं और उधर कैंची राम के लिए वनवास का निश्चय कर लेती है और प्रतिज्ञावद्ध राजा से दोनों बर माँग लेती है। तुमसी ने ऐसे मार्मिक स्वस में दशरथ और कैंची दोनों के चरित्रों के उज्ज्वल और मलिन पक्ष का बड़ी निपुणता के साथ उद्घाटन करते हुए पाठक को मग्गमुख कर दिया है। पर केवल को ऐसे मनोवैज्ञानिक एवं चरित्र संश्लेष में कोई आकर्षण नहीं बिछाई देता। इधर तो दशरथ लड़प उठते हैं और उधर राम समझ कर वन की ओर प्रस्थान कर देते हैं। ऐसे प्रसंग में केवल की इतनी उवाचीनता एवं सुनिश्चिता बतवती अवश्य है पर अन्तोप है कि राम ने अपनी सज्जन वन की ओर प्रस्थान नहीं किया है। उन्हें अपनी अपनी माता को लारी-बर्म और बिबना धर्म का पाठ पढ़ाना खेप रहता है। दोनों ही बरों बिदनी अक्षिप्त और अमीगसिक्त हैं। पता नहीं केवल में इतनी निष्ठुरता तथा हृदय हीनता कहाँ से आ गई ? राम जानकी और लक्ष्मण से विवाह लेते हैं पर दुसरे ही क्षण वे जानकी और लक्ष्मण के साथ वनमार्ग में विराज रहे हैं। इधर राजा दशरथ रामचन्द्र का घर से वन को प्रस्थान सुनते हैं कि उधर जाडू की शक्ति उनके प्राण बहिराग्न को छोड़कर स्वर्गलोक में जा रमते हैं। भरत का गतिहास से अयोध्यापुरी में सौटना माता से मिलना उसे बिन्कारना कौशल्या को समीप आकर सपन बना पिता की अन्तर्दृष्टि बिवाह करना बटाएँ तथा बरत धारण कर निषाद के साथ मगा पार करना आदि प्रसंग घायल सन्नेप में लिए हैं। भरत का सर्वस्य बिजकूट पर राम की के पास पहुँचना संगे पाहुका माँदकर लौट जाना और मन्दीराम में रहने बनना आदि प्रसंग भी बहुत अक्षिप्त हैं। इस प्रकार व अत्यन्त सुन्दर स्वर्गों को छोड़ गये हैं। यदि अनुसुमा-मिसन विराज-बन सर-भूपक-विधिरा आदि राजसों का बच, राम का सीता-लक्ष्मण-सहित अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचना मारीच-बन राम बटापु-मुड, बालि-सुग्रीव-मुड राग द्वारा नासिबन सम्पाति-कना हनुमान जी का समुद्र को पार करना समुद्र के बीच में हनुमान जी को सुरक्षा और सिद्धि नाम की राजसिन्धों का मिलना उनके द्वारा हनुमान जी का कबलित किया जाना और

१ विद्वामित्र विवाह भए जनक फिरे पहुँचाव ।

मिले धागली कीज को परमुराम यकुलाय ॥

हनुमान को का उनका जवर चीरकर निकस माना थावि प्रसंगों की धोर संकेत मात्र ही किया गया है। समुद्र-मंथ की कथा केवल एक ही छन्द में ही गई है^१। इस प्रकार केसवदास प्राक्शयक प्रसंगों को छोड़ देते हैं। धीर अप्रासंगिक विषयों के बगल में ही अपना मन रमाते दिखाई पड़ते हैं। प्रीतिव्य घनोचित्य की भी उन्होंने ज़ेरा की है। बहुत स्थानों पर तो क्रिया-व्यापारों की केवल सूचना भर दे संतोष करते हैं। इस कारण रामकथा का सामोपांग विवर्ण करण में बें सफल नहीं हो सके हैं।

अनुपात का अभाव—केसव ने 'रामचरितका' के प्रथम प्रकाश में सरमु दधरय के हाथी उपवन धीर घबघपुरी के वर्णन में छन्द के छन्द (छं० १७-२०) रख डाले हैं। दूसरे प्रकाश में दधरय की राजसभा का वर्णन भी इच्छु म्यारह छन्दों में किया गया है (छं० १११)। किन्तु बिम स्वर्णों में हृदय की प्रीतियों को सोलकर बिचाने का धनसर छाटा है नहीं उनकी मेछनी मीन हो जाती है। कुछ ही छन्दों में केसव विस्वामित्र राम धीर सकुमल को उपोवन में पहुँचा देत हैं। जनक क राजप्रासादों मन्त्रियों अनुप-मन्त्र राम-सीता के विवाह में ज्योनार मंगलगारी पलकावार आदि के प्रसंगों पर उनकी उच्च धार्मिक तत्पर दिखाई देती है परन्तु राम-वतगमन जैसे कथन प्रसंगों में उनका कवित्व इतिव नही हुआ है। ऐसे मार्मिक प्रसंग में भी भारी धर्म धीर विषय-धर्म के उपदेशों की धोर ही केसव की दृष्टि गई है जिससे कथा के प्रबन्धत्व पर धीर आघात पहुँचा है। अयोध्या-वर्णन एक बार (पहले धीर दूसरे प्रकाश में) कर चुकन के अनन्तर भी केसव समुष्ट नहीं होते धीर विवाहोपरांत राम-सीता के जनक-पुरी से लौटने पर घबघ-पुरी में प्रवेश करते समय फिर अयोध्या का वर्णन करने लगते हैं धीर पूरा माटवर्ष प्रकाश ही निकल डालते हैं। राम के वन जाते ही दधरय का मरण हो जाता है। यदि केसव को मार्मिक स्वर्णों की पहचान होती तो ऐव घबघर पर बें बो-एक भासू घबघ ही गिराते किन्तु केसव तो दूसरे ही छन्द में वनमार्ग में चलते हुए राम के रूप में उत्तक जाते हैं। उमर भरत पिता का अन्तदेष्टि संस्कार करते हैं धीर उमर बें जटायु धीर बरुनस बरुन भारन कर भटपट पैरन ही राम की के पास चल पड़ते हैं। भरत क्या एक वन चल पड़ते हैं? इस विषय में केसव मौन हैं पर पाठक तुमसी की दृष्टा से जानते हैं कि भरत राम की मनाने जा रहे हैं। केसव न ऐसी सूचनाओं की धोर ध्यान नहीं दिया है। छद्मरूपधारी मृग को देखकर सीता का सम्मोहन, सीता की रक्षा के निमित्त सकुमल की निमित्त धीर मृग के पीछे अनुप-मन्त्र लकर राम का प्रस्थान—सब एक ही छन्द में घनिष्ठ हैं^२। सकुमल के चले जाने के पश्चात् तो सीता-दुरण एक ही छन्द में

१ जहाँ रघुनायक बाण लियो । सविधीय बिद्योपित सिधु हियो ।

तब ही द्विज रूप सु भाइ गयो । नन सेतु रच्य यह मंत्र दियो ॥

रा. सं० प्र १२, पं. २० ।

२ धारयो कुरंग एक जाक हैम हीर को ।

जानकी समेत जित मोहि राम धीर को ॥

रामपुनिका समीप साधु बधु राति हैं ।

हाय जाय बाण सँ गए मीरीय नाथि हैं ॥

रा० प्र ॥ १९ पं० १३ ।

हो गया है। मृग को मारकर सीटने पर पर्वकुटी में सीता को न पाकर राम लक्ष्मण से पूछते हैं—

८

मित्र देखो नहीं सुभ पीतहि सीताहि काएछ कोन कहौ प्रबही ।
 प्रति भो हित न बन मानि गई सुर पारग मैं मृग मार्यो बहो ॥
 कहु बसत कहू तुम सों कहि पाई किनी तैहि आस बुराय रहौ ।
 प्रथ है यह पणकुटी किनी और किनी कहू लक्ष्मण होइ नहीं ॥

(रा० अं० प्र १२, सं २७)

और दूसरे ही क्षण में बंसे अटाय सामने ही पड़ा था।

संकाशकाण्ड में कथा विस्तृत रूप में दी गई है परन्तु 'उत्तरकाण्ड' में कथा मान बहुत छोटा और वर्णन भाव अधिक है। इसी प्रकार 'रामचरित्रा' के उत्तरार्द्ध में भी कथा भाव की अपेक्षा वर्णन भाव (जिसमें राम के राज-ऐश्वर्य और राज विहार का विवरण है) अधिक है। यदि केदार कथा-प्रसंगों के अनुपात का ध्यान रखते तो वे 'रामचरित्रा' की कथावस्तु की ऐसी उपेक्षा करी न करते।

पति का अभाव—'रामचरित्रा' के पढ़ने से ऐसा धामास होता है कि कवि का उद्देश्य कथा को सज्जुत बटना-सहित सर्वाङ्गपूर्ण रूप में दिखाना नहीं है बल्कि रामचन्द्र के जीवन के अधिक प्रकाशित या महत्त्वपूर्ण प्रसंगों की झँकी दिखाना मात्र है। इसमें 'रामचन्द्र की चरित्रा वर्णन ही बहुत छन्द से कथावस्तु यही आशय है। 'रामचरित्रा' को 'मुक्तक' तो नहीं कहा जा सकता। कारण इसके छन्द स्वतन्त्र नहीं हैं वे एक-दूसरे की अपेक्षा करते हैं। शीघ्र प्रवृत्ति ग्रीक सूत्र द्वारा भिन्न भिन्न प्रसंगों को जोड़कर केदार ने इसे प्रबन्ध का रूप देना चाहा है जिसके परिणामस्वरूप केदार की स्थिति एक चित्रकार की न होकर अनेक चित्रों के व्याख्याता की-सी हो गई है। केदार कभी नीरस एवं विस्तृत उपदेश प्रवृत्ति विवरण देते हुए पाठक के मन को ऊँचा देते हैं और कहीं पर सम्पूर्ण कथा-कल्पना का भार पाठक की कल्पना-वृत्ति पर भार कर चलते बने हैं। 'रामचरित्रा' में यदि वे अन्त तक छन्द-परिवर्तन दिखाई पड़ता है। कुछ छन्द वृत्तवृत्ति हैं और कुछ मन्दवृत्ति। अतः समस्त कथा में एक-सी पंक्ति या प्रवाह नहीं है। कहीं पंक्ति में स्वाभाविक गतता और भीरता के घटन होते हैं तो कहीं अजीब सज्जुत कल्पना के। केदार की जो प्रसंग पंक्ति द्विप एवं त्रिपंक्ति भगा है उसको उन्होंने सब ही चित्रित किया है। जहाँ उन्हें लोकनीति जननीति एवं काम्यशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान का प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है वहाँ वे बलात् पाठक को रोक लेते हैं। ऐसे स्थलों पर कथा की पंक्ति मन्द पड़ जाती है। पर जहाँ ऐसा कोई प्रसंग नहीं आता वहाँ एक ही छन्द में कई दिनों महीनों प्रवृत्ति बर्णन की बटनाओं को समेट लेते हैं। अयोध्या वर्णन धनुष-महा-समारोह राजन-आम संवाद विवाह-वर्णन राम-परशुराम-संवाद भरत का चित्रकूट प्रयाण राजन-सीता-वार्ता, सीता हनुमान-संवाद हनुमान राजन-संवाद संवाद राजन-संवाद राम-राज्य वर्णन अयोध्या-महा, सबकुछ-मुख—ये प्रसंग 'रामचरित्रा' में विस्तार के साथ दिये गये हैं और इनमें सम्यक् प्रवाह भी है। दूसरे ओर विरवाधिव-यज्ञ-रक्षा दशरथ वरत-वर्णन राम राज्यारोहण कैकेयी का वर माँगना वनवास-वर्णन राम-मन्द

सम्भावना कटायु रावण-मुद्ग सबरी-रूपा मुद्ग-वर्चन धारि प्रसंग सकोच के घाम वर्णित हैं। इनमें कवि ने कथा-व्यापार की सूचना मात्र दी है।

भारमिक स्वर्णों का चित्रण—अस्मृत के धारार्थ विश्वनाथ धीर रसगंगाधर के प्रयोज्य पण्डितराज बगन्नाथ से लेकर हिन्दी के धारार्थ सुकृत तक सभी धारार्थकों ने काव्य की धारमा रस को स्वीकार किया है। पाश्चात्य धारार्थकों ने काव्य में चित्रचित्रान को प्रमुखता दी है। यह चित्रचित्रान तब तक सम्भव नहीं जब तक कवि में भाव की सम्प्रेषणक्षमता न हो। केदार का कवि सदा केदार के धारार्थ के धारो हृदय हो गया है। केदार ने काव्य के बहिरंग को ही संभाला है अन्तरंग को उपेक्षित किया है।

'रामचन्द्रिका' में अनेक स्थल ऐसे पाते हैं जिनसे प्रकट होता है कि कथानक के धारमत्त मर्मस्पर्शी एवं हृदयद्रावक स्वर्णों ने चित्रण में भी केदार का कवित्व प्रतिबिम्बित नहीं हुआ है। उपोवन की रक्षा के निमित्त याचना करने वाले विश्वामित्र को अपने प्रिय पुत्र राम धीर लक्ष्मण के साथ देने के उपरान्त बछराव की व्यापार को केदार ने अपनी सेवानी के एक-दो स्थल में ही व्यक्त करके पाठक के मन में कथना प्रवाहित कर दी है^१। बछराव का यह मीन उनके हृदय के मीन खन का छोटक है। किकी की बर माँघने पर बछराव के हृदय पर होने वाली प्रतिक्रिया केदार के सिये हतनी मर्मभेदी नहीं है। वे केवल

यह बात लगी छर बख तुल। हिय फट्यो क्यों धीरन बुझल^२ ॥

ये पंक्तियाँ मिल कर ही रह जाते हैं। राम पर भी बगबास के समाचार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। वे सहसा वन के सिये चल पड़ते हैं। कौटल्या माता से बिदा माँगने पर व उसका सीटिया हाह ही दिखाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। प्राण-व्यापार धीर साइले पुत्र के चौदह वर्ष के बीचकास के सिये बिछड़ते समय माता के विल पर क्या घुबली है इसे केदार का राम-समाज में पला हुआ हृदय क्या जान सकता है। बग-बाग में सीता जी की बकावट को बस्कर बस्कर की हवा करके राम दूर करते हैं और सीता बाँकी बितबन से देखकर राम के धम का अपहरण करती हैं। राम-सीता की ऐसी शारीरिक शृंगारिक केन्द्राओं का वर्चन केदार की मर्मज्ञता पर बोर साभाव है। जहाँ तुमसी की सीता बसते समय अपने प्रभु के चरण-चिह्नों के बीच-बीच में अपने पाँव भरती हुई चलती है वहाँ केदार की सीता मुससे हुए पाँवों को राम के चरण चिह्नों की शीतलता से मुस पहुँचाने के लिये जग पर पाँव भरती हुई चलती है^३। एक अतिथीय पाठिपत्र का

१ राम चलत भूप के भूप शोचन मारि भरित भये भारिद शोचन।

पापन परि ऋषि के सत्रि मीनहि, केदार उठि गय भीतर मीनहि ॥

—रा. भ. प्र. १, पं. १०१

२ रा. भ. प्र. १, पं. १ (पञ्चाङ्क)।

३ मारम को रज तापित है धति। केदार सीतहि सीतस लामति ॥

प्यौ पर पंकज ऊपर पायनि। ईशु पसी तेहि मुखरायनि ॥

—रा. भ. प्र. १, पं. १०१

हो गया है। मृग को मारकर सीटने पर पर्णकुटी में सीठा को न पाकर राम सशमन से पूछते हैं—

निर हैकों नहीं मृग पीतहि सीतहि कारख कौन कहौ धरहौ ।
 धति मो हित न बन भाँख यहँ सुर मारन में मृग मार्यों कहौ ॥
 मृग बात कहूँ मृग तौ कहि आई किचौ तैहि बास बुराय रहौ ।
 सब है यह पर्यंकुटी किचौ और किचौ कहूँ लबमल होइ नहीं ॥

(रा० अ० प्र० १२ छं० २७)

धीरे धीरे ही चरण में बँधे बटायु सामने ही पड़ा था।

लकाकाष्ठ में क्या विस्तृत रूप में ही यह है परन्तु 'उत्तरकाष्ठ' में कला-भाय बहुत बड़ा धीरे वर्णन भाव धारित है। इसी प्रकार 'रामचरित्र' के उत्तरार्द्ध में भी कला भाव की अपेक्षा वर्णन भाव (विशेष में राम के राज-ऐश्वर्य और राज-विहार का विवरण है) धारित है। यदि केवल कला-प्रसंगों के अनुपात का ध्यान रखते तो वे 'रामचरित्र' की कलावस्तु की ऐसी उपेक्षा कभी न करते।

यदि का प्रभाव—'रामचरित्र' के पढ़ने से ऐसा धामास होता है कि का का उत्सव कला को समुचित घटना-सहित सर्वप्रथम रूप में दिखाना नहीं है बर रामचन्द्र के जीवन के धार्मिक प्रकाशित या महत्त्वपूर्ण प्रसंगों की मूर्त दिखाना मात्र है। इसमें 'रामचन्द्र की चरित्र वर्णन ही बहुत छन्द' से कलावित् यही भाव्य है। 'रामचरित्र' को 'युक्तक' तो नहीं कहा जा सकता। कारण इसके छन्द स्वतः प्रसंगों को जोड़कर केवल ने इसे प्रकाश का रूप देना चाहता है जिसके परिणामस्वरूप केवल की स्थिति एक विचकार की न होकर अनेक चित्रों के व्याख्याता की ही हो गई है। केवल कभी गीतर एव विस्तृत उपदेश प्रकाश विवरण देते हुए पाठक के मन को ऊँचा देते हैं और कहीं पर सम्पूर्ण कला-कल्पना का भार पाठक की कल्पना-शक्ति पर सार कर चलते बने हैं। 'रामचरित्र' में धारि से अनेक एक छन्द-परिवर्तन दिलाई पड़ा है। कुछ छन्द वृत्तयि हैं और कुछ मन्त्रयि। अतः समस्त कला में एक-ही गति या प्रवाह नहीं है। कहीं गति में स्वाभाविक मरमता और पीरता के दृष्टान्त होते हैं तो कहीं अचौर उष्ण समता के। केवल की भी प्रसंग गति प्रिय एवं धार्मिक रूपा है उसको छन्दों में मृग ही चित्रित किया है। वहाँ छन्दों को भी प्रसंग के अनुसार एवं समनीति एवं काव्यपात्र-सम्बन्धी भाव का प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है वहाँ वे बसतः पाठक को रोक लेते हैं। ऐसे स्थलों पर कला की गति मन्द पड़ जाती है। पर वहाँ देवा कोई प्रसंग नहीं पाता वहाँ एक ही छन्द में कई दिनों मूर्तों अथवा वर्णों की बटनारों को समेट लेते हैं। अयोध्या वर्णन अनुप-यम-समारोह राज-बाज-संवाह-विवाह-वर्णन राम-परमुराम-संवाह मरत का विचकृत प्रयास राज-सीता-वार्ता सीता अनुमान-संवाह अनुमान-राज-संवाह धरत राज-संवाह राम-राज्य-वर्णन धर्ममेध-यज्ञ सबकुछ-मुक्त—ये प्रसंग 'रामचरित्र' में विस्तार के साथ दिये गये हैं और इनमें सम्मिलित प्रवाह भी है। दूसरे ओर विचामित्र यम-रक्षा इतरत मरत-वर्णन, राम-राज्यारोह कर्कसी या बर मानता मनवाच-वर्णन राम-मरत

सम्भावना, बटायु राखण-युद्ध सबरी-कथा युद्ध-वर्णन आदि प्रसंग संकोच के साथ वर्णित हैं। इनमें कवि ने कथा-व्यापार की सुषमा मात्र की है।

नामिक स्वर्णों का चित्रण—सुस्तुत के आचार्य विश्वनाथ और रसमंशपर के प्रयोजन पण्डितराज जननाथ से लेकर हिन्दी के आचार्य शुक्ल तक सभी आलोचकों ने काव्य की आत्मा रस को स्वीकार किया है। पादशास्त्र आलोचकों ने काव्य में चित्रचित्रण को प्रसूचता की है। यह चित्रचित्रण तब तक सम्भव नहीं जब तक कवि में भाव की सम्प्रेषणक्षमता न हो। केदार का कवि सर्वत्र केदार के आचार्य के आगे हृदयगत हो गया है। केदार ने काव्य के बहिरंग को ही संभासा है अन्तरंग को उपेक्षित किया है।

‘रामचन्द्रिका’ में अनेक स्वस ऐसे पाते हैं जिनसे प्रकट होता है कि क्यातक के आत्मन्तर्मस्पर्शी एवं हृदयद्रावक स्वसों के चित्रण में भी केदार का कवित्व श्रवित नहीं हुआ है। तपोवन की रक्षा के निमित्त याचना करने वाले विद्वान्मित्र को अपना प्रिय पुत्र राम और सबमण के सौंप देने के उपरान्त दशरथ की ध्याना को केदार ने अपनी सेहनी के एक-दो स्वस में ही व्यक्त करके पाठक के मन में कवचा प्रवाहित कर दी है^१। दशरथ का यह भाव उनके हृदय के भाव स्वस का स्रोतक है। कैंची के बर मांगने पर दशरथ के हृदय पर होने वाली प्रतिक्रिया केदार के सिये इतनी अर्ममयी नहीं है। वे केवल

यह बात सपी जर बज्ज तुल । हिय काइयो क्यों कीरन दुकूल^२ ॥

ये वंशिका लिख कर ही रह जाते हैं। राम पर भी जनबास के समाचार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। वे सहसा वन के सिये जल पड़ते हैं। कौटुम्बा माता से बिदा मांगने पर वे उसका सीटिया-डाह ही दिखाकर सगुप्त हो जाते हैं। प्राण-प्यारे और माझने पुत्र के बीचहूँ बर्ष के बीर्यकास के सिये बिछड़ते समय माता के विस पर क्या झुबड़ती है इसे केदार का राम-समाज में पसा हुआ हृदय क्या बाल सकता है। वन-यात्रा में सीता जी की बकावट को बत्कस बरस की हवा करके राम दूर करेते हैं और सीता जी की बितन से देखकर राम के मन का अपहरण करती हैं। राम-सीता की ऐसी घाटीरक शृंगारिक केटावों का वर्णन केदार की अर्ममता पर और आघात है। जहाँ सुमरी की सीता बसत समय अपने प्रभु के चरण-बिन्दों के बीच-बीच में अपने पाँव बरती हुई बसती है वहाँ केदार की सीता झुलसे हुए पाँवों को राम के चरण-बिन्दों की धाँतनता से मुक्त पहुँचाने के लिये उन पर पाँव बरती हुई बसती है^३। एक अतिरिक्त पात्रिष्ठ का

१ राम बसत भूप के मुग मोचन बारि भरित दये वरिद अँवर ।

पावन परि आधि के सनि मीनहि केउर उठि दने मरर कोन्हू ॥

—राम ३०३ ई० २४

२ राम ३०३ ई० २ (पद्य २) ।

३ मारन को रज छापित है धाँत । केदार की बरि मरर मरर ॥

ज्यों पन पंख ऊपर धारन । रज बरि मरि मरर मरर ॥

—राम ३०३ ई० २४

ज्याहूरन है और दूसरा शरीर-मुक्त-भासता और स्वार्थपरता का। सीता पंथी साध्वी के प्रति इससे अधिक और भगवान् और नया हो सकता है? इसी प्रकार बिना कूट में राम के पुष्पों पर कि पिता मुक्त से है? माताओं की व्यापक स्तन चेट्टा द्वारा ही दिखाई गई है।

राम-ननबास और बचरण भरन के उपरान्त भरन के अयोध्या सीटने पर वहाँ तुलसी भरन का राम-श्रेम और कोष दिखाकर पाठक का हृदय प्रविष्ट करने में समर्थ है वहाँ केवल अपनी प्रफोलेक-प्रभावी से भरन का धारा भावनेय संकुचित कर देते हैं। जब भरन बिनाकूट में सर्वत्र राम को अयोध्या सीटा जाने के लिए माते दिखाई देते हैं तो मलय सङ्क हो उठते हैं। किन्तु ऐसा का वर्णन करने में धार्मिकता का पुष्ट होकर तथा शीर रस के स्थायी भाव की व्यंगता कर्म के केवल उक्त धर्म की व्यंगता में बाधक हो गए हैं (उ० अ० प्र० १० छं० १८)। केवल यह जानते कि कि भरन केना-सहित पुष्ट करने नहीं माने हैं तब इस प्रकार का वर्णन करना प्रत्यक्षमूल भाव का व्यंगक नहीं हो सकता।

मृग को मारकर सीटने पर पलकूटी में सीटा का न राकर राम को व्याकुल होना चाहिए या किन्तु केवल के राम कवि के-से समेह में पड़ जाते हैं। राम का यह समेह धार्मिक हो धर्मका यथार्थ इससे केवल के राम की सर्वप्रथा पर पानी पसर्य डेर दिया है। जो राम पृथ्वी का मार उठारने के लिए माया मृग की माया और धामा कर्मों सीटा की माया रखते दिखाई पड़ते हैं वे राम धर्म एक धर्म के लिए इस भ्रम में दूष्ट हो गए हैं कि उनसे भी अधिक प्रबल कोई राजसी माया उन्हें नष्टाना चाहती है। राम इसी बुद्धि में हैं कि बटामु धामने ही दिखाई पड़ जाता है और वह रावण द्वारा सीटा के हरण का समाचार देता है किन्तु राम धर्म भी विफल नहीं होते। वे उनकी सोच उही प्रकार करते हैं, जैसे मोक्ष-निषेधी के खेल में—

दिल बलिष्ठ को करि राह जने । अरिता मिरि देखत मुष्य भले ॥

(उ० अ० प्र० १२ छं० १३)

माये कर्मण से भेंट होने पर और उससे वह संकलित पाकर ही कि मोक्षपथ से जाने बहने पर सुधीय सीटा का ठीक-ठीक बता देता राम की विरहस्था का भीमलेख होता है। वे अन्धकार-मुक्त और अन्धकार को देखकर सीटा के उपकार का प्रतिदान देने

१. तब पुन की मुख बोह कम तें पटी तब रोह ॥

—उ० अ० प्र० १० अ० १ ।

२. वन काज कहा कहि ? केवम नों मुख लोकों कही सूर्य माये नने ?
तुमको प्रभुता, बिक लाकां वहाँ अपराध बिना भिगरेई हने ॥

—उ० अ० प्र० १० अ० ४ ।

३. बहू बात कह तुम सीं कहि माई किमी तेहि बाज दुराय रही ।
धर है बहू बर्णकूटी किमी और किमी बहू लयन होइ नही ॥

—उ० अ० प्र० १० अ० २० ।

के नाते उनसे सीता का पता पृच्छते हैं और अपना गुप्त से नी उसके नाम की कार्यवृत्ति का धारण करत हुए अनियत रहते हैं किन्तु साधक (भ्रमर) के लक्ष्य सम्पन्न करने, वीर्य कीटिहार केवल केवल की जायकन और मुलाह से नहीं पृच्छते। इस प्रकार के कथन केवल के पाण्डित्य के लक्षण प्रकट हो सकत हैं किन्तु इनसे राम की विरह रक्षा व्यभिचर नहीं होती।

सीता की वियोग-रक्षा उनके हृदय से ही प्रारम्भ होती है। संकाशित राम के वस्तु में खड़ी हुई सीता का निम्नलिखित वस्तुओं में व्यवस्थित किया गया गया है—

हा राम ! हा राम ! हा रामनाथ वीर ! लंकाविनाश बंध बाण्डु मोहि वीर ॥
हा पुन लक्ष्मण दीवानु केव मोहि । मारुत बस पस की सब लज तोही ॥
(रा० अ० प्र १२, अ० २१)

हृदयसाधक एवं समस्य नहीं है। स्व० डा० पीताम्बरराय ब्रह्मचर्य के शब्दों में यदि केवल मनोवृत्तियों से परिचित होते तो इस व्यवस्था पर इस धर्मी में उनकी सीता अपना हृदय बोलकर रख देती अपनी निःसहाय अवस्था का शिक करती अपने हर्ष की कुराह का बखान करती उसे कोसती केवल लंकाविनाश कहकर न रहे जाती लक्ष्मण को भला-बुरा कहने तथा उनका धारण न मानने के लिये अपने आपको बिकारती अपने पर गंम छोड़ती पर इस तरह लक्ष्मण में पड़ा है और कहा एक धारणीयता व्यक्त होती है ? 'राम' और 'पुन' को छोड़कर कौन बात ऐसी है जिसको धारण में पड़ी हुई स्त्री बुरे के प्रति नहीं कह सकती ? "वस्तुतः बात ऐसी ही है। केवल सामाजिक प्रदर्शनों के विषय में इतनी शक्ति नहीं दिखाते जितनी वीरता राजनीति तथा जातुर्ग वीर बालीहृदय आदि प्रदर्शनों के विषय में। हरबारी कवि जो बुरे न। सीता की विरह-रक्षा का वर्णन केवल उनकी एक कवी मतिन साड़ी और राम-नाम की रत में ही हो जाता है (रा० अ० प्र० ११ अ० ११)। इसके उनकी परकथा का विषय तो धर्मित हो जाता है किन्तु उनकी विरह-भावमता व्यक्त नहीं होती। यही नहीं सीता की के उत्तरीय की देवकर राम की विज्ञाती मनुष्य के सहाय अपनी काम कीड़ा का स्मरण करने लगते हैं (रा० अ० प्र० १२ अ० १२)। जब सीता की के उत्तरीय ही सब सुखों का मूल है तो उनकी खोज की क्या आवश्यकता है ? वास्तव में तो कवि-समय और मानव-मनोविज्ञान दोनों के अनुसार प्रिय की वस्तुएं विरह को जहील करने वाली हमी चाहिए। पर सीता जो की राम की मुद्रिका दुखराती और हृदय को खोलकर प्रदान करने वाली है (रा० अ० प्र० ११ अ० ११)। केवल इस प्रसंग में मानव-मनोविज्ञान और मानव मनुष्य के लक्ष्य ही जान पड़ते हैं।

जिन प्रकार केवल की रागात्मिका वृत्ति कथानक के आवागमन स्वर्गों के विषय में पूर्णतः सीत नहीं दिखाई देती उसी प्रकार पात्रों के स्वरूप तथा प्रवृत्ति के रमणीय बुरों एवं वस्तुओं के वर्णन में भी उनकी हृदयहीनता ही परिलक्षित होती है।

पार्यों का स्वल्प-निर्माण—जब मैं जाते हुए राम सीता और लक्ष्मण की शोभा का वर्णन करते हैं वहाँ तुलसी की भाषा बजती नहीं वहाँ केवल सहेलार्त्तकार की शृंगार में राम को मुग्ध द्वारा अभिमुख्य ब्रह्मरूपी ठग घोर न जाने क्या-क्या बना देते हैं (रा० अ० प्र० १ छ० १४)। इसी प्रकार स्नेह के मोह में केवल ने राम को सिद्ध सर्प ब्रह्मरूप बनाया भ्रमर मोयी धावत और उत्सू तक भी बना दिया है। (रा० अ० प्र० १३ छ० ८८)। केवल के पास उपमानों की क्या कमी थी ऐसी प्रमुपयुक्त और कुसुम उपमाएँ थी हैं।

केवल राम को मेघाघाता तथा धनघाता से बचाने निपट रक तथा बगुर और के समुद्र प्रवेश करते दिखाने हैं^१। कवि की ये दोनों ही उपमाएँ प्रमुपयुक्त और राम की मर्यादा के प्रतिकूल हैं। केवल ने एक स्वयं पर सीता के लिए भी प्रत्यन्त ही प्रमुचित उपमान-बाज का प्रयोग किया है^२। उनकी उर्वर एवं सम्पन्न कल्पना-शक्ति से ऐसे भले और कृत्तित उपमानों की प्राप्ति न थी।

केवल अपनी जमत्कार-प्रियता के कारण धिक् के स्वल्प धिक्क में भी स्वाभाविकता साधने में असमर्थ रहे हैं। उपलब्धि होने से धिक् भी मुरख विह्वल-मुक्त बनिता है^३।

‘सन्देश’ भर्त्सक का मोह तो केवल के वर्णनों पर भार ही हो गया है। कुसुम विद्याल-काम रावण के वध में पड़ी हुई सीता-सुन्दरी का धिक् जो केवल ने अपनी कल्पना के सहारे सींचा है, वह भी तो सन्देश के भार से अपनी कल्पन प्रग विप्लुता बहुत कुछ इसी कारण तो चुका है^४।

धनि की व्यासाधों में प्रत्य होते हुए लका के भवनों और राक्षसों के प्रवेश में भी केवल को उपमाएँ और उत्प्रेसाएँ ही सुझती हैं। (रा० अ० प्र० १४ छ० ६)। केवल के पाण्डित्य का निबन्धन मने ही यहाँ हो पर कवचिन्मय का इसमें कोई जमत्कार नहीं दिखाई पड़ता। धनि की लपटों में जलत हुए राक्षस कवि की बुद्धि में ऐसे जल पड़ते हैं मानो महादेव की कोपाग्नि में कामदेव जल रहा हो (रा० अ० प्र० १४ छ० ८)। कामे-कसूटे रत्नों का उपमान कामदेव-सा सुन्दर देवता देता सर्वथा प्रमुचित है।

रावण राम-मुक्त के पश्चात् जब सीता भी की धनि परीक्षा ली जा रही है तब केवल धनि-परीक्षा का कोई कारण दिखाना बिना ही सीता भी के स्वल्प का वर्णन उपमा उत्प्रेसा और सहेलार्त्तकार के धावेध में इस प्रकार करते हैं—

१ निपट रक ज्यों घोषित भये मेवा की धासा में भये ।
बगुर और से सोषित भये जरणी घर बनघासा भये^५ ॥

—रा० अ० प्र० १६ अ० १५ ११।

२ बिड़कन धम घूरे भरा क्यों बाज नीरै ।

—रा० अ० प्र० १६ अ० ११।

१ रा० अ० प्र० १६ अ० ११।

२ अ० अ० प्र० १६ अ० १०।

महामेव के क्षेत्र की पुष्टिका सी। कि सप्राम की भूमि में चंद्रिका सी ॥
मनो रत्न सिंहासनरत्ना बासी है। किन्हीं रागनी रागपूरे रबो है ॥
(रा नं० प्र० २० छं० ५)

कि सिंभूर प्रीलाप्र में सिद्ध-कन्या। किन्हीं पद्मिनी सुर संयुक्त मय्या ॥
सरोजातना है मनो बाव बानी। जपा-गुण को बीच बड़ी मबानी ॥
(रा० नं० प्र० २० छं० ७)

मयन प्रत्यक्ष भोजनम है धीर सीताजी के धीरव के अनुक्य भी है। किन्तु पाणिन्य
प्रदर्शन की प्रशुति के कारण सीता धीर राम के इस भिन्न महोत्सव में बह प्रमा
तिरेक का व्यवक नहीं होता। अनुमान होता है कि राम का सम्पूर्ण उत्साह कुठि
हो गया है।

प्रकृति के वृक्षों धीर वस्तुओं का वर्णन—काव्य में प्रकृति के रमणीय वृक्षों
एवं वस्तुओं का उपयोग प्रधानतया तीन प्रकार से किया जाता है—१ धार्मिकारिक
रूप में २ उद्दीपन रूप में ३ आत्मनन रूप में। धार्मिकारिक रूप में
प्रकृति-वर्णन की इन्हीं तीनों दृष्टियों से परीक्षा करनी है। धार्मिकारिक रूप
में धार हुए प्रकृति के वृक्षों एवं वस्तुओं के विषय में यह कहा जा सकता है कि कदाच
को अपने उपमान प्रकृति में से चुनने की उतनी शक्ति नहीं थी। इस रूप में प्रकृति
के वृक्षों की जो योजना केसव ने की है उससे उनका कोई प्रकृति प्रम दिखाई नहीं
देता। उनका अपना ही कथन इस बात का साक्ष्य है।^१ कमल धीर चन्द्रना जैसी
विषम की सुन्दरतम विभूतियों के प्रति भी केसव को कोई आकर्षण नहीं है। अपनी
अपनी शक्ति की बात को ठहरी।

उद्दीपन के रूप में धार्य हुए प्रकृति के वृक्षों की संख्या 'अग्निर्का' में थोड़ी
ही है। वहाँ धार्य धीर प्रयोगों के उपरान्त अग्नि पर्वत सरिता तड़ाप आदि का
वर्णन तो किया गया है पर वहाँ भी इनके विषय विवित करने की धीर शक्ति
ध्यान उत्पन्न नहीं रहा है बितना कि अपना धार्मिकारिक कौशल प्रदर्शित करने
लिए दूर-दूर से खोजकर उपमान चुनाने की धीर। वहाँ का मयन कवि ने इस प्रकार
किया है—

हेलि राम बरबा जगु आई। रोम रोम बहुबा बुलवाई।
आत-पास तम की धनि धाई। राति धीत लपु जानि न जाई ॥
मंद मंद धुनि सो धन पावै। सुरतार जगु धावत जावै ॥
धीर धीर जपना जमसैं यों। इग्नलोक सिम जावति हैं ज्यों ॥
सोई धन त्यागत धीर धने। सोई दिन में जक पाति धने ॥
सत्तावलि पी बहुबा जल लयी। जानों दिन की जमिलै बरस्यो ॥
धोमा धति सक सरासन में। नाना धुति बीसति हैं धन में ॥
रत्नावलि सी दिशि द्वार मनो। बर्षागम जापिय देव मनो ॥

देखे मुख भाई मनदेखाई कमल जग
सादे मुख मुर्ष सखी कमल न चन्दरी ॥

यम पीर मने बसहु विष छापे । मयबा बहु सुरम री बहि बाये ।
अपराध बिना धिति के तन लपे । छिन्न पीड़न पीकित हूँ बहि बाये ॥

X

X

X

भय बसतक बाधुर मोर न बोले । अपसा बयकै न फिरँ बय बोले ।
बुद्धिबलन को विपदा बहु कीन्ही । बरनी कहँ बन्धकपू बहि कीन्ही ॥

(रा० पं०, प्र० १३, पं० ११-१५ तथा १७)

यहाँ तक तो ठीक है पर आगे चलकर तो केशव हरीश के बल पर उठ भवि-पत्नी
धनुभूया और कालिका भी बना जाते हैं । कालिका और बर्पा दोनों का एक साथ
वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं—

मोहँ सुरभाष काज प्रभुविष पयोधर, सुकल बराम बोधि तजित रमाई है ।
दुरि करी सख मुख लुखवा लखी की बँध अपस कमलदल बसित निकारि है ।
केसोदास प्रबल करेनुका गजन हर, सुकल सुहसक सबब सुबवाई है ।
अम्बर बसित मति मोहँ भीलकण्ड लुकी कालिका कि बरबा हरवि द्विज धाई है ।

(रा० पं० प्र० १३ पं० १६)

यहाँ बर्पा का उद्दीपन विभाव धर्मकार-प्रतिष्ठा के पीछे छिप गया है ।

केशव को यहीं तक संतोष नहीं होता । वे बर्पाकालीन नायियों को
धर्मिकारिका, परकीया धारि बनाते तक में मझी चुकते (रा० पं० प्र० १३ पं० २०) ।
यह कल्पना की विडम्बना नहीं तो पीर क्या है ?

इसी प्रकार धरदू का वर्णन भी धर्मकारों पर ही आधारित है । धरदू को
सुन्दरी नारद की मति पतिव्रता स्त्रियों का सच्चा प्रेम पीर बूझा दासी के स्त्री में
निरूपित किया गया है—

धन्ताबनि कुन्ध लमान यमो । बन्धानन कुलल पीर बनो ॥
मोहँ बनू बँधन नैन मनो । राखीबनि क्यों पद पानि मनो ॥
हाराबनि मोरज हीय रमै । अनु भीन पयोधर अम्बर में ॥
बाडीर बुन्हाइहि धन्य बरे । हुंसी गति केशव बित हरे ॥
भीनारद की बरसै मति ती लोपै तम ताप अफोरति सो ।
भार्गो पति बैबन की रति ती अम्मारप की समझो मति सो ॥
सरमल बासी बुड सी धाई सरद सुजाति ।
मनहु अबाधन की हुमहि मोते बरबा रति ।

—(रा० पं० प्र० १३ पं० २४-२७)

यहाँ भी केशव का ध्यान उद्दीपन विभाव की दृष्टि की पीर नहीं गया है । ईश्वर
पर्वत के वर्णन में भी अपमानों के प्राचुर्य से स्वाभाविकता मल्ट हो गई है ।

(रा० पं० प्र० १३, पं० २१-२२)

धाम्बन कम में अर्थात् स्वयं रूप से प्रकृति के विषय करने के केशव को
पर्याप्त सबसर मिले हैं पर के प्रसन्न ही रहे हैं । उनकी प्रकृति केवल जन्मेधामों
अथवा खेदों की पिढाटी ही बन कर रह गई है । उनकी समझौता तथा सजीवता
में उनका मन नहीं रमा है । केशव का प्रकृति-वर्णन परम्परागत है । "धाम्बनिका"

में जब जब प्राकृतिक वृक्षों के विज्ञान का समय आया है वे वृक्षों की करामात बिलाने लग गए हैं जिसके फलस्वरूप प्रकृति का प्रकृत रूप छिप गया है। वयोप्या का वर्णन करते हुए वृक्ष-वर्णन की अपेक्षा कवि का ध्यान नगरी के महत्त्व प्रदर्शन की ओर अधिक रहा है। वयोप्या की बाटिका का वर्णन करते हुए केवल कोई ऐसी बात नहीं कहते जो बरबस मन को मुग्ध कर ले। उन्हें तो केवल विरोधाभास परिसंस्था की ओर स्नेह के बल पर उसकी विविधताओं का उल्लेख करना ही धर्मिष्ठ है। बरबर की बाटिका बनवानी (बनबाधिनी कन्या) होकर भी बचन है तपस्विनी (तप छद्मे वाली) होकर भी गृहस्थित (परिवार से घिरी हुई) है शिष्यवरा कन्या होकर भी पुष्पवती (रजोपमिणी) है और पुष्पवती होकर भी गर्भ (फल) बटी है (रा० ब० प्र० १ छ० ३४)।

केसव बन का कोई रूप प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। कवि-परम्परा के प्रसारा उन्होंने यहाँ सब काम की ओर सब दिशों में नज़रें मचायीं और पक्षियों के केवल नाम मात्र ही मिलाए हैं^१। विज्ञान में मन्त्रावली का आभास देने के लिए कवि को स्थापगत वनस्पतियों एवं पक्षियों का ज्ञान होना आवश्यक है। किन्तु केसव ने इस बात का ध्यान नहीं रखा है कि जिन प्रदेश का यह वर्णन है वहाँ ऐसा सबंध और पुष्पफल नहीं होते हैं।

पंचवटी की ओर वृक्षों के वर्णनों में भी कवि को कोई विशेष उल्लेखनीय वस्तु नहीं मिली है। यहाँ भी केवल को घन-कारों के मोड़ में बकड़ मिया है। पंचवटी का मन्त्रार्थ तप कवि प्रस्तुत नहीं कर सका है। देखिये—

सब जाति की वृक्ष की वृष्टी कपटी न रहे जहाँ एक घटी ।
निपटो बलि भोग्य घटी घटी तप कीव लीन की छुटो लगी ।

सप थोप की बेरी कटो बिजटी निपटी प्रकटो पुक जलमटी ।
बहु धोरन नाचति नृपति नखी गुन पुरजटी बन पंचवटी ॥^२

पंचवटी के प्रति उनकी भावना उद्भूत नहीं परम्परा से प्राप्त है। वस्तुतः कवि श्री दामोदर मिय भक्ति भावना से प्रेरित होकर पंचवटी का वर्णन पहले ही कर चुके थे^३। और इसी का हिन्दी के कवि हनुमन्त ने इस प्रकार बयान किया है—

१ लक्ष लालीच लाल लमान हिलाल मनोहर ।
मंजुल बकुल मकुच बकुल केर नारियर ।

एला ललित लवंग लंग पुगीफल सोई ।
सारी शुककुल कलित भिठ कोकिल अति मोई ।

शुक राजहंस कमलकुल कुल नाचत मत्त मयूरमल ।
भटि प्रकुलित कलित सदा रहे केसवदास विविध बन ॥

—रा० ब० प्र० १ छ० १ ।

२ रा० ब० प्र० ११ छ० १५ ।

३ एला पंचवटी रघुचमकुटी यथास्थि पंचावटी
शाम्बर्यकपटी पुरश्चरुवटी संतोषमिणी बटी ।

घन और घने बसतु रित्त छाये । नवभा बहु घुलन वीं बहि भाये ।
अपराध बिना क्षिति के तन लाये । तिन पीड़न पीड़ित हूँ उठि माये ॥

X

X

X

मह जातक बाबुर और न बोले । अपना बमर्क न धिरे खंम सीमे ।
दुर्निर्बल को बिपदा बहु कीझी । बरनी कहुँ बग्नबनू मरि होझी ॥

(रा० पं० प्र० १३, पं० १२, १५ तथा १७)

यहाँ तक तो ठीक है पर छाये बग्नबनू तो केन्द्र वनेप के बम पर उसे मति-पत्नी धनुसुया और कालिका भी बना जानते हैं । कालिका और बर्षा दोनों का एक साथ बचन करते हुए केन्द्र मिलते हैं—

मोहिं सुरदास दास प्रमुक्त पयोधर, मुकुट जराय मोति तड़ित रजाई है ।
दुरि करी सुख मुख सुखमा सती की नीन धमन कमलबल बलित निकारि है ।
केसोदास प्रबल करेनुका गजन हर, मुकुट सुईलक सब सुखदाई है ।
अम्बर बलित मति मोहिं नोलकल कुकी कालिका कि बरबा हरदि द्विप साई है ।

(रा० पं० प्र० १३, पं० १५)

यहाँ नर्वा का उद्दीपन बिभाव अमर्कार प्रतिष्ठा के पीछे छिप गया है ।

केन्द्र को वहीं तक संतोष नहीं होता । वे वर्षाकालीन नानियों को धर्मधारिका परकीया सादि बनाने तक में नहीं चूकते (रा० पं० प्र० १३ पं० २०) । यह कल्पना की विडम्बना यहाँ तो धीर क्या है ?

इसी प्रकार घरबू का वर्चन भी अमर्कारों पर ही आधारित है । घरबू को घुम्बरी नारद की मति पतिव्रता किमों का सच्चा प्रेम धीर बुद्धा दासी के रूपों में निरूपित किया गया है—

बलाबलि कुल समान गयो । बग्नबनू कुतल धीर बनो ॥
मोहिं बनु बग्नबनू नीन बनो । दामोदरि ज्यों पद नानि बनो ॥
हाराबलि नीरज हृदय रम्य । अनु तीन पयोधर अम्बर में ॥
बाहीर बग्नबनूहि धन परे । हुंसी मति केन्द्र बित्त हरे ॥
बीरारन की बरसी मति सी लोचं तन तन अहीरति लो ।
मानो बति बेचन की रति सी सम्पारन की समझो मति सी ॥
नरनरन बाली कुल सी भाई सरब सुखाति ।
बनहु बग्नबनू को हुमहि जीते बरबा रति ।

—(रा० पं० प्र० १३, पं० २४-२०)

यहाँ भी केन्द्र का ध्यान उद्दीपन बिभाव की पुष्टि की ओर नहीं गया है । इतिवर्त के वर्चन में भी अपमानों के प्राचुर्य से स्वाभाविकता बंध हा गई है ।

(रा० पं० प्र० १३, पं० २२-२३)

आसम्बन रूप में अर्थात् स्वर्तव रूप से प्रकृति के बिगल करने के केन्द्र को पर्याप्त प्रसन्न मिले हैं पर वे असफल ही रहे हैं । उनकी प्रकृति केवल अन्धेराधों अपमान लहेहों की पिटाई ही बन कर रह गई है । बगनी रमचोपता तथा सजीवता में उनका मन नहीं रमा है । केन्द्र का प्रकृति-बचन इरम्परावत है । 'रामचन्द्रिका'

में जब जब प्राकृतिक वृत्तों के विनय का समय आया है वे वृत्तों की करामात दिखाने लग गए हैं जिसके फलस्वरूप प्रकृति का प्रकृत रूप छिप गया है। यमोष्मा का वधन करते हुए वृद्ध-वधन की अपेक्षा कवि का ध्यान नयरी के महत्त्व प्रदर्शन की ओर अधिक रहा है। यमोष्मा की वाटिका का वर्णन करते हुए केसव कोई ऐसी बात नहीं कहते जो बरबस मन को मुग्ध कर ले। उन्हें तो केसव बिरोधामास परिसंख्या और स्नेह के वस पर उसकी विभिन्नताओं का उत्प्रेषण करता ही अभीष्ट है। हठरथ की वाटिका वनवासी (वनवाहिनी कन्या) होकर भी वधन है तपस्विनी (तप सहने वाली) होकर भी गृहस्थित (परिवार से विरही हुई) है निम्बरा कन्या होकर भी पुष्पवती (रजोवर्मिणी) है और पुष्पवती होकर भी गम (कन) बटी है (रा० ब० प्र० १ छ० ३४)।

केसव वन का कोई रूप प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। कवि-परम्परा के अनुसार उन्होंने वहाँ सब काम और सब सेवा के वृत्तों लताओं और पक्षियों के केवल नाम नाम ही मिलाए हैं^१। विनय में यथार्थता का आभास देने के लिए कवि को स्थानगत वनस्थितियों एवं पक्षियों का ज्ञान होना आवश्यक है। किन्तु केसव ने इस बात का ध्यान नहीं रखा है कि विनय प्रवेश का यह वधन है वहाँ ऐसा लक्षण और पुष्पवती नहीं होते हैं।

पंचवटी और वण्डक के वर्णनों में भी कवि को कोई विशेष उत्प्रेषणीय वस्तु नहीं मिली है। यहाँ जो केसव को घलझारों के मोह ने बकड़ लिया है। घल, पंचवटी का यथार्थ रूप कवि प्रस्तुत नहीं कर सका है। देखिये—

सय जानि फरी दुष्ट की दुष्टी कपड़ो न रहै यह एक घटी ।
निरटी बनि ओषु घटीहू घरी लग जीन जातीन की छूटी लयी ।

सय ओष की बेरी कही निरटी निकटी प्रकरी गुरु ज्ञान घटी ।
बहु घोरन लाजनि मुक्ति नटी गुन गुरजही बन पंचवटी ॥^२

पंचवटी के प्रति उनकी भावना तन्मूढ नहीं परम्परा से प्राप्त है। संस्तव कवि श्री रामोदर मिश्र शक्ति भावना से प्रेरित होकर पंचवटी का वर्णन पहले ही कर चुके हैं^३। और इसी का हिस्से के कवि हृदयराज ने इस प्रकार वर्णन किया है—

१ तब तामीस तान तमान हितान मनोहर ।
मनुम बनन सकुच बनन केर नारियर ।

एसा ललित लवय संग पुसीकन मोहै ।
छारी गुककुम कलित भित कोकिल धनि मोहै ।

गुक राजहस कसहुँव कुन नाचत मध मयूरपन ।
यदि प्रकुलित कलित सग रहै केसवदात विविन बन ॥

२ रा० ब० प्र० ११ छ० १८ ।

३ एसा पंचवटी रघुलमघुटी यथास्ति पंचावटी
पान्तरवृक्षपटी पुरस्तुतपटी संज्ञापयिनी बटी ।

—रा० ब० प्र० १ छ० १ ।

ए कपटी बसकम्ब गटी म भसी बज की छठ साव गरी ।
 हर मूरखदी कपटी खपटी सम तीर रही बन बीर कटी ॥
 न छोरी रतिनाथ छटी तिनको नित नाथत मुक्ति बटी सुखी ।
 सुन कम्ब करी माविनी लकटी सोई राव विराजत पंचकटी ॥^१

बम्बक बन का विनाश करते समय केसव की दृष्टि उसकी सुसम्पत्ता यशदा कुसपत्ता किसी पक्ष न जाकर केवल रसेप द्वारा बसकदार-प्रवर्तन पर ही पड़ी है। बीफ्त (बैत धीर सम्पत्ति) की बहुलता के कारण बम्बक बन किसी महाराजा की सेवा के मुख्य है तो बर्क (सूर्य धीर मदार बृत्त) समूह से वृत्त होने के कारण वह प्रत्यक्षता की सेवा के सदृश है। प्रवर्तन (बम्ब न पंडित धीर कम्ब नृत्त) तथा मीम (मीम पंडित तथा ब्रमसर्वत) बर्को के कारण वह पाण्डवों की प्रतिभा के समान है। धाव (धाव तथा धाव बृत्त) के कारण वह कुलकम्पा के मुख्य है धीर छितिकष्ट (मयूर धीर सिव) की प्रभा से वृत्त होने के कारण वह पार्वती की कैमिस्वती है (रा० पं० प्र० ११ छं० १३-१२)। इस प्रकार के साम्य प्रवर्तन में कवि किसी प्रकार के सीमार्थ की व्यवसा नहीं कर रहा बरन् अपना धर्मकार-कीर्तन ही विकसा रहा है।

सरजू तथा मोरावरी नदियों के वर्णन धार्मिक है। वे वर्णन विरोधाभास धर्मकार में किए गए हैं। अतः उनका यथातथ्य स्वरूप सामने नहीं आ सका है। वह केवल प्रकृति भर रह गया है। सरजू यदि 'स्पर्श' से मुक्ति प्रदान करती है तो मोरावरी 'धाम' है।

समुद्र के वन में भी उसके स्वरूप विस्तार एवं गाम्भीर्य धारि की कोई व्यवसा नहीं हो सकी है। केसव उसे एक अनुरागपरिक के रूप में ही देखते हैं।^२ प्रवर्तन नामक वर्णन के वर्णन में भी केसव को धर्मकारों के मोह ने बकड़ लिया है। रसेप के कारण कवि ने उसे धिक् के रूप में देखा है।^३

वर्षा धीर सरजू के वर्णन में केसव ने तुलसी का भी अनुकरण किया है। वहाँ तुलसी ने लोक-कम्याय के लिए नीति धीर उपदेश-सम्बन्धी बातें बहू डाली हैं वहाँ केसव ने भी प्रसंगानुकूल कुछ उसी ही शैली के वर्णन किए हैं—

१ ठीर ठीर अपना बमके पों । इग्नलोक-सिप नाबित है क्यों ॥^४

२ धन धीर धने बसहुँ रित धावे । बधबा जनु तूरज है बड़ि धावे ॥^५

बांदा बन गठी तरंगितठटी कम्बोर्णकपुटी
 दिव्यामोदकुटी मवाविधकटी भूतकिमापुण्डुटी ॥

—हनुमानचक पं० १ श्लो० २२।

१ हनुमानचक पं० १, श्लो० २२।

२ चम्पन नीर तरंग तरंगति नामर कोड कि सागर सीई।

—रा० पं० प्र० १४ पं० ५१।

३ रा० पं० प्र० १२ पं० ७।

४ गरी गरी पं० १२।

५ रा० पं० प्र० १२ पं० १५।

१ वहीं बाबली की करी रंचक वधि द्विजराज । तहीं कियो भगवत बिन
सपति सोमा साज ॥^१

४ बबलुत कनक सकल कवि किये पाइ तन-सृष्टि । कपूरय सेवा ज्यों
मई सखत मिथ्या बुद्धि ॥^२

पर ऐसे प्रयोग बहुत ही कम हैं ।

सूर्योदय वर्णन व रामचन्द्रिका में दो मयसर आए हैं । एक तो मयसर उस समय घाटा है जब राम सकलम घोर विरचामित्र जनकपुरी में प्रवेश करते हैं । सूर्य उनके स्वागत के लिए मयस-सूचक राहुन बनकर सामने उदित होता है ।^३ परन्तु आगे चलकर उपमा उत्प्रेसा घोर सन्देश के मोह में पड़कर केशव ऐसे मयस-सूचक सूर्य को मगस घट इन्द्र का छत्र पूर्व दिशा-रूपी स्त्री के मस्तक के माणिक के साथ साथ कामरूपी कापालिक के हाथ में किसी का रक्त-रहित सिर भी बना मानते हैं—
अबल घात अतिघात पश्चिमनी प्रासनाचमय अनहु कोसोबास कोकनद कोक प्रेममय ।
परिपूर्ण सिंहरपुर कोभी मयसघट जियों हक को छत्र मइयो सांखिक मयुज पट ॥

के धोरित कलित कपाल यह किस कापालिक कास को ।

यह ललित माल कंठों ललत विगुमामिनी के घात को ॥^४

जिस घुम राहुन की भूमिका सूर्योदय में बनाई जा चुकी थी उसके निर्वाह के लिए उदीयमान सूर्य का यह चित्रण भीरुपुण है और रसोद्रेक में बाधा पहुँचाता है ।

दूसरा मयसर वही घाटा है जब राज्याभिषेक के अनन्तर श्री रामचन्द्र भी को किसी दिन सारिकादि अन्तरंग सखियाँ बना रही हैं^५ । केशव का यह प्रमात-वचन

१ अदि, म ४ अं १४ ।

२ अदि, म ११ अं २१ ।

३ अदि, म ३ अं ८ ।

४ अदि, म ३ अं १ ।

५ पण्डित बिसोदरेश ऐश्वर्य रामदेव

घोर मयो भूमिदेव भक्त वरस पावैं ।

ब्रह्मा मग मग्न मण, बिप्यु हृदय पात्रक बन

रत्न-हृदय-कमल-मित्र जयत गीत गावैं ।

मयन उदित रवि अगस्त शुभादिक जोतिबंज

छन छन छवि छीन होत, मीन पीन तारे ।

मानहु परदेय देय ब्रह्महोय के प्रवेश

ठोर ठोर तै बिसात पात्र भूप भारे ।

अमल कमल तनि अमोल मधुन मोल टोल टोल

बैठत जड़ करि-रूपोल शान-मानजारी ।

मानहु मुनि मानवृद्ध छोड़ छोड़ि मूढ़ ममद

सैवत गिरिपथ प्रसिद्ध सिद्धि-सिद्धि-भारी ।

वरणि करिणि उदित मई, दीपजोति ममिन मई,

अदय हृदय बोप उदय ज्यों बुद्धि नारी ।

बड़ा ही उत्कृष्ट एवं स्वाभाविक बन पड़ा है। प्रकृति हृदय और ज्ञान की ऐसी विपरीत धारणा दुर्लभ है। स्वयं केसव का भक्त रूप ही वहाँ विश्वनाथक बन गया है और वहीं ही तटनीयता के साथ अपने इष्टदेव को बना रखा है। पम्पासर का वर्णन भी उपयुक्त ही बन पड़ा है^१। उसका कथ निपण राम के बिरहोद्दीपन में छावक है पर 'रामचन्द्रिका में ऐसे वर्णन हैं किन्तु ?

जिसेजी-वर्णन में केसव उसके माहात्म्य से ही अधिक प्रभावित हुए हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के माते तो वे 'शोभन धरीर पर (कुसुम) बिलेखन की' स्वामत कुसुम मीन ममकठ मझी है^२ कहकर ही रह जाते हैं। उसे 'मृगत की वैसी' 'धुरधुर मारण' 'पूरण घनावि का ब्रह्मप पाठ' कहना ही कवि को अधिक सम्झा मयता है क्योंकि उसके वर्णन धीरे स्पर्श मात्र के बराबर बीबी के धनेक जमों के पाप दूर हो जाते हैं^३।

केसवदास ने भाषम को शान्ति का वर्णन करते हुए कवि-परम्परा के अनुसार इतना ठा ठाका है कि वहाँ परस्पर रूप रखने वाल वसु भी प्रेमपूर्वक

बकबाक निकट पई बकई मन मुचित आई,

जैसे निज व्योति पाय बीजन व्योति पाई ।

प्रत्येक तरावि के बिनाल एक दोष छु प्रकाश,

कमि के ले मंत ईश, बिजन धंत राख ।

*

*

*

निधिबर-बन के बिनाल हास होत हैं निरास,

सूर के प्रकाश बास गासत तम भारे ।

*

*

*

केसव मुनि बकन चाक बाये बखरन कुमाल,

रुम प्याय ज्वाय लीन बन बन बन मोई ।

बोनि हंति बिलोकि बीर, दान नाम हरी बीर

पूरे अधिमाय साक बाति लोफ लोई ॥

—पृ० ५०, पं० १०, पं० १५-१० तथा ११ ।

१ सिपरी अनु सोमित सुम नहीं । वह दीपम पै न प्रवेष्ट रही ॥

नम नीरख नीर तहाँ धरतें । तिम के सुम मोचन से धरतें ॥

—पृ० ५०, पं० १२, पं० ५८ ।

२ कवि, पं० १०, पं० ११ ।

३ बरस परस ही तैं बिरबर बीजन की ।

कोटि-कोटि धम्म की कुर्यानि निटि पाठ ॥

—पृ० ५०, पं० १०, पं० १३ ।

रहते हैं पर अतिशयोक्ति के अतिशय मोह के कारण, उनका वर्णन साहित्य की रचना करने के स्थान पर सर्कस का-सा वृक्ष प्रस्तुत करके ही रह गया है^१।

बसंत उद्यान धारि के वर्णन भी चमत्कार-प्रधान ही हैं। फसल बसंत में खिल कर रहे हुए हंस बुक कोकिल और मोर को केदार ने योड़ा बना डाला है जो मुद्र के लिए समकार रहे हैं। और पचास-सुष्यों की रक्त प्रभा को कवि ने दीप-सुखों की ज्वाला के रूप में देखा है। बाह का वर्णन तो केदार के आत्मकारिक-कीर्तन का अवलम्ब प्रमाण है^२।

उपर्युक्त विवेचन से निष्पन्न यह निकलता है कि केदार का मन प्रकृति के सुरम्य स्वप्नों में नहीं रहा है और वे अपनी आत्मकारिकता के सम्मोह के कारण उनमें कोई सजीवता एवं सघनता भी नहीं जा सके हैं। "रामचन्द्रिका" में अधिकारी स्वप्नों पर उनका प्रकृति-वर्णन परम्परागत ही है।

रस एवं भाव व्यञ्जना—यद्यपि केदार के पद्य-मय पर छन्द-परिचयन एवं चमत्कार प्रदर्शन के कारण उनकी 'रामचन्द्रिका' में बहुत से स्वप्नों पर रसव्यापात हुआ है, तथापि कुछ ऐसे स्वप्न भी देखने में पाते हैं, जहाँ वे प्रसंगानुकूल रसों एवं भावों की व्यञ्जना करने में सफल हुए हैं। रामकवि केदार राजसी प्रताप ऐश्वर्य और मुद्र सेना-प्रमाण आदर्श धारि का वर्णन करने में अधिक निपुण हैं। वास्तव में इस प्रकार के प्रसंग उनकी वृत्ति के धनुरूप थे। और इसी कारण और रीढ़ तथा मयलक मित्र रसों की व्यञ्जना करने में उन्हें असफल नहीं कहा जा सकता। मुद्र के प्रसंग में ही इन तीनों रसों का निरूपण हुआ है।

और और रीढ़ रस—'रामचन्द्रिका' में मुद्र-वर्णन के दो अक्षर आये हैं। प्रथम अक्षर राम राजन के मुद्र का है और दूसरा राम की चतुर्दशिनी सेना और सब-कुछ के मुद्र का। राम राजन मुद्र में जब जब राक्षसों की सेना के प्रमाण और मुद्र-कीर्तन का प्रसंग आता है केदार प्रत्यक्ष रूप-वर्णन द्वारा एवं ओजस्वी शब्द विधान द्वारा पाठक की आकर्षित करने में सफल होते हैं। इस प्रकार के कुछ वर्णन नीचे दिए जाते हैं—

१ कोरण्ड वंशित महारचरित जो है।

सिंहवन्धन समर-वैश्वि-मुद्र जो है ॥

१ केदारदास भूयस बटैह जोई बाबनीन, बाटल मुद्रमि बाबबामक बदन है। सिंह की सटा ऐसे कमलकरमि करि, सिंह की बासन पर्यद को रदन है। कभी के फलन पर नाचत मुद्रित मोर, मोचन विरोध जहाँ मद न मदन है। मानर फिरत डोरे-डोरे अंग तापसनि शिव को समाज कैंहीं श्रुति की सदन है ॥

—रा० ब० पृ० २० अ० ४ ।

२ केदारदास है उदास कमलाकर सों कर, कोरक प्ररोध तान समीपुष्य तारिये। धनूत धरोप के विरोध बाध बरसत कोरक मोर बह लखन विचारिये ॥ परमनुष्य-मह विमुख पश्य दस मुमुख मुद्राद विदुषन उर पारिये। हरि है री हिये में न हरि न हरिनीनी अन्धमान जगमुषी नार निहारिये ॥

—रा० ब० पृ० २ अ० ४२ ।

- शोधा बली प्रबल काल कराल नेता ।
 सो मेघनाथ सुरनामक मुख-धरा ॥^१
 २ जो हलकेतु भुजबल विषमधारी ।
 संग्राम तिग्म बहुमा धनपाहुकारी ॥
 तीग्री छात्राव बेहि देव प्रवेश बामा ।
 सोई पराक्रमज बली मकरास नामा ॥^२

तथा

- ३ छई दिला-दिता कपील कोटि-कोटि रक्षात ही ।
 कर्षे छपेट बाहु बाधु जब छों लहीं तहीं ॥
 निजे लपेट ऐनि-ऐनि वीर बाहु बाध ही ।
 मर्छे ते अतरिख जख लख-लख जस्ताही ॥^३

वीर मकरास के रौद्र रूप का विश भी भोजयम है। कुम्भकर्ण और मेघनाद के बल के प्रमत्तर वह रावण से कहता है कि मेरे सामने इन्द्रजीत वीर कुम्भकर्ण क्या है। एक डरते हुए मुँह करता या घोर दूसरा छोया करता या। जब तक धापका यह सेवक बीठा है तब तक सीठा को वहाँ से कीन से बा सक्ता है। महाराज धाप निश्चित होकर लंका का राज्य करें। धाप सुके मुँह के निजे एक बार बस देख दें। विश्वास रखें मैं रण में सुयोबाहि के साथ राम-लक्ष्मण को मार डालूँगा और प्रबोध्या को अपने अधिकार में कर उसे आपकी राजधानी बना कर रहूँगा।

इसी प्रकार राम के रौद्र रूप का भिन्न भी कहा ही प्रमथिप्पु एवं भोजस्वी बन पाता है।

- करि आदित्य अक्षय मध्य जम करौ धर्य बनु ।
 खन मोरि समुद्र करौ समुख सर्व पनु ॥
 बलित धनर कुबेर बलिहि पहि देउ इन्द्र प्रब ।
 विद्याधरन धरित करौ विन सिद्धि सिद्ध सब ॥
 निजु होहि दासि विधि की बरिसि धनित धनन निदि बाप्य बस ।
 सुनि सुरज । सुरज जवन ही करौ अनुर सत्तार बस ॥

(रा० अ० प्र० १० अ० ४८)

केसव के राम रावण मुँह में एक बड़ी कमी यह रह गई है कि वे उसमें मुँह का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं किया मरके जिसके कारण मुँह की प्रधानक परिस्थितियों की

१ रा० अ० प्र० १० अ० ३२।

२ वही प्र० १० अ० ३३।

३ वही प्र० १० अ० ३४।

- ४ कहा कुम्भकर्ण कहा इन्द्रजीती। कई छोड़ो या करें मुँह भीती।
 सुजो लो बियो लो सग बाध तेरो। सिना को लफ्फे मुनो मंत्र मेरो।
 महाराज लंका सदा राज कीजै। करौ मुँह मोको बिदा बेधि दीजै।
 हतो राम स्वो बाधु सुधीव मारो। प्रबोध्याहि लै राजधानी सुबारो ॥

—रा० अ०, प्र० १२ अ० ७-४।

संभवा नहीं पूर्णतया मही हो सकी। उन्होंने इस कमी को मन-कुप-मुष्ट में पूरा कर दिखाया है। उग्र शस्त्रों की योजना द्वारा कपाक्ष उसबारें बसने का विमल तो नहीं भी उपस्थित नहीं हो सका है पर परस्पर उग्र बन्धनों के बन्धन बृहताश्वक मुष्ट संवाहन और रक्त के प्रवाह का विमल प्रस्तुत करने से बहु वर्णन काशी प्रख्या बन पड़ा है तथा मुष्टबीर और रौरव दोनों रथों की बहुत ही सुन्दर रूप से योजना की गई है। नीचे कुछ वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

तत्र शत्रुम्न मुष्ट

रौरव करि बाण बहु भान्ति भव छाँडियो। एक ध्वज, सुत सुप तीन रच लडियो ॥
सत्तन बघरतन सुत धाम कर जो धरे। ताहि सिपपुत्र तिल तुम सम धंडरै ॥
(रा० अ० प्र० ११ अ० १६)

कुल-शत्रुम्न मुष्ट

माहिपो विषु सरोवर सो जेहि बाति बसी जरतो जर देर्यो।
डाहि दिवे तिर राजन के गिरि से मुख जात न का तम हेर्यो ॥
भान सगुह उतारि निवे बाणामुर पीले तें आय ही डर्यो।
राजक को बल मल करीझर अकूश दे कुल केन केर्यो ॥
(रा० अ० प्र० ११ अ० २७)

तत्र-सत्तन-मुष्ट

त मनु बाण बली तत्र भायो। पशमव ज्यों बल मार उड़ायो।
धों बुड सोवर तीन धंधारें। ज्यों बल पावक तीन विहारें।
भागत हैं मठ धों लख भागे। राम के नाम से ज्यों धम भावे।
मुपपुत्र धों भारि मयायो। जात बड़ी मनु लेख उड़ायो ॥
(रा० अ० प्र० १६, अ० ११ १४)

परमुराम प्रमंग तथा राजक-सीता संवाद में परमुराम राम एवं सीता के रौरव रूप वर्णनीय हैं। परमुराम कुल ही राम से कहते हैं कि पात्र हापी थोड़े तथा रथ सहित समस्त रज्जुधियों को कुठार की बारा में डूबा रूपा। वाणों की बाण से सदमल को उड़ाकर समर्थ शत्रुम्न को भस्म के समान धम डारूपा। राम को स्त्री सहित बल को भयाकर को के माइ में भरत को भूत डारूपा और यदि राम धनुष उठाकर सड़ेया तो धाम वगरण को धमाक कर डारूपा। बात के धारे बड़ जाने पर जब परमुराम राम के पुत्र की मित्रा पर उठाक हो जाते हैं तो राम परमुराम को बताते हैं कि “हे परमुराम बार-बार समझाने पर भी तुम नहीं समझते तो स्पष्ट मुनो। मैंने शिव-धनुष मंग लिया तब भी तुम नहीं समझते, धम

१. दोनों सभे रघुवंश कुठार की धार में बारन बाति सरन्धहि।
बाण की बाण उड़ाये के लच्छन लच्छ करी धरिहा समररपहि।
रामहि बामसमेत पठै बल कोर के मार में भूमी भरन्धहि।
औ धनु हाथ धरे रघुनाथ ती पाहु धनाम करी बराधपहि ॥

तुमको कुछ देता हूँ । मैं वहीं व्यथित हूँ जो ब्रह्मा भी सृष्टि मष्ट कर हूँ महादेव को
 मोनासम से दिया हूँ प्रलय का रूप उपस्थित कर हूँ । नारायणी मष्ट तो तुम में से
 बना गया है बाहूँ तो तुम्हारे प्राणों का मष्ट कर हूँ । हे मनुजमन ! अपना कूटार
 सम्प्राप्तो मैंने धन धनुष पर बाध बाँधा लिया है^१ ।”

जब रावण सीता को विष्णु-विष्णु प्रभोधनों द्वारा अपनी पट्टरानी बनाता
 बाहूँ है तो सीता भी उसे मोक्षमम धर्मों में उलटकाती है^२ ।

अमलक रस—अमानक रस बीर रस का सहकारी होता है । मनुष्य के दूटने
 पर चारों ओर को धार्तक छा जाता है उसका वर्णन केदार ने इस प्रकार किया है—

अमल रंकोर भुक्ति धारि संसार मर, चंद्र कीरध रझो मखि नमलमर को ।
 बालि धनना अमल बालि विनपान बन, बालि भुक्तिराज के मलय परधर को ॥
 सोम है ईश को सोम शायरीय को अमल उपजाय मनुजमन धरिधर को ।
 बालि नर स्वर्ग को बालि धनधर्म मनुमंग को अमल यमो भेद ब्रह्मधर को ॥

रा० बं०, प्र० २, अं० ४२ ।

मनुज के कुछ समय अनन्तर परधुराज के घाते ही सारे समाज में बड़ा
 धार्तक छा जाता है और पशुओं तक में भी खमबली मच जाती है । मस्त हाथियों
 का भी मर चुर्च हो जाता है और वे कुछ क्षण के लिए विचित्रता भी मुल जाते हैं ।
 बहुत से बीर धरम-धरम चैंककर अपने-अपने प्राणों को नि-ले भावने मगते हैं और
 कोई-कोई तो कन्यादि चैंक-चैंक कर स्त्री-वैध धारण कर लेते हैं ।^३

संका-सहन के अवसर पर रावण की राधियाँ और राक्षसियाँ मचपीठ हो

१ अमल किमो नममनुष्य सार तुमको धन सारनी ।
 मष्ट करी विधि सृष्टि ईश सासन से बाली ॥
 उकल लोक संहरहैं वेध धिरते नर डारी ।
 सप्त सिन्धु मिनि बाहि होद सब ही तम भारी ॥
 अति धमम जोति नारायणी कहु देसध भुक्ति बाध नर ।
 मनुजमन संमाक कूटार, मैं किमो धरासन मुक्त धर ॥

—रा० बं०, प्र० ३, अं० ४२ ।

२ उठि उठि उठ छाँ है बाहु धीलों धमाये मय मलय धितपीं धरं जीलों न लाने ।
 विफत सकल बैली धायुपी नाथ तेरो निपट मुक्तक छोको रोव मारी न मेरो ॥

—रा० बं०, प्र० २१ अं० ४३ ।

३ नर वंति धमस हूँ गए, देखि-देखि न मज्जहीं ।
 ठोर-ठोर सुदेस केसव हँसुभी नहीं मज्जहीं ॥
 धारि धारि हृष्यार धूरज पीध लै नर मज्जहीं ।
 काटि नै तननाथ एकहि नारि धिपन मज्जहीं^४ ॥

—रा० बं०, प्र० ३ अं० ४४ ।

बारों धोर भागी भागी फिरती है। जिस धोर भी जाती है उसी धोर उन्हें दुःख-यमि की सपटें ही मिलती हैं। वे दुःखित हो पानी-पानी बिस्साती हैं^१।

हास्यरस—राम-परशुराम भेंट-प्रसंग में वहाँ तुमसी ने पर्याप्त हास्य की सृष्टि की है वहाँ केवल केवल एक-दो स्वप्नों पर इसका आभास-भाव ही हो सके हैं। परशुराम को देखते ही घातकित धुरबीरों का दस्य-दस्य फीककर भायना और नारी बेप धारण करना कुछ हास्यास्पद लगता है। हास्य की एक भ्रष्ट उस समय दिखाई देती है जब परशुराम भी कुठार को सम्बोधित कर कहते हैं कि 'सकमय के पूर्वजों (प्रवर्ति क्षत्रियों) ने जो पुस्पाय किया है वह क्षत्रधर्मीय है। उन्होंने नारी-रूप धारण करके दय-प्रार्थना द्वारा ही अपने प्राण बचाए थे'^२।

बीमत्सरस—बीमत्स के वर्णन से स्वप्नों पर होते हैं। जब मेघनाद हनुमान को बन्दी कर लेते हैं तो रावण मेघनाद को आदेश देते हैं कि हनुमान को जब घटा-घटा कर इतना भारो कि उसके सब अंगों में से फूट-फूट कर रक्त बहने लगे। काट-काट कर उसका मांस खींच लो तब मैं खाऊँ उसके दन्त-मुण्ड को उड़ा ले जाऊँ^३। किन्तु बीमत्समय इस है। इसका स्वप्न बीमत्स का वहाँ पाया है वहाँ केवल ने रजभूमि का चित्रण नदी के साथ साय-रूपक बाँध कर किया है^४।

१ वनीं भावि चौहूँ बिधा राजरानी। किसीं ज्वालाभाता फिरें दुःखरानी ॥

मनों ईस बानावनी नाम लोभों। सबें बीस-जावान के संय जोसैं ॥

— — —

रानि रटे पय पानी कुन्ही छूँ ॥

—रा. अ० प्र. १४, अ. १०-११।

२ सकमय के पुरिवाण कियो पुदवारय सो न कइयो परई।

बेप बनाय कियो बनिवान को देखत केराव ह्यो हरई ॥

—रा. अ० प्र० ७ अ. २१।

३ कोरि कोरि याठनामि ओरि-ओरि मारिये।

काटि काटि फारि मांसु बाटि बाटि डारिये ॥

काज खींचि खनि हाड भूनि भूनि छाडु रे।

पोरि टांनि दण्ड मुण्ड लीं उड़ाइ जाडु रे ॥

—रा. अ० प्र० १४ अ. २।

४ शोक की सरिता बही लु घनत कर पुरल।

मथ लव ध्वजा पताका हीह देहनि मथ।

टुटि टुटि परे मनो बहु भास कुल मथ।

पुन कुंजर मुभ्र समन्त सोमिर्ष मुठि मुर।

ठैलि ठैलि जसे मिरोगमि वेसि योषित पुर ॥

घाह तुम सुरंग कच्छप जाह जर्म विद्याल।

बनक सों रजबक परत बूड गूड मराम।

कैदरे कर बाहु मीन मयंद मुण्ड भुंजम।

चोर चोर सुरेस केप विद्याल बाहि सुरंग ॥

कष्टरस रस—राम-जीवन में कष्टमय के रसमय तो बहुत पाये हैं पर केसव के हृदय को मार्ग करने वाले केसव सहमन-व्यक्ति प्रसन्न तथा मेघनाथ-मरण प्रसंग ही हैं। सहमन को मूर्च्छित देखकर राम के केशों से प्रासुर्यों की भविरस धारा प्रवाहित होने लगती है।

सहमन राम कहीं भवलोचनो । नैनन तें न रह्यो बल रोचनो ॥
 बारक सहमन मोहि मिलोको । भीकहुं प्राण बने छवि रोको ॥
 हीं सुमिरो, धूल केसिक सेरे । सोबर पुन सहामन मेरे ॥
 सोचन बल छुड़ी पनु मेरो । तु बल बिकस बारक हेरो ॥
 तु दिन हों यम प्राण न राखी । ताय कहीं कसु भूँठ न भाखी ॥

X

X

X

बोनि उठो प्रभु को मन पारी । बरतक होत है यो मुन कारो ॥

(रा० पं० ५० १७, पं० ५१ ५१) ।

इसी प्रकार मेघनाथ की मृत्यु पर राजन भी समाह्व हो कन्दन कर बैठ है—

साधु धारिण बल कलम पावक प्रसन्न कान्ध धनदमय नाथ जय को हरी ।
 मान किन्कर करी मृत्यु संवर्ष कुल, यस विधि लस कर यम कर्म मरी ।
 छय छयाहि ई देव तिहुंलोक के राम को जाय समियेक इन्द्रहि करी ।
 साधु सिय राम ५ लंक कुलपुत्रलहि यम को जाय सर्वस विप्रहुं करी ॥

(रा० पं० ५० १२, पं० ११)

अन्त रस—यदि कृपि की पत्नी अनुसूया के रूप-विषय में केसव ने शान्त रस के त्वाभी भाव 'निर्वेद' की सुन्दर व्यंजना की है।

सिर सैत बिछाई, कीरति रामे जनु केसव लप-बल की ।
 तनु धमिल पलित जनु, सकल बासन, निकरि गई बस-बस की ।
 कांपति धूम-झोवा, लव संग सीबाँ बैसत विस भुलाहीं ।
 जनु अपने मन प्रति यह उपवेशति या जय में कपु नाहीं ॥

(रा० पं० ५० १२, पं० ५१)

योग्य की निम्नीकृत व्यक्ति में भी जिसमें उसने राजन को संसार की घटारता का भाग कराते हुए सावधान होने का परामर्श दिया है 'निर्वेद' की अच्छी व्यंजना हो सकी है—

हाथी न जायो न घोरे न केरे न गात्र न काँठें फुटाईं बिलीहूँ ।
 तात न मल न पुन न मिल न विस न छीप कहूँ ताय रहूँ ॥
 केसव काम के राम बितारत और निकाम रे काम न पहुँ ।
 केति रे केति धनी पित धंतर धंतक लोक धकेनोई जेहूँ ॥

(रा० पं०, ५० १६, पं० २६)

बामुका बहु भाँति हैं मणिमालजात प्रकाश ।

बिरि पार भवे ते हैं मुनिवास वैद्यवदास ।

—रा० पं०, ५० १७, पं० ५१ ५१ ।

केशव ने सज्जा रूप तथा गर्व भावि भावों की भी अच्छी व्यञ्जना की है।
 देखिए किस प्रकार बनवाटिका में विहार करते समय प्रवरियों के सम्मुख ही अमरों
 की मामती का कुम्भन करते देख रनिवास की मुन्दरियाँ ललित हा जाती हैं और
 घुबट के भीतर हो भीतर मुस्कराती हैं—

अलि उड़ि चरत भंजरी जान । देखि साज साजति सब जान ।

अलि अलिनी को देखत पाइ । कुम्भत अतुर मामती जाइ ।

अनुगत गति सुखरी बिलोकि । बिहसति है धूमक पद रोकि ॥^१

सीता जी की धोख करके जब हनुमान जी मोटते हैं और धीराम जी से
 अपनी प्रशंसा सुनते हैं तो वे सच्चे भक्त के समान अपना रंग्य भाव प्रदर्शित करते
 हुए कहते हैं कि 'हे महाराज आप तो मेरी प्रशंसा करते हैं मैंने किया ही
 क्या है। आपकी मुद्रिका मुझे समुद्र के उस पार से गई और सीता जी की कुशामणि
 मुझे इस पार ल आई। लंका जलाकर जी मैंने कोन सा पराक्रम किया है। बह तो
 स्वयं मृत ही थी। अक्षयकुमार को मारा बहु भी अत्यन्त निराल बाणक था। तनुप
 रान्त शत्रु मुझे बीच से मया। यदि बली होता तो क्यों बीया जाता। वृक्ष प्रवरण
 तोड़े पर ल जड़ प^२। रावण की नात का राम की शरण में पहुँचने पर विभीषण के
 'भारत बंधु पुकार सुनो किन तथा 'राज्य काहे न राज्य हारे' आदि पद्यों में
 स्वाभाविक 'रंग्य का प्रकाशन है^३।

'गर्व' की एक झलक उस समय दिखाई देती है जब रावण का प्रतिहार देव
 तामों तक को भी डीट स्पट देता हुआ दिखाई पड़ता है—

पड़ों बिरचि मोन बैर बीच लोर छवि रे । जुबेर बैर ली कही न पस मोर मडि रे ॥
 दिनेश आय हरि बैठ नारदादि सग ही । न बोनु बंध बंध बुद्धि इष्ट की समा नहीं ॥

(रा० अ० ३० १६, अ० २)

१ रा अ० ३० १०, अ० १० ११।

२ यह मुद्रिका ल पार। अलि योहि साई वार ॥

कह कर मैं बस रंक। अलि मृतक भारी संक ॥

अलि हारो बाणक अछ। मैं गयो बाधि निपछ ॥

जड़ नृप लोरे दीन। मैं कहा विनम कीन ॥

—रा अ० १४ अ० ११ १४।

३ दीन दयान नृपवत् केवल ही अलि दीन रजा गहो पाड़ो।

रावण क घम धोष समुद्र में बूझ ही पर हो गहि काड़ो।

ज्यों मज को प्रह्लाद की कीरत ल्यों ही विभीषण को जय बाड़ो।

भारत बंधु पुकार सुनो किन भारत लों पुकार्य ठाड़ो।

केवल आपु सदा सखी दुख र दास्य देखि सके न दुखारे।

आफो मयो अहि भाँति जहाँ दुख ल्यों ही तहाँ देखि भाँति समारे।

भैरव वार प्रवार कहा नहूँ नाहि न नाहूँ के दोष बिपार।

बूझ ही महामोह समुद्र में राज्य काहे न राज्य हारे ॥

—रा अ० ३, अ० १४, अ० १४, १५।

संवाद एवं चरित्र चित्रण—यद्यपि भाव काव्य का प्राबल्य है तथापि भावों के व्यतिरिक्त काव्य में और कुछ भी घुसेलित होता है। भावों का स्वतंत्र कोई व्यतिरिक्त नहीं है। इसी धनवा पुष्प ही उनका सर्वत्र धाम्य होते हैं। इसी कारण काव्य में आए हुए व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण की धारस्यकता पड़ती है। प्रबन्ध-काव्य की सफलता अधिकतर चरित्र-चित्रण पर निर्भर है। यों तो वस्तु रचना में चटनाओं का भी बहुत बड़ा योग्यत्व है पर सुन्दर चरित्र-चित्रण से चटनाएँ सुस्पष्टीकृत होती हैं। चरित्र-चित्रण के दो प्रकार हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष चित्रण में कवि स्वयं चरित्र पर प्रकाश डालता है। कथा में इस प्रकार के चित्रण का प्रयोग प्रबन्ध उचित है परन्तु काव्य में वह अधिकतर हो जाता है। परोक्ष चित्रण में संवाद या कथोपकथन द्वारा चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है। कवि इसी ढंग को अपनाता है। केसव ने कथोपकथन द्वारा ही अपने चरित्रों का चित्रण किया है। यह कहना प्रसूति न होती कि केसव को संवादों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। केसव के चरित्र-चित्रण में चटनाओं का जतना प्रयोग नहीं है जिसका कि संवादों का। 'राम चरित्रिका' में ये संवाद उत्सोहनीय हैं—१ दधरच-विश्वामित्र-वशिष्ठ-संवाद (प्र० २) २ सुमति-विमति-संवाद (प्र० १) ३ राज-बाणामुर-संवाद (प्र० ४) ४ विना-मित्र-जनक-संवाद (प्र० ३) ५ परशुराम-नामदेव-संवाद (प्र० ७) ६ परशुराम-राम-संवाद (प्र० ७) ७ कंकेई भरत-संवाद (प्र० १०) ८ सूर्यजन्मा राम-संवाद (प्र० ११), ९ शीता राज-संवाद (प्र० ११) १० राज-हनुमान-संवाद (प्र० १४) ११ राज-मंदव संवाद (प्र० १५) और १२ लवकुश-विभीषण-संवाद (प्र० १७)।

इनमें से कुछ तो बहुत ही छोटे हैं, परशुराम-नामदेव संवाद शीतल-राज संवाद सूर्यजन्मा राम संवाद आदि। राम-परशुराम-संवाद तथा राज-मंदव-संवाद क उच्च तन्त्रे और सब संवादों में श्रेष्ठ हैं। केसव अपने संवादों के लिए संस्कृत के 'प्रबन्धराज' और 'हनुमानाटक' नामक नाटकों के ज्ञानी हैं। अतः उनकी 'चरित्रिका' में नाटकीय संवादों का ही प्राबल्य है। काव्य में नाटकीय चित्र-चित्रण से नाटकीयता तो प्रबल्य या जाती है पर प्रबन्धरसकता में बाधा पहुँचती है। दरबारी कवि होने के नाते केसव राजनीति के बाँव-बैँच एवं कार्यप्रणाल्य में कुशल हैं। इसी कारण उनके संवाद एक-दो को छोड़कर पात्रोपपन्न भीतिपूर्वक और कार्यप्रणाल्यपूर्ण प्रबल्य हैं किन्तु जब वे एक ही छन्द में कई पात्रों के कथोपकथन को समाविष्ट कर देते हैं तो पाठक उस प्रसंग से विचित्र करने के लिए करता है।

केसव के सब पात्र राजनीति कूटनीति और वायुविज्ञान में शिखरस्थ हैं। केसव ने अपने उन्हीं पात्रों को मोसले का धमक प्रयत्न दिया है जिन्हें व्यर्थ कथने और राजनीतिक बाँव-बैँच सेतने की धमक आवश्यकता थी। जहाँ-जहाँ यन्त्री मनोवृत्तियों के चित्रण की आवश्यकता थी वहाँ-वहाँ केसव संवादों को छोड़ पए हैं वैसे चित्रकूट में राम भरत का संवाद तथा दधरच-वैश्वी का संवाद। राम-दधरच के नाट्यरस में कवि केसव ने वाग्धातुय एवं कूटनीति यही सब धर्मन किया था जिसका

विसर्जन इन्होंने अपने इन सबारों में किया। अतः स्वभावतः उनमें वे कमियाँ भी आईं जो एक भक्तिक कवि के काव्य में नहीं घानी चाहिए थीं।

‘वसन्त-विषामित्र-संवाद’ में विषामित्र राम के मोकोटर शीर्ष द्वारा वसन्त को प्रभावित करके राम-सकलन लोगों माइयों को ऋषियों के यज्ञ की रक्षा के लिए मीचते हैं। वसन्त की समता को समझने का प्रयास किए बिना ही विषामित्र की उन पर कुछ हो कहने लगते हैं—

मूठे लो मूठहि बोलत ही मन । बोलत हौ नृप सत्य समासन ॥

(रा. अं० प्र० २ अं० २२)

‘सुमति-विमति-संवाद’ प्रहल्लादाश्व के मंजरीक और नृपूरक संवाद का रूपान्तर ही है। वह केवल सीता-स्वयंवर में आए हुए यस्मिक (पार्षत्य प्रवेश) कास्मीर, कांची मत्स्य और सिंधु प्रदेशों के राजाओं के पुत्र प्रभाव शीर्ष और बल-विक्रम का वर्णन करने के लिए ही नियोजित किया गया है और उसका कथा के पात्रों के चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। नाटक के विष्कम्भक में संस्थित मंजरीक और नृपूरक ही ‘रामचरित्रिका’ में सुमति-विमति (बन्धीजन) बन गए हैं। दोनों प्रश्नों के उक्त पात्रों के संवादों में साम्य है, केवल नाम का अन्तर है। प्रहल्लादाश्व में नृपूरक कहा है—

रामस्य मंजरीक को हयो सीताकरमईबातलावसन्ततम्भीविमसन्तपुन
अमुकतजाममिचिरे विमनमसहृषारवाहिबुधमं पुनोवन्तो बिहृदि^१ ?

मंजरीक का उत्तर देखिए—

स एव निजयस्य परिमलप्रमोदितवारणलक्ष्मीकथयकोलल्लसुजतिरिदिकजववा
मस्मापातकुत्तनामक कारो यस्मिकापीडो नाम^२ ।

माइत और संस्कृत में जो कुछ कहा गया है उसी को केदार की भाषा में सुनिधे। सुमति पुछता है—

को यह निरजत आपनी पुलकित बाहु बिघात ।

सुरभि स्वयंवर अनु करी मुकुलित आन रतन ॥^३

विमति उत्तर में कहता है—

जोहि धम परिमल मल, लक्ष्मीक धारण किरत ।

दिनि बिदिन अमुरवत सु ली यस्मिकापीड नृप ॥^४

जहाँ नाटक में मंजरीक ने

पश्य पश्य सुमतेः स्फुटजालं यस्मिरेव यमिता न तु यस्मिः ।

संजलिबिरजितो न तु मुष्टिमोतिरेव नमितो न तु आय^५ ॥^६

धर्मों से अपना विषय व्यक्त किया है वहाँ ‘रामचरित्रिका’ में विमति ने—

१ प्र० रा. अं० १ अं० २०।

२ ली, ली, ली।

३ रा. अं० प्र० २ अं० २५।

४ ली, ली, अं० १६।

५ प्र० रा. अं० १ अं० २१ अं० २१।

नमित करी नहि नमित करी धन, तो न नयी मिल धीम नये लख ।
 देखों मैं राजकुमारन के बट, बाप ज्यो नहि धान बड़े कर ॥^१

तथा

धन काहु बड़ानी न काहु नवाबी न काहु छठावे न मोपुल्लु है ।
 कसु स्वारन धो न धयो बरभारन धयो छुँ बीर बल ननिता छुँ ॥^२

में धामनित राजाओं का उपहास किया है। केसव इस सम्पूर्ण प्रबंध के लिए जयदेव के श्रेणी हैं।

इसी प्रकार 'राज-राज-संवाद' भी इस माटक का अनुकरण मात्र है और प्रायः अवसर के उपयुक्त भी नहीं है। अनुप-पत्र में धाकर भी राज तो

मेरे मुख को अनुप यह छीटा मेरी बाप ।

इहें भागि धनमजरी बास बने सुख पाव ॥^३

की स्थिति का बहाना करके सहर्ष जमा जाता है। परन्तु राजन उसी समय प्रतिज्ञा करता है कि मैं तो बिना छीटा को निए यहाँ से न हटूँगा। मैं यही से तक तक न हटूँगा जब तक कि मैं अपने किसी सेनक की धार्ष्ट्य पुकार न लूँगा^४। इसने म ही आकाश में किसी सरबिद्ध असुर की धार्ष्ट्यवाणी सुनाई पड़ती है जिसे सुनते ही राजन वहाँ से चल पड़ता है^५। इन उक्तिओं का आधार 'प्रसन्नराज' ही है^६। ऐसी बट नार्दे कभी-कभी इस संसार में घट जाती हैं पर केवल ईव संशोध से ही। प्रबन्धकार को ऐसी बटमाओं से बचना ही चाहिये, अन्यथा प्रभाव-श्रेयस्वीयता कीज पड़ जाती है। विरदामिश जनक-संवाद इस बात का बरमन्त उदाहरण है कि केसव के पात्रों में सिध्दाचार और परस्पर का सहकार पुरा है। विरदामिश और जनक एक दूसरे का भी सोमकर सुचमान करते हैं। जनक ने यदि कन्वारन उदाम्न क्रिया तो विरदामिश ने दूसरा सोक ही रच आया।

केसव ने 'परधुराम राम-संवाद' में अपनी कुसलता का पूरा परिचय दिया है। इसमें केसव ने राम और परधुराम के चरित्रों का बड़ा ही सुन्दर एक तथोप

१ उ० पं० म० २ अं० ३३।

२ कवी म० ३ अं० ३४।

३ परी. म० ४ अं० २५।

४ कवी. म० ४ अं० ३४।

५ परी. म० ४ अं० ३०।

६ धनाहृत्य इकात् छीटा नायतो अनुपुल्लु है ।

म श्रुणीभि यदि कूरमाकसमनुजीविन ।

—म ॥ अ० १ स्तोत्र ६।

तथा

राज-राज (कवि दाता) धये कस्यावमाकस्य धूपतेनमभि । नूनमनेन कस्य
 धिम्माप्यपीहितेन नटोरमाकस्यता यवमपयचारिषा धावि ॥

(रति विष्णुभाष्य)

बर्जन किया है। रामदेव ज्ञापि के मूह से 'रा' निकलते ही परशुराम उसे रामक समझ बैठते हैं।

महादेव को अनुच यह परशुराम ज्ञविराम ।

तोरोयो 'रा' यह कहत हो समुझयो रामक राम ॥^१

इस व्यक्ति का आधार जमदेव का 'प्रसन्नराजक' है। वही सतानन्द का शिष्य शाङ्कराचार्य कहता है—

सुबाहुमारीचपुरस्तरा यमी निशाचरा कीलिकयक्रपातिनः । जसे स्थिता यस्य^२ ।

इतना सुनते ही परशुराम भी घाम-बबूला हो तुरन्त बोल उठते हैं—

जमनु, धत परं हात जनु जलानामप्रलीनिशाचरधामणी^३ ।

रामदेव के द्वारा राम के शीघ्र का परिचय प्राप्त करके धीर अपने कुछ महादेव जी के अनुचरों की सूचना पाकर लहसा धुम्क होकर अपना परबु उठाने से ही धीर समस्त रघुबंशियों के समुत्तोष्येक करने की ठान लेते हैं^४। परन्तु राम के मोहन रूप को देखकर उनका क्रोध धान्त हो जाता है और उन्हें ऐसा धामास होने लगता है कि यह राम के रूप में कामदेव है और इसी कारण सनातन वर स्मरण करके हमने महादेव का अनुच तोड़ा है^५। राम के शिष्टाचार ने परशुराम के क्रोध को भी मंथन कर दिया है। परशुराम का राम के प्रति यह क्रोध कि 'महादेव के अनुच को छोड़कर तुम्हें बड़ा भारी अभिमान हो गया है भला तुमने अनुच छोड़े मम मेरा भय क्यों न किया' राम के निःसंकोच अपराध स्वीकार कर लेने पर भी पुनः धान्त नहीं होता बल्कि राम के दोनों हाथ काट देने के लिए कहते दिखाई पड़ते हैं। इतने से ही संतोष नहीं होता। वे अपने कुठार को सम्बोधित करते हुए—

तौ भी नहीं कुछ भी लग तु रघुबीर को धोख सुधा न दियो रे^६ ।

की चुनीली बेते हैं। भरत भी तुमसी के सदमज के समान कुछ व्यर्थ कस जाते हैं^७। इस पर तो परशुराम धीर भी जम मुन जाते हैं और भरत को अपनी अनुचिदा दिखाने की चुनीली दे उठते हैं। वन फिर बसा या तीनों भाई (भरत सक्रमण धीर समुच्च) अपने-अपने अनुचों पर काम बड़ा लेते हैं। तब राम ही उनको—

मंमथत सो जीतिये कबहु न कोन्हें धरित । जीतिय दुई बसत तें केवम कीन्हें भरित ।^८

१ रा ब म ७ अ ४ ।

२ प्रसन्नराजक अ ४ पु १३६ ।

३ वही, वही, पु १३६ ।

४ रा ब म ७ अ १२ ।

५ वही, म ७ अ १४ ।

६ वही, वही अ २१ ।

७ बोधत कैसे भूषणति सुभिय सो कहिए तम मन बनि पावैं ।

धादि बड़े ही बड़पन रसिये पा हिन लुं सब जग जग पावैं ॥

जान्न हैं में धति तम धसिए, धामि उठै यह पुन सब नीरै ।

हैह्य मारो भूषण मंहरे, सो धय मैं किन मुग-मुग जीरै ॥

अपित करी नहि ममित करी अब सो न बयो सित सीस नये सन ।
हेक्यो मैं राजकुमारन के घर, बाप बह्यो नहि बाप बह्ये सर ॥^१

उत्था

अस काहु बड़ापी न काहु नवापी न काहु पठावे न चापुल्लु है ।

कसु ह्वारन भो न बयो परमारन धाये हूँ बीर बनीं बनिता हूँ ॥^२

मैं धामंभित राजाओं का उपहास किया है । केसव इस सम्पूर्ण प्रसंग के लिए अपदेव के श्रेणी हैं ।

इसी प्रकार 'राजन-बाब-संवाद' भी इस नाटक का अनुकरणीय भाग है और 'प्राप्त' भगवत के उपयुक्त भी नहीं है । अनुप-वज्र में आकर भी बाब को

मेरे मुख को अनुप यह सीता मेरी माय ।

मुझे नासित अस्तमकसे पातु चले तुम धाम ॥^३

की स्थिति का कहना करके सङ्घर्ष जमा जाता है । परन्तु 'राजन' सही समय प्रतिभा करता है कि मैं तो बिना सीता को बिना यहाँ से न हटूँगा । मैं यहाँ से तब तक न हटूँगा जब तक कि मैं अपने किसी सेवक की धार्त पुकार न सुनूँगा^४ । इसमें मैं ही आकाश में किसी सरविज्र अमुर की धार्तबाणी सुनाई पड़ती है जिसे सुनते ही राजन वहीं से चल पड़ता है^५ । इन उक्तिओं का आधार प्रजनराज्य ही है^६ । ऐसी बट नाएँ कमी-कमी इस संसार में बट जाती हैं पर केवल रंज संयोग से ही । प्रजनकार को ऐसी घटनाओं से बचना ही चाहिये अन्यथा जमाव प्रेवणीयता सीम पड़ जाती है । विस्वामित्र मतक-संवाद इस बात का जलमल्ल उदाहरण है कि केसव के पात्रों में शिष्टाचार और परस्पर का सम्कार पुरा है । विस्वामित्र और जनक एक दूसरे का भी खोसकर मुसयान करते हैं । जनक ने यदि कम्यारत्न उदात्त ठिया तो विस्वामित्र ने दूसरा लोक ही रच डाला ।

केसव ने 'परसुराम राम-संवाद' में अपनी कुप्रसंगा का पूरा परिचय दिया है । इसमें केसव ने राम और परसुराम के चरित्रों का बड़ा ही सुन्दर एवं तनीव

८

१ छ. सं. प्र. ३ अ. ३३ ।

२ छ. सं. ३ अ. ३४ ।

३ छ. सं. ४ अ. ३५ ।

४ छ. सं. ४ अ. ३६ ।

५ छ. सं. ४ अ. ३७ ।

६ अनाहृत हठात् सीता नामतो मनुमुत्तरे ।

॥ मनुमोहि यदि कुर्यात्कर्ममनुमोहिनि ।

—प्र. छ. सं. ३ अ. ३८ ।

उत्था

राजन (कर्म दत्ता) अये कर्मावमाकम्भं भुवतेममति । नूनमयेन वरय
विन्नायवपीडितेन कठोरमाकम्भता तपनपदचारिणा धादि ॥

(इति विष्णुस्तोत्रम्)

—प्र. छ. सं. ५ अ. ३९ ।

वर्णन किया है। वामदेव आपि के मूह से 'रा' निकलते ही परशुराम उसे राजन समझ बैठते हैं।

महादेव को वनुष यह परशुराम आविराज ।

तोर्धो 'रा' यह कहत ही समुझ्यो राजन राज ॥^१

इस उक्ति का आधार वयदेव का 'प्रसन्नराजक' है। वही सदानन्द का शिष्य शास्त्राचार्य कहला है—

सुबाहुमारीचपुरस्सरामभी निशाचरः कौशिक्यज्ञपातिनः । ज्ञेये स्थिता यस्य^२ ।

इतना सुनते ही परशुराम भी प्राण-बबूला हो तुरन्त बोल उठते हैं—

यत्नम् यतः परं जातं यत्नं ज्ञानानामग्रणीनिशाचरप्रामस्ती^३ ।

वामदेव के द्वारा राम के शीर्ष का परिचय प्राप्त करके धीरे धपने शुरू महादेव की के वनुर्मग की सूचना पाकर सहसा क्षुब्ध होकर अपना परशु उठा सेते हैं और समस्त रघुवर्णियों के समूहोपदेश करने की ठान सेते हैं^४। परन्तु राम के मोहन रूप को देखकर उनका क्रोध शान्त हो जाता है और उन्हें ऐसा आभास होने लगता है कि यह राम के रूप में कामदेव है और इसी कारण सनातन बर स्मरण करके इसने महादेव का वनुष छोड़ा है^५। राम के शिष्टाचार ने परशुराम के क्रोध का भी संयत कर दिया है। परशुराम का राम के प्रति यह क्रोध कि 'महादेव के वनुष को छोड़कर तुम्हें बड़ा भारी प्रतिभा हो गया है' ज्ञाना तुमने वनुष छोड़ते समय मेरा भय क्यों न किया' राम के निःसंकोच अपराध स्वीकार कर लेने पर भी पूनवत्या दाम्ब नहीं होता बरन् वह राम के दोनों हाथ काट लेने को लिए कहते दिखाई पड़ते हैं। इतने से ही संतोष नहीं होता। वे अपने कुठार को सम्बोधित करते हुए—

तौ तौ नहीं कुछ भी जग सु रघुबीर की ओल सुधा न विषो रे^६ ।

की चुनौती देते हैं। भरत भी तुलसी के सद्गमन के समान कुछ ध्याम्य कर जाते हैं^७। इस पर तो परशुराम धीरे भी जम भुम जाते हैं और भरत को अपनी वनुविद्या दिखाने की चुनौती दे उठते हैं। बस फिर क्या था तीनों माई (भरत लक्ष्मण और राम) अपने-अपने वनुषों पर बाण बड़ा सेते हैं। तब राम ही उनको—

भगवंत तो जीतिये कबहुँ न कीहुँ शक्ति । जीतिय एकी जात तें केवस कीहुँ शक्ति ।^८

१ रा. बं. म. ७. अं. ४।

२ प्रसन्नराजक अ. ४. पृ. ११९।

३ परी. परी. पृ. ११९।

४ रा. ५. म. ७. अं. १९।

५ परी. म. ७. अं. १४।

६ परी. बं. अं. २१।

७ बोलत कहि मुहुपति सुमिय सो कहिए तन मन बनि पावै ।

पारि बड़े ही बड़पन रक्षिय जा हित तू सब जग जस पावै ॥

बन्धन हूँ मैं अति तन बसिए, धामि उठै यह शुन सब सीरै ।

हैह्य भारो नृपजन सहरे सो यश सँ किन मुग-मुग जोरै ॥

—रा. बं. म. ७. अं. २२।

८. रा. बं. म. ७. अं. २२।

तपी जपी विप्रलक्ष्मि ही हरीं । धरैव होवी सब देव संहरी ।

सिया न बहौ यह नैम भी धरी । प्रमानुवी भूति प्रमानरी करी ॥

(रा० अ० प्र० १६, पं० १०)

किन्तु रावण एक वम सम्मूह जावा है और कहता है कि अच्छा मैं कुछ रातों पर सीता को सीटा सकता हूँ । रावण का यह बार भी सली ॥ जाता है, भय निराश हो भगव से इस विषय में बात करती ही छोड़ देता है ।

तुलसी ने भी 'रावण-प्रंगद-संवाद' की योजना की है । किन्तु उसमें रावण समोचित मर्यादा का कोई ध्यान नहीं रखा गया है । प्रंगद और रावण का संभाषण न तो प्रंगद के राजवृत्त के अनुरूप है और न रावण के राक्षस-राजत्व के । तुलसी के प्रंगद रावण की संभा में पहुँचते ही उसको—

बसन पहनु तन कप्य जुठारी । परिजन संप सहित निज गारी ।

साबर जनक सुना करि पावे । इहि विधि बलहु सकल भय त्यावे ॥^१

का अपमानजनक उपदेश देने लगते हैं और रावण भी अपमान न सहकर प्रंगद को मूर्ख बर्बर खल कुसमायक शिखोर, ममराशि धारि भयशयों में सलकारता है^२ । दोनों की तु-तु मी-मी ने राजसभा की मर्यादा को धूल में मिला दिया है । पर केसरदास ऐसे विष्टाचारों के प्रकट करने में बड़े ही कुशल हैं । इनके संग्रह रावण के सम्मुख सन्धि प्रस्ताव रखते हुए कहते हैं कि 'राम को साबर अपने घर लाकर और उनका सत्कार कर सीता को उन्हें भीटा दो । अपनी पटरानी और कुम्भकर्ण धारि भितने तुम्हारे हितपी हैं उनसे भी पूछ लो कि मेरी सनाह अच्छी है या नहीं ।'^३ इस पर रावण भी धीम्यपूर्ण पर सरल उत्तर देता है कि 'ओ होगा हो छो हो मैं अपने इष्ट देव संकर को ओ समस्त सृष्टि और ब्रह्मा विष्णु, रुद्र धारि देवताओं को उनकी से जीव से ही नष्ट कर डालते हैं छोड़ राम के करणों में न पड़ूँगा'^४ ।

तुलसी के प्रंगद बिना पूछे ही बाति की बात सुनाने भय जाते हैं पर केदार के प्रंगद बिना प्रसंग के ऐसी डीम नहीं होकते । रावण और प्रंगद के उत्तर प्रत्युत्तर बहुत ही समत और सुसम्बद्ध हैं । इस संवाद की भी अनेक उक्तियों का आधार 'हनुमन्नाटक' है ।

'सबकुछ-विनीयण-संवाद' केदार ने विनीयण को उस वृत्ति की निम्ना करने के लिए नियोजित किया है जिसके निमित्त उसने अपने भाई रावण और उसके अपने कुल का सर्वनाश करवाया । रामभक्तों की दृष्टि में विनीयण बाहे भक्त है परन्तु राजनीतिक दृष्टि में वह राजद्रोही एवं देशद्रोही ही ठहरते हैं और इसी कारण उसे सब के ध्वंश बाध सहने पड़ते हैं ।

चरित्र-विवरण—संवादों का उपयोग केदार ने वहीं किया है जहाँ उन्हें वाक्यालुप्य, कूटनीति धारि वा समावेश करना धनीष्ट था । जीवन के बहल तथा

१ रा० अ० अ० संकाश १२वें श्लोक के बाद की मूल्य नीतिरस ।

२ वही, संकाश २०, श्लोक १२ के बाद की नीतिरस ।

३ रा० अ० प्र० १६, पं० ६ ।

४ वही, वही पं० १ ।

पम्मीर प्रसंगों में वहाँ चरित्र की परीक्षा होती है वे न तो स्वयं अपनी सेसनी से धीर न किसी पात्र की बाणी से व्यक्तियों के चरित्रों का चित्रण कर सके हैं। 'रामचरित्रिका' में जब-जब ऐसे प्रसंग आए हैं तब-तब केदार उनकी उपेक्षा ही कर गये हैं। जैसा कि पूर्वपृष्ठों में बताया जा चुका है केदार ने कथा-प्रसंग निर्वाह की धीर भी विशेष ध्यान नहीं दिया है। इसलिये उनके अभिर्वाच पात्रों का उचित विकास नहीं हो पाया है धीर उनका उस स्तर से पठन हो गया है वहाँ उन्हें नास्मीकि प्रवृत्ति तुलसी ने अभिष्टित किया है। यदि वास्मीकि धीर तुलसी की कथा से भारतीय जनता इन पात्रों के चरित्रों से पहले से ही सभी भाँति परिचित न होती तो केदार की 'रामचरित्रिका' उनका सच्चा धीर पूरा स्वरूप प्रकट करने में समर्थ नहीं हो सकती थी। केदार ने केदार रूप-रेखाओं में कहीं-कहीं सुविधा का स्पर्श दिया है कृष्ण चित्रकार के सवृक्ष मनोयोग से रंग नहीं मरा।

राम—'रामचरित्रिका' के आरम्भ में ही महर्षि वास्मीकि ने स्वप्न में केदार को राम का जो परिचय दिया था उससे स्पष्ट है कि उनके राम साक्षात् 'परब्रह्म' धीर प्रवृत्तारी प्रवृत्तारम्भ हैं^१। वे धमर धमर धनादि धीर धनन्त हैं तथा सैष धम्भु, ब्रह्मा धीर वेध जिसको नेति नेति' ब्रह्म कर सम्बोधित करते हैं^२। वे धनन्त धामी हैं धीर उनकी ज्योति सम्पूर्ण बिन्दु में व्याप्त है^३। उनके न रूप है न रंग है धीर न रेखा^४। इस प्रकार केदार की दृष्टि में राम निर्गुण ब्रह्म हैं परन्तु केदार उनके सवृक्ष रूप को भी मानते हैं। वे भक्तों के कारण प्रवृत्तार लेते हैं— सब भक्तन कारण भरत देह (रा० चं प्र० ७ अं ४६) रजोगुणी ब्रह्मा के रूप में प्रवृत्तार धारण करके वे सृष्टि की रचना करते हैं सवोगुणी

१ रा० चं प्र० १० अं १०।

२ तुम हो धनन्त धनादि सर्वंग सर्वथा सर्वज्ञ।

—रा० चं प्र० १० अं १।

धमर धमर धनन्त धं धं चरित भी रघुनाथ।

करत सुर नर सिद्ध धनरज भवन मुनि मुनि बाब ॥

—वही, वही अं० १०।

नेति नेति कहूँ वेद।

—वही प्र० १ अं १।

सैष संभु स्वयंभु भापत नेति निगमहु जामु।

साहि लघुमति चरणि कंठे सकत केदारदास ॥

—वही प्र० १०, अं १४।

३ राम सदा तुम भगवदामी। मोक जगुर्दण्ड धमिरामी।

ज्योति जग जग मध्य तिहारी। बाय कही न सुनी न मिहारी ॥

—रा० चं प्र० १ अं ११, १२।

४ रूप न रंग न रेख विषेय धनादि धनन्त नु केदन पाई।

केदार गाधि के नन्द हूँ नहुँ ज्योति सो मूरतिमन्त दिताई ॥

—रा० चं प्र० १, अं० १८।

विष्णु रूप से वे उसकी रक्षा करते हैं तथा तनोदनी ब्रह्मा से वे सृष्टि का संहार करते हैं^१। परन्तु केसव सम्पूर्ण कथा भाग में इस महत्ता का विकास नहीं दिखाता सके हैं। उन्होंने तो अपनी भुग के कारण उनके रूप को बहुत कुछ मष्ट कर दिया है और रास्यमिषेक के बाद उनके रामकी ठाट को ही व्यक्त किया है। वही वास्मीकि और तुमसी के राम में सीम्पता एवं पम्मीरदा के वर्णन होते हैं वही केसव के राम में सकम्प के समान ही उभरा दिखाई देती है। 'राम-परशुराम-संवाद' में राम की सम्भावनी प्रतिकीर्ति तुमसी के सकम्प से मिलती है। अनुर्मन के कारण कुपित परशु राम से कथन क राम कहते हैं—

हो हृदयहार तब बाहुहि बीजत रोष ।
 त्यों सब हर के बनूप को हय पर कीजत रोष ।
 हय पर कीजत रोष काल गति जानि न जाई ।
 होनहार छूँ रही मिटै भिड़ी न मिटाई ॥
 होनहार छूँ रही मोह सब सब को छूटे ।
 होय तिनका बन् बन् तिनका छूँ हूँ ॥

(रा० पं० प्र० ७ अं० २०)

परशुराम के विरवामित्र पर व्यग करने पर तो राम की उभता अपनी भरम परा काष्ठा पर ही पहुँच जाती है। राम ससकार कर कहते हैं—

भयन कियो भयबनुष सात तुम को सब साली ।
 नष्ट करी बिबि सृष्टि ईक प्रासन से जाली ॥
 सकल लोक संहारुँ सेस सिर से पर डारौ ।
 सप्तसिन्धु मिलि जाहि होहि सब ही तन भाये ॥
 अति भयल ज्योति नारायणी कहि केसव बुनि जाय बर ।
 मृगुनन्द संभाऊ कुठार में कियो सरसतन पुनत सर ॥

(रा० पं० प्र० ७ अं० ४२)

सिब की के समय पर उपस्थित हो जाने से धर्म हटे हटे बच जाता है। इस समस्त प्रसंग में केसव ने सबेष्ट होकर मौलिक बनने का प्रयास किया है परन्तु इस मौलिकता की सृम्भ के कारण वे राम के चरित्र का किसी प्रकार विकास नहीं कर

- १ तुम ही गुण रूप गुणी तुम ठाये । तुम एक से रूप धर्मक बनाये ॥
 एक है जो रजोगुण रूप विहारो । तेहि सृष्टि रची बिबि नाम विहारो ।
 कुन सत्य बरे तुम रखक जाको । सब विष्णु कही सिपरे भय ठाको ॥
 तुमहीं जग रक्षक संहारो । कहिये तेहि मध्य तपोगुन भारो ॥
 —रा० पं० प्र० १० अं० १४, १५।

- २ माहि के सब विहारे कुब । बिन से ज्यपि वेप किये उबरे ॥

रहे हैं। वाल्मीकि धीर तुमसी ने इसी प्रसंग में राम का कहीं घबरा बिचन किया है।

राम को चरित्र की यह उज्जता एक स्वप्न पर धीर देखने में घाती है। सङ्गम को ध्वस्त लगने पर विभीषण राम को बतलाते हैं कि यदि मूर्खोदय से पूर्व सङ्गम को घोषण न मिल सके तो सङ्गम फिर भीषित न हो सकेंगे। यह सुनकर राम अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगते हैं—

करि आश्रित्य अशुद्धि मन्द जल करौं छाट्य बसु ।
छत्र छोड़ि समुद्र करौं धन्यवर्ष सर्व पसु ॥
बलित प्रवेर कुंजर बलिहि बहि डेर डग्न पक्ष ।
विद्यावरण अविज कटौं दिन सिद्धि सिद्ध सब ॥
निज होहि बाल विडि की अवधि अमित धनल मिटि जाव जल ।
सुनि सूरज ! सूरज उमठ ही करौं असुर संवार जल ॥

(रा० अ० प्र० १० अ० ४६)

यह बातें समय केसव राम से दुखित माता कौसल्या को मारी-पम का उद्वेग रिलवाते हैं। धीर उनके मुँह से यहाँ तक कहलवा देते हैं कि बिचवा हो जाने पर स्त्री को क्या करना धीर कैसे रहना चाहिये। सीतामयवती माता की राम का इस प्रकार का उपदेश करना उनके चरित्र पर कामिमा लगाता है। वाल्मीकि धीर तुमसी दोनों ही ने 'विषवा-वय-वर्जन' के प्रसंग को छोड़ना उचित समझा है। सीता से कथन के राम का इसी प्रसंग में कहना—

तुम जननि सेव कहूँ रहसु जाव । भौं आहु प्राव ही जनक जाव ।

सुन अश्वत्थमनि यमयमनि एनि । मन बई सो कीज जलजनीनि ॥^१

भी उमक चरित्र को उठाने के स्वप्न पर गिराता ही है। इस अवसर पर वाल्मीकि के राम सीता से कहते हैं कि तुम राजा भरत के आदेश का पालन करते हुए बर्ष धीर पत्न में स्थित होकर प्रमोदना में ही रहो। इसी प्रकार तुमसी के राम भी सीता से प्रमोदना में ही रहकर सास-ससुर के चरखों की सेवा करने का परामर्श देते हैं^२।

केसव के राम तुमसीरास के राजरथानी राम नहीं हैं। वे उम संवसानु राजा के समान हैं जो राजपाट का परित्याग कर चौदह बर्ष के लिए जनममन के समय श्री भरत से भाई के प्रति सत्क है। सङ्गम को यन साथ चरने से मना करठे हुए वे उन्हें भरत की गतिविधि पर ध्यान रखने धीर भाताओं की सुधुपा एवं कण पिठा की सेवा करने की सिखा दे रहे हैं^३। इसके विपरीत वाल्मीकि धीर तुमसी के राम भरत पर पुरा विश्वास रखते हैं धीर भरत के प्रति इस प्रकार की संका से कभी नहीं करते हैं। बिचकूट प्रतम में जब भरत राम को सीटा लाने के लिए लग्य प्रा रहे हैं तो सङ्गम को उनके आक्रमण करने का समझ हो जाता है। कपट के चक्रुप्न

सहित भरत को मार डालने तक की ठान लेते हैं^१। इतने पर भी राम का रूप रङ्गा उनके परित्र को कुछ भूमिभ भवश्य कर देता है। इस अवसर पर बात्मीकि के राम उन्हें समझाते हैं कि मुझ से सर्वत्र स्नेह करने वाले धीर मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय भरत स्नेहार्द्र हृदय से पिता को प्रसन्न कर सुख लेने जाएँ हैं। तुम उस पर श्रमाम करने का सन्नेह क्यों करते हो। इसी प्रकार तुमसी के राम भी प्रेमपूर्वक सङ्गम को समझाते हुए कहते हैं—

भरतहि होइ न राम मर, बिधि हरिहर पर पाइ।

कहहुं कि काजी सीकरहि सीरतिगु बिनसाइ ॥^२

किन्तु कैशव के राम भरत के—

परको बलिये सब भी रघुराई। जन हों तुम राम सदा सुखदाई ॥^३

बचन सुनकर ही कह सके हैं कि “राजा दशरथ ने हमको बगदास दिया है और तुम्हें सपूर्ण राज्य दिया है। यद्यपि तुम्हें और हमें मिलकर बड़ी बात करनी चाहिये जिससे पिता के बचन भंग न हों।”

आगे चलकर जन में विचारण करते हुए कैशव के राम का सीता के चमते चमते बक जाने पर किसी सङ्काश भयवा नदी के किनारे तमाम बुद्धि की पत्नी और धीवत छाया में बैठकर अपने बरकल के ध्वंस से पंखा मलना और सीता के मन को दूर करना उनकी श्रुतिपरक और किसी सीमा तक स्वयं मनोवृत्ति का परिचायक है। इसके प्रतिकूल बात्मीकि की सीता मुद्रा से परिधान राम के सिर को अपनी गोद में रसकर स्वयं उनके मुख पर हवा कण्ठी है। मर्वादावासी तुमसी तो ऐसे स्वप्नों में जाना ही उचित नहीं समझते हैं। सुधीव द्वारा भाकर दिए गए सीता की के उत्तरीय को देखकर तो कैशव के राम बिनासी मानव के समान ही अपनी काम जीड़ा का स्मरण करने लगते हैं।^४ तुमसी ने इस अवसर पर भी मौन रहकर अपनी मर्वादासीमता का ही परिचय दिया है।

अबि अापि के भावम की छोड़कर भाये बड़ने पर सीता की सब विराम नामक रासस को देखकर भयनीत हो जाती हैं तो राम बर्म और मर्वादा का विचार

१ भारि करौ अनुच समेत यहि बित भाव ।

भरतहि भाव राम देखें प्रेतपुर की ॥

—पृ० बं प्र० १० अ १२।

२. रा. न. मा० धर्मोत्पादकाल दो २२३।

३. रा. बं प्र० १ अं ३३।

४. की. अं० ३४।

५. बचन हमारी कामनेति को कि ताहिदि को राजनी विचार को के व्यजन विचार है। मान की जमनिका के बजमुख मूर्ति की सीतानु को उत्तरीय को सब गुलसाव है ॥

—पृ० बं प्र० १२ अं० ३२।

किए बिना ही भू उससे बाण का लक्ष्य बना जानते हैं। भयंकर शरीरवारी होने के फलने छोटे से ही अपराध पर बेचारे बिदाय का वन हो गया है। यहाँ क्या प्रसंग के छोड़ देने से, जो राम संतों के बाण के लिए ये बे चरित्र के उस साधारण भराठस पर पहुँच जाते हैं जहाँ ऐसे-ऐसे बहुतेरे सचारी बन रहा करते हैं जो अपनी स्त्री को प्रसन्न करने को ऐसे काण्ड करने को प्रस्तुत रहते हैं।^१

धीठा भी के बिरह में बिल्कुल केदार के राम का बिभाव करते हुए पक्षियों वृक्षमत्तमों धादि से कल्याणपूर्ण बानी में उनका पता पूछते इधर-उधर फिरना उन्हें स्वर्ण भवना कामुक पति प्रीणित करता है। वात्सीकि भीर तुलसी ने इसी प्रसंग में राम के चरित्र का बड़ा ही मर्यादित विमर्श किया है। सम्मन के उक्ति समने पर केदार के राम के नेत्रों से एक बार फिर प्रसुसरिता का प्रवाहित हो जाना भीर उनका यहाँ तक कह जानना भी उन्हें साधारण मानव के चरित्र के स्तर पर ही ले जाता है—

‘तू बिनु हौं पल प्राण न राखीं। सत्य कहौं कपु भूँठ न जाखीं ॥’^२

राज-वच के अपराध केदार के राम हनुमान जी को बुलाकर कहते हैं—

जाय जाय कही हनुमत हमारो—तुल देखतु शीरघ कुल बिहारो ॥

सब वृक्ष भुक्ति की धुन पीता। हम को तुम बेपि दिखावतु सीता ॥^३

वात्सीकि भीर तुलसी के राम के चरित्र में यह उदात्तभावन देखने में नहीं आता है। तुलसी के राम केवल यही कहते हैं कि सीता से आकर सब समाचार कहना भीर सीता के कुचन-मगल का पता सेते आना।^४ हनुमान के सीता के समीप पहुँचने पर स्वयं सीता जी का हनुमान से कथन है कि कुछ ऐसा मत करो जिससे सीमा ही स्वामी के वर्णन हो सके।^५

रागाधिवेक के अपराध तो केदार के राम केदार के समकालीन शृंगारिक मनोभूति रखने वाले मुसल सम्राटों तथा राजा-महाराजाओं के रूप में देखने में आते हैं। वे उन्हीं की माँति कमी शीघ्रता देखने आते हैं तो कमी सीता के साथ बाटिका की सर करने कमी घसघसाया देखने आते हैं तो कमी शृंगारधामा कमी रनिवास की स्त्रियों के साथ आकर जनश्रीडा करते हैं तो कमी समा में बैठकर मृत्यु-मान धादि का रस मूटते हैं कमी उन्हें धारिजा जगती है तो कभी अपने प्रतरंग सत्ता युक्त के साथ छिपकर वे रनिवास की स्त्रियों का वन विहार देखते भीर बड़े बाव से शुक से सीता की दासियों का मलमिल-वर्जन सुनते हैं।

मरत—वात्सीकि भीर तुलसी के समान केदार ने मरत की धुरि धुरि प्रसंवा

१ केदार की काव्यकला पृ० ७६।

२ रा० च० प्र० १० अ० १२।

३ रा० च० प्र० २० अ० १।

४ रा० च० भा० लंकाकाण्ड दो १८२ के शर की सीपई, पृ० ६२।

५ बरी, बरी, दो १८२ के शर की सीपई, पृ० ६२।

की है। उनका कथन है कि यद्यपि सद्गुरु ने सब प्रकार से सेवा की तथापि सब प्रकार से भरत की सेवा पर ही राम का ध्यान रहा है।^१

कैशव के भरत सबसे शांति और विनम्र नहीं हैं, जिसने कि वास्तविक और तुलसी के। परशुराम से लेकर राम तक से उनका विरोध बलता है। वन्य के दूध नामे पर जब बातचीत में परशुराम बरम होकर कुठार से राम का रक्त-दान करने के लिए कहते हैं तो भरत ही सब से पहले व्यंगपूर्ण शब्दों में उन्हें सचेत कर कहते हैं कि हे भृगुपति जैसी बात कहते हो। ऐसी बात कहो जिसे तुम तब से प्रकटा मत के पूर्व कर सको। तुम ब्राह्मण हो। यत ब्रह्मण्य रहे रहो जिससे तुम समस्त संसार में पक्ष प्राप्त करो। धर्मशा यह भली भाँति समझ लें कि धरमन्त रण्ड से बन्धन में भी धाय लग सकती है। तुमने हैहवराज और धर्म्य अनेक अधिप राजाओं का सहारा दिया है। यही यह लेकर विश्व में क्यों नहीं युग-मुपात्तर तक प्रसर बने रहते हो।^२ 'मानस' में परशुराम की भेंट स्वयंवर राजा में होने के कारण तुलसी के भरत के सम्मुख यह प्रश्नसर नहीं आया है।

भरत गतिहास से लौटकर प्रकट में देखते हैं कि चारों ओर झोक छाया हुआ है, राजसभा में सम्नाटा है और माता कैंकेयी भवन में अकेली पड़ी है। निदान माता से मेघ जानकर सारा रहस्य खुलता है। इस प्रश्नसर पर कैशव के भरत वास्तविक और तुलसी के समान ही कैंकेयी की भर्त्सना करते दिखाई पड़ते हैं।^३ राम से भेंट होने पर भरत जब उनसे गङ्गाद बाणी में वापिस लौट चलने और राज्य करने का प्रस्ताव करते हैं तो राम राजा और पिता की धाजा प्राप्त करने का आदेश देते हैं।^४ किन्तु भरत तो राम से नीति की बुझाई देते हुए मछपी स्त्री के बर्णामुन समिरात-प्रस्त बातुन और महापापी पिता की धाजा संन करने का ही आग्रह करते हैं।^५ बहु स्पष्ट छोटे मूढ़ की भाँति है। अनुनय-विनय के बल पर राम को मानने के स्वान पर उनका यहाँ तक तककर गहना—

ईअ ईअ जगदीश ब्रह्मायो । वेद बाधय बल ते पहिबायो ।

ताहि देखि हुट कैं रविही जो । गेय तीर लपको लखिही तो ॥

(रा० अ० प्र० १० अ० २०)

१ यद्यपि सद्गुरु करी सेवा सब भाँति समेक ।

तद्यपि मानस सर्वथा करि भरत ही की सेवा ॥

—रा० अ० प्र० २० अ० ११ ।

२ रा० अ० प्र० २० अ० २२ ।

३ बल काज कहा कहि ? केवल मों कुल लोको कहा गुल या में मदे ?

तुमको प्रभुता भिन्न लोको कहा अपराध विना सिगरेई हवे ॥

मठासुताविडेपिनी सब ही की दुखदायी ।

—रा० अ० प्र० १ अ० ४२ ।

४ राजा की प्रकृति बाध की बचन न भेटे कोई ।

जो न जानिये भरत तो भारे को कम होइ ॥

—रा० अ० प्र० १० अ० २२ ।

५ रा० अ०, प्र० २०, अ० २२ ।

दुराग्रही ही कहा जायगा। यह कोरी बमकी ही नहीं रहती, बल्कि सचमुच ही गमा के तीर बाकर शरीर-स्वाम का निरूपण कर बैठते हैं।^१ इस अवसर पर वास्मीकि ने भरत भी धनधान्य-युक्त धारण कर राम की कुटी के द्वार पर सत्याग्रह कर बैठते हैं। तुलसी के भरत विनम्र में राम के अयोध्या वापिस आने के सम्बन्ध में सब कुछ कहने के उपरान्त भी अन्त में यही कहते हैं कि—

अब कपालु जस आसनु होई । करौं सीस जरि साबर सोई ॥^२

राज्याभिषेक के उपरान्त लोकापवाद के भय से जब राम सीता के परित्याग का निरूपण कर भरत से सीता को बन में छोड़ जाने के लिए कहते हैं तो वे उनका परमन्त कहे शब्दों में डटकर विरोध करते हुए यहाँ तक कह जाते हैं—

प्रिय बाबनि प्रियशशिमी बलिष्ठता बलिष्ठ ।

जग की पुत्र अब गुबिछी छाड़ित देवबिच्छ ।

बा माता वैसे पिता तुम तो भैया पाय ।

भरत भयो अवकाश को न जग चुनल पाय ॥

(रा० अ० प्र० ३३ अ० ३४ ३५)

आगे चलकर सबकुछ द्वारा बलबल सहित सधम्य के पराजित होने का संभाव जाने पर केसव ने भरत राम से कहते हैं—

पाठक कौन तजौ तुम सीता । पावन होत तुने अप भीता ॥

बोवबिहीनहि बोव सपावै । सो प्रभु से कम काहि न पावै ॥

(रा० अ० प्र० ३६ अ० ३७)

घोर अन्त में राम के कुकृत्य की ओर निन्दा करते हुए निरूपण करते हैं—

हौं तहि तीरथ जाय मरीयो । संगति होन अक्षेप हरीगो ॥

(रा० अ० प्र० ३८ अ० ३९)

वास्मीकि घोर तुलसी दोनों ही ने इस प्रत्यक्ष को छोड़ दिया है।

सोता—वास्मीकि घोर तुलसीदास की सीताओं में अथवा मानवी घोर दबी का अन्तर है किन्तु केसव की सीता तो पाठक के मन में विषय ऊँचा स्वान नहीं बना पाती। जहाँ तुलसी की बनमयन के समय की राम-सीता की बातचीत बड़ी ही मार्मिक एवं मर्मस्पर्शी है वहीं केसव तुलसी का अतीत भी भावविमोद करने वाली भावना व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सके हैं।

बन में जाती हुई तुलसी की आराध्य देवी सीता अपने प्रभु रामचन्द्र की के पदचिह्नों को बचाती हुई चलती है।^३ परन्तु केसव की सीता सूर्य के ताप से तप्त

१ रा अ प्र० १० अ० १८।

२ रा अ प्र० अयोध्याप्रबन्ध दो २६८ की ओर १० ३०४।

३ प्रभु पर देख बीच बिच सीता। बरति बरन मग्न बसति समीता।

—रा अ प्र० अयोध्याप्रबन्ध दो १९२ के बाद की ओर १।

भूल के कष्ट से बचने के लिए राम के परनिष्ठों पर ही पौन रखती हुई बसती है ।^१
एक पश्चिमीय पति भक्ति का उदाहरण है तो दूसरा शरीर-मुक्त नाममात्र और स्वार्थ
परता का । यह वही सीता है जिन्होंने जन प्रयाग के समय राम से कहा था कि—

न हौं रहौं न जाहूँ न बिदेह-नाम को धरौं ।
कही नु बात मातु पैं नु बाबु पैं कुनी सब ॥
नगें लुबाहि जाँ जसी बिपति पाँच नारिये ।
बिपास बात भीर भीर भुज पैं संभारिये ॥^२

और जिन्होंने लक्ष्मण से भी यही पाप कह दिया था—

बाबु की बहन दिन बाबा की बहन
बड़ी बाइबा धनल भ्वालनाम में रह्यो परै ।
सहिहीं तपन ताप पर के प्रताप
रघुबीर को बिरह भीर । जो खों न लह्यो परै ॥^३

केदार धोमिका के आदेश में पहले सीता से ऐसी शीरोक्ति करवा तो गए हैं परन्तु
पीछे उनकी कोमलता दिखाने के लोभ में उसका निर्बाह करवाना भूल गए हैं ।
तुमसी की सीता जन में पति की अनेक प्रकार से सेवा-सुभूषा करने के लिए
पई थी ।^४ यदि चाहत तो तुमसी इस सेवा-सुभूषा के दर्शन भी करवा सकते हैं ।
परन्तु उन्होंने उन स्त्रियों पर ज़ाना उचित ही नहीं समझा है जहाँ माता सीता
भगवान् की सेवा कर रही हैं । किन्तु केदार में ऐसी पर्याय नहीं दिखाई देती ।

केदार की सीता तो जन-मार्ग में चलने के कारण बचने पर किसी भीतरल
स्वान में बैठकर राम से पंजा फलवाती हैं और बीच-बीच में बाँकी बितबन से राम
की ओर निहार कर ही अपने कर्तव्य की इतिथी समझती है ।^५ वास्तविक की

१ मारण की रज छावित है पति । केदार सीताहि सीतल नामति ॥

ज्यो पद बंकर ऊपर जायति । ईदु जने तेहि से मुकजायति ॥

—रा. अं० प्र० ६, अं० १५ ।

२ रा० अं० प्र० १, अं० २४ ।

३ नरी पति अं० २६ ।

४ सबहि भाँति पिय सेवा करिहीं । मारमबलित सकल भन हरिहीं ॥

बाँच पसारि बैठि सब छाही । करिहीं बात मुरित नय माही ॥

अमकल सहित ध्याय तनु देखी । कहूँ कुछ समज प्राणपति पई ॥

सब यहि लूक लखलख कासी । पाइ बसोतिहि सब निधि पासी ॥

—रा. अं० प्र० ज्योत्स्नाकाव्य हो १५ के मद की चौरासी ।

५. बहुत बात सङ्गाय तरंगिनि तीर लनाम की छाँह बिलोकि भली ।

पटिका बहु बैठ्य है मुल पाम बिछाय लही कुल कति घनी ॥

नय को नय बीपति दूर करे पिय को मुख बाकल बँबल सों ।

यम तेऊ हरै तिमको कहि केदार बँबल बाह बुरबल सों ॥

—रा० अं० प्र० १, अं० ४४ ।

सीता राम के मृगया से परिभ्रान्त होने पर स्वयं उनको पंखा झलकर उनका भय दूर करती है ।

केशन की सीता बीजा-बादन द्वारा ही बन में अपने पति को रिझाती है और उनके मन की बिम्बता दूर करती है ।^१ वात्सीकि और तुमसी के राम परमानन्द स्वरूप हैं इसलिए उनकी सीता को राम को रिझाने की आवश्यकता नहीं होती ।

कौसल्या—केशन की कौसल्या के चरित्र का भी कुछ पता हो गया है । राम के बन-मन का समाचार सुनकर कौसल्या राम से को कहुती हैं उसमें उनका छोटिया बाहू और बछरव के प्रति प्रसिष्ट प्रीति ही प्रतिध्वनित होता है ।^२ मर्मादावाही तुमसी ऐसे सिष्टताहीन एवं घटस्थ कथन की कल्पना भी न कर सकते थे । साथ ही वे राम से अनुरोध करती हैं कि वह उन्हें अपने साथ बन से न निकर प्रयोध्या में बाड़े मरत राज्य करे भयवा बिजयी पड़े उन्हें कोई मतसब नहीं ।^३ कौसल्या की इस उक्ति से विदित होता है कि उनका राम से इतर किसी धन्य से जैसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है । इसके विपरीत तुमसी की कौसल्या बड़ी यत्नीरता बड़ी दूरदर्शिता तथा असीम आत्मत्याग से राम को बन प्रयाण की प्रार्था और माघीबाँव बेटे हुए कहती हैं ।^४ वात्सीकि की कौसल्या पहले तो उन्हें से राम को बन जाने से रोकने का प्रयास करती हैं और फिर अपने को भी साथ ले चलने का अनुरोध करती हैं । किन्तु अन्त में राम के समझाने-बुझाने पर असीम प्य के साथ राम के बन-प्रयाण का समर्थन करते हुए अवश्य कष्ट से माघीबाँव प्रदान करती हैं ।

बछरव और कौसली—केशन के बछरव और कौसली के चरित्र तो तमिः की प्रसफुटित नहीं हुए हैं । राजा बछरव से बरवान माँस लेने पर कौसली के हृदय में होने वाली किसी प्रकार की प्रतिक्रिया का वर्णन नहीं किया गया है जिससे कि उसके चारित्रिक गुणों पर प्रकाश पड़ता । इसी प्रकार बछरव के भी हृदय पर होने वाली प्रतिक्रिया का कोई उल्लेख नहीं किया गया है । सारे प्रसंग को दो बार पत्रियों में ही चलता भर कर दिया गया है । इस अवसर पर तुमसी ने बछरव और कौसली दोनों के चरित्रों के उज्ज्वल एवं मतिम पक्षों का बहुत ही धूम धिम किया है ।

१ छ चं म ११ छं १० ।

२ रही नुप हूँ सुत क्यों बन जाहु । न देखि सकैं तिनके तर बाहु ।

सगी अब बाप तुम्हारेहि बाय । करें जसटी बिधि क्यों कहि जाय ॥

—छ चं म ११ छं १० ।

३ छ चं म ११ छं १ ।

४ जो पितु मातु कहैज बन जाया । ती कानन रात अथय समामा ।

पितु बनदेव मातु बनदेवी । रामपुन चरण सरोचहु सेवी ॥

जो मृत कहीं सन मोहि सेह । तुम्हरे हृदय होइ संदेह ॥

पुन करमप्रिय तुम सय ही के । प्राण प्राण के जीवन जो के ॥

अव्यक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'रामचरित्रका' में केशव के प्रबन्ध-सीप्यत्र का आभास नाममात्र का ही है। प्रबन्ध-काव्य में अव्यक्त कुणों का केशव पूर्णतया निर्वाह नहीं कर सके हैं।

(ख) शौरसिंहदेव-चरित—केशव के प्रबन्ध-सीप्यत्र के विषय में जो इतना कुछ कहा जाता है वह साथ-साथ 'रामचरित्रका' को ही दृष्टि में रखकर कहा जाता है और वह भी 'रामचरित्रमात्र' जैसे प्रभुत ग्रन्थ को सामने रख कर। यदि उनकी कृतियों पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाय तो केशव अपने शौरस एवं हृदयहीन दिखाई न पड़ें जितना कि हिन्दी-काव्य उन्हें प्राप्त भी देखा है। 'शौरसिंह देव चरित' के अध्ययन से उनका प्रबन्ध-सीप्यत्र स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है और साथ ही यह भी सभी शीति विरहित हो जाता है कि वे किस सीप्यत्र के साथ इतिवृत्त को काव्य में काय्य करते हैं। प्रबन्ध-काव्य में अव्यक्त सभी कुणों का निर्वाह यहाँ यथास्थान हुआ है।

कथावस्तु—'शौरसिंहदेव-चरित' की कथा जो ३३ 'प्रकाशों' में समाप्त होती है सुबत्त एवं सुमठि है और कथा के बीच-बीच में वस्तु-वचन भी बहुत ही उपयुक्त बन पड़ा है। यहाँ कि भागों के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। केशव ने इस प्रबन्ध की रचना में अपनी सारी प्रतिभा जुटा दी है। वे स्वयं लिखते हैं—

नवरत्नमय सब धर्ममय राजनीतिमय माल।

धीर चरित्र विविध किम कोशकदास्त प्रमल ॥*

यह प्रबन्ध सिद्धा भी यथा है विविध रूप से ही। जिस प्रकार 'रावो की कथा' रूप शौर सुनी के संसार से चलती है उसी प्रकार 'शौरसिंहदेव-चरित' की कथा का आरम्भ भी सोम शौर दान के समाप्त ही है होता है। एक बार पुष्पसन्निता मर्नदा के पीर पर नुर असुर शौर मनुष्य सभी एकत्रित होते हैं। प्रत्येक वहाँ विविध प्रकार के मन्त्र होम तुला-दान आदि धार्मिक कृत्यों में लीन हैं। इस प्रकार दान की महिमा को देकर सोम के हृदय में शोम उत्पन्न हो जाता है और वह दान से कहता है—

दान विद्याद्वयो से संसार। धूलि जयो लोकोँ करतार।

विद्यमान जो देखत मोहि : कहा करी जय पुनत तोहि ॥*

फिर तो कथा का शोम शौर दान में कहा-सुनी हो जाती है और दोनों ही एक-दूसरे पर व्याध्य करते हुए प्रतिपक्षी की झूलता पीर धरती। अहस्ता दिखलाने में सब करते हैं। शोम कहता है कि यहाँ ही सर्वोपरि एवं सर्वज्ञ है, यहाँ ही से सम्मान है

ते तुम कहतु मायु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बड़ि नछिटाऊँ ॥

देव पितर सब तुमहि पुमाई। राखतु बनकनयन जो भाई ॥

बाहु सुखेन बनहि बसि जाऊँ। करि दयापवन परिचय जाऊँ ॥

—रा० ब० भा०, जयोत्थापनको २७ वें पाद की चौकली ३० १२२।

१. श्री रे. ब. भा० २, १५२।

२. श्री. भा० १६, १५२।

घन ही से घमें है धीर मन होने पर ही बान दिया जा सकता है। भूत यह सब प्रकार से रखनीय है। प्रतिदिन बान देने से तो जीवन ही मष्ट हो जाता है (बी० दे० प० १० ११)। बान उत्तर में कहता है कि 'बान देने से कौन मरा है और कौन सा सोमी धरर घमर हो गया है? बरन् घन के म देने से हंसी होती है और द्वारा भयहूत हो जाने पर संताप होता है और यदि कहीं भूमि में छुपाकर रख दिया जाये तो मरनेपरान्त राजा के अधिकार में बना जाता है (बी० दे० प० १० ११)। बान को इससे से ही संतोष नहीं होता। वह तो फटकारते हुए यहाँ तक कह जाता है कि सत्तापति राजा और टोकरमल का भी सन्नाह घन ही के कारण हुआ। सोम भी यह न सका और कड़ी डाँट बटाता है (बी० दे० प० १० ११ १२)। जब विष्णुवाहिनी देवी सोम और बान के बिबाह को सुनती है तो वे उन दोनों को उस नगर में जाने का आदेश देती है जिसमें राम का बंसज वीरसिंहदेव रहता है। इतना सुनते ही सोम देवी से रामसाह और वीरसिंह दोनों माहर्षों के विरोध की बात पूछता है। इस पर देवी दोनों को सावधान होकर विरोध की बात सुनने के लिए कहती है। देवी के उद्दिष्टार विरोध की बात कहने पर बान जाने की कथा जानने के लिए उत्सुक हो उठता है और सन्निध निवेदन करता है। देवी सारा वृत्तान्त कह सुनाती है कि किस प्रकार वीरसिंह राजा रामसाह और रामसिंह दोनों की एकजिह संज्ञा के साथ चट्टे कर देता है और राजसिंह को परास्त हो गोपाक्षल भागकर अपने प्राण बचाने पड़ते हैं। वीरसिंह की यह अव-गाथा जब सोम सुनता है तो उसकी भी विज्ञाता जगती है और भागे का सब वृत्तान्त पूछता है। देवी उपर्युक्त वृत्त सुना देती है और यह भी बता देती है कि राजा रामसाह के जीवित रहते किस प्रकार दोष प्रवृत्तजन का बच कर साह सतीम वीरसिंह को समस्त बुन्देलखण्ड का राज्य दे देता है।^१ बान की उत्सुकता और भागे जानने की होती है। देवी सारा वृत्तान्त सुना देती है कि किस प्रकार दोष प्रवृत्तजन के बध से दुःखित होकर बादशाह सरकार वीरसिंह पर घट्ट हो जाता है और उसको पकड़ने के लिए वीर सामर्थों को भेजता है। वीरसिंह जब उनके घेरे से साफ बच निकसता है तो निपुर तो सीम कर "कछीया" होता हुआ भागते बना जाता है और बादशाह सरकार कोष में घाकर रामराधान (विजवाह) को बुला भेजते हैं। इन्द्रजीत भी दरबार में पहुँच जाता है। कथा का रोचकता और भी बढ़ती है। निदान बान देवी से साह और साहजारी की वार्ता के विषय में पूछता है। देवी बादशाह सरकार और साहजारी सतीम के पारस्परिक विरोध को दिखाते हुए यह बताती है कि किस प्रकार सरकार अपनी कूटनीति और छत से इन्द्रजीतसिंह को बुन्देलखण्ड के राज्य का सोम दिखाकर बुन्देलों को भुषलता आहूता है। साथ ही साह की वेता-नीति का बयन करती है और वीरसिंह के बल-विक्रम का भी व्योरा देती है। बान फिर प्रारंभ करता है—

काम-मरणा तरो मृग, स्वप्न और मृग-वेद ।
 भूडो सिलरो नाउ है, माया कर्म अलेख ॥
 ताति तुम कम छाँडि के, हीडु चहु सो लीन ।
 बहु कहि श्रुतध्यानि लख, मय मनमंत शरीन ॥

(दि० गी०, प्र० १३, अ० २४-२५)

केदार ने 'कोय' की भी बड़ी मनोहर व्यंजना की है। जब रानी 'मिथ्या' दृष्टि 'महामोह' को 'विवेक' के साथ युद्ध में करने का परावर्ष बेठी है तो 'महामोह' समझकर बोले उठता है—

लोक विमोक्त में काम विराग में पठ में प्राप्त बात बताई ।
 एक विवेक कहा कुरुरा मूल काम मुरनि के बर्ण पटाई ॥
 हों अपने विविचार विचार अचार विचार अपार बड़ाई ।
 औरत धुरि मिल कहि केदार कम के आननि धुरि अमाई ॥

(दि० वि० प्र ६ अ० १७)

'महामोह' तथा 'विवेक' के दोनों में हुए बनासाम युद्ध के दृश्य को देखकर किसी हृदय में 'अम' का संचार नहीं होता ।

भीम भक्ति विमोक्षि रचभूति भूति प्राप्त ।
 मोल की ललिता कुरुरा अनन्त रूप सुपन्न ॥
 यत्र तत्र मुखा नरे पठ बीडु देहनि मृग ।
 दृष्टि दृष्टि नरे मनो बहुबात मुक्त मनूष ॥
 पुन मुक्त शुभ स्वर्गन धोनिव अति दूर ।
 ऐति ऐति अने गिरीधनि येति छोलित दूर ॥
 पाठ तुम सुख कल्पव चावधर विनास ।
 बक के रच बक वीरत युद्ध युद्ध मराल ॥

(दि० गी०, प्र० १३, अ० २३)

'विवेक' के योद्धाओं का 'महामोह' तथा उसके वीरों पर जो प्रार्थक छा जाता है उसका वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

महामोह लख भुक्ति जने ललि उत्तर्ष विवेक ।
 महाराज भट जगि अने, कहा अनेक व एक ॥
 सुपुन शम्भु विरा भयी भूतल हृष्यो अकास ।
 ईश अनेकनि आनिवी, भयी विवेक विनास ॥
 बहुरोष लख आनने, बंध हृष्यो करि कोह ।
 जाइ भिता के देह में, नागि अश्यो महामोह ॥

(दि० गी०, प्र १२, अ० १३ १७)

रूप में पुनर्प्राप्तिक के विनाश का कारण समाचार मिलने पर 'अम' का रूप शोकविह्वल हो नुकार उठता है—

हा काम हा लग्य श्रीव विरीव हा ब्रह्मबोव नृपबोव कृतम्य सोम ।
मोको परी विपति को न धड़ाह लोह कासों कहीं बचन कौन बचाइ देइ ॥

(नि. गी० प्र० १३, लं० ४)

‘विक्रान्तगीता’ में ‘रति’ की व्यंजना के लिए कोई अवसर नहीं आता तो श्री इसकी एक श्रमक उस समय विलसाई देती है जब पन्त पुर में बसवती मुबतिमां धुक्रदेव को अनेक प्रकार से रिझाने तथा मोहित करने का प्रयास करती हुई दिखाई देती है ।

सुम्बरि माइ सुगंभनि लीने योवन ओर स्वल्प नबीने ।
मन्जन से तिन्ह ग्लान कराए, घग घनेक सुपंय बड़ाए ॥
मोन्नन ली बहु भांति बिबाए, हर्षन पाग कबाय बिबाए ।
बदल नबीन सबे पहिराए, सुम्बर सायु स्वल्प सुहाए ॥
बाधि माइ बचाइ बीगनि हाव भाव बताव ।
मबहास बिलास लौं परिरम्भनादि प्रभाव ।
कै बकी सब भांति भांति रहस्य लीनि बगाइ ॥

(नि० गी०, प्र० १४, लं० १२ १४)

प्रकृति-वर्णन ‘विक्रान्तगीता’ में चरच् के सरस एवं समीप बचन को देखकर बरबस यह मानना पड़ता है कि केसव में प्रकृति के सुरम्य दृश्यों की परबने की पूर्ण समता थी । यही उनकी कल्पना में जनका खूब साध दिया है । सूक्ष्म समय की है । कवि ने लिखा है—

बने भरदेव देव केसव परमहंस राबे द्विवराज बहु बावन प्रबल है ।
घबनि प्रकाशई प्रकाशमान केसोराइ विधि विधि देस देस हचइतु सकल है ॥
पितर प्रपास करे डूवल सकल हरे मन जब काह मबनवल समल है ।
ठोर ठोर बरखत कवि धारमीर और अरह प्रकास किबों गगा लु को बल है ॥
अहाँ अहाँ दुर्गापाठ पठत प्रबील द्विज बाल बाल धूम धर धतिन प्रकास लो ।
रात्र रात्र तिजासन संजुत बंबर ध्रुव बाजत निजान गज पात्रत हुमस लो ॥

ठोर ठोर ब्यालामुखी बीसे बोपमानिका ली घोभित भृंगार हार कुसुम मुवाली ।
केसोदास घाठपास भतत परमाईस देवी को सबन कियो अरह प्रकास लो ॥

(नि० गी प्र १० लं० १४ १५)

वस्तु-वर्णन : केसव ने वस्तु-वर्णन में भी अपनी नृपति का ही परिचय दिया है । उनका वस्तु-वर्णन ठिकाने का वस्तु-वर्णन है । कवि की दृष्टि में हिस्ती रम्मपुरो है । इसका कठना सज्जा बिज पीचा गया है ।

कान कुनुहस में बिलते निजबारवधू जन मान हरे ।
प्रात मबहाइ बगाइ बै डीकनि बग्गवल धम्बर अंगवरे ॥
एसे लपोज्य ऐसे बजोजोप दसे पड़ो धुनि छाव घरे ।
ऐसी योय जयो एसे यत्र भयो बहु लोगनि को उपदेस करे ॥

(नि० गी प्र ३ लं ३)

केसव के द्वारा संकित पाण्डवपुरी (मथुरा) का विषय भी स्वाभाविक है—

काम कुमार से नन्दकुमार की केति बसी जहाँ गिराय गई है ।

बानकी पावनता तन जागत पाविनिहूँ कहूँ मुक्ति गई है ।

पुष्प शरासन हा भरही भरही रति कीरति कीति गई है ।

पुष्प शरासन भी मथुराभव भाव भवा पुल मोर गई है ॥

(भि० गी०, प्र० ४ श्ल० ४०)

कदाच ने घनेक डीनों छरिछायों बर्षों तथा सुसज्जों का वर्णन भी यथावत किया है । सम्बद्धों का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है

आयी सम्बद्धों में महामोह रण यह ।

योधन लक्ष प्रवाल तहूँ देख्यो खर सनुह ॥

है नवकण्ठ बिराजत जाके, धानहुँ सुबर बपक ताके ।

एक इलायत कण्ठ कहारै मन्दर है अतिछोमहि पाव ॥

ताके चलो छरित बहु मोबा, पाव कहारति है प्रकलोबा ।

चारि तहूँ सुम बाव बिराजै गिराय गए फल फूलनि घाव ॥

बिबरण अतिबाव तहूँ बध्माजक इहि नाम ।

और उचैतोमत्र पुनि नमन सब सुखमान ॥

(भि० गी०, प्र० ४ श्ल० २८-३१)

विशेष की नदरी बाराबली (जहाँ विष्णुपावन तथा विस्वनाथ रहते हैं) का वर्णन भी बहुत ही यथार्थ है । देखिये—

हेसियो शिव की पुरी शिवक्य ही सुखवानि ।

शिव ने न प्रमिष मानन जाइ भेष बसानि ॥

गुहात लक्ष शमल शिव तरबिछोपुत छोर ।

एक बुजत हैबता एक प्यास धारत छोर ॥

एक सन्निहत धंढली जहूँ कपत हैद बिचार ।

एक नाम रठे पड़े भुति पुत्र धारतछार ॥

एक बन्ध पदे कर्महनु एक बंदिता और ।

एक संयम नियमाधिक एक छावि एमोर ॥

एक हैं अनुरक्त कर्मनि एक गिराय बिराजत ।

विष्णुपावन कोट पावन के कहावत भवत ॥

(भि० गी०, प्र० १२, श्ल० १)

मिथ्यादृष्टि के राखरी ठाट-बाट का विषय भी बड़ा स्वाभाविक हुआ है ।

पुराणा जहाँ सुधिहका हैह चारै, जहाँ और बोज लने और चारै ।

जहाँ धारती पाव विन्ता विनाय सुबानी चरे नाम निम्न फवारै ॥

विवाहा सुधा सुदुख बोना बजावै, धारती धारती दुपों गीत यावै ।

तिये धन संका धारवानि रावै नय नय भाग्य अर्तदुष्ट नावै ॥

(भि० गी०, प्र० २, श्ल० १०-११)

‘पेन’ की महिमा का बड़ा ही स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

पेटनि पेटनि हूँ मदकपो बहु जेटनि की पदवीं जनक्यों जू।

पेट ते पेट नियो निकस्यो फिर के जुनि पेदही सों घटणयो जू ॥

पेट को जेरो सन थग काहू के पेटन पेट समात तबयो जू।

पेटके पंचन पावहु केग्रह देदहि पोचत पेट पययो जू ॥

(वि० गी०, प्र० ३, छं० २५)

कवि के मुह-स्मय के वर्णन को पढ़कर तो मुह-स्मय का वास्तविक दृश्य ही भावों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है—

हम हीत गति गर्वध घोष रबीनि के तेहि काल।

बहु भेष बल मूर्खत तुम बसी लड़ी करनाल ॥

बहु डोल बुझि नोल राजत बिस्व बहि प्रकाश।

तह धूरि धूरि उठी बछों बिधि पुरियो भु भकाश ॥

(वि० गी०, प्र० १२, छं० २)

स्वल्प विमल वंश स्वल्प-विषय में भी पूर्यत सकर ही रहे हैं। उन्होंने पाषण्डी मठानों तथा साधुओं का जो रूप^१ चित्रित किया है वह प्रायः भी यथ-तथ देखने में आता है। केशव के कापालिक तथा मंशासी के चित्र भी बड़े सजीव एवं स्वाभाविक बन पड़े हैं। ऐकिए, कापालिक को कितने भीषण एवं बीभत्स रूप में चित्रित किया गया—

लिये भुकपान नुवेह कराल करै नरमुदति की उरमात।

पिये नरमोन मिम्यो मधिरा सो कपालि कू देखिये भीम प्रमा सों।

तथा^२ सब मिथित मोस होमत धामि में बहु भीति सों।

टाढ़ क्यू कपान कोरित को पियो दिन राति सों ॥

विप्र बालक बाल लो बलि देत हों न हिए लजों।

देवसिद्ध प्रसिद्ध कण्ठनि सों रमों भय को मजों ॥

(वि० गी० प्र० ८, छं० १७ २०)

सिद्धमण्डी में बैठे हुए संन्यासी का चित्र भी बड़ा स्वाभाविक एवं यथार्थ है।

कापीन मंथित दण्ड सों नख कोप शीरध बार।

मालाज घोषित हस्तपुस्तक करत वस्तुविचार ॥

संतार को बहुधा बिरोध कुचित घोषक जानि।

टाढ़ी मई तह शान्ति सो करला सको सुख मानि ॥

(वि० प्र० ८ छं० २२)

पार्श्व का विमल ‘विज्ञानमीता’ में मानव चित्त-वृत्तियों को पार्श्व का स्वरूप दिया गया है। मानव चित्त-वृत्तियों का विषय करते समय भी केशव का ध्यान उनके स्वरूप की विशेषता की ओर रहा है। ‘ब्रह्म के दिम्बी नयरी में जाने

पर जब धिम्प उसे अपने छुब के घासन से दूर बँटने तथा उसे स्वर्ग न करने को कहता है तो 'बम्प' अपनी बीग हौकने लगता है ।^१ इसी प्रकार केसव ने 'महुंकार' के स्वभाव को भी समझा दिया है ।^२

साम ही 'महुंमोह' के स्वभाव का भी वर्णन कर बीबिए । उसको अपने सङ्ग यकों का बड़ा बमबह है । उन्हीं के बस-बूते पर उसका यहाँ तक कबज है कि—

सोक बिलोक में जान बिराय में पल में घालत बास बताई ।
एक बिदेक कहा बपुरा गुल जान पुरनि के गर्व घटाई ॥

हों अपने बिबिचार बिचार जगार बिचार घपार बहलाई ।
कीरज बूरि मिले कहि केसव जर्व क जायनि बूरि जगलाई ॥^३

'बिजय' का मूलमंत्र है—काम कोब लोम प्रवृत्ति घादि का नाश कर अपने पिता 'बीब' को बीबनमुक्त करना ।^४

जपमुक्त बिबेचन से स्पष्ट है कि केसव का यह ग्रन्थ भी प्रबन्ध-काम्य को कसौटी पर करा उतरा है । कला के बीब-बीब में जो वर्णन, व्यक्तियों के चरित्र मानव बिल-वृत्तियों के बिबज घबजा भावों के प्रदर्शन घादि का समावेश हुआ है उससे बम्प बिजय के प्रतिपादन में रोचकता एवं बोधवन्म्यता बढ़ गई है ।

(ब) जहाँगीर-बस-बगिका : जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह ग्रन्थ सम्राट् जहाँगीर के यश की कनिष्ठा है । केसव ने इस ग्रन्थ में घनेक घुलतानों बावसाहों एवं घाहों का वर्णन किया है और बताया है कि जहाँगीर के सामने उनका प्रयास कुछ भी न था । इसकी बीबी बीरसिंहदेव-बगि' वाली ही है । यहाँ 'बल' और 'लोम' का स्थान 'उदय' और 'माम्य' ने ले लिया है और दोनों के बिबार का भार बीरसिंह के स्थान पर बावसाह जहाँगीर पर आ जाता है । ग्रन्थ 'बीरसिंहदेव बगि' की अपेक्षा छोटा घबम्प है ।

१ एक घर्मे हम सत्यगुरी हि यए जबलोकन पाप प्रमाघन ।
बहा समा मंहराइ उठि कहि केसव केवल नाप बिनाघन ॥
हैब सहाइक लोक बिनाइक बँठि को हम स्वाइ के घासन ।
पावन बावन के पय को बस मोहि बताइ दबो कमलासन ॥
(मि. शी. प्र. १ ब. १०)

२ काम न काम की सुखरताई पुरंदर की प्रभुता कहि को है ।
बडि के यंभु नगैस में नाहिने को कुरबेत की बडि हि दोहै ॥
पौतक के तन से जु रछो कम बात में पातक सों बह सोहै ।
केतिक घुडि है नय में केसव सिद्धि महेश की मोहित मोहै ॥
(मि. शी. प्र. १ ब. १५)

३ मि. शी. प्र. ६, ब. १७ ।

४ काम के काम घकाम करो घब देवि घकामनि घामि घरो बू ।
मोह के मोह को लोम के लोम को कोब के कोब को नाप करो बू ॥
बीबी प्रवृत्ति निवृत्ति प्रवृत्ति के पंच निवृत्ति के पाँच घरो बू ॥
घपने बाप को घागनी हाप के बीबहि बीबनमुक्त करो बू ॥
(मि. शी. प्र. २, ब. १०)

कथावस्तु - इस प्रबन्ध की कथा 'उदय घोर 'माय्य' के सवाद के रूप में प्रकट होती है। एक बार एसब साहू मवाज (जी) केदार से प्रलन करते हैं—

कौनहु पुरब पुष्य तौ उदय भाग जल पाय।
एतहि साहि निवाज कौ मिस्यो केसोराय ॥
एक काल तिहि बूझियो पाइ सबन को मर्म।
कहिनी केसोराय नू उहिम बड़ो लि कर्म ॥

(अ अ० पं० छं० ६१)

इसका समाधान केदार करते हैं—

रन करे रन सूर सुनि हारक विषम निवाहु।
मयी नू उहिम कर्म प्रति उदय भाग सौ बाहु ॥
एक काल बँडे हुते गंघाबू के तीर।
उदय भाग होऊ बनै तुम्ह र वरे सरीर ॥
तिनिहि देखि बूझन पयो तहाँ एक द्विज बीन।
हौं करिब तें क्यों छुडौं कहि नौ मज प्रवीन ॥

(अ अ० पं० छं० १११२)

फिर तो 'उदय' घोर 'माय्य' दोनों में घातबार्थ छिड़ जाता है। जब निवार बढ़ता ही जाता है तो उन्हें मधुप पुरी में महादेव जी की सेवा में जाने का आदेश होता है। आदेश सुनते ही वे महादेव की सेवा में उपस्थित होते हैं घोर उनसे वही प्रलन करते हैं—

बाहनि परि भुतस के माय्य उदय उदाव।
पुछे उहिम कम तें कबनू बड़ो सताव ॥

(अ० अ० पं० छं० २६)

महादेव जहाँगीर का प्रमुख एवं म्याय दिखाकर उनकी जहाँगीर के दरबार आगरे में भेजते हैं। इस प्रकार दोनों आगरे जाते हैं। यहाँ का समारोह घोर उन्मास देखते ही बनता है। रा कपामी देखते हुए दोनों जब दरबार में पहुँचते हैं तो वहाँ घोर ही दुःख दृष्टिगोचर होता है। जहाँगीर के समासद तथा सामन्त दरबार में निरिधत कम से कम रहते हैं। बादशाह के घात ही सब की धिक्कलता दूर हो जाती है। बादशाह सिंहासन पर बँठ जाता है। बन्धीजन बिर-मान करते हैं। अल्प देवदर मिश्रेश में वे दोनों भी पहुँच गये हैं। अतिहार सूचना देता है। रामदास को साथ में जाने के लिए भजा जाता है। वे आकर दूर ही से देखते हैं कि जहाँगीर के बीच पर मुक्तावलि स मुक्तजित श्वेत छत्र है। चारों घोर चंबर इमा वा रहा है घोर उसके हाथ में तृपाण है। ऐसे बादशाह द्वारा घोर सरकार के लिए जाने पर वे दोनों उसको घादीपति दिते हैं (छं० १३ १३१)। इसी बीच एक ब्राह्मण भाट भी वहाँ पहुँच जाता है घोर बादशाह की प्रशंसा में बड़े पाव से की बलिष्ठ मुताज़ा है। बादशाह प्रसन्न होकर रामदास की घोर मुल्करा कर देखता है। रामदास बादशाह का कथ पाकर बहता है कि जो कुछ मीमना

कहिं उद्यम कर्म में कीज बड़ो सखार ।
 कहिं उद्यम कर्म में कीज बड़ो सखार ॥

अपने बिल बिचारि के हति लगेहु अपार ॥
(अ० अ०)

(अ० अ० नं०, सं० १६६)

बादशाह समासदों तथा यक्षीनस्य राजा-महाराजाधों का मठ बाह्या है। मानसिंह बादशाह को ही उपमुक्त एवं समर्थ बताया है। बादशाह मन्त्र में निर्णय देता है कि उसम घोर कम में कोई छोटा-बड़ा नहीं है दोनों ही का स्थान समान (छं० १७-१८०) है। बादशाह के इस निर्णय पर सारी सत्ता किस पड़ती है। पुष्पी घोर प्राकाश में दुबुधु बक उठती है घोर देवता बर-बयकार की ध्वनि के साथ पुष्पी की बर्षा करने समये है (छं० १८१-१८२)। 'माय्य' घोर 'उदय' दोनों एकसाहि की घराहते हैं घोर सबसे माझीबौर देवे को कहते हैं। काजी, रीक जमराव बाह्यन कवि, मन्त्री, केशवराय (स्वयं कवि) उदय माय्य धावि सही बादशाह की प्रशंसा में छन्द पढ़ते हैं घोर उसे माझीपवि देते हैं। 'उदय' घोर 'माय्य' प्रसन्न होकर जहाँगीर से बर मानने को कहते हैं। वह माँगता है यह कि — बर बीजे धरे राज में बोलिबै सह परिवार। (अ० अ० पं० पं० १८७) दोनों को कहा है।

बदली गई। वह भीतर से बहुत दुःखी थी।
(३०)

(अ. अ. अ. अ. १२७)

केराब की कबिता से प्रचलन होकर बहुरंगीर
केराब बड़े ही मार्मिक शब्दों में उत्तर देते हैं—
...कि यदि तु मानिसो पिये

मच्छि हरि पू मांजिबो दिओ हवैं उपजाइ ।
 मच्छि हरि पू मांजिबो दिओ हवैं उपजाइ ॥

यद्यपि हरि पू मांनिबो यिा हन
ही माली जयवीर्य वै कुनो साहि नुबराह ॥
(म :

॥
(म. सं. सं. सं. १११)

यही क्या समाप्त हो जाती है।

यही क्या समाप्त हो जाती है।
 वस्तु-वर्णन यों तो राजधानी की कटा की चाँकी 'बीरतहरेद-विरत'
 में भी मिल जाती है किन्तु वहाँ यह इतनी झुंकर नहीं दिखाई दे सकती है जितनी
 कि इस ग्रन्थ में। राजदरबार में सामन्तों के निरिषद कम से कम होने के वर्णन को
 पढ़कर सम्राट् बहादुर के दरबार का वास्तविक दृश्य ही चाँकों के सामने उपरिषद
 हो जाता है। राजधानी की सोचा इतनी अपूर्ण है कि देखा भी उसे निहार कर
 कट हो जाती है—

हो जाता है। रामायणी की पोशाक
कठ हो जाती है—
-प्रदत्त समाज अक्षरायणों से बहूँ जाग साहिबी को धागरी बिलोचनों धागि धागरी ।
धागरी बिलोचनों धागि धागि धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी ।
बिलोचनों धागि धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी ।
धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी धागरी ।
(१० २० ३०, ४० ५०)

(म. म. नं०, सं० ४०)

राजदरबार का राय-रेण भी देखते ही बनता है। वहीं बुद्धिमान बज रही हैं तो वहीं मुन्दरियाँ भीमा बजा रही हैं वहीं मृत्यु हो रहा है ता वहीं किन्नरियाँ मधुर मान कर रही हैं।

वहाँ तोलना बुझाओ बीहू बाबै। वहाँ भीम मन्दार कर्जल साज।
वहाँ मुन्दरी बेनु बीजा बजाबै। वहाँ किन्नरी किन्नरी स सु गाबै ॥
वहाँ मृत्युकारी मची सोम साबै। वहाँ भांड बोलै वहाँ मरल गाबै।
वहाँ माट भाठयो करे मान पबै। वहाँ बहिनो तोलियो भील गाबै ॥

(२० पं० ४० पं० ४० ४०-४१)

अब हमारे विचार में तो विश्व का यह व्यवसाय मनु होते हुए भी जिस उद्देश्य को लेकर बना है उसमें कुछ संकट छुपा है।

(४) रत्नसावनी यह ग्रन्थ मधुकरघाह के पुत्र रत्नसेन की बीरता एवं साहस की प्रशंसा में लिखा गया है जो अकबर की विद्याल सेना से युद्ध करता हुआ स्वयं विचार गया था। इस ग्रन्थ में कैलाश की श्रुष्टि बीररत्न के परिपाक पर अधिक रही है।

कथावस्तु इस ग्रन्थ का प्रारम्भ यमनाचरण से होता है। इसके पश्चात् उक्त युद्ध के कारण का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है। एक बार मधुकरघाह अकबर के दरबार में बहुत कोरा बामा पहनकर गए थे। अकबर ने उनसे इनका कारण पूछा तो मधुकरघाह ने उत्तर दिया कि मेरा देश कंटीनी भूमि में है। इन पर्वतों को मुनकर अकबर बल-बल गया और कहने लगा कि अकाला मैं तुम्हारा घर और देग देव भूया^१। मधुकरघाह को ये शब्द तीर के समान मने और उन्होंने तुरन्त ही रत्नसिंह को पत्र में मैं देकों तरो बचन धारि अकबर के पक्षों का ठीक-ठीक प्रामय समझकर लिख गया और पश्चिमव्य बाड़ी सेना के साथ मोहा लेने के लिए सन्नद्ध हो जाने का भी वरामर्श दिया^२। रत्नसेन अकबर के घर देख सने का ठीक-ठीक अभिप्राय जानकर बस-बल के साथ बाड़ी सेना से युद्ध करने के

- १ देश अकबर घाह उच्च बामा तिन केरा।
बोले बचन बिचारि कही कारण यहि केरा ॥
- तब कहत भयव बुद्धिमति मय मुखे कंटकि अचन।
करि कोप मोन बोले बचन मैं देली तरो बचन ॥

—रत्नसावनी (कैलाश चक्रवर्त्य) पृ. २, पं. ५।

- २ मुनत बचन मधुमाह घाह के तीर समानह।
निवित्र पत्रतकस हाथ दिहि बचन प्रमानह ॥
बुरह मुह करि कूट जोरि सेना एक डीरिय।
तोर तोर तन तोर तोर करिये बहुत जोरिय ॥
मुह मुनन मार हैं कूबर बहु रत्नसेन पोना लहिय।
कहू दिवस एवं यह मोड़को विजयीपति देनन बहिय ॥

—रत्नसावनी (कैलाश चक्रवर्त्य), पृ. २, पं. ६।

लिए कटिबद्ध हो गया और अपने मोहार्थों तथा सामर्थ्यों से भी डटकर सामना करने के लिए कहने लगा। युद्ध के ठन जाने पर जब रत्नसेन के पादा बोल देने के कारण पृथ्वी और आकाश में जलबली मच गई तो परमेश्वर विप्र-रूप में प्रकट होकर उसे जीवन का मुख्य सम्झने लगे—

भूती भूमि तो बेलि बेलि लखि भूमि न हारे ।
भूती बेलि तो फूल फूल लखि बेलि न जारें ॥
भूती फूल तो मुकुट मुकुट लखि फूल न तोरें ।
जो फूल तो परिपक्व पक्व लखि कजहि न कोरें ॥
जो फल पक्व तो काय सद्यः, परिपक्वोंहु बग भंडिये ।
प्राण भूती पति बहुर रहै बडि लखि प्राण न भंडिये ॥

इस पर रत्नसेन ने उत्तर दिया—

गई भूमि पुनि फिरहि बेलि पुनि जयें जरे लें ।
फूल फूले लें लपहि फूल फूलत जरे लें ॥
केसव विद्या निकट निकट बिसरे लें धारें ।
जगुरि होय बग जयें नई संघति पुनि पारें ॥
फिरि होइ सबबाज सुनील मति जगत धीर यह पाइये ।
प्रास गय फिरि फिरि मिलीहु बति न ययें पति पाइये ॥

विप्र ने फिर सम्झाया कि—

लोकपाल विष्णुस बित भुवपाल भूमि भुनि ।
बानध देव धरेव सिद्ध संवर्ध सर्व भुनि ॥
किष्कर नर बज्र पथिष्य जप्य रत्नस पमग नय ।
हिन्दुव सुख धनिक धीरे जल बलहु जीव जल ॥
सुरपुर नरपुर नायपुर सब भुनि केसव सविजयहु ।
भुनि महाराज मयुगाह-भुज को न कुछ बुरि भजिजयहु ॥

(रत्नदासजी, सं० १०)

कुंवर अपने निश्चय पर घटल रहा और कहने लगा कि महापज मज्जान ब्रह्मराज यदि उसके पूर्वजों ने तो प्रतिज्ञा की रखा करने के निमित्त अपने प्राण तक भी नंदा दिए थे। विप्र फिर भी कुंवर से अपने बचनों का पालन करने के लिए आग्रह करता ही रहा—

त्रिज माने लो देव विप्र को बचन न भंडिय ।
त्रिज बोलें लो करिय विप्र को धान न भंडिय ॥
परमेश्वर धर विप्र एक लय जानि मुनित्रिजय ।
विप्र बर नहि करिय विप्र कहूं सर्वनु विजिजय ॥

१ रत्नदासजी (विद्या संवत्स) १ २ सं १० ।
२. वही सं १२ ।

सुनि रतनसेन मनुष्याहसुख विप्र बीन किन लिज्जियहु ।
कहि कैलाश तन मन बचन करि विप्र मह्य सुह लिज्जियहु ॥

(रतनबानी, अं० १६)

वर ने एक न सुनी धीर कहने लगा कि—

पतिहि गए मति जाय गए मति मान गए बिय ।
मान गए गुन बरे बरे गुन लान बरे बिय ।
लान बरे, जस भई भई जस वरम जाइ सन ।
वरम गए सब करम करम गए पाप बरि तब ।
पान बरि नरकन परि नरकन कैलाश की सही ।
यह जानि देखु सरबसु तुम्हीं सुपीठ गए पति ना रह ॥

(रतनबानी, अं० २०)

कुंवर को इस प्रकार पति-मति में बड़ा जानकर विप्र अपने परमेश्वर रूप में ध्या गया । रतनसेन के साक्षात् धीर शौर्य से प्रसन्न होकर उससे मुहूर्ताया वर माँगने को कहा । रतनसेन मानता यह है कि वह परिवार-सहित मधुकरसाह की रक्षा ही करता रहे ।^१ वर प्राप्त करके कुमार अपने योद्धाओं से कहने लगा कि मर मिटना है तो मेरे साथ बन्धो धीर यदि भागना है तो घसी भाग जाओ । पर मे कब पीछे हटने वाले थे कहने लगे कि मे अपनी भूमि की रक्षा के लिए युद्धसेन को ही अपना वर बना लेंगे यद्यपि आजीवन युद्ध करते रहेंगे । धुरधीर योद्धाओं के वचन सुनकर कुंवर फूला न समझा धीर रण में प्रथम धनुसेना का सामना करने के लिए तैयार हो गया । रणक्षेत्र में वीरों के साथ रतनसेन की राजपूती छान को देखकर विष्णु, बृहस्पति महादेव शुक्रशर्म इन्द्र ब्रह्मा धीर सूर्य धादि देवताओं ने मिलकर रतनसेन की प्रशंसा में तुरन्त कुछ वरिष्ठा की धीर प्रत्येक ने एक-एक सभा दी । जब समाचार युद्ध छन गया तो आकाशवाणी हुई कि मैं तुम्हारे साथ हूँ । कुल मर्यादा धीर प्रतिष्ठा की रक्षा करो । कोई भी स्नेह्य बचकर न जाने पाये । समस्त सेना को टुकड़े-टुकड़े कर जाओ । निश्चय रतनसेन अपने वस-वस के साथ अनन्तर की सेना पर दूट पड़ा धीर युद्ध करते हुए भीरुपति को प्राप्त हुआ । इस प्रकार उसने सिद्ध कर दिया कि मान मचाकर जीना मरने से भी बुरा है । कुंवर के निधन के साथ ही कैलाश का यह प्रबन्ध भी पूर्ण हुआ ।

भाष्यजना इस ग्रन्थ में बीरोचित 'जत्साह' की श्रवणा सब से अधिक मार्मिक हुई है । बावसाह सफर की सेना से युद्ध करने के लिए प्रयास करते हुए योद्धाओं तथा सामन्तों के प्रति रतनसेन की बीरोक्ति है

रतनसेन कह बात सूर सार्वत सुनिज्जिय ।

करहु पैज बनचारि मारि सार्वतनि लिज्जिय ॥

१ देवहार सुह सब विपी धव जो हिय चितहि भरी ।

परिवार सहित मधुसाह की सु रोम रोम रक्षा करी ॥

वरिय स्वर्ग सप्यरिय हरहु रिनुवर्ग सर्व यव ।
 मुरि करि संवर धाव सुरमंडल मेवहु सब ॥
 मयुताहु-मय इमि उरवरइ अय अय पिउहि करहु ।
 कइहु सुखंत हविषा के नईहु बल यह भव बरहु ॥

(रत्नमाली, अं०, ६)

एक घोर स्वप्न पर रत्नसेन का 'उल्लाह' दर्शनीय है । किंतु सप्तकार के साथ वह अपने भोझाओं से कह रहा है—

लेकर बर, सब धीर सजा महत उन बुझिसव ।
 सुन साबी समरप्य बाहु कहं सय न बुझिसव ॥
 साम काज मरि साम मोइ मरि मरि पय निम्नहु ।
 बिकट कटक में इटक बटक बट भुवि यहं निम्नहु ॥
 वह अनूप मेरो बचन केवल बिल करि जुगहु सब ।
 मरहु ती मो सम्पाहु नम्नहु ती नहि बाध सब ॥

(रत्नमाली, अं० २५)

वस्तु-वर्त्मनः : केशव द्वारा प्रकृत सेना प्रयाग का वर्णन स्वाभाविक एवं यथार्थ रूप हुआ है—

सावि सावि सावि मजराज-रावि धारें दल बीनहि ।
 ता पीछे पति-पुत्र पुत्र नयदर रच बीनहि ॥
 ता पीछे असवार भूर कश्य सब मोहन ।
 अलस भई अकथीय बापि बलतर बर मोहन ॥
 सब कटक भये बल महु सब सुरत सब सेन दण्डंत दन ।
 अनु बिजु संघ मिलए कहक एकहि पवन मकीर बन ॥
 कोइ निबहो पग बोय कोइ पग तीन तीन वर ।
 कोइ निबहो पग चार चरयो कोइ पाँच पाँच कर ॥
 कोइ निबहो पग सय बली कोइ सात सात सह ।
 कोइ निबहो पग छाठ बली कोइ अग्य अंक सह ॥
 इसहु बाय बसहु बिलहु साबी समहि सब बिलयहु ।
 इक मयुकरसाह-नरेग-मुत सूर कटक घटकिमहु ॥

(रत्नमाली, अं० २६, २७)

स्वहृदय-वर्त्मनः : भगवान् राम के स्वरूप का विचित्र भी समीप एवं वास्तविक रूप पड़ा है । देखिए—

हाटक कटित किरीट शीघ्र स्वामत लहु लोह ।
 हाथ बई धनुबाण बैलि मगनय भव मोह ॥
 जामवंत हुमुवंत विनीचल भूषति-भूषण ।
 केशव कनि सुपीय संन अंपद धरि-भूषण ॥

संग सीता सेव प्रबोधनति यस्य प्रशय भय भयं प्रति ।

बह रतनसेन लंकट बिन्दु प्रकट भय रघुवशापति ॥

(रत्नबावनी, छं० २२)

संवाद विप्रकृष्ट परमेश्वर और कुंवर रतनसेन में जो वार्तालाप हुआ है वह प्रसंगानुक्रम है और उससे प्रबन्ध में रोचकता आ गई है। साथ ही कवि को रतनसेन के चरित्र की विशेषता के प्रदर्शन करने का अवसर भी मिल गया है।

इस प्रकार यह कहना आवश्यकपूर्ण न होगा कि 'रत्नबावनी' की कथा अंशमात्र है और वह कुंवर रतनसेन के शीर्ष प्रदर्शन के जिस उद्देश्य को लेकर बनी है उसमें पूर्ण सफल हुई है।

उपसंहार अंत में यदि केशव के प्रबन्ध-काव्यों पर सामूहिक रूप से विचार किया जाए तो यह मानना पड़ेगा कि केशव में प्रबन्ध-सीष्ठक पर्याप्त था। इसके लिए केवल 'रामचन्द्रिका' के कारण उन्हें साक्षित करना इष्टवर्मी होगी।

प्रबन्ध-सीष्ठक की दृष्टि से केशव के प्रबन्ध-काव्यों का क्रम

- (१) नीलसिंहेव चरित ।
- (२) विज्ञानगीता ।
- (३) रामचन्द्रिका ।
- (४) जहाँगीर-वस-चन्द्रिका ।
- (५) रत्नबावनी ।

(घा) अलंकार-योजना

भाव रस गुण आदि के उत्कर्ष के साधन 'अलंकार' कहलाते हैं। अलंकार काव्य के बाह्यत्व हैं और रस भाव आदि आत्मा। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर निष्प्रान है उसी प्रकार रस बिना काव्य। अलंकार, रस भाव आदि की अनुमति में सहायक हाकर काव्य के सौन्दर्य को बनाते हैं परन्तु उसका स्थान नहीं ले सकते हैं। केवल के विचार में जिस प्रकार कामिनी की घोभा अलंकारों के बिना नहीं होती उसी प्रकार काव्य भी अलंकारों के बिना रमणीय नहीं होता। परन्तु यह मत भ्रमात्मक है। धामूपण भी यदि सच्चे सौन्दर्य के सामर्थ्य का बिना ध्यान रखे पढ़ने जाते हैं तो सौन्दर्य की दृष्टि में सहायक होने के स्थान पर सौन्दर्योत्कर्ष में बाधक ही होते हैं और शरीर पर भारस्वरूप जान पड़ते हैं। धामूपण बिना धारण किए भी कामिनी का बाल निक सौन्दर्य तो रहता ही है। इसी प्रकार असमुक्त अलंकार-योजना काव्य की घोभा की दृष्टि करती है परन्तु अलंकार के लिए ही किया गया अलंकार प्रयोग काव्य में लिए भार हो जाता है। अलंकार-योजना के सम्भाव में भी काव्य का मानगत्र सौन्दर्य अधुना रहता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अलंकार काव्य के लिए

१ अदधि मुखाति धुगवाणी मुवरण सरण मुवृत्त ।

मुपन बिनु न विराजई बबिता बबिता मित ॥

आवश्यक नहीं हैं और उनके बिना भी सरस काव्य का निर्माण हो सकता है किन्तु धर्मकारों के होने से काव्य की सोचा और बढ़ जाती है।

केसव ने 'रसिकविद्या' में काव्य के लिए एक सर्वोपरि महत्त्व की भी तो माना है^१। परन्तु केसव स्वयं बहुत से स्वसों पर अपने इस सिद्धान्त का निर्वाह नहीं कर सके हैं। केसव के प्रबन्ध-ग्रन्थों में घनेक स्वस ऐसे हैं जहाँ कवि ने चमत्कार प्रदर्शन एवं उक्ति-बैबिध्य तथा दृढाङ्ग व्यपना के मोह में पड़कर काव्य के बहिर्ग को ही सजाया और सारा है एवं काव्य के अन्तरंग को उपेक्षित किया है।

जब हम केसव के प्रबन्ध-काव्यों की धर्मकार-योजना पर विचार करते हैं तो प्राप्त होता है कि कवि के कतिपय ग्रन्थों में तो कुछ प्रमुख धर्मकार ही प्रयुक्त हैं और कुछ में कवि का धर्मकार-बैबिध्य के प्रति विरोध मोह देखने में आता है। 'रामचरित्रिका' तथा 'बीरसिंहदेव चरित' प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत हैं तथा विज्ञानगीता 'रत्नबाधनी' और 'अर्जुनीर-वध-चरित्रिका' द्वितीय श्रेणी में आती हैं। यहाँ इन प्रबन्धों पर कम से विचार किया गया है।

रामचरित्रिका

'रामचरित्रिका' का प्रथम प्रमाणतया पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए हुआ या अथवा केसव ने इस ग्रन्थ की धर्मकार-योजना में भी अपना पाण्डित्य प्रदर्शन ही किया है किन्तु जब जब वे धर्मकारिक आवेग में नहीं रहे हैं तब-तब उन्होंने स्वाभाविक धर्मकारों की भी योजना की है। ऐसे स्वस कम अल्प हैं। धर्मकार बैबिध्य के प्रति जितना मोह इस ग्रन्थ में परिलक्षित होता है उसना कवि के किसी अन्य ग्रन्थ में देखने में नहीं आता। बहुत से स्वसों पर तो कवि ने अपना उत्प्रेषा और सन्देह प्रायः धर्मकारों की भङ्गी ही बाँध दी है। इस ग्रन्थ में अपना कथक उत्प्रेषा प्रवीण, व्यतिरेक अतिप्रयोजित सन्नेह अपहृति विभावना सहोक्ति स्वभावोक्ति श्लेष परिसंख्या विरोधाभास निर्वर्णना तथा मृदोत्तर आदि धर्मकारों का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है। इनमें भी सबसे अधिक प्रयोग 'उत्प्रेषा' का हुआ है। श्लेष परिसंख्या एवं विरोधाभास आदि धर्मकारों का प्रयोग विशेष रूप से पाठकों को चमत्कृत करने की दृष्टि से किया जाता है। भाव-व्यंजना में वे अपने सहायक नहीं होते हैं। केसव ने भी इसी भावना से प्रेरित होकर बहुत से स्वसों पर इन धर्मकारों को प्रयुक्त किया है। 'श्लेष' के सहारे जनकपुरी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

१ ज्यों किनु बीठ न घोबिये, सोबन मोन विद्यास ।

त्यों ही केसव सकल कवि बिग जायी न रमात ॥

ठाते दधि भुजि घोबि पधि कीर्न सरन कविध ।

केसव ध्याम भुवान को, गुणत होइ कथ निध ॥

तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन ।

जलजहार लोभित न बह प्रकट पयोधर दीन ॥

(रा० अ०, प्र ५ पृ १३)

इस दोहे में वनेप का प्रयोग बड़ा ही उपयुक्त बन पड़ा है । इसी प्रकार दशरथ राज्य के वर्णन के प्रसंग में भी 'दोष' का मुनिचतुर्थ प्रयोग हुआ है ।

बिबि के समान हैं विमानीकृत राजहल बिबिप बिबुध पुत मेह सो घबल हैं ।

बीपति बिबिपि अति छातो बीपि बीपिपु बूसरो रितीप सो सुबिगुण का बल है ॥

सागर जहाजर का बहुबाहिरी को पनि अन्धान प्रिय किचीं सूरज घमस है ।

सब बिबि समरथ राजे राजा बसरथ जगीरथ-पयपामी गया रैतो जल है ॥

(रा० अ०, प्र २, पृ १०)

परन्तु कुछ ऐसे स्थान भी दिखाई देते हैं जहाँ कवि 'वनेप' के छाप प्रस्तुत एक घमस्तुत में कोई समानता न होये हुए भी घमस्तुत के घुन प्रस्तुत में ईद निकालने की चेष्टा करता हुआ दिखाई पड़ता है । उदाहरणस्वरूप उनके बण्डकवन प्रसंग बादि घोर सागर के वणन प्रस्तुत किए जा सकते हैं । दण्डजनन का वणन करते हुए कवि लिखता है—

घोमत बण्डक की बलि घनी भातिन भातिन गुग्गर घनी ।

सिब बड़े गुप की जनु सते । बीकल भूरि भयो जह बस ॥

(रा० अ०, प्र ११ पृ १६)

सागर को एक नागरिक के रूप में चित्रित करत हुए वेचक का वचन है—

भूति विभूति पियूजु को गिप ईन तरीर कि पाप प्रियो है ।

हैं किचीं केजब बजवप को घर देव घरेवन के मन मोहै ॥

संत हिया के बसे हरि सतत सोन सगत कहैं कवि जोहै ।

अखन मोर तरम तरभित नागर कोड कि तागर सोहै ॥

(रा० अ०, प्र १६ पृ २१)

इसी प्रकार 'वनेप' के सहारे 'वर्षा' की कालिका के रूप में देगा है ।

मोहें सुरबाप बाब प्रमुनि पयोधर, भूजल जराय जोति तदिन रलाई है ।

भूरि करी सुत्र मुख सुतमा लसी की मन घमसा कमल दन बलित निकाने है ॥

केतोदात प्रबल करमुका घमन हर, भूजल सुहंसक-सख बसलाई है ।

अब बलित भाति मोहें नीलरंज जू की, कालिका कि वरदा हरवि हिय धाई है ।

(रा० अ०, प्र १३ पृ १६)

किर भी वनेपारंकार का प्रयोग भाषा पर कवि के अधिकार का परिपायक है । दो वर्षों वाले छन्द 'रामचन्द्रिका' में ही दिखाई देता है । 'वनिप्रिया' में कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनसे तीन-तीन बार बार घोर वीच-वीच तक घप निकलता है ।

विरोधाभास घमंकार केसव को विशेष प्रिय जान पड़ता है । रामा दशरथ की बाटिका घोर गोदावरी नदी के वणन एवं 'गिर' तथा 'पिडर' आदि देवनाग्री द्वारा राम की स्तुति के प्रसंग में इस घमंकार का प्रयोग बड़ा ही मुनिचतुर्थ हुआ है । गोदावरी का वनेप करते हुए कवि ने लिखा है—

विषमय यह घोषावरी जगुत के फल हैति ।

केशव जीवनहार को मुख प्रमोय हरि तति ॥

(रा० अ०, प्र० ११, पं० २९)

इसी प्रकार का सुश्रुतिपूज प्रमोय चित्रनी द्वारा राम की स्तुति के प्रसंग में हुआ है—

अमल भरित मुख शीतल मलिन करौ साधु कहै साधु परधार प्रिय भति हौ ।

एक मल पित पी बसत जय राम मध्य कोशोदास द्विपद पै बहुपद-भति हौ ॥

भूपस सफल मुत शीश बरे भूमिभार भूतल फिरेत भौ धभूत भुक्तपति हौ ।

रखौ बाह बाहुएनि राजाँसिह साब बिच रामबाहू राज करी धनुस गति हौ ॥

(रा० अ०, प्र० २०, पं० २०)

परिचर्या' सम्वन्ध के प्रति भी कवि की विशेष अभिरुचि प्रतीत होती है । सम्वन्धपुरी विश्वामित्र एवं मरदावा मुनि के आश्रम वैष्णव-स्तुति तथा राम-राम्य व्यवस्था आदि के वर्णन के प्रसंगों में 'परिचर्या' सम्वन्ध का वर्णन ही सफल प्रमोय हुआ है । विश्वामित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

विचारमान अहं देव अर्चमान मानिये

अधीनमान बुद्ध सुद्ध दीपमान आनिये ।

अद्वन्द्वमान शीत गर्व दण्डमान बेदरै,

अपहृयमान पाप पण्ड पर्यमान बेदरै ॥

साधु कथा कथियै दिन केशवदास कहाँ

निद्रा केशव है मन को दिन मान लहौ ।

पावन दास सदा अपि को सुख को बरवै

को बरवै कवि दाहि बिलोकत को हरवै ॥

(रा० अ०, प्र० २४, पं० २-४)

राम राम्य का वर्णन करते हुए कवि का कवण है—

विच ही में आज बालसंकर बिलोकियत,

आहु ही में नारिन के नारिन सौं काज ।

एकै कपपोपी निद्रि बर्क है बियोगी

द्विजराज मिषपोपी एक जलद समाज है ॥

येदें तो गगन पर गजजत नदर येदि,

अपवस कर, यद्य ही को लोभ आज है ।

हुए ही को खण्डन है मण्डन सकल जग

विष विष राज करो जाको ऐसी राज है ॥

(रा० अ०, प्र० २७, पं० १)

मूर्ख ही अयोग्यता पापत है कोशोदास,

धीबु ही सौं है बियोग दण्डा गपनीर की ।

बन्ध्या वासनानि जानू विषया मुवाहिका ही,
ऐसी रीति राजनीति राज रघुबीर की ॥
कबिब्रज ही के भीषम उर धर्मसाय समाज
तिमि ही की लय होत है रामचन्द्र के राज ।
कूटिबे के नाते पल पट्टन तो लूटिपत
तोहिबे को मोहतब तोहि डारियतु ॥
धासिबे को नाते पल धामियतु बरन के
बारिबे के नाते धप प्रोष डारियतु है ।
बासिबे के नाते ताल बासियत केडावात
मारिबे के नाते तो बरिख डारियतु है ।
राजा रामचन्द्र के के नाम धप नीतिपतु
हारिबे के नाते धाम बन्धु हारियतु है ।

(रा० अ० प्र० ३८ पृ० ११ १२)

‘उपमा’ ‘उत्प्रेक्षा’ ‘सन्देश’ आदि सावृध्यमूलक प्रसंगों की योजना करते हुए कदाच अपनी चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति के फेर में पड़कर कुछ स्थानों पर ऐसे उपमानों को भी धाएँ हैं जिससे प्रस्तुत का वास्तविक स्वरूप कुछ भी प्रत्यक्ष नहीं हो सका है और कुछ स्थानों पर उनका उपमानों का प्रयोग बड़ा ही कुरबिपूर्ण हुआ है। ऐसे कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। चन्द्रमा को आकाश में देखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है—‘कूलन की लाम गैर नहीं है। सूर्यि धरती अनु डारि बई है’^१। पहली उत्प्रेक्षा में चन्द्रा के निर पर विष्णु के बटने तथा दूसरी उत्प्रेक्षा में चन्द्रमा को गैर बनाने की कल्पना अनुपपुष्ट एवं उपहामास्य है। हनुमान राम की बिरहावस्था का विवेक करते हुए राम की उपमा ‘उम्भू’ से देते हैं।^२ धनि की ज्वालाओं में जलते हुए रासों का वर्णन करते हुए कवि ने रासों की समता नामदेव से की है^३। नामदेव उपमान का विवेक अद्वितीय प्रयोग यहाँ हुआ है।

जहाँ कवि चमत्कार प्रदर्शन प्रयत्न द्वारा कुछ कल्पना के लोभ का संवरण कर सका है यहाँ चमत्कारों का कुरबिपूर्ण प्रयोग हुआ है जो भावोन्मत्त में सहायक है। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ उपस्थित किए जाते हैं। मरुत के निनिहाम से जाने का समाचार पाकर सब माताएं छटपटाती हुई बड़ी उन्मुक्तता के साथ उनमें मिलते वही प्रकार जानी हैं जिस प्रकार (सद्यज्जुता) माए धपने बछड़ों को बाटने तथा दूध निमाने के लिए छटपटाती हुई बीड़ती हैं^४। इस उपमा के द्वारा

१ रा अ प्र १ पृ ४१।

२ वासर को सपति उम्भू के ज्यों के विवेक है।

—रा अ प्र ११ पृ ५५।

३ बहूँ रज्ज्वारी गड़े ज्वालि पाड़े। मानो ईश रोशनि में नाम पाड़े ॥

—रा अ प्र १४ पृ ८१।

४ मानु सबे निनिबे बहूँ पाई। ज्यों धुन को मुरभी मुजरा ॥

—रा अ प्र १ पृ १८।

कथन में मरत के प्रति माताओं के प्रेम की सुन्दर व्यञ्जना की है।

निम्नांकित छन्द में कवि ने हनुमान के सुन्दर नामक पर्वत से उद्यमकर ध्रुवेस नामक पर्वत की ओर उड़कर संका को प्रस्थान करने का वर्णन करते हुए कई उपमाएँ की हैं जो हनुमान की बेमसीसता और हनुमान द्वारा समुद्रोत्सर्जन के कार्य के सारांश की चौधठा चोमिठ करती हैं—

हरि जैसे बाहुम छि बिधि जैसे हेम हंस
लोक को लिपत नम पाहुन के बंद को।
लेन को निपल राम बुद्धि का पिमल जैसे
लज्जन का बाण दूधो राखण निर्धक को॥
विरिपक गड से उड़ानो सुपरम प्रति
सीता परपकज सदा कमल रंज को।
हुवाई सी छुटी केओदास पासमान में
कमान केडा मोना हनुमान बस्यो सक को॥

(रा० पं० पृ० १९, पं० १८)

हरारत की मृत्यु के उपरान्त जब मरत महल में जाता है तो वह माताओं को धकेली और भिरालस्य पाठा है। कवि ने माताओं की बियोगबन्ध विकसता का चित्रण बहुत ही उपयुक्त उपमा द्वारा किया है^१।

इसी प्रकार 'उत्प्रेक्षा' प्रसकार की भी योजना कई स्थानों पर बड़ी सुन्दर हुई है। हनुमान के द्वारा सीता की माई हुई बुझमणि को पाकर राम के हृदय में होने वाले घान्त की व्यञ्जना उत्प्रेक्षा के सहारे कवि ने सफ़सला से की है^२।

संका में पाग लगी है। रोने की संका का सोना इतिष्ठ हो कर समुद्र में जा रहा है। इनके लिए कवि उत्प्रेक्षा करता है—

कचन को पयिली पुर पुर पयोनिधि में पसरौ लो सुखी छु।

नम ह्वार सुखी सुनि सेसी मिरा मिली मली अपार सुखी छु^३॥

कुछ अन्य प्रमुख प्रसकारों के उदाहरण यहाँ पाठकों के अवलोकनार्थ उल्लिखित किये जाते हैं।

कपक

१ पृथ कु कर पुछ स्वयन गोबिन्दी सुखि पुर।

केलि टेलि जनी विरीछनि देसि प्रोपित पुर॥

छाह सुम मुरम कण्ठ्य आरुचर्म विप्रात।

जबक सों रपकक पैरत नुछ नुछ मरत॥

२ मन्दिर मानु किमोकि धकेली। ज्यों किणु कृत विराजति वेलि।

—रा० पं० पृ० १०, पं० २।

३ की रकुनाप जब मणि देली जी यह पाग बना सज मेली।

सुनि उदयो मम ज्यों निधि वारी। मानहु धंष नुहीटि नुहाई॥

—रा० पं० पृ० १४ पं० १४।

४ रा० पं० पृ० १४, पं० ११।

केकरे कर बाहु मोन, गयब भुण्ड भुजंग ।
बीर पौर सुरेश कोछ गिवाल जामि सुरप ॥
बासुका बहु भाति है मणिमालजाल प्रकाश ।
पेरि पार भये ते हैं भुविवाल कोछबास ॥

(रा० अ० प्र० १० अ० २१)

२ घोखित सलिस नर बागर सलिसबर
गिरि बातिसुत बिब बिभीपलु करे हैं ।
बरम पताका बड़ी बड़वा प्रगल सम
रोगरिपु जामबन्ध कोछब बिपारे हैं ॥
बाबि सुरबाबि सुरपम से अनेक गज
भरत सङ्गु हनु अमृत निहारे हैं ।
सोहत सहित दोव रायबन्ध कराय ते
बीति के समर सिन्धु साँचु सचारे हैं ॥

(रा० अ० प्र० १६, अ० ६)

प्रतिप्रयोक्ति

१ सम्बन्धातिप्रयोक्ति

बरलु बरलु अंगिया डर घरे । मरन मनोहर के मन हरे ॥
अंचल प्रति अंचल बजि रबे । सोवन बल शिके सय मरे ॥

(रा० अ० प्र० ३१ अ० १६)

२ रूपकातिप्रयोक्ति

बैरह बैब भीम के भाव, हुरत कुसुन के हुरत हाव ।
मवरप बहु अशोक के पत्र तिन महँ राजत राजकसव ॥

(रा० अ० प्र० १७, अ० २९)

अपह्नति

१ कृति कृति तब कून बड़ावत । मोरत महामोद उपजावत ॥
बहुत पराग न बित जड़ावत । अमर अमर महीं बीब अमावत ॥

(रा० अ० प्र० १, अ० ११)

विभाक्ता :

यद्यपि इयन जरि गये अरिगत कोशबदात ।
तद्यपि प्रतापानलन के बल पल बहुत प्रकाश ॥

(रा० अ० प्र० २, अ० ११)

स्वभावोक्ति

जन महँ बिचट बिबिध कुल समिधे गिरि गह्वर मग अगमहीं मुनिधे ।
बहुँ पहि हरि कहँ निशिबर अरहीं बहुँ बबरहन कुसह कुल सरहीं ॥

(रा० अ० प्र० ६ अ० २६)

अप्रस्तुतप्रवासा

भीमसिंह प्रह्लाद की बेद जो गायत पाव ।
गये मात बिन वासु ही भूठी छै है गाय ॥

(रा० अ० प्र० १४ छ० १)

कारस्थमाना

जहं भामिनी भोय तहं बिन मामिनि कहं भोग ।
भामिनी छूटे जग कुटे, जग छूटे सुख भोग ॥

(रा० अ० प्र० २४, अ० १४)

एकावली

राजा रामचन्द्र सुम राजह सुयश जाको
भूतल के वास-वास सागर के वासु सो ॥
सागर में बड़भाग बेंध छेपनाथ जू के
छेपजू पी जड़भाव बिदल को निवास सो ॥
बिदल जू में धूरि माय्य भव को प्रभाव सोई
जवजू के भास में विभूति को बिभास सो ॥
भूति माहि जम्भना सो जम्भ में सुधा को प्रसु,
अमृनि में कजोबास जम्भिका प्रकाशु सो ॥

(रा० अ० प्र० २७ छ० १)

प्रतीप

को है बमर्षती हनुमती रति राति बिन
होहि न लखीनी एन छवि को सिधारिये ।
केदार लजात बलबलत जातबेद भोप,
जातक्य बापुरो बिचय सो निहारिये ॥
मदन निरूपन निरूपन निरूपन भयो
चंद जगुन्य अनुन्य के बिचारिये ।
सीता जी के रूप पर बलता नृक्य को है
रूप ही के रूपक ती बारि बारि झारिये ॥

(रा० अ०, प्र० १, अ० २८)

आन्तिमान

अमल सज्जन अनन्याम अपु केओदात, जम्भह से वाव मुख सुपमा को जान है ।
कोमल कमल बल हीरक बिलोचननि सोबर समान कब ग्यारो ग्यारो नाम है ॥
जालरु बिलोकियत पुरल मुख्य नून मेरो मन मोहियत ऐसो रूप नाम है ।
बेर बिय माग कामदेव को अनुप तोरो जानत हों बीक बिर्ल राम भेस काम है ॥

(रा० अ०, प्र० ७ अ० १४)

ग्रहोत्तर

रे कवि कोन तू ? अस को घातक बूत जसी रघुनाथन जू को ।
को रघुनाथन रे ? बिहारा-धर-नूपल-नूपल, भूपल नू को ॥

सागर कैसे लट्ठो ? उसे गोपब कहा कहा ? छिय खोरहि रेखो ।
कैसे बघायो ? जु सुखरि तेरी हुई दुख सोबत पातक सेखो ॥

(रा० अ० ३० १४ छं० १)

विद्वाना

बालि बसी न बघ्यों पर खोरहि क्यों बचिहीं तुम घापनि खोरहि ।
जा लय धीर समुद्र मध्यों कहि कैसे न बागिहूँ बारिधि खोरहि ॥
भी रघुनाथ मनी बरुमध न देखि बिना रघु हाथिन खोरहि ।
तोड़यो सरासन सकर को जेहि सोझ कहा तुम संक न तोरहि ॥

(रा० अ० ३० १५ छं० ७)

ध्यातृस्तुति

हर गान विद्वं जनार्ण को भार्ज, पर द्रव्य छोड़े पर स्वीहि सार्ज ।
परजोहूँ भासों न होबे रती को तो कैसे लरै बेप कोन्हें बती को ॥

(रा० अ० ३० १६ छं० २७)

कहीं-कहीं एक ही छन्द में अनेक धर्मकारों के सफल प्रयोग भी देखने में
आते हैं जैसे—

एक धर्मयन्त्री एसी हरै हूँति हंस बस
एक हूँतिनी सी बिसहार हिये रोहियो ।
भूयण गिरत एक जेति बूझि बीच बीच
भीनयति भोग हीन उपमान होहियो ॥
एक भत के क कई लागि लागि बूझि बात
बल देखता सी बेधि देखता बिमोहियो ।
कोरोदास भास-बास भवर भवत जस—
कैलि में बलजमुखी बलज सी सोहियो ॥

(रा० अ० ३० २ छं० १७)

(उपमा प्रतीप सम्बन्धातिशयोक्ति और भ्रम का संकर)

बीरतिहरेव-वरित

इस द्रव्य के प्रयोगों में अक्सर भी दाही सेनाधों से बीरतिहरेव
के मुठों का सविस्तर वर्णन किया गया है। इस कारण इस अंश में कैदाब को
धर्मकार प्रयोग के अर्थ में अपना कौशल प्रदर्शित करने का अधिक अवसर प्राप्त नहीं
हुमा है। इस भाग में बल्लु एवं बल्लु-वर्जन में ही कहीं-कहीं धर्मकारों का प्रयोग
देखने में आता है। अन्य के उत्तराख में बीरतिहरेव के ऐश्वर्य तथा दिग्दर्शकों का वर्णन
किया गया है। यहाँ अधिकतर प्रयोग दुस्य धीर बल्लुएं यही मिलती हैं जो 'राम
चन्द्रिका' में वर्णित हैं। इसलिए इनके विषय में प्रायः बगी कल्पनाएं की गई हैं जो
रामचन्द्रिका में उपलब्ध होती हैं।

जिन स्थलों पर कवि ने पाण्डित्य प्रदर्शन ध्येया दूर की भूमि का आशय
नहीं छोड़ा है वहाँ कवि का धर्मकार प्रयोग भाव-व्यंजना ध्येया बल्लु के अन्तर्गत
ध्यापन में असफल ही रहा है। ऐसे को उदाहरण यहाँ उपस्थित किए जाते हैं।

मेवाद्याला में जाते हुए महाराज बीरसिंह की उपमा 'मुक्कड़ रंक' से हैना उप
हासास्पद है^१। इसी प्रकार नर्पा को अनुसूया, कामिका अथवा दीपवी बनाना कम्पना
की बिहम्बना ही है। परन्तु फिर भी 'बीरसिंहदेव चरित' में ऐसे बहुत से स्थान हैं
जहाँ कवि ने सुन्दर ध्वनिकार-योजना की है। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।
बीरसिंहदेव की सेना के युद्ध के लिए प्रस्थान करने के कारण पृथ्वी की भूमि उठ
कर आकाश की ओर जा रही है। इस धम्मन्व में कवि ने बड़ी ही विमल्लग उत्प्रे
साएं की हैं जो भाव को उत्कर्ष-साधन में सहायक हैं।

धमर धूरि आकाशाहि जनी हय नय धुरनि करी दलनजी ।
आनि गणन को हालत द्वियो ठोर ठोर जनु चमित कियो ॥
रह्यो अकाश विमाननि धुरि । मनो असारनि छाई धुरि ॥
भूअहिरो रम सुभट धपार । सामुहँ धामनि पावकुमार ॥
तिनको सुख बालहु महि कियो । स्वर्गारोहुन माय बियो ।
रही धुरि गरिधुरि अकास । मिळे निकट हँ सूर प्रकास ॥

(बी० दे० पं०, पृ० ५३)

इसी प्रसंग के अन्तर्गत 'ध्वजा के वर्णन में भी कवि की उत्प्रेसाएं अत्यन्त
ही सुन्दर एवं उपयुक्त बन पड़ी हैं।

तामैं बहुत पताका सत । बूम धनस जनु स्वासा बसे ॥
मनहु काल की रचना घोर । कैंधों भीष लक्षति बहूँ घोर ॥
पवन प्रकास बीहू पति होति । मनहु अकास दिवन की ज्योति ॥
जनु अकास बन बलित पसल । तरलित तुंग ताल के पल ॥
किघों विमाननि की बुति हल । देवनि के धंवल से बलें ॥
जय श्री भुजा सिधु बखिये । किघों और बंवल लखिये ॥
बीरसिंह की बलध्वजा नूरिनि में पुज देखि ।
बुल सुरग की मानहु प्रतिजोबनि बोले सेति ॥

(बी० दे० पं०, पृ० ५३)

राजभूषण के युद्ध में अकेला ही टूट पड़ने पर मुगल सेना उठे बेर मीठी है।
इसके लिए कवि ने कई उत्प्रेसाएं की हैं।

मनहु पर्वतन अति बल भयो । इग्रापुरी को डोला भयो ॥
मनो नितावर बल बलवन्त । परि तिघी धामों हनुमन्त ॥
धानी धंयकार बल भयो । बारक सूर सामुहँ भयो ॥
बीरसिंह सर्व बहुत पुर कइ । मानहु कोवि गणक पर बई ॥

(बी० दे० पं०, पृ० ५३-५४)

इसी प्रकार बीरसिंह के द्वारा दीख धनुसप्रज्ञप्त के युद्ध में मारे जाने का
समाचार सुनने पर अकबर क धनुपूर्ण गैरों के विषय में कवि बड़ी ही स्वामादिक

१ निपटि रंक ज्यों तालच भए । मैवा की साता में भये ॥

—बी० दे० पं० १ १२४।

उत्प्रेसा करता है^१। युद्ध प्रसंग के घतिरिक्त केदार में प्रम्य स्थलों पर भी पौमन उत्प्रेसाओं का प्रयोग किया है। बीरसागर की छटा उत्प्रेसा के प्रयोग से निखर उठी है।

फूले भीत कमल जल एव । धामतु सुधरता के मन ॥
 फूल कन्हार सुगंधित मनी । गुन सुगंधता के मुख मनी ॥
 प्रभुसित सूर कोकनद क्रिये । धामतु धनुरागिनि क हिये ॥
 पीत कमल बैजत सुख मनी । मनी क्य के क्यक रयी ॥

(बी० दे० अ पु० १००)

बभ्रुमुग्धदेव के लिए भी कवि ने किउनी सरस एव उपमुत्त उत्प्रेसा की है।
 सोमति सति सुहर सुम सदा । सख खड कर पकय मदा ॥
 पद ऊपरै स्थापतल लाल । करगत केसर मुद्रि विसाल ॥
 मनी विरा बभ्रुना जल सदा । स्वेत पाट पट कटे सुमाद ॥

बैजत होह सुख मन पुत्र । निरुमे मवि अनु धीर समुद्र ॥
 भीत एव मरवत मय रंड । मनी कमल समान सपंड ॥

(बी० दे० अ पु० १०६)

महाराज बीरसिंहदेव के उपवन में कहीं-कहीं जमयाज भी हैं जिनके विषय में कवि ने किउनी मधुर धीर वयातप्य कल्पना की है—

यहाँ तहाँ जलजल प्रकास घर तें धारा जसी ॥
 अनु जमुना की मुलम बेस । चाहत रविपुर क्रियी प्रवेस ॥

(बी० दे० अ पु० ११८)

मदन महोत्सव के अवसर पर जब महाराज बीरसिंहदेव सज-सज कर हाथी पर याहर निकलते हैं तो सुन्दरियों उनके दशनाभ अपने-अपने भवनों पर चढ़ती हैं। कवि ने इन सुन्दरियों की छवि के वर्णन में उत्प्रेसाओं की भड़ी छी बाँप दी है।

यों सोमति सोमा छों सनी । मोहन गिरि सपनि मोहनी ॥
 अनु कैलास संत पर चढ़ी । सिद्धि की कृपा नुति मढ़ी ॥

मनी द्वाजि पर कीरति लनी । कपनि पर शीरनि छी बस ॥
 यह गृह प्रति अनु यह बैयता । अनु गुमेव सोने की सता ॥
 एकनि कर बपन महि हर । मनी अन्त्रिका लग्नहि घर ॥
 एक सरल धन्यर रस भिनी । अनु धनुराग रंघी राविनी ॥
 एकै बजैति पुर्य जनेप । मनी पुराजता सुख बेप ॥

(बी० दे० अ पु० १४६)

‘उपमा’ के भी केदार ने बड़े सफल प्रयोग किए हैं। बीरसिंह की अपने

१ जवन मोवन जल मनमते । पवन पा अनु सरविज हने ॥

बदवार में बाधा देकर सलीम के हृदय का पारोवार नहीं रहता और उसका धर्म धर्म सिम उठता है। केदाव की इस प्रशंसा में उपमाएँ बड़ी ही उचित एवं स्वाभाविक बन पड़ी हैं—

सोम्यो वीर बलि बों छाहि । बसि रहै सुमेरहि चाहि ॥
वीरसिंह को चाहि संह । वारत ॥ परस्यों क्यों मोह ॥
परम सुगन्ध नीम छँ चाह । बसैं मलयवाचन को पाइ ॥

(बी० दे० पृ० ५० पृ० १५)

विन्ध्यवासिनी का प्रसाद पाकर जब कुंवर रामप्रताप राजा रामदाह से मिलने के लिए प्रस्थान करता है तो कवि ने उसे सुधीव लक्ष्मण तथा हनुमान के समकक्ष सा बिठाया है। उपमा किसी सटीक है।

सोम्यो तब सुधीव समान । रामकाव्य बिनकी बरिमान ॥
तुम लक्ष्मण लक्ष्मण सो लखैं । मन कम बचन रामदाह बसे ॥

रामदेव सुपह तन अर्जत । सोम्यो कुंवर मनी हनुमान ॥

(बी० दे० पृ० ५० पृ० १६)

राजा रामदाह भी रामसुपाल को देकर चिम उठते हैं। इस अवसर पर कवि ने रामदाह के हृत्पतिरेक की उपमा में सहारे बड़ी ही सुन्दर व्यंजना की है।

राखहि भयी परम सुख मात । तिहि सुख पूजे छाग न मात ॥
अति प्यासी क्यों पानी पाइ । बहु भूखो पोखन सुखदाइ ॥
परम वंद्य क्यों पाये पाँय । पूंग लहरी क्यों बचन बनाप ॥
मई धाँव क्यों लोखन चाह । पीऊत जनु पानी धमाव ॥
सीतारत क्यों अमिहि लई । बन जूम्यो नार्यहि क्यों मई ॥

(बी० दे० पृ० ५० पृ० १७)

रमछर वीरसिंहदेव के मुकुटोप में टूट पड़ते हैं। राजा रामदाह की सेना में भयङ्क मय जायी है। इस प्रसंग में कवि ने कई उपमाएँ दी हैं जो सुन्दर तथा उपयुक्त हैं।

देखत ही भागे रिपु मोन । क्यों अर्जतर धाये लें रोम ॥
धरि की फौज भयी पछि भास । धाँवकार क्यों सूर प्रकास ॥
परम दानि जुनि बसि रोए । बसै मयत बड़े ही मोर ॥
जहाँ लहै भट यों जय मये । राम सुगत क्यों पातक मये ॥

(बी० दे० पृ० ५० पृ० १८)

अकुलकन्द के निधन के कारण समाचार से जब धक्कर के नेत्रों से धनुषास्र बहने लगती है तो कवि उसके नेत्रों की उपमा 'रहदगरी' से देता है।

अरि अरि रीति जाति रीति रीति भरे नृनि,
रहदगरी ली छाँकि चाहि धक्कर की ॥

(बी० दे० पृ० ५० पृ० १९)

एक स्वप्न पर मुख के वर्णन में कवि ने मुख-स्वप्न तथा वर्षा का स्वाभाविक रूपक बना है।

दलदल सहित छटे होई धीर । मनो घनाघन घोर घसीर ॥
मुख्य बुरि घुरबा से मनो । बाजत कुम्बनि घसन मनो ॥
जहाँ तहाँ तरवारें कड़ी । तिनको बुति जनु बाजनि बड़ी ॥
सुपक तीर प्रब धारा पात । भीत भये रिपुशन भट बात ॥
मोहितजल घेरत तिहिसेत । कुरम कल सब दलहि समेत ॥

(बी. दे० पृ० ५०, पृ० ५६)
'उत्सेह घनकार की भी योजना एक स्वप्न पर कवि ने बहुत ही सुन्दर की है। बेधिए, जगमा को 'जगदमी' मुखियों ने किस-किस रूप में देखा है।
कम कृपुय नासहि की मनो । मनिमय मनो मुकुट सोनो ॥
ममयी कँठो घुम ताक । मुकुटानिमय सोभत सक ॥
बाजतपति सी तारा संग । स्नेत छत्र जनु धर्यो समय ॥
महाकाल ग्रहि कँठो धर । पगन सिपु जनु छेन धरम ॥
मदन नृपति को गगन निसेत । राजतकलत मुहुषी समेत ॥
सिद्ध मुम्बरी को जनु धर्यो । दलपक्ष घुम सोभा मर्यो ॥
चाब जगिका सिम्बुमय सीतल स्वच्छ सतेज ॥
मनी सेपमय सोनिब हरीनामिच्छित सेज ॥

(बी. दे० पृ० ५०, पृ० ५६)
'व्यतिरेक' की यहाँ कँठो मुम्बर योजना हुई है—
रमनी मुजमजल निरलि राका-रमन लजाह ।
जलज जलमि तिवसूल में राजत बदन दिखाह ॥

(बी. दे० पृ० ५०, पृ० ५६)
जमत्कारवृष्टि को समुन्ट करने वाले घसकारों जैसे परिवर्तना विरोधा मास हतेय घादि का प्रयोग इस प्रवर्ध में ध्वनिताकृत कम ही हुआ है। नगर (जहाँवीरपुर) के वर्णन में 'परिवर्तना' का जमत्कार बहानीय है।

होम घुम मनिनाई जहाँ । अति अंचल जल दल दल तहाँ ।
बात नाम है कूटा कर्म । तीक्ष्णता घायुय के घम ॥
जहँ दिपबा बाटिका न मारि । जहँ अयोगति मूल दिखाति ॥
माज संघमानि को जानि । कदिल बात तरितानि बवानि ॥
कुगनि की कुगति सचरै । व्याकरण द्विज बुलिति हुई ॥
कीरति ही के सोमी लाय । कविजन की धोखल अमिताय ॥

विमानपीता

(बी. दे० पृ० ५०, पृ० ५६)
'विमानपीता' में कवि का घसकारों के प्रति विरोध बावह दिखाई नहीं पड़ता है। उसका रूपक तथा उम्मेदा घादि कुछ ही घसकारों का प्रयोग जहाँ-तहाँ देखने में पता है जो प्रायः भाव-व्यंजना में सहायक है। केवल द्वारा प्रयुक्त का

प्रसंगकारों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं। निम्नलिखित कल्प में मिथ्या संसार को सत्य मानने वाले बड़ बीनों की उपमा काठ के बोड़ पर बड़ कर खेलने वाले बालकों अथवा गृह-गृहियों का खेल खेलने वाली बालिकाओं से लेकर सांसारिक जीनों की जड़ता का स्पष्टीकरण बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है।

जैसे बड़े बाल सब काठ के तुरंग पर सिकने सकल भुल प्राप्नुही में पाने हैं।
जैसे सति बालिका ये खेलति पुतरि सति पुन पौत्रादि मिति विषय बिताने हैं॥
प्राप्त्यो को भूसि जात लाभ लाभ कुल बर्ष जाति कर्मकारिकन हीं लो मनमाने हैं।
ऐसे जड़ बीज सब जानत हों केसोदास, अपना सबाई प्य सबाई कँ जाने हैं॥
(वि० गी० प्र० २, पं० ४४)

महाराज बीरसिंहदेव की प्रशंसा करते हुए कवि ने प्रत्येक उपसुक्त उपमाएँ दी हैं—

बालनि में बलि से विराजमान जिनि पाँहि भाग्य को है पति विजय तनक से।
सेवक भगत प्रभुविरति की मंडली में देखियत केसोदास लौकिक जनक से॥
बीषनि में भरत मपीरष सुरष पृषु विजय में विजय मरेख के जनक से।
राजा मधुकरग्राह सुत राजा बीरसिंह राजनि की मण्डली में राजत जनक से॥

(वि० गी० प्र० १, पं० २२)

‘कपक’ प्रसंगकार के भी सफल प्रयोग कवि ने कई स्थलों पर किये हैं। एक स्थल पर कवि ने उबर का कपक समुद्र से बोधा है। जैसे समुद्र में सब कुछ समा जाता है वैसे ही मनुष्य का उबर भी बड़ा ही घषाह है। जिस प्रकार समुद्र में विभिन्न भादि भयंकर जलु रहते हैं और अनेक जीव जन्तुओं का भक्षण करके भी उनकी क्षुधा-निवृत्ति नहीं होती उसी प्रकार मनुष्य के उबर की क्षुधा भी कभी नहीं मिटती। इसी प्रकार जिस माँठि समुद्र में बड़वान्निवा निवास है जिसकी प्यास निरन्तर समुद्र का जल पान करते हुए भी शान्त नहीं होती उसी प्रकार मनुष्य की तृष्णा भी कभी नहीं मिटती।

तृषा बड़ी बड़बालमो क्षुधा क्षिमिगित क्षुद्र।

ऐसो को निकसे कु परि, उबर उबार समुद्र॥

(वि० गी० प्र० २, पं० २५)

एक और स्थल पर कवि ने तृष्णा का कपक तरंगिणी में बोधा है। जैसे किसी नदी के जिसका पाट सूब बड़ा हुआ हो दूसरे पार जाना दुन्दर है वैसे ही तृष्णा का पार पाना कठिन है। कवि कहता है—

कोन पने इति लोकांनि रीति विनोदि विलोकि जहाबनि बोरे।

साब बिशाल लता अपटी तन पीरष सत्य समासनि सोरे॥

बंजकता अपमान अघान घलाम भुर्जम भयानक तृष्णा।

पादु बड़ी कहुँ घाट न केदाप क्यों तरि जाह तरंगिनि तृष्णा॥

(वि० गी० प्र० २, पं० १०)

कवि ने अल्प स्थल पर रणभूमि और नदी के छान कपक का भी विमान बहुत ही सुचारु रूप से किया है।

पूँज कुंजर सुख स्वयंभू प्रीतिमे प्रतिपूर ।
छलि डेलि चले गिरीछनि पेलि घोखित पूर ॥
प्राह सुख तरंग कछुप जाव धमर विगात ।
चक्र से रच चक्र परत गूढ गुड सराम ॥

(वि० गी० प्र० १३ छ० १)

इसी प्रकार 'उत्प्रेक्षा' का प्रयोग भी भावव्यंजना में महामुद्र हुआ है। महामोह के अपन हन-बन के साथ प्रस्थान करने पर भूमि पृथ्वी से उठकर आकाश में व्याप्त हो गई है। इसके लिए कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो पृथ्वी, इन्द्र को घोष देने पा रही है। इस उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने महामोह की सेना की विघातता का भाव कराया है। कवि का कथन है—

रथ राजि साजि बजाइ बुझुनि कोह तीं करि साजु ।
बिगुमायब को बस्यो बल भूमि को अपिराजु ॥
छलि मूरि भूरि बली भजायहुं सोमिनी प्रोप ।
कनु सोयु देन बली गुरहर को बरा सुविशेष ॥

(वि० गी० प्र० ११ छ० १)

नीचे लिखे छन्द में वाराणसी के ऊँचे ऊँचे घरों पर सुषोभित पताकायों के लिए कवि कल्पना करता है कि वे मानों बँकूठ-मार्य में जाते हुए मुक्त मानवों के उन्नीतुर्न का प्रकाश हैं। इस प्रकार कवि ने वाराणसी के ऐश्वर्य की ओर संकेत किया है।

वाराणसी प्रति दूरि ते बबलीकियो मय वृत् ।
ऊँचि अवाछनि उज्ज्व सोहति है पताक विभूत ॥
घोना बिसास बिलोकि देछबराद्यों मति होति ।
बँकूठ मारग जात मुक्तनि की नई क्यों कोति ॥

(वि० गी० प्र० ११ छ० ४)

निम्नलिखित छन्द में 'अभ्योग्य' वर्णवार का प्रयोग दर्शनीय है—

पानी पति बिगु बीन धलि पति पत्नी बिगु बग ।
अग बिना क्यों यानिनी क्यों यानिनी बिगु बग ॥

(वि० गी० प्र० १६, छ० १६)

कहीं-कहीं कवि ने एक ही छन्द में घनक वर्णकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। यहाँ एव उदाहरण देते हैं। 'सती' के शीघ्रय का वर्णन करते हुए कवि ने उपमा रूपक उत्प्रेक्षा सहैह तथा रूपकातिशयोक्ति का मनोहर संकर प्रस्तुत किया है।

अगनुसीनि में जाव बछोर कि चग बछोरनि में बचिरो है ।
लोचन लोल कपोलनि मध्य बिसोकत झी उपमा कश्यो है ॥
गुहरता सरसीनि में नागहु घीन मनोबनि के मनु मोहै ।
नाकिर सो मयि मंडल में कहि को यह जालबधूनि में सोहै ॥

(वि० गी० प्र० २० छ० १८)

रतनबायनी

‘रतनबायनी’ में कवि ने ज्ञान-बुझकर भर्त्सकारों की भरमार करते को भट्टा नहीं की है। काव्य के स्वाभाविक प्रवाह में ही मध-तन उपमा उत्प्रेक्षा सन्देश, एकावली आदि कुछ भर्त्सकारों की योजना हो गई है जो प्रायः भाव-व्यञ्जना के उत्कर्ष साधन में सहायक है। कुछ सवाहरन नीचे दिए जाते हैं।

विस्तीरवर भकवर की समा में महाराज मबकरसाह के पहुँचने पर कवि ने सतकी कवि का वर्णन ‘उपमा’ के द्वारा करते हुए लिखा है कि ने वही उसी प्रकार खोमित हो रहे थे जिस प्रकार नक्षत्रों के मध्य में अश्वत्थ सुखोमित होता है।

विस्तीरपति बरवार जाय मबुसाह सुहायक।

जिमि तारन के मई इन्नु खोमित कवि धाम्यक ॥ (रतनबायनी, छं० ६)

निम्नलिखित पंक्तियों में ‘एकावली’ का बहुत ही सुन्दर एवं उपयुक्त प्रयोग किया गया है—

मातु हेतु पितु तजिय, बिता के हेत सहोबर।

सुतहि सहोबर हेत लखा सुत हेत तजहु बर ॥

सखा हेत तजि बन्धु, बन्धु हित तजहु सुखन मन।

सुखन हेत तजि सखन सखन हित तजहु सुखन मन ॥

कहि केदार सुक लवि घरनि तजि घरनी हित घर अरिये।

सइ अरिय सख घर हित पति प्राण हेत पति अरिये ॥

(रतनबायनी, छं० १६)

अधोनिष्ठ छन्द में रतनसेन के द्वारा दाही सेना के छिन्न-भिन्न होने के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि सन्धु की सेना ठीक वैसे ही रतनसेन की सेना के सम्मुख न ठहर सकी वैसे बासु के भोंकों के सम्मुख बादल।

सब फटका मये बल भहु सब तुरत सेन बफटत रन।

जनु बिजु सैन मिल एक इक एकहि पवन मजोर धन ॥

(रतनबायनी छं० २८)

रतनसेन पर पठान घोड़ार्यों के प्रहार करने के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि पठान रतनसेन पर ठीक उसी प्रकार थे प्रहार करते थे जिस प्रकार होमी के भयसर पर प्याल-बास ‘लंडल छीर’ झहीर पर।

इक इक धाड़ भस्मिब सखन रतनसेन राखीर कहू।

जनु प्याल बास होसी हरप लंडल छीर झहीर कहू ॥

(रतनबायनी छं० ३१)

सन्देश तथा उत्प्रेक्षाकार की सहायता में रतनसेन के धार का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

किथी सत की शिखा लोम-साखा मुखदायक।

जनु कुल-बीपक ध्योति बुद्ध-सम भेदन धाम्यक ॥

किथी प्रर पति-पुत्र पुण्य कर पस्तक विस्मय।

किथी किति-परनात तेज-मुरति करि सिलिधम ॥

कहि केछव राजत परम पर रतनहेन तिर सुभिषयहु ।
जनु प्रताप काल कएअपति कहुँ कएअपति-अए अहित किमहु ॥

(रत्नकावरी, छं० २८)

जहाँगीर-जस अग्रिका—इस ग्रन्थ में प्रयुक्त घसंकारों में उपमा रूपक मुख्य हैं। यहाँ कुछ घसंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।
बिरोबाभास परितंख्या और परितंघयोसित आदि घसंकार साधब्यजना के उत्कर्ष-साधन में सहायक न होकर पाण्डित्य-अदक्षता ही विशेष करते हैं। इस ग्रन्थ में बाबसाह जहाँगीर के यश एवं प्रताप तथा उसके बरबार और बरबारियों आदि घसिक घसकिकर प्रतीत नहीं होता है। 'बिरोबाभास' घसंकार की सहायता से जहाँगीर के प्रताप का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

बटे एक धन तर जाह सब छियि पर सुरज जगत अतिराह हित मति हो ।
विहसन बंटे राज राजत ही पाइ छिज देखत ही नजरान देखियत मति हो ॥
घकर कहावत जनुज नरे केसोराय परम कृपाल ई कृपाल करपति हो ।
बिच बिच राज करी जहाँगीर साहि पति लोक कहुँ नरदेव देखनि की गति हो ॥

(ज० ज० ४० छं० १६१)

निम्नलिखित छन्द में 'परितंख्या' घसंकार के उदाहरण जहाँगीर के राज्य की सुखदशा का वर्णन करते हुए कवि का कथन है—
बैरी पाइ कामन ली काम सब काल जहाँ कवि कुलही को सुबरनहर जानु है ।
सुखजेवामी एक जालके विलोकियत मार्तगति ही के यवबारे को लो जानु है ॥
अरि नवरीन प्रति करत अपम्या पीन दुर्गम ही केसोरास दुर्गति ली जानु है ।
साहिनि के साहि जहाँगीर साहि साहि तिय बिच बिच राज करी पाको ऐसो राज है ॥

(ज० ज० ४० छं० १६२)

अपोनियत छन्द में 'एकावली' घसंकार के उदाहरण जहाँगीर के यश का वर्णन किया गया है—
साहिनि को साहि जहाँगीर साहि जू को बलभूतल को आसपाय दायर हुसास हो ।
तापर में बज्रनाग देव देवनाम को लो लेय लू में गुलबानि सिन्धु को निबासु लो ॥
सिन्धु लू में सुरिनाथ भव को प्रभाव बँसो भवतु के जाल में विपुति को निबासु लो ॥
भूति नाथ अग्रमा लो जंग में जुपा को धंसु धंसुभि में लोहू बाब अग्रिका प्रकासु लो ॥

(ज० ज० ४० छं० १६३)

जहाँगीर के प्रताप का वर्णन कवि ने एक स्थल पर 'बिभावना' घसंकार के अतिरिक्त ईश्वर अरि गये अवधि केसोरास ।
तदपि प्रतापानलभि को पल पल बज्रत प्रकास ॥
(ज० ज० ४० छं० १६४)

उपमा उत्पत्त्या धादि सावस्यमूलक अस्कारों की योजना भावार्थ्यजना में सहायक है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं। निम्नलिखित छन्द में 'उपमा' अस्कार के द्वारा जहाँगीर की अरिमत विषयवाची का निरूपण किया गया है—

मल सो जगतबानी साँचो । हरिर्बल नु सो पुनू सो परम पुरधारपति सेहिये ।
बलि सो बिकेकी नु बचीव ऐसो धीरपन तापु सम्बरीव नु सो बर बबरेहिये ॥
पुनूपति नु सो सूर हनुमत् नु सो बसी कैसोराई बिक्रम तें साइसो बितेहिये ।
साहिनि को साहि जहाँगीर साहि बरबाता दाँटा कीनो दूसरो बिबाता ऐसो देखिये ॥

[(अ० अ० ५०, छं० ११८)]

सिंहासनस्थ जहाँगीर के सीध पर मुक्तावलि में सुसज्जित छत्र तथा उसके चारों ओर बबरों के भजे जाने के विषय में कवि ने बड़ी ही सुन्दर उत्पत्त्याओं का प्रयोग किया है।

मुक्तावलि नुन सीबिर्भे छत्र सीध पर सेतु ।
सुबा बिन्दु बरये मनो सीध कइ वो हिय ॥
धीर बरत जहुँ धीर बसि उरजल परम प्रकाश ॥
कीरत बानी रिपुन की बाछ कैसोबात ॥

(अ० अ० ५०, छं० १०८ १०९)

निम्नलिखित छन्द में 'उपमा' और 'असंपत्ति' अस्कारों का इकट्ठा प्रयोग भी बहुत ही सुवचिपूर्ण हुआ है।

भोगमार भानमार केसर बिभूति मार भूमि भर नूरि अमियेक बँसै जल से ।
दान भार मान भार सफल सवान भार बन भार बसै बार अकल्य समस से ॥
जय भार जल भार सोई जहाँगीर सिर राजमार आसिय धरैय बँस जल से ।
देखि देखि डोर डोर देख देख तिहि बुझ कादत है समुन के सीध बाँयो कल से ॥

(अ० अ० ५०, छं० १६१)

(६) छन्द प्रयोग

केदार के पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य के कवियों द्वारा प्रयुक्त छन्द—देख के प्रथम ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्होंने अधिक तथा बलिक दोनों ही प्रकार के छन्दों की योजना की है। इसके अतिरिक्त बिलम्बे अधिक छन्दों का प्रयोग केदार ने किया है उतने छन्दों का प्रयोग केदार के पूर्वगामी समकालीन अथवा परवर्ती हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया। हिन्दी-साहित्य के आधिकारिक कविों की अपेक्षा रचनाओं में दुहा छन्द का प्रयोग ही विशेष हुआ है। उत्पत्त्याद् बीरणावा काल के रासो ग्रन्थों में दुहा छन्द तोमर, बीटक पद्मरि (पञ्जरि) गार्हा तथा धार्वा धादि छन्दों का प्रयोग मिलता है। अस्तित्वानीय बबीर, बाबू धादि निर्बुन सप्त-कवियों की रचनाओं में भी बोहे का ही अधिकार प्रयोग देखने में आता है। कामठी धादि सूफ़ी प्रेमपाषाणियों ने अपनी रचनाओं में बोहा-बीपाई छन्दों का प्रयोग किया है। केदार के समकालीन अष्टछाप के कवियों ने अधिकतर जहाँ में अपनी

रचनाएँ की हैं। सूरदास नन्ददास परमानन्ददास धारि कुछ कवियों द्वारा कहीं कहीं बोझा भीपही रोला छप्पय सार धारि छन्द भी व्यवहृत हुए हैं। हाँ केसव के समकालीन कवियों में एक तुलसीदास अवश्य ऐसे हैं जिन्होंने केसव से पूर्व सबसे अधिक छन्दों का प्रयोग किया है। मासिक छन्दों में तुलसीदास ने दोहा छोरठा बरवै प्रकृत सोहर धीर भूषणा तथा बलिक छन्दों में अनुष्टुप् इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा गगनस्वरूपिणी मृजयप्रवाह वसन्ततिलका बंधसम्बन्धित सार्धनविनीतित किरीटी मासिनी अम्बरा तथा कवित्त को प्रयुक्त किया है। विविध छन्दों के प्रयोग में केसव तुलसी को भी बहुत पीछ छोड़ गए हैं।

केसव द्वारा प्रयुक्त छन्द—केसव के विविध प्रबन्धों में जो छन्द प्रयुक्त हुए हैं उनके नाम नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं—

रामचन्द्रिका

आ० बीसित द्वारा उन्मिश्रित छन्दों के नाम इस प्रकार हैं—

मासिक—

(१) दोहा (२) रोला (३) बत्ता (४) छप्पय (५) प्रगल्भिका (६) प्ररिस्त (७) पादाकुलक (८) विमयी (९) छोरठा (१०) कुडनिया (११) सर्वया (१२) वीरिका (१३) बिस्ता (१४) मधुमार (१५) मोहन (१६) बिजया (१७) घोमना (१८) सुखवा (१९) हीर (२०) पयावती (२१) हरिणीदिका (२२) चौबोला (२३) हरिप्रिया तथा (२४) रूपमाता।

बलिक—(१) भी (२) सार (३) दण्डक (४) तरभित्रा (५) सोमरात्री (६) कुमारललिता (७) मयस्वरूपिणी (८) हंस (९) समानिका (१०) नराच (११) विद्यपक (१२) चंपला (१३) अधिवरना (१४) बाधूलविनीतित (१५) चबरी (१६) मल्ली (१७) विजोहा (१८) सुरंगम (१९) कमला (२०) समुता (२१) मोदक (२२) ठारक (२३) कणहंस (२४) स्वायता (२५) मोहनक (२६) अनुकूला (२७) मृजयप्रवाह (२८) तामरस (२९) मत्तमयन्द (३०) मासिनी (३१) तामर (३२) अग्रकला (३३) किरीट सर्वया (३४) मरिया सर्वया (३५) सुन्दरी (३६) तन्वी (३७) मुमुक्षी (३८) मुमुमविनिषा (३९) वसन्ततिलका (४०) मोदियदाम (४१) सारवती (४२) स्वस्तिपति (४३) द्रुतविपश्चित (४४) विजयदा (४५) मत्तमातृपत्नीलाकरन बंडक (४६) अमयसेखर बंडक (४७) दुर्मिग सर्वया (४८) इन्द्रवज्रा (४९) उगेन्द्रवज्रा (५०) रघोदता (५१) अग्रवर्म (५२) बंधसम्बन्धित (५३) प्रभितालरा (५४) पूष्णी (५५) मल्लिका (५६) रघोदक (५७) मनोरमा तथा (५८) कमल।

(आचार्य केसरदास पृ० ७१)

इनके प्रतिरिक्त १६ छन्द धीरे धीरे देखने में आए हैं जो निम्नलिखित हैं—

(१) रमण (२) प्रिया (३) पाहा (४) अनुपरी अक्षया चौंदा (५) नवपरी (६) आभीर (७) मासती (८) मदनमस्तिषा (९) घनाधरी (१०) तोमर (११) अमयपति (१२) शोषक (१३) छोटक (१४) वंजनाटिका (१५) विनिगानिषा (१६) सुप्रिया अक्षया धामिकना (१७) मंथना (१८) मधु (१९) बाधु (२०)

बोपाई या बीपाई (२१) ब्रह्मरूपक (२२) सखिनी (२३) हाकमिया (२४) मदन मनोहर वृषक (२५) सर्वयलता (२६) मदनहरा (२७) पञ्चामर (२८) मूसगा (२९) जयनरी (३०) नकरंज सबैया (३१) भरहट्टा (३२) हरिनीला (३३) बीर (३४) जगजति (३५) योरी (३६) रजमान्ता (३७) सुगीत (३८) सिद्धिसोक्ति तथा (३९) मगहरन ।

इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में प्रयुक्त कवियों की संख्या ८२ के स्थान पर '१२१' ठरहती है ।

बीरसिंहदेव चरित

मात्रिक*—(१) छन्द (छप्पय) (२) बीपही (३) बोहा (बोहरा) (४) हीर (५) कुन्दलिया (६) निमंगी बीर (७) मनोरमा ।

बालिक—(१) नयनकपिणी (२) सुवंगप्रयात (३) कवित (४) वृषक बीर (५) नाराच ।

विजयनगीता

मात्रिक*—(१) छप्पय (२) सबैया (३) बोहा (४) सोरठ (५) कुन्दलिया (६) रूपमाता (७) भरहट्टा (८) सोमर (९) हरिनीलिका (१०) भीतिका (११) निमंगी (१२) विजय तथा (१३) पावाकुलक ।

बालिक*—(१) नाराच (२) वृषक (३) तारक (४) हीरक (५) सुवंगप्रयात (६) बोमक (७) नयनकपिणी (८) कवित (९) चामर (१०) मस्त्रिका (११) सुन्दरी (१२) टोटक (१३) मदिरा (१४) हरिनीला (१५) नतिनी (१६) स्वामता (१७) समामिका (१८) मधु (१९) चकरी प्रवसा चकरीक तथा (२०) छरसवठी ।

रसनबाबनी

मात्रिक—(१) बोहा (२) छप्पय बीर (३) कुन्दलिया (कुण्डलिया) ।

बहांगीर जस-चन्द्रिका

मात्रिक—(१) छप्पय (२) बोहा (३) सबैया (४) सोरठ (५) चकरी बीर (६) रूपमाता ।

बालिक—(१) कवित (२) सुवंगप्रयात (३) समामिका बीर (४) निखिपामिका ।

उपर्युक्त सूची से प्रकट है कि 'रामचन्द्रिका' में ही सब से अधिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं । केदार ने जिसने अधिक कवियों का प्रयोग इस ग्रन्थ में किया है दिव्य साहित्य

१. या शीर्षक में विभिन्न बीर सम्बन्ध कवियों के नाम नहीं मिले हैं ।

—आचार्य केदारनाथ, पृ. २०३ ।

२. डा० शीर्षक में जितने बीर का ब्यौसा नहीं किया है ।

—आचार्य केदारनाथ, पृ. २१ ।

३. या शीर्षक की सूची में मधु चकरी बीर छान्नी नाम नहीं है ।

—आचार्य केदारनाथ, पृ. २१ ।

की किसी भी रचना में धात्र तक नहीं हुआ है। कमल पत्ता बिबोहा मोटनक तरनिजा सोमराजी कुमारसिता बन्धु, यन्त्र, समानिका सुरंगम डिस्मा मंथना तथा निक्षिपामिका प्राणि छन्दों के नाम क्वाचित् ही छन्दःशास्त्र से इतर किसी ग्रन्थ में देखने को मिलें। इसी प्रकार दण्डक के उपभेद मत्तमार्तगलीसाकरण मनमरोजर तथा मदनमनोहर भी ग्रन्थ मिलने दुष्कर हैं। सबया के प्राय सभी उपभेदों मत्तगर्पव हुमिल, सुन्दरी निरीट अग्रकला तथा मबिरा का प्रयोग यहाँ हुआ है। दूसरे केदार में छोटे से छोटे तथा सभी वें मन्त्रे छन्दों का यहाँ प्रयोग किया है। एक बन्ध वाले छन्दों से निकर साठ बनों वाले छन्दों तक क उदाहरण तो एक ही साथ ग्रन्थ के पारम्भ में प्रस्तुत किए गए हैं^१।

इस ग्रन्थ में केदार की अभिरुचि माघिक छन्दों की अपेक्षा वधिक छन्दों के प्रति अधिक रही है। वणिक छन्दों में भी दोषक सोमर, सोरक तारक भुजगप्रयात नाराज मोटनक तथा दण्डक अधिक प्रिय हैं। इसी प्रकार माघिक छन्दों में निमगी प्रगमटिका, रूपमासा हरिगीतिका तथा बीबोला क प्रति कवि का विशेष प्रेम दिखाई पड़ता है। केदार ने 'रामचरित्रका' में बहुत ही सीधे छन्दों का परिवर्तन किया है। संका-बह्म के प्रसंग को छोड़कर जहाँ लयातार पाँच बार भुजगप्रयात छन्दा का प्रयोग हुआ है (प्र १४ छं० ११०) ऐसे स्वयं प्रत्यक्ष ही कम हैं जहाँ कवि द्वारा सात-साठ बार लयातार एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ हो। सीता की खोज करते हुए हनुमान के संका पहुँचने पर संकाविपति रावण के राजभवन सीता की विमागिनी मूर्ति तथा रावण-सीता-संभाव का बचन एक साथ स्यात् भुजंगप्रयात छन्दों में हुआ है (प्र० ११ छं० १० १०)। कुंभकर्ष का मुद्र-वर्णन भी लयातार सात भुजंगप्रयात छन्दों में किया गया है (प्र० १२ छं० २२ २२)। रावण मद्य-भंग तथा मन्त्रोदरी

१ बी छन्द—सी बी, सी, बी ॥

सारछन्द—राम नाम । सत्य नाम ॥

धीर नाम । कोन काम ॥

रमय—दुख बनों । हरि है ।

हरि जू । हरि है ।

सरनिजा—वरणियो । बरन सो । जवत को । धारण सो ॥

प्रिया—मुख बंद है । हनुमन्त जू ।

जय यों कहै । जय बंद जू ॥

सोमराजी—हुनो एक स्त्री हुनो बेर बारें ।

महादेव जाको, सदा बित्त भावें ।

कुमारसिता—बिरंभी गुण देखें । मिरा गुणनि लेखें ॥

मनन्त मुख पार्व । विषीपहि न पार्व ॥

नगस्वरुपिनी—भभो बुरो न गू गुन । कृपा कृपा कहै मुन ॥

म रामदेव पाइ है । न देवभोक पाइ है ॥

भी इयनीय वृत्ता का चयन करने में साठ बार लगातार भुजंगप्रवाह का प्रयोग हुआ है (प्र० १६, छं० २६ ३३)। इसी प्रकार रामकृत राग्यभी-निम्बा के प्रसंग में लगातार साठ बार 'अयकरी' प्रयुक्त किया गया है (प्र० २३ छं० १४ २०)। राम के राग्याभियेक के द्वासावसर पर बह्वादि देवताओं पितरों तथा ऋषियों द्वारा की गई स्तुति के प्रसंग में भी निरन्तर साठ बार दण्डक (प्र० २७ छं० २ ८) तथा पंद्रह बार क्यमामा (प्र० २७ छं० १० २४) का प्रयोग किया गया है। कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनका केवल छ-बार ही प्रयोग किया गया है यथा मल्ली विबोहा तथा मंभना (प्र० ३ छं० ११, प्र० ४ छं० ४ तथा प्र० ४ छं० ७ क्यमत्)। इस प्रकार स्व० श० बड़वांस के छन्दों में 'रामचन्द्रिका' को छन्दों का प्रभावशर कहना मत्सुक्ति न होगी।

'वीरसिद्धदेव-चरित' में बोहा-बीपाई छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। सम्भवतः जायसी और तुमसी आदि प्रबन्धकारों की देखा-देखी ही केदार ने भी अपने इस प्रबन्ध में बोहा-बीपाई छन्दों का ही प्रयोग किया है। परन्तु ग्रन्थ के पुरुषार्थ में युद्ध का वर्णन होने के इस बात के लिए इन छन्दों का चयन अधिक उपयुक्त एवं सज्ज नहीं है। इसके प्रतिरिक्त इस ग्रन्थ की रचना बजसाया में हुई है। बोहा बीपाई प्रबन्धी के छन्द हैं। इन में इनका प्रयोग उतना सुन्दर एवं रोचक नहीं समता। फिर भी ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में जहाँ युद्ध से इतर प्रसंगों का वर्णन हुआ है इन छन्दों का प्रयोग इतना अचानक प्रतीत नहीं होता। प्रयोग की दृष्टि से बोहा बीपाई छन्दों के पश्चात् छन्द (छप्पय) सर्वथा और कविता का स्थान पाता है। सर्वथा का व्याख्या बार कुम्हरिया का पाँच बार और दण्डक का तीन बार प्रयोग हुआ है। कविता छन्दों का लगातार साठ बार प्रयोग भी देखा जाता है (पृ० १६२ १६४ छं० ४१ ४८)। कई छन्द ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग केवल ने केवल एक ही बार किया है जैसे लपस्करिणी त्रिशंगी हीरक भुजंगप्रवाह और मनोरमा।

'रत्नबावनी' में केदार ने बीरनाथा काल की व्यंजनों के हित एवं अन्तर्मातृ प्राप्त से पूर्ण सौमी के साथ सप्त काल के प्रसिद्ध बोहा और छप्पय छन्दों को अपनाया है। कुम्हरिया (कुम्हरिया) छन्द का केवल एक ही बार प्रयोग किया गया है।

'विज्ञानपीठा' में एक बार फिर केदार के उरी छन्द-बैबिध्य के वर्णन होते हैं जो उनकी 'रामचन्द्रिका' में दृष्टिसोचर होता है। इस ग्रन्थ में 'रामचन्द्रिका' के संपूर्ण ही माहिक छन्दों की अपेक्षा बहिक छन्दों का प्रयोग बाहुल्य से हुआ है। परन्तु यहाँ अपरिचित छन्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। प्रायः एक छन्द का दो या तीन बार ही लगातार प्रयोग किया गया है। कुम्हरिया मरहट्टा तथा पाराकुलक छन्द केवल एक ही बार प्रयुक्त हुए हैं। धारु-वर्णन लगातार पाँच दण्डक छन्दों में हुआ है (प्र० १०, छं० १३ १७)। विष्णुमाधव तथा रंभा की स्तुति के प्रसंग में लगातार साठ-साठ बार भुजंगप्रवाह छन्दों का प्रयोग किया गया है (प्र० ११ छं० २१ २८ तथा प्र० ११ छं० ४० ४७ क्यमत्)। विरवनाथ-स्तुति लगातार पाँच बार छन्दों में हुई है (प्र० ११ छं० ३३ ३७)। ज्ञान-ध्यान की भूमिकाओं का विवरण लगातार उनीस बोहों में प्रयुक्त किया गया है (प्र० १७ छं० ४३ ९१)। ग्रन्थ

छन्दों की प्रयोग केदार ने बोहा, बोचक, तारक, चामर, मुन्दरी, सरस्वती तथा स्वमाता छन्दों का धार्मिक प्रयोग किया है।

‘जहाँगीर-जस जगिना’ में केदार ने धार्मिक कविता-सर्गों को अपनाया है। ‘बोहा’ को छोड़कर अन्य छन्द बहुत ही कम प्रयुक्त हुए हैं। स्वमाता भुजंगप्रपात समानिक्रम माराज निधिपासिका बोचक तथा चामर छन्दों का प्रयोग केवल एक ही बार हुआ है। सोरठा भी बार प्रयुक्त हुआ है। जहाँगीर बादशाह के दरबार का वृत्त तथा उसके प्रशासक वर्णन क्रमशः एक साथ बार तथा पाँच कविता छन्दों में हुआ है (छं० ४२ ४३ तथा छं० ३२ ३६ क्रमशः)। उदय माग्य संवाद के प्रसंग में सवातार स्याह छन्द्य छन्दों का प्रयोग हुआ है (छं० १४ २४)।

छन्द प्रयोग के क्षेत्र में केदार की मौलिकता—केदार के छन्द प्रयोग सम्बन्धी कौशल को परखने के लिए उनका सब से महत्वपूर्ण ग्रन्थ ‘राजजगिना’ है। इस ग्रन्थ में छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में केदार की कुछ मनीष उद्भावनाएँ दिखलाई पड़ती हैं। उन्होंने कुछ नए छन्दों का आविष्कार किया है जैसे सुपीठ (न न २, स न न=१८ वर्ण—प्र० १, छं० ४) मनहरन (न स २, २, २=१२ वर्ण—प्र० ११ छं० २३) मनोरमा (स स स स स न,=१४ वर्ण—प्र० ११ छं० ३४) तथा कमल (स स स न य=११ वर्ण—प्र० ३२ छं० १७)।

कवि ने दो स्तवों पर ‘बीरोसा घोर जयकरी’^१ छन्द का विधायक कर दिया है। कहीं ‘बीरोसा’ के दो चरण पहले आए हैं घोर कहीं ‘जयकरी’^२ के।

केदार ने ‘बीपाई घोर बीपाई’ में भी कोई चैर नहीं किया है। वे १६ माताओं के छन्द को भी ‘बीपाई’ लिखते हैं घोर १३ माताओं वाले को भी। उन्होंने ‘बीपाई’ में अन्त में गुरु मनु क भी विषय का वासन नहीं किया है^३।

१ जयकरी घोर बीरोसा दोनों छन्दों के मेलबद्ध चरण में १५ मात्राएँ होती हैं, अन्तर केवल इतना है कि जयकरी के अन्त में गुरु मनु (५) होता जबकि घोर बीरोसा में मनु गुरु (५)। जयकरी का अन्त मनु बीपाई भी है।

छन्द प्रत्येक, १ ४८।

- २ घोरर मंथिन के कु चरित । इनके हमरी सुनि भवनि ।
इन्ही सबे राज के राज । इन्ही से सब होय बकाज ॥
कामकूट से मोहन रीति । मनिमन से घति निचुर प्रीति ।
मदिरा से भारकटा गई । मन्दर उदर भई भ्रमभई ॥

—घ अ०, प्र० ११ अं० १४ और १४ (अन्तः)।

- ३ बीपाई (१३ माताएँ)—

सँपुर बाँग बरी घति भली । तिहि घर मोठिन की घावली ।

मन-मिरा मनु सों तन धोरि । निकसी जनु जमुना जल कोरि ॥

—घ अं० ३ १० अं० ८।

‘बीपई’ का उन्होंने एक विविध उदाहरण भी दिया है^१।

हिन्दी साहित्य में एक भाव प्रयुक्त वस्तु का वर्णन केन्द्र स्वर में कहीं उपलब्ध नहीं होता पर केदार के प्रयोगों में एक-दो स्थलों पर इस प्रकार का प्रयोग देखने में आता है जैसे के रनिवास की सीताजी की दाहिमों तथा महाराज बीरनिह के घन्टपुर ५, बनितामों के मस्तकिक-बचन के घन्टपरत उनक धिरोभूपन तथा मृकृटि के वर्णन में^२।

तत्क (कर्णायुषण) तथा बसकेसि के घन्टपर सुन्दरियों के धरीयों की सीमा का बचन कपस पड़टिया एवा हाकसिका छत्तों के दो ही बरनों में किया गया है^३।

यहाँ केदार का विशेष धिय छन्द ‘बीबोला’ भी उल्लेखनीय है। केदार ने ‘बयकरी और ‘बीबोला’ में विशेष धन्तर नहीं रखा है। वे ‘बीबोला’ को ‘बयकरी’ और ‘बयकरी’ को ‘बीबोला’ मिचते रहे हैं। ‘बीबोला’ के प्रत्यक्ष चरण में ११ मात्राएँ होती हैं और घन्ट में मनु मुख (15) होता है। यद्यपि ‘बीबोला’ पर यह सत्य पड़ता है किन्तु फिर भी है कथित वृत्त ही जिसका रूप है—म अ य न प^४।

केदार के पूर्ववर्ती तथा समकालीन हिन्दी भाषा के कवियों की भी रचनाओं में मनुकान्त छन्द का प्रभाव ही देखने में आता है। हाँ केदार के पूर्ववर्ती कवियों में एक महाकवि जन्म ऐसे प्रवृत्त हैं जिन्होंने एक स्थान पर मनुकान्त का प्रयोग किया है, जिसका उल्लेख स्व० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने ‘हिन्दी

बीपई (११ मात्राएँ)

सुन्दर नासिका बम मोहियो। सुमस्तकसि सुगत सोहियो।

धनस सतिन मनहू बपूष। सुधि तनत सति सफन कुगूम ॥

—उ० ब० प्र ११ ब० ११।

(१५ मात्राएँ)

(१५ मात्राएँ)

१ कछ राजत सूरज भस्म करे। जनु सबमन के धनुषय भरे।

(११ मात्राएँ)

(११ मात्राएँ)

पितवत पित डुमुबिनी जसे। जोर बकोर पिता हो लहे ॥

—उ० ब० प्र ११, पं १।

२ सीधफूल धुम बरुयी बराय। मनिफूल सोई तय भाय।

बेनीफूलन की बर भाय। भास भले बेबा मुग भाय।

तम मयरी पर तैय निबाल। बडे मनो बारही भाय ॥

—उ० ब० (अपठ्य), १० १९१ तय बी ६ ब० १ ११२ (अपठ्य से)

३ अति भुलभुलीन सह भनक भीन। कहउत पठाका जनु मबीन ॥

—उ० ब० (अपठ्य) १ १५९

४ संय मिले ज्युपि धिप्यन बने। पावक है तपतेजनि बने।

देखत बाध सदागन जने। देखन घोपपुरी बहू बने ॥

—उ० ब० प्र १ ब० १६।

भाषा और साहित्य का विकास' नामक ग्रन्थ में किया है^१। चम्प के पदवाच केसव ही पहले कवि हैं जिनकी 'रामचन्द्रिका' में भिन्न तुकान्त छन्द का प्रयोग उपलब्ध होता है^२।

भाषातत्त्व सूत्र—केसव ने अपने 'रामचन्द्रिका' नामक प्रबन्ध में जनक स्वर्णों पर भावों के आरोह प्रवरोह के अनुकूल छन्दों का प्रयोग किया है। छोटे छन्दों का प्रयोग कवि ने प्रायः उन स्वर्णों पर किया है जहाँ इतगति की भावस्पष्टता होती है। बड़े छन्दों का प्रयोग प्रायः ऐसे स्वर्णों में किया गया है जहाँ वाग्मीर्ष तथा भोज की भावस्पष्टता होती है। इतगति से फटकार बतसाने के लिए 'नागराज' (अ २, अ २, ग) नामक छोटे छन्द का कितना फड़कटा रूप प्रयोग हुआ है^३।

प्राप्त होते ही राम चम्प पुर की स्त्रियों के साथ बाटिका-बिहार के लिए जा रहे हैं। उनकी सवारी के लिए घोड़ा साया जाता है। घोड़े के बर्चन के लिए वेसव ने 'चंचला' (छाठ बार नमस्ते शुद्ध-अनु) नामक छोटे छन्द को चुना है जिसकी गति घोड़े के समान ही है। छन्द पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानो सचमुच घोड़ा ही खूब रहा है^४।

रामा-महाराजार्थों की मधुर बातों की ध्वनि से जगाया जाता है। केसव ने

- १ हरित कमल कांति कापि अंघ्रि गोरा ।
रसित पद्म गया फल राजीव नेला ॥
उरज कमल घोना नाभिकाय सरोज ।
वरम कमल हस्ती भीतया राजहंसी ॥

—पृ २११।

- २ पुननग मणिमाता पित्त चानुपयाता ।
जनक मुखद भीता पुत्रिका पाय सीता ॥
प्रक्षिप्त भुवन भर्ता बहुराजि कर्ता ।
धिर धिर अभिरामा कीय आभाणु भागी ॥

—पृ २११ पृ २१२।

- ३ पड़ी विरहि भोज बेद भीव सीर छड़ि है ।
मुकैर बेद के कही न मय सीर मंदि है ।
दिनेय जाय हरि बंठि मारवादि संघ ही ।
न मोनु चन्द मंदचुड़ि दग्ग की सभा नहीं ॥

—पृ २१२ पृ २१३।

- ४ भोर होत ही ययो नु राजलोक भय्य नाग ।
नामि धामियो नु एक इयितम सानुराग ।
पुन्र पुन्र चारिहूग संघ देखु के उदार ।
सीध सीलि सेत हैं ते पित्त जलम प्रवार ॥

—पृ २१३ पृ २१४।

श्रीरामचन्द्र को बचाने के लिए मधुर संपीठपूर्व 'हरिमिया' (१२+१२+१२+१०=४६ मात्रा घण्ट में दो गुरु) छन्द का प्रयोग किया है^१।

सब-कुछ के बाधों के प्रहार इतने भीषण हैं कि उनके सम्मुख राम की सेना के बड़े-बड़े युध्दपतियों के भी उनके कूट जाते हैं और वे इधर-उधर भाग पड़ते हैं। केदार ने संवत्स एवं विह्वल राम की सेना के बाधने के वर्णन के लिए 'मराच' (२ बार अन्ध-सप्त गुरु) नायक छोटे छन्द का प्रयोग किया है। ऐसा समझा है मानो छन्द भी भङ्गुलों के समान ही कम से एक पैर रखता और एक जटाता बसा जा रहा है^२।

रसगुञ्जल छन्द—छन्द का रस से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। रस-विशेष के उद्दीपन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि छन्द-विशेष का ही प्रयोग किया जाय जैसे संस्कृत साहित्य के बल्लस्थविन छात्र सविधीकृत तथा मुद्राप्रवाह छन्दों में बीर, रीति एवं भयानक रस अधिक प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। इसी प्रकार द्रुतविनमित्त छिन्नरिपी भासिनी तथा मन्दाकान्ता में बीर कदम और धान्य रस अधिक प्रभावपूर्ण हो जाते हैं। हिन्दी साहित्य के छन्दों में कवित्त सर्वथा तथा बरबं में शृंगार, कदम और धान्य, छप्पय और विमयी में बीर, रीति एवं भयानक मराच में बीर तथा घोड़ा चौपाई, सोरठा और बनासरी में साधारणतः सभी रसों का उद्दीपन होता है। प्रबन्ध छन्दों की रचना करते समय केदार के मस्तिष्क में ऐसी कोई बात विद्यमान न थी कि रस-विशेष के लिए छन्द-विशेष ही प्रयुक्त किया जाय किन्तु फिर भी इनके छन्दों से ऐसे उदाहरण लिए जा सकते हैं जहाँ रस के अनुकूल ही छन्दों का प्रयोग किया गया है। केदार ने अपने बीर-रसात्मक छन्द 'रतनबावरी' में यविकांश 'छप्पय' का ही प्रयोग किया है। एक उदाहरण उपस्थित किया जाता है—

रतनसेन कह जात सूर सामन्त सुनिस्त्रिय ।

कच्छ पैर पगचारि भारि ज्ञानतन निस्त्रिय ।

- १ जाविये विमोकरैव देवदेव रामदेव
भोर भवो भूमिदेव भक्त बरस पावे ।
बड़ा मन भक्त बर्ष विष्णु हृदय बातक बन
रुद्र-हृदय-कमल-मित्र जगत पीठ पावे ।
यवन कवित रवि समस्त भूभवि जोतिषत
छन छन छवि छीन होत सीन पीन धारे ।
मानहु परदेष्ट देष्ट बड़ादोष के प्रवेष्ट
छोर छोर तें विनात जात भूव धारे ॥

—रा. सं. प. १, ब. १५।

- २ भवे भवे नमू नमू छोड़ि छोड़ि लखनौ ।
भवे रही महारानी सर्वद बुन्द को गर्व ।
कुर्त सर्व गिरकुर्त विमोकि बंधु राम को ।
बस्ती रिताय न बसी बंधो नु भावदाम को ॥

—रा. सं. प. १६, ब. १९।

वरिय स्वर्ग धनधरिय हरहु रिपु गर्व सर्व धन ।
 बुरि करि संगर प्राज तूर-मण्डल भेदहु सब ।
 मधुसाह-नंद इमि कबवरद कह कह पिउहि करहु ।
 कपुहु सुखत हनिपाल के मवहु इस यह प्रन धरहु ।
 'रामचरितका' में रीर रस की व्यंजना के लिए बहुत से स्वतंत्र वर 'छप्पय'
 छप्प ही का प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

धन कियो भवभगुष साल सुमको धन साली ।
 नष्ट करी बिनि लखि ईध प्राप्तन से बाली ।
 सकल लोक संहरहु सेत सिर से बर डारो ।
 तप्त सिन्धु मिलि जाहि होइ सब ही तन धारो ।
 धनि धनल कोति नारायसी कह केदार बुझि जाय बर ।
 नृपुनंदन संभाव कठार में कियो सरासन पुक्त तर ।
 इसी प्रकार 'नराच' और 'वदस्वविल' में भी रीर रस का निरूपण हुआ है ।
 'वीरविहारे' वरिय भी मुख्य रूप से रीर रस-सम्बन्धी छप्प है । वहाँ रीर
 रस के वर्णन के लिए 'विमयी छप्प का प्रयोग वर्तनीय है ।^४ 'कवित' का प्रयोग
 प्रायः शृंगार रस के वर्णन के लिए ही देखा जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में एक स्वतंत्र
 प्रयोग है ।^५

१ उन्नावरी (केदार-काल) अं १ पृ २ ।
 २ छ पं ३ अं ४२ ।
 ३ नराच—बुरे प्रहस्य इत्यर्त्तं हृष्यार दिव्य धापये ।

कुमार धन विरा बाप छाह्यो पन धने ॥
 कपीत पुत्र कुट भो संहारि धन डारियो ।
 प्रहस्य तीस में तर्ष प्रहारि भुष्ट धारियो ॥

—छ पं (शृंगार) पृ २३८ ।
 वीर रस के भी सब देख लहरी ।
 विदा न देहो यह नैम भी धरौ । धमानुपी भुनि धवानरी करौ ॥

४ मुनि प्रोहित कुम्हे नाज धरकुं राज विरकुं रीर बड़े ।
 बई तई पज भगिज कुकुमि भगिजय सगिजय भुष्ट नुरन बड़े ॥
 नुरन तर छुटहि तबवर दहहि छुटहि कायक बचन धरौ ।
 कुम्हे कुलनायक बासप बापक मुख विनायक कह सनै ॥
 —छ पं ३ अं १५ अं १ ।

५ भोरहु की व्याप में भुषान राज बाहुरा मु
 रनि करबान धनिपाल नुरन रहौ ।
 बंजन ऊनरे भुटभेरहु के यमबल
 बाशिह को रन धनमुक पन ई र—

सबे नु मार सबेह मगो रति मन्मथ मोहै । (धनुस्वार प्रयोग तथा कारक-सोप)
सबे सिंगार सबेह सकल सुख सुखमा नष्टि१ ।

(‘घ’ तथा ‘य’ के स्थान पर क्रमशः ‘घ’ तथा ‘य’ का प्रयोग)
अन्य देह सीख देह राख सैह प्रालु बरत२ ।

(देह, सेह आदि पूर्वकालिक कव्य तथा ‘बसत’ वर्तमानकालिक कव्य)
पहिरे बकला सुबटा बरिहै । निज वायन बच बने बरिहै३ ।

(‘है’ के साथ पूर्वकालिक कव्य का प्रयोग)
जोख अमुस्तह भारीवी । निजि भरीरिया सुख पार्यी४॥ (भूतकालिक क्रिया)
कन्हर के छिर बीनो भार५ । (कारक-सोप)

तथा कीबो हुठो काज सबै सु बीनो६ । (भूतकालिक क्रिया-भुजित)

केशव संस्कृत के पंडित थे । अतएव उनके ग्रन्थों में संस्कृत शब्दों का उत्तम रूप में प्रचुरता से पाया जाना स्वाभाविक ही है । उन्होंने संस्कृत के शब्दों का ही नहीं अपितु अनेक स्वर्णों पर निःसंकोच संस्कृत की ‘सुबन्त’ और ‘विहन्त’ विभक्तियों का भी प्रयोग किया है । संस्कृत का सबसे अधिक प्रभाव उनके प्रयोग ‘रामचन्द्रिका’ पर परिलक्षित होता है । इसका कारण यह है कि यह ग्रन्थ पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए रचा गया था । यही कारण है कि इस रचना में कई इस प्रकार के छन्द लिखे गए हैं जिन के दो-दो धर्म निकलते हैं । संस्कृत भाषा के शब्दों के प्रयोग के बिना दो शब्दों का निकलना असम्भव था क्योंकि यह कुछ संस्कृत के ही शब्दों में है । ‘रामचन्द्रिका’ के कुछ शब्दों की भाषा तो धनिकान्त संस्कृत ही है७ ।

परन्तु इस प्रकार की संस्कृत गमित भाषा सर्वत्र नहीं मिलती है । संस्कृत की सुबन्त और विहन्त विभक्तियों तथा प्रत्ययों का प्रयोग भी केशव ने स्वच्छन्दता

१ घ न म १ अ० ४० (पुनी और लुने पाठ) ।

२ बहि, म ६, अ० १ ।

३ बहि, म १० अ० १६ ।

४ की दे न ३ १३ ।

५ बहि, ३ ४८ ।

६ घ न म १० अ० १६ ।

७ (१) सीता शोभन व्याह उत्तम सभा संसार समाधना ।

उत्तत्कर्म्म समग्र व्यग्र विजितावासी जनाशोभना ।

रामारामपुरोहितादि सुहृदा मंत्री महामंथरा ।

नागा देव समागता नृपवत्ता भूम्यापरा सर्वदा ।

—घ न० प० १०, अ० १० ।

(२) रामचन्द्रपदपद्मं भूम्बारकभूवाविजयलीयम् ।

केदारमति भुतनगा मोचनं बचरीकायते ॥

—घ न० म १ अ० १६ ।

(३) विदेवा निजाल जयीवैदकर्ता । निधीता हठी मुखयी लोकमर्ता ।

हृषा के हृषापात्र भीने निपात्री । प्रबोधो उठी देहि भी विन्दुमात्री ॥

॥ अ० म० ११, अ० १६ ।

पूर्वक किया है। इस प्रकार के प्रयोग विशेषतः 'रामचरित' में ही मिलते हैं। अन्य प्रबन्धों में तो वे कहीं-कहीं हो दिखाई देते हैं। नीचे उद्धृत किये गए छन्दों में इदंशिक प्रयोग इसके प्रमाण हैं—

त्रिनेत्र्या भूतल देहवारी ॥ (रा० अ० प्र० १० अं० ४१)

प्रियति बड़ा बाक्य वपुवारी (वही, प्र० १२ अं० ४३)

सीकनिद्रवित्तरति अब भीह विवेक अवकाश । (वि० पी० प्र० ११ अं० १०)

अनन्ता सर्व सबदा रास्वभुक्ता ।

(रा० अ० प्र० २८ अं० १)

समुद्रावधि स्पर्शतिर्मिमुक्ता ।

(वही, प्र० २, अं० ४१)

कीकरीह हर को यतु लांप्या ।

(वही, प्र० ८ अं० १८)

तरपि तत्रति रावन की सुखि

(वी० प० अ० पु० १६१)

हरति भुवचन बिल की रीति ।

(वही, प० १६२)

कुम्भस्तनि काकिह्यति नहीं ।

(अ० अ० अ० अं० १३२)

चतुःसमुद्र भुजिकाभि भुजिका विष्णुसिनी

(वि० पी०, प्र० ११ अं० २१)

प्रबोयो उबो देहि श्री विष्णुमायो ।

(रा० अ० प्र० ११, अं० ७)

बलि देहो सर्व कोटिना ॥

(रा० अ० प्र० ११ अं० ३)

अनेक्य पूजन यत्रि नु कर्यो ।

(वही, प्र० १७ अं० ३२)

आक्यहकीम वपु को तनत्राण वारी ।

(अ० अ० अ० अं० १३८)

मनसा बाधा करमना मांनि बिल की बात ॥

(रा० अ०, प्र० ६, अं० २३)

पुनि तुन वीगही कनका त्रिमुक्त की विरताज ।

(अ० अ० अ०, अं० १४१)

मुक्त वेत परापोष, सर्व मय इहि बार ॥

कहीं कहीं संस्कृत की समास और सगुण-व्यक्ति का का भी आशय लिया गया है। नीचे लिखे उद्धरणों में इदंशिक शब्द इस बात के साक्ष्य हैं—

मर्तामुतविद्मिनि तब को ही बुझबाह । (रा० अ० प्र० १० अं० २)

मोहति मुक समुद्र देससंस्मरति क्यों लोहू ॥ (वही, प्र० १ अं० ४७)

सध्व कहा तुम नक न तोरहि (वही, प्र० १२ अं० ७)

मनो सेपमय लोभिबं हरीलाचिन्वित सेज ॥ (वी० प० अ० प० १३०)

कुबेरलक्ष्मी द्वारा केदारवास के प्रबन्धों में यज्ञ-राज कुबेरलक्ष्मी शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं। यह रूपाभाषिक ही है। जिस प्रांत के के निवासी वे उस प्रांत के शब्दों का उनकी रचनाओं में व्यवहार होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनके प्रबन्धों में बहुत से कुबेरलक्ष्मी शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं—

मंत्रिनि स्वी बंटे मुख पाह । (वी० प० अ०, पु० १२४)

मारोछे को चार करि कहि कैसाव अनुभव । (रा० अ० प्र० ६ अं० २)

कुहिता स्मरी मुख पाय धरै । (वही, प्र० ६ अं० १)

बहुं बाह मंद्गो करै मान पावै । (वही, वही, अन्व ११)

कहुं मोह बाके बहुं मेव गुरे । (वही वही, अन्व १४)

जनु है यह गीमदाहन नहीं ।	(बही प्र० १३ पन् १६)
किन्हीं उपरि बरयो है ।	(बही, प्र० ६ पन् १४)
हवाई सी झुड़ी केसोबास पासमान में ।	(बही, प्र० १३, पन् ३८)
अपकवत बुलि के गेहुप ।	
कुसुम गुलाबन की मखसुरी ।	(बही, प्र० ३० पन् १४)
बूनन के बिबि हार, वीरिकन मोरमत पवार ।	(बही, प्र० २६, पन् २३)
मान कपोव जनु कुभी जनु जोलत ।	(बही, प्र० ३२ पन् ३)
सिब सिर ससि भी की राहु कसि सु छीने ।	(बही, प्र० १३ पन् ६२)
कून सी कोलि लई है ।	(बही, प्र० १७ पन् ४०)
बियो काकि के बु कहा बास ताको ।	(बही, प्र० १६, पन् २४)
बिन की सी पुबिका क करे कमरे पाहि ।	(बही, प्र० १२, पन् २)
यनि एक कोद सब पुन्य घब एक कोद की बीआई ।	(बी० दे० अ० पु० १३)
मानिकमय कुटिका छवि मने ।	(बही, पु० ११३)

शब्दों की शब्द—केसव के प्रबन्धों में कहीं-कहीं शब्दों की भाषा के शब्द भी परि-
लक्षित होते हैं। 'बीरसिंहदेव चरित' में शब्द प्रबन्धों की संख्या शब्दों के शब्द प्रबन्ध
माना में पाए जाते हैं। सम्भवतः इसका कारण यह है कि यह शब्द दोहा चौपाई
छन्दों में लिखा गया है और इन छन्दों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त भाषा शब्दों महा-
कवि तुलसीदास द्वारा प्रमाणित की जा चुकी थी। केसव ने यहाँ यहाँ दिखाव
रिम्झत हीन कीन पादि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। निम्नलिखित
उदाहरणों में इतिहासिक शब्द इसके प्रमाण हैं—

एक रहा ऊ रहा अति हीन सुवेत हुई बिधि के बन गरी ।

(ग० अ०, प्र० ६ पन् २३)

प्रमात आपनी दिखत छोड़ि बाल जाह की ।

रिम्झत राजपुत्र मोहि राम ल छड़ाई की ।

(बही, प्र० ७, पन् २३)

हंति बभू ल्यों बृग दीन ।

(बही, प्र० ११, पन् ४०)

तिनको कपु बरगत चरित जा बिबि समर सु कीन ।

(रत्नवावनी, पु० १ पन् ३)

बैहि काइ जो मो बिन मान ।

(बी० दे० अ०, पु० २)

ही लोकीं सिद्ध सिख एक ।

(बही, पु० १३)

मो कहूँ देह लबाव बड़ीन ।

(बही, पु० २४)

पवन पाइ ज्यों नम्र अपार ।

(बी० दे० अ०, पु० ३०)

मैं तेरीं दलि बभू बंधावो बापन कहूँ ।

(बही, पु० ६)

छटि अतिवे की इतिहास सीह ।

(बही पु० १४२)

राजा बीरसिंह ली जात ।

(बही, पु० १३)

विदेशी शब्द—अरबी-फारसी आदि विदेशी भाषा के शब्दों का भी केसव ने

बड़ी स्वतन्त्रता के साथ प्रयोग किया है। केसव का आदिमार्ग चक्रवर और अर्धापीर

के समय में हुआ था जब कि हिन्दुओं और मुसलमानों में किसी प्रकार का वैमनस्य न रह गया था और वे एक दूसरे से बहुत कुछ कुछ मिल गए थे। हिस्सी के बाग़साह के शीरबल रहीम खानखाना याहि बरबारियों के सम्पर्क में भी केदार भाते रहते थे। अतः उनके प्रबन्धों में धरती-कारती के शब्दों का प्रयोग प्राक्पञ्चमक नहीं है। परन्तु कवि ने धरती-कारती याहि बिदेसी भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिकतर तत्सम रूप में ही किया है और इस प्रकार के हिन्दी भाषा की प्रकृति की रक्षा भी भली प्रतिष्ठ कर सके हैं। बिदेसी भाषा के शब्दों के प्रयोग की वृद्धि से कवि का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'बीरसिंहदेव-चरित' है। केदार द्वारा प्रयुक्त कुछ बिदेसी शब्द निम्नांकित हैं—

कुवा न केनिये कहूँ कुवान बैव रसिये ।	(रा० ख० प्र० १६, अन्त १०)
करिपति सों तब ही सुबाने ।	(बही, प्र० १३, अन्त १६)
बीरौल्लु अति और में सनो साहि सिखान ।	(दी० दे० ख०, पृ० १६)
बामनस हनुमन्त नल भोल मराठिन साव ।	(रा० ख०, प्र० २६, अन्त २७)
करी साहि सों जाइ भिन्द ।	(दी० दे० ख०, पृ० ३०)
सका मैयमाला पिछी पाककारी ।	(रा० ख०, प्र० १६, अन्त २१)
कमान मान सों बिबान कु मकरच जाइयो ।	(बही, प्र० १८, अन्त ४)
कमान कसो मोला हनुमान जान्यो लक को ।	(बही, प्र० १३, अन्त १८)
बुनबाइन कमान छिट्टि संजुव तब जायक ।	(दी० दे० ख०, पृ० १)
हों परीव हुन प्रवठ ही सवा मीमनिदाव ।	(बही, पृ० १६)
हो गैव रावत वनी ।	(बही, पृ० २६)
तेही बिच अहिरी कर नये ।	(बही, पृ० २७)
कै तसखेन ग्ये तब पाह ।	(बही, पृ० १३)
बहु दुखान घु साधिन ईस ।	(बही, पृ० ३७)
भर्न मेरी यह जानिये धाव ।	(बही, पृ० २१)
कोरि सखवर के परमान ।	(बही, पृ० ३२)
हमजीव हमरत वै गयो ।	(बही, पृ० ४८)
हमने बीनबि बीनी बारि ।	(बही, पृ० ३०)
करी मराठिन काकी जाइ ।	(बही, पृ० ३१)
तापी नकारो बालमडीन ।	(बही, पृ० ६०)
कहूँ तब दसम खसम जिन जय ।	(बही, पृ० ६०)
माही मजल मराठन साव ।	(दी० दे० ख०, पृ० १०)
सानी कलक समानी मुदि ।	(बही, पृ० ६०)
देखै तिमुर हमसो जाय ।	(बही, पृ० ६०)
पबुसाहि की तेव बह्यो दिमही तिन पानी ।	(बि० गी० प्र० १ अन्त १७)
नाम करै बहु भाति अहिरी ।	(बही, प्र० १ अन्त २३)
तब ही पूँच जियो परमान ।	(दी० दे० ख०, पृ० २६)

ता पीछे भसचार झूर केसब सब मोझन ।

भलत भई बरुचौप बाबि मकर बर मोझन ।

(रतनदासनी कव्य २६, पृ० ४)

अलमि के आलमि कीं कलक के आलमि कीं जानलामा ।

(ज० ब० ख० कन्द १)

अम बहोवीर आलमफनाह सबस साहि अकबर सुतन ।

को धर्म राजराजा जिते जीति लिये सब के पतन ॥ (बही, कन्द १०)

केदोराय पीछवान राजत हैं राजमि से । (बही, कन्द १२)

आहि बड़ाई बेल वै लोई बड़ो अहान । (बही, कन्द १६)

धूमत ही अमक उमुक ज्वासे ज्यों भरत हैं । (बही, कन्द १२)

बेसी धनुसासन—कहीं-कहीं 'बस्' से बरसाये 'बस' से बसाये आदि क्कों का भी प्रयोग दिखलाई देता है जो इस बात का द्योतक है कि केदार-विदेशी भाषा को भी भसी-भांति अपना बनाना जानते हैं ।

कै दिनती निस कस्यप के तिन वैच अवेच सब बरसाये ।

(रा० ख० प्र० १६, कन्द १६)

विभीषण तन कानन उखारे बू ।

(रा० ख० प्र० १६, खं २०)

सत्कुत धीर विदेशी भाषा के मेल से बने अख

बो-एक स्वर्णों पर संस्कृत तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों के मेल से भी केदार ने नये अख बनाये हैं अर्थात् भासमपति (ब० ब० ख० खं १६९) भासमनाथ (बी० दे० ब०, पृ० ४२) आदि ।

शब्दों का बरसा हुआ रूप

केदार ने कुछ स्वर्णों पर मात्रापूर्ति प्रमत्ता पुक के लिए, भाषा-विज्ञान के नियमों का भी कोई ध्यान न रखते हुए शब्दों का रूप इतना बदल दिया है कि वे सर्वथा नवीन अख ही जान पड़ते हैं । यहाँ तक कि उनका धर्म विकासना भी भटल सा हो जाता है अर्थात् 'साधु' के स्थान पर 'साध' 'साजक' के स्थान पर 'सायक' 'बिस्पा' के स्थान पर 'बिषा' 'समाय' के स्थान पर 'माह' ।

१ अक्षेप धास्त्र विचारि कै जिन जानियो भव साध ।

—रा० ख० प्र० १ खं ४ ।

बरपा कस फूलन सायक की ।

—रा० ख० प्र० २, खं ११ ।

समायो धानन्य धर्म न माह ।

—बी० दे० ब० पृ० ११ ।

मधिरा पी बिस्वा पेहु माह ।

—बी० दे० ब० पृ० ४ ।

कहीं-कहीं तुक के लिए असाधारण प्रयोग भी हुए हैं जैसे 'वत्त' का बतने के अर्थ में प्रयोग—'वहूँ तहूँ बसत महामय मत्त । बर बारन बारन दत्त ।' (रा० ५० प्र० १ छ० २५) परन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं ।

गढ़े हुए शब्द

कहीं-कहीं केसव ने 'एए शब्द' गढ़ भी दिये हैं, जैसे बालकटा दासकटा आदि (अति कोमल केसव बालकटा । बहु बस्कर राकस दासकटा । रा० ५० प्र० २ छ० १७) ।

विकृत एवं फासतु शब्द

छन्द की गति अथवा मात्रापूर्ति के साधन के कभी तो कवि को अल्प विकृत करने पड़े हैं जैसे कर्न बर्को आदि और कभी अत्यन्त छन्दों से, किस आदि का प्रयोग भी करना पड़ा है ।^१

अप्रचलित शब्द

केसव ने अपने 'वीरसिंहदेव-चरित' नामक ग्रन्थ में कुछ इस प्रकार के छन्दों का भी प्रयोग किया है जो आजकल प्रायः अप्रचलित हैं जैसे बिबूचे सांवर आदि ।^२

पवित्राक्त शब्द

केसव पुराण-श्रुति के जोर से अतः उनकी भाषा में कथावाचकों के द्वारा प्रयुक्त 'जात मये' 'होत मये' 'मये' आदि पवित्राक्त शब्दों का भी पाया जाना स्वामात्रिक ही है ।^३

१ भीम गति ताड़का मुनय सावि कर्न आह । —रा० ५० प्र० १, छ० २ ।

बैबन पुन हस्यो, पुष्पन बस्यो, हस्यो अति मुरनाह ।

—रा० ५० प्र० १ छ० २० ।

हु घानी गहे केस सकैय राती ।

—रा० ५०, प्र० २६ छ० १६ ।

के अति कवि कवि कपास यह कि कपासिक कवि को ।

—रा० ५० प्र० २६ छ० १० ।

२ बहुत बिबूचे तो लें धनें ।

—वी० ६० व० १० ।

बैबन मयर सांवर गढ़ धाम ।

—वी० ६० व० १० ।

बात कहहि अपने जगमग ।

—वी० ६० व० १० ।

३ अलङ्कारहि बार के लंकहि बारि के नीकेहि पात मयी जू ।

—रा० ५०, प्र० १६, छ० २० ।

हस मये तब मूर मुवावर पावक शुभ मुवा रपपारी ।

—रा० ५०, प्र० १६, छ० २६ ।

मुकग्य मये निरिराज हरे ।

—रा० ५०, प्र० १६, छ० २८ ।

कत भई मये उठि घातन तै ।

कपु स्वारण ओ न मयी बरमारण ।

—रा० ५० प्र० १६ ।

(स) सौष्ठव

माया कि धर्मों में भौतिक धर्म है भावव्यवस्था जिसका विशेषण पूर्व-पूर्वों में किया जा चुका है। और भाव-व्यवस्था के साधन हैं ससमा-व्यवस्थादि रास्य शक्तियाँ प्रसंकार तथा मुहावरें और लोकोक्तिर्वा। कैशवदास की माया पर दृष्टिपात करने से विहित होता है कि उन्होंने धर्मिणा शक्ति से धर्मिक काम किया है। धर्मिणा शक्ति से साम्राट् सांकेतिक धर्म का ही बोध होता है भौमि धर्मका बचठा से प्राप्त धर्म का नहीं। काव्य में भवत्कारणपूर्व सौन्दर्य माने के लिए ससमा जितनी आवश्यक है उतनी धर्मिणा नहीं। कुछ मुहावरों को छोड़ जहाँ ससमा स्ति पत है, कैशव ने सांकेतिक धर्मों का कम सहारा लिया है। धर्मिणा और ससमा के प्रतिरिक्त व्यवस्था नाम की एक सीसरी शक्ति धीरे होती है जिसके द्वारा रस की सिद्धि होती है। व्यवस्था शक्ति का आशय लिए मिला भाव व्यवस्था रस की निष्पत्ति नहीं हो पाती। व्यवस्था धर्मिणा और ससमा दोनों पर आधारित हो सकती है। धर्मिणा पर आधारित व्यवस्था में समन्वयता एवं सौन्दर्य विधीय होता है। कैशव ने ससमा मूलक व्यवस्था की उपेक्षा की है। हाँ धर्मिणामूलक व्यवस्था का प्रयोग उन्होंने अपने संवाचों में कहीं कहीं अवश्य किया है जिससे माया और भाव की सम्पन्नता की समुचित बीबूझि ही हुई है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

रावण ने हनुमान से पूछा कि 'तुने समुद्र किस प्रकार पार किया? उन्होंने उत्तर में कहा 'बसि गोपब। पुन' प्रसन्न हुआ कि 'तू किस काम से यहाँ आया है? उत्तर मिला 'मैं सीता जी के शोर को सुनना चाहता हूँ। 'तू बन्धन में कैद पड़ा? इस प्रश्न के पूछे जाने पर उत्तर मिला 'मैंने तेरी पत्नी को छोटे समय अक्ष से देखा था, उसी पाप के कारण बन्धन में पड़ना पड़ा'। यहाँ व्यवस्था यह निकलती है कि पर स्त्री के केवल मर्मों से छूने मात्र से मेरी यह दुर्वृत्ति हुई है कि मुझे बन्धन में पड़ना पड़ा तो समझ ल कि तू भी पर स्त्री अपहरण करने वाला है किस बच्चा को प्राप्त होगा। यह भाव व्यवस्था के द्वारा कितने अच्छे ढंग से व्यक्त किया गया है।

जब परशुराम राम बबुसा हो अभियन्त्र का संहार करने की छान सेते हैं तो श्रीराम जी कहते हैं कि 'हे परशुराम जी! समस्त संसार को पचवित कर जो बिजय-अक्ष आपने प्राप्त किया है उस यश का भार हम बालकों (सहमन और शत्रुघ्न) पर क्यों सापते हैं? व इस भार को कैसे उठा सकते हैं?' अथ सीधे सादे हैं पर इसी व्यंग्यार्थ यह निकलता है कि ये बालक आप से सड़ बैठे श्रीराम आपसे होश ठीक कर बैसे शत्रु संहार करवाते भीजिए।^१

१ सापर कैसे तर्फी जेत गोपब काम कहा? सिय बोरहि देखो।

कैसे बंवायो? तू पुनरि तेरी सुई ब्रु सोवत पावक सेतो ॥

—रा. बं., प्र० १५, बं. १।

२ भृशुक्ल कमस शिनेछ सुनि पौति सकस संसार।

क्यों कहि हम सिगुन पै बारत हों यश-भार ॥

—रा. बं., प्र० ७, बं. १८।

सदमय भी के मुख में सब-कुछ से मिड़ने पर कुछ सदमय से कहते हैं कि 'तू तो मैं मरुछात हूँ न मेघनाथ हूँ मैं तुम्हें रण में देखकर भयभीत न हो जाऊँगा । हे सदमय जब तक तुम सर्वत्र यही रहे हो किन्तु जब मुझसे मिड़कर अपनी माता को घनाब मल बनाओ । ' यहाँ व्यञ्जना यह है कि यदि तुम इस मुख में मड़ोये तो तुम्हें मारे बिना नहीं छोड़ूँगा । इसी प्रकार मुख होने पर सब विभीषण से कहते हैं कि हे कायर ! या तू ही तो एक अपने कुल का भुषण है । यहाँ व्यञ्जना है कि राम रावण-युद्ध में जब लड़ने का अवसर या तक तो अपने भाई को छोड़ भागा या धीर धनु से बा मिला या तेरे से बढ़कर नीच कौन है । 'भूषण' शब्द से विपरीत सभाषा का किटना सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

कवि प्रायः चोड़े ही चर्यों में गहरा भाव छिपा लेते हैं । तुलसीदास ऐसे प्रयोगों में अग्रगण्य हैं । सीता-सीत्यर्थ का वर्णन करते समय उन्होंने प्राय इधो पड़वि को घपनाया है । किन्तु केदार का ऐसी वृत्तियों पर पूर्ण स्वाविरल नहीं था । जहाँ वे घान्तरिक भाव को चर्यों में बँधने में असमर्थ रहते हैं वहाँ वे कुछ नुने व्यञ्जना की वृत्ति बड़ी ही धनुठी हो जाती है । विद्वान्मित्र के साथ राम के विदा होते समय बरारण की नायिक वेषना की निम्नलिखित पंक्तियों—

राम चलत नृप के पुग लोपन ।
बारि भरित गए बारि रोचन ॥
पायनि परि श्रुति के लखि भीनहि ।
केदार छति गए भीतर भीनहि ॥

(रा० च० २० २, छ० २७)

में तथा बिजकूट में दसरथ की रानियों की ध्वजा को
तब धुधियो रघुराज । मुख है पिना तन माइ ।
तब पुग को मुख बोह । कम से उठी सब रोह ॥

(रा० च० २० १० छ० ३)

में कवि ने चोड़े ही चर्यों द्वारा लफनतापूषक व्यक्तित्व किया है । किन्तु इस प्रकार के स्वतः बहुत ही कम हैं ।

मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

मुहावरों तथा लोकोक्तियों की योजना भाषा की धीर सचके द्वारा मान को सुन्दर बनाने के विचार से की जाती है । इनके प्रयोग से भाषा में एक विशेष काव्य

१ न हों मरुछात न हों दण्डीत । किनोकि तुम्हें रण होठि न भीन ॥
तथा तुम सदमय जतन-बाध । करी जनि पापनि मातु घनाब ॥

—छ च म ११ पं १० ।

२ घाव विभीषण तू रघुवधन । एक तुही कुल की निज भुगण ॥
—छ च म १२ पं १६ ।

(पॉमिघ) धा जाती है। केदार ने प्रबन्ध मुहाबरे और लोकोक्तियों से भरे पद्रे हैं। केदार ने मुहाबरों का प्रयोग अन्य प्राणों की तुलना में 'रहिकप्रिया' नामक ग्रन्थ में अधिक किया है जसा कि धारै के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। लोकोक्तियों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया गया है। केदार द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहाबरे एवं लोकोक्तियाँ यहाँ भी जाती हैं।

मुहाबरे

कौन्ही न लो कान ।	(रा० पं० प्र० ४ खं० ७)
राबण के वह कान परबो काज ।	(बही, खं० १)
बीस तिसे बल बिजय साबि ।	(अ० अ० पं०, खं० ५३)
राजलभा सिमुका करि केबो ।	(रा० पं० प्र० ४ खं० २)
हौं बहुरै गुन माहिहो कैरो ।	(बही, प्र० १२, खं० ५)
लो वर लँ किन गुन-गुन बीरै ।	(बही, प्र० ७ खं० २२)
झोबपुरी नहँ पाव परै ।	(बही, प्र० ६, खं० १०)
तुन बिच देह बोली सीव गंभीर बाजी ।	(बही, प्र० १३, खं० ६१)
घाज संतार लो पाँव मेरे परै ।	(बही, प्र० १३, पृ० १)
अमर ली कम कमल पूरै ।	(रा० पं०, प्र० ३५ खं० ८)
पेटि पोष्ट पेट परबो भू ।	(सि० ली० प्र० ३, खं० ३०)
बातनि बातनि कन्तर परबी ।	(सी० दे० पं०, पृ० ६७)
बिहना पूर्यो कम न मत्त ।	(बही, पृ० ७)
बँबक कठोर ठेलि कौनै बसप्रमाट ।	(रा० पं० प्र० २७ खं० ७)
पेट चद्बी पलना बलका बड़ि	बीक बड़्ही (बही, प्र० १६, खं० २४)
नाच नचाव कँ छाड़ि बिपौ ।	(बही, खं० १४)
पाछँव प्रकट कट कट करि डारिबे ।	(अ० अ० पं०, खं० १८६)
बोलत बोल पूज से मरै ।	(रा० पं०, प्र० ३९, खं० १७)

लोकोक्तियाँ

होगहार हँ रही निरै मिटी न मिटाई ।

(रा० पं०, प्र० ७ खं० २०)

होय तिमका बय बय तिमका हँ दूरे ।

स्वाव बहिने को समर्थ न धूँव क्यों पुर जाय ॥

(बही, प्र० ६, खं० १६)

तिरयो कम की मेट न जाय ॥

(सी० दे० पं० पं० १९)

कादपी बुच न पावै हाव ।

(बही, पं० ७३)

कहीं-कहीं बुन्देलखण्डी भयवा भयभी भाषा के मुहावरों तथा लोकोत्पत्तियों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे

भूठ पाठ कंठ पाठकारी काठ मारिये ।

(३० अ० ५, छं० १८३)
 दूरि करतल दया बसंत देह बंछत बंसा । (रा० ५, अ० २७ छं० १५)
 रामबन्ध कष्टि छी बटु बांधी । (बही, अ० ५, छं० ४१)
 बाबं बटु धी रघुनाथ हाथ कै लीनों । (बही, बही, छं० ४२)
 बटु बारी बूजी भाखरी । (बी० दे० ५, पृ० ६)
 इनके हमारे सुनि मतमिथा (रा० ५, अ० २३, छं० १४)

तो एक स्वभाव पर केदार ने मुहावरों का मनमाना प्रयोग भी किया है यथा
 बुझ देख्यो क्यों कासिह ल्यों व्याजहु देखो । (रा० ५, अ० ६, छं० २१)
 मैं बाटाउ-भ्योतनी के शुभ भवसर पर 'बुझ देखने' का प्रयोग अमानसिक है।
 इसी प्रकार

रघुनाथ पाहुकनि, मन बच प्रभु बनि सेवत संभुनि जोरे ।

(रा० ५, अ० २१ छं० २२)

में 'संभुनि जोरे' का प्रयोग समीचीन नहीं हुआ है। यह मुहावरा हाथ जोड़ने के
 अर्थ में रूढ़ नहीं है।

भाषा की सजीवता

केदार की भाषा 'रे' 'यू' आदि साधारण बोलचाल के शब्दों का प्रयोग से
 सजीव बन गई है। किसी को बताने में वह निरतनी सक्षम है यह जानना हो तो
 निम्नलिखित शब्दों में 'रे' का प्रयोग देखिए—

बेट बह्यी बलना बलवा बड़ि पासनिहु बड़ि मोहू मह्यी रे ।

बोक बह्यी बिनतारि बह्यी पब बानि बह्यी पब पब बह्यी रे ।

घोम बिमान बह्यी रह्यो कहि केदार तो कबहुं न पह्यी रे ।

बेतल नाहि रह्यो बड़ि बिन ली बाहुत मुड़ बिताहु बह्यी रे ॥

(रा० ५, अ० १६, छं० २४)

'रे' के स्थान ही 'यू' का प्रयोग भी केदार ने भी शोभकर किया है।
 मन्दोदरी बिन भाव में रावण से क्या कहा चाहती है ? ध्यान से सुनिये

राम की बात को जानी जोराय तो लंका में भीरु की बेलि गई यू ।

क्यों ररु भीतहुये तिनसों बिनकी बनुरेरा न लीय गई यू ।

बीत बिसे बलवन्त हुते यू हुती दूग कावक कप रई यू ।

छोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयम्बर क्यों न लई यू ॥

(रा० ५, अ० २५ छं० ६)

भाषा में गुण

बीचनी के समान रस के उत्कर्ष-हेतु-रूप स्थायी बर्णों को 'गुण' कहा जाता है। गुण यद्यपि उत्कर्ष के हेतु हैं तथापि इनका सम्बन्ध बर्णों और उसके द्वारा वाचकों से ही है। मुख्य रूप से तीन गुण माने जाते हैं माधुर्य, भोज तथा प्रसाद। इनका सम्बन्ध चित्त की तीन वृत्तियों से है। माधुर्य का हृति प्रयत्ना प्रवर्णनीयता से है भोज का बीप्ति प्रवर्णन से और प्रसाद का चित्त से प्रवर्णन चित्त को बिना देने से है। केदाब के प्रवर्णों में माधुर्य भोज तथा प्रसाद तीनों ही गुणों का यथास्मान् समावेश हुआ है।

माधुर्य

माधुर्य गुण की अभिव्यक्ति 'ग' को छोड़कर टर्ब तथा महाप्राप्त रहित स्वयं एवं सर्व के अन्तिम बर्ण से युक्त बर्णों वाली समास रहित यथा मध्य समास वाली कोमल-कमल पदावली द्वारा होती है। यह गुण सम्मोष शृंगार, कथन, विप्रलम्भ तथा शान्त में कमय बढ़ता है।

माधुर्य-गुण की सब से अधिक स्थिति 'रसिकप्रिया' में है जैसा कि भाषापी पृष्ठों में दिए गये विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। केदाब के प्रवर्णों में से कुछ छन्द प्रबलोकनार्थ नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।

- १ फल फूलन बुरे तस्वर करे कोकिल कुल कलरव डोरे ।
प्रति मल मपूरी पियरल प्ररी बन प्रति बावलि डोरे ॥
छारी छुक परकित पुन बन मरित भलनमय घरन बलम ।
देते रघुनायक सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु बार्ने ॥

(रा० नं०, प्र० ११, पं० १०)

- २ हापी न साथी न छोरे न देरे न गार्ने न छार्ने कूठार्ने बिल्लेह ।
तास न नास न पुन न मिम न भित्त न सीय कई संय रहें ॥
कैदाब काम के राम बिसारल और बिकाम रे काम न देहें ।
बैति रे बैति बर्णों चित्त अंतर अंतक लोक अकेलौ बहें ॥

(रा० नं०, प्र० १६, पं० २६)

भोज

भोजगुण का प्रगटीकरण टर्बप्रधान तथा संयुक्तबर्णों द्वित्व और महाप्राप्त एवं सम्मेलन-समास वाले पदों द्वारा होता है। यह गुण बीर भीमरस एवं रीढ़ रस में कमय उत्कर्ष को प्राप्त होता है। इस प्रकार के लक्षण 'रागचन्द्रिका', 'रत्नवाचनी' तथा 'बीरसहदेव-चरित' में ही अधिकतर देखने में आते हैं। कुछ छन्द उदाहरणार्थ यहाँ दिये जाते हैं—

प्रथम टंकीर जुकि धारि लहार नर
चंद कोदण्ड रह्यो मरिह नखण्ड को ।
आति प्रबलता प्रबल धारि दिपलल-नल
आति अविशाल के बचन बरचंड को ।

सोयु बे ईश को सोयु जगदीश को
 शोभ उपजाह भुवनाय करवण्ड को ।
 बाधि बर शर्व को साधि धरवर्ष,
 यनुभम को दाव यमो भदि ब्रह्मण्ड को ।

(रा० नं० प्र० ५ पं० ४३)

मँकर घर, सब नीर समा घंडत सन मुक्तिप ।
 तुम साथी समरभ्य धनु कहं सस ॥ मुक्तिप ॥
 साज काज परि साज भीहु लरि लरि पश निजबहु ।
 बिकट कटल में हटक बटक मल भुवि महं विजबहु ॥
 यह समुप मेरो वचन केसव चित पर पुनहु धन ।
 भरहु ती भो सज्जोहु बलहु भजहु ती मनि जाव धन ॥

(रत्नवाक्यी छं० २५)

भीर से भट भूरि मिरे बल जेत करे करतार करे कं ।
 मारे मिरे रण भुवर भुवन ठारे ठरे हुय कोट धरे कं ॥
 रोप छो जग हुने कृपा केसव मुनि मिरे न डरेहु गरे कं ।
 राम बिसोकि लहुँ रस धनुमुत जाये भरे नयनाय परं कं ॥

(रा० नं० प्र० १८ छं० १६)

प्रसाद

प्रसाद गुण हाथ चित में एक साथ धर्म का प्रकाश हो जाता है । जहाँ माधुर्य तथा शोक सुषों का सम्बन्ध रस-विषय से ही होता है वहाँ प्रसाद गुण का सम्बन्ध सभी रसों से होता है । अनन्यमान से धर्म-अतीति कराने वाले घरम तथा सुबोध राज्य ही प्रसाद गुण के ध्वजक माने गए हैं । भाषा के विचार से यद्यपि केसव की अधिकांश रचनाएँ प्रसाद गुण से भरी पड़ी हैं परन्तु हिन्दी-जगत् ने उनके प्रति अनुशार धारणाएँ ही प्रकट की हैं । किसी ने उन्हें 'कठिन काव्य का प्रव' कह डाला है तो कोई सिधता है कि यदि किसी कवि को बिनाई न दीनी हो तो केसव की कविता का धर्म पूछे । स्व० आचार्य दुषल इस सम्बन्ध में मिलते हैं —

केसव को कवि-हृदय नहीं मिला था । उनमें वह सहृदयता और भावुरता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए । वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने चरित्ररूप और रचना-शैली की भाव कथना आहुते थे । पर इस काम में सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हें प्राप्त न था । अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेक संस्कृत काव्यों की उक्तियाँ लेकर भरी हैं । पर इन उक्तियों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में उनकी भाषा कम समर्थ हुई है । पदों और वाक्यों की स्पृष्टता अद्यतन प्राप्त हो गयी है प्रयोग और सम्बन्ध के धारा-आदि के कारण भाषा भी धाराप्रवाह और ऊबड़-खाबड़ हो गई है और तात्पर्य भी

१ कवि बहूँ भीम न बहूँ बिनाई पूछे केसव की कविताई ।

—मित्रगुप्त विनोद, २० ४८६ ।

केदारदास जीवनी, कला और कविता

स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हो सका है। केदार की कविता जो कठिन नहीं जाती है उसका प्रभाव काव्य उनकी यही भूटि है—उनकी मौखिक भावनाओं की सम्मीरता या व्यक्तित्व नहीं।”

इन मतों के उत्तर में हमारा निवेदन है कि केदार की ‘रामचरित्रिका के कुछ छन्दों के नियम में तो सक्त कथन साथ माने जा सकते हैं परन्तु ‘रामचरित्रिका’ में ही ऐसे छन्दों की कमी नहीं है जिनका धर्म पढ़ते ही हृदयंगम न हो जाता हो। केदार के प्रमुख प्रवक्तृओं के भी अधिकांश छन्द प्रसार युग से भरे पड़े हैं। उनकी भाषा भी प्रांजल सरल एवं सुबोध है और भावों के व्यक्त करने में सक्षम है। रीतिप्रथाओं में भी ‘रामचरित्रिका’ के बार-बार छन्द ही ऐसे हैं जिनमें पाश्चित्य प्रचलन की प्रवृत्ति के कारण विलप्यता या गंभीरता छन्दों के साथ मिलती है ही वैसे कि माने के विवेचन से स्पष्ट हो जाएगा। अतः कुछ बुरे हुए छन्दों को लेकर इस प्रकार की बारम्बार व्यक्त करना केदार के साथ अन्याय करना है। केदार के प्रवक्तृओं में से प्रसार-युग-पूर्व का छन्द नीचे दिए जाते हैं—

बानी कहा न देव जोर पुनि कहा न हरई ।
सौमी कहा न लैय धाम पुनि कहा न नरई ॥
पापी कहा न करे, कहु न बेचें ज्योपारी ।
मुकवि न बरने कहा कहा साधु न संचारी ॥
पुनि महाराज ननुसाध-गुन बुर कहा नहि बंई ।
कहि केदार घर बन जाहि बै साधु कहा नहि बंई ॥

(रत्नदासजी, पृ० १५)

मांगहु मन्त्री निज पुन प्रभु सकल कसब जान ।
मांगहु भोजन जवन भूमि भोजन भूषण वन ॥
मांगहु सासन ससन जान बरिषान जानि नि ॥
मांगहु नाम तबान राय कहुनाग भीष नि ॥
कहि केदार मांगहु सकल पुर पुन समेत बनु प्रभु बानी ।
सब ईही को कहु मांगिही बच न ईही धायनी ॥

(दी० ३० ब० पु० ५८)

होत रंक से राज राज ते राजु राज पुनि ।
राज राज ते देव देव ते देव देव पुनि ॥
देव देव ते ईत ईत ते पंकर जानहु ।
पंकर हूँ बलि सायलोक संतत नृत मानहु ॥
आव हो जाने किहि नरक कम बरुषी पदितानु है ।
कहु कताव उधिन को धिये जीव विष्णु हूँ जातु है ॥

(अ० ३० ब०, पृ० २२)

पुन मित्र कसब के लजि बलत दुसह सीप ।
कौन के भद्र कौन को बुहिता भूषा सब सोप ॥
होत कस्य सतापु देख तऊ सबै नदि जात ।
संसार की गति जानि की प्रब कौन को पछितात ॥

(मि० गी प्र० १३ छं० ७)

दूटै दूटनहार तव बापुहि दोखत होय ।
एवै प्रब हर के धनुष को हम पर कीजत रोय ॥
हम पर कीजत रोय काल मति जानि न जाई ।
होमहार छँ रहँ मिटै मिटी न पिटाई ॥
होमहार छँ रहँ मोह सब सब को हूटै ।
होय तिनूका बख बख तिनूका छँ दूटै ॥

(रा० क० प्र० ७ छं० २०)

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि केदार को अपनी काव्य भाषा पर पूरा प्रतिकार है और वे इसे अपनी रक्ति के अनुसार यथास्थान बदलते रहते हैं ।

शेष

प्रब केदार के प्रबन्धों की भाषा पर शेषों की दृष्टि से भी थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है । केदार की 'रामचन्द्रिका' की भाषा अन्य प्रबन्धों की अपेक्षा अधिक शोषमुक्त है । कुछ शेष नीचे दिखाताए जाते हैं

अमृतसत्कृति

शेषों में यह शेष सब से बुरा समझा जाता है । निय कारक वचन अन्वय आदि की व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटिमाँ प्रायः बहुत खटका करती हैं । जब एक बार पाठक के हृदय में उजड़ उत्पन्न हो जाता है तो फिर उस के प्रवाह में भी बाधा पड़ जाती है । केदार में यह शेष पर्याप्त मात्रा में देखा जाता है । यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) पीछे मघवा मोहि दाप गई । (रा० क० प्र० १२ छं० ३५)

(२) अगव रस। रमुपति कोहूँ । (वही, प्र० १३ छं० ३५)

(३) आदि बड़े हो बहुपन रसिमें, का हित तू सब जय बस माय ॥
(वही, प्र० ७ छं० २२)

(४) बहु बलत बहै । (वही, प्र० ७, छं० ४८)

(५) रह्यो रोमि के बाहिका की प्रभा को । (वही, प्र० १३ छं० ५२)

(६) करे साधना एक बलोक ही को । (वही, प्र० १७, छं० २१)

७. (७) अंतर्निष्ठ ही लख्य यह अक्षय गुणो हनुमंत ।
(वही, प्र० १३ छं० ६२)

(८) अरोक्तान्ता बनदेवता सी । (वही, प्र० २०, छं० ६)

(९) प्रब केदार इहि काल प्रबहि हो भलो रिमायो ।
(रामचन्द्रिका, छं० २४)

(१०) रतनसेन कहू बात सूर सारंगत सुनिजिय ।

करहु येन पनबारि भारि सारंगतन निजिय ॥ (रही, सं० २)

(११) देखि बाग अनुराग उपजिय, बोलत कस ध्वनि कोकिल सजिय ॥

(रा० नं० प्र० १, सं० १०)

(१) घोर (२) में 'घाप' तथा 'रसा' शब्द कर्मण्य पुलिग तथा स्त्रीलिंग

हैं। यद्यप्य व्याकरण की दृष्टि से मुख्य रूप 'घाप दियो' घोर 'रसा कीन्ही' होने चाहिए थे। (३) में 'बड़े हो' आदरसूचक है और 'रू' गिरादरसूचक। ऐसा प्रयोग व्याकरण-सम्मत नहीं है। (४) में 'बड़े' भी व्याकरण की दृष्टि से असुष्ठ प्रयोग है 'बड़ी' होना चाहिए था। (५) में प्रया के साथ 'को' के स्थान पर तृतीया विभक्ति का चिह्न ठीक होता। (६) 'साधना' के सिव के अनुसार 'को' के स्थान पर 'की' व्याकरण-सम्मत होता। (७) में 'यह मच्छ' में विसम्भि बोध है। (८) में 'देवता' शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में हुआ है जब कि हिन्दी में यह शब्द पुलिग है। (९) में 'हो' का प्रयोग कर्म कारक में हुआ है पर यह कर्ता कारक में ही प्रयुक्त होना चाहिए था। (१०) और (११) में 'सुनिजिय' और 'निजिय' का आत्रार्थ तथा 'उपजिय' घोर 'सजिय' का वर्तमान काल में प्रयोग व्याकरण-सम्मत नहीं है। ये प्राकृतकालीन क्रियाओं के ये प्रयोग हैं जो कालों तथा बहनों का साखन नहीं मानते घोर बिनका प्रयोग सब पुरुषों के साथ होता है।

अदलीस्तब

जहाँ वीर-सूचक जुगुप्सा तथा धर्मगत सूचक शब्द प्रयुक्त होते हैं वहाँ यह बोध होता है।

(१) वीर-व्यञ्जक

बिगपालन की भुवपालन की किन मातु मई अई ।

(रा० नं०, प्र० ३ सं० १४)

यहाँ 'अई' शब्द वीर-व्यञ्जक है।

(२) जुगुप्सा-व्यञ्जक

(क) कहू राबरे पितु करो पली तजी बिगन बूकि कैं ।

(रा० नं० प्र० सं० ११)

(ख) बिदकन पन घूरे नलि क्यों बाज जोई ।

(रा० नं० प्र० ११ सं० १२)

इन उदाहरणों में 'बूकि' तथा 'बिदकन' शब्द जुगुप्साव्यञ्जक हैं।

(ग) कुक देखो क्यों काहिह क्यों आगहु देखो ।

(रा० नं० प्र० १ सं० २१)

यहाँ 'बारात-वीरणी' के शुभ अवसर पर कुक देखने का प्रयोग धर्मगत सूचक है।

अप्रमत्त

यहाँ चरों का कर्म व्याकरण-सम्मत नहीं होता वहाँ यह बोध होता है।

(क) अमानुषी भूमि अमानरी करी । (रा० नं०, प्र० १५ सं० ३०)

यहाँ ऐसा लगता है कि भूमि अमानुषी (मनुष्यरहित) तो पहले ही से है। अब उसे मानवविहीन करना ही बाँध है। अमानुषी शब्द का प्रयोग 'अमानुषी' से पहले होना चाहिए था।

(क) राज देव दे पाकि लिया को। (रा० पं० प्र० १२, छं० १७)
यहाँ 'राज' 'देव' दे शब्दों के बाद यदि आता तो ठीक होता।

अधिकपदत्व

(क) तब स्वयं लंक महुँ सीम मई। जनु धनि पनाल महुँ भूम मई
(रा० पं० प्र० १७ छं० १)

यहाँ 'मई' शब्द व्यर्थ है।

(क) धर्मबोरता विनयता। (रा० पं० प्र० २३, छं० २२)
यहाँ 'विनयता' में 'ता' प्रत्यय अधिक है।

सद्विश्लेष

जहाँ कवि के असीम धर्म का ठीक ठीक पता न लगे कुछ संदेह का बना रहे वहाँ यह दोष माना जाता है यथा

या फिर परमुणीन नृप, ता र्छन भवो जारि।

बानर लई छुड़ाय तिय, बीन्हों जाति निकारि ॥

(रा० पं० प्र० १२, छं० १६)

इस पद्य के पहले से ऐसा लगता है कि किसी बानर ने स्त्री को छीन लिया और पति को घर से निकाल दिया।

निहतार्पत्व

जहाँ किसी शब्द का अप्रचलित अर्थ में प्रयोग किया जाए वहाँ यह दोष माना जाता है। अमृतसंरहति के समान ही यह दोष भी बेराव की 'रामचण्डिका' में बहुत मिलता है जैसे 'सहज' के अर्थ में 'मुख', 'सरपू' (नदी) के लिए 'मुरतरिंदीनी' जल के अर्थ में 'विप' तथा 'जीवन' समाधि स्थिति के लिए 'तटी' बाप के मारने के लिए 'बपुमारो' निरक्षय अथवा अज्ञ के अर्थ में 'विरोध' शत्रुधन के लिए 'रघुमन्त्र' तथा परिहा, समुद्र के अर्थ में 'हरिमन्दिर' ब्रह्मा के लिए 'कन्नज', राम के लिए 'त्यज' रामभोजन आदि।

जिन बेधत सुग लख नृपलंबर कुँवर मति। (रा० पं० प्र० २, छं० १५)

कस्तुरामय अथ सुर-तरिणी सीम सनो। (वही, प्र० १, छं० ४२)

रामय यह घोषावरी अमृत के कल हैति।

केदार जीमहार कोर कुल अशय हरि लति ॥ (वही, प्र० ११, छं० २६)

अपनीय अतीत को छोटी छोटी। (वही, वही, छं० १८)

अंगर संघ नै बेरो लखे बल आमुहि बरों न हर्त बपुमारो ॥

(वही, प्र० १६, छं० १२)

अनन्त मुक्त गार्व । मीर्य हि न पार्व ।	(बही, प्र० १, अन् १५)
बनुबासु सिये निकसे रघुनन्दन	(बही, प्र० १४ अन् ४८)
बुद्धि यिरे जब ही करिहा रन ।	(बही, प्र० १९, अन् ३०)
कंठ्य को मति सी बड़ भावी ।	
बी इमिंदिर लो भनुरागी ।	(बही, प्र० ११ अं० २४)
रघुनन्दनलोचन कहत सब कोशोपास ।	(बही, प्र० २७ अन् ४)

समाप्तपुनरावृत्तित्व

जहाँ किसी वाक्य को समाप्त करके भी पुनः विशेषवादि द्वारा उसे उठवाया जाता है वहाँ यह दोष होता है ।

ब्रह्मादि देव जब विनय कीन । तट छीर-सिन्धु के परम दीन ।

(रा० अं० प्र० ११ अं० १२)

यहाँ 'तट छीर सिन्धु' के इन शब्दों के साथ वाक्य समाप्त हो गया था, किन्तु 'परम दीन' शब्दों के द्वारा उसे फिर से उठा दिया गया है ।

अनन्वयसम्बन्धत्व (अन्वय दोष)

जहाँ वाक्य पदों का सम्बन्ध कठिनता से बैठता है वहाँ यह दोष होता है ।

बशाख्य कीन अज तनय अन्ध ।

केहि कारख पठय यहि निवेद्य ॥

निज देन जेन समेह ह्य ॥

(रा० अं० प्र० १९, अं० ७१-७४)

यहाँ 'अज' का अन्वय 'अन्ध' के साथ तथा 'ह्य' शब्द का अन्वय 'जेन' तथा 'देन' शब्दों के साथ है । जीन-दान करने पर ही यह अन्वय होता है ।

ग्यूनपक्षत्व

जहाँ सभीप्रियत अर्थ के पूरक शब्दों का प्रभाव होता है वहाँ यह दोष होता है यथा

बिरहीन का कुछ देत क्यों हूँ डारि अग्रकलाहि ।

(रा० अं० प्र० ११ अं० ११)

यहाँ अर्थ तो यह है कि अग्रमा विधोयियों को बुझावायक है यद्यपि अग्रमा की निन्दा करते हैं इस निन्दा से बुरा मान कर क्या शिव अपने अस्तक पर से अग्रमा को घिरा देंगे । किन्तु वाक्य में पर्याप्त शब्दों की ग्यूनता से ऐसा अर्थ सरलता से नहीं निकल पाता ।

पतत्रक्यता

जहाँ किसी वस्तु का पहले उत्कर्ष दिखाकर फिर उसी का अधःपर्व दिखाया जाता है वहाँ यह दोष होता है ।

गुरयज को मारन छवि-छायो । जगू बिबि ते भूतल पर छायो ।

जगू घरणी में लखत बिछायो । मुटित जही की यम बनपायो ॥

(रा० अं०, प्र० १२, अं० २४)

यहाँ पहले 'नदी की तुलना 'धाकासर्प' से कर उसका उत्कर्ष दिखाया है फिर अपनी नदी की अपेक्षा 'जुही पुष्पों की दूरी हुई माना' से लेकर उसका अपकर्ष दिखा दिया गया है।

कामबिदग्धता

(क) पाँख की प्रतिमा तम तैलों। धनु न भीम महामति बेलों।

(रा० खं० प्र० ११ खं० २१)

यहाँ राम के मुख से 'धनु न' 'भीम' धादि पाण्डवों का वर्णन किया जाना कामबिदग्ध दोष है।

(क) हृत्त जैन सदा धुम मंगा। छोड़हुये वह तु य-सर्पना।

(रा० खं० प्र० १६ खं० १७)

राम के समय जैन मत प्रचलित था, यह विचारणीय है। परन्तु यहाँ कास बिदग्ध दोष है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई भी कवि इस प्रकार के दोष से सर्वथा मुक्त नहीं रह सकता। कवि अपनी जमान एव मस्ती में ऐसी छाटी-मोटी बातों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया करते। छन्द की गति के धाग्रह से भी कभी-कभी इस प्रकार का घेदित्व आवश्यक सा हो जाता करता है। वह काव्य-भाषा (Poetic Diction) है। मर-भाषा के नियमों से उसे परखना अनुचित होगा।

केशव की विचारधारा तथा उनका इतिहास ज्ञान

(अ) केशव की विचारधारा

(१) केशव के दार्शनिक सिद्धान्त

केशव के दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण 'विज्ञानगीता' तथा 'रामचन्द्रिका' नामक ग्रन्थों में हुआ है। 'विज्ञानगीता' में प्रतिपादित केशव के दार्शनिक सिद्धान्तों पर भारतीय धर्मतत्त्व का प्रभाव दिखलाई देता है। इसी प्रकार 'रामचन्द्रिका' में चरित्रबद्ध केशव की राम मानना पर भी वैष्णव धर्मतत्त्व की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। केशव के राम परब्रह्म हैं किन्तु उनके ब्रह्मत्व का आधार कीन-सा दार्शनिक ढाँचा है इस विषय में उनके ग्रन्थ सर्वथा मौन हैं। हाँ भक्ति के क्षेत्र में वे रामा मयी सम्प्रदाय से अवश्य प्रभावित ज्ञान पकड़ते हैं।

ब्रह्म—केशव के मतानुसार 'ब्रह्म' वह मोक्षोत्तर शक्ति है जिसके समस्त जीव प्रतिबिम्ब हैं^१। वही शक्ति ज्योतिस्वरूप निरीह तथा निरंजन मानी गई है^२। उस अद्भुत प्रकाशमय ज्योति से ही इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय होती है^३। ब्रह्म निर्मल ज्योति सदैव एक रूप तथा स्वतन्त्र रहती है^४। उस मोक्षोत्तर शक्ति-ब्रह्म का न घाटि है और न मरत। वह अमित अबाध अकल अरूप और अज है। वह अजर-अमर है अद्भुत अचल तथा अचर्च है। वह अच्युत है अनामय है अमल अमंग और अमर है। वह निःसंग एवं अरूप है। ब्रह्म विष्णु तथा शिव और वेद उसे 'ज्योति सोति भावि शब्दों से पुकारते हैं^५। वही ब्रह्म भीतर-बाहर और घट-बट में व्यापक है^६।

- १ सब जानि ब्रह्मजत मोहि राम ।
मुनिये सो कह्यो जग ब्रह्म नाम ॥
तनके असीध प्रतिबिम्ब जान ।
तेह जीव जानि जग में कृपास ॥ —रा धं०, प्र २२, अं २।
- २ ज्योति निरीह निरंजन मानी ।
—रा धं० प्र २२, अं १४ तथा वि जी प्र १० अं १८।
- ३ सकल शक्ति अनुमानिये अद्भुत ज्योति प्रकाश ।
जाते जग को होत है उत्पत्ति विधि अज नाश ॥
—रा धं० प्र २२ अं १२।
- ४ अमल अकी ज्योति अज एक रूप स्वच्छन्द ।
—रा धं० प्र १ अं २२।
- ५ आको नाही घाटि अंत अमित अबाध अकल अरूप अज शक्ति में अनुसर है ।
अमर अजर अज अद्भुत अचल अंग अच्युत अनामय मुरमगा रहनु है ।
अमल अमंग अति अमर असंग अज अच्युत हैसिये को परतनु है ।
विधि हरि ब्रह्म वेद कह्यो ज्योति सोति केशवराह ताकहं प्रमाणहि करनु है ।
—वि जी प्र १८ अं २१।
- ६ बाहर भीतर व्यापक जो है ।
—वि जी प्र १८ अं २१।

ब्रह्म ही समोगुण, सतीगुण और रजोगुण है। वह सबसक्तिमान् अद्भुत तथा अपरिमेय है। वह नित्यवस्तु, विचारपूर्व एवं सर्वमान्य से अदृष्ट है। न तो वह पुरुष है और न नारी। जगत् के अनेक स्वरूपों की उत्पत्ति ब्रह्म के ही अद्भुत भावों से हुई है। बिष्णु से लेकर परमानु तक सभी उसी से उत्पन्न हुए हैं^१। ब्रह्म ही समस्त प्राणियों की धारण है। वह नित्य नवीन मायारहित तथा निर्विकार है। वह अक्षय्य है, मुक्त तथा वैवाचिक है^२। उसी ने अपने गुणों के आधर से एक से अनेक रूप बना लिए हैं^३।

वही रजोगुण का आधर लेकर ब्रह्मा के रूप में संसार की रचना करता है। सतीगुण का आधर लेकर वह बिष्णु नाम से समस्त संसार की रक्षा करता है और समोगुण का आधर लेकर वह के रूप में वही जगत् का नाश करता है^४। जगत् का अस्तित्व उसी में है और वही जगत् रूप में व्यक्त हो रहा है^५। ब्रह्म ही सत्यस्वरूप है^६।

१. तम तेज सत्य अननु घन बाहुतु है प्रथमेय ।
सर्वसक्तिमतेत अद्भुत है प्रमत्त प्रमेय ।
नित्यवस्तु विचार पूरण सर्वमान्य अदृष्ट ।
पुरु नारि न जानिये सुनि सर्वमान्य अदृष्ट ।
ताक अद्भुत मान से भए सकय अपार ।
बिष्णु घाति परमानु से, जगजत सगी न बार ।

—वि० गी०, प्र० १५, अ० १/१२।

२. अनादि अमरहीनु है प्र नित्य ही नवीनु है ।
निरीह निर्विकार है मुमम्भ अम्यहार है ।
समस्त सक्ति मुक्त है सुखेव देव मुक्त है ।

—वि० गी०, प्र० १५, अ० ४-५।

३. तुम हीं पुन रूप मुची तुम ठाये । तुम एक से रूप अनेक बनाये ॥

—रा० अ० प्र० २, अ० १०।

४. एक है वो रजोगुण रूप तिहारो । तेहि सृष्टि रची बिबि नाम बिहारो ॥
तुम सत्य भरे तुम रक्षक जाको । घन बिष्णु नही सिगरो जग ताको ।
तुमहीं जग स्रसकय संहारो । कहिये तेहि मय्य समीपुग भारो ।

—रा० अ०, प्र० २ अ० १७, १८।

५. तुम ही जग ही जग है तुम ही में ।

—रा० अ० प्र० २, अ० १२।

६. एक ब्रह्म सबो सदा ।

—वि० गी० प्र० १५ अ० ८।

माया—केशव के मत में 'माया' का ही अस्य नाम 'संसृति' है। माया मोह की जाया है। संभ्रम, बिभ्रमादि उसी की संज्ञान हैं। उसकी समस्त कथा स्वप्न के समुद्य है^१। जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न में संसार तथा उसके माना वृत्तों का अनुभव करता है और कुछ समय के लिए उनमें भ्रुता रहता है उसी प्रकार माया के कारण जीव भ्रमवश कास्मनिक 'संसृति' की वास्तविक एवं सत्य समझने लगता है। परन्तु माया परम दुरन्त है और उसका पार पाना अत्यन्त ही कठिन है (सब ही सब को सर्वदा माया परम दुरन्त—वि० गी० प्र० ११, अ० २६)।

सत्गुण रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त यह माया विबुधात्मिका है और यही जगत् का निमित्त कारण है। केशव के अनुसार उसके दो रूप हैं। एक रूप में उसका सम्बन्ध ब्रह्म से रहता है (अनु माया अर्थात् सहित वेदि—रा० च० प्र० १३, अ० ८१)। दूसरे रूप में यह जीवों के जन्म का कार्य करती है (जीव जैसे सब प्राणि माया—रा० च० प्र० २३, अ० १६)।

जब तक विवेक द्वारा माया के परिवार (मोहादि) का नाश नहीं होता तब तक माया क बधीभूत रहने के कारण जीव को सुखित प्राप्त नहीं होती। मोहादि का नाश होने पर जब प्रबोध हो जाता है तो जीव इस जीवन में ही जीवनमुक्त हो जाता है^२।

जीव—केशवदास जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानते हैं^३। इसमें बीटा की निर्माकित वंक्ति^४ को छाया पड़ी है।

१ संसृति नाम क्लृप्तमिति माया पानहुं ताकहुं मोह की जाया।

संभ्रम बिभ्रम संसृति जाकी स्वप्न समान कथा सब ताकी।

—वि० गी० प्र० १३, अ० २८।

२ जब विवेक इति मोह को होइ प्रबोध संयुक्त।

तब ही जागो जीव को जय में जीवनमुक्त।

—वि० गी०, प्र० १ अ० ३१।

३ " " जय ब्रह्म नाम।

छिन्ने छोप प्रतिबिम्ब जाल।

तेह जीव जानि जय में हुपाय।

—उ० च०, प्र० २३, अ० २।

४ मदीबांसी जीवनीके जीवभूत सनातन।

—जीवभूतसूत्र अष्टादश १३, स्तोत्र ७।

जैसे सूर्य को फिरके सूर्य से निकसती तथा संसार में प्रकाश फैलाकर फिर उसी में लीन हो जाती है। वैसे ही ब्रह्म का चित् सद्य भीम का स्फुरण कर सत्य में लीन हो जाता है^१।

ब्रह्म और जीव का घट्टर बतलाते हुए केदार कहते हैं कि ब्रह्म सर्वत्र एक रूप रहता है और जीव को घनेक बार जन्म लेना पड़ता है। तबत्र होने के कारण ब्रह्म को जीव-रक्षा का पूर्ण ज्ञान है परन्तु घटपन्न होने से जीव को ब्रह्म की रचना का ज्ञान नहीं होता^२। यह जीव काम कोष मदादि घनेक माया के आवर्तनों में फँस कर इस संसार में बचर-उचर भ्रमता फिरता है—

काम कोष मद मग्नो जगत् । जैसे जीव ज्ञान संसार ॥
(रा० च० प्र० २५, व० ६)

और लीन मोह मद तथा काम के लक्ष्मीभूत हो कर अपने सहज रूप को भूल जाता है^३। इतना ही नहीं वरन् काम कोष घादि के लक्ष में फँसे हुए वैचारे जीव की बड़ी दुर्घटा होती है^४।

बासना जीव को जिस ओर ले जाती है वह (जीव) उसी ओर जाकर लीन हो जाता है।
जित लीं जैहै बासना तित तित छ है लीन^५।

यह बासना दो प्रकार की होती है।
बुद्धि बासना होती है शुभ यत्त अशुभ प्रमाण^६।

१ उपपन्न ज्यों चित रूप से जीवत विहि विधि जात ।
रवि से उपपन्न घंघु ज्यों रवि ही नाश समात ॥

—वि० गी० प्र० १२, व० १५।

२ शुभ घादि मध्य अवस्थान एक सद्य जीव जन्म समुन्मी घनेक ।
शुनही कुरखी रचना विचारि, तेहि कीन भाति समुन्मी मुरारि ।

—रा० च० प्र० १२, व० १।

३ लीन मद मोह लक्ष काम जब ही भयो ।
भूति दयो रूप निज भीषि तिन सों भयो ।

—रा० च० प्र० १२, व० १।

४ लीन लीन दसी बिधि को यहि मोह महा इत फाँसिहि डारे ।
ऊँचे से जब निरागत जोयहु जीवहि गृह्र लागत भारे ॥
ऐसे में कोढ़ की लाज ज्यों केदार मारत कामहु नाम निनारे ।
मारत पाँच करे पंचकूटहि कासों नहै जयजीव विचारे ॥

—रा० च० प्र० १४, व० ८।

५ वि० गी० प्र० १४, व० ४२।
६ बरि, बरि, व० ४२।

प्रधुम वासना में फँसकर जीव अनेक दुष्कर्म करता है जिसके फलस्वरूप जीव का छद्मर नहीं हो सकता। प्रधुम वासना से ही उसे ब्रह्मपद की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु धुम मार्ग के लिए बड़ा यत्न करना पड़ता है^१। शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए जीव को अनेक शरीर तो अवश्य धारण करने पड़ते हैं किन्तु वह मरता है और न जीता है। अन्त-मृत्यु बड़ा शरीर का भय है जीव का नहीं। वैराग्य जीवन तथा परा प्राप्ति अवस्थाओं का सम्बन्ध भी बड़ा शरीर से ही है^२। वेदवक्त्र के ये भाव गीता से मिलते हैं^३।

जीव की कोटियाँ—केलाचरास जीव की तीन कोटियाँ उत्तम मध्यम और अधम मानते हैं। उत्तम कोटि के जीव के ब्रह्माते हैं जो ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल काम करते हैं और जो संसार में सर्वत्र विरक्त भाव हैं रहते हैं। यदि कभी किसी कारण वश उनसे ईश्वरेच्छा के बिच्छ कोई कार्य हो जाता है तो वे अपने भाव को स्वयं दम्बित करते हैं। वे दूसरे जीवों को भी अपने धुम मार्ग पर ही ले जाते हैं^४।

जो मन के कुछ बलीभूत हैं और प्रभु की महिमा को धूने हुए हैं वे मध्यम कोटि के जीव होते हैं। वे जीव शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से पीड़ित होने पर

१ यत्नतः सर्वे धुम पथं समावर्त्तन्ति । तौ अपनी तब ही पद पावै ।

—उ० पं ॥ १२, अ० १ (अनुप०) ।

२ नामक बृद्ध कहो धुम काको ।

बेहति को किसी जीव प्रभा को ॥

है वह बेह कहै सब कोई ।

जीव सौ नामक बृद्ध न होई ॥

जीव करै न मरै नहि छोडै ।

ताकहं सोक कहा सब कीजै ॥

जीवहि विप्र न क्षमिय जानो ।

केवल ब्रह्म हिये मई जानो ॥

—उ० पं ॥ १० अ० १ (अनुप०) ।

३ बेहिनो अस्मिन्मया बेहे नौमारं मोहन जरा ।

—जीमदग्निगोत्र अथवा २ स्तोत्र १२ ।

न जायते भ्रमते वा कदाचित्, न ह्ययते ह्ययमाने शरीरे ।

—जीमदग्निगोत्र अ० १ स्तोत्र १ ।

४ उपपन्न भावा संभवे जीव होत बहुव्यप ।

उत्तम मध्यम अधम सब गुणि भीजै नवमूप ॥

उत्तम से प्रमुखात्तन संभव । हूँ जग सौं न नहूँ नजहूँ रत ॥

कोन हूँ एक प्रसाद से भूपति । हीनु हूँ आसन भँप महामति ॥

आपुहि आपुनि क्यों करि बगडि । कारण सापत हैं तिह संडि ॥

औरहु आपने पंच सगारै

॥

—वि० पं ॥ १२ अ० ११ ११ ।

वेद-पुराणों की धारण करते हैं और ज्ञान, वृत्त संयम तथा तप त्याग तथा अप प्रादि के द्वारा जगन्मातर में ज्ञान प्राप्त करके जीवनमुक्त कहलाते हैं^१ ।

अथम कोटि के जीवन के हैं जिन्हें प्रभु का कुछ भी ज्ञान नहीं और जिनमें सर्वकार प्रबल है । ये वेद-पुराणों के बचनों को सुनकर भी अनेक प्रकार के पाप करते रहते हैं । केसव इन जीवों की अनेक अप्रियता बतलाते हैं । ये जीव अपने-अपने कमों के अनुसार सुयोगि अथवा कुयोगियों में भ्रमण कर अपनी-अपनी बारी से प्रभु के पास पहुँच जाते हैं^२ ।

सृष्टि—केसव के मत में दुःख एवं चक्रव्यव समस्त व्यावहारिक सृष्टि का मूल कारण मन है (जब को कारण एक मन—मि० पी० प्र० २१ छं० १६) । इस बात को केसव ने 'विज्ञानवीता' में कई स्थलों पर समझाया है । एक स्थान पर कवि ने एक कवि द्वारा बतलाया है कि ईश्वर और माया के संघर्ष से सृष्टि की उत्पत्ति होती है । ईश्वर और माया के संघर्ष से मन-कपी पुन का जन्म होता है । मन की दो पत्नियाँ हैं प्रकृति तथा निवृत्ति । प्रकृति से तीनों लोकों की उत्पत्ति होती है । इसी से मोह, काम, लोभ, लोभ प्रादि की उत्पत्ति होती है । विवेक अन्तर्धन सम विचार प्रादि निवृत्ति से उत्पन्न हैं^३ ।

१

होत वे जीव कष्टमय के बंध । मूलतः हैं अपने प्रभु के बंध ।
वीर्ये प्राणिनि व्याधिनि के बंध । कृष्ण वेद पुराणन को तब ॥

ज्ञानन से वृत्त संयम के तप । समत जेवत साधन हैं अप ॥
जन्म गए बहु ज्ञाननि पावत । ते जग जीवनमुक्त कहावत ॥

—मि० पी० प्र० १५ छं० ११ २२ ।

२ जिनको न कुछ अपने प्रभु की सुधि ।
बहु माँति बड़ावत हैं मन की सुधि ॥

सुनिहूँ सुनि वेद पुराणनि के मत ।
होत तब बहु पापनि सो रत ॥

ते अति अथम बखानिये जीव अनेक प्रकार ॥
सदा सुयोगि कुयोगि में भ्रमत रहैं संसार ॥

असम मध्यम अति, जीव ते कसबशास ॥
अपने अपने जीवुरे जेए प्रभु के पास ॥

—मि० पी० प्र० १५ छं० १४ २६ ।

३ इस माय विमोह के उपबाहयो मन पूछ ।
सुन्दरी तिहि है करी तिहि से विमोह अमृग ॥

एक नाम निवृत्ति है अप एक प्रकृति मुक्त ।
बँध ह ताने भयो यह सोक मानि प्रमाण ॥

महामोह से प्रादि हम पाए जगत प्रकृति ।
सुमुक्ति विवेकहि प्रादि है अमटत नई निवृत्ति ॥

—मि० पी० प्र० १ छं० १२ अं० १४ ।

अग्न्य स्वप्न पर बीज को आलोपदेश बताते हुए कथन 'बीज' के मुख से कहसकाते हैं कि शुभ और अशुभ वासना से युक्त वेह सृष्टि का बीज है जो मातृ और पितृ में क्रमशः शुद्ध-शुद्ध अनुभव करता है। वेह का बीज विवेक चित्त-वृत्ति है जिसमें सभ्रम विभ्रम आदि की स्थिति स्वप्न के तुल्य है। चित्त के दो बीज हैं 'प्राणस्वप्न' तथा 'मायना'। इन दोनों की उत्पत्ति 'सर्व' से होती है। 'सर्व' का बीज 'संवि' तथा संवि का बीज 'सत्ता' है। 'सत्ता' के दो प्रकार हैं। एक तो एकवचन है और दूसरी गानाका। एकवचन साह्य है और अनेक वचन त्याग्य। पहली का नाम 'कामसत्ता' है और दूसरी का नाम 'वस्तुसत्ता' अथवा 'चित्तसत्ता'। 'चित्तसत्ता' ही सब पदार्थों की उत्पत्ति का कारण है और उसके बीज को कोई नहीं जानता। केवल उसी की धाराबना करने का उपदेश है^१।

अतः मिथ्या भ्रमपूर्ण तथा क्षणभंगुर है

केवल के अनुसार यह जगत् झूठा है। उनका कहना है कि यह सत्य-सा जगत् है। कारण यह किसी सत्त्व की रचना है^२। जैसे युक्ति में भ्रम के कारण रजत का

१ युक्त शुभाशुभ अङ्कुरनि बीज सृष्टि को वेह ।
मातामातृ सदानि में शुद्ध दुस्तरा यह वेह ॥
बीज वेह को विवेक चित्तवृत्ति आनि ।
आहि मध्य स्वप्न तुल्य संभ्रमादि आनि ॥
दोह बीज चित्त के सुचित हूँ सुनो पदे ।
एक प्राणस्वप्न है द्वितीय मायना सर्व ॥

× × ×

दोह बीज हैं चित्त के ताके बीजनि आनि ।
सो संवेद बजानिये केवलसाह प्रमानि ॥
बीज सदा सर्वे को संवि बीज विमान ।
संवि पर संपाद को ऊँच है मतिमान ॥
सर्व को विनु बीज है ताके सत्ता दोह ।
केवलसाह बजानिये सो सत्ता विधि दोह ॥
एक तु नामा रूप है एक रूप है एक ।
एक रूप सत्ता भवो तजिय रूप अनेक ।
एक नामसत्ता कहै विमति चित्त को ताहि ।
एक वस्तुसत्ता कहै चित्तसत्ता चित्त आहि ॥
ताको बीज न जानिये जानी सत्ता साधु ।
हनु पु है सब जगत् को ताही जो धाराधु ॥

—प्रि० गे प्र० २०, पं० १३ और १४।

२ झूठी है रे झूठे जगत् सत्य को बोलाई काहू ।

सर्व को बनायो ताते साँवो सो जगत् है ॥

—प्रि० गे प्र० २४ पं० २२ तथा २३ मि० प्र० २४ पं० २२ (पद २४ से)।

मान होता है परन्तु भ्रम के नाश होने पर युक्ति प्रगट हो जाती है वैसे ही इस जगत का भ्रम भी है^१। यहाँ के पुत्र मित्र स्त्री दुहिता धादि सारे सम्बन्ध निपट्या हैं। इसी प्रकार सोम भद्र काम धादि की भी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है^२। जगत के समस्त द्रव्य पदार्थ तथा सम्बन्ध भूमिकर्म के सद्यः धनभण्डुर हैं^३। धीरों की तो गणना ही क्या ब्रह्मा विष्णु महादेव से लेकर जितने द्रव्य धारीर हैं वे सब नाश की धीरे धरी प्रकार धपसर रहते हैं जिस प्रकार समुद्र का जल बह्मजल की धीरे^४। हाथी-मोड़ें इष्ट-मित्र वायु-वाग्देव परिजन प्राणि सब धागिक हैं। यहाँ तक कि मनुष्य का धपना धरीर भी जगत् में धपना साथ छाड़ देता है^५।

यहाँ के पदार्थों पर मयत्व व्यर्थ है। वे किसी एक के नहीं हैं। इन पर मक्खी मच्छर मूसा घूस कीड़े कुत्ता बिस्ती पत्ती मनुष्य धादि अनेक दावेदार हैं। यह बड़ा ही बिकट भ्रमजाल है^६।

१ भ्रम ही है जो युक्ति में होती रजत की युक्ति।

केसव संभ्रम नाश से प्रगट युक्ति की युक्ति ॥

—वि० पी० प्र० १० अ० १२।

२ पुत्र मित्र काम के तजि बल्ल कुसह सोम।

कीन के बट कीन की दुहिता मूपा सब सोम ॥

एक ब्रह्म साँवो सवा झूठी यह संसार।

कीन सोम भद्र काम की कोमुत मित्र विचार ॥

तुम्हें पएतजि बार बहु तुमहुँ तक बहु बार।

तिन भगि सोच कहा करो रे बावरे संवार ॥

—वि० पी० प्र० ११ अ० ७-८।

३ यह जग जैसै धूरिकम बीह बाव होह।

की जाने छड़ि जात नहँ मरे न मिनहँ कोह ॥

—वि० पी० प्र० ११ अ० १२।

४ ब्रह्म विष्णु धिब धादि दै जितने द्रव्य धरीर।

भावा हेतु भावत सब ज्यों बह्मजाल नीर ॥

—उ० अ० प्र० १४ अ० २४।

५ हाथी न मापी न धीरे न केरे न गाऊँ न ठाऊँ कुठाऊँ बिसेहँ।

सात न पात न पुत्र न मित्र न बित्त न सीध नहँ संय रँहँ ॥

—उ० अ० प्र० १४ अ० २४ तथा ७० वि०, प्र० ४ अ० ५४ (पट्टेहसे)।

६ माछी नहँ धनो नद माछर मूरो नहँ धपनो नद ऐनो।

कोने धुमी नहँ धूमि धिनोनी बिलारि धो व्याप बिते यहँ बँनो ॥

नीटक स्वाग सो पछि धो मिलुक मूत नहँ भ्रमजाल है जँसो।

कोहँ नहँ धपनो नद ठँसहि ता नद सो धपनो नद केनो ॥

—उ० अ० प्र० २४ अ० २५।

सांसारिक सम्बन्ध उसी प्रकार क्षणिक हैं जिस प्रकार बोझी ढेर के लिए गाव में बैठे हुए यात्रियों का संयोग आकाश के बादलों घबरा बर्फ़बर में तूफ़ान समूह का कुछ काल के लिए एकत्रित होकर विमुक्त हो जाना। संसार के जीवन का उसी प्रकार कुछ काल के लिये संयोग होकर अन्त में वियोग हो जाता है जिस प्रकार हाट, मार्ग या बारात में कुछ समय के लिए लोगों का संयोग होता और फिर बिछोह हो जाता है^१।

कबीर के समाग केदारनाथ तथा धर्मस्य सम्पूर्ण जगत को काल का खेला (कमल) मानते हैं^२।

भारतीय वास्तविकों की भाँति केदारनाथ को दुःखमय मानते हैं। उनका कहना है कि संसार में कोई भी सुख नहीं है। सर्वत्र दुःख ही दुःख है। मृत्यु के अनन्तर भी जीवन दुःख से छुटकारा नहीं पाता। वह बार-बार मरता है और जन्म लेता है।

जन्म में न सुख है यत्र तत्र दुःख है।

(वि० बी०, प्र० १४ अं० २७)

मरणाहि जीव न तबही मरि मरि जन्म न भवहीं॥

(रा० बं० प्र० २४ अं० १)।

जन्म में जाने के समय से लेकर मृत्यु तक वास्तव्यस्था युवावस्था और बूढ़ा बरवा हरेक अवस्था में जीवन को अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। 'रामचरितका' तथा 'विद्यामयीता' दोनों ही प्रकरणों में विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले दुःखों का सविस्तार विवेचन मिलता है। वास्तव्यस्था के दुःखों का बचन निम्नांकित छन्द में किया गया है—

पथं मिलिह रही मल में जग आवत कोटिक कष्ट सहे सु।

को कही पीर न कोसि करे बहु रोग निवेदन ताप रहे सु॥

खेलत मल पिला न करे मुख येहनि में मुख बंद रहे सु।

बीरघ जीवन हैनि तुमो अय बाल बला दित दुःख नहे सु॥

(वि० बी० प्र० १४, अं० १५)

१. मूरहें मूरि नदीनि के पुरनि नावनि में बहुते जनि बैठे।

कैदारनाथ अकाश के मिह बड़े बजपूरनि में तुम जैसे॥

हाटिन बाटनि जात बरातनि लोग सबें बिछूरे मिलि ऐसे।

सोम कहा अर मोह कहा जय सोम विजय बुद्धि है। सीते॥

—वि० बी० प्र० १४ अं० ७।

२. उनका बहीना काल का कुछ मुल में कुछ मोर। करीबनावत (मल्लोदम) सुग्रीवम
हम्या ६. २००७ वृ २०५।

जितने बिर जर जीवन जय, अथर ऊरव के मोर।

अथर अमर अय अमित जय कपलित काल सघोर॥

—वि० बी० प्र० १४ अं० २१।

मुवाकसा में किस प्रकार बीब को काम भेष, सोभ, रात्र, मित्र धारि के कारण घनेक दुःख सहन करने पड़ते हैं । देखिए

कामप्रताप के तापसये तनु केहाव बीब बिरोधसने नू ।
 जारे तु बाव बिताई बिपतिमें संपति यब न काहुमने नू ॥
 सोम तैं केघ बिरोध भग्यो मय संभमबिभ्रमकौन मने नू ।
 मित्र भनिम से पुत्र कसम से मोहन में दिन दुःख मने नू ॥

(भि० मी० प्र० १, छं २०)

बूझावसा तो पाधि-भ्यापि सभी प्रकार के दुःखों का बर हो ठहरी । बूझा वसा में होने वाली उसकी दुर्बला का बित्र इस प्रकार खींचा गया है ।

संय जर बानिजो बर बीठि लखजति कुचें सकुचें मति बेसी ।
 नबें बबघोब यकै मति केदाव बालक से संय हो सय सेसी ॥
 तिये लख धाचिन ध्याचिन संग जरा बज धावै जवरा की लहेसी ।
 नमैं सब देह बसा बिच साय रहे कुरि बीरि कुरास अकेसी ॥

(रा० मी० प्र० २४, छं ११)

मुनि—केदाव ने मुक्ति के चार प्रमुख साधन बटसाए हैं सारसंग सम सन्तोष तथा विचार । वे कहते हैं कि यदि कोई जगमें से किसी एक को भी अपना ले तो उसे मुक्तपूर्वक प्रभु के द्वार में प्रवेश मिल जाता है और जो इन चारों का मनसा धीर बाधा सुदृढ मान से समझ करता है वह संपूर्ण वासनाओं से रहित हो अपने वास्तविक रूप को प्राप्त करता है ।

केदाव की दृष्टि में 'सारसंग संयासागर तीर्थ से भी बड़ा तीर्थ है क्योंकि साधुओं के उपदेश इतने प्रबल और पावनकर हैं कि जीवन कास ही में पापियों को पवित्र करके जीवनमय बना देते हैं' । केदाव साधु का लक्षण बतलाते हुए लिखते हैं कि साधु वह है जो कज्जस कनिष्ठ तथा अगाध बबझूह की मोति इस अयम संसार

१ मुनिपुत्री दरबार के चारि अनुर प्रतिहार ।

साधुन के दुम सम धव सब सन्तोष विचार ।

—वि० मी० प्र० १४ छं ४२ ।

२ तिन में जय एवहु जो अपनाये ।

मुय ही प्रभु द्वार प्रवेशहि पावै ॥

जो इनको समझ करै मन बचन छाँड़नि छाँड़ि ।

बिहै आपने रूप को, सकल वासना धाँड़ि ।

—वि० मी० प्र० १४ छं ४२ ४३ ।

३ संयासागर तीर्थ बड़ो साधुन को सतसंग ।

पावनकर उपदेश धति प्रबल करत धर्म ॥

—रा० मी० प्र० २३ छं १ ।

में प्रविष्ट होकर भी उससे निष्कसक निकल आता है^१ ।

रम, रस, रन्ध्र, शब्द, स्पर्शादि इन्द्रियाणों को जीयते हुए भी मन का मनमें लीन न होना सम' कहलाता है^२ ।

'सम्तोष' वह अवस्था है जिसमें मन में किसी वस्तु की अभिभाषा नहीं होती और न किसी वस्तु के हानि-नाश से दुःख-सुख ही होता है । उसमें मन परमानन्द स्वरूप ईश्वर में ही लीन रहता है^३ ।

मुक्ति का बीजा साधन 'विचार' है । मैं कौन हूँ ? कहाँ आया हूँ ? कहाँ से, किन्तु सिधे आया हूँ ? अपने वास्तविक पद को प्राप्त करना मेरा परम मन है ? कौन मेरा मित्र है ? कौन शत्रु है ? इस प्रकार के चिन्तन को 'विचार' कहते हैं^४ ।

मुक्त पुरुष का यहभाव नष्ट हो जाता है और वह समुद्र से मेकर कीट पतंगपरि तक विश्व के सभी छोटे-बड़े जीवों को धारमय समझता है क्योंकि यहभाव के माध्य से घेद-दृष्टि नष्ट हो जाती है^५ ।

मुक्त जीवों के प्रकार—केदार के अनुसार मुक्तों के दो भेद हैं—जीवनमुक्त तथा विवेकमुक्त । जीवनमुक्त जीव वह है जो बाहर घरीर से भीरुहृदय से घृति घुड़ होता है जो निष्काम भाव से कर्म करता है और जो बाहर से जो मुर्ख-सा जान पड़ता है पर अन्तःकरण से ज्ञानवान् होता है^६ ।

- १ यह जगत् जलकाम्युहं किम् कर्मजं क्षणितं जगाद्यु ।
तामहं पठि जो नीकर्षं शक्यमस्मिन् सो साधु ॥
—उ. अ. प्र. १३, अ. १० ।
- २ वेद्यत हूँ बहुकालं क्षिये हूँ । वास्तु कहे तुम जोप किमे हूँ ।
सोद्यत जातत नैक न सोमं । सो समता सबही मई सोमं ॥
—उ. अ. प्र. १३, अ. ११ ।
- ३ जो अभिभाष न काहु की भाव । आये एवे सुख-सुख न पाव ।
हि परमानन्द सो मन लाव । सो सब माहि सतोष कहाव ।
—उ. अ. प्र. १३, अ. १२ ।
- ४ आयो कहाँ शय हों कहि को हों । एवों अपम पद पाई सो टोही ।
बंघु अबधु हिमे मई जान । तावहं सोम विचार बसान ।
—उ. अ. प्र. १३, अ. १३ ।
- ५ आपम सो शयसोक्षिये सब हूँ पुरुष शयुषत ।
यहभाव मिटि जाय जो कौन बड को भुषत ॥
—उ. अ. प्र. १३, अ. १४ ।
- ६ बाहर हूँ घृति घुड़ क्षिये हूँ । बाहि न भाषत कर्म क्षिये हूँ ॥
बाहर घुड़ तु भयत सयानो । तावहं जीवनमुक्त बधानो ॥
—उ. अ. प्र. १३, अ. १५ ।

‘विज्ञानमीता’ के अनुसार जीवनमुक्त उसे कहते हैं जो बिस्व के सुख-दुखों को समभाव से देखता तथा राग-विराग हीन रहता है जिसने ग्रहभाव का परित्याग कर दिया है जिसे संसार के प्रत्येक पदार्थ के वास्तविक रूप का ज्ञान है जो वास्तव के सुख परमहृत्स्व से संसार में भ्रमण करता है तथा स्वयं अपने को एवं चर तथा अचर जगत् को एक समान समझता है^१ ।

‘विबेहमुक्त’ जीवनमुक्त से भिन्न है। वह देखता सुना भी कुछ नहीं देखता। इस नामरूपारमक संसार में उसका आचरण बिना भिषि के संघट्ट होता है। यह स्वयं किसी प्रकार की इच्छा नहीं करता और परब्रह्म की ही इच्छा को प्रमुख मानता है। वह कर्म प्रकर्म में भीन नहीं होता और जब भी कर्म के समान जगत् में रहने हुए भी अनासक्त भाव से रहता है। इस अवस्था में पहुँचने पर जीव विनान्त में ही एका तस्मीन रहता है^२ ।

प्राप्त्युपाय—केदार शरीर को मुक्ति-प्राप्ति में बाधक नहीं मानते। योग साधन अथवा प्राणायाम द्वारा अवेह मुक्ति प्राप्त हो सकती है^३। जहाँ केदार योग साधना में समाधि के लिए निश्चलरह तथा निर्वासनत्व की आवश्यकता समझते हैं वहाँ पूरा प्रेम की भी महत्ता स्वीकार करते हैं^४ ।

संन्यास—केदार के मत में मुक्ति प्राप्ति के लिए संन्यास लेकर जन जाने की आवश्यकता नहीं है। वे मनोनिग्रह को मुख्य मानते हैं। केदार कहते हैं कि यदि जीव

- १ लोक करै सुख-दुःखनि के बिनि राग-विरागनि या महुँ जाने ।
 डारै उपारि समुल ग्रहण्य कवन कावन को पहिचाने ॥
 वास्तव ज्यों जहाँ मृतम में अहं व्यापुन से बड़ अवन जाने ।
 केदार वैद पुराण प्रमाण तिन्हें सब जीवनमुक्त बधाने ॥

—वि श्लो०, म ११, व १२ ।

- २ देखत हूँ अनदेखत हूँ भिषि रूपक सेन सरूप को जाई ।
 व्यापु अनिच्छ जने परहण्य को केदारदास सदापति पाई ॥
 कर्म प्रकर्मनि भीन नहीं भिन्न पापज ज्यों जल प्रक लगाई ।
 हूँ अति भक्त विद्यागन्ध यज्जनि सोय अवेह बिदेह कहाई ॥

—वि श्लो०, म ११, व १३ ।

- ३ कम कम साथे देह इहि, केदार प्राणायाम ।
 कर्मक पुरक देखकनि तो पूर्ण मन काम ॥

—वि श्लो २०, १२, व १ ।

- ४ ध्यानहु ज्योति हिये अविनाशी । अच्छ निरंजन दीप प्रकाशी ।
 निश्चलसेय समाधि बिहारै । वास्तना धंग परतनि चारै ।
 मुक्त स्वभाव के नीर नहारे । पूरक प्रेम समाधिहि जाई ।
 कन मून विद्यागन्ध जूननि पूरै । और न केदार पूजन दूजै ॥

—वि श्लो २२, व ४५, ४६ ।

में प्रविष्ट होकर भी उससे निष्कर्षक निकल जाता है^१ ।

स्वयं रस गन्ध, भवज स्वर्गादि इन्द्रियाणों को मोहते हुए भी मन का उनमें लीन न होना सम कहलाता है^२ ।

सन्तोष वह अवस्था है जिसमें मन में किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं होती और न किसी वस्तु के हानि-नाश से दुःख-सुख ही होता है । उसमें मन परमानन्द स्वस्व ईश्वर में ही लीन रहता है^३ ।

मुक्ति का बीजा साधन 'विचार' है । मैं कौन हूँ ? कहाँ जाया हूँ ? कहाँ से, किस लिये जाया हूँ ? अपने वास्तविक पद को प्राप्त करना मेरा परम धर्म है ? कौन मेरा मित्र है ? कौन शत्रु है ? इस प्रकार के चिन्तन को 'विचार' कहते हैं^४ ।

मुक्त पुरुष का अर्हभाव नष्ट हो जाता है और वह समुप्य से लेकर कीट पतङ्गों तक विरव के सभी छोटे-बड़े बीजों को आत्मवत् समझता है क्योंकि अर्हभाव के नाश से भेद-बुद्धि नष्ट हो जाती है^५ ।

मुक्त जीवों के प्रकार—केदार के अनुसार मुक्तों के दो भेद हैं—जीवनमुक्त तथा विवेकमुक्त । जीवनमुक्त जीव वह है जो बाहर शरीर से भीतर हृदय से प्रति झुड़ होता है जो निष्काम भाव से कर्म करता है और जो बाहर से तो भुर्ख-सा जान पड़ता है पर अन्तःकरण से ज्ञानवान् होता है^६ ।

१ यह जग जगकाम्युह किम कञ्चन कलित प्रबाहु ।

तामहै पैठि जो नीकसँ प्रकर्मकित सो साहु ॥

—रा. च. प्र. १२, अ. १ ।

२ देखत हूँ बहु काल किये हूँ । बात कहे मुने मोह किये हूँ ।

खोबत जायत नैक न लोभ । सो समता सब ही महँ सोनै ॥

—रा. च. प्र. १२, अ. ११ ।

३ जो अभिलाष न काहू की भावै । जाये गये सुख-दुःख न पावै ।

जि परमानन्द सों मन सावै । सो सब साहि सतोष कहावै ।

—रा. च. प्र. १२, अ. १२ ।

४ जायो कहाँ सब हों कहि को हों । क्यों अपने पद पाठैं सो टोहीं ।

बहु अवधु हिये महँ जानै । ताकहँ लोभ विचार बजानै ।

—रा. च. प्र. १२, अ. १३ ।

५ आपन सो अवलोकिये सब ही मुक्त धमुक्त ।

अर्हभाव मिटि जाय जो कौन बह को मुक्त ॥

—रा. च. प्र. १२, अ. १८ ।

६ बाहर हूँ प्रति झुड़ किये हूँ । बाहि न जायत कर्म किये हूँ ॥

बाहर झुड़ सु भन्त सवागो । ताकहँ जीवनमुक्त बजानो ॥

—रा. च. प्र. १२, अ. २० ।

‘विद्वानमीता’ के अनुसार जीवनमुक्त उसे कहते हैं जो बिस्व के कुछ दुखों को समभाव से देखता तथा राग-विराग हीन रहता है जिसने ग्रहभाव का परित्याग कर दिया है जिसे संसार के प्रत्येक पदार्थ के वास्तविक रूप का ज्ञान है जो कामरु के सदृश परमहंसरूप से संसार में भ्रमज करता है तथा स्वयं अपने को एवं पर तथा भयर जगत् को एक समान समझता है^१ ।

‘विदेहमुक्त’ जीवनमुक्त से निम्न है । वह वैजता हुआ भी कुछ नहीं देखता । इस नामरूपात्मक संसार में उसका धारण भिन्न-भिन्न के सदृश होता है । वह स्वयं किसी प्रकार की इच्छा नहीं करता और परब्रह्म की ही इच्छा को प्रमुख मानता है । वह कम-प्रकर्म में लीन नहीं होता और जब में कमल के समान जगत् में रहने हुए भी घनावस्थ भाव से रहता है । इस अवस्था में पहुँचने पर बीर विद्वानन्द में ही सदा तन्मीन रहता है^२ ।

प्राणायाम—केदार शरीर को मुक्ति प्राप्ति में बाधक नहीं मानते । योग साधन धमका प्राणायाम द्वारा प्रवेह मुक्ति प्राप्त हो सकती है^३ । जहाँ केदार योग साधना में समाधि के लिए निश्चलत्व तथा निर्वासनत्व की आवश्यकता समझते हैं वहाँ पूर्ण प्रेम की भी महत्ता स्वीकार करते हैं^४ ।

संघात—केदार के मत में मुक्ति प्राप्ति के लिए संघात सेकर बन जाने की आवश्यकता नहीं है । वे मनोनिग्रह को मुख्य मानते हैं । केदार कहते हैं कि यदि जीव

- १ लोक करै कुछ-कुछनि के जिनि राग-विरागनि या महुँ पाने ।
हारै उपारि समुल ग्रहंतव कचन काचन जो पहिचाने ॥
बातक ज्यों भवै भूतस में भव पापुन से वह जंमम जाने ।
केदार बेद पुराण प्रमाण तिन्हें सब जीवनमुक्त बखाने ॥

—वि० श्री प्र ११ अ० ११ ।

- २ देखत हूँ अनदेखत हूँ सिधि रूपक सेन सरूप को बारी ।
पापु अनिच्छ जसे परदृष्ट को केदारदास सदापति पारी ॥
कर्म प्रकर्मनि लीन नहीं निज पापज ज्यों जल प्रक समाई ।
हूँ भति मत्त विद्वानन्द मय्यनि सोप सबेह विदेह कहाई ॥

—व श्री प्र ११ अ० १२ ।

- ३ धम कम साधे देह रहि केदार प्राणायाम ।
कर्मक पुरक रैचकनि तो पूर्ण मन काम ॥

—वि गो ॥ १५ अ० १ ।

- ४ जानहु ज्योति हिये धरिनाशो । शब्द निरजन सोप प्रकाशो ।
निरचलनेप समाधि बिहारै । बासना धंग पतंगनि वार ।
सुख इवमात्र के नीर नहारै । पुरप प्रम समाधिहि सारै ।
फन मूल विद्वानन्द कूमनि पूजै । धीर नवदास पूजन दूरै ॥

—वि प्र प्र० १५ अ० ११-१४ ।

सबैय बड़ाभित्तन में सीग रहता है, सत्य बोलता है हृदय में कसबा बाराग करता है पाप-कर्मों का परित्याग करता है धर्म-कर्मार्थों का ध्वज करता है सत्संग करता है भोग करते हुए भी यदि वह उससे निरतिष्ठ रहता है धीर इस प्रकार सचका मन उसके वश में है तो उसके लिए घर धीर बन दोनों ही बराबर हैं। धीर यदि उसमें यह बाध नहीं है तो सम्पास लेकर बन जाना भी व्यर्थ ही रहेगा^१।

मनोनिग्रह—केषव जीवों के बन्धन सदा मोक्ष का कारण मन को बतसाते हैं। वे लिखते हैं कि मन में सगी हुई पाँठ मन से ही खुपती है। मन से मन साफ होता है धीर बिप का नाश भी बिप से ही होता है^२। मन एक ऐसी बुझारी तमवार है जो एक धार से मुक्त को काटती है धीर बुझरी से बन्धन को। वह कभी हमारा मित्र होता है कभी शत्रु^३। केषव की दृष्टि में मन आकाश के समुच्च प्रकृष्ट है परन्तु साध ही वे यह भी मानते हैं कि वह बुद्धि के वश में रहता है। बुद्धि ही उसे डींग देती है वही उसे पींच भी सकती है^४। परन्तु मनोनिग्रह हँसी-बेल नहीं है। उसके लिए धीरे धीरे अभ्यास करना पड़ता है। मन के बसीभूत हो जाने पर सब इन्द्रियाँ उसी प्रकार वश में हो जाती हैं जिस प्रकार पशु के वश में सर्प हो जाते हैं^५।

(२) केषव की भक्ति—केषव को अपनी पाँडित्य प्रवचन की प्रभृति के कारण 'रामचन्द्रिका' में 'रामचरितमानस' की सी पूषता प्राप्त न हो सकी। केषव की रामरूपा में भक्ति का किष्कुल उन्मेष नहीं है धीर न 'रामचन्द्रिका' को भक्ति ग्रन्थ ही कहा जा सकता है। यों तो इष्ट के रूप-गुण का कीर्तन भी एक प्रकार की

- १ निविबासर वस्तु बिचार करि मुक्त साँच हिये कसबाधनु है।
मन निग्रह, संप्रह धर्म कसान परिग्रह साधुन को मनु है ॥
कहि केषव योग जर्न हिय भीतर, बाहर भोगन स्यों तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके तिलको वनु ही वन है धर ही वनु है ॥

—उ. चं. म. २१ अं. ११ तथा नि. गी. म. २१ अं. ५३ (सम्बन्ध से)।

- २ मन की बीन्ही पाँठि प्रभु मनहीं पर छर बाज।
ज्यों मन ममहीं घोषए, बिप ही बिप नु उपाज ॥

—नि. गी. म. २१, अं. २१।

- ३ जग को कारण एक मन मन को पीत धबीत।
मन को मन मुन सजु है मन ही को मन मीत ॥

—नि. गी. म. २१ अं. १६।

- ४ मन को रूप धरूप है जैसे है आकाश।
बद्ध बड़ाए बुद्धि के चटत चटाए धास ॥

—नि. गी. म. २१ अं. २।

- ५ हरे हरे मनु ऐधि नै कीजी मन को हाव।
इन्द्रिय सर्प समान हैं पावड मन के साव ॥

—नि. गी. म. २१, अं. २९।

भक्ति है परन्तु केदार की चमत्कारपूर्ण रीती में रामकथा में कहीं भी दृष्ट के रूप तथा कृपों का वह भिन्न धर्मिक नहीं होने दिया जिससे सरस हृदयों में रागात्मिका भक्ति का उदय तथा उत्कर्ष होता है। तो भी भक्ति क सम्भावसेप का रूप 'रामभक्तिका' में मिस ही जाता है।

भक्ति कई प्रकार की होती है। 'भागवत' और चम्पारम 'रामायण' नामक ग्रन्थ उसे नवधा मानते हैं। कबीर ने इसे दशधा माना है। नारदोक्त भक्तिसूत्र में इसे एकत्रयध्या कहा गया है। केदार 'भागवत' के सप्तसु 'विबालवीता' में नवधा भक्ति का ही उल्लेख करते हैं^१। पर उनके नवधा-भिरूपण में एक विशेषता यह है कि वे भक्ति की काव्य के मन्तरों से मिलित मानते हैं। भक्ति के एक-एक प्रकार में एक-एक रस की प्राप्ति होती है। श्रवण में सद्सुत स्मरण में करुण दासता में बीमत्स पर-सभा में मयानक कवच में बीर धर्मेन में शृंगार सख्य में हास कीर्तन में रौद्र तथा ध्यात्मनिवेदन में शान्त रस की स्तिप्ति होती है^२।

केदार समुक्त भक्ति के समग्रक हैं और उसमें वे अनय भाव की प्रतिष्ठा पर और बैठे हैं^३। किन्तु वे समुक्त का समर्पण निगुण के निराकरण द्वारा नहीं करते। उन्हें मयान् (राम) की समुक्त और निगुण दोनों सत्ता स्वीकृत हैं। उनके मत में निगुण ही अपने मन्तरों के लिए सगुण रूप धारण करके सबलरित होता है। सीता राम संसार में राम का कर्म इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

निगुण से मैं सगुण भी पुनि पुनरित तब हैत^४।

सीता के मयान् कृष्ण के समान ही केदार के मयान् भी जब-जब संसार

१ नवरस निमित्त सावि मूय नवधा भक्ति प्रमानु ।

दानव मानव देवपण भक्त कर्मस हरिमानु ॥

—मि. बी०, प्र० १८, पं० १८ ।

श्रवण कीर्तन निष्ठा स्मरण पारसेवनम् ।

धर्मेन बन्धन दास्यं सक्रमणमनिवेदनम् ॥

—भागवत, स्कन्ध ७ अध्याय १ श्लो० २१ ।

२ बीतहुं सद्सुत श्रवण सों, सुमिरन कहना जानि ।

सहित पुपुष्पा दासता पावमजन मय मानि ॥

धर्मेन बीर शृंगार सों धर्मेन सख्य सहस्र ।

रौद्र कीर्तन सयसहित ध्यात्मनिवेदन प्रकाश ॥

—मि० बी०, प्र० १८, पं० १८-४ ।

३ सत निव प्रकाश प्रमेव, तेहि बेग मानत हैव ।

तेहि पुनि जयि रवि भक्ति, सब प्राहसन को छवि ॥

४ प० बी०, प ११ पं० २२ ।

—प० बी०, प्र० २१, पं० १८ ।

में मर्मावा का चरित्र बन होता है कच्छप भीम, बराह आदि अनेक अवतार धारण कर मर्मावा को रक्षा करते हैं^१ ।

केलच भगवान् के सगुण रूप के ध्यान में 'निष्कपट भाव' की महत्ता स्वीकार करते हैं। उन्होंने लिखा है कि यदि एक बड़ी भी निष्कपट हो पूजन कर लिया तो मार्गों अनेक पत्रों का अनुष्ठान ही कर लिया^२ । इस प्रकार का ध्यान ही योग है। यही ब्रह्म है और यही कर्म। अतः इसी में चित्त लगाना चाहिए^३ । इसी पूजास्वी धर्म में समस्त शुभ तथा असुभ वाचनाएँ भस्म हो जाती हैं^४ । 'शुभ वाचना के नाश' से निष्काम भक्ति का समर्थन किया गया है^५ । एक और स्थल पर भी केलच ने निष्काम भक्ति की ओर संकेत किया है। भगवान् के निष्कामचरित्र मन को उनके रूप में सीत करके दुरन्त माया को भक्त बनावास ही जानि जाते हैं^६ ।

१ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

—गीता अध्याय ४ श्लोक ७ ।

भरबावहि छोड़त जानत जाको । तुम हो अवतार बरो तुम ताको ।

तुमही बर कच्छप भेष बरोहु । तुम भीम हैं बैदन को चरों बू ॥

तुम ही बग मर-बराह भवे बू । किति छीन गई हिरनाछ हवे बू ।

यहि भीति अनेक सकुम तिहारे । अपनी मरबाद के काब सँबारे ॥

—ए बं०, प्र ९ अं १३ ९ और १४ ।

२ पूजा यहै घर धानु । निष्प्राज करिये ध्यानु ।

सौं पूजि बटिका एक । मनु किये भाव अनेक ॥

—ए बं०, प्र १३, अं २० ।

३ धिय जान यहै योग । सब धर्म कर्म प्रयोग ।

तेहि सँ यहै घर भाव । मन उगत कहुँ न बचाव ॥

—ए अं० प्र० १३, अं २१ ।

४ यह पूजा अद्भुत अभिनि धुनि प्रभु निरुवन नाथ ।

सब धुमाधुम वासना में जारी निज हाथ ॥

—ए० बं० प्र १३, अं २२ ।

५ मानो निष्काम भक्ति धक्ति आप आपसी सु ।

देहुनि करि प्रेमन भरि, मजन मेव पारि ॥

—ए० बं० प्र० १३ अं २४ ।

६ तबि तबि माया दुरन्त भक्त राबरे धनन्त ।

तब पद कर गीत गीत मानहु मन बीगै ॥

—ए० बं० प्र० १३, अं २५ ।

मक्ति के क्षेत्र में राम-नाम के महत्त्व को भी केदार विशिष्ट स्नान होते हैं। कृतिकाल के प्रभाव के कारण जब वह धीरे पुराण नष्ट हो जाएंगे अप तप तथा तीर्थ से लोगों का विश्वास उठ जाएगा। गाय और ब्राह्मण का सम्मान न रहेगा तब ससार का उद्धार कबल राम-नाम ही करेगा^१। कछब कहते हैं कि यदि पापारमा भी मृत्यु के समय राम का नाम से तो उसे सहज ही मुरपुर की प्राप्ति हो सकती है^२। धीरे धीरे वह नाम के लिए क्रूर बान के पत्र से बच जाता है—

काल-सर्प के कबलते छोड़त बिनको नाम (रा० च प्र० १७ छं० १३)।

यों तो प्रयवान् के वनस्त नाम हैं पर केदार को राम का नाम ही इष्ट है—

केदारदास तही कर्षी रामचन्द्र नु इष्ट (रा० च, प्र० १ छं० १८)।

राम के नाम में उन्हें पार्यों के नाश करने की शक्ति दिखाई पड़ती है।

राम के नाम से ज्यों घस भाय^३

कदारदास के विचार में राम-नाम का अधिकारी केवल वर्ण-विशेष ही का व्यक्ति नहीं है बल्कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र चारों वर्गों में से प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति चाहे पुण्य हो या घबरा स्त्री उसका अधिकारी है। राम चरित्र का प्रवर्ण करने से पुत्र स्त्री संपत्ति तथा अनेक यम बान धीरे तीर्थस्नान का फल मिलता है^४।

‘राम’ शब्द के आप में इसनी वनस्त शक्ति है कि निरक्षर भाव से यदि किसी भी वर्ण का व्यक्ति चाहे ही नाम अर्थात् ‘र’ का उच्चारण करे तो वह अयोग्यता को प्राप्त नहीं होता और यदि पूरा नाम अर्थात् राम कहे तो सुरन्त बंधुष्ट प्राप्त करता है। इसी प्रकार से दोनों अक्षर मनुष्य के लोच-परमोक्ष दोनों की मुबार देते हैं^५।

१ जब सब बंद पुराण नष्ट हैं। अपतप तीर्थसह मिटि जई।

हिब मुरली नहि कोत विचार। तब जग केवल नाम उचारे ॥

—रा० च०, प्र० १६, छं० ८ छं० वि०, प्र० २४ छं० ४२ (दमन्त्र से)।

२ मरन काल कोऊ बहे पानी होय पुनीत।

मुखही हरिपुर भारही सब अय पावै गीत ॥

—रा० च०, प्र० २९ छं० १० छं० वि०, प्र० २१ छं० २ (दमन्त्र से)।

३ रा० च०, प्र० २६, छं० १४।

४ रामचन्द्र चरित्र को वृ मुनीं सदा बिस लाय।

ताहि पुत्र वनत्र सम्पति दैत धीरपराय ॥

यम दान अनेक तीरथ गृह्य को फल होय।

भारि वा नर विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो कोय ॥

—रा० च०, प्र० २१ छं० १८।

५ बहे नाम बाधो सो बाधो नछाई। बहे नाम बुरो मो बंधुष्ट पावै।

मुबारे बुद्धे लोक बन दोऊ। हिने छद्म छोड़े बहे वर्ण कोऊ ॥

—रा० च०, प्र० २६, छं० ११।

राम-नाम की महिमा अक्षरार्णवीय है। वह साधारण मनुष्यों की समझ से परे है। उसके महत्त्व एवं प्रभाव को धिक् शीघ्र वास्वीकिं अथवा वेद में ही जाना है^१। सब का सार यह है कि राम-नाम संसार में सब साधनों का एक साधन है^२।

(३) केशव की नीति एवं धर्म :

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर धर्म और नीति में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं प्रतीत होता, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से दोनों में भेद दिखाई देता है। नीति में स्व-हित चिन्तना की भावना प्रधान होती है और धर्म में लोकहित-चिन्तना की। नीतिके सम्मुख व्यक्ति का ऐहिक सुख रहता है जो अपनी परिधि में अपनाज तक फैल सकता है किन्तु धर्म की दृष्टि आचरण के पारमार्थिक पक्ष पर रहती है। वह माना कि नीति की 'स्वीयता' धर्म में भी होती है पर नीति में वह संकीर्ण होती है और धर्म में व्यापक। धार्मिक स्वीयता का रूप 'बभ्रुर्धैव कुटुम्बकम्' द्वारा अभी नीति अभिव्यक्त किया जा सकता है। नैतिक स्वीयता का आधार व्यक्ति है।

धर्म और नीति का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि दोनों के मध्य में कोई अन्तर रेखा खींचना कठिन है। यही कारण है कि साहित्य में बहुत स्थानों पर धर्म और नीति का संश्लिष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है। केसव के प्रबन्ध-काव्यों में राज नीति और सामान्य नीति का अन्तर तो स्पष्ट देखने में आता है पर नीति और धर्म का वहाँ भी मिला-जुला रूप ही दिखाई पड़ता है। फिर भी विषय को सुबोध तथा सुस्पष्ट बनाने के विचार हैं यही राजनीति और सामान्य नीति की नीति-धर्म में रखा गया है एवं धर्म का नीति से प्रत्यक्ष वर्जन किया गया है।

(क) नीति

(१) राजनीति

केसव के राजनीति-सम्बन्धी विचारों का आधार धुक्नीति है। 'रामचन्द्रिका' में स्वयं उन्हीं का कथन है^३।

राजा

केसव ने 'रामचन्द्रिका' में चार प्रकार के राजा माने हैं। एक जो वे हैं जो इस लोक को ही सब कुछ समझ कर इसी की साधना करते हैं और अपने को ईश्वर मानते हैं जैसे बली बेषु दूसरे वे हैं जो परलोक ही की साधना करते हैं जैसे समस्त पृथ्वी के बाग करने वाले राजा हरिवन्धन तीसरे वे होते हैं जो दोनों लोकों की साधना में लीन रहते हैं जैसे विजिजाविपति विदेह और चौथे प्रकार के राजा वे

१ राम नाम के तत्व को जानत वेद प्रभाव ।

धनाधर की बरधियर बालमीकि मुनिराज ॥

—पृ० ४, पृ० २६, पृ० २१ ।

२ सब को साधन एक अप, राम तिहार नाम ।

—पृ० ४०, पृ० १२, पृ० ४४ ।

३ कहाँ सुकमार्य सु हीं कहाँ नु ।

—पृ० ४, पृ० २७, पृ० २० ।

है जो हठी होने के कारण अपने दोनों सौक मट्ट कर देते हैं जैसे राजा जिसेकु जिसे मते-मुदे सभी हसते हैं^१ ।

'वीरसिद्धदेव-चरित' में मुर मध्यम तथा सप्तु तीन प्रकार के राजाओं का उल्लेख किया गया है^२ ।

मन्त्री

केसव के अनुसार मंत्री भी चार ही प्रकार के होते हैं। एक तो वे हैं जो अपने हित के लिए राज्य-हित का हनन कर देते हैं जैसे राजा मुरम का मंत्री जिसने राजा को निकाल कर अपना हित साधन किया। दूसरे वे हैं जो राजा के हित के लिए स्वयं कष्ट उठाते हैं जैसे पुनाचार्य जिन्होंने राजा बलि के हित के लिए अपना एक मन्त्र तक खो दिया। एक ऐसे मंत्री होते हैं जो अपना धीर अपने स्वामी दोनों का हित करते हैं, जैसे हनुमान धीर एक ऐसे होते हैं जो अपना धीर अपने प्रभु दोनों का महित करते हैं जैसे मेघनाद^३ ।

मंत्र—मंत्रियों के मंत्र भी चार प्रकार के होते हैं। उत्तम मन्त्र यह होता है जो सुनने में भी मधुर होता है और जिसका परिणाम भी मधुर ही होता है, जैसे धनार का मंत्र जो स्वाद और गुण दोनों में मधुर होता है। दूसरे प्रकार का मंत्र सुनने में कटु होता है पर परिणाम उसका मधुर होता है जैसे नीम जो स्वाद में कटु और गुण में रोमहायी (हितकर) होता है। तीसरे प्रकार का मंत्र मुड़-सड़ुप होता

- १ नृपाल भू में विजि चारि जानी । ॥
यहै सोक एकै सदा साधि जानी । बनी बेनु ज्यों भापु ही ईस मानी ॥
करै साधना एक परमोक ही को । हरिराज्य जैसे पये ई मही को ॥
हुँ लोक को एक सार्य सवाने । विदेहीन ज्यों बेद बानी बसाने ॥
मठे सोक बोळ हठी एक ऐसे । निराली हूँ ज्यों भसेऊ धनसे ॥

—रा. भं. प्र. १७ अ. २०-२२ ।

- २ ऐसे नरपति होत मुखान । मुर सप्तु मध्यम धुनहु विधान ॥
अपनी पुरुषांगति की रीति । अमूम छादि सभ प्रपटत रीति ॥
रासी तिनकी धरनि धरीप । सिद्धि और ॥ विप्रम सेप ।
तिनकी बीनी प्रतिदिन देह । धीरहि है बीति रत मेह ॥
कुल पालहि मुनि हरै भाव । ऐसे नरपति मुर मनभाव ॥
होहि वे अपन पिता समान । मध्यम तिनसी कहत मुखान ॥
जिन पर रासी जाइ न प्रजा । हई न जाइ कुट्ट को सजा ॥
नाहिन कछु धर्म की सुधि । ऐसे सप्तुन परहै नृज ॥

—दी. दे. ४, १ १५१ ।

है। वह सुनने में धन्यता सगता है किन्तु प्रभाव में हानिकर होता है। अन्तिम प्रकार का मंत्र दोनों प्रकार से अनिष्टकर होता है वैसे विप^१।

राजधर्म—राजा को सर्वयुधसम्पन्न होना चाहिये। राजनैतिक-जीवन के प्रतिरिक्त उस कुछ व्यावहारिक बातों का भी ज्ञान होना चाहिए अन्यथा वह प्रजा में सुख-शान्ति स्थापित करने तथा अपने राज्य को स्थिर बनाये में सफल नहीं हो सकता। उसको चाहिये कि वह झूठ न बोले, मूख से मित्रता न करे, एक बार बात देकर वापस न ले, किसी से स्नेह करके फिर उसे न छोड़े, मंत्री और मित्र को दुःख न दे, वैद्यान्तर में जाने पर धनु का विश्वास न करे, पुष्या न खेले, वेद-वचन की रक्षा करे, धनु-वैद्य में जाकर जनबानी वस्तु न जाए, मूर्ख से संवधा न करे, गुप्त श्रेय किसी पर प्रकट न करे, हठ न करे, मठचारियों से सम्पर्क न बढ़ाए, प्रजा को व्यर्थ पीड़ित न करे, उसका पुत्रवत् पालन करे, बोयी-निर्दोषी का निश्चय कर बँड दे, ब्राह्मण, देवता स्त्री तथा वासक के वन का अपहरण न करे, ब्राह्मणवध से स्वयं में भी विरोध न करे, पर-वन को विप-मुक्त्य और परस्त्री को मातावत् समझे, काम क्रोध मोह गर्भ तथा चित्त-क्रोध का परिहारा करे, यद्य का संग्रह करे, ज्ञानी साधुओं की संपत्ति करे, वर्मानुसार सिद्धा देने वाले को हितैषी समझे, अशक्तियों से बाध तक न करे, कठघनी मिथ्यावादी परस्त्रीगामी एवं लोभी ब्राह्मण को दान बाँटने का अधिकारी न बनावे और सकस्य किये हुए द्रव्य की यत्नपूर्वक रक्षा करके ब्राह्मणों में उस अपने हाथ से ही वितरण करे^२।

सुख की इच्छा रखने वाले राजा को राज्य की सुरक्षा के सभी साधन अपने हाथ में रखने चाहिए। उनमें प्रमुख साधन तेरह राज्यों की सुख्यवस्था है। जो राजा कमजोर अपने राज्य सहित तेरह राज्यों की व्यवस्था कर लेता है, उसका धनु मित्र बनबा उदासीन कोई भी अहित नहीं कर सकता। अपने समीपवर्ती राज्य से धन्यता रखे, उससे दाने प्राप्त करवाए धनु के पड़ोसी राज्य से मित्रता करे और उससे भी परे वाले राज्य से उदासीन भाव रखे। धनु राज्य से सुख मित्र-राज्य से सन्धि और उदासीन राज्य से मान-नीति का व्यवहार करे। इस प्रकार अपने आरों और सिन्धु पर्यंत सुख्यवस्था कर लेने से सुख स्थापित हो जाता है^३।

१ मंत्र चार प्रकार के मंत्रों के चार प्रमाण।

विप से बाह्यम भीज से गुड़ से भीज समान ॥

—रा० चं०, अ० १७, अं० २९।

२ रा० चं० अ० १६, अं० १६ १४।

३ तेरह मंडल मंडित भूतस भूपति जो कम ही कम छोटे।

कैसेहूँ ताकई धनु न मित्र सु केसवदास उदास न बाँधे ॥

धनु समीप परे ठेहि मित्र सु तावु परे जु उदास के जोई ॥

विग्रह, संविनि, वागनि सिन्धु जी से जहुँ धोरनि तो सुख छोई ॥

—रा० चं०, अ० १६। १६।

प्रजाकृत पाप राजा को भी समता है यत उसे चाहिए कि वह सर्व्व उसकी ओर ध्यानरुक् रहे अथवा उसे नरक भोगना पड़ेगा^१ ।

राजा को चाहिए कि वह चारों पदार्थों का भय भी सामन करे । सबप्रथम धर्म साधन करे उत्पन्नतात् धर्मोत्पन्न करे फिर सन्तान के लिए स्त्री प्रसंग करे और सम्पन्न हो जाने पर उसे दिन-रात मन-मन से मुक्ति के साधनों में लग जाना चाहिए अर्थात् धर्म धर्म तथा काम के साधन कर चुकने के अनन्तर पुनः को राज्य का भार सौंप कर और संन्यास आरम्भ कर मुक्ति के साधनों में लुट जाना चाहिए^२ ।

संन्यास से पूर्व्व युद्ध भी राजा के लिए स्वर्ग का द्वार बना रहता है । यत्त राजा का धर्म है कि युद्ध से विमुक्त न हो । युद्धभूमि में मारा जाने पर उसे भीरुगति प्राप्त होती है और वह स्वर्ग का भोग करता है^३ ।

केदार में राजधर्म तथा राजनीति का ब्रह्मसंन्यासश्रितिका की प्रवेष्टा श्रीरसिहृदेव चरित में अधिक विस्तृत रूप से किया है । तीसरा तथा इच्छासिद्धा दोनों प्रकाश राजधर्म-वर्णन को अर्पित है । केदार के अनुसार राजा को सम्प्रवारी दूर और धर्मात्मा होना चाहिए । दूरवीर होने से सब उसका भय मानेंगे सम्प्रवारी होने के कारण सब उसका विश्वास करेंगे और दारी होने से पारा संसार उनका यश मायेगा^४ ।

राजा का धर्म है कि वह सर्व्व अपनी प्रजा का पालन करे और साथ ही उस पर निग्रह भी रखे, माता पिता तथा ब्राह्मण को छोड़कर अन्धकार दण्ड की भी

तथा इति विधि रस राजा देव । अपने मीढ़े है जु नरेव ॥
 बैरी करि माने वह देव । माने ताकई पणु नरेव ॥
 ताके पीने कुपा जु भूप । माने ताहि मित्र की रूप ॥
 ताके परै जु भूपति चाहि । उदासीन न माने ताहि ॥

—बी दे व म १०२ ।

१ नरदेवक पाप परै परजा को । निधिवासर होय न रथक ताको ।
 पुण वोपन की बज होय न बर्षी । सब हो गुण होय निर्दयदर्षी ॥

—उ म म १४ अ ० ८ ।

२ धर्म करत अति अथ बड़ावत । संतति हित रति बोधिद पावत ।
 संतति उपवत ही निधिवासर । साधन तन मन मुक्ति महीपर ॥

—ता म , म १८, अ ० ८ ।

३ राजा सनमुख तनु लगे करे स्वर्ग में भोग ।
 दुनिया में यश विस्तरे हंसै न जग के लोग ॥

—रत्नचरनी (विश्व-वैद्य) अ ० ११ ।

४ राज चाहिये साँची मूर । ताय मुसकस यम बी मूर ।
 बी मूरि ती सर्वे इराइ । साँची बी सब जग पतिपाइ ।
 साँची मूरि बाजा होय । जग में मुक्त सब बी सब कोइ ।

—बी दे व ० ३० १६४ ।

ब्रह्मस्वा करे^१ । मंत्री और मित्रों के दोषों की ओर ध्यान न दे । उसे मूर्ख को मंत्री, मित्र सभासद पुरोहित बंध ज्योतिषी, जेसक बूढ़ प्रतिहार और बर्माधिकारी भादि न बनाना चाहिए । उसे चाहिये कि वह अपनी मंत्रणा सुन रहे और मद्य का निषेध करे^२ । उसका यह कर्त्तव्य है कि वह जन तथा धर्म का संघर्ष और उसकी रक्षा करे । जन धर्माप ही ध्यय करना चाहिए । जन से राज्य की समृद्धि होती है और सब काम सफल हो जाते हैं^३ । राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा की सुख समृद्धि का ध्यान रखते हुए राज्य में नाटिका जसासब भादि का निर्माण तथा फल फूल धीपणि एवं प्रजा के लिए धस्त्र-धस्त्र, धस्त्र-धस्त्र भादि का समुचित प्रबन्ध करे । राजा को यह भी चाहिए कि वह वयामोम्य स्वार्थों पर अधिकारियों की नियुक्ति करे । अधिकारी धूर, पबिवात्पा और राजनक्त हों^४ । समरसूनि से पीठ बिकाने वाले और हथियार ठाग देने वाले को वह न मारे^५ । दूसरे राज्यों की

- १ सन्तति करे प्रजा प्रतिपास । यहै धर्म नृप की सब कास ।
बोई जन धनधर्महि करै । सब ही नृपति बन्ध संबरै ।
सब को राजा निग्रह करै । मातु पिता विप्रनि परिहरै ॥
वयापराज बन्ध को देख । सै जन बंध बिबा करि देख ॥

—श्री रे० ब, पृ १२४ ।

- २ मंत्री मित्र दोष उर भरै । मंत्री मित्र नु मूरख करै ॥
मंत्री मित्र सभासद सुनी । मोहित बैब ज्योतिषी बुनी ॥
जेसक बूढ़ स्वार प्रतिहार । सीमे सुकृत बाहि भम्हार ॥
इतने सोगनि मूरख करै । सो राजा बिद राज न करै ॥
बाकी मती दुरयो नहि रहै । सब मित्र सुरापान संघरै ॥

—श्री रे० ब, पृ १२५ ।

- ३ अपनाई जन धर्म प्रकार । ठाकी रक्षा करे अपार ॥
जन ॥ भाति बड़ाई राज । जन बाई सब ही की काज ॥
ठाकी करन धर्मनिमित्त । प्रतिदिन बीबी विप्रनिमित्त ॥

—श्री रे० ब, पृ १२६ ।

- ४ राजकीय रक्षा की काम । सुभ नाटिका जसासब बाध ॥

धस्त्र धस्त्र बहु धन्य विधान । धन्यपान रख पट जनमान ॥
कन्दमूल धन धीपण बाज । सहित बाज सुन बाँबी ठाज ॥
ठौर ठौर अधिकारी कोय । राजे भरपति बाकी मोय ।
सूरे धुधि धर होय धनन्य । प्रभु भक्ति यही मन मन्य ॥

—श्री रे० ब, पृ १२७ ।

- ५ मजे बात दिनकों बहि हने । डारि हथियार बे हथार भरी ॥

—श्री रे० ब, पृ १२८ ।

विजय से प्राप्त हुयी घोड़े, धन धादि को ब्राह्मण भाई, पुत्र तथा मित्रों में राजा को बांट देना चाहिए^१ ।

राज्य का समाचार जानने के लिए राजा को चाहिए कि वह बायें रिसायों में दूतों को भेजे और उनसे राज में धकेले में समाचार पूछे । एक समय में एक ही दूत को बुलाना चाहिए और वह मि वरुण तथा स्वर्ण राजा सपान हो^२ । अधिकारियों की भी यदि-विधि से पूर्वतया परिचित रहने के लिए सुपुत्र होने आवश्यक है । राजा को चाहिए कि वह सज्जन अधिकारी को पदवी और दुर्जन अधिकारी को दण्ड दे^३ ।

राजा का धर्म है कि वह बुझाहूरी और बटवार धन्यायी और ठम धादि से प्रजा की रक्षा करे और प्रजा में पाप की वृद्धि को रोकने के लिए बर्मदण्ड की व्यवस्था करे^४ । प्रत्येक कुमार्योगी, राजा द्वारा दण्डनीय है । दण्डित करते समय राजा को किसी प्रकार के सम्मान तथा गौरव का बिचार किए बिना प्रिय तथा भिन्न-सम्बन्धी को भी अपराध करने पर दण्ड देना चाहिए । ब्राह्मण माता पिता और गुरु को दण्ड देना अनुचित है । रोगी दीन अनाथ तथा अविधि के अपराध करने पर राजा उन्हें मृत्युदण्ड न दे बरन् उनकी वृद्धि छीन से और निर्वासित कर दे । मक्का कपटी, हाथ, निम्नक ज्ञानी, परोहर रखने वाला भाई, धिप्प और

१ वेम देव राजनि की वीति । इम गम यम नै धामहि कीति ॥

औरति पटवै सागर पार । यम सन्धोवै बिम अपार ॥

विग्रन दे ऊपरै जो निज । सोदर सुत पारै धर निज ॥

—बी दे अ० पृ० १३० ।

२ चारि दूत पटवैदस बिदा । पाये दूतनि पूछै निजा ॥

राजा तिनकी बात सब सुनै प्रेतेली जाय ।

साधु हृष्यापी निरहृषी एवं दूत बुलाय ॥

—दी० दे अ० पृ० १३५-१३६ ।

३ अपने अधिकारिनि की राज । भारत से समुझे सब भाज ॥

साधु होय तो पदवी देह । जानि ससाधु दण्ड की देह ॥

—बी दे अ० पृ० १३० ।

४ साहसीनि से रखा करे । और पार बटपारनि हरे ॥

धन्याई ठम निवट निवारि । सब से राजहि प्रजा बिचारि ॥

—दी० दे अ० पृ० १३६ ।

तथा प्रजा पाप से राजा जाय । राजा जाय तो प्रजा नमोय ॥

बात राजहि यदि बरे । तारे धम दण्ड को परे ॥

—दी० दे अ० पृ० १३७ ।

समा परस्त्री-सामी आदि के अपराध करने पर उन्हें यदि समझाया-बुझाया जाय और वे तन्निवृत्त हो जायें तो उन्हें मृत्युदण्ड न देना चाहिए^१ ।

यों तो राजा में बिलकुल अधिक गुण होयें वह उत्तमा ही सर्वप्रिय एवं उत्तम होमा, किन्तु उसमें कुछ दोषों का न होना परम आवश्यक है । कामी नाममार्गी मिथ्यावादी कोधी कोधी, क्रुध क्रोधी दुष्ट भीरु कुठम्भी मित्र-क्रोही द्विज-क्रोही पुरुषार्थहीन अयोध्म अनेकप्रिय क्रूर, कुटिल, कुमन्वी कुसहीन पापी सोमी अठ धर्म विभिष्ट, कविर (बहुरा) गुरु (गूँसा) बीना अकिचेकी हठी, कपटी निर्मोही घूम सर्वभक्ती देववादी, कटुभाषी मूख और अपमन्वी राजा सोमा नहीं पाता^२ ।

‘निजामवीठा’ में भी वेषण से ‘राजधर्म’ द्वारा ‘विदेक’ को उपदेष्ट दिसाते हुए राजा के सुख्य गुण-दोषों का संक्षेप में उल्लेख किया है जो इस प्रकार है^३ ।

(१) सामान्य नीति

सहसा कोई काम न करना चाहिए, अन्यथा पराधाताप होता है और संसार भी रोप देता है ।

सहसा कस न कीजहु सोई सर्व विचारि ।

सहसा करे ते घट परे घट साने अप गारि ॥

(बी० दे० अ० पृ० १०)

जिन्हि के विपान अमिट है । रंक से राजा और राजा से रंक होते हैं नही समती ।

जिहो कम को भेट न जाय । कहाँ रंक कहू राजा राय ॥

(बी० दे० अ० पृ० १२)

१ मजसा बगावान बहु भोति बेरे बेरी सेवक जाति ॥

मिथुक रिगियां जाती बार । अपराधी अधिकारी ज्वार ॥

जे सुख सोवर सिम्ह अपार । प्रजा चोर अरु रत परवार ॥

जे सिख बैठ मरे जो लाज । हुत्या तिन की नाहि न राज ॥

—बी० दे० अ० पृ० १३ ।

२ बी० दे० अ० पृ० १३३ १३४ तथा पृ० अ० १५, अ० १ ।

३ दान दया मति दूरता सत्य प्रजा प्रतिपाद ।

दण्डनीति पू भर्म हैं राजनि के सब काम ॥

दान दीयत विद्व को मति धन की बख भीत ।

वीन को द्विजवर्ध को बहु भूख भूषित भीत ॥

बीन देखि दया करै मति धन को भुनपाय ।

गाइ को प्रिय जाति को द्विज जाति को सब काम ॥

संतत भोषनि नैरस जाके । राजन सेवक पाय प्रजा के ।

ठाठे महीपति बंड संचारै । बंड बिना मरमर्म न भारे ॥

—मि० गी० अ० ८, अ० ११-१८ ।

‘यह साहिबी ईत के हाथ ।

रंरहि राजा होत न बार । राजा रक भयेति अपार ॥

(बरी, पृ० १०)

जब भगवान् की घूर दृष्टि हो जाती है तो पुन भी त्रिभुस के सङ्घ हो जाते हैं ।

जब भगवन्त होय प्रतिभुल । फल फूस हैं होत त्रिभुस ।

(बी० दे० ५० पृ० ७१)

जो मयपी नारी के बसीभूत सम्निपात से प्रसिद्ध बकबाबी घोर महापापी हो उसकी बात न मानना व्यावस्यमय है ।

मद्यपान रत तिथिहित होई । सम्निपात युत बाहुल जोई ।

बेकि बेदि निम को सब भावे । तासु बंन हनि पाप न भावे ॥

(रा० ५०, प्र० १० पृ० ३६)

देवता मनुष्य घोर राजा के निवासस्थलों तथा सभी पवित्र स्थानों में बिना बुलाये अपवित्र प्राणियों को न जाना चाहिए ।

देव धदेव नृदेव घर, पावन धस समुदाय ।

बिनु बोले भानधमति कुत्सित ओष न जाय ॥

(रा ५० प्र १४ पृ० १)

गाय ब्राह्मण राजा तथा स्त्री को विपत्ति में देखकर जो बचाने नहीं दोन्ता घोर जो घोर को बख नहीं देता बह घोर नरक भोगता है ।

पाप द्विज राम तिय काज न पुकार साने ।

भोषबे नरक घोर घोर को धमयबाणि ॥

(रा० ५० प्र १३, पृ० ३६)

मज्जन पाप द्विज तथा भीड़ सर्वत्र रखणीय है घोर नरक क समय में भी स्वामी का साथ भरपाव्य है ।

सत पाप द्विज भीत भी संतत रता कर्म ।

स्वामी तब न सांकरं यह हुमारो पम ॥

(बी० दे० ५० पृ० ८६)

कामी गुर कुटिल मुखराज जनसोभुष पुरोहित इतध्न मन्त्री घोर हित-विरोधी मित्र से दूर रहना चाहिए ।

राजा सर मुखराज पम ओहित मन्त्री मित्र ।

कामी कुटिल न सेहये, दूषण इतध्न पमित्र ।

(रा० ५० प्र० १८ पृ० ८)

सठ मन्त्री घोर हठी ब्राह्मण धनिष्कारक हाथ हैं ।

मन्त्री सठ द्विजराजा हठी । इतनी बात बनिर्व नटी ॥

(बी० दे० ५० पृ० ७८)

माता के लिए पिता को पिता के लिए सहोदर को सहोदर के लिए पुत्र को पुत्र के लिए मित्र को मित्र के लिए बन्धु (जातिभाई) को बन्धु के लिए

स्वजन को स्वजन के लिए सज्जन को, सज्जन के लिए सुख को, सुख के लिए स्त्री को स्त्री के लिए घर को घर सहित 'पति' (प्रतिष्ठा) के लिए सबको तथा प्रार्थों के लिए 'पति' को त्याग देना न्यायसंगत है।

मायु ह्यु पितु तत्रिय, पिता के हेतु सहोवर ।
 सुतहि सहोवर हेतु, सत्ता सुत हेतु तत्तु घर ।
 सत्ता हेतु निज बन्धु, बन्धु हित तत्तु सुजन मन ॥
 सुजन हेतु तत्रि सजन, सजन हित तत्तु सुजन मन ।
 कहि केसव सुख लागि घरनि तत्रि, घरनि हित घर क्षत्रिये ।
 सुद क्षत्रिय सब घर हेतु पति प्राण हेतु पति क्षत्रिये ।

(रत्नदासनी छं० १३)

हिन को कुछ माने दे देना चाहिए और उसके साथ और करना भीति विरुद्ध है।

हिन माने सो बेध विग्र को बचन न क्षत्रिय ।

विग्र और नह करिय विग्र कहि सर्वसु विनिजय । (रत्नदासनी, छं० १६)

(क) धर्म :

पुत्र धर्म

केशव के पुत्र-धर्म सम्बन्धी विचार परम्परापोषित हैं। राजा और पिता की आज्ञा सर्वव्यापक है। जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करता है वह उनकी हत्या के पाप का भागी होता है^१। राजा पुत्र तथा पिता की आज्ञा का पालन न करने वाला चाहे दास हो चाहे क्षत्रिय अथवा पुत्र हो धनेकों बन्धों तक गरक भोगवा रहता है। पिता पुत्र के लिए राजा तथा पुत्र दोनों ही का कार्य संपादन करता है। वह पुत्र का धन दाय भरण तथा पोषण करके राजा का कार्य करता है जिससे देकर पुत्र का काम करता है और स्वयं उसके लिए धनेक कष्ट सहन कर उसे पाल पोष कर बड़ा करता है^२।

नारी-धर्म

केशव के नारी-धर्म-सम्बन्धी विचार भी परम्परागत ही हैं। स्त्री का धर्म है कि वह अपने पति को ही सेवा माने और उसकी सब प्रकार से सेवा करे। यदि पति उसे कुछ भी दे तो वह उसे सुख ही समझे। समस्त संसार को धर्मिण समझ कर केवल अपने पति को ही मित्र माने। अपने पति की धनगामिनी रहे, दुःख-सुख

१ राजा को धन बाप को बचन न धिंते कोइ ।

जो न मानिये घरत तो मारे को फल होय ॥

—छं० अं० १ अं० १३।

२ धन देह सील देह राशि देह प्राण बास ।

राज बाप भोग न करै पु पोषि दीह पास ॥

बास होय पुन होय धिय होय कीह माह ।

सासना न मानई तो काटि जम्म नर्क बाह ॥

—छं० अं० १ अं० १४।

में समान व्यवहार करे और तन-मन से पति-सेवा में जीन रहकर धूम पति प्राप्त करे^१ । स्त्री का सर्वोत्तम धर्म पति-सेवा है । जो पति-सेवा द्वारा प्राप्त होता है वह योग, यज्ञ, व्रत तीर्थ, स्नान कीर्तन दान प्रादि से भी नहीं मिलता । पति-सेवा के समस्त देव-पूजा प्रादि सब धर्म-कर्म निष्कृत रहते हैं । पति बिना पुत्र पौत्र, धन प्रादि सब धर्म हैं^२ । स्त्री को चाहिए कि वह किसी भी रथा में अपने पति का परिस्थान न करे चाहे वह वधु बहिर मूक बूढ़, बीना रोगी बालक पांडु, कुम्प वदुनायी, जड़ पक्षवा जोर खूबारी व्यभिचारी प्रादि ही क्यों न हो । उसे चाहिए कि वह पति की मृत्यु के उपरान्त भी उसको न छोड़े और उसी के साथ सती हो जाए^३ ।

विधवा-धर्म

विधवा धर्म के विषय में भी केसव के बिचार परम्परागत ही हैं । केसव

१ विधवा जागिये पतिदेव । करि सब मांतिन सेव ।
पति देह जो पति दुख । मन भानि नीचै सुख ॥
सब जगत प्राणि धमिष । पति प्राणि केवल मित्र ।
नित पति पंगहि जागिये । पुत्र-मुक्त को वधु दमिये ॥
मन मन सेबहु पति को तब लहिये सुख पति को ।

—पृ ५० पं ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ ।

तथा मनसा बाधा कर्मका पत्नी के पति देव ।
धर्म दान तप भुरनि भी पति विनु निष्कृत सेव ॥

—वि गी० पं २०, २१, २२, २३ ।

२ भोग प्राय व्रत प्रादिषु नीचै । ज्ञान दानगुन दान सु नीचै ।
धर्म कर्म सब निष्कृत सेवा होहि एक फल के पति सेवा ॥
सत मातु जन छोडर जाली । देव बैठ सब संगिहु मालो ।
पुत्र पुत्रमुक्त भी छवि छाई । हैं विहीन भरत दुखवाई ॥

—पृ ५० पं ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ ।

३ भारी तबै न धापनो अपनेहु भरतार ।
पंगु पुत्र बीरा बहिर धंध धमाध धपार ॥
धंध धमाध धपार बूढ़ बाबन छति रोपी ।
बालक पंडु कुम्प सदा कुमजम जड़ जोगी ॥
कलही कोड़ी भीरु जोर गवारी व्यभिचारी ।
धमम धमागी कुटिल कुमति पति तबै न नारी ॥
चारि न तजहि नरे भरतारहि । ता संन सहहि कर्मजय मरहि ।

—पृ ५० पं ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ ।

तथा कुम्प कलही काहनी, कुटिल कृतघ्न कुम्प ।
अपनेहु न तबै तरधि, कोड़ीहु पति मूष ॥

—वि गी० पं २९ पं १०, ११, १२ ।

कहते हैं कि विषया का यह वर्म है कि वह मृत्युपर्यन्त माना न सुने किसी ॥ सम्मान पाने की इच्छा न करे किसी से परिहास न करे, उष्ण वस्तु का सेवन न करे, शीतल जल का पान न करे, ठेक न लगावे, किसी भीड़ा में सम्मिश्रित न हो जाट पर समन न करे, शीतल जल से स्नान करे, उष्ण जल को न छूँके मीठा भोजन न करे, वीरों से झूठा न पहने मग वपन तथा कम से वर्म-कार्य किया करे धीर को कष्ट देने वाले वस्तुओं का पासन करके इन्द्रियों का बसन करे तथा पुत्र की प्राप्तानुवर्त्तिनी रहे^१ ।

(४) केन्द्र के समय का जीवन

केन्द्र के समय के जीवन का अध्ययन करने के लिए साधारणस्वस्व कवि के तीन प्रबन्ध हैं—रामचन्द्रिका बीरसिंहदेव-चरित और विज्ञानबीता । इन्हीं ग्रन्थों में उल्लिखित सामग्री के सहारे यहाँ उनके समय के जीवन का चित्रांकन करने का प्रयास किया गया है ।

राजपर्ग का जीवन

राजवर्म ऐश्वर्य तथा भोग-विनाश में पुनर्जन्म मग्न था । 'रामचन्द्रिका' और 'बीरसिंहदेव चरित' में राज्यप्रीति की निम्ना कहे हुए केन्द्र ने उत्कामीन राजवर्म की इस दशा की ओर संकेत किया है । वे लिखते हैं कि राज्यप्रीति के संसर्ग के कारण राजा लोग परमाश की अपेक्षा सांसारिक विषयों की ओर अधिक प्रवृत्त होते हैं^२ । इसके प्रभाव के कारण राजा वर्म धर्म, विनय, सत्य, शील, धाधार और वेद पुराणों के बचनों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं^३ । राज्यसन्ध्या से महोत्सव राजाओं की छुट्टी केवल मद्य-पान भादि में ही बिताई पड़ती है और पर-स्त्री-समापन को ही वे बड़ी जतुराई समझते हैं ।

पानविनाश उचित मजुरी । परबारा-गमन मजुरी ।

(रा० पं०, अ० २६, पं० १५)

- १ गान दिन मान बिन हास दिन जीवहीं
तप्य नहिं जाय जल शीत नहिं पीवहीं ।
तेल तबि खेल तबि जाट तबि सोवहीं
शीत जल न्हाय नहीं उष्ण जल जीवहीं ।
पाव मजुराल नहिं पाय पगहीं जरै,
काय मन बाध सब धर्म करिबो करै ।
कुम्भ उपवास सब इन्द्रियन शीतहीं
पुन सिब धीन तन जो पावि घसीतहीं ।

—रा० पं० अ० १५, पं० १५ ।

- २ कदपि यदि राजवर्म है दृष्टि । तीऊ सकति राज की दृष्टि ।

—रा० पं० अ० १५, पं० १५ ।

- ३ वर्म भीरता विनयता सत्य शील धाधार ।
राजसिरी न मने कष्ट, वेद पुराण विचार ॥

—रा० पं० अ० १५, पं० १५ ।

उनकी गूरता इसी में है कि वे धिक्कार कर सेते हैं जिसकी प्रशंसा बन्दीबर्गों द्वारा बड़े बाज से पड़ी जाती है। उनका किसी की ओर तनिक-सा देख देना ही उसके लिए बड़ी भारी दया है और किसी से कुछ बातचीत कर लेना ही उसके प्रति बहुत बड़ी ममता है^१। राग्यभी से मर्दान राजा किसी को बचान देना ही बहुत बड़ा दान समझते हैं। किसी से हँसकर बोल देना ही उसका बड़ा भारी सम्मान कर देना है और किसी को अपना कह देना ही उसे प्रत्युत सम्पत्ति प्रदान करना है^२। राग्यभी के मंद में घंघे हुए ऐसे राजाओं की दृष्टि में हित की बात कहने वाला परम धनु होता है और जो चाटुकार होता है वही मंत्री तथा मित्र माना जाता है।^३

अवरोध

बीरठिहूँद चरित' में वर्णित 'मदनमहोरसव' इस बात का प्रमाण है कि उत्कालीन राजा-महाराजाओं का अवरोध अनेक सुन्दरियों से भरा रहता था और वे किस प्रकार समय पर एक होकर बड़ी लग्नयता के साथ उसी एक राजा का अपने अपने मावानुसार धुवन करती थीं और उसके पानोद प्रमोद का साजन बनती थीं^४। अन्तपुर में रमणियों का जीवन बड़े राग-रंग में कटता था।^५

- १ मृगया बड़ी गूरता बड़ी। पत्नी मुसनि चाय सों पड़ी।
जो केहु भितने यह दया बात कर सों बड़िये मया ॥
—उ० अ० प० २१ अ० १२।
- २ बचन बीबीई प्रति दान हँस बोले सो बड़ा सनमान।
जो केहु सों अपना कहै अपने भी सी सम्पति सहे ॥
—उ० अ० प० २२ अ० १३।
- ३ कोई जन हित की कहै, कोई परम धर्मिय।
कुछ बरताई भागिये सन्तति मन्त्री मित्र ॥
—बी० दे० अ० १ १५२।
- ४ आसन बँटे नृप तिरभीर। तिर पर ससत धाम की भीर।
—
नृपछर पूमनि की धनु नियी। पूमि पूनसर लुलुत कियो।
अने पति पतिनीनि धनुष। कीनी कामदेव की बप।
—
कोऊ कुंकमा छिरके पाय। कोऊ सीधो तर अवसाठ।
काहु कपल कपल धूरि। मृगमद जन्म की करि धूरि।
मिर्ग मुलावद नृमकुमा बारि। कीनी छिरकि नूर जगहारि।
अब अनय पूजा करि लई। बहूँ धोर दुम्बुनि ध्वनि मई ॥
—बी० दे० अ० १ १५२ १५२।
- ५ तहँ रमनो राजति बहु मोति। पन्मिनि भिनिनि इस्तिमि जाति।
गावति बहूँ बजावति बीन। बहूँ पढ़ावति वस्त प्रमोद।

साही हरम :

साही हरम में राजकुमारियों की विविध स्थिति थी । वे बादशाह को तन दान तो कर देती थीं परन्तु मन-बाग नहीं कर पाती थीं । अतएव उन्हें किसी वृक्ष के बिनाश पर हर्ष ही होता था । यह बात निम्नांकित छन्दों से स्पष्ट हो जायेगी जहाँ अकबर बादशाह के हरम में यक्षुलप्रबल के निशम पर एक घोर राजकुमारियों को तो ईससे हुए दिखामा गया है और दूसरी घोर सुरकिनियों को छापी पीटकर शोक मनाते हुए —

ऐसे बचन सुनै नरमाह । मन नीर के बल प्रवाह ।
कोसाहल भूलनि मैं भयी । तिनको प्रतिष्ठानि सुनि मन रयी ।
मुखा भया प्रोढ़ा नारि । छठि बँटी जहाँ छहँ डर डारि ॥

राजकुमारि हँसे मूढ़ मोरि । सुरकिनीनि उपरै दुख कोरि ।
रोबठि तन सोरति प्रति धनी । बिच बिच बाजति होसक धनी ॥
केसौराह धीबलिबलि मारपी बीरसिह
साहि के महुल जहाँ छहँ छठि पाई है ।
पीरी पीरी पातरी निपट पट पातरेई,
कठि तट छीन पर नट सरकाई है ।
मूकुही सी बिमुकी सी भ्रमकेसे सोचननि,
निठम के से सरबनि सर छवि झर्य है ।
खानखारी खानखारि पानखारि सेकखारी
साहिखारी पान आरि पीरनी की पाई है ॥

(दी० दे० पृ० ४९)

प्रभावर्ग का जीवन

जहाँ तक प्रभावर्ग के जीवन का सम्बन्ध है उसकी एक वास्तविक मंत्री 'विद्यालमीरा' में बिप वए बिस्नी कासी और कसियुव के वर्णनों में देखने को मिलती है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रभावर्ग का जीवन भी घोर वितासिता तथा नैतिक ह्रास का जीवन था । वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी । शक्ति-युवा का प्रचार बढ़ रहा था ।

कहु नीपर सेले बनि बाल । कहु सतरंज मतिरंज विद्याल ।
कहु बरिबनि बिबहि बिब । कहु मनिमाता कुई बिबिब ।
कहु बिय भंजन भंजन करहि । भंजराब बहु भंजनि बरहि ।
कहु मूपनमन भुविठ धन । कहु पहिरन नव बसन सुरंज ।
येक बँटी भानेदमरी । येक पीढ़ी पलकनि परी ।
सारी सुकनि पड़ावति एक । परना तँ सुनि हँसति येक ।
बोह बेपिये बोई धोक । सोई मनो मरण को धोक ।

दी० दे० पृ० १९१, १९२ ।

हिस्ती का बचन करते हुए केदार लिखते हैं कि वहाँ ऐसे मनुष्य प्रचुर संख्या में मिलते थे जो राजि में भोग-विश्राम में रत रहकर बारम्बारों के मन को चाटु करिषा से मोहित करते थे तथा प्रातः स्नानादि से निवृत्त हो स्वच्छ वस्त्र पहिन तथा यस्तक पर तिलक लगा कर दूसरों को उपदेश देते फिरते थे कि इस प्रकार का तप करना चाहिए, इस प्रकार का अप करना चाहिए, बेरों का छार यह है धनवा इस प्रकार योग का साधन तथा यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए^१। वहाँ ऐसे ही लोगों का शास्त्र वा जो गुरु के उपदेश को कभी भी भसी भाँति धन्य नहीं करते थे जिन्हें यज्ञ धर्म, कर्म धर्म का तनिक भी ज्ञान न था, जो स्नान स्नान संयम योग तथा यज्ञ से दूर रहते थे और जो शरीर के सुखोपभोग को ही ईश्वर रामना मानते थे। बैरपाठी ब्राह्मण बेरों के श्रेष्ठ धनवा वैवस्वतों के धर्म से अनभिज्ञ थे और वे शीत के चबूच रहे हुए बंद-मन्त्रों का पाठ बड़े ऊँचे तथा कर्कश स्वर में करते थे। योग मेखता, मृगधर्म तथा विद्यास भाला धारण कर सिर पर बटा रसकर तथा सिर और शरीर में भस्म रसा कर डोंगी साबु धने फिरते थे। स्वस स्वस पर कुतर्क मठाधीशों के वर्तन होते थे। छूड़ बस-स्वस भुजा कर्म सीस तथा कटि को मुद्रित कर और हाथ में कुधा लेकर अपनी उच्छ्वास का दम मरते थे। इस प्रकार सर्वत्र पाश्चात्त्य का ही साम्राज्य था^२।

काशीपुरी का बचन करते हुए भी केदार ने लिखा है कि वहाँ भी चारों ओर पाश्चात्त्य का ही बोलबाला था। वहाँ के लोग बड़े ज़रसाह के साथ मार्ग में

- १ काम कुतूहल में बिलसै निघबारबहु यन जान हरे ।
प्रातः भन्नाह बनाह रै टीकनि उगम्बल भम्बर धर्य धरे ।
ऐसे तपो तप ऐसे जपोजप ऐसे पड़ो धुवि छार छरे ।
ऐसो योग जयो ऐसे यज्ञ जयो बहुभोगनि को उपदेश करे ॥

—नि गी प्र० १, अ० १ ।

- २ कबहू न मुयो कहुँ मुय को कहुँ उपदेश ।
धन धन न मेह जानत धर्म कर्म न देख ॥
स्नान स्नान सयान संयम योग योग संयोग ।
ईशदा तनु मुह जानत मुह माबुर भोग ॥
बेह भर कछु न जानत धोष करत करत ।
धर्म को न समर्थ पाठ पढ़ै मनो दुरुवास ॥
मेखमा मृगधर्म संयुत मछत भाल विद्यास ।
दीप रै बहु बार धारण भस्म धपन दास ॥
ठीर ठीर विराजहीं मठपात मुक्त कुतर्क ।
बोव एक कहा रहो वा संग ते बहु नरक ॥
दुर्गति सो मुद्रित करै घर छदार मुखदण्ड ।
सीस कर्म कटि जानि मुय दम परपोष प्रचण्ड ॥

—नि गी० प्र० १ अ० ७-१ ।

घाते जाते पथिकों को छूट सेत दे, नगरों को घाम सया जानते वे मन्मोन्मत्त
करते हुए प्रतिदिन माघ माघ का स्नान कर अपनी पवित्रता का बाधा करते वे घोर
मारबधुओं के साथ बैठ कर मदिरा-सेवन जोरी घोर व्यभिचार करते हुए भी ब्रह्म
चिन्तन की डींग हाँकते थे ।

कसियुग-वर्जन के प्रसंग में केशव लिखते हैं कि उस समय वर्ष व्यवस्था थी
छिन्न भिन्न हो रही थी । ब्राह्मण धार्मिकों के समान ब्राह्मण धर्म-कर्म में भीम थे ।
स्त्रियाँ अपने पतियों को छोड़ भारों में भासकत थीं । मनुष्य सदस्य स्नान स्नान तथा
पूजन आदि करते थे । विष्णु की मूर्ति से विमुख हो लोभ शक्ति की पूजा की
ओर प्रवृत्त हो रहे थे । ब्राह्मण वेदों को बेचते थे घोर म्लेच्छ नृपों की सेवा में सवे
रहते थे । क्षत्रियों ने प्रजा की रक्षा का ध्यान छोड़ दिया था घोर बेनिरपराध
ब्राह्मणों की बुद्धि का अपहरण कर लेते थे । वैश्य कर्म-विक्रम आदि का परित्याग
कर क्षत्रियों के तुल्य धन-धन्य ब्राह्मण करने लगे थे । ब्रह्म पत्न्यर की पूजा करते
थे चुराते घोर मन में राज्य का ठगिक भी भय न मानते थे^१ ।

मठाधीशों की स्थिति :

केशव ने अपनी 'रामचरित्रिका' में मठाधीशों की घोषनीय अवस्था की ओर
भी संकेत किया है । वे लिखते हैं कि जिस दिन मन्दिर में कोई धनी या धारा ठो
उस दिन मठों चतुर्मुख भगवान् की मूर्ति का भी अच्छी तरह श्रद्धा करता था ।
परन्तु जिस दिन कोई धनी न आता था उस दिन भगवान् भी पत्तय पर पड़े रह
जाते थे । बैठ से-नैकर उठने बहुत सा धन संग्रह कर लिया था घोर निरपराध
भोगों में उसे समया करता था ।

(५) केशव का नारी वर्णन

केशव ने नारी को दो वर्गों में देखा है । साधक के दृष्टिकोण से केशव

- १ मारत राह उछाहनी छौ पुर बाहुत माह सम्राट उचारै ।
बारबिमासिनि छौ मिनि पीबत मद्य अनोदिक के प्रति पारै ॥
जोरी करे बिभिचार करे पुनि केशव बस्तुबिचार विचारै ।
जो निधि बासर काधीपुटी मई मरेई लोग अनेक बिहारै ॥

—वि० जी० प्र० १, पं० १ ।

- २ मूढ़ वर्गों सब रहस्य हैं द्विज वर्म-कर्म कदास ।
नारि बारनि सीम भर्तनि छाँड़ि के इहि भास ।
बँस छौ मर कष्ट पूजन श्चान स्नान विधान ।
विष्णु छाँड़त शक्ति भूषण पूजनीय प्रमाण ।
ब्राह्मण बेचत वेदनि को सुयसेच्छ महीप की सेवा करे बू ।
छत्रिय छाँड़त हैं परजा अपराध बिना द्विज भूति हरे बू ।
छाँड़ि बियो कर्म-विक्रम बँसनि क्षत्रिय वर्गों ह्वियार करे बू ।
पूजत ब्रह्म प्रिया वनु जोरति चित में राजनि को न अरे बू ।

—वि० जी० प्र० ७, पं० १२, १३

- ३ एक कनीज हुठी मठवारी । देव चतुर्मुख की अधिकारी ।

नारी को मान प्राप्ति के मार्ग में प्रमुख बाधा समझते हैं। वे लिखते हैं कि जहाँ स्त्री है वहाँ सांसारिक विषयों का भोग है। स्त्री के बिना भोगों की सत्ता नहीं है। स्त्री के परित्याग से संसार छूट जाता है और संसार के छूटने पर ही परब्रह्म-संयोग का सुख प्राप्त हो सकता है^१।

व्यावहारिक रूप में केदार ने नारी को घर के साथ ही देखा है। सभी को उनका कहना है—

पतिनि पत्नी दिनु बीन जाति पति पतिनी दिनु गढ़ ।

बभ्र बिना ज्यों जाभिनी, ज्यों दिनु जाभिनि गढ़^२ ॥

केदार की दृष्टि में जो व्यक्ति बिना पत्नी के घर में रहता है वह यदा धर्ममें करता है और जो पत्नी को त्याग कर संग्यास ग्रहण कर वन में जाता है उसका मनबास निष्कल होता है^३।

हाथ ही केदार नारी को योग-साधना का भी अधिकारी मानते हैं। रानी चूड़ासा के विषय में वे लिखते हैं कि—

भुनि कण्ठनि सेंम सीसियो, तिहि सब प्रान्ताजाम ।

साते पाई तिहि सब पूरन काम अकाम ॥

भूपति शिखीपञ्च की भई रानी रूप समान ।

तिनि सौ पिति तिनि मोषए भूतल मोष त्रिषाम^४ ॥

इसी रानी के प्रभाव से राजा शिखीपञ्च को परमपद प्राप्त भी हुआ था।

(६) गुरु-महिमा

‘राजा शिखीपञ्च’ की कथा के प्रसंग में केदार ने देवदुप-ज्योती रानी चूड़ासा के मुस से गुरु की महिमा का भी बखान करवाया है^५।

मन्दिर कोट बड़ी जब घाबै। संग मसी रचनानि बनारै।

बा दिन केदार कोट न घाबै। ता दिन पातक सें न उठावै।

भेंटन सैं बहुबा धन कीन्हों। निरप करै बहु भोग नदीनों ॥

—प० ब० प्र १४ पं ११ १०।

१ जहाँ जाभिनी भोग तहाँ दिन जाभिनि बहूँ भोग।

जाभिनि छूटै जम छूटै जम छूटै सुख योग ॥

—प० ब० प्र १४ पं १४।

२ प० ब० प्र ११ पं ११ छपनि गो प्र० १६ पं १६ (वाक्यान्तर से)।

३ घरनी दिन घरको रही छड़ि धर्म धामन।

बनिता तनि जो जाइ वन, वन के निष्कल कर्म ॥

—वि गा० प्र १४ पं ११।

४ वि० पं० प्र १६ पं २१।

५ ज्ञान गुरु में सीलिये सब तजई विमानु।

तब पविजारी हाहुये भूपति जिय में जानु ॥

—वि बी प्र ११ पं १८।

(७) साधारण भक्ति

केसव की दृष्टि में साधारण महात्वरूप धीर मुनिरूप है। अतः सर्वत्र पूजनीय है।

(आ) केसव का इतिहास-ज्ञान :

केसव की उपासना

केसव के इतिहास ज्ञान के अध्ययन के लिए साधारणरूप कवि के तीन ग्रन्थ हैं रतनबावनी, जहाँगीर जस-चन्द्रिका और बीरसिंहदेव-चरित। 'रतनबावनी' में भोक्छानापीथ मधुरकरछाह के पुत्र रतनसेन के सुवर्ण-सेना से युद्ध का वर्णन है। 'जहाँगीर जस-चन्द्रिका' में प्रसन्न रूप से तो जहाँगीर के यश का ही वर्णन है परन्तु प्रसंगबद्ध इसमें सम्राट के सुमरानों यशका सामन्तों तथा दरबार की भी झँकी मिल जाती है। 'बीरसिंहदेव-चरित' ऐतिहासिक दृष्टि से इन दोनों ग्रन्थों से अधिक महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ का प्रथमार्ध तो सम्भाव्य इतिहास ही है, जिसमें कवि न भोक्छानापीथ मधुरकरछाह के पुत्र बीरसिंहदेव के जीवन में सम्भव रहनेवाली अनेक घटनाओं का सूक्ष्मादिसूक्ष्म एवं क्रमबद्ध वर्णन किया है। इस प्रकार इन ग्रंथों का सम्बन्ध जोड़ा-बहुत तो इतिहास से है ही। फिर भी हमारे इतिहासकारों ने अपने इतिहास-ग्रन्थों में इन ग्रन्थों की उपासना ही की है। डा० बेनीप्रसाद ने इन्हें देखा तो है परन्तु उन्होंने इतिहास में उनका स्थान नबन्ध ही ठहराया है। हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि जो कुछ भी हमारे कवियों ने सिखा है वह इतिहास ही है पर हमारा इतना कहना अवश्य है कि किसी भी सच्चे एवं सम्मान्य इतिहास में उनको छोड़ा नहीं जा सकता और केसव की तो किसी भी दशा में अवहेलना नहीं की जा सकती। वास्तव में बात यह है कि जहाँ जहाँगीर ने भी अपनी 'तुलूक' में ठीक-ठीक विवरण प्रस्तुत नहीं किया है वहाँ उसका स्पष्टतया उल्लेख करने का बंध केसव को ही है। उदाहरणार्थ जहाँगीर के प्रथम वर्ष के अनुष्ठान को लीजिए। जहाँगीर अपनी 'तुलूक' में यह तो बता देता है कि उसका बीरसिंह पर इतना अनुष्ठान क्यों है किन्तु उसने कहीं इस बात को नहीं सिखा कि उसका बीरसिंहदेव पर इतना विस्वास किध प्रकार हो गया कि उसने अपने पिता के सबसे प्रिय पात्र अनुष्ठान का यश करने के लिए उसे कहला भेजा और उसने गुरमत् मार भी खाता। केसव ने इस भेद को स्पष्ट किया है जैसा कि धामे के विवरण से स्पष्ट हो जायेगा। एक और उदाहरण लीजिए। जहाँगीर ने यह भी कहीं स्पष्टतया नहीं बताया है कि घरीफ का

१. यामनी संयुक्त है सर्व विप्र हरिप्रसन्न।

केवपुराणनि में कहे चारों विप्र प्रसन्न ॥

तिन्हें छीकि संपूषिसे यामन कहा स्वल्प।

कहहुं मेव न नामिने विप्र होत मुपक्रम ॥

पर उसकी इतनी कृपा क्यों है ? बाह्यादा सलीम ने उसे 'बाँ' की उपधि प्रदान की और अब वह अपने पिता की सेवा में भागरे जाये गया तो उसे 'हूमान तोप' और बाईं हथार का मनसब एवं बिहार प्रान्त के राज्य का पूरा अधिकार दिया । सलीम को बादशाह हुए केपस पन्द्रह दिन ही बीते थे कि राजब की चार तारीख को घरीफ की उसकी सेवा में उपस्थित हुआ । बादशाह बहोपीर उसे माई पुन मित्र एवं साथी सभी कुछ मानता था भव उसके आग्रह पर उसे परमन्त ही हुए हुआ और उसे अपना प्रधान मंत्री बना दिया । देखते-देखते उसे पाँच हथार का मनसबदार तथा घमीरप-समरा भी बना दिया । बहोपीर उसे कुछ और भी समाना चाहता था कि स्वयं उसने कहकर रोक दिया कि जब तक वह कोई काम करके नहीं दिखाता तब तक कुछ और नहीं चाहता—सुदूर (प्र० भा०) पृ० १४ । यह माना कि बादशाह का सबसे बहुत पुराना तथा अनिष्ट सम्बन्ध था किन्तु तो भी उसने ऐसा क्या काम करके दिखाया था जो उस पर बादशाह इतना अधिक ब्याप्त हो गया कि जिसका कोई अन्त नहीं । इन विषय पर न तो सरकारी इतिहास ही कोई प्रकाश डालते हैं और न इतिहास के लेखक ही, परन्तु हमारे कवि ने इस रहस्य को खोला है । वह सैफ अलमल्लिक के वक् में मूल कारण को था । इसी के द्वारा सलीमशाह और बीरसिंह का मन परस्पर विभा था जिसका परिणाम यह हुआ कि एक को दूसरे ने अपना शत्रु बना लिया ।

अस्तु कैलाश द्वारा वर्णित इतिहास संक्षेप में नीचे दिया जाता है ।

बीरसिंहदेव-वर्णित में वर्णित इतिहास

बीरसिंह का पराक्रम

मधुकरसाह ने बीरसिंहदेव की वृत्ति-स्वरूप 'बहीन' की बावीर दी थी (बी० दे० पृ०, पृ० १८ खं०६) । किन्तु वह बहूत तथा महत्वाकांक्षी था अतएव केवल इस छोटी सी बागीर से सन्तुष्ट न हुआ और थोड़े समय में ही 'पंखावा', 'तोंबर' और 'किलारस' को अपने अधीन कर लिया । 'मरवर' तक बीरसिंहदेव का प्रायः छा गया । कामान्तर में उसने मीना तथा जाटों का सहार किया और 'बेरछा' तथा 'कच्छ' दुनों को भी अधिकृत कर लिया । इसके बाद उसने बाबरजंग आगढ़ को मारकर हथौथ को मिट्टी में मिलाया 'मडिर' का सुबेदार हुसैनजी भी बीरसिंहदेव से डरकर भाग उठा और यह स्थान भी उसके हाथ में आ गया । कुछ समय के अनन्तर 'ऐरछ' पर भी अधिकार हो गया । 'गोपावत' का राजा एक बीरसिंहदेव के डर से पर-पर कीपता था । इस प्रकार देखते-देखते बीरसिंहदेव ने सम्पूर्ण चकवर क बहुत से स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया ।

(बी० दे० पृ०, पृ० १९)

मुघल-सेना का आक्रमण

अबबर ने जब यह समाचार सुना तो घाय-बबूना हो उठा और बीरसिंहदेव को कुचमने के लिए राजा आक्रमण की योजना और राजा 'रामदाह' को आक्रमण

की सहायता करने की आज्ञा दी। राजा भासकरण के बाँवपुर पहुँचने पर राजा रामछाह जगम्मनि जाट गूबर वीर हसन का पठान तथा राजाराम पैवार भादि मुगल-सेना से आ मिले। दूसरी ओर बीरसिंह इन्द्रवीर वीर रायप्रताप तीनों भाइयों की सेना थी। इन लोगों ने मुगल-सेना से छापा-भार सड़ाई बढ़नी प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार जब कई दिन बीत गए परन्तु बीरसिंह पर काबू न चल सका तो जगम्मनि ने राजा भासकरण से कहा कि बीरसिंह के हाथ न जाने का कारण रामछाह ही हैं जो अपने भाइयों से मिले हुए हैं। रामछाह से मिलने पर उन्होंने आश्वासन दिया और दूसरे दिन मुगल-सेना ने आक्रमण किया। दोनों सेनाओं में घोर संग्राम हुआ जिसमें मायाराम शूभ गए और बहुत से मोक्षा मोरणा छोड़कर भाग गए। इसी बीच रामछाह ने भासकरण से कोई गाँव (?) देने के लिए कहा और प्रतिज्ञा की कि गाँव के मिलने पर वे प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध करेंगे परन्तु भासकरण ने यह कहकर कि यह गाँव पंचाबा राज्य के अन्तर्गत है अपनी प्रसन्नता प्रकट की। परिणाम यह हुआ कि रामछाह ने भासकरण का साथ छोड़ दिया। रामछाह के साथ ह्याम देने पर जगम्मनि भी साथ छोड़कर चला गया (बी० ई० ५० २० २२)। इस प्रकार मुगल सेना को नीचा देखना पड़ा।

रामछाह तथा सय्यामसाह का बीरसिंहदेव के विरुद्ध पक्षपात

कालान्तर में बीरम का का पुत्र अच्युतरहीम जानबाला दक्षिण की ओर जाते हुए बादशाह धकबर से मिलने के लिए आये पहुँचा। बादशाह ने जानबाला को जयन्ताब दुर्गाराव और अन्य समर्थकों के साथ जाकर बीरसिंहदेव के विरुद्ध रामछाह की सहायता करने की आज्ञा दी। इसपर बीरसिंह ने गोविन्ददास को राजा रामछाह के पास समझौते के लिए भेजा था। रामछाह ने उसे बान मान भय भेद भादि के द्वारा अपनी मुट्ठी में कर लिया। इतने में बीसल का 'सैमरी' भी वहीं पहुँच गया और जानबाला भी 'पंचाबा' तक आ गया। तब रामछाह ने गोविन्ददास के द्वारा बीरसिंह से कहा कि मैंने बीसल का जो बहुत समझदारी-मुझ्झा पर वह नहीं मानता। उन्होंने बीरसिंह को युद्ध न कर भाग कर अपने प्राण बचाने की सम्मति दी। बीरसिंह का यह सम्मति अच्छी न लगी और युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गया। इसपर बीसल का की ओर पठानों वीर जानों की विधात सेना थी। बीरसिंह ने इस युद्ध में बीसल का को जीत दिखाया। आये-पीछे सब ओर भार-काट मचाया हुआ कभी दो वह इस जंगल में सड़ता और कभी भाग कर दूसरे बंजर में चला जाता था। बीसल का जब धक कर हार गया तो उसने 'पंचाबा' जाकर जानबाला से युद्ध का सब वृत्तान्त कह सुनाया। जानबाला ने जब दूसरी बार लड़ी। उसने बीरसिंह को पत्र में लिखकर भेजा कि यदि वह मुझे इस बार मिले तो मैं उसकी प्रतिष्ठा को बहुत बढ़ा दूँ। बीरसिंह ने बात मान ली और जानबाला से मिलने गया। जानबाला ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उसको साथ ले दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। 'बराट' के समीप पहुँचने पर बीरसिंह ने उससे 'जड़ोम' लौटा देने की विनती की। इस पर जानबाला ने उसे दक्षिण में जो उस

समय उसके अधिकार में था मुहम्मिया तथा अपने बराबर भी बना देने का वचन दिया परन्तु बीरसिंह को यह स्वीकृत न था। इसी बीच रामगढ़ का पुत्र संवामगढ़ बीरसिंह से मिला और दोनों ने मध्य रूप से निष्ठा भागने का विचार बनाया और एक दिन बीरसिंह घाबरे के बहाने को चार पड़ाव के उपरान्त अपने देश में जा पहुँचा। बीरसिंह के भाते ही चाही वालों के आस्थी भाग गए। इन समाचार को सुनकर खानखाना बड़ा दुःखित हुआ। उसी समय उपयुक्त अवसर समझ कर संवामगढ़ चाह खानखाना से मिला और उससे निवेदन किया कि यदि आप 'बढ़ीन' की प्राप्ति दे देंगे। खानखाना ने गुरम्व करमान मिला कर उसे दे दिया और शीतल घाँ को उसके साथ कर दिया। फलतः शीतल का गोपाचन आया। इस बीरसिंह भी हमरस के साथ संवामा बसा गया और उस मूषाम रात्रप्रज्ञा एवं इन्द्रजीत धारि माहर्षों के सहित युद्ध का निश्चय किया। इस अवसर पर युद्ध करना उचित न मानकर शीतल का दक्षिण की ओर लौट गया। संवामगढ़ भी इससे दुःखित होकर और अपना सा मुँह लेकर बीरसिंह के पास घोखा ही लौट आया। कुल की मर्बादा का विचार कर युद्ध का परिणाम सोचते हुए बीरसिंह ने उसे जाने दिया। (बी० दे० ब० पृ० २१ २२)।

मकर की साल

कुछ समय के उपरान्त बीरसिंह और रामगढ़ दोनों माहर्षों में ऊपर से वं मिलता हो गई परन्तु बड़े कष्टपूर्व मित्रता की क्योंकि रामगढ़ के हृदय में छत था। इसी बीच मुराब की मृत्यु से व्याकुल हो सम्राट मकर ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और बीरसिंह में पड़ना पड़ा जाता। वहाँ से चलकर फिर गोपाचन में आकर पड़ा जाता। इसी समय मकर के 'बड़वी' (डूँठ) बीरसिंह के पास उठे बुझाने के लिए पहुँचे। इसर रामगढ़ सम्राट से मिलने के लिये गोपाचन की ओर चल पड़े। नरवर में दोनों की भेंट हुई। डूँठों ने आपस आकर सम्राट से निवेदन किया कि बीरसिंह घायलता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। यह सुनकर रामगढ़ ने सम्राट से निवेदन किया कि यदि आप मुझे 'बड़वी' प्रदान कर दें तो वा तो मैं या उन्हें मार डालूँ या सब आप निश्चय होकर दक्षिण की ओर प्रस्थान करें। इन कार्यों के लिए सम्राट ने रामगढ़ को 'पंचहजारी' मनसब देने का वचन दिया और बीरसिंह को बुलाकर उसे रामगढ़ के साथ जाने की आज्ञा दी और स्वयं दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। बीरसिंह और रामगढ़ ने जाकर 'बड़वी' देर ली। उपर रात्रप्रज्ञा और इन्द्रजीत के योजना बीरसिंह की ओर से मुठ करने के लिए 'बड़वी' में दबडूँ हुए। इसी बीच रामगढ़ और बीरसिंह ने परस्पर परामर्श कर इस समय युद्ध न कर उचित करना ही उचित समझा और डूँठों के द्वारा बीरसिंह को बहना भेजा कि वह दो दिन के लिए 'बड़वी' छोड़ दे तो वे सोम लौट जायेंगे। बीरसिंह को इन बातों पर विश्वास न हुआ क्योंकि रामगढ़ एक बार छन कर चुका था।

रामछाह ने फिर कहा कि राजसिंह की प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने के पर्याप्त वह फिर 'बड़ीन' धाकर सुखपूर्वक रह सकता है। निश्चय दोनों राजाओं राजसिंह और रामछाह के शपथ लेने पर ईश्वर पर विश्वास करते हुए बीरसिंह ने बड़ीन छोड़ दी। रामछाह ने बीरसिंह से की हुई प्रतिज्ञा का ध्यान न कर राजसिंह से कहा कि 'बड़ीन' उसे बावसाह ने प्रदान की है। राजसिंह ने रामछाह से कहा कि 'बड़ीन' पंजाब के अन्तर्गत है अतः इस प्रकार उसे नहीं दिया जा सकता और उससे बावसाह का आश्रयन बिसमाने को कहा। परन्तु फिर रामछाह यह सोचकर कि बावसाह दक्षिण में चल रहा है और भाई को मारना मूर्खता होगी वहाँ से चले पड़ा। राजसिंह भी अपने डेरे चला गया बीरसिंह ने 'बड़ीन' वाली देह अपने कुछ योद्धाओं के साथ जाकर उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसी बीच एक रैना ने जाकर राजसिंह को सूचना दी कि बीरसिंह अपने कुछ सुमनों के साथ 'बड़ीन' में भूमि पर सीमा पड़ा है। सूचना मिलते ही राजसिंह ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही बड़ीन को घेर लिया। उपर बीरसिंह के बन्धुरा सुन्दर प्रजान पम्पतराय मुकुट, मादक पीर, कृपा राम भादि योद्धा भी युद्ध के लिए रणक्षेत्र में एकत्रित हुए। दोनों सेनाओं में जोर युद्ध हुआ और अंत में मुहम्मद-सेना की पराजय हुई। राजसिंह ने गोपायन आपकर अपने प्राण बचाए। इस प्रकार परमेश्वर की कृपा से बीरसिंहदेव अनुमो के अनुम से साक्षात्कृत निकला (बी० ई० पृ० २५३०)।

बीरसिंह का परामर्श

बीरसिंह की विजय के विषय में सुनकर बावसाह अकबर बड़ा दुःखित हुआ। इसी बीच अकबर ने मेवाड़ पर आक्रमण किया था परन्तु वह वहाँ असफल होकर वापस आगरे सीट आया था। उसके आगरे सीट आने के समाचार से बीरसिंह बड़ा विनम्र हुआ और उसने अपने समासकों को बुलाकर परामर्श किया कि ऐसी विषम स्थिति में अब कि घर में ही फूट है और बावसाह भी उनका शत्रु है किस प्रकार प्राण तथा प्रतिष्ठा की रक्षा हो सकती है। सब ने अपना-अपना मत दिया। अंत में यादव पीर की सलाह से समीपछाह के आश्रय में जाने का निश्चय किया गया। अतः दूसरे ही दिन प्रातःकाल बीरसिंह ने प्रयाग की ओर प्रस्थान किया (बी० ई० पृ० २५३२)।

सयद मुजफ्फर की शिक्षा

'महीछत्र' नामक स्थान में पहुँचकर बीरसिंहदेव ने जब पहला डेरा बना तो वहाँ उसकी सयद मुजफ्फर से भेंट हुई। बीरसिंह ने उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सयद मुजफ्फर ने उसके निश्चय की प्रशंसा की और उसे अभिसम्ब समीपछाह से मिलने की सलाह दी। उसकी शिक्षा काम कर गई। फलतः बीरसिंह वहाँ से यह आश्चर्य होता हुआ प्रयाग आ पहुँचा।

१ महीछत्र किय कुँवर विशाल। मिस्त्री मुजफ्फर सयद मुजान।

छातीं मरी कुँवर सब कह्यो। सुनि मुनि समुभि रोधि क्षिप्र रह्यो ॥

शरीफ काँ से भेंट

महाँ उसकी शरीफ काँ से भेंट हुई । उसने जाकर जब सलीम शाह से बीर सिंह के आगमन तथा निश्चय का निवेदन किया तो सलीमशाह अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ । उसने बीरसिंह को गुमा मेजा घोर पसका बड़ा आदर-सुरकार किया (बी० दे० पृ० १२) ।

शपथ-ग्रहण

कुछ समय के बाद एक दिन सलीमशाह ने शरीफ काँ के सम्मुख बीरसिंह से सर्वत्र उसके आश्रय में रहने की शपथ ग्रहण करने के लिए कहा^१ । इतना सुनना था कि बीरसिंह ने भी मनसा बाबा एवं कर्मना सलीम की सेवा करने तथा स्वप्न में भी उसका आश्रय न छोड़ने का वचन दिया^२ । उधर सलीम का उत्तर मिला कि—

तुम ही मेरे बौद्ध भैरव । तुमही बुद्धि बल भुज सुन्दर ।

कहो मुनिहिं बुद्धि धरि नुस हाम । जसियँ तो जसियँ इहिं काम ।
 बीसों काहु कछु न निवो । उमसी आहि न धरि की हियो ॥
 जो हाँ कहै कछु उपाय । दियो न बँहै धाम पाँउ ।
 पर के रहै बिपरीहै काज । दुहुँ माँति जसनीहै पाज ॥
 मन धम बचन धरो यह नेम । तुम सेबक प्रभु साहि सलैम ।
 सँद मुजफ्फर काँ की बात । बुद्धि मुज भयो कुँवर क गात ॥
 बस्यो बपल गति बुद्धि निधान साहिबादपुर कस्यो मियाँन ।

—बी० दे० पृ० १२ ।

१ मुज पायी बँडे हुते एक समय मुजतान ।
 काँ शरीफ तिन मोलि लिय बिरसिहदेव मुजान ॥
 बीरसिहदेव मुजान मान रँ बात कहो सब ।
 या प्रयाग में कुँवर सौह करियँ मोघों सब ॥
 सोतो करी विचार करहि अपनँ धनमायें ।
 धनत न बबहुँ जाउ रहहु मो सय मुख पायें ॥

—बी० दे० पृ० १२ ।

२ पाहनि पर ससलीम करि बोस्यो बीरसिहदराज ।
 हो शरीब तुम प्रगट हो सया शरीबनिबाज ॥
 सदा शरीबनिबाज साज तुमही मपु लामी ।
 बिनती करियँ मैं कहा महा प्रभु धन्तरजापी ॥
 लोम पोह भय भाजि सबै हम मन धम पाहनि ।
 जो राजहु मरजाय तबो सपनेहुँ नहि पाहनि ॥

—बी० दे० पृ० १२ ।

तुम हों आगे पीछे बित्त । तुम हों सबो तुम हों नित ॥
मात पिता तुम पार्षो पात । तुम तगि हों छाड़ी निज प्रात ।

(बी० दे० च०, पृ० ११)

इस पर बीरसिंह से भी रहा न गया और वह कह उठा—

इक साहिब अब कीमत प्रीत । सब दिन बलन कहत यह रीति ।
तुम्हें छोड़ि मन आगे धान । ती सब जूने धरि बिमान ॥

(बी० दे० च०, पृ० ११)

सलीम के मन की बात

इस प्रकार घपन-ग्रहण के कुछ दिनों के अनन्तर सलीम ने बीरसिंह को अपने मन की बात बताई कि समस्त संसार में बितने चरतबा घबर बीच हैं उनमें मेरा केवल एक ही सन्तु है और वह है शेख अबुलफ़ज्जल । वह ही मेरे पित्त में बटकता है । यदि हो सके तो उसको मेरे मार्ग से दूर कर दो । इबरात (घरबर) के इराद में तो मेरे लिए स्नेह है किन्तु इसी ने मेरे बिछड़ उनके कान भर दिये हैं । इबरात ने मेरे लिए ही उसे दक्षिण से बुलवाया है और यदि वह आकर उनसे मिल लिया तो मेरी हानि निश्चित है । अतः तुरन्त ही जब आपको बीच में ही उसे रोक कर उससे मुझ करो और उसे बन्दी बना लो या मार डालो । यह काम तुम्हारे ही हाथ का है । (बी० दे० च० पृ० ११ १७) ।

बीरसिंह का उपदेश

बीरसिंहको सलीमशाह का प्रस्ताव उचित न लगा और उसने सलीम को बहुत समझाया और कहा कि वह (अबुलफ़ज्जल) आपका सेवक है और आप उसके स्वामी हैं । सेवक की भूल स्वामी को सदैव क्षमा कर देनी चाहिए । अतएव कोष छोड़ कर क्षान्ति वारण करें । सहसा कोई भी कार्य न करना चाहिए, सम्पत्ति ऐसा करने से परचाताप होता है और जम में निम्बा होती है (बी० दे० च०, पृ० १७) ।

सलीम का बीरसिंह को विवाह करना

सलीम ने यह मानते हुए कि यह शिक्षा उचित है उसने कहा कि अब तक शेख बीचित है अब तक मुझे मृत-तुल्य ही समझो । अतएव धीमे ही विवाह हो जाओ (बी० दे० च० पृ० १७) । उसी क्षण सलीम ने स्वयं बीरसिंह को रैयार कर यथासम्मान उसे विवाह किया । उसने रैयार मुजफ्फर को साथ ले प्रस्थान किया और बीच में बिना कहीं पड़ाव डाले अपने स्थान (बन्दीन) पहुँच गया (बी० दे० च०, पृ० १८) ।

शेख अबुलफ़ज्जल का निश्चय और उसका बीरसिंह के बिछड़ युद्ध में निधन

शेख अबुलफ़ज्जल के "गरबर" पहुँचने पर बीरसिंह के मुत्तचरों ने जो पहले ही से मजे वा चुके थे सीट कर उसे शेख के गरबर पहुँचने का समाचार दिया । यह समाचार मिलते ही बीरसिंह ने सिंग नदी को पार किया और शेख की बात

में बैठ गया। इधर देख ने आकर "पराइया" में पड़ाव डाला और वहाँ से दूसरे दिन प्रातःकाल ही प्रस्थान कर दिया। चणु (देख) को जाता हुआ देखकर बीरसिंह उस की धीर टूट पड़ा। देख भी बीरसिंह का नाम सुनते ही दौड़ पड़ा। इतने में एक पठान^१ ने मन्त्र है धामे होकर उसक बोड़े की बाम पकड़ ली^२ और उसे समझाया कि युद्ध के लिए उपयुक्त अवसर नहीं है जिस प्रकार हो सके उसे रणभूमि से बच कर निकल जाना चाहिए। सम्राट उससे मिलकर बड़ा प्रसन्न होगा। समीम पर वह फिर धाकपक कर सकता है। किन्तु देख अपने साथियों को छोड़कर भागना नहीं चाहता था। पठान ने कहा कि बीरों का कर्तव्य ही सड़कर धीरों को मुक्त पहुँचाना है। यदि आप बच गये तो फिर बीरों की रचना हो जायेगी। देख को पठान की सलाह अच्छी न लगी और उसने गर्व के साथ उत्तर दिया कि मैंने अपने बाहुबल से बलिण के मरेस को पीठ कर बलिण देश अभिहित किया है। मुराव की मृत्यु क उपरान्त राज्य का भार अपने ऊपर लिया है। बादसाह अकबर को मुक्त पर पूर्ण विरासत है, ऐसी बधा में जान बचा कर अपने देश वापस भाग जाना मेरे लिए उचित नहीं प्रतीत होता। पठान फिर भी न माना और उससे काय प्रकार्य का विचार करने तथा सस्य अकबर के पास पहुँचकर समीम को सोफ-समुद्र में डुबा देने की प्रार्थना की। धनुमन्त्राल ने उसम कहा कि चणु चारों ओर से टूट पड़ रहे हैं। यदि आपने मैं मैं बच गया तो लोग मेरे विषय में क्या कहेंगे? इस प्रकार जब आपने धीर जूझने दोनों बधाओं में मरण है तो भागने से क्या लाभ और दूसरे मान-अर्थात् की बहियाँ पैरों में पड़ी हैं। फिर पर साह की दुपा का भार है और धीर का प्रत्येक धंग सखा से व्याप्त है। यह सुन कर पठान ने बोड़े की बाम छोड़ दी और देख तुरन्त तलवार निकाल कर दौड़ पड़ा। वह जियर भी जाता था उपर ही मोझाओं में भयदक मच जाती थी। जिस पर भी वह प्रहार करता था उसे वो टूट कर देता था। चारों ओर बाणों और बोलियों की बीछार हो रही थी। एक योसी आकर देख के कक्षस्थल में लगी और वह धामन होकर भूमि पर गिर पड़ा। इस प्रकार उसने धर्म तथा मान-अर्थात् की रक्षा के लिए अपने प्राण सँबाए (वी० ई० अ० पृ० १८४०)।

बीरसिंह का राज्याभिषेक

युद्ध के अन्त में बीरसिंह उस स्थान पर पहुँचे जहाँ देख पड़ा हुआ था। उसका शरीर रक्त-रञ्जित तथा क्षति-भूषित था और उससे गन्ध आ रही थी। उस देखकर बीरसिंह को हर्ष और शोक दोनों हुए। निदान वहाँ से देख का सिर लेकर बीरसिंह 'बड़ीन' के लिए चल पड़ा। बीरसिंह ने चम्पतराय बड़गुजर द्वारा देख का सिर समीम के पास भेजा। समीम सिर को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बीरसिंह क राज्याभिषेक के लिए मैजा अंबर, छत्र आदि भेजे। पुनः दिन बीरसिंह का राज्याभिषेक हुआ (वी० ई० अ० पृ० ४०-४१)।

१. केदार ने पठान का नाम नहीं दिया है। सम्भवतः उन्हें उससे नाम का स्मरण हो गया।

धनुमज्जल के नियम के विषय में कैलाश ने जो कुछ लिखा है वह ठीक है भवना नहीं इस पर किसी भी इतिहासकार ने विचार करने का कष्ट नहीं किया है। कैलाश भी इतिहास की बात करें, यह धसम्भव था। हमारे इतिहासकारों का प्रतिष्ठित मत तो यह है

‘धनुमर्जो ॥ सरदार बीरसिंहदेव ने धनुष के विरुद्ध कुला मित्रोह किया हुआ था। समी ई० १६०२ के मध्य में उसी ने उसे धनुमज्जल के मार्ग-भ्रमरोष और वन के लिए कहा। बीरसिंहदेव ने सहर्ष इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और उस मार्ग के साथ-साथ अपना सब प्रज्ज्वल कर लिया जिससे होकर कि उसके सिंकार के जाने की सम्भावना थी।

पद्मन का भेष हुआ गया। धनुमज्जल को उसके मित्रों ने सचेत कर मार्ग बदल देने के लिए बाध्य किया किन्तु उसने सर्र्व उत्तर दिया—‘बाहुधों में मेरा मार्ग धनुष करने का साहस कहाँ?’ शिराज में उसे एक राजकीय कर्मचारी सोपासवास मक़्ता के साथ सेना की टुकड़ियाँ बदलने के लिए प्रेरित किया गया। प्रत्य सोबों के साथ उसने अपने स्वाभिमत सेनानायक असरखैन से भी जो उसके साथ जाने के लिए उत्सुक था, वहाँ से जाने जाने का आग्रह किया। सद्य-बराद में उसे एक साधु ने स्पष्ट शब्दों में सावधान किया कि अपने दिल ही उस पर ससस्त्र दलों का आक्रमण होगा। धनुमज्जल ने सूचना-बाहक को पुरस्कार दिया किन्तु उसकी चेतावनी पर तनिक भी ध्यान न दिया। शुक्रवार की रात सूर्योदय के साथ ही गमाड़ों की ध्वनि ने प्रयाण का सकेत किया। बल के प्रस्थान करते ही बुन्देलों के घघरास ने जन पर सहसा आक्रमण किया किन्तु उन्हें पीछे हटा दिया गया। मिर्जा मुहम्मिन बाहुर जाँच-पड़ताल के लिए गया हुआ था। उसने आकर समाचार दिया कि एक विद्याल ससस्त्र बुन्देला-बाहिनी निकट ही कुछ के लिए सन्नद्ध बाड़ी है। उसने अपने साथियों को शीघ्रता करने की सलाह दी। धनुमज्जल की होनी उसे मृत्यु की घोर धमकावट कर रही थी। उसने तिरस्कारपूर्ण स्वर में पूछा—‘मीचो! तुम्हारा अभिप्राय है कि हम मान जायें? यह मानना नहीं है। हम इसी प्रकार बहते जायें। मरे समान तुम भी आसियर तक बहते जाओ। किन्तु धनुमज्जल ऐसी विकट स्थिति में दुरवस्थिता की कोई भी बात सुनने को प्रसन्न न था। जब निकट पहुँचती हुई धनुषों की सेना से विस्तृत स्पष्ट हो गया कि उसके मुठभेड़ सेना व्यर्थ होया तब उसे चारमीस के घन्टर पर जो हजार धातुधियों के सहित पड़ाव बतले हुए राजसिंह और रायरावण के पाल आश्रय लेने का पद्यमय दिया गया। धनुमज्जल ने उस प्रस्ताव पर धुना से नाक-भी सिकोड़ी। शीघ्र ही उसकी आत्म-सेना पर १०० कवच-रक्षित धनुषों द्वारा आक्रमण हुआ। इन्होंने बीछा से घामना किया, किन्तु भाग्य उनके धनुमज्जल न था।

धनुमज्जल ॥ एक घन्टे धनुष पर घण्टाघण्टा बहाई जाँ ने अपने स्वामी के बोड़े की बाग पकड़ सी घोर कहने लगा—‘आपका वहाँ क्या काम? आप यहाँ से जाने जायें। यह हमारा कर्तव्य है।’ परन्तु धनुमज्जल कोई कायर न था। वह साहस

घोर बीरता के साथ मड़ा। एक घोर अनुचर ने घोड़े को बाध पड़कर बलपूर्वक उसका मुँह धुमा दिया। इसी समय एक राजपूत ने ऐसा प्रहार किया कि नासा धनुसक्रान्त की छाती के धार-धार हो गया। सामने एक नली थी जिस पर से रीक ने अपना घोड़ा छुटाने का यत्न किया पर वह बिर नड़ा। एक अन्य अनुचर बम्बार ज्ञानसेन ने उसे घोड़े के नीचे से निकाला घोर घबेरावस्था में ही उसे एक बूध की छाँट के नीचे ले गया। अश्विसे रथकों से से अपना मार्ग काटते हुए पीछे ही मुन्नेसे पशु या पहुँचे। एक बली महाव्रत ने रीक को दिखाना दिया। बीरसिंह तुरन्त घोड़े से उतर कर बैठ गया घोर उस घातक व्यक्ति का चिर चुटने पर रक्त कर अपने वस्त्र से उसका मुँह पोंछने लगा। यह देख कर बम्बार बूध के पीछे से निकल कर सामने धाया। तभी धनुसक्रान्त ने कुछ होश में आकर घोंटें छोड़ीं। बीरसिंह ने उसका प्रतिवादन किया घोर कहा कि सर्वविधयी बहूँघोर ने सविनय आपकी बुलाया है। धनुसक्रान्त ने रोध-मूर्ध दृष्टि से उसकी घोर देखा। बीरसिंह ने उसे घुरसिद्ध से जाने की सौम्य काई। धनुसक्रान्त कुछ ही उसे गाली देने लगा। बीरसिंह के अनुचरों ने बताया कि बाध बाधक होने के कारण धनुसक्रान्त को ले जाना नहीं जा सकता। इस पर बम्बार ने अपनी शस्त्र खींच ली घोर बहुत से मुन्नेनों का बंध करता हुआ बीरसिंह के निकट पहुँचा ही था कि किसी ने बर्छी बाँध कर उसे भीत के धाट उतार दिया। बीरसिंह रीक का चिर छोड़ कर उठ बढ़ा हुआ तथा अपने साथियों से रीक को मार डालने के लिए कहा। उसका चिर लेकर मुन्नेसे घोर किसी को पीड़ित न करते हुए तथा बन्धियों को मुक्त करते हुए बहूँ से बल पड़े। चिर इलाहाबाद में कलीम के पास प्रभावित करने के लिए भेज दिया गया। यह को धर्मिक सम्मान के साथ 'घमरी' नामक गाँव में ब्रजना दिया गया।"

डा० बेनोबसाह ने 'विकास प्रसङ्ग' तथा अन्य कार्यों इतिहासकारों के आधार पर ऊपर उद्धृत रीक के निधन का जो विवरण दिया है उसमें रीक को ही बोयी एवं बहूँघारी ठहराया गया है। कारवी इतिहासकारों ने यत्न सा किया है कि रीक बाह्या तो मान निकलता। किन्तु उन्हें ज्ञात नहीं कि यह सम्भव न था। बगोड़ी का कोई महत्त्व नहीं। रीक जानता तो घात जाता। यह ज्ञाने किया भी बही को उसे करना था। उसने हठ से नहीं बिकेकसे काम लिया। जो कुछ हो हमार विचार तो यह है कि केदार ने 'बीरसिंहदेव चरित' में घात के निधन के विषय में जो कुछ लिखा है बही सत्य के धर्मिक निकट है। वह रीक की मान-मर्यादा के बर्धना अनुकूल है घोर उसमें बीरसिंहदेव का पक्षपात भी नहीं है। घात का निधन बीरता घोर स्वामिभक्त का निधन था।

रापरामान का आक्रमण

ही तो धनुसक्रान्त के निधन का समाचार बाधपाह घबबर तक पहुँचाने का साहस किसी जनराज को न हुआ। बाधपाह के मुँह पर भी किसी भी प्रयास

ने कोई उत्तर न दिया। अन्त में रामदास ने निवेदन किया कि खेज का खिर साह पर निष्ठावर हो गया। इस हृदय-विदारक समाचार को सुनते ही अकबर मूर्च्छित होकर धूमि पर गिर पड़ा। बड़ी बेर के बाद संज्ञा लौटने पर रामदास से उसे ज्ञात हुआ कि खेज अपने माय पर चल रहा था कि बीच ही में सलीम का पक्ष लेकर बीरसिंह बुन्देला से उसका युद्ध हुआ और उस युद्ध में खेज स्वयं चित्तार गया। धाकमन्हा, रामदास वज्रनाथ कुमाराव बनमाला आदि उमराव शोकबिह्वल बाह साह को साम्बना देने के लिए उसके सम्मुख उपस्थित हुए। धाकमन्हा ने उसे अनेक प्रकार से साम्बना देने का प्रयास किया पर सब व्यर्थ रहा। बाहसाह ने उन उमरावों को खेज के हत्यारे की भीमति पकड़ साने का आदेश दिया। जब इस कार्य को करने का किसी को भी साहस न हुआ तो 'रामराजान' तैयार हुआ और उसने बाहसाह से संधामसाह को साथ भेजने के लिए निवेदन किया। बाहसाह ने संधामसाह को जाने की आज्ञा देते हुए उसे 'कडीवा' और 'बडोल' की बागीर प्रदान करने का वचन दिया। उनके साथ रावसिंह और तुलसीदास को भी भेजा गया (बी० डे० पृ० ४२-४३)।

सलीम को जब यह समाचार मिला तो उसने बीरसिंह को क्रमागत भेजा कि छाही सेना से जोहा न लेना। क्रमागत पाते ही बीरसिंहदेव 'बडोल' छोड़कर 'दरिया' चला गया। यह समाचार पाकर रामसाह रायराजान से मिलने गया। जब वे दोनों मिलकर 'दरिया' की ओर बढ़े तो बीरसिंह वहाँ से 'ऐरछ' चला गया। यहाँ छाही सेना ने 'ऐरछ' को घेर लिया। बीरसिंह के भाई हरिसिंहदेव ने छाही सेना का बड़ी बीरता और साहस के साथ सामना किया। इस युद्ध में बमनजी का पुत्र बसास बेल रहा। उसके मरते ही छाही सेना में असमन्ती मच गई। बीरसिंह रात्रि के समय अचानक पाकर अपने साथियों के साथ नगर से बाहर भागा और बिपुर की सेना के बीच से छाऊ निकल गया। बिरसियों में किसी को भी उसका पीछा करने का साहस न हुआ। वहाँ से निकलकर बीरसिंह 'दरिया' पहुँचा और वहाँ साह सलीम से मिला। बिपुर^१ भीमकर 'कडीवा' होवा हुआ आनन्द बना गया। इन्द्रजीत भी अकबर की सेवा में वापस पहुँचा (बी० डे० पृ० ४६-४७)।

बीरसिंह और संधामसाह में सन्धि

बिपुर के घायरों पाते ही छाही जाने वाली हो गये। बाहिर को जाती देख संधामसाह ने उस पर अपना अधिकार बना लिया। बीरसिंह 'दरिया' में ही रहे और हरिसिंहदेव 'बसनेह' पर बग बंटे। कुछ ही समय में अचानक हरिसिंहदेव और सपुरावड़ के स्वामी बहगराज में युद्ध हुआ जिसमें हरिसिंहदेव काम धावा। अपना समय देखकर बीरसिंह ने संधामसाह से सन्धि कर भी जिसके परिणामस्वरूप संधामसाह ने बीरसिंह को 'आंडेर' दे दी और बीरसिंह ने उसे सपुरावड़ पीतकर देने का वचन दिया। कुछ समय बाद उसने सपुरावड़ पर

१—यही उक्तवाक्य "बिपुर" है जिसे कश्मीर इतिहासकारों से अनुरोध किया है।

To Pitar Dea, who in the time of my father had the title of Raja.

Rajan, I gave the title of Raja Bikramajit. Tunk, Page 20.

प्राश्नन कर दिया परन्तु हरिसिंहदेव का भातक खड्गाराव 'अभिषीटा' मान गया। दोनों में कुछ हुआ जिसमें खड्गाराव परिवार मारा गया। बीरसिंह ने अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार सभुरागढ़ छद्म को दे दिया और खड्गाराव का चिर फाटकर शाह उसीम के पास भेज दिया (बी० दे० पृ० ४२)।

रामदास का ब्रूतत्व

अकबर को जब यह समाचार मिला तो वह बड़ा दुःखित हुआ और उसने उसीम के पास रामदास कछवाड़े को भेजा। उसीम की सेवा में उपस्थित हो रामदास ने बाबरशाह के आदेश के अनुसार उससे बीरसिंह खरीज की राजा बामुकी की बाबरशाह की सौंप देने की कहा और समझाया कि इस कार्य के उपलक्ष्य में उसे साम्राज्य का एकमी बना दिया जायेगा। उसीम यह सुन कर हँस पड़ा और कहने लगा कि 'साहिबी तो ईश्वर के हाथ है। किसी की भी हुई नहीं मिलती। उसीम के इस प्रकार मानव में न मान पर रामदास ने केवल बीरसिंह को ही देने की कहा। किन्तु उसीम ने यह बात भी न मानी और उसने कहा कि बीरसिंह के साथ बड़ हुर प्रकार का कष्ट सहने की तैयार है परन्तु उसके बिना उसे साम्राज्य की भी इच्छा नहीं। उसीम ने उसे धीरे ही वहाँ से अपने जाने का आदेश दिया और कहा कि यदि उसका स्वान पर समय कोई होता तो ऐसी बृष्टता करने पर वह बच न पाता। रामदास अपना-सा मूँह लेकर सीट गया और अकबर से छारा बृष्टान्त निवेदन कर दिया। बाबरशाह सब समाचार सुनकर मौन हो रहा (बी० दे० पृ० ४२-२०)।

खड्गाराव के भाई की क्रूरियाव

इसी बीच में खड्गाराव का भाई बाबरशाह अकबर के दरबार में क्रूरियाव लेकर पहुँचा और धरम प्रदान करने की निमती कहे हुए उसने निवेदन किया कि जिस समय मुराद उस और बने थे उस समय राजा रामदाह उन लोगों से अग्रस्तन थे अतएव उसने मुराद से सहायता करने की प्रार्थना की थी और मुराद ने उसके भाई खड्गाराव को राजा बना दिया था। इस समय बीरसिंहदेव ने हमारा सत्ता नाश कर प्रदाय का पत्र भिया है। यह सुनकर अकबर ने त्रिपुर को बुलाकर खड्गाराव के भाई को उसे सौंप दिया और रामदास को आदेश दिया कि वह किसी को भेजकर संदायशाह को धोड़सा से ब्रूतबा है। रामदास ने उसे बुलाने के लिए अपने सारे को भेजा (बी० दे० पृ० २०-२१)।

अकबर की नीति

बुंदेलों के इन प्रचार बहुत हुए अतएव के विषय में सुनकर अकबर ने अक्षरशः वाँ को बलाकर मगधवा की कि इन्द्रजीत का क्या किया जाना चाहिए। अक्षरशः वाँ ने बाबरशाह को इन्द्रजीत को बुन्देलखण्ड का राज्य प्रदान करने का परामर्श दिया। बाबरशाह ने इन्द्रजीत को बुला भेजा और सुम अकबर पर बाबरशाह की छाता के अनुसार रामदास कछवाड़े ने इन्द्रजीत से कहा कि यदि वह मन बचन

राजशाह ने 'ऐरख' की धीर कृप किया। रामशाह से मिलकर बीरसिंह को बड़ी प्रशस्तता हुई और कुछ कास विधाय करने के अनन्तर उसने जहाँगीर से प्राप्त परगनों के सब पट्टे रामशाह के सामने रख दिए। रामशाह जब उनका भेंटबाण करने लगा तो बातों ही बातों में अन्तर पड़ गया। बीरसिंह के अनुनय विनय करने पर भी रामशाह ने एक न सुनी और वह 'पटहारी' वापस बसा गया। बीरसिंह 'ऐरख' से 'पिपहरा' आया जहाँ उसे सम्भुता की मिला। हरियाली की यहीं मधुरा से आकर बीरसिंह से मिल गया। रामशाह से उदासीन होकर उसके मित्र भी बीरसिंह से जा मिले। इसी बीच रामशाह 'पटहारी' छोड़कर 'बनियवा' चले गए थे। अतएव बीरसिंह ने 'पटहारी' को धमिहत कर लिया और 'बरेली' में पड़ाव बना। इस प्रकार रामशाह 'बनियवा' में चले गये और बीरसिंह 'बरेली' में। दोनों राजाओं की सेना के बीच प्रायः कोस का अन्तर था। इसी समय सुबहान सुबहो भाग निकला और जहाँगीर ने उसका पीछा किया। बीरसिंह का पुत्र उसके साथ गया किन्तु इन्द्रजीत रामशाह के पास आ गया। रामशाह उसके आने से बड़े आनन्दित हुए और सह्योने अपने मंत्रियों तथा मित्रों के सम्मुख इन्द्रजीत को परिवार और राज्य का भार सौंप दिया और उससे कहा कि वह बीरसिंह से चाहे मुझ करे अपना सन्धि, उसकी इच्छा (बी० दे० १० पृ० १९-२०)।

सन्धि-वार्ता

कुछ दिनों बाद बोपास आवास स्वामदास और पायक दुर्जन भारतशाह को साथ लेकर बीरसिंह के पास 'बरेली' समझौते के लिए गए और उसे समझा-बुझाकर भारतशाह को उसे सौंप दिया। भारतशाह और बीरसिंह दोनों ने निश्चय निमाने की शपथ की और निश्चय हुआ रामशाह 'बनियवा' छोड़कर छोड़ना बसा वापस। भारतशाह बरीठ के रूप में वहीं रह गया। इस समझौते का समाचार पाकर रामशाह को बड़ा दुःख हुआ। इसी बीच जब बरीठों के द्वारा इन्द्रजीत का यह वृत्तन्त विदित हुआ तो उसे भी बहुत दुःख हुआ पर सब बातें सोचकर रामशाह को 'बनियवा' छोड़कर छोड़ना बसा जाने का परामर्श दिया। इस पर रामशाह छोड़ना बसा गया और उसने अपने को बहुत समझया-बुझया। यहाँ से रामशाह ने मंत्र प्रेषा और केदार मिश्र (स्वयं कवि) को हुन के रूप में सन्धि के लिए बीरसिंह के पास भेजा। केदार मिश्र के शब्दों ने बीरसिंह को बड़ा ही प्रभावित किया और वह उनकी शिक्षा मानने को तैयार हो गया। उसने केदार रामशाह को मिला देने के लिए कहा और सह्य संग्रह और प्रसा को बिदा किया। रामशाह ने बीरसिंह से मिलने के लिए सहमत हो गया। इसी बीच प्रसा ने रानी कल्याणदे से मिलकर उसके कान भरे और कहा कि उसे पता नहीं बीरसिंह तथा केदार में क्या बातचीत हुई है अतः यदि द्वानि-साम हो तो उस पर बोप न लगाया जाय। यह सुनकर रानी सर्वत्र हो उठी और उसने प्रसा को भारतशाह को से जाने का आदेश दिया। प्रसा बीर सिंह के पास से भारतशाह को ले आया परिणाम यह हुआ कि सन्धि-वार्ता पूर्णतया मीठा हो गई (बी० दे० १०, पृ० ७०-७४)।

बीरसिंह का आक्रमण

सन्धि-वार्ता के दृष्ट्यो ही उपयुक्त अवसर पर बीरसिंह ने विजयन सेना के साथ प्रस्थान किया और बैतवा को पार कर बीरगड पर अपना आगमन जमाया। जब रामसाह को यह समाचार मिला तो उसने रानी बस्यामदे इन्द्रजीत और भूपतिराव को बुलाकर परामर्श किया। रानी की सलाह थी कि जैसा इन्द्रजीत रहे वैसे ही करना चाहिए। इन्द्रजीत ने रामसाह की इच्छा के अनुसार कार्य करने का विचार प्रकट किया। भूपतिराव मझाई सड़ने के पक्ष में था। केसव मिश्र ने इन्द्रजीत और भूपतिराव को बहुत समझाया-बुझाया कि यदि न किया जाय विन्तु रानी बस्यामदे को केसव का उपदेश अच्छा न लगा और उसने केसव को वहाँ से बलवाने का आदेश दिया। केसव 'बीरगड' बीरसिंह के पास चले गए। बीरसिंह ने 'बीरगड' से प्रयाण किया और 'बबौना' में निवा। मुख्यप्रहरमणी के जाने पर वह वहाँ से भी बल दिया और तराई के उपवन में डर डाला। यहाँ छोटा घन्मुस्ताह के दूत उनकी सेवा में उपस्थित हुए। मावी के विषय में सोच कर बीरसिंह मरदान्त दुखी हुआ और उसने रामसाह को परिस्थिति से परिचित करा देने का विचार प्रकट किया। केसव मिश्र ने सब ऊँच-नीच समझाते हुए रामसाह को एक पत्र लिख भेजा, पर रामसाह ने उस (पत्र) का उपहास ही किया। फिर भी उसने घाम्नी पुरोहित और गोपाल को बीरसिंह के पास भेजा। परन्तु वे कहते कुछ थे हृदय में कुछ और था। अतएव सन्धि की यह चेष्टा भी निष्फल हुई। अतएव बीरसिंह ने युद्ध के लिए धाड़छा की ओर प्रस्थान कर दिया और अपने सेनापतियों का ऐसा व्यूह रचा कि विजय उसी के हाथ लगी। जिस समय बीरसिंह की सना घोड़छा स कुछ दूरी पर ही थी उणी समय घन्मुस्ताह साँ (कागपी का मुबेबार) की सेना घोड़छे पहुँच गई। रामसाह की सेना के साथ रावभूपति और इन्द्रजीत ने मुसल-सेना पर आका बोल दिया। दोनों सेनावाँ में भीषण युद्ध हुआ। इसी बीच एक पठान ने इन्द्रजीत के घोड़े पर प्रहार किया और घोड़ा अचेत हो अवसर के लाभ भूमि पर गिर पड़ा। इतने में मुसल सवारों ने विजय कर उस पर दूट पड़े। मनुष्य ने उस पठान का मार दिया। इतने में रावभूपति वहाँ था पहुँचा और सन्धियों को सह-मुहान कर दिया। घन्मुस्ताह साँ भाग रहा हुआ। अचेत इन्द्रजीत को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर भूपतिराव घबरेल ही एक हीप मुसल सेना से लोहा लेने के लिए आगे बढ़ा यद्यपि उसे अकेले युद्ध करने का विरह बहुत कुछ समझाया-बुझाया भी गया। इसी समय बीरसिंह अपनी सेना के साथ पहुँचा। घन्मुस्ताह साँ की सेना को एक नया बल मिल गया। दोनों ओर की सेनाओं में घोर संग्राम हुआ जिसमें भूपतिराव ने अठाधारण बीरता दिखाई (बी० दे० पृ० ७४ ए५)।

घन्मुस्ताह साँ की नीति

घन्मुस्ताह साँ के जी लोड़कर प्रयत्न करने पर भी जब वह राजमहल को घेरित न कर सका तो अपने वाद्वार को बुलाया और उनसे किसी प्रकार रामसाह को अपने पास तक लाने के लिए कहा। वाद्वार ने मुख्यर कायस्थ से यह बात

कही। यह बादशाह (जहाँगीर) की छाप लेकर गया और धपक साकर रामशाह को मरुस्ताह खाँ के पास ले गया। इस प्रकार नीति से मरुस्ताह खाँ ने रामशाह को बन्दी कर लिया और उसे साथ ले जाकर बादशाह के सामने उपस्थित किया (बी० डे० पृ० २६-२७)।

विजय के उपरान्त

घोड़छा राज्य पर अधिकार हो जाने पर बीरसिंह ने 'बीहट' राजमुपान को और बाँध' राजप्रताप को दिया तथा इम्रजीत को गढ़ का स्वामी बनाया। भिन्न भिन्न प्रदेशों का अधिकार अपने भाइयों में बाँट कर बीरसिंहदेव रामशाह को चुकाने के लिए जहाँगीर के पास गया। इतर बीरसिंहदेव कुम्होज पहुँचा ही था कि इतर देवाराज ने भारतशाह से मिलकर चारों ओर घातक फैला दिया। उन्होंने 'भटहारी' को समिद्ध कर लिया। घोड़छा भी उनके दर से काँपने लगा। इसी बीच भूपालराज ने 'बबीमा' पर अपना अधिकार कर लिया। इतने में बीरसिंह या पहुँचा और उसने सब घातकारों का नाश कर समस्त देश में शान्ति की स्थापना की। बादशाह जहाँगीर के धारण से बीरसिंह घोड़छा का राजा बना। राजा होते ही बीरसिंह ने घोड़छा फिर से बसाया और उसका नाम जहाँगीरपुर रखा (बी० डे० पृ० २७-२८)।

जहाँगीर-जस-बख्शिका और रतमदाबनी में सजित इतिहास-सामग्री

जहाँगीर 'जस-बख्शिका' में केसव ने जो जहाँगीर के दरबार का रूप दिखाया है वह इतिहास के विचार से बर्तनीय है। इससे यह भी साँति प्राप्त हो सकती है कि सम्राट के दरबार में मुलतानों अथवा सामन्तों की स्थिति क्या थी और किस क्रम से उन्हें बड़ा किया जाता था। यद्यपि इस प्रसंग में ध्यान रखना होगा कि केसव ने पहले कमसे कम मुलतानों—सुसरो (पृ० ५० पृ० ५० पृ० ५० पृ० ५१), परवेस, (पृ० ५० पृ० ५० पृ० ५० पृ० ५१) और सुर्मन (पृ० ५० पृ० ५० पृ० ५० पृ० ५१) का परिचय दिया है। इसके अनन्तर आते हैं—जान भाजम (पृ० ५० पृ० ५० पृ० ५१)। जिससे मुलतान सुसरो बार बार कुछ कह रहा है और जो जहाँगीर का बड़ा लाइता है मरुर्हीम खानखाना और मलसिंह (पृ० ५० पृ० ५० पृ० ५१)। फिर कमसे कम मिरजा रामसरीन (जो भाजम का पुत्र पृ० ५१) एलिज बहादुर (मरुर्हीम खानखाना का पुत्र पृ० ५१) महासिंह (भाजसिंह का बख्त पृ० ५१), इमहदाम बुन्देला (राम शाह पृ० ५१) राय बुर्गमान (बख्तस का बेटा पृ० ५१) रतम भोजराह (पृ० ५१) बीरसिंह (पृ० ५१) रामसिंह (ज्या का पुत्र पृ० ५१) जानबही पठान (दीनत खाँ का पुत्र पृ० ५१) सुलसी बहादुर (मोपानत के राजा का पुत्र पृ० ५१) बीरमर (बीरबस का पुत्र पृ० ५१) बिहमाजीत मरीरिया (पृ० ५१) इतर खाँ जो जहाँगीर का विश्वासपात्र था और जिसने अपनी सेनाओं के कारण मुलतान खाँ की उपाधि प्राप्ति की थी, इसका बेटा (पृ० ५१) ह्यमसिंह

१ Here Inikhar khan, governor of Agra was for his meritorious services raised to २,००० Jais and २,००० arwar and styled Murras khan.

(मानसिंह सोमर का बंधन छं० ६३) मूरति सिंह (छं० ६५) धीर रामा बागुको (छं० ६७) — इन तीनों सामन्तों का परिचय दिया गया है ।

जहाँगीर के इस दरबार में क्रम की दृष्टि से विचार करने पर मानसिंह के बाद मिरजा शमसुद्दीन का नाम आता है धीर व्यापसिंह के बाद मूरतिसिंह का परन्तु स्थिति पर यदि ध्यान दिया जाता है तो व्यापसिंह शमसुद्दीन के पास बसता है यह है धीर मूरतिसिंह मानसिंह के बाद ।

इसी दरबार में बीरसिंह के साथ ब्रह्महराम कुम्हना (रामसाह) के भी दर्शन होते हैं जैसा कि पहले बताया जा चुका है । इससे निश्चित होता है कि फिर उसे जहाँगीर के दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी । इसका कारण कदाचित् सम्राट् की सेवा में अपनी पुत्री को भेजना ही था जिसका निर्देश स्वयं जहाँगीर ने दिया है^१ ।

'रतनबावनी' में छोड़ना-नरैण मधुकरसाह के पुत्र रतनसाह के मुगल-सेना से युद्ध का वर्णन है जिसमें उसने सम्राट् पराक्रम की छाही सेना का साधना करत हुए वीरगति प्राप्त की थी । केसव के अनुसार एक निश्चित बटमा इस युद्ध का कारण बनी थी जिसका उत्प्रेय पूर्वपृष्ठों में दिया जा चुका है । रतनसेन के युद्ध सेना से इस युद्ध के विषय में इतिहास ग्रंथ मौन है ।

छोड़ना का राजवंश

छोड़ना के राजवंश का भी परिचय प्राप्त करने के लिए केसव के बीरसिंह देव-चरित' तथा 'कविप्रया' नामक ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं । बीरसिंहदेव-चरित' में १५ १७ पृष्ठों पर दिए बगल के आधार पर छोड़ना-राज्य का बंशवृक्ष इस प्रकार है—

- १ मानसिंह की बान शिवि सोहत सुन्दर रूप ।
बात बहुत परमेज सी कहो कीन यह भूप ॥

देवराज ही दुख सासनि सरति ।
मूरति मूरति सिध की जानी ।

—अ० ३० अं ६० ६४ ६५ ।

पर मिसानु धाजानु भुज मुद्रति मुद्रित मान ।
समसहीन मिरजा निकट कही कोन नरपास ॥

राजनि की पण्डसी को रंजनु बिराजमान ।
जानियत व्यापसिंह सिध गोपाचस को ॥

—अ० ३० अं ६१ ६२ ६३ ।

2. took the daughter of Ram Chandra Handiah into my service (i.e. married her).
Tarak, Va. 1 page 160.

कैशवराय जीवनी, कसा घोर कुटिल

वीरराज (उम के पुत्र कुरा का बंशज—बाणवर्ध)

वीर

कुरु (घाटी)

कर्ममराज (परोमी)

सोमराज (ग-कुमार)

सुवेण

सोमराज

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

कर्म सुवेण

सुवेण

सुवेण (सोमरा)

सुवेण (सोमरा)

सुवेण (सोमरा)

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

सुवेण

‘कविप्रिया’ में दिया गया-कर्म ‘वीरविहारे-विराट’ के वर्णन से कुछ मिलता है।

‘कवि-प्रिया’ (पृ० १ छं० १ वृ०) के अनुसार सोमराज-राज्य का बंशज निम्नांकित है—

वीर (उमराज के बंशज—कर्म)

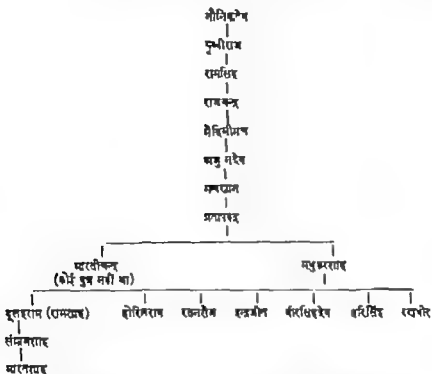
वीर

कुरु (घाटी)

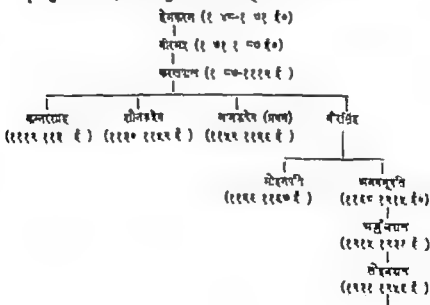
कर्ममराज (परोमी)

सोमराज (ग-कुमार)

सुवेण



‘मोड़छा दकटियर’ में दिये हुए विवरण के आधार पर थोड़छा-राज्य का बंशवृक्ष सुम्ना के लिए नीचे प्रस्तुत किया जाता है—



वंशावृत्तों की तुलना

उपर्युक्त तीनों वंश-वृत्तों का घापस में मिलाव करने से निश्चित होता है कि केदार ने 'कविप्रिया' में सबसे पहला राजा श्री रामचन्द्र श्री का कछाज श्रीर' दिया है और उसके अनन्तर 'करण' का उल्लेख किया है। पर 'बीरसिंहदेव-चरित' में सर्वप्रथम 'बीरभद्र' का नाम आता है। उसके पश्चात् 'बीर' और फिर 'करण' का। मोड़छा मञ्जटियर' में 'बीरभद्र' से पूर्व दिये हुए हेमकरण का 'कविप्रिया' और 'बीरसिंहदेव चरित' दोनों ग्रन्थों में ही उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवतः यह कोई महत्त्वपूर्ण राजा न रहा होगा। इसी कारण केदार ने इसे छोड़ दिया है। मोड़छा मञ्जटियर में 'करणपाल' से पहले केवल एक ही राजा 'बीरभद्र' का नाम दिया गया है जो 'कविप्रिया' के अनुसार राजा 'बीर' है। ऐसा जान पड़ता है कि बीरसिंहदेव चरित में केदार ने भूल से 'बीरभद्र' और 'बीर' दोनों को मिल मिल व्यक्त समझ लिया है। आगे चलकर 'कविप्रिया' में पुष्पीराज के अनन्तर क्रमशः रामसिंह राजचन्द्र और मेदिनीमल का नाम मिलता है परन्तु बीरसिंहदेव चरित में 'पुष्पीराज' के अनन्तर ही 'मेदिनीमल' का निर्देश है तथा रामसिंह और 'राजचन्द्र' का उल्लेख नहीं है। बीरसिंहदेव-चरित में आगे 'पुष्पीराज' के पुरों 'रामसेन' और 'पुरनमल' का 'कविप्रिया' और मोड़छा मञ्जटियर' में कोई उल्लेख नहीं है। 'कविप्रिया' में मधुकरदाह के साथ ही पुत्र बतलाये गए हैं दूनहराम (रामदाह) औरसिंहदेव रतनसेन इन्द्रजीत बीरसिंहदेव हरिसिंह और रणवीर। 'बीरसिंहदेव चरित' में मधुकरदाह के साथ पुत्र का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में 'रणवीर' का नाम नहीं आता। वीर नाम 'कविप्रिया' में मिलते हैं तथा अन्य दो नाम 'नरसिंह' और 'प्रतापराज' दिये गए हैं। 'मोड़छा मञ्जटियर' में 'नरसिंह' का कोई उल्लेख नहीं है। वीर नाम बीरसिंहदेव-चरित के समान है और 'नरसिंह' के स्थान पर 'रणवीरसिंह' आया है जिसको केदार ने 'कविप्रिया' में तो मधुकरदाह का पुत्र बताया है पर 'बीरसिंहदेव-चरित' में नहीं बताया। 'कविप्रिया' और बीरसिंहदेव चरित में 'करणपाल' के पश्चात् धर्मनपाल का उल्लेख किया गया है परन्तु मोड़छा मञ्जटियर' में करणपाल और धर्मनपाल के बीच क्रमशः पाँच अन्य राजाओं क्रमशः धीनचदेव नीनचदेव (प्रथम) मोहनपति तथा समयभूपति का उल्लेख है। 'कविप्रिया' में न तो इन्द्रजीत और रतनसेन के पुत्र के नाम आते हैं और न ही बीरसिंहदेव के पुत्रों के। 'बीरसिंहदेव-चरित' में इन्द्रजीत और रतनसेन के क्रमशः एक-एक पुत्र उपसेन तथा भूपाल राव और बीरसिंहदेव के प्यारह पुत्रों का उल्लेख किया गया है। बीरसिंहदेव के प्यारह पुत्रों में न केवल इन के ही नाम पुष्पराम हरदीन पहाड़सिंह बाभराम चन्द्रमान मगवानराज नरहरिदास इन्दुदास माधोदास और तुमसोदास बतलाये गए हैं। 'मोड़छा मञ्जटियर' में इन्दुदास का नाम नहीं है वीर नाम नहीं है। इनके अतिरिक्त मञ्जटियर में तीन नाम और दिये गए हैं बभोदास परमानन्द और विजयसिंह। इन प्रकार मञ्जटियर के अनुसार बीरसिंहदेव के बारह पुत्र होते हैं। हो सकता है कि बाबू का

कृष्णदास ही गजेंद्रियर का किसानसिंह हो धीरबेनीदास धीर परमानन्द 'वीरसिंहदेव चरित' की रचना के समय तक उत्पन्न न हुए हों। 'कविप्रिया' में वीरसिंह इन्द्रजीत घनका रतनसेन के पुत्रों का कोई उल्लेख न होने के विषय में भी यही सम्भावना हो सकती है। करणपाल और धर्मपाल के बीच के पाँच राजाओं को जो केशव ने अपने दोनों ही ग्रन्थों में छोड़ दिया है उसका कारण हमें तो यही प्रतीत होता है कि कवि ने इन राजाओं को महत्त्वपूर्ण न समझा होगा।

पूर्वपृष्ठों में दिये गए विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि केशव के ग्रन्थों 'वीरसिंहदेव चरित' जहाँगीर उस चरित्रका 'रतनबाबरी' तथा 'कविप्रिया' में जो ऐतिहासिक सामग्री यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है वह छोड़कर राज्य का सन्धा एवं पुरा इतिहास जानने के लिए बड़े महत्त्व की है। अतएव केशव को यदि इतिहास का पूरक करें तो असंयुक्त न होगी।

सुता अध्याय

केशव का रीति-काव्य

(अ) रीतिकाव्यों का संक्षिप्त परिचय

(१) रसिकप्रिया

इस ग्रन्थ की रचना प्रमुख रूप से केशव के छात्रवृत्तों श्रीहरी-नरेश मधुकरदाह के पुत्र इन्द्रवीरसिंह के लिए ही हुई थी^१ परन्तु ग्रन्थ लिखते समय केशव के मस्तिष्क में और काव्य-रसिकों के मनोरंजन का ध्यान भी विद्यमान था^२। कवि ने सामान्यतः इस ग्रन्थ में रस कृति और नगररस (रस शेष) का निरूपण किया है परन्तु प्रबलता शृंगार-रस वर्णन को ही मिली है। ग्रन्थ के अधिकांश भाग में शृंगार रस के विविध संघों का सविस्तार विवेचन किया गया है। शृंगारोत्तर रसों को भी कवि ने शृंगार के अन्तर्गत माने का प्रयत्न किया है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही केशव ने कृष्ण के चरित्र में नगररसों का होना दिखाया है^३। पर चाहे बनकर उन्हें अपनी इस प्रतिष्ठा का ध्यान न रहा और उन्होंने शृंगार ही के अन्तर्गत सब रसों का समावेश करने का उद्योग किया। ग्रन्थ में सोलह प्रकाश हैं। प्रथम प्रकाश यौनेश-वन्दना से आरम्भ होता है। इसके अनन्तर श्रीहरी नगर-वचन ग्रन्थ-रचना-कारण ग्रन्थ-प्रचयन-काल और नगररसों के उत्पन्न के बाद शृंगार रस के दोनों पक्षों संयोग

१ इन्द्रवीर दाहो प्रमुख सकल धर्म को धाम ।

तिन कवि नेरावदास सों कीन्हों पर्य सनेहु ।

सब गुन दी करि सों कह्यो रसिकप्रिया करि देहु ॥

—२ वि० प्र० १ अ० ८ श्लो० १० ।

२ अति रति धति मति एक करि, विविध विवेक विनास ।

रसिकन को रसिकप्रिया कीन्हों नेरावदास ॥

—२ वि० प्र० १ अ० १२ ।

३ श्रीगुणवानु कुमारि हेतु शृंगाररस भय ।

बास हास रस हरे भास-बंधन कल्याणिय ॥

केही प्रति धति रीत और मारो बरसापुर ।

भय दावानस पाग पिपे बोभस बकी डर ॥

अति मद्भुग बंध विरंचित धातु संतति घोष पित ।

कहि केशव सेवहु रतिक जन नगरस भय बजराज निद्र ॥

—२ वि० प्र० १ अ० २१ ।

कल्पयोग का वर्णन किया गया है। द्वितीय प्रकाश में नायक के भेदों का विवरण दिया गया है। तृतीय प्रकाश में जाति, कर्म, अवस्था तथा मान के अनुसार मानि कार्यों के भेद वर्णित हैं। 'सुरतिविधिना' के प्रसंग में केदार ने रति के दो भेद महिरंति और अमृतरंति बतलाकर प्रत्येक के सात-सात प्रकारों का उल्लेख किया है। यही सोसहू शृंगार के नाम भी दिये गए हैं (१० प्रि० अ० १ अ० ४४)। यह सब से बड़ा प्रकाश है। चतुर्थ प्रकाश में चार प्रकार के दर्शनों का वर्णन है। पंचम प्रकाश का आरम्भ दम्पति-व्यष्टा से होता है और फिर नायक-नायिका के स्वयं वृत्त का निरूपण किया गया है। छान ही नायक-नायिका के प्रथम मिलन के स्पर्शों का भी उल्लेख किया गया है। षष्ठ प्रकाश में भाव विभाव अनुभाव स्वाधी सात्त्विक और व्यभिचारी भावों तथा हावों का निरूपण है। सप्तम प्रकाश में अवस्था तथा गुण के अनुसार नायिकाओं के भवों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही 'अगम्या' का वर्णन भी किया गया है। अष्टम प्रकाश विप्रसम्भ के सामान्य लक्षण से आरम्भ होता है। फिर विप्रसम्भ के चार भेदों के नामोल्लेख करने के पश्चात् विप्रसम्भ के प्रथम भेद 'पूर्वानुराग' और प्रिय के विधेय से उत्पन्न दश रक्षाओं का वर्णन किया गया है। नवम प्रकाश में विप्रसम्भ के दूसरे भेद 'मान' के भवों का उल्लेख है और दशम में मान भोजन के उपाय बतलाये गए हैं। एकादश प्रकाश में विप्रसम्भ के अन्य भेद कण तथा प्रवास विरह का निरूपण किया गया है। द्वादश प्रकाश में 'सखी भेद' का वर्णन है और त्रयोदश प्रकाश में सखी-जन-कर्म-वर्णन। इस प्रकार यहाँ तक शृंगार रस के ही विभिन्न अंगों का सोसाहरण विवेचन है। हास्यादि अन्य रसों को चतुर्विध प्रकाश में जमता ही कर दिया गया है। पंचदश प्रकाश 'वृत्ति वर्णन' को अर्पित है और अष्टम प्रकाश में 'धनरस' (रस-बोध) के पाँच भेदों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक प्रकाश में दोहों में लक्षण देकर प्रायः कवित्त या सर्वथा नये उदाहरण दिये गये हैं।

शृंगार रस का ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'रसिकप्रिया' का बहुत महत्त्व है। केदार की दृष्टि में भाषा-कवि के लिए इस कृति का अत्यन्त विशेष महत्त्वपूर्ण है^१। काव्यत्व की दृष्टि से भी केदार की सम्पूर्ण कृतियों में यह सबसे बड़ा है जैसा कि प्राये के विवेचन से स्पष्ट हो जावेगा।

(२) कविप्रिया

यद्यपि 'कविप्रिया' का प्रणयन मुख्य रूप से महाराज हजरीचंदिह की प्रेमिका तथा केदार की शिष्या प्रबीरराय पातुर को कवि-शिक्षा देने के लिए हुआ

१ जैसे रसिकप्रिया बिना देखिय दिन दिन हीन।

एत्यों हो भाषा कवि सबै, रसिकप्रिया बिन हीन॥

बा^१, परन्तु अन्य सिद्धते समय केसव के मस्तिष्क में यह विचार भी वर्तमान था कि कविता का मार्ग स्त्री तथा बालक सभी के लिए सुपम हो जाय^२ । कविप्रिया के प्रति कवि की यहूरी समता है । यही कारण है कि उन्होंने अपने 'मित्र' से दण-दण में उसका पाठ करने तथा उसके सुनने में लीन रहने को ही नहीं अपितु उसकी मन्त्रि, भजन तथा विफट खन्नों से नित्य रसा करने को कहा है^३ । कवि ने कविप्रिया के विषय में यहाँ तक लिखा दिया है कि—

सुखरम छटित पदारपनि भूपन भुवित मान ।

कविप्रिया है कवि प्रिया कवि की जीवन प्रान^४ ॥

यह ग्रन्थ सोमह प्रमावों में विभक्त है^५ । पहले प्रमाव में मंगलाचरण ग्रन्थ रचना-क्रम आदि के पदवाच नृप-बंध और कवि के धामयदाता महाराज इन्द्रवीर सिंह की समा की छ केरवाओं का वर्णन है । दूसरे प्रमाव में कवि बंध का परिचय दिया गया है । वस्तुतः तीसरे प्रमाव से ही ग्रन्थ का आरम्भ होता है । इस प्रमाव में काव्य-शेषों का निरूपण है, जिसमें यण अयण पर भी संक्षेप में विचार किया गया है । चौथे प्रमाव में कवि-भेद कवि-रीति और सोमह शृंगारों का वर्णन है । शृंगारों की नामावली 'रसिकप्रिया' के समान ही है । पाँचवें प्रमाव से काव्यालंकारों का वर्णन आरम्भ होता है जिसके दो भेद साधारण तथा विशिष्ट बतलाये गए हैं और फिर साधारण के चार भेदों का उल्लेख किया गया है । पाँचवें से छठवें प्रमाव तक साधारण अलंकारों का वर्णन है । पाँचवें प्रमाव में वर्णालंकार के अन्तर्गत यह बताया

१ नृपमवाहिनी धग छर, बागुकि लसत प्रवीन ।

छिन्न बंध सोई सर्वदा छिना कि राव प्रवीन ॥

—क वि० प्र० १ अं १ ।

सविता पू कविता दई, ताकहूँ परम प्रकास ।

छाके काज कविप्रिया कीन्ही केसवदास ॥

—क वि० प्र० १, अं २१ ।

२ समुन्दी बाना बासवहु वर्जन पंच प्रमाव ।

कविप्रिया केसव करी छमियो कवि अणराज ॥

—क वि० प्र० १ अं २ ।

३ पल पल प्रति धवलोकिजो पड़ियो पुमिजो निज ।

कविप्रिया को रसियो कविप्रिया ज्यों मित ॥

अनन अनिल जल बलिन लें विफट छलन लें निज ।

कविप्रिया रसियो कविप्रिया ज्यों मित ॥

—क वि० प्र० १ अं २२ ।

४ क वि० प्र० १ अं २२ ।

५ केसव छोरह भाव धूम सुखरम मय मुहुमार ।

कविप्रिया के जानिये ये छोरह शृंगार ॥

—क वि० प्र० १ अं २३, अं २४ ।

गया है कि कौन वस्तु किस रंग की वर्णन करनी चाहिए। उसी प्रकार छठे प्रभाव में यह निरूपण किया गया है कि कौन सी वस्तु किस प्राकृति तथा पुष्प की वर्णन की जानी चाहिए। सातवें प्रभाव में मृमि-भी वर्णन है जिसमें भूतल के प्राकृतिक दृश्यों एवं वस्तुओं के वर्णन की विधि का निर्देश किया गया है। आठवें प्रभाव में रामायणी का वर्णन है। इसमें राधा, रानी, राजकुमार, पुरोहित सेनापति इत मन्त्री संघमा, प्रभाव हुए, एक आठवें वर्णन के लिए बाधों के वर्णन की सिखा दी गई है। नवें प्रभाव से पन्द्रहवें प्रभाव तक विशिष्टार्थकारों एवं उनके भेषोपनेहों का तथा सोसहृदों में विचारार्थकार का वर्णन किया गया है। ये ही काव्य के वास्तविक वर्णनकार हैं। गहरे प्रभाव में 'स्वभावोक्ति' से लेकर 'उत्प्रेक्षा' तक छ वर्णनकारों का वर्णन है। इसका सम्पूर्ण प्रभाव आख्यानकार को अपित है। शिक्षावर्णनकार के अन्तर्गत बाह्यमात्रा भी आ जाता है। प्यारहवें प्रभाव में 'कर्म' से 'अवहृन्नि' तक तेरह वर्णनकारों का निरूपण किया गया है। बारहवें प्रभाव में 'उक्ति' से लेकर 'वृत्ति' तक छ वर्णनकारों का उल्लेख है। 'समाहित' से 'परिवृत्त' तक आठ वर्णनकारों का विवेचन तेरहवें प्रभाव में हुआ है। चौदहवाँ प्रभाव समस्त 'उपमा' वर्णनकार के निरूपण में लगा है। इसके साथ ही अन्त में राधा के लक्ष से विद्युत तक प्रत्येक धर्म का वर्णन भी किया गया है। पहले बोध में प्रत्येक धर्म के उपमान का निर्देश किया गया है और फिर कवित्त अथवा सर्वथा में उन उपमानों के सहारे धर्म-विवेचन का निरूपण हुआ है। पन्द्रहवें में 'यमक' और अन्तिम प्रभाव में 'विचित्रार्थकार' का निरूपण हुआ है। प्रत्येक प्रभाव में सखण बोध में और उदाहरण प्रायः कवित्त या सर्वथा में दिये गए हैं। अधिकांश उदाहरण काव्य की दृष्टि से सरल एवं समीचीन रूप पड़े हैं जैसा कि यामे किये गए विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा।

(३) शिक्षानल

'शिक्षानल' का रचनाकाल विदित नहीं है। इस छोटे से ग्रन्थ में केवल ५ अधिकांश परम्परा से लगे आठ प्राचीन संस्कृत आदि भाषा के ग्रन्थों में उल्लिखित उपमानों की सहायता से नायिका के धर्म-वर्णन की शोभा का वर्णन किया है। कुछ उपमानों की दृष्टि कवि ने स्वयं भी की है। इस ग्रन्थ में कवि ने ३१ वादों का वर्णन किया है। उनके नाम ये हैं—१ केश, २ बेनी ३ लीमंत ४ पाटी, ५ साध ६ भू, ७ मेघ ८ तारा ९ कर्क १० नासिका ११ कपोल १२ अक्षर, १३ दांत १४ विबुध, १५ सुख १६ शीता १७ भुजमूल, १८ ध्वज १९ धंगुली, २० कृष्ण २१ कुशाग्र २२ कुशाग्र २३ रोमावली २४ अक्षर, २५ नाभि २६ विवली, २७ शोणी २८ साड़ी २९ समस्त मूलन ३० संघवास तथा ३१ सकल-शरीर।

काव्य की दृष्टि से 'शिक्षानल' सुन्दर रचना है।

१ इति विधि वरणाहं सकल कवि अविरल इति धर्म धर्म।

कही यथावति वरणि कवि, कैलाश पाव प्रसन्न ॥

क मि० (वृत्त) मन्त्रीय, ५ १२ व १९ (पञ्चम्य)।

(४) छन्दमाता

केदार का पिगल-ग्रन्थ है जिसमें बर्णिक तथा माणिक दोनों प्रकार के छन्दों पर विचार किया गया है। केदार की दृष्टि यहाँ माणिक की अपेक्षा बर्णिक वृत्तों के विवेचन की ओर अधिक रही है। कारण स्वास्त यही कहा जा सकता है कि संस्कृत में बर्णिक वृत्तों का ही राज्य है माणिक वृत्तों का नहीं। इस ग्रन्थ की रचना भाषा-कवियों के लिए हो हुई थी^१।

ग्रन्थारम्भ मंत्रसाधन से होता है। इसके अनन्तर एकादशी छन्द से लेकर छत्तीस घसरी वाले छन्दों तक के सदाश-उदाहरण दिये गए हैं। फिर दण्डक के सामान्य सधन का उल्लेख है। केवल एक घनंगसेसर दण्डक के सधन-उदाहरण के साथ ही बर्णवृत्त का प्रकरण समाप्त हो गया है। इस ग्रन्थ में जिन बर्णिक वृत्तों के सदाश-उदाहरण मिलते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—

श्री नारायण रमण तरुमिवा मदन माया मासरी सोमराजी संकर विजोहा मंचान सलित्ता प्रमाणिका मस्मिका नयस्वरुपिणी मदनमोहन, बोकक पुर्वम नाय-स्वरुपिणी सोमर हरिणी धनुषगति सोमर संकुता धनुकुमा, सुपर्ण प्रपात इन्द्रवत्सा उषेन्द्रवत्सा मीनिकवाम बोटक सुन्दरी मोदक सुवर्णप्रपात तामरस इतहिसम्बित कुसुमविजिवा चन्द्रवत्सा मासरी बंधस्मरित प्रमिताधरा सन्धिनी पेरुववाटिका तारक, कमलस हरिणीला बसन्तविलका मनोरमा मासरी सुमित्र निशिपालिका तामर नाराच, मजहरन बह्यकपक कपमासा पुष्पी चंचरी कस्ता मूल कीटिका बर्ष भविरा विजय सुभा बसुबा माचरी, चन्द्रकला घमस कमल मकरंद मंमोदक लक्ष्मी विजया भवनमनोहर मामिनी हार तथा घनंगसेसर (७९)।

बर्णवृत्तों के पश्चात् ८४ छन्दों के नामों का उल्लेख मात्र है। सुरमाया ग्रहि (नाग) माया तथा नरमाया (पिगल) के विवरण के बाद कवि ने छन्दों के दो प्रकार बर्णवृत्त और कमा (माणिक) वृत्त का वर्णन किया है। इसके साथ यह भी बताया गया है कि छन्दोर्मय की परत भक्षणमात्र से ही हो जाती है। तदनन्तर माया प्रकरण है। यहाँ माया के २७ भेदों का नामोल्लेख कर शुक्लिनो तथा विज्याहा के सदाश दिये गए हैं। केदार ने साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि माया के अनेक भेद होते हैं^२। फिर 'दोहों' के २३ भेदों के नाम बतलाये गए हैं। 'दुष्ट दोहा' का उदाहरण भी दिया गया है^३। कवित्त जगुप्परी यत्ता नंद उस्ताम भेदोपमर्षो सहित पदपर (उप्यय) पङ्क्तिटिका धरिस, पादाकुसक राजसेनी नक्षत्री यथावती सोरठा कुण्डलिया ओडामन हाकनिका मधुनार, माभीर, हरिणीव धिन्नी हीर

१ माया कवि समुह के सभी विपरी छन्द गुणाद।

छन्दन की माता करी सोमन केसरदाह ॥

—अन्वयान्त केदारवरी) अं ३।

२ अङ्गनामा (विजयावरी) अं० १८।

३ यदी अं १३।

मदनमगोहर तथा मरहटा आदि छन्दों के सोपाहरण सधनों का निर्वेस कर प्रत्यक्ष प्राप्त हो जाता है। केसव के सम्पूर्ण छन्द विवेचन का आधार संस्कृत के 'भूत रत्नाकर' आदि विषय ग्रन्थ ही हैं और उसमें कोई गवीनता नहीं है। कुछ मिलाकर यह ग्रन्थ साधारण कोटि का है। हिन्दी का सप्रथम विमल-ग्रन्थ होने का बीरव इसे निःशङ्कोष दिया जा सकता है।

(३) रीतिकाव्य-ग्रंथों का काव्य पक्ष

'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' ग्रन्थ केसव की काव्य प्रतिभा एवं सद्बुद्धता के परिचायक हैं। इनमें जो स्फुट छन्द सदाहरण के रूप में आये हैं उन्हीं के आधार पर यही केसव के रीतिकाव्य-ग्रंथों के काव्य पक्ष पर विचार किया गया है।

(१) भावार्थजना

केसव को प्रकृत-काव्यों की अपेक्षा रीतिकाव्यों में मिल मिल मानव भावों के अभिव्यक्त करने में अधिक रुचनता मिली है। प्रेम का विश्वव्यापी प्रभाव है। मनुष्य ही नहीं, प्राणी-जगत् प्रेम से प्रभावित है। केसव ने भी अधिकांश स्फुट छन्दों में नायक-नायिका के प्रेम तथा विविध अवस्थाओं और परिस्थितियों में प्रतीत प्रेमिका के भावों की अभिव्यक्ति ही सुन्दर एवं मार्मिक व्यञ्जना की है। इन छन्दों में राधा अवतार गोपियाँ तथा रसराज कृष्ण आत्मजन के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

अस्तु, प्रेम धीरे-धीरे प्रकटित तथा पस्तवित होता है। कृष्ण के सीत रूप एवं गुणों के सम्बन्ध में सुनकर राधा उसके वर्चन क लिए लालायित हो उठती है। वर्चन तो मिल जाते हैं, किन्तु कृष्ण के रूप में उसका मन ऐसा ललसता है कि निकसे नहीं निकलता और निकसे भी कैसे कृष्ण की मोहिनी मूर्ति राधा के दिल में बस जा गई है—

सोई विनाय विनाय सखी इक बारक कालन आन बसये ।

जाने को केसव कालन से किछु हुरि नेननि मानि सिखाये ॥

साज के साज बरै रहु तब नेनन से नन हीं सों मिलाने ।

कैसे करी अब क्यों निकसों री हरेई हरे हिय में हुरि आये ॥

(२० प्रि० प्र० ४, वं० २१)

राधा, कृष्ण की रूप-माधुरी पर मुग्ध है, पर यह मोहिनी एकांगी नहीं है। कृष्ण भी राधा के रूप-लाभ्य पर मग्न हुआ बार-बार छोड़कर बल-बल भटकता फिटा है—

निपट कपट हुरि प्रेम को प्रकट कर

बीसी बिसे बसीकर कैसे उर आगिये ।

काम को प्रहरण कालना को हरण

काहु को संकरण सब जब आगिये ।

किधौ केसोराम मन मोहनी को भूपन है
 किधौ ब्रजवासनि को भूपसु ब्रजानिये ।
 सुगत ही छुद्दो घाम बन बन डोने स्याम
 राखे छैरी नाम के उखाटन मंत्र मानिये ।

(२ छि० प्र० ४ छं० २४)

नायिका सजीवी' भी इतनी है कि नायक को छिपकर देखने पर भी उसकी
 भाँसों में लज्जा छमाई ही रहती है—

बहिले लखि धारत धारतो देखि धरीक बसे धनधारहि न ।
 पुनि पौछ पुलावति सीँधि कुमेस धंगीसे में पाखे धंगीछन कैं ॥
 कहि केसव मेव ब्रजम सौ मीजि हते पर पाखे में धंजन ई ।
 बहुरे दुरि देखौ ती देखौ कहा छकि जाव ते सोचन लागे रहैं ॥

(२० छि०, प्र० ४, छं० ७)

सुकुमारता भी उसकी हूए बजें की ठहरी । क्यों के मार से ही जब उसकी
 कमर लचकी जाती है तो कुबों का भार ले वह किस प्रकार बस सकेगी—

बलिह वयों बग्नमुखि कुचनि के भार मये
 कचन को भार तें लचकि मक जाति है ॥

(५० छि० प्र० १४ छं० १०)

ऐसी सावध्यमयी नायिका पर भला नायक क्यों न मोहित हो ? कमल-
 दोनों मोर का प्रेम बढ़ता जाता है मोर दोनों ही 'मिसन' के लिए भिड़त हो उठते हैं ।
 इस प्रसंग में कचन ने नायक-नायिका क सीसा समित बिमल आदि विभिन्न हावों
 का बड़ा ही रोचक एवं सजीव वर्णन किया है । नायक के रूप में कृष्ण के 'ललित'
 हार का ठिक वर्णन कर जीविए ।

बपला पट मोर किरिठ सने मचवा धनु सोम बढ़ावत हैं ।
 भुनु पावत धावत वेष्ट बजावत मित्र मपुर लजावत हैं ॥
 पठि देखि भट्ट मरि सोचन जातक बिल की छाप बुझावत हैं ।
 मनपाम पनपन वेष्ट धरे सु बने बन ते बज धावत हैं ॥

(२० छि०, प्र० ६, छं० २६)

नायिका भी भी अत्येक चेष्टा कितनी स्वाभाविक है—

कोमल बिलस मन बिमला सी लखी साय
 कमला क्यों सीनेहाय बमत तनाल के ।
 नूपुर को घुनि लुनि भीरें कलहृतन के
 चौकि चौकि परे जाव बेदवा मरान के ।

कचन के भार कुबमारनि सङ्गुन भार

सचकि सचकि बात कथित्त बात के ।

हरै हरै बोलत बिलोकत हेरई हरै,

हरै हरै बसत हरत मन लाग के ॥

(१० छि०, प्र० ६, पं० २५)

✓ जब किसी से प्रेम हो जाता है और उससे मिलन नहीं हो पाता तो बड़ी विधिबिधी दशा हो जाती है। मन सदा उद्भ्रान्त सा रहता करता है। न तो खेद भाता है और न हँसी। संगीत की ध्वनि बाण के समान मयती है। न बदन पहनने की इच्छा होती है और न कोई शृंगार ही धक्का मयता है। प्रेमी से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएँ ही बचिकर मयती हैं। केसव के नायक कृष्ण की भी ऐसी ही दशा है—

ओलत न ओल कछु हाँसी न हँसत हरि

सुनत न पाव काम लाग जान सी बहै ।

ओड़त न खँवरन ओलत बिपँवरन सो

सम्बर क्यों खँवरारि-मुख बेह को बहै ॥

धुनिहू न सुँधै फूल फूल सुन कुम्हिसात,

पात, बात बीटा हूँ न बात काहुँ सों कहूँ ।

बानि बानि बान-मुख केसव बकौर लम,

बन्धनमुखी! बान ही के बिम्ब क्यों चितै यो ॥

(१० छि०, प्र० १४, पं० २)

बधा होते-होते हो जाती है यह कि—

पन ही पन सीतल होत सटीर, बिचारे कबै उपचार निहारें ।

ओ करिये तन बखन लखन चित कछु सुख सुख न धारें ॥

केसव काम सुनै समुने नहि बुझिय कीनहि को यह धारें ।

योग सियो कँ वियोग है काहुँ को लोय कहा इन रोपनि आरें ॥

(१० छि०, प्र० १२)

नायिका को भी न बोलना मुहता है और न देखना न हँसना धक्का मयता है और न देखना ही। प्रविष्टन उसका चित्त अभित-सा रहता है—

ओस्यो मुहाइ न ओस्यो हँस्यो प्रब देख्यो मुहाइ न कुन बह्यो सो ।

भोकी धौ बात सुने समुई न मनो मन काहुँ के मोह मड़ बी सो ॥

केसव हँसत यों घर में मनमुह भयो पूछ पूछ पड़यो सो ।

को करै साज बजावै को बीनहि बाको कछु चित्त बाव चढ़यो सो ॥

(१० छि०, प्र० ८, पं० २७)

नायक-नायिका के बीच कुछ भावभावतुल्य और परिहास भी प्रेम प्रवृत्ति का एक मनोहर रंग है। केसव के नायक कृष्ण भी कभी-कभी ऐसी छिड़-झड़ करते देखे

जाते हैं। एक बार कृष्ण एक गोपी को मार्ग में रोककर लड़े हो जाते हैं और उससे कहने लगते हैं कि 'बै बधि'। गोपी कृष्ण को बहो देना चाहती हुई भी देने से मना कर देती है और उसे 'बेधो न बधो तो डारि न बँहैं' इन शब्दों में विभजने समझी है। कृष्ण और गोपी के उत्तर प्रत्युत्तर को तनिक ध्यान से सुनिये और 'प्रम की रात' का आनन्द सीजिए—

बै बधि बीनो बधार हो केसव दान कहा धन मोस लै सँहैं ।
 बीनो बिना जू बँहै हो गई, न गई न गई घर ही फिरि जँहैं ॥
 गो हितु बँह कियो कजहो हितु बँह कियो घर नीको छुँ रेहैं ।
 बँह के घोरस बजुहुवी ग्रहो बेधो न बेधो ली डारि न बँहैं ॥

(२० प्रि० प्र० १५, पं० ६)

प्रम मायिका की अमरुंग सजिया भी विनोद-परिहास में शामिल हो जाती है। एक दिन की बात है कि कृष्ण स्त्री का बेध धारण कर जाते हैं। गोपियाँ सुरंग राधा के समीप जाकर कहती हैं कि महाजन से रति के प्रमान सुन्दर एवं रमणी साई है जो इस प्रकार पाठो है मार्गों स्वयं सराबरी बपारी हों। राधा उसे बुला जाने के लिए कहती है। उसके घाने पर राधा उससे धावरपूर्वक निमती है। इस क्षण को देखकर सभी गोपियाँ प्रितसिता कर हँस पड़ती हैं। राधा को छानने की गोपियों की वह मुक्ति मिचली ही है।

साई है एक महाजन से तिय पावत मार्गों गिरा जगु भारी ।
 सुन्दरता जगु काम की टागिनी बोलि कह्यो बुनवानु दुतारी ॥
 गोपि के ल्पाई गोपालहि वै जगुसाई पितो उठि तावर भारी ।
 केसव भँवत ही भरि शंक हँसी सब कोक वै गोप बुनारी ॥

(२० प्रि०, प्र० १५ पं० १६)

राधा के साथ हँसी-मजाक तो हो गया पर मना कृष्ण कैसे बच सकते हैं। एक गोपी घाती मटकी को तिर पर रखकर कुछ छाछ की छिटि मटकी पर डाले हुए सब मार्ग से होकर निकसती है वहाँ कृष्ण खड़े हैं। कृष्ण सुरंग घाने बढ़कर उस मटकी को तिर से उतार छिटि है। कृष्ण मटकी को घाती देखकर प्रितवाने से हो जाते हैं। उपर गोपी मुख पर प्रथम आसकर हँसने लगती है—

छाँव बाल गुनो इक मोहन को निकली बटुकी तिर री हलकै ।
 बुनि बधि सई सुनिये नतनाथ बहूँ बहूँ बुन करी दलकै ॥
 निकली पहि वैन हुते जहँ मोहन सीनो उतारि जवँ जलकै ।
 बटुकी घरी खान बिताई खे उत गार हँसी मुख प्रीतन वै ॥

(२० प्रि०, प्र० १५ पं० १७)

यदि हँसी में भी प्रेमी अपने प्रिय से कोई बटु बाध बहूँ देना है तो उसके हृदय पर बड़ा भारी घावात पहुँचता है। एक दिन कृष्ण हँसी में राधा से कह बँहते हैं कि बिपकी पिता ने अपने घर से निजाल दिया है वह उनके साथ प्रम किस प्रकार

मिमा सकेगी। यह सुनते ही उत्तर तो देना दूर रहा, राधा की भाँखों में प्रीतियों की चारा समझ भाठी है। छान्दवना देने पर भी भाभी रात्र तक उसका धिस करना बन्द नहीं हो पाता—

एक छमे इक पोषि सों केसव कँसहु हाँसि कि बात कही ।
 या कह तात कई तबि ताहि कहा हमसों रस रीति नहीं ॥
 को प्रति उत्तर देह सखी बृष प्रेसुन की बन्सी जम्ही ।
 घर लाय नई अकुलाय तक प्रविरसक सों हिलकी न रही ॥

(२० प्रि० प्र ६, अं ४४)

प्रेम पूर्ण स्वत्व चाहता है। प्रेमी को वह भी सह्य नहीं होता कि उसका प्रिय किसी धर्म से भी प्रेम करे। एक दिन की बात है कि एक गोपी हँसकर कृष्ण से कुछ पूछ रही है। सहसा कृष्ण के मुँह से किसी धर्म स्त्री का नाम निकल पड़ता है। बस फिर तो गोपी के हाव का पाग का बीड़ा ह्रस्व में घीर मुँह का मुँह में ही रह जाता है और आसुरराज्य (नाम के) शहरों के साथ ही उसकी भाँखों से प्रविरस प्रीतू बहने लग पड़ते हैं—

ब्रून्त ही वह गोपी गुपालहि आबु कहुँ हँसि के बुलबाबहि ।
 देते में कहुँ को नाम सखी कहि कँसे बी आह पयो बबनाबहि ॥
 जाति बबनाबहि ही बु बिरी भु रही मुच की मुच हाव की हाबहि ।
 आसुर हू जग प्रीक्षित है प्रेसुमा निरुसे अकरानि के सामहि ॥

(२० प्रि० प्र ६, अं ४५)

अपनी सखी के अंग पर नायक द्वारा किये गए रति-विश्रुतों को देखकर तो नायिका के हृदय में ऐसी आह उठती है कि उसे बरबस कहना ही पड़ता है कि 'नाह के नेह के मामिने' में अपनी छावा का भी विश्वास न करना चाहिए—

अंग अलि बरिये अंगियाज न आबु तें बीब न आवन बीब ।
 जानति हों बिय नाते सखीन के नाकहु को अंग छाव न बीब ॥
 बोरेहि बीब तें खेलन तेऊ लयी जगसों बिन्हें देखि क बीब ।
 नाह के नेह के मामिने आपनी बहिहु को पटतीति न बीब ॥

(२० प्रि० प्र १२ अं ४६)

किन्तु 'नाह के नेह के मामिने' में होता तो सबा से यही थाया कि—

आमु न हूँ बुकी बुच जाके हो ताहि कहा कबहुँ बुच बीब ।
 जा बिन और न मुहाइ न केगव ताहि मुहाइ भु ती सब बीब ।
 भाग बड़ी कु रबी तुम सों वह ती बिमलाइ कहुँ कहुँ बीब ।
 जो रिसियाइ तो बये मगावन तल्लो है बुच सिराइ तो बीब ।

(२० प्रि० प्र १२ अं ४७)

सीख तो सखी मिली पर परिस्थिति यही की कुछ और ही है—

शीतल हूँ हीतल तिहारे न बसत वह,

तुम न समत तिल ताको परताप निह ।

भायने को हीरा को पराये हाथ बजनाय
 ई के लो प्रकाय हाथ मैन ऐसो मन भेहु ॥
 ऐसे घर केगोराय तुम्हें ना प्रबन्ध बाहि ।
 बड़े बड़ लागी भागी मूँछ गुण भूखयो देहु ।
 मीनो मुख छाँयो छिन छन न छबीले लाग ।
 ऐसी लो नैबारि लो तुमहूँ निबाहो भेहु ॥

(२० छि० प्र० १३, अ० २६)

छबीले नाम को नेह निबाहने की सुझाई है वो यमुना के छट पर आ पहुँचते हैं धीर
 प्यारी का मन रख लेते हैं । प्यारी चित्त उठती है धीर उसका छाप मान सद्मान
 प्रस्नान में परिणत हो जाता है ।

गिरि गिरि छठि छठि रोज रोज साने कष्ट ।
 बीच बीच ग्यारे होत छवि प्यारी प्यारी लों ॥
 मायुत में प्रकुमाइ पाये पाये पाउरनि ।
 पाछी पाछी बातें कहूँ पाछी एक ह्यारी लों ॥
 मुनत मुहाइ सब शब्द पर न कहूँ ।
 केसोराइ की लोँ कुरें देखो मैं दुखारी लों ॥
 लरिणि ललुना छीर तरवर तर ठाढ़े ।
 तारो ई ई हंसु कुमार काण्ह प्यारी लों ॥

(२० छि० प्र० १४ अ० १४)

कमो-कमी लो नायिका ऐसी जल्दी है कि प्रिय के बार-बार मनाने पर भी
 नहीं मानती । पर भक्त में ऐसे धरने बिन्दु पर मन ही मन पछुताना
 पड़ता है—

बार बार बोले अब धोन्वी नाहि बासिदा तु
 बालक क्यों बोलिबे वो कत बिसतातु है ।
 क्यों क्यों पाई बरे लोँ लोँ पाइन लें पीन प्रयो
 होत कहा अब बिने मातन लोँ पातु है ॥
 बेसोदास सब छानि बियो हठ ही लोँ होत,
 ताहूँ छानि जिय जिये बिन बहा बातु है ।
 ऐसे प्यारी विष हो लोँ नायकी न मन्यायो तब
 ऐसी तोहि बुनिये तु पाये पदिनातु है ॥

(२० छि० प्र० ५ लो० १४)

अब नायिका बहुत मनाने पर भी नहीं मानती लो नायक भी बड़ होकर
 मान कर बैठता है । नायक वा कठ कर बसा जाना था कि नायिका के हृदय में
 पुनः प्रेम उमड़ पड़ता है धीर बहु म्मट धपमी एक गरती को नायक को मना लाने
 की चेष्टा है । सधी आकर नायक ने कहती है—

बारबार बरनी मैं तारत तारत नुकी
 बारलो ले देखि मुख, या रन में बोरिहू ।

तोमा के निहोरे ती निहारति न नेरु हू तु
 हारी हू निहोरि सब कहा केहू जोरिहू ॥
 सुख को निहोरो की न मायो सो भली करी न
 कैसोराय की सो तोहि जोउब मान मोरिहू ॥
 नाहू के निहोरे किन मानति निहोरत हू
 नेहू के निहोरे कोरि सोहि तु निहोरिहू ॥

(क० प्रि०, प्र० ८, छ० ४)

✓ प्रेम प्रसंग में अभिचार का भी धपना सहज है। अभिचार प्रेम परीक्षा की कसीटी है। कुस-कानि तथा मोर-बाज का तनिक भी ध्यान न करते हुए प्रेमिका का धपने प्रेमी से मिलने के लिए जाना उसके प्रवाह प्रेम का परिचायक है। कैसब की प्रेमाग्ध नायिका प्रिय से मिलने के लिए बसी जा रही है, उसे न तो 'बीपासों' में बैठे हुए बूढ़बनों की विन्ता है और न गली में केससे हुए बालकों भबवा घाटी-घाटी रिमों की।

पोप बड़े बड़े ॥३॥ अबाइन कैसब कोरि लभा अबमाहीं ।
 केसत बालक-बाज गलीन में बास बिसोकि-बिसोकि बिकाहीं ॥
 बावति जाति लुबाई कहूँ बिधि पू पुढ में पहिचानति छाहीं ।
 सब सो जानन काकि कहाँ बलि धुपत हूँ तोहि कि नाहीं ॥

(२ प्रि० प्र० ७ छ० ११)

✓ रात्रि का समय है। घाकाण में मेघ छाए हैं। चारों ओर धमकार का ही साम्राज्य है। प्रेमाग्ध नायिका ऊबड़-खाबड़ मार्ग में काँटों और कीच की सावरी हुई अकेली आई है। उसका साहस देखकर नायक भी अचिंत रह जाता है। धनदुष इस प्रकार बिना मुसामे धाकर नायिका ने नायक को मोल ले लिया है।

लौने हूँ मोल धनबोलें आई बान्यों मोह
 मोहि धनदयाम धनमाता बीति लवाई है ।
 देखो हूँ है कुछ जहाँ देखू न देखी परै,
 देखो कति बाड कोछो बामिनी बिबाई है ॥
 डंके नीचे बीच कीच कजकन पीड़ पन
 सज्जस गर्भव गति अति लुबलाई है ।
 भारी जयकारी निजि निषट अकेली तुम
 नाहीं प्राणनाथ साव प्रेम की लहाई है ॥

(२० प्रि० प्र० ७ छ० ११)

नायिका प्रेम-परीक्षा में अफन निकलती है और उसकी प्रिय से मिलने की फिर साव पूरी हो जाती है। सब देखने को दो घरीर हैं परन्तु दोनों के प्राण और मन एक हैं।

एक भति एक नति एक प्राण एक मन
 देखिबो को देखू है हूँ नैनन की जोरी की ।

(२० प्रि० प्र० १४, छ० २)

संयोग के अनन्तर वियोग प्रकृति का नियम है। परन्तु प्रेमी के लिए अपने प्रिय से बिछुड़ने की संभावना ही कितनी दुःखापिनी होती है इसका अनुभव उसे ही हो सकता है जिसने वियाग-पीड़ा को सहन किया है। केदार की नायिका का प्रिय प्रायः परदेश जा रहा है। बेचारी यह नहीं समझ पाती कि जाते समय अपने प्रिय से क्या कहे। यदि वह रहने को कहती है तो प्रभुता प्रकट होती है। यदि वह चले जाने को कहती है तो अप्रेम सूचित होता है। यदि कहती है कि जैसा पच्छा लमे वैसा करा तो स्वामीमत्ता प्रकट होती है। यदि कहती है कि अपने साथ ले चलो तो मोह भाव का निर्वाह करने का प्रयत्न प्रकट है। अतः ये वह अपने प्रिय से ही पूछती है कि उस सबसुर पर उसे क्या कहना चाहिए।

को हों कहों 'रहिये' तो प्रभुता प्रकट होती,
 'चलत' कहों तो हित हानि नाहि सहनो।
 भाई तो करहु तो उदास भाव प्राणनाथ
 'साथ ले चलहु' कहे सोरु साथ बहनो ॥
 केसरीदास की तो तुम तुमहु प्योले सात
 जाने ही जनत कोयै नाहीं राजा रहनो।
 सैतियै तिगयो सीस तुमही मुजान प्रिय,
 तुमहि चलत नीहि जंतो कछु कहनो ॥

(क० प्र० १० छ० २०)

इस पर भी नायक जना ही जाता है। काय बिचलता को ठहरो। वह फिर तो नायिका बिह्वल हो उठती है। भ्रमरी के समान वन-बीषिकाओं में भ्रमण करती फिरती है। जातकी के समान 'पी पी की रट लगाए रहती है। बर्फ के सद्गुण बहमा को देगकर चुप हो जाती है। मोर की ध्वनि गुनकर हथर-जपर छिप जाने का प्रयास करने लगती है।

भीरति ज्यो भगत रहत जनरोपिकान
 हसिति ज्यो मुकुस भूषातिका कहति है।
 बीड पोड रहत रहत चित जातकी ज्यो
 बाह चित बर्फ ज्यो चुर हूँ रहति है ॥
 हिरनो ज्यो हेरति न केसरि के जानन को
 नेका मुनि व्याली ज्यो बिमान ही कहति है।
 केनव बुद्धर काहु बिरह तिहारे ऐसी
 मुरति न रायिका की मुरति रहति है ॥

(१० प्र० १२ छ० १०)

प्रिय के वियोग में नायिका की व्यथना ही साक्षरणीय दशा हो गई है। प्राणों ने निरन्तर अनुपरात बहनी रहनी है। स्वार्थों के साथ ही रात्रि भी बहनी जा रही है मोर बाटे नहीं कटती। जमकी हँसी भी उड़ गई है। नीर बिजली की भाँति

सोभा के मिहोरे ती बिहारति न तेक हू तु
 हारी हैं मिहोरि सब कहा केहू कोरिहू ॥
 सुख की मिहोरो बी न भाग्यो सो मली करी न
 केओराय की सो तोहि कोउ माल मोरिहू ॥
 माह के मिहोरे किन जानति मिहोरत हू
 तेह के मिहोरे कोरि मोहि तु मिहोरिहू ॥

(क० प्रि०, प्र० ८, छ० ४०)

✓ प्रेम प्रसंग में अभिसार का भी धपना महत्त्व है। अभिसार प्रेम परीक्षा की कसीटी है। कुस-कानि तथा लोक-साज का समिक भी ध्यान न करते हुए प्रेमिका का अपने प्रेमी से मिलने के लिए जाना उसके प्रवाह प्रेम का परिचायक है। केशव की प्रेमान्व नायिका प्रिय से मिलने के लिए बची जा रही है, उसे न तो 'बीपासों' में बैठे हुए बुद्धजनों की विन्या है और न गली में खेलते हुए बालकों प्रवसा घाटी जाती स्त्रियों की।

बोप बड़े बड़े बीठे अपाहल केशव कोरि सभा प्रपणही ।
 खेलत बालक-बाल पलीन में बाल बिलोकि-बिलोकि बिकाही ॥
 आसति जाति सुपाई चहुँ बिधि पू पुठ में पहिचानति छाहीं ।
 अब सो जानन काकि कहाँ बसि सुम्नत हू कछु तोहि कि नाहीं ॥

(२० प्रि० प्र० ७ छ० १६)

✓ रात्रि का समय है। आकाश में मेघ जाए हैं। चारों ओर संस्कार का ही साजराज्य है। प्रेमोन्मत्त नायिका उन्मङ्ग-सावक मार्ग में कटों और कीच की सख्ती हुई भकेली घाई है। उसका साहस देखकर नामक भी पकित रह जाता है। वचमुच इस प्रकार बिना बुलाये आकर नायिका ने नामक की मोल से लिया है।

लोने हूँ मोल मनबोलें घाई जाग्यों मोह
 मोहि मनवमान प्रवमाना बीति स्वार्थ है ।
 देखो हूँ है कुछ जहाँ केहू न देखी परे,
 देखो कसि बाढ केसो बामिनी बिबाई है ॥
 ऊँचे नीचे बीच बीच कंकन पीढ़े पन
 साहस नयन बसि बसि भुजबाई है ।

भारी जवकारी निधि विपद भकेली तुम
 माहीं भाननाथ साज प्रेम जो सहार्थ है ॥

(२ प्रि० प्र० ७ छ० ११)

नायिका प्रेम-परीक्षा में सफल निकलती है और उसकी प्रिय से मिलने की फिर साज पूरी हो जाती है। भव देखने को वो घरीर है परन्तु दोनों के प्राण और मन एक है।

एक भति एक भति एक प्राण एक मन
 देखिबे को केहू है हूँ नगन को जोरी सी ।

(२० प्रि० प्र० १२, छ० ५)

संयोग के अनन्तर वियोग प्रकृति का नियम है। परन्तु प्रेमी के लिए अपने प्रिय से बिछड़ने की समाचना ही कितनी दुःखनायिनी होती है इसका अनुभव उसे ही हो सकता है जिसने वियोग-पीड़ा को सहन किया है। केदार को नायिका का प्रिय भाव परदेस का रहा है। बेचारी यह नहीं समझ पाती कि जाते समय अपने प्रिय से क्या कहे। यदि वह रहने को कहती है तो प्रभुता प्रकट होती है। यदि वह जाने जाने को कहती है तो अप्रेम सूचित होता है। यदि कहती है कि जैसा अच्छा सबेरे सा करो तो उदासीनता प्रकट होती है। यदि कहती है कि अपने साथ से जलो तो लोक भाव के निर्वाह करने का प्रयत्न जाता है। अतः मैं वह अपने प्रिय से ही पूछती है कि उस अवसर पर उसे क्या कहना चाहिए।

जो हूँ कहीं 'रहिये' तो प्रभुता प्रकट होती,
 'जसन' कहीं तो द्विज हानि नाहि रहने।
 'जाई' तो करतु' तो उदात्त भाव प्राप्तनाथ
 'साथ मैं जसतु' कैसे लोक लाज बहने॥
 केशोराय की सौ तुम सुनहु धीमेने जात
 जाने ही जनत जोय नहि राजा रहने।
 संसिद्धि सिद्धाधो सीख तुमही मुजान प्रिय
 तुमहि जसत मोहि जेतो कतु कहने॥

(क० प्रि० प्र० १० छ० २०)

इस पर भी नायक जमा ही जाता है। कार्य विवशता को ठहरो। इस फिर तो नायिका विह्वल हो उठती है। प्रमरी के समान बन-बीबिकाधों में प्रमथ करती फिरती है। जातकी के समान 'थी थी' की रट लगाए रहती है। चर्क के सदृश चन्द्रमा को देखकर चुप हो जाती है। मोर की ध्वनि सुनकर इधर-उधर छिय जाने का प्रयास करने लगती है।

मौरनि ज्यो जसत रहत बनबीबिकान
 हंसिनि ज्यो मुकुन मुखानिका बहति है।
 पीठ पीठ रटत रहत धित जातकी ज्यो
 जस धित चर्क ज्यो चुप हूँ रहति है॥
 हिरनी ज्यो हेरति न केदारि के जानन को
 केका मुनि ज्यो ज्यो विमान ही कहति है।
 केसर मुखर कागह बिरह सिहारे ऐसी
 मुरति न राविका की मुरति गहति है॥

(१० प्रि० प्र० ११ छ० १०)

प्रिय के विषय में नायिका की परम्परा ही खोजनीय बचा हो गई है। 'साँझों से निरन्तर प्रभुधारा बहती रहती है। बरानों के साथ ही रात्रि भी बड़ती या रही है धीरे-काटे नहीं कटती। उनकी हँसी भी उड़ गई है। नींद बिजली की भाँति

भगवान् को ही घाकर बली जाती है। पातकी के समान पीछ पीछ को रट गयी रहती है। शरीर प्रचण्ड ताप से तप रहा है।

मेह कि हूँ सक्ति प्राप्ति उसीसनि साथ निजा तु बिसासिनी बाड़ी।
हृष्टी गयी छड़ि हंसिनि क्यों अपसा सम भीह भई गति काड़ी ॥
भक्तिकि क्यों पिउ पीउ रबै बड़ी ताप तरंगिनी क्यों तन पाड़ी।
केसव जाकी बछा सुनि हौं प्रप प्राप्ति बिना रंग भगनि डाड़ी ॥

(क० प्रि० प्र० ८, छं० ४२)

नामिका की निरह-व्यथा दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। घोर सब तो यह बार-बार बौक बौक कर हसर उधर देखती है। पृथ्वी पर पाँव सड़कड़ाते हैं। घोर अपनी ही परछाईं देखकर डर सी जाती है। पूछते हैं कुछ घोर उत्तर देती है कुछ घोर ही। लग भर में ही यह सारी सुष-बुध भूल गई है। न तो उसे बुद्धि निकालने की चिन्ता है घोर न ब्रह्म सम्मानने की। ऐसा सनता है जैसे उसे किसी की नजर लय गई हो बाधु का प्रकोप हो गया हो धमका किसी ने कुछ बाधु-दोना कर दिया हो।

केसव बौकति सी बिसवै किति यी पर कैं तरकैं लकि प्राणी।
बुद्धिमै घोर कहै कुछ घोर सु घोर की घोर भई भल भाणी ॥
डीठि लगी किचौ बाइ लगी मन सुनि पर्यो कैं कर्यो कतु काणी ॥
बैय्य की बह की पठ की हरि प्राप्ति कष्ट सुनि राबिकैं माणी ॥

(र० प्रि० प्र० ८ छं० ४२)

उसकी बियोग-व्यथा तो यहाँ तक बढ़ जाती है कि सारा उपचार ही निम्नत्र जाता है।

सीसल समीर टारि अन्नचित्रिका निवारि,
केसवदास देते ही तो हरपु हिरासु है।
फूलन फेलाय डारि, फार डारि भगवार
चंदन को टारि बिल भोजुगो विरासु है ॥
गीर हीन गीन गुरमगो जीवै गीर ही वै
घोर के सिरके कष्टा मोरजु विरासु है।
पाई है ठै गीर किचौ योही उपचार करै,
आप को तो बाप्यो अप आपही विरासु है ॥

(क० प्रि० प्र० ९, छं० १८)

सखियाँ भी अनेक प्रकार से सान्त्वना दे देकर हार जाती हैं। पर उनकी धिखा उसके समझमें नहीं जाती। संघ में न जीमकर भस पड़ती है—

छठि बली जो न माने काहू की बलाह जाने।
मान सौ जो पहिचाने ताके पाइयसु है ॥
माके ती है प्राप्ति ही मिली कि गरि बाझै माई।
प्राप्ति मागे मेरी पासी मेह पाइयसु है ॥

(र० प्रि० प्र० ११ छं० १)

अपूर्वत विवेचन से स्पष्ट है कि केन्दव को शृंगार के सयोग तथा विनोद दोनों पक्षों के निकटन में पूर्ण सफलता मिली है। इनके छन्द शृंगाररस का विवर्ण करने वाले हिन्दी साहित्य के किसी भी कवि के छन्दों के समकक्ष रह ना सफल है। 'रतिविद्या' तथा 'कविविद्या' में इस प्रकार के छन्द बहुत से छन्द भरे पड़े हैं जो कवि की मूर्खदण्डिता तथा सहृदयता के द्योतक हैं। इन छन्दों की दृष्टि में रखत हुए कवि की हृदयहीन कृता उलट काय प्रत्यापन करना है। हाँ वहीं-वहीं कुछ छन्दों में दारुनीयता अवश्य आ गई है पर इससे लिए केन्दव को हीरोनी नहीं ठहराया जा सकता। यह बहुत कुछ समय तथा समाज का प्रभाव है जिसमें केन्दव हुए थे। प्रायः कोई भी सम्प्रदायी शृंगारी कवि इस दोष से अपने धार को सर्वथा बचा नहीं सका है। मोरों की लो बात हो क्या मूरदास जैसे महाकवि भी इस लोच की मद में किसी न किसी छन्द तक जा ही गए हैं।

(२) बर्णन

प्रकृति-वर्णन

केन्दव ने अपने ऐतिहास्य-ग्रन्थों में प्रकृति का उपयोग तीन कानों में किया है—(१) नामोन्मूलक दृष्टी के रूप में (२) उद्गीर्ण के रूप में तथा (३) धार्मिक-वर्णन के रूप में।

'कविविद्या' में कवि ने अधिकांश प्रकृति के दृश्यों अथवा पदार्थों के वर्णन में नामोन्मूलक वाली दृष्टी को अपनाया है। इसमें प्रायः सभी दृश्यों के वर्णन के अन्तर्गत उनसे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं के नाम दिये गए हैं। कवि के मन में किसी वस्तु का वर्णन करने में उल-आनि वगु, पक्षी वन वस्त्र सुन्दर सौन्दर्य, नदी नगर, पर्वत पहाड़ और वृक्षाव का वर्णन उपस्थित है (क० प्रि० प्र० ४ पृ० २)। अतः केन्दव ने इन वस्तुओं का केवल नामोन्मूलक ही किया है^१। इसी प्रकार नगर वर्णन में वन बाग पहाड़ पर्वत पक्षी के नामों का ही प्रयोग पद है^२।

१ दाटे दाटे घनन, बगुन बगु बानु, पगु
 बान सनमान धान बाहुन बखानिय।
 सान भोय भोय भाग बाय पय कपुन
 फूलनि फुलित फुलान फुल बाजिय।
 साजो पुटे सीरय सरित सब संसारिक,
 केसोदास पुरन पुरान, दुन पानिये।
 दो-जस ऐसे मङ्ग रामा राससिह नू से
 देगनि की मणि, मन्दिरा बाजिये।

—क प्रि० प्र० ४ पृ० १।

२ कहुंसाय बाग बन मानहु सुन्दर घन
 सोना की का घाता हुंसाभा सो सरित बर।

केसव ने वसन्त, शीघ्र, वर्षा और हेमन्त तथा चिदिरघाति यह ऋतुओं को क्रमशः शिव का समाज सबर-समुह कालिका शारदा विरहिणी और नारनारि (नारिका) के रूप में देखा है^१। ऋतुओं में होने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य का यहाँ पूर्वतया ध्यान ही है।

केसव ने धर्मकार के रूप में प्रकृति से स्वस-स्वस पर काम लिया है। वसन्त के समय 'वसन्तमुखी' युवतियों की उपमा कमल से होती हुए कवि कहता है—

केसोदास आस पास भँवर भँवर जल

केल में वसन्तमुखी जलज सी लोहिये।

(क० प्रि० प्र० ८, पं० १०)

नायिका के सुकुमार शरीर की उपमा कवि ने लहमहावी^२ मता से दी है—

काम ही की बुलही सी काके कुल उलही सु,

लहमही मलित मता सी मोल लोहिये।

(क० प्रि० प्र० २, पं० १०)

एक स्वस पर पोरस-वर्षावा नायिका और वपसा की भासा में साम्य देखते हुए कवि का कथन है—

वातुरी की भासा मानि वातुर झँ नवलाल

बाँये की सी भासा भासा डर डरभाइये।

(क० प्रि० प्र० १४, पं० १)

विरहिणी की नींद के क्षण भर के लिए या जाने और फिर जाने की उपमा के लिए कवि ने 'वपसा' को चुना है।

वपसा सम नींद भई नति काड़ी। (क० प्रि० प्र० ८, पं० ४२)

सोर्गों के बँवली चढ़ने पर नायक-नायिका की प्रीति के मुरझाने की उपमा कुहड़ की बतिया से देते हुए कवि कहता है—

प्रीत कुन्हेके की जैही जई सम, होति तुम्हें बँवुरी पसरोही॥

(क० प्रि० प्र० १०, पं० २)

इसी प्रकार नायक-नायिका की विरह-वधा के वर्णन तथा मान-मोचन के प्रसंग में कवि ने बहुत से स्वसों पर प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया है। केसव

ऊँचे ऊँचे घटनि पठाका घटि ऊँची बन,

कौणिक की कीन्ही गंगा बेसत तरल तर॥

भापने मुखनि धाम निम्नत मरेख और

बर बर देखित देखता से नारि नर।

केसोदास भास यहाँ केसव घट्ट ही को

बारिये नगर और ओरछा नगर पर।

—क प्रि० प्र० ७, पं० १।

१. क० प्रि० प्र० ७, पं० २८, २, २९, ३४, ३६ तथा ३८।

को बिरहिणी का पीतल वस्तुओं से उपचार हो रहा है। किन्तु उसका बिरह-दान कम होने के स्थान पर घीर भी बन्ना ही जाता है^१। राधा-कृष्ण के मान-भोवन के प्रसंग में भी कवि ने प्रकृति की वस्तुओं का उद्दीपन के रूप में उपयोग किया है^२।

केदार ने बारह मासों का वनन भासपासकार के अन्तर्मत किया है। प्रत्येक मास में कोई-न-कोई नायक पराये जाने के लिए तैयार बठा है। उसकी प्रेमिका विविध प्रकार की प्रकृति की उद्दीपक वस्तुओं का उत्तेजक कर उस बाने से रोक्ती है। केदार ने सारे बारहमास के प्रसंग में अनिच्छा प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया है जैसे बीज भास के वर्णन में^३।

विम्बप्राहृक स्वयंज प्रकृति वनन केदार के रौनिकार्यों में अनिच्छा नहीं पाया जाता। किन्तु फिर भी कुछ वर्णन ऐसे हैं जहाँ कदाव प्रकृति के स्वामाधिक एव

१ पीतल समोर टारि अम्बरनिका निवारि,

जपोबास ऐस ही तो हरप हिरणु है।

पूजन फौनाह बारि म्भारि बारि बनसार,

बनन को डारे बिस बौमुनो पिरातु है।

नीर हीन मोन मुरम्भाह बीरै नीर हावे

बीर के छिरीके कहा बीरन पिरातु है।

पाई है तें वीर कैंबों यों ही उपचार करै,

आपि को तो डाढो रंग आप ही सिरातु है।

—र० वि० प्र १ अ० १३ तथा क० वि० प्र ६ अ० १८ (अठारहवें)।

२ बननि को घोर मुनि मोरन के घोर मुनि

मुनि मुनि केदार बसान घाली गन को।

बामिनि बमक बेलि बीप की रिपति बैलि

बैल गुन सेज बैलि सदन मुमन को।

कुन्दम की बास बनसार की बुबास मये

पूजनि को बास मन पूजि के मिसन को।

हँसि-हँसि मिथे होऊ बनही मिलाय मान

दृष्टि मयो एक बार राबिका रवन को।

—क० वि० प्र १३, अ० १६ तथा र० वि० प्र १० अ० २०।

३ पूनी भठिवा सलित तरुपितर पूजे तरवर।

पूनी सरिता मुमग सरस पूजे सब सरवर॥

पूनी कामिनि बामरुन करि कंठनि पूजहि।

गुन सारो कून हँसै पूजि कोकिप बस कूजहि॥

कहि केदार ऐसी पूज मई पूजहि गुन न लाइये।

पिय धानु बनन की का बनी बिस न बँड बसाइये॥

—क० वि० प्र १ अ० २४।

सुन्दर बिना भी उपस्थित कर सके हैं। इस कवन के प्रमाणस्वरूप 'सावन' तथा 'मारो' के वर्णन प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सावन का कैसा सजीव रूप है^१।

वस्तु तथा बृहत्-वर्णन

कविप्रिया में केदार ने 'साधारण' घसकारों के अन्तर्गत अनेक वस्तुओं तथा बृहत्तों के वर्णन का विधान किया है परन्तु उनके अधिकृत वर्णन परम्परागत हैं। उनके सागर, धाधम आदि के वर्णन सुनी सुनाई बातों के आधार पर ही किए गए प्रक्षीत होते हैं। सागर को समूहों से घेरकर काशीर कल्प का नर, संत हृदय तथा नागरिक के कर्णों में देखा है^२। इसी प्रकार कवि ने धाधम का वर्णन भी बिना इसके परम्परा से जभी प्राची बातों के ही आधार पर किया है। प्रत्येक उसमें उसकी स्वाभाविकता तथा सजीवता नहीं पा पाई है। वह सिव का सदन बन कर ही रह गया है^३। परन्तु फिर भी इस प्रकार के छन्द देखने में आते हैं जहाँ कवि ने स्वाभाविक एवं यथावस्थ बिना उपस्थित किए हैं। ऐसे दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। कवि ने सेना-प्रयाण का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है। विभिन्नय के लिए प्रस्थान करती हुई राम की सेना का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

१ केदार सरिता सवन मिलत सागर मन मोहैं ।
ललित मठा मण्डात वन तन तरवर सोहैं ॥
रवि चपला मिमि मेघ चपल कमलत नहि धोरन ।
मन भावन कहैं जेहि भूमि कुवत मिस मोरन ॥
महि रीति रमन रमनी सकल साजे रमन रमावर्न ।
पिय वसन करन की को कहै गमन सुनिय नहि साधन ॥

—क प्रि म १ अं १८।

२ भूति विभूति पियूषहु की बिप ईस शरीर कि पाप बिपोहै ।
है बिचौ वैद्यक नश्यत को घर हैव अदेवन के मन मोहै ॥
सत हियो कि बसे हरि संतत घोम घनम्ल कहैं कवि को है ।
अम्बन नीर तरण तरंगित नामर कोऊ कि सागर सोहै ॥

—क प्रि ३ अं २१।

३ केदारनाथ मृगज बसेक जूरी बाबिनीन
बाटत सुरभि बाध बासक बदन है ।
सिंहन की सटा ऐंसे कलम करनि करि
सिंहन को घासन अर्ध को रदन है ।
कजी के फलनि पर नाचत सुखित मोर
अवे न विरोध नही मर न मरण है ।
बाबर फिरत जोरे जोरे भय तापसन,
आदि को निवास नीचो शिव को सदन है ।

—क प्रि० म० ७, अं २१।

नाद घुरि, घुरि घुरि, घुरि घन, घुरि गिरि
 सोख सोख जन घुरि,
 केसोरास घासपास ठौर ठौर राखि न
 तिमकी संपत्ति सब न
 जगजग जगजग, नत जगजग जगजग
 घमन को बीबिका घुम-
 घुमि सगुन सात, गुन निज घुमि न
 घाई नत बिधि बीति सेना रघुनाथ को ।

(क० प्रि० प्र० = उ० २४)

जग केसि का बिज भी किनुना यथातथ्य बन पड़ा है—

एक जगजगती ऐसी हुई हंसि हंस-जस
 एक हंसिनी सी बिसहार हिये रोहिजे ।
 भूपल विरस एक भेस बूझि बीचि-बीच
 मोन-मति-मोन, हीन उपमा न छोड़िये ॥
 ऐसे मत के के कंठ लागि बूझि बूझि सात
 जलदेवता सी दूग देवता विमोहिये ।
 केसोरास घासपास घेरन भेजत जन
 केनि में जगजगती जनन सी छोड़िये ॥

(क० प्रि०, प्र० = उ० १७)

नखलिख-वर्णन

देशक ने 'नखलिखा' में नखलिख वर्णन के अत्यन्त नायिका के भिन्न-भिन्न रूपों का बचन घनम-घनम कवित्त में किया है और प्रत्येक रूप के लिए संदेहासंकार के सहारे अनेक उपमानों का उल्लेख किया है। 'नखलिख' ग्रन्थ में श्री कवि ने इसी प्रथा की अनुसरण किया है। उनके अधिकांश उपमान परम्परागत हैं परन्तु कुछ उपमानों की सृष्टि उन्होंने स्वयं भी की है। उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिसका अर्थ-विशेष ॥ कोई सम्भव थाथा साम्य नहीं है जैसे बटि का 'मूठ की मिठाई' 'शाबु की मिठाई' स्याद की मिठाई' याचि घोडा का कवित्त रोति घारमटी साखि की 'मारटी' याचि थाथा बाणी का इन्दिरा के मन्दिर की मूर्ति उपमान देना। नखलिख वर्णन इस प्रकार के ही हैं परन्तु कुछ कवित्त ऐसे भी लिखे पढ़ते हैं जहाँ देशक के अर्थ-विशेष ने सोचने को पूर्वतया भ्रमसा किया है जैसे अथर थाथा कथ का वर्णन। कवि ने 'अथर' का बचन इस प्रकार किया है—

अथर अथर मति सुखि सुखा के घर
 कोमल घमल नत सुति छीनि सीनी है ।
 देशक सुगम्य मंदिरासपुल कोन काम
 बिदुम कठोर कटु बिम्ब मति होनी है ।

सुन्दर नि
'मारों'

सूक्ष्म सुरेस घति सुधी सुधी सविशेष
चतुर चतुरमुख रक्षा रक्षि कीनी है ।
भारों में गुह हरि नाह के मयन घति
पनि पनि शिमे कहूँ बिछा पनि बीनी है ।

(क० प्रि० (मूख) मकरिन्द्र, पं० १८)

केसव का सर्वांग-बचन भी कैसा स्वाभाविक है—

जन्म कैसे भाय मान मज्जुबी कमान ऐसी
मैन कैसे पंने सर मैननि बिलास है ।
नासिना सरोज गयबाह से सुगयबाह
बाप्यो से बज्ज कछो बिचुरी सो हस है ।
भाई ऐसी घीच कुज पान सो उबर अर,
पंकज से पांय घति हस की सी बास है ।
हैसी है पुपाल एक पोपिका में बेबता सी
छोने सो क्षरीर सब सोये की सो बास है ।

(क० प्रि० (मूख) मकरिन्द्र, पं० ८७)

(३) अस्कार-योजना

कविप्रिया

इस ग्रन्थ में केसव ने विधिष्ठातृकार के अन्तर्गत १७ प्रमुख अस्कारों का विवेचन करते हुए उनके उदाहरण दिए हैं। प्रायः सभी उदाहरण सुन्दर हैं। वहाँ कुछ उदाहरण पाठकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं।

'रूपकातिथयोक्ति' की सहायता से नायिका के अंगों की खोला का बचन करते हुए कवि कहता है—

छोने की एक लता तुलसी जन क्यों बरलों पुन बुद्धि लके जूँ ।
केसवदास मनोज मनोहर ताहि फसे फल श्रीफल से जूँ ॥
फूलि सरोज रङ्गो तिन ऊपर क्य विकल्पत जित जल जूँ ।
तापर एक सुखा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के हैं ॥

(क० प्रि०, पं० १३, पं० १८)

नायिका सखी से कहती है कि जो मैं कुल से हूँ कर बातें करती हूँ वो सब लोग मेरी हँसी करते हैं जो लज्जा को तिलांजलि दे उनकी ओर निहारती हूँ वो लोग मुझसे बूझा करते हैं कुछ बातें करती हूँ वो निन्दा होती है, जो उनकी छवि को मन में चारण करती हूँ वो नाम बान्धु होता है। इसी कारण मन में कोई चस्ताह नहीं होता। मोली-मासी नायिका का इस विषय का विवेचन 'अतिथयोक्ति' अस्कार के द्वारा बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है।

हँसि जोसत ही नु हँसि सब केसव मान भवावत लोक मय ।
कसु बात बलावत पैरु जने जन मानत ही मनमत्त जय ।

तलि तू बु कहि सु हुती मन मेरेहु जानि यहै न हियो जग ।
हरि त्यों दूक भीठि पसारत हो भगुरीन पसारन लोक लग ॥

(क० प्रि० प्र० १३, छं० ४०)

‘विभाषा’ प्रसंकार के सहारे केशव ने नायिका के सहज सौन्दर्य का भी बड़ा ही सजीव चित्रण किया है ।

पूरन बपूर पाग छाये कँसो मुखवास
अमर अबरु रवि सुपा सों सुपारे हूँ ।
विप्रित कपोल लोल लोचन मुकुर एन,
अमल अलक, अलकनि मोहि मारे हूँ ।
मूकटो कुटिल बँसो तँसो न करे हूँ होहि
साँझो एसी सोखें केधोराय हेरि हारे हूँ ।
काहे को सिंगार कँ विपारसि हूँ मेरो पासो
तेरे लग बिना हो सिंगार के सिपारे हूँ ।

(क० प्रि० प्र० ३, छं० १२)

केशव के राजकुमारों के रूप-वर्णन में ‘स्वभावोक्ति’ प्रसंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

वीरो वीरो पाट को विघोरी कटि केसोवास
वीरो वीरो पायें पय पोतिये पनहिर्पा ।
बड़े-बड़े मोतिन की माला बड़े बड़े नैन
मूकटो कुटिल नाभूँ नागही बपनहिर्पा,
बोलनि बलनि मुहुँ हँसनि बितोनि जाइ,
हेछत ही बन वे न कहत बर्न हिया ।
सरथु के तीर तीर खेनँ बारों रघुवीर,
हाय ॥ हँ तीर राती रातिर्यं पनुहिर्पा ।

(क० प्रि० प्र० २, छं० ६)

ऐसे उदाहरण ‘कविप्रिया’ में कम ही हैं जहाँ कवि की कल्पना अस्वाभाविक हो गई हो अथवा अमलकार प्रशसन की रचि से प्रेरित होकर उसने अमलकार-योजना की हो । ‘रसेप’ के सहारे उसने प्रवीणराय को रमा धारणा और सिखा बड़ी स बड़ी बैवियाँ तक बना दिया है (क० प्रि० प्र० १, छं० २८-३०) । पर केशव की ये कल्पनाएँ अस्वाभाविक हो गई हैं ।

शिक्षण

इस ग्रन्थ में नायिका के भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की योग्यता का वर्णन विमपत ‘संदेहात्मनार’ के सहारे किया गया है । उदाहरणार्थ कुर्बों का वर्णन है ।

किथी नल मनोमय हयकुम बेक्षियत,
उबलतें अपवत भुमा उठी दास के ।
किथी बल्लाक बुय किथी एकतास निरि
किथी पयक बेतफस किथी पल ताल के ।

॥ स्पर्शमु तंभु किन्हीं रहे घग-घंघ भिसि बंवल,
कलस किन्हीं काम नरपाल के ।
रोमाञ्जली एक भास कमल कोरक पुप,
किन्हीं उज्ज्व भोरनि कठोर कृच बाल के ।

(शिकनर, छं० २०)

कुछ स्वर्णों पर 'उपमा' 'रूपक' आदि प्रसङ्गों का भी प्रयोग हुआ है ।
यहाँ दो उदाहरण दिए जाते हैं ।

जीवन सरीवर के कीमम सिवारसून
कामतंत तुल मञ्जुल लंसे वार हैं ।
व्यामवरनी लुपीले कुंई वार हैं ॥

(शिकनर, छं० १)

उपमा पलक संवुट लोई साविधाम सिलासम
कमलवलि पर भीर से निहारे हैं ।
तली के तारे हैं ॥ (शिकनर, छं० ८)

रसिकप्रिया

इस ग्रन्थ में केदार ने उपमा रूपक उल्लेखा अपह्णति विभावता
विरोचोक्ति चन्देह स्वभावोक्ति अतिशयोक्ति पिटित व्याघात व्यस्तेज, समन्वय
समाहित आदि बहुत से प्रसङ्गों का प्रयोग किया है । अधिकोप स्वर्णों पर प्रसङ्ग
योजना स्वाभाविक एवं भाव और स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक ही हुई है ।
यहाँ कुछ छन्द प्रस्तुत किए जाते हैं ।

निम्नांकित छन्द में 'लल्लापकार' का बड़ा ही स्वाभाविक एवं सुन्दर प्रयोग
हुआ है । नायक को जाने में विवश हो गया है । नायिका प्रतीक्षा में है और निम्न
निम्न प्रकार की कल्पनाएँ कर रही है—

सुनि सुनि गई भुमये किन्हीं काहु कि भुलेह डोसत बाढ न बाई ।
भीत भये किन्हीं केवल काहु सों भेंट भई कोई भामिनि भाई ॥
आगत हैं भय बाइ भयो किन्हीं आनीहुये लखनी सुखदाई ।
भाये न नम्रकुमार बिचारि तु कीन बिचार सवार लपाई ॥

(२० प्रि० प्र० ७ छं० १)

निम्नलिखित छन्द में 'वन उषा कृष्ण का कँठा सुन्दर रूपक' का बड़ा ही—

अपला पठ मोर किरोट लती मधवा धनु सोन बड़ावत हैं ।
भुनु पावत आगत धनु बजावत मिम भपूर नचावत हैं ॥
उठि देखि भट्ट भरि लोचन बातक बित की ताप बुझावत हैं ।
धनवधाय धौ धन पैय धरे सु बने धन तें बज्र आवत हैं ॥

(२० प्रि० प्र० ६, छं० २६)

इसी प्रकार बह्मसाधय (समुद्र) और कृष्ण का भी 'रूपक' वर्णनीय है—

हे तबलाई तरपिन पुर धपूरम पुरम राग रंगे मय ।
 कैशवदास चाहाम मनोरम संधम बिभ्रम मूरि भरें मय ॥
 तर्क तरंग तरपित तु म तिमियल धूम बिशासनि दे अप ।
 काम्ह कटु कस्तुरामय हे सखि तें ही किये कस्तुरा वयलाअय ॥

(२० प्रि०, प्र० ११ अं० ६)

‘स्वभावोक्ति’ असंकार के सहारे नायक (कृष्ण) को देखकर राधा की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

भोरि भोरि बिस बितवत मूह भोरि भोरि
 कहे ते हँसत हिये हरत बड़ायो है ।
 केसोराय की सी लु जगन्नाति कहा बार बार
 बिसि काह मेरो मोर पार मोर पायो है ।
 ऐंड़ सौं ऐंड़ात अति अंचल उठात डर
 जपरि जपरि जात पात छवि ज्ञायो है ।
 फल फूल भेंटति रहति डर भूलि भूलि
 भुलि भुलि कहत कहु तें पाव पायो है ॥

(२० प्रि० प्र० १२ अं० ६)

नीचे सिधे छन्द में ‘स्वभावोक्ति’ असंकार के द्वारा कुतांगना की प्रत्येक क्रिया का भी बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है—

कोमल बिमल मन बिमला सी सखी साथ
 कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनास के ।
 मृपूर की ध्वनि सुनि मोरे कलहँसत रो,
 बौकि बौकि परे जाए सिद्धा मराल के ।
 कचन के भार कच भारनि सखुच भार,
 लचकि लचकि जात कटि तट बाल के ।
 हरे हरे मोलत विमोक्त होई हरे
 हरे हरे बलत हरत मन नास के ।

(२० प्रि० प्र० १ अं० २५)

श्री कृष्ण धीरे राधा मानसरोवर से स्नान करके बाहर निकल कर उसको किनारे हाथ में हाथ भिमाये सजे हैं । ‘उत्प्रेसासकार’ द्वारा उनकी उस समय की छवि का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

हरि रायिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सौं हाथ छिये ।
 प्रिय के सिर पाग प्रिया मुकताक्षर राजत मास बुहून छिये ॥
 कटि केसव काझणी बनेत कसे लख ही लख अंबन चित्र छिये ।
 निरुते जगु शीर समुद्र हो ते संग जीपति मानहुं श्रीहि लिये ॥

(२० प्रि० प्र० १ अं० १७)

कृष्ण ने राधा के मास पर मोरी से सटे मूँच की हैं धीरे मोतियों की मुहावनी

इ स्वयमुत्तम किर्तौ रहे रंग ग्रंथ मिलि मंगल
कलस किर्तौ काम नरपाल के ।
रोमाञ्चसी एक मास कमल कोरक पुन
किर्तौ उज्ज्वल शोरनि कठोर कुच जाल के ।

(मिस्तर, छं० २०)

कुछ स्वर्णों पर 'उपमा' 'रूपक' आदि धर्मकारों का भी प्रयोग हुआ है ।
यहाँ दो उदाहरण दिए जाते हैं ।

कोकन सरोवर के कोमल तिलारसुम
कामलत सुम मङ्गलसुम जैसे पार हैं ।
रामचरणी छबीले सुई बार हैं ॥

(मिस्तर, छं० १)

तथा पलक संयुक्त छोई सावित्रान विनात्म,
कमलवर्मनि पर भीर से निहारे हैं ।
तली के तारे हैं ॥ (मिस्तर छं० ८)

रसिकप्रिया

इस ग्रन्थ में केदार ने उपमा रूपक उत्प्रेक्षा ध्वङ्गति विभावना
विशेषोक्ति सन्देह, स्वभावोक्ति परिचयोक्ति विहित व्यापाठ, उल्लेख धनम्य
समाहित आदि बहुत से धर्मकारों का प्रयोग किया है । प्रबोध्य स्वर्णों पर धर्मकार
मोक्षार्ता स्वाभाविक एवं भाव भीर स्वस्व को स्पष्ट करने में सहायक हो गई है ।
यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं ।

निम्नांकित उदाहरण में 'संवेक्षणकार' का बड़ा ही स्वाभाविक एवं सुन्दर प्रयोग
हुआ है । नायक को जाने में निमग्न हो गया है । नायिका प्रतीक्षा में है और निम्न
निम्न प्रकार की कल्पनाएँ कर रही है—

सुनि सुनि यदि सुलये किर्तौ काहु कि भूलेह डोस्त जात न पाई ।
भीत भये किर्तौ केदार काहु सौ भेंट भई कोई भाविनि माई ॥
घाबत हैं जग साइ मयो किर्तौ धारहिजे सखनी सुखवाई ।
आये न नम्रकमार बिचारि सु कोन बिचार धमार ललाई ॥

(२० प्रि० प्र० ७ छं० ६)

निम्नलिखित उदाहरण में भगवत् कृष्ण का केंद्र सुन्दर रूपक वर्णन गया है—

अपला पट मोर किरौट लसै मधवा यनु झोज बड़ावत हैं ।
गुण पापत धावत येणु बजावत मिथ मयूर नधावत हैं ॥
छति देखि भद्र भरि लोचन जातक बिल की ताप बुझावत हैं ।
धनश्याम धने धन पैय परे सु बने धन तें ब्रज धावत हैं ॥

(२० प्रि० प्र० ९, छं० २६)

इसी प्रकार बङ्गालय (समुद्र) भीर कृष्ण का भी रूपक वर्णनीय है—

है तबलाई तरंगित पुर अपूरत पुरत राग रये पय ।
 केवलहास जहाज मनोरम सधम विधम भूरि भरें भय ॥
 तब तरंग तरंगित तु य तिमिपल सुत विसासनि के बय ।
 काहू कछु कसगुणम है सति तैं ही किये कहला बदलासय ॥

(२० प्रि० प्र० ११ पं० ६)

‘स्वभावोक्ति’ बरनकार के सहारे नायक (हृष्य) को देखकर राधा की
 चिन्ताओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

भोरि भोरि चित चितवत मुह भोरि भोरि,
 काहे ते हंसत हिये हरय बड़ावी है ।
 केसोराय की लीं तु बग्हाति कहा बार बार
 बिसि काहू भरी भोर भार भोर पायो है ।
 ऐंड़ सों ऐंड़त छति प्रंचल उठात उर
 छबि छबि भात पात छवि छायो है ।
 कम पूत नेंटति रहति उर भुनि भुनि
 भुनि भुनि कहत कछु तैं भाज पायो है ॥

(२० प्रि० प्र० ५ पं० ६)

नीचे लिखे छन्द में ‘स्वभावोक्ति’ बरनकार के द्वारा कुसुमिनी की प्रत्येक
 क्रिया का भी बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है—

कोयल बिमल मन बिमला सी सभी साथ,
 कमल क्यो लोने हाथ कमल सनात के ।
 मुरुर की ध्वनि सुनि भोरे कलहंसत के,
 चौकि चौकि परे चाप वेदुवा मरात के ।
 ककन के भार कृष भारनि सकष भार
 लबकि लबकि बात कहि तह मान के ।
 हरे हरे मोलत विसोकत हुरई हरे
 हरे हरे बसत हसत मन लाल के ।

(२० प्रि० प्र० ६ पं० २२)

श्री कृष्ण की राधा मायसरोवर से स्नान करके बाहर निकल कर उससे
 किनारे हाथ में हाथ मिलावे लड़े हैं । ‘उत्प्रेक्षाकार’ द्वारा उनकी उस समय की छवि
 का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

हरि राधिका मानसरोवर के तट छाये री हाथ सी हाथ दिये ।
 प्रिय के सिर पाय प्रिया मुकताधर राजत भात कुहें हिये ॥
 कटि केजव काकुभो बसै कसे सब ही तन बंधन बिय किये ।
 निकले कनु सीर सगुह ही ते तप थीबसि मानहुं मोहि लिये ॥

(२० प्रि० प्र० ६ पं० १७)

कृष्ण ने राधा के भाव पर बोरी से लटें मूँच की हैं सीर मोतियों की मुहावरी

इ स्वयंभु संभु किर्णों रहे संग-भग मिलि भवत
कलस किर्णों काम नरपाम के ।
रोमावली एक नास कमल कोरक गुण
किर्णों उज्ज्व औरनि कठोर कृष्ण भास के ।

(प्रियन्तव, छं० २०)

प्रछ स्वसों पर 'उपमा' 'रूपक' आदि प्रसंगों का भी प्रयोग हुआ है ।
यहाँ दो उदाहरण दिए जाते हैं ।

जीवन सरोवर के कोमल सिवारसून
कामतंत तुल मलतुल कंसे तार हैं ।
स्यामवरनी छपीने छूर्त बार हैं ॥

(प्रियन्तव, छं० १)

तथा पलक संकुट सोई साभिप्राय सिमासम,
कमलबननि पर भीर से निहारै हैं ।
तस्नी के तारे हैं ॥ (प्रियन्तव छं० ८)

रसिकप्रिया

इस ग्रन्थ में केशव ने उपमा रूपक चत्वेष्टा अपहृति विभावता
विधेयोक्ति सन्नेह, स्वमायोक्ति प्रत्ययोक्ति पिहित व्याघात, चस्नेक, प्रगन्ध
समाहित आदि बहुत से प्रसंगों का प्रयोग किया है । अधिकतर स्वसों पर प्रसंग
योजना स्वामादिक एवं भाव और स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक ही हुई है ।
यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं ।

निम्नांकित छन्द में 'संवेष्टाप्रकार' का बड़ा ही स्वामादिक एवं सुन्दर प्रयोग
हुआ है । नायक को जाने में विसम हो गया है । नायिका प्रतीक्षा में है और निम्न
निम्न प्रकार की कल्पनाएँ कर रही है—

सुनि सुनि गई भुलये किर्णों काहु कि जूतेह डोलत जात न बाई ।
भीत भये किर्णों केशव काहु सों मंद गई कोई भामिनि भाई ॥
आगत हैं मय आह गयो किर्णों आगहिने सजनी कृपवाई ।
आये न नम्रकुमार बिचारि तु कीन बिचार भवार सवाई ॥

(२० प्रि० प्र० ७ छं० १)

निम्नलिखित छन्द में धन तथा कृष्ण का कैंठा सुन्दर रूपक बोधा गया है—

बपला पट मोर किरिठ लसै मज्जा धनु सोन बड़ावत हैं ।
भुनु मावत आगत येण बजावत मित्र भपूर नचावत हैं ॥
फठि देखि भनु भरि सोन जातक बिस की टाप बुझावत हैं ।
धनदाम धने धन देय धरे कु बने धन सैं बज्र धावत हैं ॥

(२० प्रि० प्र० ९, छं० २९)

इसी प्रकार बरनामय (समुद्र) और कृष्ण का भी रूपक वर्णनीय है—

हैं तबलाई तरपिन पूर धपूरय पूरय राय रंते पय ।
केसवभास कहां मनोरय सभम बिभ्रम भूरि मरें भय ॥
तर्क तरंग तरपित नुय तिमियल सुल विद्यालनि के भय ।
काहू कछु कहरामय है सबि तैं हो किये कबला बटलासय ॥

(२० प्रि० प्र ११ अ० ६)

स्वभावोक्ति धनकार के सहारे नायक (कृष्ण) को देखकर राधा की
केष्टार्थों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

भोरि भोरि बिस वितपठ पुंह भोरि भोरि,
काहें से हैंसत सिये हरय बड़ायो है ।
केसोराय की सौं तु जम्हाति कहा बार बार
बिधि काहू मेरो वीर धार भोर धायो है ।
पेंड सों ऐंकात प्रति खचल जगत उर
उयरि उयरि जात गात धरि धायो है ।
कल कूल भेंटति रहति उर भूति भूति
भूति भूति कहत कछु तैं धाय पायो है ॥

(२० प्रि० प्र० १२ अ० ६)

नीचे लिखे छन्द में स्वभावोक्ति धनकार के द्वारा कुसुमिमा की प्रत्येक
क्रिया का भी बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है—

कोमल बिमल मन बिमला सी सरी साव
कमला ज्यों जीने हाय कमल सनास के ।
नूपुर की ध्वनि सुनि भोरे कलहसन के
जौकि सौंकि परे जाय किनुषा मराल के ।
रुचन के मार कृष मारनि सकृष मार
तबकि लज्जति जाय कटि तट धास के ।
हरै हरै बोलत बिसोका हरै हरै
हरै हरै बलत हरत मन लाल के ।

(२० प्रि० प्र० ६ अ० २५)

भी हृज्ज वीर राधा मानसरोवर से स्नान करके बाहर निकल कर उसके
किमारे हाथ में हाथ निभाये लड़े हैं । 'उत्प्रेक्षालकार द्वारा उनकी उस समय की छवि
का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सों हाथ दिये ।
प्रिय के सिर पाय प्रिया मुकटाधर राजत मान मुहूर्त दिये ॥
कटि केसाय कासनी ज्यैव कसे सब ही तन बँबल बिज दिये ।
निरुते बगु वीर समुद्र ही ते सय धीपति मानहुं मोहि लिये ॥

(२० प्रि० प्र० १ अ० १७)

कृष्ण ने राधा के भाव पर जोरी से लटें गुँथ ली हैं वीर मोतियों की मुहायनी

मड़ियाँ मेटका भी हैं । राधा सगहें ही दर्पण लेकर देख रही है । इस पर कवि उत्पन्ना करता है—

मान मुही नुन मास लहें लपटी भर मोतिन की सुखरेनी ।
ताहि बिलोकत भारसी लेकर धारस सो इक चारसनेनी ॥
केसव काय्हु बुरे बरसो परसी अपमा मति की प्रति पेनी ।
भूरजमण्डल में अग्नि मण्डल मध्य बसी जनु ताहि भिरेली ॥

(२० प्रि०, प्र० ४, अ० ८)

‘अपम विभावना’ यहाँ होती है जहाँ बिना कारण के ही काय सिद्ध हो जाता है । निम्नलिखित छन्द में कवि ने ‘विभावना’ का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है—

केसव सुखी बिलोचन सुखी बिलोकन को अचित्तोत्त सवाई ।
सुखियों बात सुन समझी कहि आनत सुखियों बात सवाई ॥
सुखी सु हाँसी सुबाकर सौं मुक ओष लई बसुबा की सुवाई ।
सूये स्वभाव सब सज्जनी बड सेस किये प्रति देखे कन्हवाई ॥

(२ प्रि०, प्र० २, अ० १)

पंचम विभावना तब होती है जब विच्छन्न कारण से कार्य की सिद्धि हो जाय ।

नीचे लिखा छन्द इस ‘विभावना’ का सराहरण है—

पाँह परेहु सैं भीतम त्यों कहि केसव क्योंहुँ न मैं बृष बीनी ।
तेरी सखी तिय सीखी न एकहु रोष ही की तिय सोख जु सीनी ॥
अंजन अब समीर सरोज जरै ब्रज देख भई सुख हीनी ।
मैं जलटी जू करो विधि भों कहूँ न्याइन हौं जलटी विधि कौनी ॥

(२० प्रि०, प्र० ७, अ० १५)

कारण क होते हुए भी काय की असिद्धि विशेषोक्ति का अंग है । यद्यपि निम्नलिखित छन्द में ‘विशेषोक्ति’ का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

बोली न हौं बे सुलाय रहे हरि पाँय परे अब ओमियो ओड़ी ।
केसव भेटवैं कौं मरि अरु कुड़ाइ रहे बरु हौं नहीं ओड़ी ॥
सीखे धिर्तबे कौं कोली कियो शिर बाप उठाइ अंगुल छोड़ी ।
मैं जर बिरत लठ्ठे बिरतयो न रही महुँ नैनन लाख निपोड़ी ॥

(२० प्रि०, प्र० ९, अ० २५)

निम्नलिखित छन्द में ‘अपह्नव’ का प्रयोग स्वाभाविक बन पड़ा है—

भीजन कैं बृषनागु समा यहैं बीठे हैं नब सब सुखकारी ।
धोय जमी बलबीर बिराजत आत बनाइ बिरी भिरिमारी ॥
रायिका भक्ति भरोजन हूँ कवि केसव रीति बिरे सु बिहारी ।
ओर मयो सकुचे समुझै हरबाहि कहुँ हरे लापि सुपारी ॥

(२० प्रि०, प्र० ६, अ० ५)

‘अपमा’ के द्वारा नायिका की घोषा का वर्णन करते हुए कवि का कवन है—

मैन ऐसी मन तन मृदुल मुखानिका के
 सुत ऐसो सुर बुनि मनहि हरति हैं ।
 बारों कंसो बीन बत पाति से भबल छोट
 केसोबास देखे बुन मानव भरति हैं ।
 पूरी मेरी तेरी मोहि भावत मलाई ताते
 ब्रूमत हों तोहि घर ब्रूमत डरति हैं ।
 माजन सी बीन मुख कंक सो कूबरि कहुं
 काठ सी कठेरी बात कहे निकरति हैं ।

(२० प्रि० प्र० १२ छ० १४)

नामिका के सभी वग अनुपम हैं। कवि का कथन है कि उनकी उपमा के लिए वे ही कहे जा सकते हैं—

जो कहीं केजव सोम सरोज सुधा सुर भुवनि देह बहे हैं ।
 शक्ति के कम भीरुन बिजुन हाटक कोरिण कष्ट सहे हैं ॥
 कोंक कपोल करी सहि केसरि कोकिल कीर कुबोल कहे हैं ।
 अंग अनुपम वा तिय के उनको उपमा कहुं कैई रहे हैं ॥

(२० प्रि० प्र० ५ छ० २४)

समाहित धर्मकार वहाँ होता है वहाँ सहसा धर्म कार्यों के जा पड़ने से कार्यविष्ट हो जाय। निम्नलिखित छन्द में 'समाहित' धर्मकार के द्वारा राजा धीर रूप का विमल करारा गया है—

छवि लों छबीली कवमान की कूबरि धामु,
 रही ठुठी रूपमव मानमव छकि कै ।
 माधु तै तुनुमार लख के कमल साहि
 धाये री मनामन समान सब नकि कै ।
 होत होत सोहँ करि करि पाय परि परि,
 केसोबास की सी बब रही निध नकि कै ।
 साहि समैं उठे धन धोर नामिनी ली धाई
 उर लायि धनध्याम तन सों लपकि कै ।

(२० प्रि० प्र० ६, छ० २५)

का कथन है—

केजव कूबरि भुवमान की कूबरि बन—
 देवता क्यों बन उपवन बिहरति हैं ।
 कमला क्यों फिर न रहति कहुँ एक ठीर,
 कमलानुजा क्यों कमलनि से डरति हैं ।
 काली क्यों न देवकी के पूम लूँगे सीता नूँ क्यों
 निमित्तकर मुख बंध देखि ही भरति हैं ।

बनन छपारत ही मनन सुयोधन हो
 औपरी क्यों नाझे मुख तेरोई रहति है।

(१० प्रि०, प्र० ११, वं० १६)

‘रसिकप्रिया’ में कुछ स्वसों पर धर्मेकारों का प्रयोग मात्र और स्वस्य को स्पष्ट करने में सहायक न बनकर एक खिलवाड़-सा भी बन गया है। एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। अमोभिक्षित छन्द में ‘प्रतिघयोन्नि’ धर्मेकार के द्वारा केसव ने जो प्रेमसारिका मायिका का बचन किया है वह अस्वामाधिक हो गया है—

उरमस्त उरम जपत भरलनि फलि,
 देखत विविध निक्षिपर बिलि चारि के।
 यमस न भागत सुसलवार बरपत
 भिन्नीपव घोष निरबोप बलचारि के।
 बालति न भूषण विरत पठ काठस न
 कंठक छटक उर उरम उचारि के।
 प्रेतनी की पूछे नारि कौन येतें सीस्यो यह,
 घोष कैंछो छार समितार समितारि के।

(१० प्रि० प्र० ७, वं० १२)

किन्तु इस प्रकार के छन्द कम ही हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केसव के रीतिकाम्य ग्रन्थों में प्रेमिकाय स्वसों पर धर्मेकारों का प्रयोग मात्र प्रयोजना का उत्कर्ष-साधन तथा स्वस्य को स्पष्ट करने के लिए ही हुआ है। ऐसे स्वस बहुत ही कम हैं, जहाँ कवि की धर्मेकार प्रयोजना अस्वामाधिक हो गई हो।

(४) छन्द

‘छन्दमासा’ ग्रन्थ में बिन अन्धों का विवेचन हुआ है जगका उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। अतएव यहाँ इस ग्रन्थ पर विचार नहीं किया गया है। ‘रसिक-प्रिया’ ‘कविप्रिया’ तथा ‘खिलनक’ पर ही क्रमशः विचार किया गया है। केसव ने बिन मायिक एवं नयिक वृत्तों का प्रयोग उपर्युक्त ग्रन्थों में किया है, वे नीचे दिए जाते हैं—

रसिकप्रिया

मायिक (१) छपय, (२) दोहा और (३) सर्वदा।

नयिक (१) कवित्त।

कविप्रिया

मायिक (१) दोहा (२) सर्वदा (३) छपय (४) रोसा (५) बीपाई,

(६) सोरठा, (७) पद्यावती और (८) मरहटा।

नयिक (१) कवित्त, (२) प्रमायिका और (३) लीटक।

शिक्षनख

बलिष्ठ (१) कवित्त ।

‘कविप्रिया’ तथा ‘रसिकप्रिया’ सत्य-ग्रन्थ हैं। इसलिये इनमें अविश्वस्योक्त कवित्त और सर्वथा का ही प्रयोग किया गया है। सत्यग्रन्थों में और उदाहरण कवित्त अथवा सर्वथा में दिए गए हैं। ‘शिक्षनख’ में कवित्त का प्रयोग हुआ है। ‘रसिकप्रिया’ में केवल एक बार मंथनाचरण में छन्द का प्रयोग किया गया है। ‘कविप्रिया’ में कवित्त और सर्वथा के अतिरिक्त छन्दय रोसा सोरठा आदि कुछ अन्य छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। इस ग्रन्थ में शिक्षासोपासकार के अन्तर्गत बारहमासे का वर्णन बारह छन्दों में हुआ है। इसी प्रकार विवाहकार के अन्तर्गत उत्तर’ अक्षरकार के विभिन्न भवों के उदाहरण के लिए तीन बार छन्दय एक बार रोसा और एक बार सोरठा का प्रयोग किया गया है। ‘यमक’ के अर्थ ‘दुःखकर’ का एक उदाहरण प्रामाणिक (न र, स य) एक चौबोला (प्रत्येक चरण में १३ मात्राएँ, अन्त में स य) और एक चौपाई में दिया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि केदार ने अपने रीतिकार्यों में कुछ चुने हुए छन्दों का प्रयोग किया है। प्रायः ऐसे ही छन्दों का उपयोग किया गया है जो मात्र अथवा रस विषय के लिए उपयुक्त होते हैं। ‘सर्वथा’ छन्द में अंगार, कवच तथा आम्बर अथवा प्रामाणिक प्रमाणोत्पादक हो जाते हैं। केदार ने इन रसों के लिए प्रायः ‘सर्वथा’ का ही प्रयोग किया है। कहीं-कहीं अंगार रस के लिए ‘कवित्त’ अथवा ‘छन्दय’ का भी प्रयोग हुआ है। रसानुक्रम कुछ अन्य नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।

रसानुक्रम छन्द :

अंगार रस

सर्वथा

- १ हाथ बझो कजनाय सुधावही छुटि गई बुर बीरजताई ।
पान भय मुख मैन रची रचि आरती बेकि कहीं यह ठाई ॥
- २ परिरम्भन मोहन को मन भीहि लियो सबनो मुखवाई ।
साज दीपल कपोल रवराज तैं रिये ते भूखानि खाई ।

(५ प्रि० प्र० १३ अं ४१)

- ३ सोंह को शोच संशोच न पांच को ओलत बाहु भये कर खोरी ।
बंभन बचकताई रचि रति मैनन के संग खोरति खोरी ॥
- साज करै न करै हित हासि तैं पानि घरे भिय जानि कि भीरी ।
भाहिनै केसव घाक जिहूँ बकि के तिन से बुझई मुख खोरी ॥

(१० प्रि०, प्र० २, अ० १७)

तथा : १ तोरि तनो ठकठोरि कपोलनि खोरि रहे कर लीन न रहौगी ।
बान खवाय सुधावर पान की पाय गहे तस ही न पहीगी ॥

केशव बुद्ध सबै सहिहीं मुख बुझि जौ यह पै न सहिंभी ।
 के मुख बुझन है फिरि मोहि कि आपनि जाय सौं जाय कहीनी ॥

(क० प्रि प्र० ३, श्ल० १३)

कवित्त

केलत ॥ सतरंज प्रसिन्न में आपहि से
 तही हरि जाय किनीं काहु के जोलाए री ।
 जाने मिसि केलन मिले के मन हुरें हुरें
 केन जाने बानें आपु धामु मन भाये री ।
 उठि बठि गई भित भितही जितहि ठित
 केशवदास की सौं बीच रहे छवि छाय री ।
 जोकि जोकि तेहि जन राखानु के मेरी आत्मी
 जलज से लोचन जलर से हूँ धाये री ।

(क० प्रि० प्र १२ श्ल ३)

छप्पय

लोक नाथ लजि राख रंक निरसक बिराजत ।
 जोइ नाथत सोइ कहत करत पुनि हास न लाजत ॥
 घर घर बुझती बुझन जोर गहि यांठिन जोरहि ।
 बसन छीनि मुख नांकि आपि लोचन सिन लोरहि ॥
 पदबास सुवास प्रकास बड़ि सुखमयस सब मखिये ।
 कह केशवदास बिनास निधि फाचन का पुन छविसे ॥

(क० प्रि०, प्र० १० श्ल १५)

काव्य रस

सर्वथा

१ मैं पठई मति तेन लखी तु रही मिसि को भित्तिये कहूँ धाने ।
 जाय मिले दिन ही बुध-भूत बजल सो देहवशा न बजाले ॥
 प्रेरत पैच किये सन प्राणनि योग के खीर प्रयोग निजाने ।
 नाथ ते बोध न पाऊँ न केशव ऐसे ही कोऊ कहा बुझ जाये ॥

(२० प्रि प्र ११ श्ल० १)

उपा २ तु करिहूँ कवि सौं कहि गीनहि नम्र कुमार तो धीन छिपीई ।
 मोहि गहा बर तो उर को न रही लखि मैं भिन केनो निपीई ॥
 देसी न बुझिये केशव तोहि बिचारै नु बीच बिचार विपीई ।
 तेरे ही बीच बिये जिनको जिय है जिय ता भिन लुख विपीई ॥

(२० प्रि० प्र० ११, श्ल० ५)

धाम्नी रस

धर्मिया १

हाथी न सापो न बोरे न बैरे न गांव न ठांव को नाम बिसैंहैं ।
तात न मात न मित्र न पुत्र न वित्त न संगहैं संग न रैंहैं ।
केदार काम को 'राम' बिसारात धीर निकाम न कमहि ऐहैं ।
बेत रे बेत धनों बित धनार धनक लोठ धनेमहि अहैं ॥

(क० छि० प्र० ६ पं० १६)

धर्म-सम्बन्धी कुछ श्लोक

धर्म में धर्म-सम्बन्धी कुछ श्लोकों का भी उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होना । केदार के श्लोकों तथा धर्मियों में कहीं-कहीं यतिभंग श्लोक देखने में आता है जैसे

१ राजराज संघ ईश द्विज-राज राज सनमान
विप विपवर धन सुरसरी विप विषम न डर जान ॥

(क० छि० प्र० ११ पं० २६)

२ छोमे कैंसी शोयी वेइ लुभा सों लुभारी पांड ।
बारी बेबलोक तैं कि छिन्नु तै जवारी सी ।

(१० छि० प्र० १२ पं० ४)

तथा ३ अदिलोकन आलाप परि रंजन नखरन बान ।
बुबनाहि उड़ीप थे, मर्हण परत प्रथान ॥

(१० छि०, प्र० ६ पं० ७)

(५) भाषा

(क) सामान्य

केदार के रीतिकाम्यों की भाषा भी ब्रजभाषा है जिस पर अवधी की अपेक्षा संस्कृत और दुर्बलकाशी का प्रभाव अधिक है । केदारदास संस्कृत के तो विद्वान् थे ही इस कारण उनके रीतिकाम्यों में भी संस्कृत शब्दों का उत्तम रूप में प्रचुर प्रयोग हुआ है किन्तु उसभा नहीं जितना 'रामचरित' में । उदाहरणार्थ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं जिनमें इटीलित में दिये शब्द उत्तम रूप में पाये हैं—

इति कर मंडन सफळ हुब खंडन
मुकुट महि मंडन के कहत असगड मति ।

— — —
सौंदर सुगोदर दिनेश के मित्र अति ।

(क० छि०, प्र० ६, पं० ५)

नारायण कौन्ही मन उर अवरात मनि,
कमला की बाली मनि होना शुभ साव है ।

केवल सुरभि केरु शारदा सुदेश नेत्र,
नारद को उपदेश निरुद्ध विचार है।

(क० प्रि०, प्र० ५, अ० १२)

निर्वेम्ब्या मूलक देहपारी भवर्ग संहारक धर्मपाटी।

(अ० मा० उपेन्द्रभूषा का उदाहरण)

मनु मार्गों अग्नि कंक लिये।

(२० प्रि०, प्र० १, अ० २०)

हृतायन में अन्न आसन कीये।

(वही वही, अ० २२)

सकल सुपुष्टि अथार मनु हस्त वास शुचि जग।

अमल अक्षोम अन्नमयुक्त, पश्चिमी हस्तक रत्न ॥

(वही, प्र० ३, अ० १)

तथा महि भोविनी कव्य विधि मदिमा कवि करी
मन्त्र मन्त्र सिद्धि प्रेम की पद्धति पुरी।

(शिकनर, अ० ११)

संस्कृत की व्याख्या की जाय केवल की भाषा में संस्कृत का अनुशासन भी पाया जाता है। वसति^१ निर्वेम्ब्या^२ सीप्तेन^३ अनेकपा^४ आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं। परन्तु ऐसे प्रयोग केवल के रीतिकार्यों में बहुत हैं। कम हैं।

बेसी अनुशासन

दो-एक स्वर्णों पर केवल ने कुछ संस्कृत के शब्दों को भाषा की प्रकृति के अनुसार बदल भी लिया है। जैसे

जहाँ स्वर्ण प्रवेष्टिने अन्न एक ही अर्थ।

(क० प्रि० प्र० १४, अ० २२)

प्रथम प्रवेष्टिने अन्न द्विजराज अर्थ ॥

(वही, प्र० ११, अ० ४)

परन्तु इस प्रकार के प्रयोग भी कम ही हैं।

बुन्देलखण्डी शब्द

बुन्देलखण्ड का निवासी होने के कारण उनके रीतिकार्यों में बुन्देलखण्डी भाषा के शब्द भी स्थान स्थान पर दिखाई देते हैं यथा

अन्न जो के जहाँ कोय वेय परिवेष जैसो।

(क० प्रि०, प्र० ७, अ० २७)

कारिक कात न बारिय।

(वही, प्र० ३, अ० ४६)

जौकि जौकि परी जाव पैदुवा मराल के।

(२० प्रि०, प्र० १, अ० २१)

भौन मौहरी हूँ भारे भय अवरैलिये ॥

(क० प्रि० प्र० १, अ० १६)

१ २० प्रि० प्र० १४, अ० २२।

२ अनेकपा उपेन्द्रभूषा उन्न का उदाहरण।

३ वही सर्वप्रथम अन्न का उदाहरण।

४ वही, उपेन्द्रभूषा उन्न संस्कृतित अन्न का उदाहरण।

कीरो कियो धाँखिन के ऊपर छियाप्रबो (क० छि०, प्र० १०, पं० ८)
 जरबसी जर में न जानिनी ।
 बाहु बासिहों को बाहि ~~क~~ बहिचाभिनी । (२० छि० प्र० ५, पं० १८)
 बभन ज्यों कंचनि क्यो हूँ कीरे । (बही, प्र० ८, पं० ३४)
 पायन को परिबो अपवान अनेक सो केशव पान मनीबो ।
 (बही प्र० ६, पं० २२)
 मैननि ही भिक्षिबो करिये । (बही, प्र० ९, पं० १०)
 तैहि सखि समरे संग बाके । (बही, प्र० ८, पं० २०)

निखिवा ज्जोष्ट बाँके अघुल जराव जरी ।
 जैरि लुमीली घुल बंटिका की कासिका ॥
 मूदरी जबार पोरी ककन बलय चुरी ।
 कंठ कंठमास हार पहिरे गुपानिका ॥
 बैसोफूल जोशफूल कर्णफूल पायफूल ।
 छुटिखा सिलक नकमोती सोहै बासिका ॥
 केसोबास भीनबासा ज्योति नगमयि रही,
 बेहकरी ज्याम सय मानो दीपवासिका ।

(क० छि० मूल नखसिद्ध पं० ८८)

सी को दुब के बँसु कीरे । (पं० मा०, माकली का उदाहरण)
 जोखि जेसो पान तोहि करत समार बोई । (२० छि० प्र० ७ पं० ६)

अबधी छन्द

केदार के रीतिकाम्यों में अबधी के छन्दों का प्रयोग कम हुआ है । कुछ छन्द निर्माकृत हैं—

प्ये परै मनुहार करे । (२० छि० प्र० ३ पं० २७)
 आबो सेज खेज रही नग्ननाल । (बही, प्र० ५, पं० २६)
 छुटि मई नम्र यहि माह के । (बही, प्र० ५, पं० ३२)
 होपरी ज्यों नखें मुल तेरोई रखि है । (बही, प्र० १९ पं० १६)
 ऐसी आरि राज काम को कुमारी सी । (बही, प्र० १२, पं० ४)

विदेही छन्द

रीतिकाम्यों में अरबी-अरसी विदेही मापा के छन्दों का बड़ा ही विरल प्रयोग हुआ है, पर जहाँ भी हुआ है, हुआ है सम्भव रूप में ही । केदार द्वारा प्रयुक्त इस प्रकार के कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं ।

मुगल बचल बभरीस एक ईस को । (क० छि० प्र० ६, पं० १७)
 निज दूत समूत जरा के कियो बभरीसी जुरा अनु आपन के ।
 (क० छि० प्र० ५, पं० १४)
 केन आरु को तो पत है । (क० छि०, प्र० ६, पं० २७)

कहि केदार सब म्याद को पाँचि । (क० प्रि०, प्र० १, श्ल० १०)
म्यारो ॥ गुमान नग जीवनि के मामिपत ।

(बही, प्र० १४ श्ल० २५)
दीरघाह असमेम के ऊर सानी समर । (क० प्रि० प्र० १, श्ल० २०)

मख्युठ के भूल भुनावत केसव । (१० प्रि० प्र० १ श्ल० २०)

जानत सकल मदान । (बही, बही, श्ल० ५)

जहाँ तहाँ शेर मारी । (बही, प्र० १ श्ल० १२)

बिघी महराम मुख सुधाधर नाम की । (विष्णुनाम, श्ल० ९)

पड़े हुए शब्द

केदार ने कहीं-कहीं मये बड़े हुए शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे नीचे दिये हुए उदाहरणों में इटलिवस में दिए शब्द

मान मुचमन बाठ ठवि, कहिये और प्रसंग ।

(१० प्रि० प्र० १० श्ल० २०)

जो कहीं बड़े मये बिससाव ।

(बही, प्र० = श्ल० १२)

किन्तु ऐसे प्रयोग बहुत ही कम हैं ।

(ख) सौष्ठव

भाषा को आकर्षक एवं रोचक बनाने के लिए कवि सुहावरों और लोकोक्तिों का सहारा लिया करते हैं । केदार के ऐतिहास्य सुहावरों से भरे पड़े ॥ पर लोकोक्तियों का प्रयोग उनमें कम हुआ है । कविप्रिया की ध्येया 'रसिकप्रिया' में सुहावरों तथा लोकोक्तियों की कहीं अच्छी बहारा है और वे जो-एक स्वर्णों को छोड़कर सर्वत्र वाच्य का सहज एवं मनकर ही प्रयुक्त हुए हैं । कुछ सुहावरे और लोकोक्तियाँ नीचे भी जाती हैं

सुहावरे

तिहारी बिलोकन में बिस बीस बिसै है । (१० प्रि०, प्र० २, श्ल० २)

हंसत कहत बात पून से मरत है । (बही, प्र० ३, श्ल० ४)

है हरि जगदू गड हठाये । (बही, प्र० २, श्ल० ११)

रेख नहीं कबहूँ भवि आसिनि । (बही, प्र० ८, श्ल० ११)

काको घर भासिये की बसे कहीं प्रमदयाम । (बही, प्र० ७ श्ल० १०)

प्रब जो सु मुख मोरि है । (बही, प्र० ८, श्ल० १८)

जैन न लग्याइने कु सागे कुच पाइयो । (क० प्रि० प्र० १० श्ल० ८)

मारनहार...सब के तिर ऊपर हरय । (बही, प्र० ११, श्ल० १४)

लालु बात जकायत नैव नही (यैक बली—कुन्दलचण्डी) ।

(बही, प्र० १३, श्ल० ४०)

भीहन की होका होभी झू बर्य । (क० प्रि० प्र० १२ अ० २१)
 मिथिदिन मिथिब मिथिब मिथि बात, मु भीखी भीखिये । (बुध्मेसकम्पी)
 (बही, प्र० १ अ० २२)
 काहू की बहाइ नानै । (र० प्रि० प्र० ११ अ० २)
 भाइ मिले मन को कछिहो मुह ही के मिळे से बियो मन मैखो ।
 (र० प्रि० प्र० १२ अ० २७)
 सो जसु नै किन जुन जुन बर्यै । (अ० मा० कन्नी का व्याहरण)
 बाबाद भी को पान खायो । (बही, इन्द्रकू का व्याहरण)
 धनन बैबादि न कन्त पावो । (बही, कौन्त्रवन्ना का व्याहरण)

भोकोवितियां

जैहहि जैह कटारहि नार्य । (र० प्रि० प्र० १, अ० १०)
 कहि केदार बापनी बाँध जयारि के बाप ही लखन को मर्य ।
 (बही, प्र० २, अ० १७)
 प्यास बुझाइ न घोस के बाये । (बही, प्र० १२, अ० २४)
 बाप को बायो बाँध बाप ही तिरायु है ।
 (क० प्रि० प्र० १, अ० १८)
 बापि लाने मेरी बाली नैह पावयतु । (र० प्रि० प्र० ११ अ० १)

व्यथना

व्यथना के द्वारा भाषा में बहना पाती है । इस रहस्य को बहानाते हुए केदार ने खजिस्ता की कविताओं में प्रायः व्यथना का उपयोग किया है ।

ज्यों ज्यों तुलास तों केसववास बिनास निवास हिये धरबरेयो ।
 त्यों त्यों बड़ो डर कंठ कछू नुम नीत भयो किणों सीत बिरोधो ॥
 मुद्रित होत सखी बर ही मन नैन सरोजनि साँध के भेदयो ।
 तें नु कही मुख मोहन के धरनिब सोही सो तो बन्ध सो देखो ॥
 (क० प्रि०, प्र० १२ अ० ४)

यही खजिस्ता नायिका का धमिप्रेत धर्म तो यह है कि नायक के मुख पर धन्य स्त्री के कम्बसादि के पिङ्ग हैं इसी से उसने नायक की धोर से मारे क्रोध के धाँवें बन्द कर लीं । इसी बात को नायिका ने दूसरे ही प्रकार से प्रकट किया है ।

एक घोर उवाहरण भीजिये । अपने प्रिय के परदेस जाते समय किसी नायिका का कहने का धमिप्राय तो यह है कि बाप न चाहिये बापके बिना मैं जीवित न रह सकूँगी । किन्तु इस मान को मर्मतर से व्यक्त करती हुई कहती है—“बाप को मेरी सीगन्ध है, बाप परदेस में सुखपूर्वक निश्चित होकर रहिएगा घोर मैं बापकी सीगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं सुखपूर्वक ही रहूँगी । यदि जाना ही है तो धन्य बाह्य,

किन्तु ऐसा कीजियेगा कि मुझे सोती हुई छोड़ जाइया और मैं आपके बापिठ सौटने पर ही जागूँगी^१ ।

भाया की सबीकता

केसव की भाया किसी को बेतानगी देने में बड़ी समर्थ है। 'रे' के प्रयोग के द्वारा केसव ने निम्नलिखित छन्द में कसा भाव भर दिया है—

आसन आसन बासु सुबासु बिसस रये अनुरागिये हैं ।
 बारिग बाजि गुनी बुनबाध न आगर है मन हाथ लिये हैं ।
 भौंकिनि भौंतिनि भावन भोजन भूपन मुरि भए न क्रिये हैं ।
 रे चित्त बेत कहा परियेनहि जानकी नाथ ध्यान हिये हैं^२ ॥

'रे' के सदुपयोग ही नहीं है 'बू' का भी बहुत प्रयोग किया है।

पातक हाबि, पिता संग हारिखो नरन के सुसन लें करिये बू ।
 तासन को बंदिखो, बय रोए को, माय के साथ चित्त करिये बू ।
 पय फटें से फटें जलु कैसव कसैहु तीरय में भरिये बू ।
 बीरबी सदा लखे पारि लखैहु को अरि नखो को बया भरिये बू ॥

(क० प्रि०, प्र० ११, छन्द ७३)

'रे' को छोड़ सब 'री' का रंग भी तो कुछ देस लीजिये। सबी का कथन है—

सेनस ही सतरंग जलिन में आपहि ते
 तहां हरि धाये कियो काहु के बोलाए री ।
 साये मिमि सेसन भिलैं न मन हरै हरै
 देन भाये बाळें बापु बापु मन जामे री ।
 जठि जठि यहाँ नित मिसही जिसहि तिस
 केसोदास की धौं सोइ रहे धनि धाये री ।
 बींजि बींजि तेहि जन राधानु के मेरी धानी
 जनक से लीजन जनक से हूँ धाये री ॥

(क० प्रि०, प्र० १२, छन्द १)

इन शब्दों के प्रतिरिक्त कुछ ऐसे बरेलू तथा साङ्ग-प्यार के शब्द भी हैं

१ मेरी धौं तुम ही हरि रहिपी सुखहि मुच
 मोहूँ है तिहारी धौह रहौं मुच पावे ही ।
 बने ही बनत को सो बसिये बतुर पीय
 सोरठ ही बीयो काँड़ि बाबोनी हौं धाये ही ।

—क० प्रि०, प्र० १० अ० १२।

बिगने प्रयोग से केशव की भाषा में घोर भी सजीवता पायी है। सबसे प्रथम 'माई' शब्द को लेते हैं। कोई बच की युवती यद्योता से कहती है—

भोरेहुँ भीहू चढ़ाय बिसेँ जरपाइये क मन क्यों हूँ करेरो ।
ताको तो केसव कोरि हिये कुछ होत महा मुकहाँ इस हेरो ॥
कैसे है तेरो हियो हरि में रहि मोरो नहीं तनु सुखत मेरो ।
बू बन हूष को मारयो है नाचि सु बालति हूँ 'माई' आयो न तेरी ॥

(५० प्रि० प्र० ११, छ० ३६)

इसी के साथ 'बीर' (सखी) शब्द के प्रयोग पर भी ध्यान दीजिये—

कैसोबास मुक हास हिसछे हो कवितत ।
जिन जिन सुखम जमीली जधि धाई है ॥
बारबुद्धि बारन के साथ ही बड़ी है बीर ।
कुचलि के साथ ही समुज उर धाई है ॥

(६० प्रि० प्र० १२, छन्द० २१)

मदू' शब्द का प्रयोग भी बर्धनीय है—

कोन रसे विहूँ लखि कोनहि का बर कोवि के मोहू चढ़ायै ।
धुलति जात्र मदू कबहुँ कबहुँ मुक अंचल मेनि कुरायै ॥
कोन कि सेत बलाय बलाय त्यों तेरि बहार यहू कोहि न मारै ।
ऐसि ती लू कबहुँ न आई सम तीहि बई जनि बाह लपारै ॥

(१ प्रि० प्र० ९, छन्द ४०)

'रानी' शब्द में कितना प्यार भरा है। देखिये—

घातुर क्यों उठि बोरी घली जनु घातुर क्यों गहिये सु पड़ी त्यों ।
है मेरी रानी कहा भयो तो कहूँ कसत केसव बुझि रही त्यों ॥
भीठि लगी किधों प्रेत लप्यो कि लप्यो उर प्रीतम बाहि बरी मों ।
घातन सीकर सी कहिये जक सोवत ते जनुनाय उठि क्यों ॥

(२० प्रि० प्र० ४ छन्द १७)

इस प्रकार 'मदूबावरी' शब्द से भी कसा 'साई' टपक रहा है

बरसक धाँस यहू बेस अलबेली बीते
केही सुख सजिग क्यों समझी न बीबिये ।
मेरी लदूबावरी धहीरो ऐसी बूझों तोहि
नाहि सो समेह कीचें नाहूँ सो न बीबिये ॥

(२० प्रि० प्र० ४ छ० २२)

इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग से केशव की भाषा नस्तुत' बोल उठी है और उसमें मधेष्ट स्वाभाविकता पायी है।

प्रसंस्करण

रीतिकाम्यों में कवि ने पद-योजना पर विशेष ध्यान दिया है। इस भाषा की प्रकृति के अनुसार उनके पद प्रायः छोटे तथा अचमस्त हैं। छन्दों में

सर्वत्र अनुक्रम धीर संतुलन है जिसके कारण सभी पर छोटी-छोटी बड़ियाँ-सी बनाकर एक क्रोमस भंकार में गुंथ जाते हैं। पर-बन्धों का यह कसात्मक मूँफ़न अनुप्रास धीर बीप्सा पर आश्रित रहता है। बीप्सा के द्वारा भाषा में गति उत्पन्न होती है धीर अनुप्रास के द्वारा भंकार धीर सस्वरता। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१ गिरि गिरि उठि उठि रीढ़ रीढ़ ताचे कण्ठ
बीच बीच प्यारे होत जूनि प्यारी प्यारी सो।
आसुस में अकृताइ पावे पावे आसुरनि
आधी आधी जालें कहै आधी एक ह्यारी सो ॥

(२० दि० प्र० १४ छ० १४)

२ धोरी धोरी धोरी धोरी धोरी धोरी बस छिई
देवता सी धोरी धोरी आई धोरा धोरी चाहि।

(यही, प्र० १४ छ० १२)

उदा : १ धोरि धोरि पित जितवत मुहु धोरि धोरि
कहे से हुँसत हिय हरय बहारी है।

पूस पूस भेंटति रहति उर भूनि भूनि
भूनि भूनि कहुत कहुत तें पाव पायो।

(यही, प्र० १ छ० १)

उपर्युक्त तीनों छन्दों में गिरि गिरि 'उठि उठि' 'धोरि धोरि' आदि बीप्सामय आवृत्तियों से भाषा में एक विशेष गति उत्पन्न हो गई है। प्रचोतिवित्त उदाहरणों में अनुप्रास के प्रयोग से भंकार धीर सस्वरता पा गई है। देखिये—

१ क्रोमस अमल अस बीकनी बिहुर बाब
जितयेतै पित बकबीधियत केदारदास।
मुनहु अबीनी रावा छूटे से सुबै अबाधि,
कारे सबकारे हैं मुमाव ही सवा मुमाव ॥

(४० दि० मुख रिक्तम, सं० ७९)

उदा २ क्रोमस अमल विमल मन विमला सी सखी साध।
कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनात के ॥

कचन के भार कुचमारनि सकुच भार।
सबकि सबकि जात कति तब जात के ॥

(२० दि० प्र० ६, सं० २१)

अर्धध्वनन

काव्य भाषा को समृद्ध करने का अर्धध्वनन बहुत ही सुन्दर साधन है। अर्धध्वनन का चमत्कार ऐसे ही शब्द समवा शब्द-समूह की योजना पर आश्रित

रहता है जो ध्वनिमात्र से ही अपना धर्म व्यक्त कर देते हैं। केदार की भाषा में भी यह गुण निखटा है। एक प्रयोग देखिए

सलक में खोल जैल, मगमग मन ऐल
हौलजा के खोल चल रैल प्रति रोक है।
सेमानी के सतपट, खमर बिल खटपट,
घलि घलि छटपट, छंतक के छोक है।
हम्र बू के छकबक बाता बू के पकपक
छाम्र बू के छकपक केसोरास को कहै।
जब जब मुमया की राम के कुमार कहै
तब तब कोलाहल होत सोक सोक है ॥

(क० छि० प्र० ८ छं० १३)

यहाँ छन्दों की ध्वनि से ही कलमभी का अनुभव हो जाता है।

भाषा में गुण

केदार के 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' नामक रीतिकार्यों के अति कोस छन्दों में माधुर्य और प्रसाद गुणों की प्रधानता है। 'रसिकप्रिया' के प्रायः सभी छन्द माधुर्य गुण से युक्त हैं। इसका कारण यह है कि इस छन्द के तीन चौथाई भाग में मृदार रस ही का निवेदन है। कुछ माधुर्य-गुण-पूर्ण छन्दों के उदाहरण नीचे उपस्थित किये जाते हैं—

१ फूल न बिछाव झूल झूलत है हरि बिनु,
हूरि करि नास बना व्यास सी लगति है।
खबर बसाव बिन बीजन हलाव मति
केसर जुगल धामु बाह सी लगति है।
बादन बड़ाव बिन ताप सी बढ़ति तन।
(कुकुम्भ) न लाव धंय धाम सी लगति है,
बार बार बरजति बाधरी है बारों धाम
बीरी ना बसाव बीर बिय सी लगति है।

(र० छि० प्र० ८ छं० ४)

२ मेरे तो बाहि ने बचल मोहन नाहि मे केसर बानि मुहाई।
बालों न सुपल भेद के भावन धूलहु भैतहि भोंहि बड़ाई ॥
भोरेहु ना बितयो हरि और त्यों बर करि इहि भीति मुपाई।
रंचक तो बतुराई न बितहि कान्ह जये बस काहे से भाई ॥

(र० छि०, प्र० २, छं० ९)

तथा ३ बीठी हुषी बुबभानु कुमारि सखीन के मदन मय्य प्रबीनी।
ले कुम्हिलानी सो बल बरी बू कोऊ इक बालिनि पाय नबीनी ॥
बदन सौ धिरक्यो यह जाकहु पान बये कचना रस भीनी।
बन्दन बिन कपोल बिलपि नै रंजन धामि बिदा करि बीनी ॥

(क० छि०, प्र० ११ छं० ४७)

‘रसिकप्रिया’ के अधिकांश छन्द प्रसाव-गुण-पूर्ण हैं। ‘कविप्रिया’ में प्रवक्ष्य कुछ छन्द क्लिष्ट हैं किन्तु उनकी क्लिष्टता भी कवि की काली-यहूनी क्लिष्टता है जो पाश्चात्य प्रवर्धन के निमित्त क्लिष्ट छन्दों के प्रयोग के द्वारा उत्पन्न की गई है। इस ग्रन्थ में ऐसे छन्दों की कमी नहीं है जिनका धर्म पढ़ते ही हृदयंगम न हो जाता हो। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ दिये जाते हैं—

१ शीपक बेहू बसा तौं निरैं सुदसा निनि तेबहि जोति जपानै ।
जापि कै जोति सबै समुनै तम जोनि सु ती गुमता बरसानै ॥
सो गुमता रबै क्य को क्यक क्य सो कामकला उपबानै ।
काम सो केशव प्रेम बहुमत प्रेम श्री मातृप्रियाहि मिलानै ॥
(६० प्रि० प्र० ११ अ० २३)

२ भुनि भयो सब सों रस रोव, मिठे भव के जम रेनि बिभाती ।
को प्रपनो पर को बहिषाज न जानति नाहि नै सीतल तातों ॥
नेकही में बुधपानु लगी की गई सु न बाकी कही परं बातों ।
एकहि घेर न जानिये कैसव काहे ते छदि बये मुख लसतों ॥
(६० प्र० प्र० ८ अ० ४६)

तथा : ३ यवनि की घोर सुनि घोरनि की घोर सुनि ।
सुनि सुनि कैसव मलाव घसीजन को ।
बानिनी बमकि देखि शीप की शीपसि देखि ।
देखि मुख देख देखि सुन्दर सु बन को ॥
कुकुम को जास बनसार की तुबास भयो ।
फूलन की जास मन फूलि के मिलन को ।
होति होति जोने बोक बनहि मिलाने माव ।
जदि भयो एक बार राबिका रमन को ॥

(२० प्रि० प्र० १०, अ० २७)

इस प्रकार छन्द दिए गए सहास्रकों के आचार पर कैशव के विषय में स्त० डा० बहमूदास का यह मार्शेप कि माधुर्य और प्रसाव से तो बसि वे बार कामे बैठे थे (ना० प्र० ५० भाग १, संवत् १९८६, पृ० ३६८) सर्वथा निर्मूल सिद्ध होता है।

कैशव की भाषा के विषय में शाय्यापक जयश्याम तिवारी का मत लेकर हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। वे लिखते हैं—

“कैशव का शब्द मध्यार पूर्ण है। भाषा को भाव के अनुसार मोड़ने की उनमें अपूर्व शक्ति है और वह उनके हृदय से नाथनी हुई ही प्रतीत होती है। बुद्धेयशक्ती मिश्रित ब्रजभाषा में संस्कृत के शैल के कारण भावार्थबना की परमपद अधिक शक्ति पा गई है। “कैशव की भाषा को क्लिष्ट और ऊबड़-खाबड़ कहना उनके प्रति अन्याय करना है। कैशव की क्लिष्टता उनकी साहित्यिकता के कारण है। जो लोग साहि रियक परम्परा से परिचित हैं तथा जिन्हें अलंकार छन्द रस मृग इत्यादि का

पूर्ण ज्ञान है। उनके लिए केशव में किसी प्रकार की भिन्नप्यता नहीं है। बुद्धेसङ्गधी तथा सस्कृत के मिश्रण के कारण उसे ऊबड़-खाबड़ भी कहना उचित नहीं। इस मिश्रण के कारण तो उसमें और अधिक सघनता या जाती है ऊबड़ खाबड़पन नहीं। रामचन्द्रिका में बीररस की प्रधानता होने के कारण भोवबुध की प्रधानता है। रसिकप्रिया के श्रुतिारिक छन्दों में माधुर्य गुण की प्रधानता है। प्रसाद गुण की भी केशव में कमी नहीं। अतः केशव की भाषा में भावसमकृतानुसार हम भोव माधुर्य और प्रसाद को पाते हैं और हमें उसकी काव्योपयोगिता में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती।”^१

दिबारी की का यह मत हमें मान्य है।

केशव का रीतिविवेचन (आचार्यत्व)

काव्य के सौग का विवेचन

यों तो रीतिग्रन्थों की रचना का सुषपात केशव के पूर्व ही हो चुका था, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, किन्तु किसी आचार्य—कवि ने काव्य के विविध प्रयोगों का सांख्यिक पद्धति पर निष्पन्न न किया था। केशव ही हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने काव्य के प्रायः सभी प्रयोगों का विवेचन किया है। उनके रीतिविवेचन (आचार्यत्व) के सम्बन्ध के लिए आधारस्वरूप कवि के तीन ग्रन्थ हैं 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'उन्वयमाला'। 'कविप्रिया' में काव्यशास्त्र के इन प्रयोगों पर प्रकाश डाला गया है—काव्य का स्वरूप और उसका जड़त्व, कवि-भेद कवि-रीति काव्य के विषय वर्णन के प्रकार, काव्य-दोष और धर्मकार। 'रसिकप्रिया' में रस वृत्ति और रस-दोषों का वर्णन है परन्तु प्रथमतया श्रुति-रस के विविध तरहों पर ही सांख्यिक विचार दिया गया है। 'उन्वयमाला' नामक ग्रन्थ में पिंगल का सम्यक् विवेचन है। 'कविप्रिया' में भी 'धनदोष' के नीचे विषय की चर्चा हुई है परन्तु वहाँ विषय को बलता ही किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि धनसक्ति हुए रीति और ध्वनि को छोड़ काव्य के लगभग सभी प्रयोगों का विवेचन केशव के रीतिग्रन्थों में पाया जाता है।

(अ) कविप्रिया में रीतिविवेचन और उसका आधार

काव्यदोष

केशव ने 'कविप्रिया' के तीसरे प्रमाण में काव्य-दोष तथा वचन-प्रयोग पर विचार किया है। काव्य में दोषों की स्थिति को सभी भिन्न-भिन्न भागते हैं। केशव की दृष्टि में भी काव्य दोषहीन होना चाहिए। जिस प्रकार गंगाबल से पूर्ण बट मरिचा में एक बूँद के ही संघर्ष से अपवित्र एवं नष्टप्राप्त हो जाता है उसी प्रकार मित्र भी और काव्य भी निश्चिन्ता दोष के आ जाने पर धाकड़न तथा प्रमाण को खो देते हैं।^१ केशव ने कुल मिलाकर पठारह दोष स्वीकार किये हैं। उनमें से पहले पाँच

१ विप्र न नेनी कीजिये गूढ़ न कीजै मित ।

प्रभु न कृष्णी सेहये रूपन सहित कवित ॥

राजत रंज न दोष युक्त कविता बलिता मित्र ।

बन्धक हासा बरत ज्यों बंघावट अपवित्र ॥

के नाम ग्रंथ, बधिर, पंगु, नन्म तथा मृतक हैं^१। कबिसमय के विरुद्ध कथम 'ग्रंथ' बोध कहा जाता है। यही परस्पर विरुद्ध शब्दों का प्रयोग हो बही बधिर बोध होता है। छन्दशास्त्र के नियमों के विरुद्ध रचना करना 'पंगु' बोध कहलाता है। ग्रंथ काररहित रचना में 'नन्म' बोध होता है। 'मृतक' बोध बही होता है बही काव्य में निरर्थक शब्दों का प्रयोग हो। इन दोषों के नाम केचन की अपनी उपज हैं परन्तु इनमें केचन नाम की ही मौलिकता है। वास्तव में सब बोध संस्कृत धात्र्याओं द्वारा निर्दिष्ट दोषों से मिल जाते हैं।

केचन का 'ग्रंथ' बोध विषयनाम का 'व्यातिरिक्तता' बोध है। उनका 'बधिर' बोध केचनमय के 'व्याहृत' बोध से मिलता है। केचन का 'पंगु' बोध केचनमय के 'मल्लच्छन्द' के समान है। 'कविप्रिया' का मृतक' बोध और 'ग्रंथ काररहित' का 'अवाचक' बोध एक ही है। 'नन्म' बोध केचन की मौलिक उद्भा बणा का फल है। संस्कृत के प्राय सभी धात्र्या ग्रन्थकार को काव्य का धनिवार्य बर्न नहीं मानते। ग्रन्थकारों के बिना भी काव्य हो सकता है। यही बात मम्मट ने 'मनलंघनी पुनः क्वापि' के द्वारा व्यक्त की है। धात्र्या विषयनाम के अनुसार भी ग्रन्थकार काव्य के अस्तित्व बर्न हैं^२। इन्हीं के 'काव्यशोभाकरान् बर्मानलङ्कारान् पश्यते' और वामनाचार्य के 'उपविधायहेतवस्त्वलङ्काराः'^३ से भी यही मत पुष्ट होता है कि ग्रन्थकार काव्य की शौच्य-वृद्धि में सहायक तो अवश्य होते हैं किन्तु इन्हें काव्य का धनिवार्य ग्रंथ नहीं माना जा सकता। अतः ग्रन्थलङ्घ्य काव्य बोधमुक्त नहीं कहा जा सकता परन्तु केचन के विचार से ग्रन्थकारहीन काव्य में 'नन्म' बोध होता है।

उक्त पाँच दोषों के अतिरिक्त केचन ने छैरह और बोध भी बतसाए हैं। उनके नाम ये हैं—ग्रमन हीनरस यतिभंग व्यर्थ अपार्थ होनकम कर्णकट्ट पुनरुक्ति हेतुविरोध वासविरोध लोचविरोध म्याय विरोध तथा धातम-विरोध^४। इनमें से

- १ ग्रंथ बधिर ग्रंथ पंगु ठगि नन्म मृतक मति सुद्ध ।
ग्रंथ विरोधी पन्थ को बधिर तु शब्द विरुद्ध ॥
छन्द विरोधी पंगु पुनि नन्म को मृपण हीन ।
मृतक कहावै बिनु केचन भुनहै प्रवीन ॥

—क वि० म १ लं ७-८।

- २ अर्थार्थयोरस्थिरा ये वर्मा शोभाप्रतिपादिनः ।
रसाधीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽप्यवशिष्यन् ॥

—साहित्यदर्पण परिच्छेद १ कविता संस्थ १३२ (क) व १२ ।

- ३ काव्यधरौ परिच्छेद २, लोको १ ।

- ४ वाच्यार्थकमनूयति अधिकरण १ अध्याय १, सूत्र २ व १२ ।

- ५ ग्रमन न कीजै हीनरस ग्रंथ केचन यतिभंग ।

व्यय अपारण हीन कम कवि भूत सभी प्रयोग ॥

कुछ होय केसवमिय ॥ मिमते हैं । जति केसव के हीनरस और कर्षकटु केसवमिय के कमल विरस^१ और कष्ट^२ हैं । किन्तु धनिकाय होय बन्धी^३ के ही अनुसार हैं । होयों के जवाहरन भी बन्धी के काव्यावर्ष^४ से अनुवाद करके रक्त दिए गए हैं । केसव का 'धमन' होय बन्धी के 'मिम्बवृत्त' होय के अन्तर्गत ही था सकता है परन्तु ऐसा ज्ञान पड़ा है कि केसव ने इसे मीलिकता में आसने का प्रयास किया है । केसव के मतिर्मन सोक-विरोध और हीनकम होय बन्धी के कमल यतिभ्रष्ट कास विरोध और अपकम होय हैं । व्यर्थ अपार्थ वेध विरोध कास विरोध म्याम-विरोध एवं म्याम-विरोध होय भी बन्धी के अनुसार हैं । केसव द्वारा दिए गए सद्यगों का बन्धी से साम्य है । कहीं-कहीं जवाहरन भी बन्धी के समान हैं । कुछ जवाहरन तुलना के लिए नीचे दिये जाते हैं—

व्यथ का लक्षण

एक कवित प्रबन्ध में व्यर्थ विरोध जु होय ।

पूरव भर अनमित सदा व्यर्थ कहूँ सब कोय ॥

—क० प्रि ३० १, छं ४२ ।

एकवाक्ये प्रबन्धे वा पूर्वपरपर्युतम् ।

विषयार्थतया व्यर्थमिति बोधेषु पश्यतै ॥

—काव्यावर्ष, परि० ३ श्लो० १११ ।

वर्ष प्रयोग न कर्षकटु, सुनहूँ सकस कविराज ।

सबै वर्ष पुनरुक्ति के छाँटहु सिगरे साज ॥

वेधविरोध न करनिये कास विरोध निहारि ।

सोक म्याम अपामन के तबी विरोध विचारि ॥

—क प्रि, म २ बं १११० ।

१ विरसं प्रस्तुतारसविच्छम् । —अर्जुनारोह, मरिचि १, १ १८ ।

२ कष्टं सुतिष्ठम् ।

—अर्जुनारोह, मरिचि ४ १ ११ ।

३ बन्धी के वस काव्यहोय मिम्बमिच्छित वसों में मिच्छित हैं

अपार्थ व्यर्थमेकार्थं ससंघमपकमम् ।

अन्वहीनं यतिभ्रष्टं मिम्बवृत्तं विलम्बिकम् ॥

देसजालकालोकम्यामायमविरोधि च ।

इति बोधा वसंते वर्णा काव्येषु सुविधि ॥

—काव्यावर्ष परि० ३, श्लो० १११ ११६ ।

आज के भी बन्धी द्वारा यतिभ्रष्ट होयों का ही अलोचन किया है ।

काव्यावर्ष, परि० ४ श्लो १ १ ।

धर्म का उदाहरण

सब धनु सहाय्य कीज न भारहु सबि घोषा उभराव ।

कोउ न रिपु तेरो सब जग हेरो तुम कहियत अति तापु ॥

(केसव—५० प्रि० प्र० ३, पं० ४१)

कहि धनु बलं कृत्स्नं जय विजयनरायिनाम् ।

न य ते कोअपि बिद्वेषा सबमूतानुकम्पित ॥

(दण्डी—काम्पादरीं परि० ३, श्लो० १३२)

अपार्य का लक्षण :

अर्थ न जाको समुझिय, ताहि अपारण जान ।

मत्तबारी जगमल धियु के से बचन बचल ॥

(केसव—५० प्रि० प्र० ३, पं० ४४)

समुदाधार्यधूम्यं यत्तदपार्यमितीष्यते ।

सम्पत्तमत्तबासानामुत्तैरामयं बुध्यति ॥

(दण्डी—काम्पादरीं परि० ३, श्लो० १२८)

दण्डी के अनुसार जगमल, मत्त तथा बासकों की शक्ति के प्रतिरिक्त यदि कहीं अधबूझता हो तो दोष होता है किन्तु केसव अपने लक्षण में दूसरी पंक्ति के भाव को अनुवाद में नहीं ला सके ।

अपार्य दोष का उदाहरण

मिये सेत नरविषु कहं है अति सज्जर वैह ।

ऐरावत हरि जावतो बैरवी गर्जत वैह ॥

(केसव—५० प्रि०, प्र० ३, पं० ४४)

समुद्र पीयते देवैर्यक्ष्मसि जरातुर ।

धमी गर्जन्ति भीमूता हरेरैरावत प्रियः ॥

(दण्डी—काम्पादरीं, परि० ३ श्लो० १२६)

यह दोष केसव के 'मृत्क दोष' को धर्म कर देता है ।

कासविरोध का उदाहरण

प्रफुलित नव नीरज रजनि वातर कमुद विद्याल ।

कोकिल भरव, मयूर मयु बरवा मुदित मराल ॥

(केसव—५० प्रि० प्र० ३, पं० ४६)

पद्मिनी नवतमुग्निद्रा स्पृहायक्षि कमुद्वती ।

मधुस्तम्भसविभुलो निदायो भेषवुदिन ॥

(दण्डी—काम्पादरीं, परि० ३, श्लो० १३७)

प्रागमविरोध का उदाहरण :

पुनि सीबो उपवीत हुम पड़ि सीबी सब बेद ।

(केशव—क० प्रि०, प्र० ३ अन्त ५६)

असावगुपनीतोपि वैदानविचये गुरो ॥

स्वभावगुह्यः स्फुटिको न तत्कारमयेजते ॥

(रघु—काम्यादर्श परि० ३, श्लो० १७८)

इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव के प्राग्विक दोषों का आधार दृष्टीकृत काम्यादर्श है। केशव के पुनरुक्त दोष का आधार दृष्टी भासह केशवमिम आदि न होकर भोज सम्मट तथा विस्मनाथ हैं।

‘कविप्रिया’ में निरिष्ट उपर्युक्त दोषों के प्रतिरिक्त केशव ने ‘रसिकप्रिया’ में धनरस प्रकरक के अन्तर्गत नीरस विरस आदि रस-दोषों का भी वर्णन किया है जिनका विवेचन आगे किया गया है।

गण-अगण विचार

केशव ने काम्य-दोषों के अन्तर्गत ‘अगण’ दोष पर विचार करते हुए नव अगण का निरूपण किया है। गण-अगण का विचार बहिक कम्हों के सम्मुख में ही किया गया है। कवि ने आठ गण माने हैं। तीन अक्षरों वाले गुरु हों अथवा सधु, के समूह को गण की संज्ञा दी गई है। केशव की दृष्टि में तीनों गुरु अक्षरों वाला नव अगण’ तीनों सधु अक्षरों वाला गण केशव आदि में गुरु अक्षर से युक्त गण ‘अगण’ कहा जाता है और यदि आदि में सधु हो मध्य तथा अन्त में गुरु हो तो ‘गण’ होता है। ये चारों गण धूम माने जाते हैं। इसी प्रकार मध्य में गुरु हो तो ‘अगण’ मध्य में सधु हो तो ‘गण’ अन्त में गुरु हो तो ‘अगण’ और अन्त में सधु हो तो ‘गण’ माना जाता है। ये चार गण समूह बताए गए हैं^१। केशव के इन आठ गणों के स्वर्णों का आधार वृत्तरत्नाकर आदि पियस ग्रन्थ हैं^२।

- १ केशव यन धूम सर्वथा, अयन समुम जर धानि ।
चारि चारि बिधि चारमति यन अर धवन बजानि ॥
मवन नवन पुनि भवन अर, मवन उवा धूम जानि ।
अवन रवन अर सवन पुनि लगनिहि अधुन बजानि ॥
भवन विगुह युत निजधुमय केशव नवन प्रमान ।
भवन आदि गुरु आदि सधु अवन बजानि सुमान ॥
अवन मध्य गुरु जानिए, अवन मध्य सधु होय ।
अवन अन्त गुरु अन्त सधु अवन कहैं सब कोय ॥

—क प्रि० प्र ३, अन्त १८२१।

- २ सर्वधुनी मुक्तान्तनी यरावन्तयनी सती ।

अध्यायी जमी नितो मोठ्ठी भवन्तय गणात्मिका ॥

—दुर्योधन, अध्याय १ पृ ४।

इत दिवस-धर्मों में गण-देवता, गण-मैत्री और गण-सन्तुष्टता तथा देवता के अनुसार गण-फल का निष्पन्न भी किया गया है। 'मयघ' का देवता 'भूमि', 'नगन' का 'नाक' (स्वर्ग) 'ययघ' का 'जल' 'मयघ' का 'जम्भ' जगण' का 'सूर्य', 'रगण' का 'अग्नि' 'सयघ' का 'पवन' और 'तगण' का देवता 'गयन' बतसाया गया है। 'मयघ' और 'नयघ' परस्पर मित्र माने गये हैं 'मगण' और 'ययघ' मृत्यु (देवक) जयघ और 'तगण' उदासीन तथा 'रगण' और 'सयघ' परस्पर शत्रु कहे गये हैं। गण फल के विषय में 'मगण' का फल भी माना गया है। 'मगण' का 'धामु' 'मयघ' का 'भुयस' 'ययघ' का 'बुद्धि' 'जयघ' का 'रोम' 'तयघ' का 'मनसाध' 'रयघ' का 'विनाश' एवं 'सयघ' का 'देहादन'। केदार में भी यह सब वर्णन किया है^१। इनका गण प्रगण-वर्जन केदारमन्दिर 'भुत्तरलाकर' में मिलता है केवल देवता के अनुसार गणफल में कुछ भिन्नता परिलक्षित होती है। केदार के मत में 'ययघ' का कण सुख की अधिकता है 'नयघ' का बुद्धि 'मयघ' का मनन 'मगण' का धान्य 'जगण' का सुख-विनाश, 'तयघ' का निष्कलता 'रयघ' का शारीरिक कष्ट तथा 'सयघ' का देश से उदासीनता।

- १ मो भूमिदिक्पुत्रं धियं विद्यति यो बुद्धिं जलं चावित्यो ।
 रोध्निर्मध्यमधुबिनासमनिसो देहादनं छोऽन्त्यय ॥
 हो ध्योमाप्तमधुबलापहरणं जोऽर्धो हर्षं मध्ययो ।
 मयचन्द्रो यक्ष सज्ज्वलं मुक्तपुक्तो नाक धामुदिपल ॥

—भुत्तरलाकर टीका पृ. ४।

तथा म-नी मित्रे म-यी भूत्वाबुदासीनी ज-टी स्मृती ।
 रसावरी नीचसंज्ञी ह्रीं हावेती मनीपिमि ॥

—वर्त, पृ. २।

- २ मही देवता मयन की नाक नगन को देखि ।
 जल धिय वाली ययन की जम्भ मयन को देखि ॥
 सूरज जामी जगण को, रजन सिद्धीमय मानि ।
 धामु समभिधै सगन को तयन प्रकाश बलानि ॥
 मयन नयन को मित्र गमि मयन ययन को दास ।
 उदासीन जत जानिये रस रिपु केसवदास ॥
 भूमि धूरि सुख देव नीर निष्ठ धान्यकारी ।
 धानि धग दिन बहै मूर सुख सीखी मारी ॥
 केदार धफल प्रकाश धामु किम देश उदासी ।
 मगल जम्भ प्रमेक बाग बहु बुद्धि प्रकाश ॥

—क मि० प्र० २, अन्तर २३-२४।

केसव कवित्त के प्रादि में 'यगन' के प्रयोग को शोष मानते हैं^१ । यदि कहीं 'यगन' के स्थान पर 'यग' का प्रयोग हो तो उससे शोष का परिहार करने के लिए केसव ने 'ग' गणों के योग के पद्य का वर्णन किया है । उनके अनुसार मित्र-गणों के योग का पद्य 'मृद्धि-सिद्धि' है मित्र और दास गण के योग का 'विजय' मित्र और उदासीन गण के योग का 'गोच बुद्ध' मित्र और शत्रु गण के योग का 'बन्धुहानि', दास और मित्र गण के योग का 'कार्यसिद्धि' दास और दास गण के योग का 'बीरों पर अधिकार' दास और उदासीन गण के योग का 'जनहानि' दास और शत्रु गण के योग का 'पराजय' यवना मित्र का शत्रु होना' उदासीन और मित्र गण के योग का 'मत्स्य फल' उदासीन और दास गण के योग का 'प्रभुता-प्राप्ति' उदासीन और उदासीन गण के योग का 'विजयता' उदासीन और शत्रु गण के योग का 'मुक्तहानि' शत्रु और मित्र गण के योग का 'विजयता' शत्रु गण और दास गण के योग का 'स्त्रीनाथ' और शत्रु उदासीन गण के योग का 'कुलनाथ' तथा शत्रु और शत्रुगण के योग का 'नायकनाथ'^२ । दो-एक शब्दों को छोड़कर केसव का यह सब द्विपद्य—फल-वर्जन वृत्त रचाना^३ प्रादि पिप्पल-ग्रन्थों के समान है ।

केसव के 'अधु-युव विचार' का आधार भी वृत्तरचानाकर प्रादि छन्द-ग्रन्थ है^४ । 'बोहा' को भी गण के भीतर का दिखाना केसव की निजी उद्भावना है^५ । यहाँ

१ जो बहुत प्रादि कवित्त के घयन होय बहुमाय ।

ताते द्विपद्य विचार भित्त कीन्हों वासुकी नाग ॥

—क मि प १, अन्तर १० ।

२ क मि प १, अन्तर २-२१ ।

३ वृत्तरचानाकर टीका पृ १-२ ।

४ पिप्पल कीर्तिका —

संयोगी को प्रादि युत विष्णु बु दीरख होय ।

छोई गुन सधु धीर सब कहैं समाने सोय ॥

दीरख हू नधु करि पड़े सुख हो सुख केहि ठीर ।

छोळ नधु करि लेखिये केसव कवि छिरमौर ॥

संयोगी की प्रादि को कहें युव वरन विचारि ।

केसवदास प्रकाश बस नधु करि ताहि निहारि ॥

—क मि, प १, अन्तर ११ १४ तथा १२ ।

छानुस्वारो विद्यमानो धीरों मुक्तपरमेश्वर ।

बा पादाम्ने तबसी जकी सेयोऽप्यो माधिकी मुमुः ॥

—वृत्तरचानाकर पृ ७ ।

धीरार्थरमणि मित्रा हृस्व वैपद्यति तदपि भवति सधु ॥

—वृत्तरचानाकर टीका पृ ११ ।

पादादाविह वर्जस्य संयोग-कमसंज्ञक ।

पूरस्वितेन तेन स्यात्पादापि वचनित् सुतो ।

—वृत्तरचानाकर पृ ११ ।

५ राधा राधारमन के मन पठयो है साध ।

सख हई तुम कोन सों, कही योग की गाथ ॥

स्व० भा० जगवानदीन 'भावार्थ' में समझते हैं।

'ऊपर के दोनों दोहों में ८ चरण हैं। बाओं चरणों में बजायण के साथ सदाहरण हैं। उन्हें समझिये—जैसे

- १ रामारा धारम = म + म = मिम + दास, फल विजय।
- २ मगप ठ्योई = म + य = मिम + दास, फल विजय।
- ३ उद्वन झातुम = म + म = दास + दास फल सर्वबीनपद।
- ४ कहुँयो गकीया = म + य = दास + दास फल सर्वबीनपद।
- ये चारों गणयोग शुभ हैं।
- ५ कहुँ कहा तुम = म + म = उदासीन + दास फल अरुप।
- ६ प्रागना यकेमि = र + य = उदासीन + दास फल अरुप।
- ७ किरपी छेपछि = स + म = सनु + दास फल नारिनास।
- ८ ऊओ समुझोचि = उ + य = सनु + दास फल नारिनास।
- ये चारों गणयोग अशुभ हैं। इसी प्रकार धीर भी समझ लो।

कवि-प्रकार

चौथे प्रभाव में कवि प्रकार तथा कवि-रीति का वर्णन किया गया है। केसव तीन प्रकार के कवियों का उल्लेख करते हैं उत्तम मध्यम एवं अधम। उत्तम कवि हरिरस में हीन रहते हैं मध्यम मनुष्यों के चरित्रों का वर्णन करते हैं तथा अधम दूसरों के दोषों का ही बकास करते हैं^१। इस प्रकार प्रथम श्रेणी के कवि परमार्थ के पथ का अनुसरण करते हैं धीर अनुत्तम (मर्दान् इतरी येनी के) निरन्तर स्वार्थ साधन में लगे रहते हैं। मध्यम अथवा तृतीय श्रेणी के कवि अपनी कविता से लोगों का केवल मनोरंजन करते हैं पर बिचछे न तो स्वार्थसाधन होता है धीर न

कहुँ कहा तुम पाहुने प्रागनाथ के मित्र।
किर पीछे पछिताहुने ऊओ समुझी नित्र ॥
दोहा ॥ उदाहरण घाठी घाठी पाय।
केसव जन अरु घगल के समझी बुद्धि सुभाय ॥

—क पि म ३ अ० १०-१२।

१ क पि ५ १८।

- २ केसव तीनहु लोक में विविध कविन के राम।
उत्तम मध्यम अधम कवि उत्तम हरि रसमीन।
मध्यम मागत मानुपनि दोषनि अधम प्रवीन ॥

—क पि म० ४, अं १-२।

परमार्थ ही बगठा है^१ । इस वर्णन का आधार भर्तृहरि का निम्नलिखित श्लोक बाल पड़ता है जिसमें उन्होंने मनुष्यों की कोटियों का उल्लेख किया है^२ ।

कवि-रीति

केसव में तीन प्रकार की कवि-रीतियाँ बतलाई हैं—१ सत्य का असत्य के रूप में वर्णन करना २ असत्य बात को सत्य मान कर वर्णन करना तथा ३ कुछ बातों को नियमबद्ध करके अर्थात् कविपरम्परा के अनुसार वर्णन करना^३ । इसी बात का उल्लेख 'असकारसैखर' में इस प्रकार किया गया है^४ । यही साथ 'काम्यकल्प सत्तावृत्ति' में भी मिलता है^५ ।

सत्य का असत्य के रूप में वर्णन करना

जन्म के ब्रह्म में प्रत्यक्ष रूप से कम और फूल बोगों रहते हैं परन्तु कवि उसमें समझा न होना ही वर्णन करते हैं । इसा प्रकार मास के प्रत्येक पक्ष में धाम्य कार और प्रकाश बराबर माना में रहता है परन्तु कवि सोय कृष्णपक्ष की अपेक्षा शुक्लपक्ष की अधिक प्रशंसा करते हैं^६ । यों तो यहाँ धाम्य भाव 'असकारसैखर' के

१. है प्रति उत्तम ते पुष्पारव वै परमारव के पक्ष सोई ।

केसवदास अनुत्तम ते नर संतत स्वारव संयुक्त को हैं ॥

स्वारव हू परमारव भोव न मध्यम सोपनि के मन सोई ।

भारत पारसमिब कह्यो परमारव स्वारवहीन ते को हैं ॥

—क. वि० प्र० ४ अ० १ ।

२. ऐसे सत्पुण्या परार्थबटका स्वार्थ परित्यग्य मे

सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभूत स्वार्थविरोधिन मे ।

ऐसी मानवराससा परहित स्वार्थमि निष्पन्ति मे

मे निष्पन्ति निरर्थक परहित ते केन जालीमहे ॥

—मीरिदास श्लोक ७४ ।

३. साँची बात न बरनहीं भूँठी बरननि बानि ।

एकनि बरने नियम की कवि मत निविध बहानि ॥

—क. वि० प्र० ४ अ० ४ ।

४. असतोऽपि निबन्धेन सतामप्यानिबन्धनात् ।

नियमस्य पुरस्कारात् सम्प्रदायस्तिवा कवेः ॥

—असकारसैखर, मटीपि १५ १ १५ ।

५. असतोऽपि निबन्धेनाऽनिबन्धेन सतोऽपि च ।

नियमेन च आत्मावे कवीनां समपस्तिवा ॥

—काम्यकल्पसत्तावृत्ति प्रश्न १ अक्षर ८, श्लोक ६४ ।

६. केसवदास प्रकाश बहु जन्मन के कम फूल ।

कृष्णपक्ष की ओरहु ज्यों शुक्लपक्ष सम फूल ॥

—क. वि० प्र० ४ अ० २ ।

‘फलपुष्पे च बन्धने’^१ में भी व्यक्त हो गया है किन्तु सम्पूर्ण भाव काव्यकल्प सदावृत्ति’ में ही मिसला है^२ । अतः यह भाव कवि ने काव्यकल्पसदावृत्ति’ से ही लिया है ।

असत्य का सत्य मानकर वर्णन करना

प्रत्येक समुद्र में रत्न नहीं होते किन्तु कवि जहाँ भी समुद्र-वर्णन करते हैं वहाँ उसमें रत्नों का होना बर्णन करते हैं । यद्यपि हंस मानसरोवर में ही रहते हैं परन्तु कविजन छोटे-छोटे बकाश्यों में भी हंसों का होना बर्णन करते हैं । यही असत्य का सत्य मानकर वर्णन करना है^३ । केदार के इस वर्णन का आधार ‘काव्यकल्पसदावृत्ति’ तथा भर्तृहरिश्चर दोनों ही ग्रन्थ मासूम पड़ते हैं^४ ।

इसी प्रकार कवि राशि के अल्पकार को सूर्य से सीकर (येंद सी बनावर) मुट्ठी में भर लेते तथा चन्द्र की अग्निका को अंशुलि में भर कर पी लेने का वर्णन किया करते हैं^५ । यही बात केदारमिश्र ने इस प्रकार कही है^६ । किन्तु सम्भवतः केदार ने भ्रमरभङ्ग के निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद किया है^७ । हाँ एम (अपकार) तथा अग्निका के सम्बन्ध में बिये मए सदाहरण’ केदार के अपने हैं ।

१ भर्तृहरिश्चर मरिचि, १३, पृ ३३ ।

२ बसन्ते मातृपुष्पं फलं पुष्पं च बन्धने ।

अथोके च फलं ज्योत्स्नाध्वान्ते कृष्णाम्पलसो ॥

—का क वृत्ति, प्रकरण १, पङ्क्त ५, श्लोक ३३ ।

३ बहू बहू वर्णत सिन्धु सख तहू तहू रत्ननि लेखि ।

सूक्ष्म सरवर हू कहूँ, केदार हंस विसेखि ॥

—क० वि प्र ४ अं ३ ।

४ रत्नादि यत्र उजाड्यी हंसाद्यस्ववलाद्यये ।

—का क० वृत्ति, प्रकरण १, पङ्क्त ५, श्लोक ३३ ।

रत्नानि यत्र उजाड्यी हंसाद्यस्ववलाद्यये ॥

—भर्तृहरिश्चर, मरिचि १३, पृ ३३ ।

५. केन कहूँ भरि मुट्ठी तम सुकलि सिधलि बलाय ।

असुलि भरि पीबन कहूँ चन्द्र अग्निका पाय ॥

—क वि प्र ४ अं ३ ।

६. तिमिरस्य तथा मुट्ठिपाहात्वं सुविमेधता ।

—भर्तृहरिश्चर, मरिचि १३, पृ ३३ ।

७. तिमिरस्य तथा मुट्ठिपाहात् सुवि विमेधताम् ।

अंशुलिपाहात्ता कुम्भोपवाहात्वे विपुलिवप ॥

—का क वृत्ति, प्रकरण १, पङ्क्त ५, श्लोक ३३ ।

८. क वि, प्र ४ अं ३ १० (अपठः) ।

नियमबद्ध वर्णन

नियमबद्ध-वर्णन में परम्परा से आने वाली कड़ियों यथवा कविप्रविष्टियों में बँधकर चलना पड़ता है। कविजन वर्णन तथा भोजपत्र का अस्तित्व क्रमशः मत्स्या जल और हिमालय पर ही बस जाते हैं, यद्यपि ये वस्तुएँ अन्यत्र भी मिल सकती हैं। इसी प्रकार कवि भोग देव-रूप का वर्णन चरनों से तथा मनुष्य रूप का वर्णन छिर से किया करते हैं^१। इसका समर्थन 'धर्मकारशेखर' से भी हो जाता है^२।

कैशव की 'वर्णित चन्द्रम मलय ही हिमगिरि हीं सुखपात' इस पंक्ति का माँग 'काम्यकल्पसतावृत्ति'^३ में भी मिलता है। कविसौम्य वसन्त में कोकिल के बोलने और वर्षा में ही मयूरों के ह्वित होने का वर्णन करते हैं^४। इसकी पुष्टि 'धर्मकारशेखर' तथा 'काम्यकल्पसतावृत्ति' दोनों ही प्रत्यक्ष करते हैं^५। इसी प्रकार कैशव द्वारा 'वसु-वन सौं बिति सुतन सौं घसुरं कहूँ बहानि'^६ में व्यक्त भाव भी कैशवमित्र के 'वानवासुरवत्यानामैक्यमेवाभिधंक्षितम्'^७ से मिलता है।

यह प्रकरण 'काम्यकल्पसतावृत्ति' तथा 'धर्मकारशेखर' दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध होता है परन्तु नियमबद्ध-वर्णन के अन्तर्गत 'धर्मकारशेखर' के कर्ता कैशव-मित्र ने 'काम्यकल्पसतावृत्ति' की अपेक्षा अधिक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। कैशव ने बोड़े से उदाहरण लेकर कैशव मार्ग प्रदर्शन ही किया है। उपर्युक्त नियमबद्ध वर्णन बाते उदाहरणों को छोड़कर वेद्य के अभिप्राय उदाहरण अपने ही हैं। इस

१ वर्णित चन्द्रम मलय ही हिमगिरि हि सुखपात ।

वर्णित देवन चरण सैं छिर तैं मानुष गात ॥

—क. दि० प्र० ४ अं १।

२ हिमवत्येवमूर्जत्वम् चन्द्रनं मलये परम् ।

मानवा मीनितो बर्ष्वा देवाश्चरन्त पुनः ॥

—धर्मकारशेखर मरीचि १५, पृ० १९।

३ मूर्जत्वम् हिमवत्येव मलये ह्येव चन्द्रमम् ॥

—क. क० पुष्टि, मत्स्य १ लघु ५, स्तो १९।

४ कोकिल को कल बोमिबो बरगत हैं मयुमास ।

बरवा ही ह्वयित कहैं, केही कैशवदास ॥

—क. दि० प्र० ४ अं १५।

५ वर्षास्तेव शिखिप्रीडिर्मन्वादेव पिकण्वनि ।

तथा वसन्त एवाप्यभूतानां ध्वगितोऽन्यम् ॥

—धर्मकारशेखर, मरीचि १५, पृ० १९।

वर्षास्तेव मयूराणां कर्तं नृत्तं च वर्णयेत् ॥

—काम्यकल्पसतावृत्ति, मत्स्य १ लघु ५, स्तो १९४।

६ क. दि० प्र० ४ अं १५।

७. धर्मकारशेखर, मरीचि १५, पृ० १९।

प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि केसव के कवि-रीति-वर्णन का आधार 'प्रसंकार-रोचर' तथा 'काव्यकल्पमतावृत्ति' दोनों ही ग्रन्थ हैं। अधिकतर उदाहरणों के लिए केसव 'प्रसंकाररोचर' के आधी हैं और कुछ उक्त उदाहरण जैसे 'कल्पमता की योग्य श्यों मुखमपक्ष तम तुल', 'धनसि भर पीवन कहैं चन्द्र चन्द्रिका पाय इत्यादि जिनका सम्बन्ध 'प्रसंकाररोचर' में नहीं हुआ है 'काव्यकल्पमतावृत्ति' से ही लिए गए हैं।

निजमवत-वर्णन के अन्तर्गत केसव ने कविपरम्परा से चले आते सुन्दरियों के झोलाहू मृगारों^१ का उल्लेख किया है पर उनके निखाने में यदि ने कुछ स्वतन्त्रता से काम लिया है।

महानुप-वर्णन तथा पुरुष वर्णन दोनों ही केसव के अपने हैं। केसव पुरुष वर्णन के अन्तर्गत सुधारों को सर्व तथा वल्लभस को धिमा तथा कपाट क सवृष कहने का आधार 'प्रसंकाररोचर' है^२।

प्रसंकार-वर्णन

केसव ने प्रसंकार के आधारक अथवा सामान्य तथा विशिष्ट दो प्रकार माने हैं। किन्तु वे इन दोनों की न तो परिभाषा देते हैं और न व्याख्या ही करते हैं। केवल इसे परम्परागत साम्यता के रूप में ही ग्रहण कर लेते हैं^३। फिर 'तामरा' प्रसंकार के चार खेव किए गये हैं— १ वर्ण २ वग्न ३ भू भी ४ राज भी^४।

वर्णनकार

कविप्रिया का चौथी प्रमाण वर्णनकार-वर्णन को प्रविष्ट है। वर्णनकार के अन्तर्गत केसव ने स्नेह पीता कामा भयन (लास), धूम्र नीला तथा मिथित—

- १ प्रथम सकल सुखि मज्जन प्रमदवास आवक सुखेय केउपासनि सुधारिबो।
अंवराम भूषण विविध मुख दास राग कज्जलकमिल सोम सोहन निहारिबो।
बोसनि हंसनि चित आतुरी बसनि बाब वष वन प्रति पतिव्रत परिपारिबो।
केउछास सकिवास करहैं भूँवरि राये महु विधि सोरह सिमारन विपारिबो।

—क मि प्र ४ खं १७।

- २ सुगर्भसमुख-अंगवस्त्रस्तम्भेयहरतक ।

वस-कपाटन धिलापट्टन वर्णति ॥

—प्रसंकाररत्न, स्तंभ १४ व १५।

- ३ कविन कहै कविताल के प्रसंकार ई रूप।

एक कहै साधारण, एक विशिष्ट सकल ॥

—क मि प्र ३, खं ३।

- ४ तामरावर्णनकार की चारि प्रकार प्रकाश।

वर्ण वर्ण, भू राज-भी भूषण कैमवदास ॥

निमग्नबद्ध बालक

निमग्नबद्ध-वर्णन में परम्परा से आने वाली कविताओं तथा कविप्रतिष्ठितियों में बँधकर चलना पड़ता है। कविजन वर्णन तथा भोजन का अस्तित्व अप्रत्यक्ष बतवा चल और हिनासय पर ही बतसाते हैं, यद्यपि ये वस्तुएँ ध्यान भी मिल सकती हैं। इसी प्रकार कवि लोग देव-रूप का वर्णन करणों से तथा मानुष रूप का वर्णन शिर से किया करते हैं^१। इसका समर्थन 'मर्त्यकारणेश्वर' से भी हो जाता है^२।

केसव की वर्णित चम्पन मलय ही हिमगिरि ही भुवपाठ^३ इस पवित्र का माँव बर्पा में ही मयूरों के हृषित होने का वर्णन करते हैं^४। इसकी दृष्टि 'मर्त्यकारणेश्वर' तथा 'काम्यकल्पसतावृत्ति' दोनों ही सम्मिलित करते हैं^५। इसी प्रकार केसव द्वारा 'बनु कन सों बिधि सृजन सों यमूर कहत बखानि' में व्यक्त माँव भी केसवमित्र के बानवासुरदैत्यानादीशयमेकामिसंहितम्^६ से मिलता है।

यह प्रकार का 'काम्यकल्पसतावृत्ति' तथा 'मर्त्यकारणेश्वर' दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध होता है परन्तु निमग्नबद्ध-वर्णन के अन्तर्गत 'मर्त्यकारणेश्वर' के कर्ता केसव-मित्र में 'काम्यकल्पसतावृत्तिकार' की अपेक्षा अधिक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। केसव ने जोड़े से उदाहरण देकर केसव मार्ग प्रवर्धन ही किया है। उपर्युक्त निमग्नबद्ध वर्णन वाले उदाहरणों को छोड़कर नेशव के अधिकार उदाहरण अपने ही हैं। इस

१ वर्णित चम्पन मलय ही हिमगिरि हि भुवपाठ ।
वर्णित देवन करण सों शिर सों मानुष भाव ॥

२ हिमवत्येकभूर्जत्वक् चम्पन मलय करम् ।
मानवा भीमिषो बर्पा देवास्वरजत पुन ॥

—क. मि. प्र. ४ अ. २।

३ भूर्जत्वक् हिमवत्येव मलय ह्रौव चम्पनम् ॥
—मर्त्यकारणेश्वर मीमि १५, १० ११।

४ कोकिल को कल भीमिषो करजत है यद्वासा ।
वरपा ही हृषित कहै, केसवी केसवदास ॥

—क. क. पुष्टि, प्रथमः । पत्रक ५, स्तो. ११।

५ बर्पास्त्रेव पिबिषीर्निपात्रेव पिबिषमि ।
तथा वसन्त एकाम्ययुतावा ध्वनितोद्भवम् ॥

—क. मि. प्र. ४ अ. १४।

६ बर्पास्त्रेव मयुराणां कर्तं भूर्ज च वर्णयेत् ॥
—मर्त्यकारणेश्वर, मीमि १५, १० ११।

—काम्यकल्पसतावृत्ति, मन्त्र १ पत्रक ५, स्तो. १४।

१. क. मि. प्र. ४ अ. १५।

२. मर्त्यकारणेश्वर, मीमि १५, १० ११।

प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि केदार के कवि-रीति-बचन का साधार 'भक्तकार खेकर' तथा 'वाग्यकल्पलतावृत्ति' दोनों ही ग्रन्थ हैं। अधिकतर उदाहरणों के लिए केदार 'भक्तकारखेकर' के आशी हैं और कुछ उक्त उदाहरण जैसे 'कल्पलता की ओन्ह क्यों मुखसपल लम तुल', 'भक्तलि सर पीवन कहै चन्द्र चन्द्रिका पाय' इत्यादि जिनका सम्बन्ध 'भक्तकारखेकर' में नहीं हुआ है 'वाग्यकल्पलतावृत्ति' से ही लिए गए हैं।

नियमबद्ध-बचन के दृष्टान्त केदार ने कविपरम्परा से जते पाते सुन्दरियों के सोनह मृगारों^१ का उल्लेख किया है पर उनके मिलने में कवि ने कुछ स्वतंत्रता से काम लिया है।

महानुरूप बर्चन तथा पुरुष उगल दोनों ही केदार के धपने हैं। केवल पुरुष बचन के दृष्टान्त मृगारों को सर्व तथा बला-स्वत को धिसा तथा कपाट क चक्षु कहने का साधार 'भक्तकारखेकर' है^२।

भक्तकार-वर्णन

केदार ने भक्तकार के साधारण धधका सामान्य तथा विशिष्ट दो प्रकार माने हैं। किन्तु वे इन दोनों की न तो परिमाणा देते हैं और न व्याख्या हो करते हैं। केवल इसे परम्परागत साम्यता के रूप में ही ग्रहण कर लेंगे हैं^३। फिर 'सामान्य भक्तकार के चार भेद किए गये हैं— १ बर्च २ यग ३ मृधी ४ राज पी'।

वर्णनिकार

कविप्रिया का पाँचवाँ प्रभाव वर्णनिकार-वर्चन की धपित है। वर्णनिकार के दृष्टान्त केदार ने खेत पीसा कासा भरण (भात) भूम नीसा तथा मिभित—

- १ प्रथम सकल मुनि मञ्जन भयमबाध, बावक सुखेय केशपावनि सुबारिबो।
प्रयराग मृगण विविध सुख बाध राग कज्जसकसित भोज सोचन निहारिबो।
बोलनि हंसनि धित चातुरी बलनि बाह पन पत प्रति पठित्त परिपारिबो।
केधोदास सबसास करहूँ कुँवरि राखे यहि विधि खोरह सिमारन सिगारिबो।
—क. प्रि० प्र ४ अं १७।

- २ युगार्णवमृगकूँभरगडस्तम्भेयहरतर्क ।
बल-कपाटन धिसापट्टेन वर्ण्यते ॥

—भक्तकारखेकर, मरीफि १४ पृ ३ ।

- ३ कविन कहे कवितान के भक्तकार हैं रूप ।
एक कहै साधारण, एक विशिष्ट सकप ॥

—क. प्रि० प्र ४, अं २ ।

- ४ सामान्यभक्तकार को चारि प्रकार प्रकाश ।
वर्च वर्च मृ राज-पी मृगण केदारबाध ॥

—क० प्रि० प्र ४, अं ३ ।

इन सात प्रकार के रंगों को लिया है^१ और यह बताया है कि कौन वस्तु किस रंग की वर्णन करनी चाहिये, जैसे कीर्ति व्योम्ना बरा घाबि को स्वेत गरुड महु, सुमेर कमरु, पीर रस घाबि को पीठ बज्जन, राखस, काक, पाप घाबि को कृष्ण, बास रवि धमर पिक महावर, रौद्र रस घाबि को धरुण कपोत करम घाबि को धूम्र तथा कुबलय मरकट मणि घाबि को नील वर्ण का वर्णन किया जाता है। काव्यकल्पसप्तमूर्ति में छः ही वर्णों का उल्लेख है धूम्र (स्वेत) कृष्ण (काला) नीला रक्त (धरुण) पीठ पीर धूम्र (धूम्र)^२। 'धर्मकारखेवर' में केवल पाँच ही वर्ण बतलाए गए हैं स्वेत नील सोण (धरुण) पीठ और धूम्र^३। वैद्यमिश्र काले वर्ण को नीले वर्ण के अन्तर्गत ही मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने धमरचन्द्र द्वारा काले वर्ण के अन्तर्गत वर्णित कृष्ण चन्द्राक व्यास (ईषामन) राम धर्मजय यम धसुर (राखस) काली घनि शीपवी विप धम्बर (धाकास) मर कुहु धगल पाप तम निष्ठा कृष्णा केकी कावा और गुगार रस घाबि को नीले के अन्तर्गत ही लिया है। इन वस्तुओं को काले वर्ण की वर्णन करने में केदार ने धमरचन्द्र की 'काव्यकल्पसप्तमूर्ति' को ही आधार बनाया है। धमरचन्द्र ने हरित वर्ण का कोई उल्लेख नहीं किया है परन्तु वैद्यमिश्र ने उपसंजन के रूप में हरित वर्ण का भी उल्लेख किया है और बुध एवं मरकट मणि घाबि वस्तुओं को हरितवर्ण की बतलाया है^४। धमर ने हरित वर्ण को नीले के अन्तर्गत ही माना है और बुध शुक्र सूर्य के धरुण बुध शीबाल घाबि वस्तुओं को नीले वर्ण की बतलाया है^५। केदार ने भी धमरचन्द्र के समान हरित वर्ण का उल्लेख न कर उसे नीले वर्ण में ही सम्मिलित किया है और बुध सूर्य के धरुण शीबाल शुक्र तुलसी घाबि को नीले वर्ण का वर्णन किया^६। इसी प्रसंग के अन्त में धमर ने दो रूप धर्मात् मिश्रित वर्ण की वस्तुओं की ओर संकेत भर दिया है परन्तु ऐसी वस्तुओं के नाम नहीं दिए हैं^७। धमरचन्द्र ने मिश्रित वर्ण की वस्तुओं का उल्लेख किया है। उन्होंने स्वेत तथा स्वाभ स्वेत तथा रक्त स्वेत तथा पीठ रक्त तथा वयाम पीठ तथा स्वाभ और पीठ तथा

१. सेत पीठ कारे धरुण धूमर नीले वर्ण ।

मिश्रित केदारबास कहि सात भाँति धूमकर्म ॥

—क. प्रि. म. २. पं. ५।

२. का. क. वृत्ति प्रमाण ५ अक्षर २. ५ ११०-१११।

३. धर्मकारखेवर, मरीचि १०, पं. ३१।

४. इन्द्रमुपसंजनम्। हरिता सूर्यतुरगा बुधो मरकटादयः। हरति बोध्यम्।

—धर्मकारखेवर, मरीचि १०, पं. ३२।

५. का. क. वृत्ति, प्रमाण ५ अक्षर २, स्तोत्र ८२ ८३ ८४ (प्रमाण) ३ ११।

६. क. प्रि. म. २, पं. ३१ ३२।

७. ई. वृत्त्ये चाप्रसिद्धी च नियमोऽयमुदाहृतः।

सम्यङ्बस्तु यथा यस्यात्तत्तद्विबोधयति ॥

—धर्मकारखेवर, मरीचि १० पं. ३२।

रत्न वन का मान कराने वाले वृषपर्कघाटों के नाम दिये हैं^१। परन्तु केदार ने केवल श्वेत तथा कृष्ण श्वेत तथा पीत और श्वेत तथा सात वर्ण का मान करने वाले वृषपर्क घाट ही गिनाए हैं। अमरचन्द्र के ग्रन्थ शेषों का उल्लेख नहीं किया है। इसके प्रतिरिक्त अमरचन्द्र ने बहुत ही वस्तुपूर्व गिनाई है परन्तु केदार ने उनमें से कुछ का ही उल्लेख किया है। श्वेत और कृष्ण के अन्तर्गत केदार ने हरि, विष्णु, अन्नक, पाञ्चजन, नागराज, पमोराधि, सिंहीम, अमर अर्जुन, हरिण, कलकण्ठ, कृष्णनवीर तथा मोरव, चोवह, घाटों के नाम दिये हैं। 'पाञ्च' तथा 'पमोराधि' को छोड़कर शेष सभी नाम अमर से मिलते हैं। केदार का 'नागराज' अमर के 'नागेश' से मिल्न नहीं है। श्वेत और पीत के अन्तर्गत केदार ने छः घाट दिये हैं। राम, रत्न, घण्टापत्र, सोम, कमबीत तथा तारकूट। शेष सभी नाम अमर से मिलते हैं। केवल सोन के स्थान पर 'हेम' शब्द प्रयुक्त हुआ है। श्वेत और सात के अन्तर्गत केदार ने सुवि, हरि, पुष्कर, हंस, पक्ष, अन्न तथा कमल सात घाट दिये हैं। ये भी सभी अमर के अनुसार हैं।

अब स्पष्ट है कि मिश्रित वर्ण के अन्तर्गत गिनाए गए प्रायः सभी घाट केदार ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से ही लिए हैं। परन्तु शेष वर्णों के अन्तर्गत निरिष्ट वस्तुओं का आचार 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'असंकारशेखर' दोनों ही ग्रन्थ हैं। इन दोनों में भी केदार 'काव्यकल्पलतावृत्ति' के ही अधिक आश्रित हैं। कारण 'असंकारशेखर' की अपेक्षा 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में विभिन्न वर्णों के अन्तर्गत वस्तुओं की नामावली अधिक विस्तार के साथ प्रस्तुत की गई है। जब हम उक्त दोनों ग्रन्थों में विभिन्न वर्णों के अन्तर्गत भी हुई नामावली और केदार द्वारा दी हुई नामावली का मिलान करते हैं तो कुछ घाट ऐसे देखने में आते हैं जो 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'असंकारशेखर' दोनों में आते हैं। इन घाटों के विषय में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन घाटों का आचार दोनों में से कौन सा ग्रन्थ है। कुछ शब्द ऐसे हैं जो या तो 'असंकारशेखर' में पाए हैं या 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में ही। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो दोनों ही ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होते। ये शब्द निम्नलिखित ही केदार के अपने हैं। उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

श्वेत वर्ण के अन्तर्गत केदार द्वारा निरिष्ट वस्तुओं में से जो शब्द उक्त दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं वे ये हैं—१ हरिहय २ हर ३ राधि ४ सुधा ५ सोम ६ बम (बसराम) ७ काँचली ८ कमल ९ हिम १० सिक्ता ११ लड्ड १२ सिंह १३ दीप १४ हाथ १५ नारद १६ मुरार (मृणाल), १७ मुर घटित तथा १८ भौंकर (अन्नक)^२।

१ वा क० पृष्ठ, अमर १ सारक २ और ३ पृ ३३-३४ तथा ३८-४३ (अमर)

२ डा० पी.वि. ने न जाने किस आधार पर यह लिखा है कि भौंकर (अन्नक)

मुरघटित तथा मुरार (मृणाल) शब्द केवल 'असंकारशेखर' में ही पाए हैं (आचार्य केदारदास पृ० २३५)। ये तीनों शब्द उक्त दोनों ही ग्रन्थों में मिल जाते हैं।

—(असंकारशेखर, पृ ३१ तथा काव्यकल्पलतावृत्ति पृ ११८ स्तोक ३६, ३७ और ३८)।

सुरवदन तथा सुरवारण दो शब्द केवल 'प्रसंकारदीवर' में ही पाए हैं जिनका आधार यही ग्रन्थ है।

जो शब्द 'काव्यकल्पसतावृत्ति' से लिए गए हैं उनकी सूची इस प्रकार है—
१ कीरति २ कोन्ह (कण्ठप्रभा) ३ हरि (इन्द्र) ४ हरगिरि ५ सुर,
६ जनसार ७ मक ८ हीरा ९ कोड़ी १० करका (घोता) ११ नील
१२ कुम्ह, १३ भस्म १४ कपास १५ झाड़ १६ निर्मल १७ चंवर,
१८ चन्दन १९ हंस २० छत्र २१ सत्ययुध, २२ हूब, २३ बनि २४ संघ
२५ सङ्गार (तापयक) २६ सुकृति (पुष्प) २७ सत्ययुध, २८ दीप २९ फटिका,
३० फटिका ३१ धुक ३२ सुरपात्रि (सर्प-भवा) ३३ पारद ३४ प्रयोजन,
३५ सारदा, ३६ मंदार ३७ धूल तथा ३८ मोती।

केसव के अपने शब्द ये हैं—१ केवड़ा २ घुषि ३ सन्तमन ४ फेन
५ गणपति-दहन ६ काम-बनुष ७ सावर, ८ विमल विचार ९ बनेक (बनोपवीत)
१० स्त्रियों की बिलासकीड़ा, ११ सवारधन का उदय १२ नारायण का वध
१३ लक्ष्मी की बाजी १४ घोमा १५ धूमता १६ नारद का उपवेश
१७ ऋषियों की चोटियाँ १८ निष्पाप विहार तथा १९ सुवचन।

पीत वर्ण के अन्तर्गत केसव की उन वस्तुओं के नाम उपस्थित किये जाते हैं जो दोनों ही ग्रन्थों में पाए हैं—१ हरिवाहन २ विधि ३ हरनट ४ हरतास
५ दीपक ६ कीररस ७ सुरपात्र (इन्द्र) ८ नारोचना ९ चम्पक १० मैन
सिल ११ हापर, १२ नागरपूत १३ केसर तथा १४ कनक।

यहाँ न नाम दिए गए हैं जो 'काव्यकल्पसतावृत्ति' से ही लिए हैं—१ हरा
(पावती) २ हरण ३ चंपक ४ सुरगुह, ५ सुरगिरि ६ मंचक ७ सारोमुष
तथा ८ दिवस।

इन वस्तुओं के नाम केसव के अपने हैं—१ मधु २ मू ३ बोधनमूत
४ कमसकोष्ठ ५ चपला ६ पीठम तथा ७ पराग।

केसव ने कासे वर्ण के अन्तर्गत बहुत सी नवीन वस्तुओं का उल्लेख किया है,
जिनके नाम ये हैं—१ घाकास २ अति, ३ बिसाही (बिसासवाही) ४ राहु
५ चोर ६ जल-मग ७ गरक ८ रीछ ९ कर्मक १० अग्नि मार्ग ११ बिलाल
१२ मर, १३ सोम १४ छोम, १५ डुख १६ मोह १७ विरह १८ मधोवा
१९ गोपिका २० सोह २१ कष २२ काम २३ मस २४ काँच २५ कतह
२६ युद्ध तथा २७ छल प्रादि मानसिक भाव।

शेष सब वस्तुएँ समरन्धव से मिलती हैं।

रक्त वर्ण के अन्तर्गत केसव द्वारा दी हुई वस्तुओं में से ये शब्द दोनों ग्रन्थों
में पाये जाते हैं—१ इन्द्रपोष २ लघीत ३ कुंज ४ ललक ५ रतना

१ डा० पीकित ने इसे केसव के निजी शब्दों में लिखा है (प्रार्थन केसव
दास पृ० २३६) पर यह तो काव्यकल्पसतावृत्ति में मिल जाता है।

—(विश्वनाथदास-विश्वनाथदास-विश्वनाथदास, पृ० ११८ स्तोत्र ३१)।

१ बाजर-मुख ७ काकिल-नख ८ बकोर-नेत्र ९ पारावत-नेत्र १० केसरि तथा ११ रीदरस ।

निम्नलिखित शब्द 'काव्यकल्पसतावृत्ति' से लिए गए हैं—

१ कुसुम-विषय (पाटल), २ मदिरा ३ बास रवि ४ चमर ५ कुन्त ६ पल (मणि), ७ कृष्णकृष्णिका, ८ माषिक ९ शुक्रमुल १० कोकिल-मल ११ बकोर-नख १२ पारावत-नख १३ जवा-मुल १४ दाहिम १५ कियुक १६ मणिक १७ पावक १८ पन्तव १९ नीटिका २० चम्पन २१ दाहिम घर्म, २२ मजीठ २३ महावर, २४ नख २५ सम्प्रा २६ कमहुँस की बंधु तथा चरण ।

केदार के निजी शब्द ये हैं—१ गजमुख, २ ताम्बा ३ सारससीस ४ बाज (नीलकण्ठ) ५ चरण (मूर्ध का सारथी), ६ रमिर तथा ७ गैर ।

इसी प्रकार धूम्रवर्ण के धातुगत गिनाई गई वस्तुओं में से केवल 'बूंदरी' को छोड़कर बिसका धातुगत केवल 'काव्यकल्पसतावृत्ति' ही है शेष सातों का उल्लेख 'मसकारधेसर' तथा 'काव्यकल्पसतावृत्ति' में मिलता है ।

वर्णमालिकार

छठे प्रभाव में केदार ने वर्णमालिकार का निकषण किया है । जिन वस्तुओं की प्राकृति धबका गुण लेकर कोई उक्ति कही जाती है उन्हें केदार वर्ण मानते हैं । यों तो वर्ण अनेक हैं पर केदार ने इन छट्ठाईस को ही प्रमुख माना है—(१) सम्पूर्ण, (२) धावर्त, (३) कुटिल, (४) त्रिकोण, (५) सुवृत्त, (६) सीकण (७) कुण (८) कोमल (९) कठोर (१०) निरुचल (११) बंधन (१२) सुखर (१३) दुखर (१४) मन्दमति (१५) तीव्रत (१६) लघु, (१७) सुख्य (१८) कूरस्वर (१९) सुस्वर (२०) मधुर (२१) धवल (२२) बलिष्ठ (२३) लघु (२४) मूठ (२५) मण्डन (२६) जाति (२७) सबावति तथा (२८) बानी^१ । इनमें से सम्पूर्ण कुटिल त्रिकोण सुवृत्त तथा मण्डनाकार वस्तुओं का धातुगत 'काव्यकल्पसतावृत्ति' का प्रदान ४, स्तवक ३ है^२ धीर तीक्ष्ण कोमल कठोर, निरुचल बंधन सुखर दुखर मन्दमति तीव्रत लघु सुख्य कूरस्वर, सुस्वर, मधुर धवल, बलिष्ठ तथा बानी का धातुगत इसी शब्द का बीजा प्रदान धीर बीजा स्तवक है^३ । बहूँ धमरपाद ने

१ अ पि प्र द, ब १३ ।

२ श्लोक १०४—(सम्पूर्ण) श्लोक १३९ १४२ (कुटिल) श्लोक १४७-१४८ (त्रिकोण) श्लोक १४४ १४५ (सुवृत्त), श्लोक १०२ १०७ (मण्डनाकार) ।

३ श्लोक १४४ १४५ (सीकण) श्लोक २२३ (कोमल) श्लोक २२४ (कठोर) श्लोक १८२ (निरुचल-विष्ट) श्लोक १६ (बंधन-आदिशर) श्लोक १८२ १८५ (सुखर) श्लोक १८५ १८८ (दुखर) श्लोक १४४ (मन्दमति) श्लोक २२१ (तीक्ष्ण निमित्त) श्लोक २२२ (लघु-वर्ण) श्लोक २२८ (सुख्य) श्लोक २ ३-४ ७ (कूरस्वर-कठोर विष्ट) श्लोक २०१ २०४ (सुस्वर-मधुरादिभिः) श्लोक २२८-२२९ (मधुर) श्लोक १६८ (धवल) श्लोक १४२ १४७ (बलिष्ठ) तथा श्लोक २२९ (बानी) ।

महत्तम, सूक्ष्म सांगतिक धर्मांगतिक पवित्र अपवित्र कूर, धकूर, सुपम्प दुर्गम्प कट्टु वार धम्स धादि बहुत से धर्म्य गुण तथा धाकार वाली वस्तुओं का भी विवरण दिया है जिनका केसव ने कोई उल्लेख नहीं किया है वहाँ केसव ने कछ धर्म्य वस्तुओं का वर्णन किया है जिनको धर्मरचय ने छोड़ दिया है, यथा धावर्ताकार गुह सत्य मूठ धगति और सवायति का वर्णन । इन वस्तुओं का वर्णन केसव की मौक्तिक सङ्ग्रहना का परिणाम है । जिन वस्तुओं का वर्णन धर्मर ने 'काव्यकल्प्य सत्तावृत्ति' में किया है उनमें उन्होंने केसव की ध्येक्षा धनिक निस्तुत नामावृत्ति प्रस्तुत की है । केसव की कुछ वस्तुओं का धाकार तो 'काव्यकल्प्यसत्तावृत्ति' है शेष उन्होंने अपनी ओर से जोड़ी हैं । यहाँ तीन उदाहरण देना यथेष्ट होगा ।

मन्दागति वाली वस्तुओं में धर्मरचय ने छानि पंगु मुनि बालक नितम्बिनी (सुन्दरी) चंदन पुष्पखीम व्यक्ति हंस वृषभ तथा गज का नाम दिया है^१ । केसव ने निम्नांकित वस्तुएँ दी हैं^२ ।

शीतल वस्तुओं के अन्तर्गत धर्मरचय ने सज्जनों के बचन प्रभु, प्रसार प्रिबसन सत्संग काम्यवश सन्तोष सुभा बल हेमन्त चन्द्रमा तथा भोला का उल्लेख किया है^३ । केसव ने निम्नलिखित वस्तुएँ बतलाई हैं^४ ।

इसी प्रकार सूक्ष्म वस्तुओं के अन्तर्गत धर्मर महल स्कन्ध धनिकट नलकूबर धविनीकुमार नकुल नल तथा पुष्करा का उल्लेख करते हैं^५ । केसव ने जो वस्तुएँ गिनाई हैं वे इस प्रकार निदिष्ट हैं^६ ।

कछ वस्तुओं के अन्तर्गत भी केसव की सब वस्तुएँ धर्मर से मिल जाती हैं परन्तु इस प्रकार के उदाहरण एक-भाष ही हैं यथा निरुचय धादि वस्तुएँ । निरुचय के अन्तर्गत केसव ने सती भाट संतमन धर्म तथा धर्मन का उल्लेख

१ मन्दागति छानि पङ्गु मुनिबालो नितम्बिनी ।

चन्द्रमस पुष्पपुष्पो हंसो वृषभहस्तिनी ॥

—क. क. वृत्ति, प्रथम ४, स्तोक ४ श्लोक ११४ ।

२ कुलतिथ हास बितास ब्रुव काम कोर मर माणि ।

छानि मुह चारस हंस पञ्च, तिवनति मंद वल्लानि ॥

—क. वि. अ. ९, अ. १२ ।

३ का क. वृत्ति, प्रथम ४ स्तोक ४ श्लोक १११ ।

४ भसयन बाळ कलिक मुळ धोरो मिथी भीत ।

प्रिमर्शमम धनसार, छानि बल बलरु हिम शीत ॥

—क. वि. अ. ९, अ. १० ।

५ का क. वृत्ति प्रथम ४ स्तोक ४ श्लोक ११८ ।

६ मम नलकूबर सुरभिपक हरिसुत महल निहारि ।

दमयंती सीतादि भिय सुन्दर कप बिचारि ॥

—क. वि. अ. ९, अ. ४१ ।

क्रिया है^१। ये सभी वस्तुएँ घमर में ज्यों की त्यों पाई जाती हैं^२।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छठे प्रभाव की अधिकांश सामग्री केदार ने काव्यकल्पसत्तावृत्ति^३ के नीचे प्रदान की है। कहीं-कहीं उन्होंने अपनी ओर से भी वस्तुओं का उल्लेख किया है।

भूमि-ओ-बाग़ें

साठवें प्रभाव में भूमि-ओ का वर्णन किया गया है। केदार गुप्त के प्राकृतिक वृक्षों एवं वस्तुओं के काव्य में वर्णन को ही भूमि-ओ कहते हैं। भूमि-ओ के अन्तर्गत वे वृक्ष, नगर, बन बाग़ गिरि आश्रम छरिता रवि छवि सागर तथा पदच्छतु को मानते हैं। इसमें से प्रत्येक को लेकर यह भी बताया गया है कि किस किस के वर्णन में किन-किन वृक्षों अवश्या वस्तुओं का उल्लेख करना चाहिए। केदार की इन वस्तुओं का वर्णन 'काव्यकल्पसत्तावृत्ति' तथा 'भलंकारछेखर' दोनों ही ग्रन्थों में मिलता है। इनमें भूमि-ओ तथा राव्य-ओ बिनका विवेचन आगे किया गया है। नाम का कोई विभाजन नहीं है और दोनों प्रकार के वर्णनों के अन्तर्गत आने वाली सब वस्तुओं के वर्णन की परिपाटी एक ही प्रकरण में बतलाई गई है^४।

केदार द्वारा लिखित कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका वर्णन 'काव्यकल्पसत्तावृत्ति' तथा 'भलंकारछेखर' दोनों ही ग्रन्थों में ज्यों की त्यों मिलता है तथा गिरि सूर्योदय और वर्षा। ऐसी अवस्था में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उक्त वर्णनों का आधार दोनों में से कौन सा ग्रन्थ है। वृक्ष नगर, बन छरिता आदि केदार द्वारा वर्णित छेप वस्तुओं के वर्णन में दोनों ग्रन्थों में बहुत ही थोड़ा अन्तर देखने में आता है। कहीं-कहीं तो केवल एक ही अक्षरों अथवा अक्षरों का ही अन्तर है। इस अन्तर के आधार पर यह निर्णय करना सुगम हो जाता है कि केदार ने कहीं काव्यकल्पसत्तावृत्ति से सहायता ली है और कहीं 'भलंकारछेखर' से। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। वृक्ष के वर्णन में घमर ने ज्ञान बहुदृश्य पद्म धाम्य दुर्ग धाम जन-समूह नदी आदि का वर्णन करना बतलाया है^५। केदारविषय ने 'पद्म' के स्थान

१ सती समर मट, संतमन बर्म घमर्म निमित्त।

जहाँ जहाँ वे बरनिये, केदार निवचन दित ॥

—क प्रि प्र ६, बं २३।

२ स्थिराणि पृथ्वी धर्मो वर्माधर्मो सतां भग।

सती सौर्ग रने नीरः प्रतिपन्नं महात्मनाम् ॥

—अ० क० वृत्ति, प्रत्यय ४ लाक ४ श्लोक १८६।

३ का क० वृत्ति, प्रत्यय १ लाक १ लाक भलंकारछेखर, मरीचि १६।

४ देखो बहुदृशनिदृश्यपद्मधाम्याकरीध्रुवा।

दुर्गधामजनाधिमयदीमातृकादयः ॥

—अ० क० वृत्ति, प्रत्यय १ लाक ४ श्लोक १८६।

पर 'पशु' का उल्लेख किया है^१। केसव ने भी 'पशु' का उल्लेख किया है^२। इस प्रकार केसव 'पशु' के वर्णन के लिए तो 'मल्लकारखेडर' के शब्दों हैं पर नवी ग्राम गङ्गा-वन-समूह वन-भाषि के वर्णन उन्होंने 'काव्यकल्पसतावृत्ति' में लिए हैं। कारण 'मल्लकारखेडर' के निर्माता ने भी सम्भवतः 'काव्यकल्पसतावृत्ति' को ही अपना आधार बनाया है। यही वस्तु सुगन्ध सुषेध भाषा तथा पहनाने के वर्णन केसव के अपने हैं।

इसी प्रकार नगर के वर्णन में घमरचन्द्र ने घटारी खाई परकोटा राजमार्ग तोरण, घाघम सड़क, प्याज बाग प्रासाद बाबड़ी भाषि के वर्णन करने की विधि बतलाई है^३। 'मल्लकारखेडर' में 'घालम' के स्थान पर 'ध्वज' का निर्देश है^४। केसव ने भी 'ध्वजा' का उल्लेख किया है^५। यहाँ भी 'ध्वजा' के वर्णन का आधार केसवमिश्र है और शेष वन घमरचन्द्र से लिए हैं। कूप तड़ाव मसठी (परकोटा) तथा नगर के विशेष भागों का वर्णन केसव ने अपनी धीरे से जोड़ा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि केसव ने कहीं 'काव्यकल्पसतावृत्ति' को अपना आधार बनाया है और कहीं 'मल्लकारखेडर' को। परन्तु अधिकांश उदाहरण 'काव्यकल्पसतावृत्ति' से ही ली गई हैं। केसव ने उन्हीं वस्तुओं की वर्णन विधि का निर्देश किया जिनका घमरचन्द्र तथा केसवमिश्र ने किया है। केसव 'घाम'^६ वर्णन करने की विधि को छोड़ दिया है। यहाँ यह कह देना असंगत न होगा कि केसव ने सर्वत्र उक्त ग्रन्थों में दिए गए मसलों का शब्द प्रति शब्द अनुवाद करके नहीं रस दिया है, बल्कि अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है। ऐसे स्थान होने मिले ही हैं जहाँ केसव के मसलों तथा उक्त ग्रन्थों में दिए मसलों में असर प्रति असर साम्य है, यथा

१. देखो बहुसमिश्रव्यपमुपाम्याकरोद्भवा ।

सुर्ध्वजामयनाविनयनवीमातुकावम ॥

—मल्लकारखेडर मटीपि १३, पं० ५५ ।

२. रतनजानि पशु पक्षि वसु, वसन सुगन्ध सुषेध ।

नदी नगर यङ्ग, वरमिये भाषा मूयल देख ॥

—क. वि. ॥ ७ अं २ ।

३. पुरेष्टटपरिजातप्रप्रतीनीतोरणालया ।

प्रासादाऽऽवाप्रपाऽऽरामबापीवैश्यासतीत्वरी ॥

—क. क. वृत्ति, मसल १, लयक ३, स्तोत्र २४ ।

४. पुरेष्टटपरिजातप्रप्रतीनीतोरणध्वजा ।

प्रसादाऽऽवाप्रपाऽऽमा बापी वैश्या सती नदी ॥

—मल्लकारखेडर मटीपि १३, पं० ५५ ।

५. खाई कोट घटा ध्वजा बापी कूप तड़ाव ।

बारनारि मसठी छठी, वरनहु मगर समाय ॥

—क. वि. पं० ७ अं ४ ।

६. क. क. वृत्ति मसल १, लयक ३, स्तोत्र २४ तथा मल्लकारखेडर, मटीपि १३, पं० ५५ ।

चन्द्रोदय की वर्णन प्रणामी । अधिकांश बातों का आधार ये दोनों ही ग्रन्थ हैं यथा अगर अथवा सूर्योदय के वर्णन के विषय में । सूर्योदय के वर्णन की विधि बतसाते हुए अमर ने घटवता सूर्यकान्तमणि अक्षराक्षर कमल पवित्र एवं नेत्रों को सुरा तथा मक्षम चन्द्रमा दीपक धीपणि ब्रुक (उल्लू) तम (मग्नकार) चोर, कुमुद और कमटाओं के बुझ के वर्णन करने का निर्देश दिया है^१ । अमर का यह वर्णन 'अर्णकारोत्तर' (मरीचि ११ पृ० ५६) में दिए गए वर्णन से अक्षरशः मिलता है । केशव की अक्षरता, कोक तथा कोकनद को बुझ और कुबलय नक्षत्र धीपणि दीप धसि ब्रुक चोरो तथा मग्नकार को बुझ धादि अधिकांश बातों का वर्णन काम्य कल्पलतावृत्ति तथा अर्णकारोत्तर के ही अनुसार है । पय (जल) की पावनता मुनियों के शंख तथा वेदध्वनि करने धादि का निर्देश केशव का अपना है^२ ।

बो-एक स्वानों पर केशव ने उक्त दोनों ग्रन्थों से केवल कुछ ही बातों को लिया है जैसे हेमन्त की वर्णन विधि में । काव्यकल्पलतावृत्ति में हेमन्त की वर्णन विधि का उल्लेख करते हुए अमर ने दिन की लघुता चीन यव मय बक धादि की वृद्धि के वर्णन का विधान किया है^३ । केशवमिश्र ने भी इन्हीं बातों के वर्णन करने की सिखायी है^४ । परन्तु केशव ने तेज सून (रुई) ताँबूस स्त्री ताप सूर्य रानि का दोष होना दिन का लघु होना तथा चीत धादि के वर्णन का निर्देश किया है^५ । इसी प्रकार यहाँ रानि का दोष होना तथा चीत केवल इन्हीं बातों को केशव ने इन ग्रन्थों से लिया है ।

बो-एक लक्षण ऐसे भी देखने में आते हैं जहाँ केशव ने उक्त ग्रन्थों से उनिक भी सहायता नहीं ली है जैसे चिदिर अथवा धरद् के वर्णन के विषय में । चिदिर के वर्णन में अमरचन्द्र ने चिरीय कुम्ह कमल धादि पुष्पों का वर्णन होना तथा

१ सूर्योदयता रश्मिमिथकाम्बुवपवित्रजोषनप्रीति ।

तारेन्मुखीपद्मीगङ्गिब्रुकतमरवीरकुमुदकुलटापि ॥

—क० वृत्ति, अक्षर १ लोचक ५ लोको २५ ।

२ सूर उदय से अक्षरता पय पावनता होय ।

शंख वैदधुनि मुनि करे पय सरी सब कोय ॥

कोक कोकनद घोषहत बुझ कुबलय कुलटापि ।

ताता, धीपण, दीप धादि, ब्रुक, चोर तम हानि ।

—क वि० प्र ७ पृ० १८-१९ ।

३ हेमन्ते दिनलघुता चीतयवस्तम्भमकबहिमानि ।

—क० वृत्ति, अक्षर १ लोचक ५ लोको २६ (पूर्वार्ध) ।

४ हेमन्ते दिनलघुता मकबक्यवृद्धिचीतसम्पति ।

—अर्णकारोत्तर, मरीचि ११ पृ० ५६ ।

५ तेज सून ताँबूस तिय ताप तपन रतिवन्त ।

बीह रानि लघु दिनस मुनि चीत सहित हेमन्त ।

—क वि०, प्र० ७, पृ० २१ ।

'सिधिर' के उत्कर्ष का वर्णन करने का नियम बताया है^१। केसवमिश्र ने कुछ और ग्रन्थों में भी पुरुषों के विलसने तथा कमल के मुरझाने का वर्णन करने का उल्लेख किया है^२। परन्तु केसव ने राजा से लेकर रंक तक सभी के मनो की प्रसन्नता और उनके मिथ्या होकर दिन-रात गाधने-गाधने हँसने-सेसने का वर्णन करने की शिखा दी है^३। यही केसव ने स्वतन्त्र रूप से ही सिधिर के वर्णन का विधान किया है।

राज्यधी-वर्णन

आठवें प्रभाव में राज्यधी का वर्णन किया गया है। राज्यधी के अस्तर्गत केशव ने राजा रानी राजकुल प्रोहित (पुरोहित) वसपति (सेनापति) ब्रूत मन्त्री, मंत्र प्रयाण हय गय (पक्ष) अपूर्व संध्याम बाबेट बल-केति विरह, स्वप्नर तथा सुरत को माना है। 'काम्यकल्पसतावृत्ति' में केसव द्वारा वर्णित इन सभी सगह वस्तुओं का वर्णन मिल जाता है^४ और अमलकारसेखर में केसव ग्यारह ही का उल्लेख मिलता है^५।

'काम्यकल्पसतावृत्ति' में कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका वर्णन 'अमलकारसेखर' में नहीं मिलता जैसे अमल (मन्त्री) पुरोहित सेनापति (बलपति) ब्रूत और मन्त्र। केसव ने इनका वर्णन किया है। अतः केसव इनके लिए निश्चय ही 'काम्यकल्पसतावृत्ति' के श्रद्धालु हैं। अमलकारसेखर में भी कुछ ऐसी वस्तुओं का निर्देश हुआ है जो 'काम्यकल्पसतावृत्ति' में नहीं हैं जैसे अतः सम्प्राप्त धाम अमलकार वृद्ध तथा अमलकार (अमलकारसेखर मरीचि १६ पृ. ६)। केसव ने यहाँ भी अमलकार का ही अनुसरण करते हुए इन वस्तुओं का वर्णन नहीं किया है। कुछ वस्तुएँ ऐसी भी हैं जिनका वर्णन उक्त दोनों ग्रन्थों में अमलकार मिल जाता है तथा सुरत^६। मूल

१ सिधिर सिधिरमाहिकुम्हाम्बुबहासिधिरतोत्कर्ष ।

—का क इति० अग्रज १ अक्षर ५, श्लोक २३ (अष्टम) ।

२ कुन्दसमृद्धि कमलहृतिर्वा पुष्पामोह ।

—अमलकारसेखर, मरीचि १६, पृ. १६ ।

३ सिधिर सरस मन बरनिसे केसव राजा रंक ।

गाधत गाधत रंति दिन सेसत हँसत निर्यक ॥

—का इति० अग्रज १ अक्षर ५, श्लोक २३ ।

४ का क इति० अग्रज १ अक्षर ५—मूल (श्लो ५०) अमल (श्लो १) पुरोहित (श्लो १६) वैषी (श्लो २०) कुम्हार (श्लो १५), सेनापति (श्लो ११) मन्त्र (श्लो ७९) ब्रूत (श्लो ७३), ब्रूत (श्लो ७४) प्रयाण (श्लो ७५), हय गय (श्लो ७६) अतः (श्लो ७७) धाम (श्लो ७८), विरह (श्लो ८०) स्वप्नर (श्लो ८१) अमलकार (श्लो ८२) और सुरत (श्लो ८३) ।

५ अमलकारसेखर, मरीचि १६—मूल (पृ १०) वैषी और प्रयाण (पृ १५) ब्रूत अतः गय, स्वप्नर (पृ १६) अमलकार सुरत अमलकार (पृ १०) ।

६ सुरत सारिका माया सीतिकाः सुहृत्सतावृत्ति ।

काम्यकल्पसतावृत्तिरप्यमलकारसेखर ।

—का क इति० अग्रज १ अक्षर ५, श्लो १२ तथा अमलकारसेखर मरीचि १६, पृ १० ।

(राजा) बेसी (रानी) तथा अमात्य (मंत्री) का वर्णन 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में 'असंकारसेखर' की अपेक्षा अधिक विस्तृत रूप में किया गया है।

कहीं-कहीं केसव ने असंकारसेखर का भी ध्याय्य किया है। केसव ने यद्यपि प्रत्येक वस्तु के वर्णन की प्रणाली का निर्देश करते हुए अधिकांश उन्हीं वस्तुओं का निरूपण किया है जो दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध होती है तथापि कुछ स्थलों पर ऐसी वस्तुएँ भी देखने में आती हैं जिसका उल्लेख केवल 'असंकारसेखर' में ही हुआ है जैसे बिरह के वर्णन में अमरपद्म के ताप निश्वास मीन कृपांगता अञ्ज-शय्या निशादीर्घता जागरण क्षीतसता सप्मता आदि के वर्णन^१। 'असंकारसेखर' में 'चिन्ता' का उल्लेख अधिक है^२। केसव ने भी 'असंकारसेखर' के ही समान 'चिन्ता' का उल्लेख किया है^३।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि राज्यधी-वर्णन के लिए अधिकांश काव्यकल्प लतावृत्ति को ही आधार बनाया गया है पर कहीं-कहीं 'असंकारसेखर' से भी सहायता ली गई है।

उपर्युक्त साधारण या सामान्य असंकार को प्रचलित अर्थ में असंकार नहीं माना जा सकता। यह कवि-शिक्षा है। असंकारों का बाल्पक्षिक वर्णन विशिष्टासंकार या विशेषासंकार के अन्तर्गत ही आता है।

विशिष्टासंकार-वर्णन

'कविप्रिया' के नवें प्रभाव से लेकर सोलहवें प्रभाव तक केसव ने विशिष्टासंकारों या विशेषासंकारों का विवेचन किया है जिसमें शब्दासंकार तथा अर्थसंकार दोनों ही सम्मिलित हैं। परन्तु उन्होंने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। केसव ने विशेषासंकारों की संख्या १७ मानी है। इनके नाम इस प्रकार हैं—१ स्वभाव (स्वभावोक्ति) २ विभावना ३ हेतु, ४ विरोध ५ विधेय ६ उत्प्रेला ७ आर्जप ८ क्रम ९ गचना १० आक्षिप ११ प्रेमा १२ वसेप (निदम और विरोधी) १३ सूक्ष्म १४ लेख १५ निवर्धना १६ ऊर्ध्वत्व १७ रसवत् १८ अर्थान्तराभास १९ व्यतिरेक २० अपह्नुति, २१ उक्ति (बन्धोक्ति अन्वोक्ति)

१ बिरह तापनिश्वासपिङ्गा मीन कृपाङ्गता।

अञ्जशय्या निशादीर्घता जागर-क्षीतिरोप्यता ॥

—का० क इति, प्रजन १, पञ्च ५, स्तोत्र ८७।

२ तापनिश्वासपिङ्गामीनकृपाङ्गता।

अञ्जसंख्या निशादीर्घता जागर क्षीतिरोप्यता ॥

—असंकारलोका मटीषि १६, इ ३।

३ स्वास निशा शिखा बड़े मयल परेखे पाव।

कारे पीरे होत इस ताते सीरे पाव ॥

—क मि, प्र० ५, अ० १८।

व्यधिकरणोक्ति विशेषोक्ति और सहोक्ति) २२ व्यावस्तुति २३ निम्बास्तुति २४ अमित २५ पर्यायोक्ति २६ मुक्त २७ समाहित २८ सुखिष्ठ २९ प्रतिष्ठ ३० विपरीत ३१ उपक ३२ वीपक ३३ प्रहेमिका ३४ परवृत्त ३५ उपमा ३६ यमक तथा ३७ विभासकार^१ । सुख्य असंकार यद्यपि ३७ ही माने गए हैं पर अमान्तर मेरों से उनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है ।

विभिन्न असंकारों का विवेचन और व्यापार

मैंने प्रभाव में छः असंकारों स्वभाव (स्वभावोक्ति) विभावना हेतु, विरोध विशेष तथा उत्प्रेक्षा का विवेचन है ।

१ स्वभाव (स्वभावोक्ति)

केशव के स्वभाव असंकार के लक्षण का साथ इसी शीर्ष मम्मट कव्यक विश्वनाथ दादि आचार्यों के समान है । केशव के अनुसार, जिस वस्तु अथवा व्यक्ति का जैसा रूप अथवा गुण हो उसको उसी प्रकार से वर्णन करना स्वभाव (स्वभावोक्ति) कहलाता है^२ ।

- १ जानि स्वभाव विभावना हेतु, विरोध विशेष ।
उत्प्रेक्षा आशेष कम गचना आधिय भेष ॥१॥
- प्रमा रसय सभेष है नियम विरोधी मान ।
सुखम कैल निरर्थाता ऊर्जस्वा पुनि जान ॥२॥
- रस अर्थातरस्यास है भेद सहित व्यतिरेक ।
केरि अपहृति उक्ति है, बक्रोपति सविवेक ॥३॥
- अन्योक्ति व्यधिकरण है सुविशेषोक्ति भाषि ।
किरि सहोक्ति को कहत है, कम ही सों घयिनापि ॥४॥
- व्यावस्तुति निदा कहै पुनि निम्बास्तुति अंत ।
अमित सु पर्यायोक्ति पुनि मुक्त सुनो सब संत ॥५॥
- स समाहित सु सुखिष्ठ पुनि श्री प्रसिद्ध विपरीत ।
उपक वीपक भेष पुनि कहि प्रहेमिका मीत ॥६॥
- पर्यकार परवृत्त कह्यो उपमा यमक सुविषय ।
माया इतने भूषणनि युधित कीजै मित्र ॥७॥

—क० मि० प्र० ६ ।

(यहाँ केवल 'रसय' के दो भवों तथा 'उक्ति' के पाँच भेदों का ही उल्लेख किया गया है) ।

२ जाको जैसी रूप गुण कहिये ताही साव ।

तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कहिराज ॥

—क० मि० प्र० ६ पं० ८ ।

२ विभावना

केसव ने विभावना के दो भेद माने हैं। जहाँ बिना कारण ही कार्य सिद्ध हो जाय वहाँ प्रथम विभावना होती है और वहाँ प्रसिद्ध कारण से कार्य हो जाय वहाँ द्वितीय विभावना होती है^१। केसव के उक्त दोनों भेद—प्रथम और द्वितीय विभावना दण्डी के स्वामाधिकृत्य और कारणान्तर भेदों से क्रमशः मिलते हैं^२। प्रथम विभावना का उदाहरण तो दण्डी के स्वामाधिक विभावना के उदाहरण के साथ का अनुवाद ही है। दण्डी ने स्वामाधिक विभावना का निम्नांकित उदाहरण दिया है—

अनञ्जितासिता वृद्धिर्नृणाञ्जितानता ।

अरञ्जितोत्तरावयवमपरस्तव सुन्दरि ॥^३

“हे सुन्दरि ! तुम्हारी छाँवें बिना छाँवे भी खाय हैं भीहूँ बिना पाकृष्ट किए भी बरू हैं और तुम्हारे समर बिना रंगे हुए भी भक्षण हैं ।”

केसव इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं —

भुङ्कटी कुटिम बीसी तँसी न करे हूँ होहि

छाँवे ऐसी छाँवें केछोपय हेरि हारे हैं ॥

काहे के सिंगार कँ बिगारति है मेरी छाँवी

तेरे रंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं ॥^४

भोज के भी स्वामाधिकृत्य एवं कारणान्तर विभावना के भक्षण और उदाहरण^५ दण्डी से मिलते हैं। स्वयं का भी प्रथम विभावना का सञ्जन^६ वही है जो केसव का है।

३ हेतु :

केसव ने दण्डी के सर्वप्र हेतु की सामान्य परिभाषा नहीं दी है छीने भेदों के वर्णन से ही प्रारम्भ किया है। वे हेतु के दो भेद मानते हैं—समाय और

१ कारण की बिनु कारणहि, उरो हेतु बेहि ठौर ।

छाँवें कहत विभावना केसव कवि धिरमोर ॥

कारण कौनहु जानते कारण होय नु सिद्ध ।

जानो भग्य विभावना कारण छाँहि प्रसिद्ध ॥

—क० मि प्र २ अं ११ पद १३ ।

२ प्रसिद्धहेतुम्यावृत्त्या यत्किञ्चित् कारणान्तरम् ।

यस स्वामाधिकृत्यं वा विभाष्य सा विभावना ॥

—अभ्यासरी, परि २ श्लो १२६ ।

३ अभ्यासरी परि० २, श्लो ११ ।

४ क० मि प्र २ अं १२ ।

५ सरलगीतमर्मप्रकरण पु० ३१८ ३२६ ।

६ कारणमात्रे कायस्योत्पत्तिविभावना ।

—वर्तमान ४ १३८ ।

अभाव^१। सभाव हेतु वह कहलाता है जो अन्य हेतुओं के सम से उत्पन्न होता है। अभाव हेतु स्वयं निर्बल होता हुआ भी कार्य करता है। बच्ची के अनुसार हेतु के दो भेद हैं—कारक तथा आपक^२। कारक हेतु ने फिर दो उपभेद दिये गए हैं। भाव साधन में कारक हेतु और अभाव-साधन में कारक हेतु। पुनः इसके भी उपभेद बतलाए गए हैं। केदार के उपर्युक्त सभाव हेतु और अभाव हेतु का आधार बच्ची के कारक हेतु ने दो उपभेद ही हैं। केदार के अभाव-सभाव हेतु क उदाहरण में उद्युत प्रतिम धरण —

पीछे प्रकाश प्रकाश छसि, बड़ि प्रेम समुद्र रहे पहिले ही ॥^३

पर बच्ची द्वारा 'कार्यान्तर बिभहेतु' के उदाहरणस्वरूप दिए गए निम्नलिखित स्तोक की भी स्पष्ट छाया है

पश्चात् पर्यस्य किरणानुरीर्णं जम्बमच्छसम् ।

प्रापेत् हरिखालीखानुरीर्णं रावसागर^४ ॥

'मृगशोचरी वृक्षियों का प्रेमसागर पहले ही समुद्र बुझा का जगद्विम्ब किरणों को बिकीर्ण कर बाद में उचित हुआ।

केदार ने आपक हेतु को छोड़ दिया है और न उन्होंने प्रेमियों का ही उल्लेख किया है। ऐसा जान पड़ता है कि केदार बच्ची के दिए हुए भेदों को ठीक-ठीक न समझकर मड़बड़ कर गए हैं। यही कारण है कि केदार का सभाव हेतु का उदाहरण बच्ची के अनुसार अभाव-साधन में कारक हेतु का उदाहरण बन गया है। बच्ची का उदाहरण है—

अश्वत्थारण्यमाजुष स्मृत्वा मलयगिरिम् ।

पश्चिमानाममावाय पवभोग्यमुपस्थित^५ ॥

'पवन बन की हिमाटी और मलयगिरि के निर्दरों का स्पर्श करके बहूँ हुई

१ हेतु होत है भाँति ॥ बरनत सब कबिराव ।

केदारबास प्रकाश करि बरनि सभाव अभाव ॥

—क मि प्र ६ अं १५।

इस छन्द में केदार ने दो ही भेदों का उल्लेख किया है। उन्होंने समाव-अभाव हेतु का उदाहरण (क मि प्र ६ अं १८) केदार तीमरे भेद को भी उदाहरण दिया है। कवि ने इस भेद का आधार भी काव्यारस को ही बनाया है किन्तु अपने ही से।

२ कारकआपकी हेतु

—आचार्य परि० १ श्लो २३५।

भोज ने भी 'हेतु' के भेदों में इन दोनों भेदों को माना है।

—छ कु कव्याम्प ५ १२०।

३ क मि, प्र ६ अं १५।

४ काव्यारस परि १ श्लो २३०।

५ बही, परि० १ श्लो २३८।

यमन पक्षियों के विनाश के लिए उत्प्रेषित है ।" कश्यप ने भी उन्नाव हेतु क उवाहरण में इसी प्रकार का भाव रखा है^१ । इसी प्रकार केसव का समान हेतु का उवाहरण विभावना का हो गया है ।

४ विरोध

केसव की दृष्टि में विचारपूर्वक को हुई विरोधमय बचन रचना में विरोध भावकार होता है^२ । दण्डी^३, प्रागह^४ उद्भट^५ आदि भाषाओं के विरोधाभासकार के बलन का भाव नहीं है जो केसव का है । दण्डी के श्रिया-विरोध वस्तुगत दुःख विरोध, प्रत्यक्षतः पुण्य विरोध विषय-विरोध आदि छ भेदों का कश्यप ने उल्लेख नहीं किया है । दण्डी ने विरोधाभासात्मक के उवाहरणस्वरूप निम्नलिखित दत्तांक दिया है—

हृत्प्राग्भातुरस्तापि बुद्धिः कर्त्तावत्तन्मित्रो ।

भाति विषयसमीपतः कस्य ते कलभायिनिष्ठः ॥

‘हे मधुरभाषिणि तुम्हारे मित्रों का जो कृप्य (ममवान् कृप्य तथा स्वाम्) शीर धर्तुन (पाण्डव तथा स्वतः) में प्रगुरक्त होते हुए भी कर्म (कुन्ती पुत्र तथा कान्) का प्रबलम्बन करते हैं, कौन विवशास करेगा ?’ कश्यप ने विरोधाभासकार के उवाहरण

- १ कश्यप चरितं मुन्य चने धरविन्दन के मकरव सरीसरी ।
मासरी बल मुलास मुकेसरि केरकि चपक को बन पीरो ॥
रंमन के परिरेमन सज्जन भवै बनो पमसार को सीरो ।
सीतल मंद सुबच समीर हृदयो इनसों मिमि बीरव पीरो ॥

—क मि म० ६, अ० १६ ।

- २ केसवभास विरोधमय रचित बचन विचारि ।
सासों कइत विरोध सब कविकूल सुबुधि सुधारि ॥

—क० मि० प्र १, अ० १६ ।

- ३ विरुद्धाभां पदार्थानां यत्र संघर्षवर्धनम् ।
विशेषवर्धनायैव स विरोधः स्मृतो यथा ॥

—भाष्यार्थी, परि २ स्तो ११६ ।

- ४ युगस्य वा श्रियाया वा विरुद्धाभ्यामिवाभा ।
या विशेषाभिधानाय विरोधं तं विदुर्बुधाः ॥

—भाष्यार्थकार परि० ३ स्तो १३ ।

- ५ युगस्य वा श्रियाया वा विरुद्धाभ्यामिवाभा ।
या विशेषाभिधानाय विरोधं तं प्रचक्षते ॥

—भाष्यार्थकारसहित

- ६ भाष्यार्थी, परि २ स्तो० १३३ ।

में जो लक्ष्य दिया है उसके अन्तिम पद का भाव दण्डी के श्लोक का भावानुसार ही जान पड़ता है^१ ।

केदार दण्डी के ही समान विरोधाभास को विरोध ही के अन्तर्यत मानते हैं। स्पष्ट रूप से केदार ने यह बात नहीं लिखी है, परन्तु पूर्वपृष्ठों में ही हुई सामाजिकी से यह बात प्रकट हो जाती है। कारण इसमें विरोध का तो नाम दिया गया है विरोधाभास का नहीं। केदार के अनुसार जहाँ विरोध की प्रतीति ही हो वस्तुतः विरोध न हो वहाँ विरोधाभास प्रसङ्गकार होता है^२। ज्ञान से देखा जाय तो केदार के विरोधाभास का यह मतलब बामन तथा कम्पक दोनों ही के विरोध का लक्षण है^३ ।

५ विशेष

बड़ी भामह, उद्भट बामन भोज आदि आचार्यों ने विषेय प्रसङ्गकार का उल्लेख नहीं किया। उद्भट^४ मम्मट^५ कम्पक^६ तथा विरवनाथ^७ आदि आचार्यों ने

- १ ऐरी मेरी सखी ठेरी कँसे कँ प्रतीत कीजै
कछानासारी बृग करपानुसारी हैं ।

—क० पि० प० २, पं० २ ।

- २ बरनत सदै विरोध सो धर्य सबे धविरोध ।
प्रवट विरोधाभास यह समुक्त सब सुबोध ॥

—क० पि० प० २, पं० २२ ।

- ३ विरुद्धाभासत्वं विरोधः ।

—आचार्यभारतवृत्ति, पृ० ३८ तथा अर्थभारतवृत्ति पृ० १३४ ।

- ४ किञ्चिद्व्यवसायस्य यस्मिन्निधीयते निराधारम् ।
तादृशपदार्थमात्रं विज्ञेयोऽपि विरोध इति ॥
अर्थकमनेकस्मिन्नाचारे वस्तु विद्यमानतया ।
सुगपद्विधीयतेऽप्यवधारणं स्याद्विधेय इति ॥
अवधारणार्थो युगपरकार्त्तित्वं च कुर्वीत ।
कतुमद्यर्थं कदा विज्ञेयोऽपि विरोधोऽप्यम् ॥

—अर्थभारतवृत्ति, पृ० १२२ १२३ ।

- ५ बिना प्रसिद्धाचारमाधेयस्य व्यवस्थितिः ।
एकात्मता युगपद् भूतिरेकस्यानिकमोचरा ॥
अन्तरप्रकुर्वत कार्यमद्यन्यस्याप्यवस्तुनः ।
तर्पय करणं चेति विरोधस्त्रिविधः स्मृतः ॥

—अर्थ भ० प० २, पृ० २३४ ।

- ६ अनाचारमाधेयमेकमनेकमोचरमप्यवस्तुपरस्परकरणं च विरोधः ।

—अर्थभारतवृत्ति पृ० १३३ ।

- ७ यदाधेयमाधारमेकमनेकमोचरम् ।
किञ्चित् प्रकुर्वत कार्यमद्यन्यस्येतरस्य च ॥
कार्यस्य करणं विना विरोधस्त्रिविधस्तथा ।

—अर्थ भ० पृ० २, पं० ३, पं० ३२५ ।

‘विधेय’ का उसके सीमों भेदों के साथ उसे दे तो किया है पर केसव का सक्षण^१ उसमें से किसी के भी सक्षण से नहीं मिलता। हाँ सम्मक के ‘असंकारमुख’ पर वृत्ति की टीका करते हुए समुद्रवर्ष ने ‘विधेय’ असंकार का सामान्य सक्षण इस प्रकार दिया है—

असंस्मयिन् असंस्मयिणे निवर्त्यो विधेय इति सामान्यसक्षणम्^२ ॥

अर्थात् असंस्मय से सम्भावित निवर्त्य विधेयपार्श्वकार कहलाता है। समुद्रवर्ष ने इस सक्षण पर केसव का अशोचिहित उदाहरण पुनः पढ़ा है—

माश्री नहीं, गयराज नहीं, रब पति नहीं ब्रह्मपति विहीनो ॥
केसवदास कठोर न तीक्ष्ण भूमिहृ हाव हृष्णार न जीनो ॥
जोग न जानत मज न जंज न संज न पाठ पद्यो परबीनो ॥
रखक लोकन के सुमंथारिनि एक मिलेकनि ही बरा कोनो^३ ॥

६ उत्प्रेक्षा

केसव के विचार से ‘उत्प्रेक्षा’ पार्श्वकार नहीं होता है जहाँ घोर वस्तु में घोर की वस्तु की जाती है^४। यथी^५ मोर^६ यावि क सक्षण का भी भाव शीघ्रता से यही निकल सकता है। कदाचित् केसव ने इस पार्श्वकार का आधार ‘काव्यप्रकाश’ को बनाया है^७।

१ सामक करण विकस बहु होय साध्य की सिद्धि । -

केसवदास बखानिये सो विधेय परसिद्धि ॥

—क० प्रि० ॥ ६ अ० २४।

(जहाँ काव्य का साधक कारण अपूर्ण हो पर कार्य पूर्य सिद्ध हो जाय वहाँ विधेयपार्श्वकार होता है)

२. असंकारसूत्र ५ १३१।

३ क० प्रि० ५ ६ अ० १७।

४ केसव घोर वस्तु में घोर कीजिये तर्क।

उत्प्रेक्षा ताशों कई बिनकी बुद्धि संपर्क ॥

—क० प्रि० ५ ६ अ० १०।

५. अयथैव वृत्तिरचेतनस्यैतस्मिन् वा।

अयथोत्प्रेक्षयते यत्र तामुत्प्रेक्षा विवर्त्यता ॥

—भाष्यवर्त परि० १ श्लो० १२१।

६ अय्यबाधस्ति यत्र वस्तु यस्यामुत्प्रेक्षयते प्रत्यक्षा।

—स० कु० कव्यप्रकाश, ५ ४१६।

७ सभाषणमशोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य यत्।

—अ० प्रि० ५ ६ अ० १२२।

७ आश्लेष

आश्लेष धर्मांश के वर्णन में 'कविप्रिया' का पूरा बसना प्रभाव मय गया है। बण्डी ने आश्लेष का लक्षण 'प्रतिषेधोक्तिराश्लेष' दिया है। श्री जीवानन्द विद्या-सागर इसकी व्याख्या यों करते हैं—

'अस्तु प्रारब्धस्यापि निषेधोक्तेश्चार्थे निषेधभाष्यत्वं, न तु तत्त्वतः प्रतिषेधः तात्त्विकस्यै वैचित्र्याभावात्'।

इससे स्पष्ट है कि वास्तविक निषेध में धर्मांश के वैचित्र्य का अभाव रहता है। परन्तु केशव ने वास्तविक प्रतिषेध को ही आश्लेष मान लिया है^१। इस प्रकार उनका आश्लेष का लक्षण सिद्धित बन गया है। केशव द्वारा दिये गए उदाहरणों से तो यह सत्य और भी डीमा बन जाता है।

केशव ने आश्लेष का विस्तार यद्यपि बण्डी के अनुसार ही किया है तथापि अन्तर स्पष्ट है। बण्डी के विचार से प्रतिषेध का वर्णन केवल वर्तमान और भविष्य को ही कामों में सम्मिलित है परन्तु केशव के अनुसार भूतकाल में भी प्रतिषेध का वर्णन हो सकता है^२। बण्डी ने आश्लेष के २४ भेद दिये हैं परन्तु केशव ने केवल १२ ही माने हैं। इनमें भी छः माषी (भविष्य) वर्तमान संशय आश्रित धर्म और उपादा शप ही बण्डी के अनुसार हैं। इनमें छः कुछ का केवल नाम-साम्य ही है, सत्य भिन्न है। केशव के प्रेम अधीरज धीरज मरण और शिक्षाश्लेष^३ नामक प्रत्येक भेदों का बण्डी उल्लेख नहीं करते। बण्डी के धर्मांशों को समझने में केशव गड़बड़ कर गए हैं। 'धर्म धर्म' बण्डी का समिप्राय शोभसता आदि पुण्यों से है। यह बात उनके धर्मांशों के भीचे दिये गए उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी—

तत्र तन्मन्त्रि मिष्यैव कृमिक्रमेण मार्गवम् ।

यदि सत्यं मुमुक्षेव किमकाण्डे वज्रमिध भाम्^४॥

१ काव्यदर्शने परि २ स्तो १९ ।

२ केशव की व्यक्तिकला से अन्वृत, पृ. १९१ ।

३ कारण के आरम्भ ही जहाँ कीवत प्रतिषेध ।

आश्लेषक ताशों कहत बहुत बिधि बरनि सुमेध ॥

—क. वि. प्र. १. अ. १।

४ तीनों काम बसामिये भावी, भयो तु होइ ।

नबिकूल कोऊ कहत हैं यहि प्रतिषेधहि बोइ ॥

—क. वि. प्र. १. अ. १।

यहाँ 'कोऊ' से केशव का संकेत 'बघी की ओर है।

५ प्रेम अधीरज धीरज संशय मरण प्रकाश ।

आश्रित बरन उपाय कहि, शिक्षा नैशवदास ॥

—क. वि. प्र. १०, अ. १।

६ काव्यदर्शने परि २ स्तोत्र १२० ।

‘हे तन्वङ्गि तुम्हारे धर्म मूठे ही सुकुमार कहे गए हैं। यदि वस्तुतः वे कोमल हैं तो धर्म ही मुझे सहसा धर्मों पीड़ित करेते हैं ?

किन्तु केसव ने धर्मोपेय का जो उदाहरण^१ दिया है उससे प्रकट होता है कि केसव ने ‘धर्म’ से पातितयत आधिक्य का मान लिया है। केसव ने धर्मोपेय के सङ्ग^२ से भी यही व्यक्त होता है कि केसव ने ‘धर्म’ से अणु का मान लिया है। आशिय तथा उपामाशेय के शब्दों और केसव के उदाहरणों का मिसान करने पर विदित होता है कि दोनों में इनका सङ्गण एक ही समझ है। शब्दों ने उपामाशेय के उदाहरण में निम्नलिखित श्लोक दिया है

सहिष्ये विरहं नात्र वैदुष्यान्धर्म्मं यम ।

यद्वत्तनेनो कर्म्मणं प्रहर्त्ता मां न पश्यति^३ ॥

हे माय ! आपके विरह को मैं सहन कर लूँगी, (केवल) आप मुझे यदुस्य धर्मन से हीनिए जिससे मोहित करने वाला कामदेव नेत्रों में धर्मन होने पर मुझे देख न सके”

केसव की नायिका भी दूसरे शब्दों में इसी भाव को व्यक्त करती है^४ ।

केसव ने म्यारहवें प्रभाव में कम मयना आशिय प्रेम श्लेष सुदम सेस निवर्त्तना कर्मन्ति रसवत समान्तरत्यास व्यतिरेक और अपह्नुति नामक प्रसकारों का वर्णन किया है ।

८. क्रम

केसव ने क्रम का जो यह मतान—आदिमन्तपरि वरस्त्रिये सो क्रमकेशवरास^५ दिया है वह स्पष्ट नहीं है। किन्तु उदाहरणों से विदित होता है कि जिसे केसव ने क्रम

१. का ही नहीं ‘रहिने’ तो प्रमृता प्रगट होति
‘वसन’ कहौ तो द्वित हाजि नाहि सहनो ।
मार्ग सो करहुं तो उरास भाव प्राणनाथ
साज न पसहुं कैसे लोक साज बहनो ।
केसोराय की सौ तुम सुनहु छबीसे लाल
जसे ही बलस कोरौ नाहीं राजा रहनो ।
सँधिमें छिछाओ सीख तुमहीं सुमान पिय
तुमहि बसत मोहि बेसो कहु कहनो ॥

—क मि प्र १ अं १ ।

२. राजस अपने यम को नहीं काज रहि जाय ।

—क मि प्र १ अं १६ ।

३. शम्भारत परि ९, स्तो १५१ ।

४. मुरति मेरी धबीठ के ईठ जती कैं रही जो नख मन मारै ॥
प्रमिनि छमिनि यावि है केसव कोऊ न मोहि कहूँ पहिचानै ॥

—क मि प्र १ अं २२ ।

५. क मि प्र ११ अं १ (प्रमयद) ।

समकार वतभाषा है उसे सम्मट, क्यक विषयगत आदि भाषायों ने 'एकावली' नाम दिया है। 'एकावली' के विषय में दिया हुआ उक्त सभी भाषायों का निम्न लिखित उदाहरण

न सज्जनं यत्न सुखाकपकम्,
न पर्यन्तं तत्, यत्नमीनपदम् ।
न दृष्टव्योऽसौ कलगुणितो न यः,
न युक्तिं तन्म सहार यम्न ॥

केसव के कर्म के उदाहरण से भिन्न बाधा है। इसी भाषा में सम्मट आदि भाषायें जिसे यथासत्य मानते हैं उसी को बामनाचार्य ने कर्म नाम से लिखा है। केसव ने सम्मवत यह नाम बामनाचार्य के अनुकरण पर ही रखा है।

२. वस्तुना

केसव ने 'वस्तुना' समकार का लक्षण इस प्रकार दिया है—वस्तुना तो कहत जिनके बुद्धि प्रकाश है। वस्तुतः यह विशिष्टाकार न रहकर साधारण वस्तु-वर्णन

१. स्वाप्यतेऽप्योहते वापि यथापूर्वं पर परम् ।
विशेषणतया यत्न वस्तु एकावली दिवा ॥

—का प्र १, प २२६।

यथापूर्वं परस्व विशेषणतया स्वापनेऽप्योहने वी एकावली ।

—समकारम् ५ १२५।

पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन पर परम् ।
स्वाप्यतेऽप्योहते वा वेत्स्यात्तर्कावली दिवा ॥

—का प्र १, प २२६।

२. सोमति सो न सभा जहं बृह न बृह न ते न पदे कष्ट नाहि ।
ते न पदं जिन साधुन साधित दीह बवा न विपे विपे नाहि ।
सो न बया न न धर्म बरे भर धर्म न सो जहं दान बवाहि ।
दान न सो जहं साध न केसव साध न सो न बरे कस छाहि ॥

—का प्र १, प २२६।

३. उद्दिष्टानां पदार्थानामनुहोती यथाक्रमम् ।
यथासंख्यमिति श्रोतं संत्वानं क्रम इत्यपि ।

—का प्र १, प २२६।

मुपसासुपदिष्टानामनुहोती यथाक्रमम् ।

क्रमसो योऽनुमिर्यो यथासंख्यं तदुच्यते ।

—का प्र १, प २२६।

यथासंख्यं क्रमोक्तं क्रमिकायां उपपन्नम् ।

—का प्र १, प २२६।

४. उपमेयोपमाभावां क्रमसम्बन्धः क्रमः ।

—का प्र १, प २२६।

५. क्रमं प्रो ११ ११ ११ (उपपन्नम्) ।

अतः यह शब्द केशव ने केशवमित्र से लिया है। विक्रम राम विवि धिवेनी, तप्त तथा परिताप आदि शब्द केशव ने अपनी ओर से जोड़े हैं।

इसी प्रकार 'भार' के सूचक—उपाय युग 'सात' के सूचक—बोक द्वीप मुनि सूर-हय भार, स्वर, आठ का सूचक—छिछि 'नों' का सूचक—धगहार तथा 'रस' का सूचक—विशेषदेवा आदि शब्दों के लिए केशव अलंकारधेनु के शब्दी हैं और 'भार' का सूचक शिवा सात के सूचक—पातान समुद्र एवं नौ के सूचक—(नव) निवि तथा (नव) ग्रह आदि शब्दों के लिए अमरजगह के। 'भार' के सूचक (चतुर) व्यूहरचना करण परार्थ 'पांच' का सूचक—(पंच) कवल (पंच) बल (पंच) सन्धि (पंच) कम्पा (पंच) यम्य (पंच) पिता पंचामृत 'छ' के सूचक—(वद्) धंग (वद्) माता (वद्) घाततापी मधुप-पक्ष साठ के सूचक—पिरि ठाल तब धन इति कर्ता कन्व पुरी लब्धा सुख चिरंजीव मर श्रुति मातृका बाहु 'आठ' का सूचक—ठकनी (अष्ट प्रकार की स्वाधीनपठिका आदि नायिकाएँ) 'नों' के सूचक—गाटिका भक्ति तथा 'रस' के सूचक—दद्यावतार दोषी शम्भ केशव के अपने हैं।

अतः स्पष्ट है कि केशव इस प्रकरण के लिए अमर तथा केशवमित्र के शब्दी हैं। कहीं-कहीं उनकी मौलिकता के भी दर्शन होते हैं।

१० आशिय

केशव के आशिपासंकार का आचार भी दृष्टी है किन्तु केशव ने इसके क्षेत्र को अधिक व्यापक बना दिया है। दृष्टी के विचार से आशिपासंकार वहाँ होता है वहाँ कोई अनिमित्त वस्तु की प्राप्ति की इच्छा प्रकट करे भवना प्रार्थना कर^१। परन्तु केशव ने माता पिता शुभ देव और सुनियों द्वारा दिए आशीर्वादों की ही आशिपासंकार मान लिया है^२। इस प्रकार केशव के आशिपासंकार का दृष्टी के आशिपासंकार से केवल नाम-साम्य है।

११ प्रेमा

केशव का प्रेमासंकार दृष्टी और भामह^३ का 'प्रेमस्' है। केशव त्रिवी

१ आशीर्वातामिमित्ते वस्तुग्राहसनम्।

—आश्वर्य, परि १ लो० ११०।

२ मातु, पिता, शुभ देव मुनि कहत नु कछु मुष्ट पाय।

ताही सँ सब कहत हैं आशिय कवि कविराय॥

—क वि, प्र ११ श्ल० २४।

३ भामह ने लक्षण तो नहीं दिया है पर उदाहरण नहीं दिया है जो दृष्टी ने। अतः सात होता है कि दोनों के लक्षण एक ही हैं।

मनोभाव के निष्कपट वर्णन को प्रेमासंकार कहते हैं^१। केशव की यह परिभाषा बन्दी पर ही आधारित प्रतीत होती है। बन्दी प्रियतर आश्रय को प्रेमस् संस्कार मानते हैं^२। आचार्य विश्वनाथ का मत इन से कुछ भिन्न है। उनके विचार से जब भाव किसी वस्तु का ग्रंथ हो जाता है तो 'प्रेमस्' संस्कार होता है^३। अर्थात् प्रेम आचार्य इस नाम का कोई संस्कार नहीं मानते।

१२ स्नेय

केशव ने स्नेयासंकार नहीं माना है वहाँ दो तीन प्रथमा अथवा प्रकार के धर्म निश्चिन्ते^४। उन्होंने स्नेय के सात भेद किए हैं अमिन्न पद मिन्न-पद अमिन्न क्रिया मिन्न क्रिया विच्छ कर्मा, नियम घोर विरोधी^५। बन्दी ने अमिन्न-पद मिन्न पद अमिन्न-क्रिया अविच्छक्रिया विच्छ-कर्मा नियम नियमाद्येपक्योक्ति अविरोधी घोर विरोधी नामक नौ भेदों का उल्लेख किया है^६। 'मिन्न-क्रिया' केशव की मौलिक उद्भावना का फल है। स्नेय भेद बन्दी के अनुसार है। 'मिन्न-क्रिया' नाम सम्भवतः बन्दी के विच्छ कर्मा (विच्छ क्रिया)^७ के आधार पर दिया है। बन्दी के वस्तु भेदों अविच्छक्रिया नियमाद्येपक्योक्ति घोर अविरोधी का केशव ने निकृपण नहीं किया है। परिभाषा केशव ने मिन्नपदस्नेय की ही है^८। स्नेय भेदों की बन्दी के ही समान नहीं थी। दोनों

१ कपट निपट मिटि भाव कहैं उपजै पुरख क्षेम ।

ताहीँ ही सब कहत हैं, केशव उत्तम प्रेम ॥

—क. वि. प्र. ११ अ. १७।

२ प्रेम प्रियतराश्रयानम् ।

—आचार्य वरि २ श्लो १७५।

३ रसभाषी तदाभाषी भावस्य प्रथमस्तथा ।

पूणीयूतत्वमायान्ति यदासंक्रुतपस्तथा ।

रसभवेन ऊर्ध्वस्ति समाहितमिति कमात् ॥

—सा. द. वरि १ का. सं. ७७४।

४ स्नेय तीनि अरु भाँति ॥ भागतु जानें सब ।

स्नेय नाम ताहीं कहत जिनकी बुद्धि समर्थ ॥

—क. वि. प्र. ११ अ. २१।

५ क. वि. प्र. ११ अ. १४ तथा ११।

६ शिष्टमिष्टमपेकार्थमेकस्यानित्तं यत् ।

तदमिन्नपदं मिन्नपदप्रत्ययमिति त्रिया ॥३१०॥

अस्त्यमिन्नक्रिया कश्चिच्चविच्छक्रियोऽनर ।

विच्छकर्मा चास्त्यस्य स्नेयो नियमवानपि ॥३१४॥

नियमाद्येपक्योक्तिरविरोधी विरोध्यपि ॥३१२॥

—आचार्य वरि १।

७. पद ही में पद काटिये ताहि मिन्न पद जानि ।

मिन्न धर्म पुनि पद न कै, उपमा स्नेय बखानि ॥ क. वि. प्र. ११ अ. २१।

प्राजायों द्वारा दिये गए उपाहरणों के मिन्नान करने से विवित होठा है कि दोनों के सभाम एक दूसरे से भिन्न हैं ।

१३ सूक्ष्म^१

केसव के मत में सूक्ष्मार्थकार यहाँ होता है जहाँ किसी भाव, इंगित अथवा आकार से अर्थ के मन की बात जान ली जाती है^२ ।

सम्मट^३ तथा शङ्क^४ ने अपने अपने सभण में इंगित और आकार का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है पर दोनों ने अलग अलग दो भिन्न उपाहरणों में इंगित और आकार द्वारा भाव प्रकाशन विवितभाषा है । परन्तु केसव ने शङ्की^५ के ही अनुसार अपने सभण में दोनों बातों का सम्मिश्रण किया है । केशव के इंगित-सक्य सूक्ष्म का उदाहरण शङ्की के दशोक का आवागुवाव ही है । शङ्की का दशोक है—

कला ली संवसो माधीत्याधीलें अस्तुमकधम् ।

अक्षर्य काष्ठमवसा लीलापदम् श्वपीसयत् ॥^६

‘हुमाउ समायम कव होगा इस बात की शीर्षों के सम्मुख स्पष्ट कहने में धिय की घस मर्ष जानकर कामिनी ने लीला-कमल को बन्ध किया अर्थात् राशि में मिसने का संकेत किया ।

कला ने कृष्ण से भी ऐसी ही स्थिति में इसी प्रकार का संकेत कराया है^७ ।

१४ सेवा

केसव के इस अलंकार का नामकरण भी शङ्की के ही आचार पर हुआ है । शङ्की सेवामकार यहाँ मानते हैं जहाँ शक्ति से मिस से किसी प्रकट बात का गोपन किया

१ भामह ने ‘सूक्ष्म को अलंकार नहीं माना है (हिनुत्त सूक्ष्म सेतोऽत्र नास्त्य आलम्भ मत—अलंकाररत्न पृ १०) ।

२ कौन हू भाव प्रभाव से जानी धिय की बात ।
इंगित तें आकार तें कहि सूक्ष्म अवदात ॥

—क पि, म० ११, पं ४२ ।

३ कुतोऽपि ससितं सुकमोऽप्यर्थोऽप्यस्य प्रकाश्यते ।
धर्मण केमधिष्ठाय तत्सूक्ष्मं परिचरते ॥

—काम्यप्रकाश ३ १०, पृ २२१ ।

४ संलसितसूक्ष्मार्थप्रकाशने सूक्ष्मम् । —अलंकाररत्न ३ १८४ ।

५ इंगिताकारसक्योर्ष लीक्यात् सूक्ष्म इति स्मृतं ।

—शङ्कार्थरत्न परि २, श्लो० १६ ।

६ काम्यप्रकाश परि १ श्लो० २१२ ।

७ सखि सोहत मोपसमा मई नोबिन्द बँडे हुते कुति की बरि कैं ।
जनु केशव पुरन पद सतैं पित जात अकोरन को हरि कैं ।
तिनको असटो करि घानि जियो बैकु नीरख नीर मनो मरि कैं ।
कहु नाहे ते बैकु निहारि मनोहर कैरि दियो कलिक करि कैं ॥

—क पि, म० ११, पं ४२ ।

जाता है^१ । केदार का सखन^२ यद्यपि स्पष्ट नहीं है तो भी उदाहरण के देखने से ज्ञात होता है कि उनके सखन का आशय भी वही है जो दण्डी का है । केदार का उदाहरण दण्डी की घरेखा पत्रिक प्रच्छा है । दण्डी ने यह उदाहरण दिया है—

धान्द्राद्यप्रवृत्तं मे कथं दृष्टुं च कथं कथम् ।

अत्र मे पुष्परजसा वातोदपूतेन द्रुवितम् ॥^३

'कथम्' को देखकर मेरी आँखों में धान्द्राद्य उमड़ रहे थे उसी समय भरे मेरे पत्र पत्रन के भ्रंशों से जड़ावे हुए पुष्प-वराण से क्यों द्रुपित किए गए ? इसका केदार के उदाहरण^४ से विमान कीजिए ।

जिसे केदार सेह मानत है उसी को सम्मत, सत्यक आदि व्याख्योक्ति के नाम से पुकारते हैं^५ ।

१३ निदर्शना

केदार के निदर्शना का सखन भी दण्डी के अनुकरण पर लिखा गया है पर सतना स्पष्ट नहीं है । दण्डी निदर्शना व्यञ्जकार वहाँ मानते हैं वहाँ किसी व्यञ्ज कर्म के लिए प्रवृत्त होने पर उसके अनुकूल किसी सत् या असत् फल की प्राप्ति दिखलाई जाती है^६ । केदार के विचार से निदर्शना व्यञ्जकार वहाँ होता है वहाँ किसी भी एक वस्तु से सभी चीर बुरे वातों का समान परिणाम (सर्पात् मल का मला घोर बुरे का

१ सेसो सेसेन निमिन्मवस्तुपनिग्रहणम् ।

—आम्बारस, परि २, श्लो० २६३ ।

२ बतुराई के सेह ठे, बतुर न समुद्धि सेह ।

बलव कवि कोविद सब वाको केदार सेह ॥

—

३ आम्बारस परि २, श्लो० २६० ।

—द० वि० म० १११ श्रं ४० ।

४ सेसत है हरि नामे बने बड़े बड़ी प्रिया रति से वसति सोनी ।

केदार बनेहुँ पीठि में सीठि बरि कुष कुंकुम की रचि रीनी ॥

मानु समीप दुराई मने तिहि सारिफ भावन की बति होनी ।

बुरि कपूर की बुरि निमोहन मूँषि सरोरह सोहि मोहोनी ॥

—क० वि० म० १११ श्रं ४० ।

५ अद्रिन्मवस्तुपनिग्रहणं व्याख्योक्तिः ।

—व्यञ्जकारण ५ १६३ ।

व्याख्योक्तिरच्छद्मनोद्रिन्मवस्तुपनिग्रहणम् ।

—आम्बारस ५ २०६ ।

६ सर्पात्सिद्धप्रवृत्तेन किञ्चित् सप्तदशं फलम् ।

सबदशा निवर्त्येत यदि तत्सम्पानिर्दशकम् ॥

—आम्बारस परि २, श्लो० ३४८ ।

बुरा) प्रकट किया जाता है^१ । दण्डी द्वारा सत्कर्मनिर्घर्षता के आदर्शों पर साहचर्यस्वरूप विवेक एवं इस श्लोक—

अथयमेव सविता पदमेवैवमस्ति भिषम् ।
विभाषितुमुत्थीनां कर्म तुह्यनुग्रहम्^२ ॥

की भाव ज्ञाना केवल की भीमे सिद्धी पंथियों में स्पष्ट देखी जा सकती है
सूर्य समान सोम भिष हूँ अभिष कहूँ ।
सुख दुःख निज छई अस्त प्रपठतु है^३ ॥

१६ अर्थालंकार

दण्डी अर्थालंकार वहाँ मानते हैं जहाँ अर्थालंकार का प्रदर्शन होता है^४ । केवल का सत्य इस प्रकार है—

सर्व न निज अर्थालंकार को यद्यपि छई सहाय ।
अर्थ नाम ताछों कहूँ केवल सब कविराय^५ ॥

‘यद्यपि न सहाय’ के समावेश से केवल के सत्य में दण्डी के सत्य से अधिक स्पष्टता पायी है ।

१७. रसवत

विश्वनाथ के अनुसार ‘रसवत’ अर्थालंकार वहाँ होता है जहाँ कोई रस किसी अन्य रस अथवा भाव का अर्थ होकर उसका पोषण करता है । परन्तु दण्डी रसमय वर्णन को ही ‘रसवत’ अर्थालंकार मानते हैं^६ । दण्डी के ही अनुक्रम पर केवल भी रसमय वर्णन को ही ‘रसवत’ अर्थालंकार मानते हैं^७ । केवल अपने रसवत का उदाहरण ही रसवत अर्थालंकार का उदाहरण है शेष उदाहरण तो बीर रीति कवच, भगवत्पद बीरस्य आदि विभिन्न रसों के ही उदाहरण होकर रह गए हैं । केवल ने

१ कौलहु एक प्रकार से सत अथ अमल समान ।
करिये प्रपट निर्घर्षता समुद्धत सकल सुखान ।
—क० मि० अ० ११ अ० ४६ ।
२ ५.८. १० परि० १, श्लो० १४६ ।
३ क० मि० अ० ११ अ० ३ ।
४ अर्थस्मिन्नाहंकारम् ।
—भाष्यारत, परि० १ श्लो० १०५ ।
५ क० मि० अ० ११ अ० ३१ ।
६ रसवद् रसपेक्षाम् ।
—भाष्यारत परि० १, श्लो० १०५ ।
७. रसमय होय नु आभिये रसवत केवलदास ।
नवरस को संवेच ही, समुद्धी करत प्रकाश ॥
—क० मि० अ० ११, अ० ३१ ।

शृंगार रसवत का मिश्रकृत उदाहरण दिया है—

आन तिहारी न आन कहीं तन में कसु आनन आन ही कैंसो ।
केसव स्याम भुजाम मुख न, जाय कहीं मन जानत बेंसो ॥
लोचन लोभाहि पोवत जात समस्त सिहात अघात न लेंसो ।
ज्यों न रहात विहात तुम्हें बनि जात मुवात कहीं नुख बेंसो ॥

इस उदाहरण में विप्रसन्न शृंगार मुख्य है। 'आन तिहारी ज्यों न रहात विहात तुम्हें बनि जात' इत्यादि वाक्यों से यह भी प्रकट होता है कि यहाँ सभोग शृंगार भी है पर है गीत रूप में ही। इसमिये यही गीत सभोग के विप्रसन्न शृंगार का पोषक होने के कारण रसवत प्रसङ्गकार है। इस संयोग की वज्रा से ही नाविका की विरह प्रवसता अधिक स्पष्ट होती है।

१८. अर्थान्तरन्यास

मम्मट प्रादि भाषाओं ने अनुसार अर्थान्तरन्यास प्रसङ्गकार नहीं होता है जहाँ सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्पन होता है^१। केसव का अर्थान्तरन्यास का वलण विमलम् है जो दण्डी^२ से भी नहीं मिलता। वे अर्थान्तरन्यास प्रसङ्गकार नहीं मानते हैं जहाँ धीरे कुछ कहकर धीरे ही कुछ अर्थ दिया जाता है^३। दण्डी ने अर्थान्तरन्यास के पाठ प्रकार बतलाए हैं विरहव्यापी विरोधस्व स्नेहादि विरोध अयुक्तकापी युक्तात्मा युक्तायुक्त तथा विपर्यय^४। केसव के धनुधार इसके चार ही श्रेण हैं युक्त अयुक्त अयुक्तायुक्त (अयुक्त-युक्त) धीरे युक्त अयुक्त^५। अयुक्तायुक्त (अयुक्त-युक्त) को केसव धीरे दण्डी दोनों ही मानते हैं। युक्त धीरे अयुक्त दोनों नाम दण्डी के युक्तात्मा धीरे अयुक्तकापी से लिए गए मान्य पड़ते हैं। युक्त अयुक्त नाम केसव का अपना दिया हुआ है। केसव ने प्रत्येक श्रेण

१ क मि प्र ११, अ १४।

२ सामान्य का विशेष या उद्वेग्य समर्पित।

यत्तु लोचनान्तरन्यास सामान्योन्नेतरेण वा ॥

—क० प्र ३० १० ६० १११।

३ जेय अर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन।

उत्साहनसमर्थस्य न्यासो योग्यस्य वस्तुन ॥

—अन्यार्थ परि २ स्तो० १६१।

४ धीरे आनिये अर्थ जाई धीरे वस्तु वस्तानि।

अर्थान्तर को न्यास यह चार प्रकार सुजान ॥

—क मि, प्र ११ अ १५।

५ अन्यार्थ, परि २, स्तो १७०।

६ युक्त अयुक्त वस्तानिये धीरे अयुक्तायुक्त।

केसवदास विचारिये भीयो युक्त अयुक्त ॥

—क० मि०, प्र ११, अ १७।

के सक्षण और उदाहरण दोनों दिये हैं^१। दण्डी ने केवल उदाहरण ही दिए हैं। पर उनसे दण्डी के शब्दों के सक्षणों का आशय समझ लिया जा सकता है। विमल करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि केसव के सक्षण और उदाहरण दण्डी से भिन्न हैं। अर्थात् विमल केसव के अर्थान्तरण्यास को काव्यसिद्धि और अमुक्त-युक्त को अमस्तुतप्रसंगा (कारण विवक्षणा) कहते हैं। दण्डी द्वारा उल्लिखित विषयव्यापी विरोधस्व स्नेयादि विरोध तथा विपर्यय आदि शब्दों को केसव ने छोड़ दिया है।

१६ व्यतिरेक

केसव और दण्डी के व्यतिरेक के सामान्य सक्षण का मात्र एक ही है। दण्डी व्यतिरेकानकार वहाँ मानते हैं वहाँ दो सव्य वस्तुओं में कुछ भेद दिखलाया जाता है^२। केसव का सक्षण इस प्रकार है^३। उन्होंने व्यतिरेक के दो भेद माने हैं। युक्ति व्यतिरेक और सहज व्यतिरेक पर दण्डी ने इसके वस भेद किए हैं। दोनों के उदाहरणों की तुलना करने से विदित होता है कि दण्डी के स्नेय व्यतिरेक का ही नाम केसव ने युक्ति व्यतिरेक रख दिया है। दण्डी ने स्नेय व्यतिरेक के उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित श्लोक दिया है—

त्वं समुद्रस्य दुर्बारी महासत्त्वी तदेवमी ।

अमलं मुचयोर्वेदं स अकृत्स्ना पुर्यवान् ॥^४

१ वैसे वही वृक्षिमे तैसे तही वृक्षिमे ।

क्य हीत वृक्ष युक्ति वन ऐसे युक्त वनान् ॥

—क वि प्र० ११ अं १८ ।

वैसे वही न वृक्षिमे तैसे तही वृक्षिमे ।

केसवदास अमुक्त कहि बरनत है सब कोय ॥

—क वि प्र० ११, अं ३० ।

अमुक्त वृक्ष वृक्षिमे वही वही है केसवदास ।

इह अमुक्त युक्त कवि बरनत वृक्षि विसास ॥

—क वि प्र० ११ अं ३२ ।

इह व वृक्षिमे वृक्षिमे वही वही है केसवदास ।

वही युक्त अमुक्त कहि बरनत कवि वृक्षि विसास ॥

—क वि प्र० ११ अं ३४ ।

(जगन्नाथ के निम्ने देखें क वि प्र० ११ अं ३६ ३७ ३८ ३९ और ४०) ।

२ अमोघार्थ प्रतीति वा सावयमे वस्तुनौर्ध्वयो ।

तत्र यद् यद् कर्त्तव्यं व्यतिरेकः स कथ्यते ॥

—वाचस्पत्यं, परि० १ श्लो १८० ।

३ तामिं प्राने भेद कष्ट होय वृक्ष वस्तु समान ।

“वो व्यतिरेक सुमीति वी, युक्ति सहज परमान् ॥

—क वि०, प्र० ११, अं ३७ ।

४ वाचस्पत्यं, परि० १, श्लो १८२ ।

‘घाप और समुद्र दोनों का पार पामा कठिन है। दोनों महादुष्णी और तेजस्वी हैं। घाप दोनों में अन्तर इतना है कि समुद्र बड़ है और घाप बतुर है।’

केशव के युक्ति व्यक्तिके के उदाहरण^१ का भी यही भाव है। इसी प्रकार बप्पी के व्यक्तिके का सामान्य अर्थ के शब्द के उदाहरण^२ के उदाहरण^३ पर ठीक उतरता है।

२०. अपह्नुति

बप्पी ने अपह्नुति अर्थकार कहा माना है जहाँ कोई बात छिपा कर कोई अन्य बात कह दी जाती है^४। केशव का अर्थ^५ भी बप्पी से मिलता है। जहाँ तक उदाहरणों^६ का सम्बन्ध है वे बप्पी से मिलते हैं। उदाहरणों के विषय में कृष्णचक्र प्रकाश विवक्षित हैं—इस अर्थकार के लिए जिस प्रकार की बोधन क्रिया आवश्यक है वैसी उदाहरण में न पा सकी। केशव के उदाहरण ‘मुकरी हैं, अपह्नुति नहीं’। सम्भवतः मुक्तजी को इस बात का अर्थ नहीं रहा कि ‘मुकरी’ में भी अपह्नुति अर्थकार होता है^७।

- १ सुन्दर सुन्दर प्रति अमल सकल विधि
सबल सकल बहु सरस संगीत सों।
विधि सुवास युत केधोवास आसपास
रावे दिनराज तनु परम पुनीत सों।
फूले ही रघु होक बीरे हेत प्रतिपन्न
हैत कामगानि सब मीत हूँ अमीत सों।
बोचन बचन गति दिन इतनी ई मेव
इन्द्रतनवर यह इन्द्र इन्द्रजीत सों।

—क प्रि० प्र० ११ अं० ७२।

- २ गाय बराबरी पाम सबै मन जाति बराबर ही बलि आई।
केसव कंस विमान पिता बराबर ही पहिरावनि आई।
बैस बराबरि बीपति बेह बराबर ही विधि बुद्धि बसाई।
वे भवि भासु ही होहुगी कैसे बड़ी तुम भाखिन ही की बड़ाई॥

—क प्रि० प्र० ११ अं० ८०।

- ३ अपह्नुति अपह्नुत्य निविद्वन्पार्यदर्शनम्

—अमरक, परि २ श्लो ३४।

- ४ मन की बात वुराय सुख धीरे कहिये बात।
कहत अपह्नुति सकल कवि, ताहि बुद्धि अमदात॥

—क प्रि० प्र० ११ अं० ८१।

- ५ क० प्रि० प्र० ११ अं० ८२, ८३।

- ६ केशव की व्याख्या पृ० १३३।

- ७ मुकरी के विषय में रामचन्द्र जी कभी अपने ‘भाग्यदिक हिन्दी कोश’ के १ १ २८ पर लिखते हैं—‘यह कविज मित्रों पहले कही हुई बात से मुकरी हुए कुछ और ही बात ब्यक्त करी जाती है। साहित्य में यह अर्थपूर्ण मुक्ति अत्यन्त है।’

केदार ने बारहवें प्रमाण में उक्ति, व्यावस्तुति निर्यास्तुति, धर्मित, पर्यायोक्ति तथा युक्त—इन छ प्रसंगों का वर्णन किया है ।

२१ उक्ति प्रसंग

केदार बुद्धि तथा विवेक से सुसिद्ध धनेक तर्कों को 'उक्ति' प्रसंगकार कहते हैं^१ । उन्होंने इस प्रसंगकार के पाँच प्रकार माने हैं^२ । बन्धोक्ति धन्योक्ति व्यभि करणोक्ति विरोधोक्ति और सहोक्ति ।

बन्धोक्ति

वामानाचार्य ने ही इसे सबसे पहिले प्रसंगकार रूप में स्वीकार किया और इसका यह सञ्चन किया—साधुव्यासकहा बन्धोक्ति^३ । इसी और नामह ने केवल इतना ही संकेत किया है कि यह सब प्रसंगकारों का सूत्राधार है^४ । केदार के बन्धोक्ति प्रसंगकार का नामन से केवल नामसाम्य ही है सञ्चन भिन्न है । खट ने भी बन्धोक्ति प्रसंगकार माना है और उसके दो भेद भी किए हैं^५ पर यह कदाचित् केदार का आधार ज्ञात नहीं होता । हमें तो मम्मट का सञ्चन ही केदार का आधार प्रतीत होता है^६ । केदार बन्धोक्ति प्रसंगकार वहाँ मानते हैं वहाँ सीधी-सादी बात में देखा व्यवसाय मूढ़ भाव प्रकट किया गया हो^७ ।

धन्योक्ति

संस्कृत के आचार्यों में केवल खट नाम्भट और हेमचन्द्र ने ही धन्योक्ति का उल्लेख किया है^८, मदटी इसी नामह उद्भुत नामन और मम्मट तथा

१ बुद्धि विवेक धनेक विधि उपपन्न तर्क अपार ।

ताछों कवि कुल उक्ति कहि वर्णन विविध प्रकार ॥

—क० दि० पृ० ११ अ० १ ।

२ बन्धोक्तिप्रसंगोक्ति पृ० ११ ।

३ नाम्भटर्ष १२ १ स्तो० १३१ उक्त बन्धोक्तिप्रसंग, स्तो० ८२, पृ० १७ ।

४ नाम्भटप्रसंग, पृ० १३ ११ ।

५ बहुकृतमवसावधमवसावधेन योग्यते ।

स्तेपेन कावशा वा सेवा सा बन्धोक्तिस्तथा हिता ।

—धन्यप्रकाश उत्पन्न १० पृ० २०० ।

६ केदार सूधी बात में धरजत देको भाव ।

बन्धोक्ति ताछों कहै सही सबै केदारदास ॥

—क० दि० पृ० ११ अ० १ ।

७ धर्ममाधविरोधमपि यत्र समामेतिवृत्तमुपमेयम् ।

उपमेय गम्यते परमुपमायैनेति साम्योक्तिः ॥

—बन्धोक्तिप्रसंग, अ० ८, स्तोत्र ७४ पृ० ११४ ।

उपमेयस्यैवोक्तावगम्यप्रतीतिरस्योक्तिः ।

—बन्धोक्तिप्रसंग नाम्भट (वि० १), अ० १ पृ० १३ ।

सामान्यविरोधे कार्ये कारणे प्रस्तुते तदवगम्य तुल्ये तुल्यस्य चोक्तिरस्योक्तिः ।

—बन्धोक्तिप्रसंग हेमचन्द्र, पृ० १०७ ।

क्युक धारि ने नहीं किया है। खट धारि धाचार्यों के धन्योक्ति प्रसंकार का स्वरूप वास्तव में अप्रस्तुतप्रशंसा का-सा ही है। केसव के सक्षण का भी यही भाव निकलता है। उनके अनुसार धन्योक्ति प्रसंकार नहीं होता है जहाँ धन्य की बात धन्य के प्रति कह कर प्रकट की जाती है^१। धर्मावीन धाचार्यों के अनुसार यह 'अप्रस्तुतप्रशंसा' प्रसंकार है।

व्यधिकरणोक्ति

केसव के अनुसार व्यधिकरणोक्ति प्रसंकार नहीं होता है, जहाँ धन्य का पुन प्रशंसा शेष धन्य में प्रकट किया जाता है^२। उदाहरणों से बात होता है कि यह वस्तुतः मम्मट^३ क्युक^४ विह्वलाच^५ धारि धाचार्यों का प्रसंगति प्रसंकार ही है। केसव का उदाहरण^६ यह है।

विशेषोक्ति

केसव के विशेषोक्ति प्रसंकार का क्युकी भाव यह समझ सामन धारि धाचार्यों से केवल नाम ही मिलता है। क्युकी धारि धाचार्यों द्वारा दिया हुआ सक्षण केसव से मिल है^७। यह उदाहरणों पर दृष्टिपाठ करने से तो और भी स्पष्ट हो जाता है। केसव विशेषोक्ति प्रसंकार नहीं मानते हैं। जहाँ कारण के रहने पर भी कर्म सिद्ध न

१ औरहि प्रति कु बकालिये कहू और की बात।

धन्य उक्ति तेहि कहत है, बरनत कवि न प्रचात ॥

—क० प्रि० म० १२, पृ० ६१।

२ औरहि में कौन प्रसट औरहि को पुन शेष।

उक्ति यह व्यधिकरण की सुगत होत सतोय ॥

—क० प्रि० म० १२ पृ० ५।

३ मित्तवेद्यतामात्मन्त कार्यकारणभूतयो।

मुपपन्नमयोर्ध्व क्पाति सा स्थापसमति ॥

—क० प्रि० म० १२ पृ० ५१।

४ तयोर्निमित्तवैद्यत्वेऽसंगतिः।

—वर्तमानसूत्र ४ १५२।

५ कार्यकारणयोर्मित्तवेद्यतामात्मन्तः।

—सूत्र ४ का० सं० ७४०, ४ पृ० ५२।

६ पुन मयी दयारत्य को केसव देवन के बर काजी बधाई।

पूजि की पूजन को बरवै तब पूजि फल सख ही सुखवाई ॥

धीर बही सरिता सब भूतन भीर समीर मुनय मुझाई।

सर्वमु भोग सुगति बैधि की धारि देह बरार सो जाई ॥

—क० प्रि० म० १२ पृ० ११।

७ विद्यमान कारण सकल कारण हाय न सिद्ध।

कोई उक्ति विशेषमय कथा परम प्रसिद्ध ॥

—क० प्रि० म० १२, पृ० १४।

हो । कर्मक, विश्वनाथ आदि आचार्यों के विरोधोक्ति धर्मकार के सक्षम का भी यही भाव है^१ ।

सहोक्ति

केदार के अनुसार सहोक्ति धर्मकार नहीं होता है जहाँ हानि वृद्धि क्षुभ, अक्षुभ गुप्त धर्मका प्रकट कुछ भी वर्णन करते समय साथ ही एक धीर ब्रह्मा का भी उल्लेख कर दिया जाता है^२ । बन्धी इसका सक्षम बने हुए बन्दे है कि सहोक्ति धर्मकार नहीं होता है, जहाँ एक साथ गुप्त धर्मका कर्मों का वर्णन हो^३ । यतः स्पष्ट है कि केदार धीर बन्धी के सक्षम का भाव एक ही है ।

२२-२३ व्याजस्तुति और निम्बास्तुति

केदार के अनुसार जहाँ निम्बा के बहाने स्तुति तथा स्तुति के बहाने निम्बा की जाती है वहाँ क्रमशः व्याजस्तुति और निम्बास्तुति (व्याजनिम्बा) धर्मकार होता है ।^४ उन्होंने व्याजस्तुति के सक्षम में बन्धी के ही सक्षम का अनुसरण किया है । बन्धी लिखते हैं कि व्याजस्तुति धर्मकार नहीं होता है जहाँ प्रकट में तो निम्बा हो पर वस्तुतः स्तुति हो^५ । निम्बास्तुति (व्याजनिम्बा) का बन्धी ने कोई उल्लेख नहीं किया है । केदार ने नीचे सिद्धे छन्द में उक्त दोनों ही धर्मकारों का एक साथ सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

भीतल हू होतल तुम्हारे न बसति यह
तुम न तजत मिल ताको जर ताप येहु ।
आपनो ब्यौ हीरा सो पराये हाथ बज्जनप
है को तो अकार साव मन ऐसो मन सैहु ।

१ कारभनामग्रन्थे कार्यानुत्पत्तिविरोधोक्ति — धर्मकरचूड ३ १४१ ।
छति हेठो फलामाये विरोधोक्तिस्तथा विना ।

—छा ॥ का सं० ७१८ ।

२ हानि वृद्धि क्षुभ अक्षुभ कष्ट कहिये गूढ़ प्रकाश ।
होय सहोक्ति सु साथ ही बरखत केदारदास ॥

—क मि० प्र० १२ अ० १ ।

३ सहोक्ति सहभाषस्य कर्मनं बुधकर्मणाम् ।

—कान्धारत परि १ श्लो० १११ ।

४ स्तुति निम्बा मिस होत यह, स्तुति मिस निम्बा जान ।
व्याजस्तुति निम्बा नही, केदारदास बखान ॥

—क मि० प्र० १२ अ० २१ ।

५ यत्नि निम्बनिम्ब स्तीति व्याजस्तुतिरसौ स्मृता ।

—कान्धारत परि १ श्लो० १४२ (मध्यमः)

एते पर केसोवास सुगह परबाहु बाहि
बाहै अक लागी भागी भूख गुन भुम्पी गहु ।
माओ मुख धाओ धिन धन न धुबीने लाग
ऐसी सो पवारिन सो गुन ही निबाहो मैठु ॥^१

केसव ने दण्डी के ही आधार पर श्लेषमयित व्यावस्तुति का भी उदाहरण उपस्थित किया है ।

२४ अमित

केसव के अनुसार अमितालंकार नहीं होता है, जहाँ साधक प्राप्य सिद्धि को साधन ही प्राप्त कर लेता है^२ । यह धनकार किस आधार पर लिखा गया है, पता नहीं । केसव से इसके उदाहरण में जो उक्त दिया है वह इस प्रकार है—
साधन सोकर सीक हिने कत? सी हित से अति साधुर साई ।
सीको जयो भुख ही भुखराम क्यों? तेरे पिपा बहु बार बकाई ॥
प्रोतम को पट क्यों बसद्यों? दसि केसव तेरी प्रतीति को लाई ।
केसव कीकैहि नायक सों रनि नायिका साधन ही बहराई^३ ॥

२५ पर्यायोक्ति

केसव का यह धनकार दण्डी आसह उद्धृत सम्मत दम्पक विरचनाय आदि संस्कृत के किसी भी आशय के पर्यायोक्ति धनकार से कोई साम्य नहीं रखता । जहाँ धनने इष्ट की सिद्धि किसी अदृष्ट कारण से कुछ प्रयत्न किए बिना ही हो जाती है जहाँ पर्यायोक्ति धनकार होता है^४ । केसव का यह सक्षय पर्यायोक्ति का न रहकर प्रहर्षण का-आ बन गया है । साधक में इसे प्रहर्षण का भी कुछ सक्षय नहीं कहा जा सकता । अत्रालोककार प्रहर्षण का लक्षण इस इस प्रकार है—नाभिच्छटा शक्तिप्राप्तिरवसनेन प्रहर्षणम्^५ । अर्थात् प्रयत्न के बिना अभिनयित धर्म से अधिक की प्राप्ति होने पर 'प्रहर्षण' धनकार होता है । फिर भी यह मानना ही पड़ता है कि केसव के पर्यायोक्ति धनकार का स्वरूप 'प्रहर्षण' से बहुत कुछ भिन्नता है ।

२६ युक्त

केसव के विचार से युक्त धनकार नहीं होता है, जहाँ किसी के रूप धीर मन

१ क जि० प्र ११ अं २३ ।

२ जहाँ साधने योग्य, साधक का धुम सिद्धि ।

अमित गान साधों कष्ट जाकी अमित प्रसिद्धि ॥

—क जि० प्र १२ अं १३ ।

३ क जि० प्र १२ अं २० ।

४ कौनहु एक अदृष्ट से मनही किये पू होय ।

सिद्धि आपने इष्ट की पर्यायोक्ति सोय ॥

—क जि० प्र १२ अं २६ ।

५ अत्रालोक, मूल ३, श्लो० ४६ व ४७ ।

का ज्यों का त्यों वर्णन किया जाता है^१। इस धर्मकार का सक्षण उन्हीं के स्वभा-
वोचित धर्मकार^२ से मिल जाता है।

कविप्रिया^३ के तेरहवें प्रभाव में समाहित सुविद्य प्रसिद्ध, विपरीत रूपक
दीपक प्रहेलिका तथा परिवृत्त नामक धर्मकारों का निरूपण है।

२७ समाहित

केदार का समाहित धर्मकार भाग्य, उज्जट, वागन इत्यादि विस्मयाच-
माचामों से बिल्कुल ही भिन्न है। बन्दी और कण्व के समाहित धर्मकार के सख्तों
की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि दोनों के सख्तों में कुछ सूक्ष्म-सा अन्तर है
भाव एक ही निकलता है। बन्दी समाहित धर्मकार वहाँ मानते हैं वहाँ आरम्भ किए
हुए कार्य की सिद्धि ईश्वरघात विना मल किए ही हो जाती है^४। केदार की दृष्टि
में समाहित धर्मकार वहाँ होता है वहाँ कोई कार्य जो धर्मक सपत्तियों के करने पर भी
न हो रहा हो अनायास किसी ऐसी बटना से सिद्ध हो जाय^५। बन्दी के उदाहरण
को ही केदार ने अपने हँस से बड़ाकर भिन्न दिया है। बन्दी का उदाहरण इस
प्रकार है—

मानसत्या निराकृत्य पावयोर्म पतिष्यत ।

उपकाराय विप्रवेतुदुर्गोर्त्त धनवर्जितम्^६ ॥

‘उसके मान-मोहन के लिए जब मैं उसके चरणों पर गिर रहा था, तभी दबबोध से
मेरी के वर्जन ने मेरा उपकार किया।

केदार का भी उदाहरण देखिए—

छवि छों छबीसी नृपमानु की कृपारि प्राप्ति

एही हुती रूप मह मान मह छवि कै ।

१ जैसो जाको रूप बस कहिये ताही रूप ।

ताको कबिकुल युक्त कहि बरनत विविध रूप ॥

—कवि प्र० १२, अ० ११ ।

२ जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही जाब ।

तासों जानि स्वभाव सब कहि बरनत कविराज ॥

—कवि प्र० १२ अ० ११ ।

३ किंचित्प्रकारमाधत्य कार्य ईश्वरघात पुन ।

तत्साधनसमापत्तिर्मा तथाहुः समाहितम् ॥

—कव्यदर्श, परि० २ श्लो० २६५ ।

४ होत न क्योंहुं होय चाह, ईश्वरघात से काम ।

ताहि समाहित नाम कहि बरनत कवि विरताज ॥

—कवि प्र० १३ अ० १ ।

५ कव्यदर्श, परि० २ श्लो० २६६ ।

भायू ते मुकुमार नम के कुमार ताहि
 भाये रो मनावन स्याल सय तकि के ॥
 हुंति हुंति छोई करि करि पार्य परि परि
 केसोराय की सी जब रहे मिय बकि के ।
 ताहि सर्म उठे धनपोर धोरि, बामिनी सी
 लागी लौडि इयाय यन घर सौ लपकि के ॥
 इस बसकार को यम्मत विरवनाय जयदेव तथा सम्पद रीतिव भादि
 आचार्य स्याधि मानते हैं ।

२८ २९ ३०—सुसिद्ध, प्रसिद्ध तथा विपरीत

इन तीनों धर्मकारों को संस्कृत के किसी भी प्राचीन तथा सर्वाधीन आचार्य
 ने नहीं माना है । ये केसव की मौलिक उद्भावना से प्राप्नुव हुए हैं ।

सुसिद्ध

सुसिद्ध धर्मकार नहीं होता है, जहाँ साधन धर्म कोई करता है और सिद्धि
 का फल कोई धर्म ही भोगता है^१ । इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है—

मूलन सौ बलकूल सबै हल जैसी कसु रसरीति बली सु ।
 भाजन मोहन भुवण भामिनी धीन भरो भव भीति बली सु ॥

साधन साधन बल पुनासन बहून मान विमान बली सु ।
 केसव जैते महाजन लोभ मरे सवि भोग्य लोभ बली सु^२ ।

यहाँ कारण नहीं होता है और कार्य नहीं । यत्र यह धर्मपंथ का है,
 संकीर्ण रूप बाल पड़ता है । फिर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इसमें
 केसव की मौलिकता है ।

प्रसिद्ध

केसव के अनुसार प्रसिद्ध धर्मकार नहीं होता है, जहाँ एक के साधन का फल
 धनेक को प्राप्त होता है^३ । अर्थात्—

माता के मोह पिता परितोषन केवल राम मरे रिख भारे ।
 प्रीयुन एक ही धनुन को दितिर्महत के सब धनिय भारे ।

१ क वि प्र ११ अ २ ।

२ साधि साधि धीरे मरे धीरे भोग सिद्धि ।
 तासों कहत सुसिद्धि सब निमके बुद्धि समुद्धि ॥

३ क वि प्र ११ अ ५ ।

—क वि० प्र ११ अ ४ ।

साधन साधन एक भव जोय सिद्धि धनेक ।
 तासों कहत प्रसिद्ध सब केसव सहित विवेक ॥

—क वि०, प्र ११ अ ७

देवपुरी कहीं धौमपुरी जग केसवदास बड़े सब बारे ।
सुकर स्वान समेत सब हरिचन्द के सरय सबेह सिचारे ॥

विपरीत

केसव के बिचार से विपरीत^१ धनकार वही होता है, वही कार्य-साधन के लिए साधन ही बाधक बन जाय^२ । यथा—

साध न सहाय कोऊ, हाथ न हुम्मार रघु—

नाथ न के यज्ञ को तुरंग यहि राख्यो है ।

काछन कछोटी छिर छोटे छोटे काकपस

पाँव ही बरस के तु पुढ सजिलाख्यो है ।

नील मन धरव लहित नामधन हनु—

धन से धन्य जिन नीरधिनि मन्थ्यो है ।

केसोदास बीप बीप धुपनि स्त्र्यो रघुचुस

कुसलन जीति के विजय रघु बाध्यो है^३ ॥

यही कुसलन को पुन होने के नाते राम के कार्य में साधक होना चाहिये वा पर होते हैं बाधक ही । केसव के इस धनकार में मम्मट कम्पक, बिस्वनाथ बयदेव तथा धम्म बीक्षित आदि व्याचार्यों के 'व्याघात' की छाया दिखाई पड़ती है । विपरीत और व्याघात के मेलन में यदि कुछ भ्रमर है तो केसव इतना कि विपरीत में तो साधन स्वतः विरोधी बन जाता है और व्याघात में धन्य के हाथ में जाकर बिस्व बनता है । मम्मट कम्पक तथा बिस्वनाथ ने व्याघात का अधोलिखित उदाहरण दिया है—

दुहा रघ्व ममसिर्ज ओजयन्ति वृक्ष य यः ।

विदुषास्तस्य अपिनीत्या स्तुते वामलोचना^४ ॥

'मैं उन वामलोचनी मुवतियों को जो महादेव के पैर द्वारा बस्मीभूत काम को एक मगर से ही बिछा देती हैं और इस प्रकार शिव को भी जीत देती हैं, प्रशान्त करता हूँ ।'^५

३१ कम्पक :

रखी ने कम्पक धनकार के बीस सेव बतसाए हैं^६ वरिष यह कहा है कि

१ क० वि० प्र० २३ अ० ८ ।

२ कारज साधक को वही साधन बाधक होय ।

तासों सब विपरीत कहि, कहत लवाने सोय ॥

—क० वि० प्र० १३ अ० १ ।

३ क० वि०, प्र० १३ अ० ११ ।

४ का प्र० पृ० २६५—अर्जुनसूत्र (शङ्खेर से) ३ १३३ तथा सा० ४० (धर्मपुर से) १३० १ का सं० ४४७, पृ० ८४८ ।

५ सम्राट्-कम्पक मन्त्र-कम्पक लज्जत-कम्पक धन्य-कम्पक, धन्यविस्मय वकीर-कम्पक, इन्द्रादि-कम्पक सुख-कम्पक अशुभ-कम्पक निज-कम्पक लविष्टक कम्पक मित्र

इसके धनेक भेद होते हैं। केदार ने केवल तीन ही भेदों धर्मभूत रूपक विरुद्ध रूपक धीर रूपक-रूपक का वर्णन किया है। केदार का धर्मभूत-रूपक धर्मिकतादूष्य रूपक हो गया है। दण्डी ने भी विरुद्ध-रूपक का उल्लेख किया है^१ परन्तु मह केदार के विरुद्ध-रूपक से भिन्न है। केदार का विरुद्ध-रूपक कुरातिचयोक्ति (जहाँ केवल उपमाओं का ही कथन किया जाता है) ही है। उदाहरण देखिए—

सोने की एक लता सुमधो बन क्यों बरखों सुनि बुझि सते धूँधे ।
केदारबास मनोज मनोहर ताहि छने फल धीरत से भँ ।
फूल सरोज रझो तिन ऊपर कप निकपत चित्त बल्लं बने ।
तापर एक बुबा सुम तापर जेतत बालक खंखन के हरे ।

रूपक-रूपक नाम का एक भेद दण्डी भी मानते हैं। कसर के उदाहरण पर दण्डी के उदाहरण की छाया है। पर सम्भवतः वे दण्डी के प्रतिप्राय को छिन्न-छिन्न समझ नहीं सके हैं। प्रत्यक्ष उनके रूपक-रूपक का उदाहरण साधारण रूपक का उदाहरण ही रह गया है। दण्डी ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

मुकपंकज-रङ्ग-प्रियम् भू-लतावती तव ।
लीलापुलं करोतीति रम्यं रूपक-रूपकम्^२ ।

“तुम्हारे मुख-रूपी कमल की रंजस्वली पर तुम्हारी भू-रूपी लता-वर्तकी लीला नृत्य कर रही है।”

केदार का उदाहरण इस प्रकार है—

कावे तितासित काष्ठी केदार पातुरि क्यों पुतरनी निबारी ।
कोकि कटास बल्लं यति भेद नचावत नायक नेह निनाये ॥
बाजनु है मुद्रहास नूरय सुवीरपति दीपन की उजियारी ।
देखत हों हरि ! कैकि तुम्हें यहि होत है आश्रित ही मे प्रचारी ॥

रूपक, हेतु-रूपक विरुद्ध-रूपक वगैरह-रूपक आदि-रूपक आश्रित-रूपक, सम्यक्-रूपक, काक-रूपक-रूपक का व्याख्यान न-रूपक । काव्यालोक, परि २, श्लो १६-१७ ।
१. तदा एव उदा एतं कविने आश्रित धीर सम्यक् । क वि प्र ११ अ० ११ (जहाँ रूपक दोषों से सम्यक् कुछ ऐसी विवक्षित काव्य की भाँती है जिससे सम्यक् दूसरी न हो।)

२. कुम्भ-रूपक, कर्तव्य-रूपक (देखा) इ ११ । आश्रित व्याख्या के दोनों में रूपक का यह भेद नहीं मिलता ।
३. काव्य-रूपक परि २ श्लोक २१ ।
४. वह कविने अनमित कष्ट सुमित सखन निधि बल्लं । क वि प्र ११ अ० ११

[जहाँ कर्त्त के सा प्रकार से सुमित होने पर भी कुम्भ अनमित कहा जान चाहिये रूपक के दक्ष सम (व्यमेव) का उल्लेख न हो।]
५. क० वि प्र ११ अ० ११ ।
६. काव्य-रूपक परि २ श्लो ११ ।
७. क० वि प्र ११ अ० १० ।

केशव के इस भक्तिकार के सामान्य भक्षण का भाव शब्दी के समम से मिलता है^१ ।

३२ बीपक

केशव के बीपक का यह भक्षण—

वाक्य किया पुण्ड्रव्य को बरनतु करि इह ठौर ।

बीपक बीपति कहत ॥ केशव कवि सिरमौर^२ ।

शब्दी की परिभाषा^३ से मिलता है । केशव के भक्षण का भाव तो यह है कि वहाँ वाक्य का वर्णन उसकी क्रिया घीर उसके अनुसहित उपपुस्त रूप में किया जाता है, वहाँ बीपक भक्तिकार होता है । शब्दी ने यद्यपि यह कहा है कि बीपक के घनेक भेद होते हैं पर उससेब केवल बारह का ही किया है^४ । केशव ने यथि तथा मासारीपक दो ही का वर्णन किया है । परन्तु बीपक के घनेक भेदों का होना उन्होंने भी स्वीकार किया है^५ । केशव ने मासारीपक वहाँ माना है वहाँ घनेक बातों का रस घीर काम के अनुसार बुद्धिमत्तानुबन्ध इस प्रकार वर्णन होता है कि एक बात झुमरी से शृंगार के समान चुकी प्रतीत होती है^६ । उन ॥ इस बदाहरण—

बीपक रस रसा सों मिले सुरदा मिलि तेजहि जोति ज्यारै ।

जागि क जोति सखे समुक्त तम घोषि जु तो सुनता बरतारै ॥

सो सुमता रचै रूप को रूपक रूप सो कामकला उपचारै ।

काम सो केशव प्रेम बढ़ावत प्रेम ले प्रासप्रियाहि मिलारै ॥

१ उपमा ही क रूप सों मिस्यो बरनिये रूप ।

साही सों सब कहतु है केशव रूपक रूप ॥ —क मि० प्र १६ अ० १२ ।

उपमैव तिरोमूतमेवा रूपकमुच्यते । —काम्यवर्त परि ९, स्तो० ३६ ।

२ क मि० प्र १६ अ० २१ ।

३ जातिक्रियापुनःप्रव्यवाचिनैकव्यवसिमा ।

सर्वबाधयोपकारकत्वेत् तवावृत्तीपकं मया ॥

—काम्यवर्त, परि २ स्तो० ६७ ।

४ आदिप्रतिरोक्त आदिक्रियादीप्त आदिपुनरीप्त, आदिप्रव्यदीप्त, अपव्यतिरोक्त, मयप्रतिरोक्त मयप्रतिदीप्त, मयप्रतिप्रदीप्त, मयप्रतिप्रदीप्त, मयप्रतिप्रदीप्त, मयप्रतिप्रदीप्त, मयप्रतिप्रदीप्त, मयप्रतिप्रदीप्त, मयप्रतिप्रदीप्त । —काम्यवर्त परि ९, स्तो० ३८-११४ ।

५ बीपक रूप घनेक हैं दो बरनी हैं रूप ।

मयि मामा चित्तों कहैं केशव सब कवि शृंग ।

—क मि० प्र० १६ अ० २२ ।

६ सर्व मिले बहू बरनिये रस काल बुधिरव ।

मासरीपक कहत हैं, साके भेद भगवत ॥

—क मि० प्र १६ अ० २७ ।

७ क० मि०, प्र० १६, अ० २८ ।

की दण्डी द्वारा दिए हुए उदाहरण से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि केचन का सामाशोपक दण्डी के दण्डी नाम के प्रत्येक से मिलता है। दण्डी का उदाहरण इस प्रकार है—

मुक्ता बवेताचियो बुद्धयै पक्कः पञ्चमरस्य ॥
स च रासस्य रागोऽपि पूर्णं रसपुस्तकस्य ॥

“सुगमपक्ष चन्द्रमा की बुद्धि के लिए होता है वह (चन्द्रमा) काम की बुद्धि के लिए, काम राग की बुद्धि के लिए तथा राग नवयुवकों की रतिचिन्तारूपी धी की बुद्धि के लिए होता है।”

केचन के पक्षिदीपक को दण्डी ने छोड़ दिया है। केचन यह भी बतसाते हैं कि पक्षिदीपक किन-किन वस्तुओं के वर्णन करने में विशेष धन्यता लपटा है^१। उनके पक्षिदीपक का दूसरा उदाहरण दण्डी के प्राक्पादगत कावि-दीपक के उदाहरण पर आधारित है। दण्डी का उदाहरण है—

पवनो वसिष्ठः पत्न्यं जीर्णं हरति नीचबाम ।
स एवावततापीनां मानसपाय कल्पते ॥

“वसिष्ठ-बाहु को लताओं के बीच पत्नी को विरा बैठी है वही कामिनीयों के मान मय कराने में भी समर्थ होती है।”
केचन ने दण्डी के इस स्मोक के भाव को अपने अंग पर बना कर इस प्रकार लिखा है।

वसिष्ठ पवन वसि वसिष्ठो रमय लमि
लोसन करत लौम लपली लता की पक्ष ।
केचोबास केचर पुपुम कोश रसकर
तनु तनु तिमिर को सङ्गत सकल मङ्ग ।
कपौडू बहू होत हठि साहस बिनास बङ्ग
चपक कामेली मिलि मालती गुबास हव ।
शीतल मुपय मङ्ग पति नदनर की सौ
पावत कहां ते तेज लोरिबे को मानव ॥

१ कम्प्यररं वरि १ लो १ ७ ।
२ वरबा छरद बर्यत छति सुमता धोम मुपंभु ।

३ कम्प्यररं वरि २ व १५ ।
४ व० मि० न ११ व ११ ।

३३ प्रहेलिका

केसव के मन में किसी वस्तु को किसी प्रकार छिपाकर बर्णन करना प्रहेलिका धर्मकार कहलाता है^१। प्रहेलिका को बड़ी भी धर्मकार मानते हैं और उसके दोसह प्रकारों का उल्लेख करते हैं^२। परन्तु साहित्यवर्णनकार इसे धर्मकार नहीं मानते क्योंकि यह रस के उत्कर्ष में बाधक है^३।

३४ परिवृत्त

इस धर्मकार को बड़ी और केसव दोनों ही मानते हैं, परन्तु केसव की न तो परिभाषा ही स्पष्ट है और न उनके उदाहरणों से ही निश्चित होता है कि वे उसकी परिभाषा क्या समझते हैं। केसव का मतार्थ बयदेव तथा अण्ण्य दीक्षित याहि धाचामों द्वारा दिए 'विषावन' धर्मकार के लक्षण से मिलता है^४। साहित्यवर्णनकार तो विनिमय के भाव में 'परिवृत्ति' का होना बतलाते हैं^५। बड़ी के निम्नलिखित उदाहरण से ज्ञात होता है कि वे भी विनिमय के भाव में ही 'परिवृत्ति' धर्मकार मानते हैं।

रसप्रहार रवता भुजैत तब भुजुबान् ।

विराजित हूँ तैयों यद्य कुमुदपान्धुरम्^६ ॥

'हे राजन्! रस प्रहार करती हुई तेरी सुजा ने कुमुद के समान सुभ्र तथा विरजित राजाओं की कीर्ति का अपहरण कर लिया।

३५ उपमा

जीवहवाँ प्रभाव सारा ही उपमा धर्मकार को दक्षिण है। बड़ी और केसव के उपमा के सामान्य लक्षणों को देखने से ज्ञात होता है कि केसव का उपमा का

१ वरनिय वस्तु दुटाय बहूँ, कीनहुँ एक प्रकार ।

तासों कहत प्रहेलिका कबिबुल बुद्धि अपार ॥

—क० प्रि० पृ० ११, र्ध० १ ।

२ एता पोदय निबिष्टा पूर्वाचार्य प्रहेलिका ।

—बाब्यारत, परि० १ स्तो० ११ ।

३ रसस्य परिपन्थित्वान्नालङ्कारः प्रहेलिका ।

अक्षिपैविश्रमार्ग सा व्युत्पत्ताभिरादिका ॥

—सा १ परि० १ क० र्ध० १११ ।

४ बहूँ करत कहु और ही उपमा परति कसु और ।

तासों परिवृत्त जानियो केसव कवि विरमीर ॥

—क० प्रि० पृ० ११ र्ध० ११ ।

हृदयमात्रविद्वत्तार्थसम्प्राप्तिस्तु विषादनम् ॥

—कदाचित्क मधु० १, स्तो० १० तथा कुपतनानन्द, पृ० १२१ ।

५ परिवृत्तिविनिमयः सम्यग्नाभिकर्मवैतु ।

—सा १० परि० १० क० र्ध० १२१ ।

६ बाब्यारत, परि० १, स्तो० १११ ।

सामान्य सलण दण्डी की धपेला अधिक पूर्ण है। दण्डी उपमा धर्मकार नहीं मानते हैं जहाँ वस्तुओं में किसी प्रकार की समानता दिखाई जाती है^१। उन के सलण में रूप गुण तथा चीस का उल्लेख नहीं हुआ है यद्यपि 'यथ-कर्मजिन्म' सभ्यों के धर्तगत इत वस्तुओं का पचन प्रा जाता है। केशव की परिभाषा में इनका स्पष्ट उल्लेख है^२।

केशव ने कृस भिन्नाकर उपमा के बार्तव प्रकार माने हैं और दण्डी ने बत्तीछ। जिस पदह उपमाओं का निरूपण केशव तथा दण्डी दोनों ने ही किया है उनके नाम इस प्रकार हैं—संघयोपमा हेतुपमा धनुषोपमा धनुषोपमा विस्त्रियोपमा मोहोपमा निमोपमा अतिधयोपमा उत्पक्षितोपमा स्तेपोपमा धर्मोपमा निर्धयोपमा धसमानितोपमा विरोधोपमा तथा मासोपमा। छीप भेदों में केशव की रूपनोपमा धूपनोपमा नुकाधिकोपमा साक्षधिकोपमा तथा परस्परोपमा कमस दण्डी के निरूपणमा अर्थधोपमा प्रतिरोधोपमा बटुपमा तथा धर्म्योपमा नामक भेदों से भिन्न हैं। केशव के धर्म्य नव संकीर्णोपमा और विपरीतोपमा दण्डी के किसी भेद से साम्य नहीं रखते। इन दोनों उपमाओं के सम्बन्ध में हृष्यचकर धुरत लिखते हैं कि 'इन दोनों में उपमा के लिए आवश्यक साम्य की प्रतिष्ठा हो ही नहीं पाई, न जाने क्यों केशव ने ये भेद मान लिए'। स्व० ला० भगवानशीम जी ने भी अपने 'प्रियाप्रकाश' के मोट में इसी पक्ष का समर्थन किया है^३। धर्म्य भेदों के धर्तव्य दिए दोनों के उदाहरणों के मिलान करने से विदित होता है कि धर्म्यांध की परिभाषा दण्डी तथा केशव दोनों ने एक ही समझी है। परन्तु केमन की कुछ उपमाओं का दण्डी से केमन नाम ही मिलता है, धर्म्या लक्षण तो सर्वथा धस्तव्य है ही उदाहरण के देखने से भी लक्षण स्पष्ट नहीं हो पाता। उदाहरणस्वरूप धर्मोपमा और अतिधयोपमा के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

एक धर्म को एक धनु, जहाँ जानियगु होम।
ताही लो धर्मोपमा कहत समाने लोम ॥

(क० प्रि० प्र० १४ अ० ११)

१ यथाकर्मजिन्म साधुस्य धनोद्भूत प्रतीयते।
उपमा नाम सा तस्या प्रयञ्जोर्ध्व प्रदर्शयते ॥

—प्राम्थारर परि २ श्लो १४।

२ रूप चीस धुग होम सम जो यमोंहू धनुषार।
तासों उपमा कहन कवि केशव बहुव प्रकार ॥

—क प्रि० प्र० १४ अ० १।

३ केशव की धर्म्यता पृ १००।

४ संकीर्णोपमा-सम्बन्धी मोट—क० प्रि० प्र० १४ अ० ११।

५ १७१ तथा विपरीतोपमा-प्राम्थानी मोट—

केशव की धर्मोपमा का उदाहरण

अगरे उवाह सर बासुकी बिराजमान,
हार के समान धान उपमा न दीहिये ।
शोभिनें अदाम बोज रंगानु के धन बिगु,
कृत्व कलिका से केशवदास मन मोहिये ।
मल की सी रेखा चंद बदन सी बाह रज,
अनन सिंगार हूँ परत बनि रोहिये ।
सब सुख सिद्धि भिवा सोही शिव बू के साथ ।
बाधक सो पावक भिगार ताप्यो सोहिये ।

(क कि प्र० १४, छं ३२)

बखी की धर्मोपमा का संक्षेप-उदाहरण

अस्योक्तुमिवासाध मुन्यं करतलं तव ।
इति धर्मोपमा साक्षात् तुल्यधर्मनिबन्धनम् ॥

(काम्यादर्थ, परि २, श्लो० ११)

केशव की प्रतिशयोपमा का संक्षेप

एक कष्ट एक द्विषे, सदा होय रस एक ।
प्रतिशय उपमा होति यह, कहत सुखि अनेक ॥

(क० छि० प्र० १४ अं० २१)

केशव की प्रतिशयोपमा का उदाहरण

केशवदास प्रकट प्रकास में प्रकासमान,
ईश हूँ के श्रीश रजनीश प्रचरेसिये ।
बल बल बल बल प्रमल प्रमल अति,
कोमल कमल बहु बरत बिघेसिये ॥
पुकुर कठोर बहु, नाहिले अचल पथ
बसुधा शुभा हूँ तिय अचरन लेसिये ।
एक रस एक क्य जाकी गीता सुनिपत
तेरो सो बदन सीता । तोही बिधे ईशिये ॥

(क० छि०, प्र० १४, अं० २६)

यह उदाहरण प्रतिशयोपमा का न रहकर धनत्वय का बन गया है ।

बखी की प्रतिशयोपमा का संक्षेप-उदाहरण

त्वप्येव त्वन्मुखं मुखं वृक्षते विधि अग्रमग ।
इत्येव भिवा नाम्येत्यसावतिशयोपमा ॥

(काम्यादर्थ, परि० २ श्लो २२)

विष्णोपमा हैतूपमा तथा मासोपमा आदि भी परिमाणार्थ भी व्यपष्ट है, किन्तु उदाहरणों से उनके स्वस्व का पूरा बोध हो जाता है। केसव के दो एक उदाहरणों पर भी दृष्टी की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है। दृष्टी ने असम्भावितोपमा का यह उदाहरण दिया है—

सखबिम्बादिव विषं सखमादिव पापक ।
पक्ष्या बाणितो ब्रजबासिपसम्भावितोपमा ॥

‘सुख से कठोर वषम का निकलना रूका ही है जैसा कि पक्ष्या से विष निकलना और बरन से घमि का प्रकट होना ।’

केसव ने इसी भाव को विस्तार के साथ इस प्रकार लिखा है—

जैसे घमि घोलत सुवास मलय माहि
घमल घमल मुन्निबल पहिचानिये ।
जैसे कीमो कामवज्र कोमल कमल माहि
केसर ई केसोवास कंठक से आनिये ।
जैसे विधु सपर मधुर मधुमय माहि
मोह मोहक विषम विष बघानिये ।
सुगरि सुलोचनि सुवचनि सुवति तले
तेरे मुल धाकर पक्ष्य बल मानिये ॥

स्व ता० समवानदीन जी के अनुसार यह उदाहरण ‘विष्णुव्यवसित’ धसंकार का है १। दृष्टी ने भ्रान्तिमान् संवेह व्यतिरेक निश्चय प्रतिषेधोक्ति विशेषोक्ति आदि कई धसंकारों को उपमा के नेत्रों में सम्मिलित कर लिया है। केसव ने भी इन्हीं का अनुकरण किया है। उनही मोहोपमा में भ्रान्तिमान् अद्वयुपमा में प्रतिषेधोक्ति संशयोपमा में संवेह निश्चयोपमा में निश्चय प्रतिषेधोपमा में व्यतिरेक चद्रूपमा में विधेयोक्ति विपरीतोपमा में बकोक्ति तथा प्रतिषयोपमा में समन्वय का रूप दिखाई पड़ता है।

३६ धसक

पत्रहर्षे प्रभाव में केसव ने धसक का अविस्तार वर्णन किया है। केसव के अनुसार धसक धसकार वहाँ होता है जहाँ पद एक से हों धर्ष धनेक निकलते हों २।

१ काव्यारतं वरि २ श्लो ३६ ।
२ क वि० प्र १४ अं ४ ।

३ वरी प्र १४ शार-विपरीत ३३४ ।

जो कहींनाल शीतल में बज मलक का लजल बो दिया है—
किन्तु धन का विष्णुत्व मित्र करने के लिए किसी दूसरे विष्णु धर्म की कल्पना भिने

४ पद एव माना धरक बिगमें जैतो भित्तु ।
तामैं ताको काढ़िये धसक माहि नै भित्तु ॥

यमक के बर्णन में केदार ने दण्डी को ही अपना आधार बनाया है। यद्यपि केदार ने दण्डी जिसने सभी प्रमेयों का निवेदन तो नहीं किया है तो भी उन्होंने दण्डी द्वारा निर्विष्ट प्रायः सभी प्रमुख शब्दों का निरूपण किया है। यो तो दण्डी यमक के बहुत से भेद बताते हैं पर प्रमुख दो ही भेद मानते हैं अन्वयेत तथा व्यपेत्त और फिर स्थान की दृष्टि से प्राप्ति मध्य अन्त एक द्वि त्रि चतुष्पार प्राप्ति उपमेयों का उल्लेख करते हैं^१। इनके प्रतिरिक्त सरसता तथा कठिनता की दृष्टि से भी दण्डी ने दो भेद सुकर तथा दुष्कर माने हैं^२। केदार ने भी प्रायः इन सभी शब्दों का वर्णन किया है परन्तु दण्डी के अन्वयेत और व्यपेत्त 'कविप्रिया' में क्रमशः अन्वयेत (जहाँ पदों या वर्णों के बीच व्यवधान न हो) और सम्मयेत (जहाँ पदों या वर्णों के बीच व्यवधान हो) के रूप में देखे जाते हैं^३। 'कविप्रिया' के टीकाकारों ने अन्वयेत और व्यपेत्त शब्द न समझकर 'व' और 'य' के निधि भ्रम के कारण इन भेदों को अन्वयेत और सम्मयेत के नाम से भ्रम दिया है^४। कुछ वर्तमान रीति ग्रन्थकारों ने भी इन भेदों का ही अनुसरण किया है^५। दण्डी के सुकर और दुष्कर का नाम ही केदार ने क्रमशः सुखकर और दुखकर रख दिया है^६। यमक के उदाहरणों पर दण्डी की कोई छाप दृष्टिगोचर नहीं होती अतः वे केदार के अपने हैं।

३७. चित्रासंकार

सोमहर्षे प्रमाण में चित्रासंकार का वर्णन है। उसमें मस्तिष्क का व्यापार सा ही होता है। केदार कहते हैं कि चित्रासंकार समुद्र के समान है जिसमें बड़े-बड़े प्रतिभासम्पन्न कवि भी डूब जाते हैं। इस कारण वे कुछ का ही निरूपण करते हैं^७।

१ काव्यादरं परि ३ श्लोक १।

२ अरयस्तबहुवस्तेषां भेषा समेदयोन्म'।

मुकरा दुष्करावचन दर्शयन्ते तत्र केचन ॥

—काव्यादरं परि ३, श्लो १।

३ अन्वयेत सम्मयेत पुनि यमक वरन दुह दैत।

अन्वयेत विनु अंतरहि, अन्तर सो सम्मयेत ॥

—क वि ३० १३, प ४।

४ काव्यकल्पम (मद्रास) पृ ५३।

५ अलंकारदीप (दुर्गा) समसंकर शुक्ल, पृ ११०।

६ सुखकर दुखकर भेद ही सुलकर वरने जान।

यमक सुनो कविराम प्रब सुखकर करी बखान ॥

—क वि० ३० १३, प ११।

७ केदार चित्र समुद्र में बूझत परम विचित्र।

ताके बूझत के कर्म वरनत ही सुनि मित्र ॥

—क वि०, प १८, पं १।

वे पहले नियमों का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि चित्रालंकार में कुछ शेष शेष नहीं माने जाते । बिजनिर्वाह के लिए यदि किसी विसय धनया अनुस्वाररहित धनर को विसय धनया अनुस्वार मुक्त करना पड़े धनया मतिभंग रसहीन बहिर, धन्य धनय धादि शेष या धायेँ तो वे शेष नहीं माने जाते^१ । इनके प्रतिरिक्त शेष को सन्तु त्वा सन्तु को दीर्घ 'व' के स्थान पर 'ब' और 'व' के स्थान पर 'ब' तथा 'य' के स्थान पर 'व' और 'व' के स्थान पर 'य' करने में भी शेष नहीं माना जाता^२ ।

चित्रालंकार के अन्तर्गत केद्यव ने निरोध रचना समाधिकरणना निममाधर धन्य-रचना (एकालर इदधर धन्यर अनुराधर धन्य रचना तथा धन्यीत धनरों की धन्य रचना से धारम्भ करके एक एक वर्ण बढते हुए एक धनर तक की धन्य रचना) बहिर्भाषिका धन्यर्थापिका प्रुद्धोत्तर एकानैकोत्तर धन्यसमस्तोत्तर धन्यस मतायत उत्तर विपरीत धन्यसमस्त उत्तर धासमोत्तर, धन्योत्तर और धन्यसमतायत का वर्णन किया है । इनसे धन्य प्रकार के धन्य बनते हैं । उनमें से केद्यव ने मौमूत्रि का धन्य कपाटबद्ध धन्य, धन्यगति धन्य, धन्यगुण धन्य, गतागत धन्युपदी विपरी विपरी धन्यगुण धन्यधन्य कमलधन्य धन्यधन्य धन्यधन्य धन्यधन्य धन्यधन्य धन्यधन्य धन्य धन्यगति धादि धन्यों का उल्लेख किया है ।

संस्कृत धाधाओं ने चित्रालंकार का धन्य धन्य-धन्य धन्य से किया है । केद्यव ने उस सम्बन्ध में धन्य धाधाओं की सहायता लेकर धन्यी प्रतिभा से काम लिया है । परन्तु केद्यव ने धन्य धन्य से धन्यधन्य धन्य की काव्यकल्पमता धन्य (प्रधान धन्यक ३) को ही धन्य धाधा बनाया है ।

धन्यकार-बिबेचन के क्षेत्र में केशव की मौलिकता :

धन्यकार का सामान्य धन्य धाधारध तथा विधिष्ट धन्यों में चित्रालंकार केद्यव का धन्य है । सामान्य धन्यकारों को फिर केद्यव ने धन्य धन्यों में धन्यधन्य किया है धन्यकार धन्यकार धन्यधन्यधन्य और धन्यधन्य धन्य । विधिष्ट धन्यकारों में धन्यकार और धन्यकार धन्यों प्रकार के धन्य धन्य धन्यकारों का धन्य किया धन्य है । संस्कृत के किसी भी धाधायें ने इस प्रकार का चित्रालंकार नहीं किया है । धाधारध धन्यकारों का बिबेचन यद्यपि प्रधानतया 'काव्यकल्पमताधन्य' तथा धन्यकारोत्तर' नामक धन्यों पर धाधारित है तथापि धन्य-धन्य पर केद्यव की मौलिकता की धन्य स्पष्ट दिखाई पड़ती है । विधिष्टधन्यकारों के धन्यधन्य में धन्यधन्य धन्य से धन्य और धन्य-धन्य धन्य धन्य धन्य धन्य धाधा धाधाओं को धाधार

१ धन्य ऊरध धन्य धन्यधन्य धन्य, रसहीन, धन्य ।

बहिर धन्य धन्य धन्य के धन्य धन्य धन्य धन्य ।

—धन्य धन्य, धन्य १६, धन्य २ ।

२ केद्यव धन्य धन्य में धन्य धन्य न धन्य ।

धन्य धन्य धन्य धन्य धन्य धन्य धन्य धन्य ।

—धन्य धन्य धन्य १६, धन्य ३ ।

बनाया गया है परन्तु कुछ धर्मकारों तथा उनके भेदों की परिभाषा केशव की अपनी है। धर्मकारों के कुछ भेद केशव के गिणी हैं। केशव ने कुछ नए धर्मकारों की भी सृष्टि की है जैसे धर्मित धुसिख प्रसिद्ध विपरीत और धर्मोक्ति। इन धर्मकारों का उत्सव भट्टि सामन्त, बख्शी उद्भट नामक भोज तथा कम्पक प्रादि संस्कृत के हिन्दी भी धार्मिक द्वारा नहीं किया गया है। धर्मोक्ति की तो धर्माधीन धार्मिक धर्मकारों में सम्मिलित करते भी हैं पर धुसिख प्रसिद्ध तथा विपरीत की नहीं। कर्तव्य नाम पोद्दार इन्हें महत्त्वपूर्ण नहीं मानते काम्यकल्पद्रुम (उत्तरार्ध) पृ० ४३। हिन्दी साहित्य में धर्मोक्ति का स्वतन्त्र रूप में सबसे प्रथम उत्सव केशवदास ने ही किया है। धर्मरत्न तथा केशवमिश्र के अनुकरण पर गणना और बख्शी तथा नामन्त के आधार पर 'धार्मिक' धर्मकार का निरूपण भी हिन्दी के लिए नवीन है। केशव द्वारा निरूपित दीपक के मणि तथा भासा-दीपक भेदों का उत्सव धर्म के धार्मिकों में नहीं किया है। यमक का धर्मोक्ति तथा धर्मोक्ति धुसिख तथा धुसिख प्रादि भेदों में वर्गीकरण भी केशव के परवर्ती धार्मिकों में धर्मोक्ति है।

कुछ शोध

केशव ने यद्यपि धर्मकारों का धर्मोक्ति ही सूचन/विशेषण किया है फिर भी उनके निरूपण में कुछ शोध रह ही गए हैं। सबसे पहला शोध जो केशव के धर्मकार विश्लेषण में देखने में आता है वह यह है कि केशव के कई धर्मकारों की परिभाषाएँ स्पष्ट नहीं हैं। उदाहरणस्वरूप भ्रम भेद प्रेमा निरुधना धर्मोपमा धर्मोपमा, विनियोगमा तथा हेतुपमा प्रादि की परिभाषाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। इन धर्मकारों की परिभाषाओं से धर्मकार-विशेष के स्वरूप का स्पष्टतया ज्ञान नहीं होता किन्तु इनमें भी अधिकांश धर्मकारों के मूल का भाव उनके उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। दूसरे केशव ने कहीं-कहीं दो भिन्न धर्मकारों के मूल एक ही दिए हैं। उदाहरण के लिए धर्मोक्ति और समाहित तथा स्वभावोक्ति और धर्म धर्मकारों के मूल दिये जा सकते हैं। केशव का धर्मोक्ति का मूल है—

कौनहु एक धर्मोक्ति है धर्मोक्ति किये सु होय।

सिद्धि धर्मोक्ति हय की धर्मोक्ति धर्मोक्ति होय ॥

(क० प्रि० प्र० ११ अ० १६)

समाहित के मूल का भी भयमन यही भाव है—

होत न क्योंहु होय जहु धर्मोक्ति ते काज।

साहि समाहित नाम कहि बरएत कवि सिरताज ॥

(क० प्रि० प्र० १३ अ० १)

इसी प्रकार स्वभाव (स्वभावोक्ति) और धर्म धर्मकार के मूल भी धर्मोक्ति में मिलते हैं। केशव के स्वभाव धर्मकार का मूल है—

जाको जैसो रूप मुख कहिये ताही धर्म।

ताको जानि स्वभाव सब कहि बरएत कविताज ॥

(क० प्रि० प्र० ६, अ० ८)

मुक्त धर्मकार का ससन भी प्रायः यही है—

भाको जंती क्य बन कहिये ताही क्य ।
ताको कबिहुन मुक्त कहि, बरसत निमिष सक्य ॥

(क० प्रि० प्र० १२ अ० ११)

परन्तु ऐसे समय बहुत ही कम हैं। इसके प्रतिरिक्त जो बात सब से अधिक लटकती है वह यह है कि केसव के कुछ धर्मकारों के सक्षमों तथा उनके उदाहरणों में पूर्ण सार्यस्य नहीं है। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। केसव के विरोधात्मक का दूसरा उदाहरण प्रथम विभावना का उदाहरण बन गया है जसे—

घाणु सितासित क्य चित बिल ब्याम सरोर रने रवराते ।
केसव कागन हीन पुनें भु कहीं रस की रसना विन जाते ॥
नैन कियो कोइ धनतरपायी रो जानति नाहिन भूषति ताते ॥
दूर भी दौरत हैं बिन पायन दूर दुरी बरसं मति जाते ॥

(क० प्रि०, प्र० ६ अ० २१)

इस उदाहरण के सम्बन्ध में स्व० डा० भगवानदीन जी के सख्य दृष्टव्य हैं—

“इस कव्य के प्रथम करण में विपयानकार और छेप तीन बार बारों में विभावनात्मक बरसता है, पर विचार करने से ये धर्मकार ठहरते नहीं । पर हास के आशय से इस छन्द में विपय और विभावना ही मानेंगे । हमें भी संदेह है कि क्या मानें । पर बूझि पुस्तक में यह छन्द विरोध के उदाहरण में दिया है पर कोई बात नहीं” (क० प्रि० प्र० ६, टिप्पणी पृ० १६३) । इस प्रकार सामाजी इस उदाहरण में विरोधात्मक ही मानने को बाध्य होते हैं पर घाण ही धन्य में के ‘पाद-टिप्पणी’ में यह ही लिखते हैं कि हमारा अनुमान है कि यह छन्द प्रथम विभावना का उदाहरण है। लेखकों की प्रभावशाली से यहाँ लिख गया है” —(क० प्रि० प्र० ६ टिप्पणी पृ० १६३) ।

केसव का समान-हेतु का उदाहरण है—

जाग्यो न मैं सब जीवन को उत्तपो कम काम की काम पायोई ।
छेकन बसुत जीन जनेवर जोर जनेवर छाड़ि बयोई ।
घावत बात बरा बिन सीमित कम बरा सब सीमित लियोई ।
केसव राम रती न रती बनसाये हो सावन सिद्ध भयोई ॥

(क० प्रि० प्र० ६, अ० १७)

इसमें राम-नाम के बाप कम साधन के बिना ही कार्य की सिद्धि का जस्मैक किया गया है, परन्तु बिना साधन के कार्य की सिद्धि होने पर प्रथम विभावना होती है । पर यह उदाहरण समान-हेतु का न रह कर ‘प्रथम विभावना’ का हो गया है । स्व० डा० भगवानदीन इस उदाहरण में समान-हेतु सिद्ध करते हुए कहते हैं कि

१. कारण की बिनु कारणहि उरो होत जेहि ठौर ।

—क प्रि० प्र० ६ अ० ११ ।

यदि साधन न होता तो प्रथम विभावना होती। यदि साधनान्तर से काम होता तो दूसरी विभावना होती। यहाँ साधन तो है पर निवसन है अतः अभाव हेतु है^१।
‘परन्तु धनसाधि ही साधन सिद्ध भयो’ शब्दों से स्पष्ट है कि अन्त उदाहरण प्रथम विभावना का ही है।

इसी प्रकार उपमा अर्थकारों के शेरों के अन्तर्व्यति भी बहुत से श्रमों पर संज्ञा और उदाहरण परस्पर नहीं मिलते। केसव की भूपणोपमा^२ का उदाहरण उम्मी की वनयोपमा^३ का स्मरण कराया है। सुझना के लिए दोनों उपमाओं के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

भूपणोपमा का उदाहरण

सुखरस पुत, सुखरस कसित, पुनि
अरस सो निति गति अनित्त बितानी है।
पावन प्रगत दुति द्विजन की बेधियत
बीपति बीपति अति दुति सुखरानी है ॥
छोमा सुन सानी परमारन भियानी, बीह
कमुप कृपानी भानी सब अर नानी है।
पूरन के पूरे पुन्य सुनिधे प्रवीनराय
तेरी वामी मेरी रामी वंसा को सो पानी है।

(क० दि० प्र० १४ अ० १८)

(यहाँ वनेप द्वारा वामी की वंसावस से उपमा की गई है।)

वनेयोपमा का उदाहरण

सपुन सरस सब धनराय रचित है
सुनहु सुभाष बड़े भाष बाब पाइये।
सुन्दर सुवास तनु कोमल भमल मन
पोबस बरसमय हुरय बढ़ाइये ॥
बलित ललित बास केसोदास सवितस
सुन्दरि लोबारि लार्ई गह्वर न स्वाइये।

१ क मि दिवकी, ५ १८६।

२ भूपन दूर कुराव बहूँ अरपत भूपन भाष।

—क० दि०, प्र० १४ अ० १७।

(यहाँ उपमाओं के दोष दिखाकर केवल उनके गुणों के ही अनुसार उपाय की जाय बहूँ भूपणोपमा अर्थकार होता है)।

३ यहाँ स्वल्प प्रयोगिये शब्द एक ही अर्थ।

—क मि प्र० १४ अ० १९।

(यहाँ ऐसे द्रिष्ट शब्द प्रयोग किये जायें जिनका समान अर्थ दोनों में न हो सके)।

चातुरी की दाता मानि चातुर छँ नंदलाल
कपे की सी दाता दाता उर उरमाइये ॥
(क० प्रि० प्र० १४ अ० १०)

प्रतिपाद्योपमा का उदाहरण धनन्वय का उदाहरण बन गया है। इसी प्रकार
धमूतोपमा का उदाहरण बर्धोपमामनुप्रासोपमा का उदाहरण हो गया है। केसव ने
धमूतोपमा का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

दुरिहँ क्यों भुवन बसन दुति यौवन की
बेह ही की जोति होति घोल देखी राति है।
नाह की बुकात लार्थ छँ है केसी केसव
बुमाव ही की बात भोर भोर कारे जाति है।
देखि ठेरी मूरति की मूरति चिसुरति हौं
लालन को वृष देखिबे को ललचाति है।
सलिहँ क्यों बग्नमुखी कुचनि के मार भये
कचन के मार तें मजकि लंक जाति है ॥
(क० प्रि० प्र० १४ अ० १०)

विपरीतोपमा^१ के उदाहरण में तो उपमा धर्मकार का अस्तित्व किसी प्रकार भी माना
ही नहीं जा सकता जैसे—

भूषित बेह विभूति विचंगर नाहि न धमर धग लकीनो।
दुरि के सुखर सुखरी केसव शेरि इरीन में दासन कीनो ॥
द्वैज्य मजित बचन छौं पुनरुद्ध शोक अतिरथ्य बिहीनो।
राजनि वीरमुनाष के राज कुमडल जाकि कर्मजल लोको ॥
(क० प्रि० प्र० १४ अ० १४)

इस सम्बन्ध में स्व सा० भगवान बीम जी का मत उल्लेखनीय है, जो इस
प्रकार है—

‘इसमें उपमा धर्मकार नाम नहीं पड़ता पर विचार से यह भावित होता है
कि राजापण भिन्नवत् हो गए हैं। समझ में नहीं आता कि केसव ने जैसे इसे उपमा
के धर्मयव माना है’ (क० प्रि० टिप्पणी पृ० ३६३)।
सामान्यार्थकारों के अन्तर्गत दिये सचनों एवं उदाहरणों में भी दो-एक स्थलों
पर धनन्वय दृष्टिगोचर नहीं होता है। केसव द्वारा ‘भुवूत’ वचन के अन्तर्गत दिये
उदाहरण में नाविका के कुचों की प्रशंसा का ही लक्ष्य है जगकी ‘भुवूतता’ का नहीं
जैसे—

परम प्रवीन अति कोमल हुपासु तेरे,
उर से उदित नित बिस हितकारी हूँ।

१ पुरख पुरे पुण्य के तेई कहिये हीन।
तावों विपरीतोपमा केसव कह्य प्रवीन ॥

छाया को एक बार रसों की खेती से विस्तृत ही निकाल दिया है^१। फिर कुछ सोच समझ कर उन्होंने निर्बेह-अप्राण छाया रस को भी रसों में स्थान दिया है^२।

बनकम्य धर्म को स्थायी भाव इसलिए नहीं मानते कि रूपक में इसका विकास नहीं होता^३। परन्तु रूपक से हटकर काव्य में इसको रस मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है, बस कि मानुषत्^४ धारि प्राचार्यों ने स्वीकार भी किया है।

धर्मेय केसव ने काव्य में नौ ही रसों का उल्लेख किया है^५। शृंगार सनकी दृष्टि में रसरत्न है^६। केसव शृंगार को अपेक्षाकृत विस्तृत धर्म में लेते हैं। उनके अनुसार रतिमात्र की चातुर्यपूर्ण धर्मव्यक्ति जिसके अन्तर्गत कामसाधन में बलिष्ठ चातुर्य भी शामिल है, शृंगार रस कहलाती है^७। केसव के शृंगार रस का यह लक्षण संस्कृत प्राचार्यों के मतानुसार साम्य नहीं रखता। शृंगार के दो भेदों संयोग तथा वियोग का केवल नामोल्लेख ही किया गया है उनके लक्षण नहीं दिए गए हैं। संयोग तथा वियोग के भी दो-दो उपभेद प्रच्छन्न और प्रकाश किये गए हैं^८। केसव के विचार से प्रच्छन्न संयोग और वियोग बड़ होता है जिसे या तो प्रियतम जानता है या प्रियतमा या सखियाँ या उन्हीं के समूह को प्रस्तरण होते हैं वे जानते हैं^९। प्रकाश संयोग और वियोग

१ शृंगारहास्यकव्यरौद्रवीरमयानका ।

बीमत्साधुमुनसही चेत्यष्टी नादये रसा स्मृता ॥

—आ प्र ४ ४ ५ ४ ।

२ निर्बेहस्वामिमात्रोपस्थित छायातेऽपि नवमो रसः ॥

—क० प्रि० ४ ४ ५० ४० ।

३ धर्ममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नर्दियेषु नैतस्य ।

—दशरूपक, प्र० ४ स्तो ३२ ।

४ नादयमिमे परं निर्बेहस्वामिमात्रकं छायातेऽपि नवमो रसो भवति ॥

—रसतरंगिणी, कर्ण ३, ॥ १६१ ।

५ प्रथम शृंगार मुहास्यरस कस्माच्च सुवीर ।

अथ बीमत्स बलानिये अद्भुत छाया सुवीर ॥

—२ प्रि प्र० १ बं० १५ ।

६ सब को केसवदास हरि, नाहक है शृंगार ॥

—२ प्रि प्र० १ बं० १६ ।

७ रति मति की धति चातुरी रतिपति मंत्र विचार ।

छाही सों सब कहत है, कवि कोविद शृंगार ॥

—२ प्रि प्र० १ बं० १७ ।

८ धुम संयोग वियोग पुनि दो शृंगार की जाति ।

पुनि प्रच्छन्न प्रकाश करि बोलत है ॥ मति ॥

—२ प्रि० प्र० १ बं० १८ ।

९ सो प्रच्छन्न संयोग अथ कहै वियोग प्रमाण ।

जाने पीठ प्रिया कि सखी होहि सु तिनहि समान ॥

—२ प्रि०, गी०, पं० १९ ।

बढ़ है जिसको अपने-अपने मन में सभी सोच जागते हैं^१ ।

इसी प्रकार विभिन्न नायकों वचन के यहाँ नायक-नायिका की चेष्टाओं स्वयंभूतरूप घटनायिकाओं वियोग की दृश दृष्टाओं मान कठना प्रवास तथा हास्यादि रसों क वर्णन में भी प्रत्येक के प्रच्छन्न तथा 'प्रकाश' दो नेह किए गए हैं । केशव के इस प्रच्छन्न के विषय में स्व० सा भगवानदीन जी का कथन है—

"प्रकृति में होता तो ऐसा ही है पर केशव के बाव के धाचायों ने इस नेह को उड़ा दिया है । हमारे अनुमान से इसका कारण यह जान पड़ता है कि प्रच्छन्न भावनाओं या उनके वर्णन कवि को रस के परिपाक तक नहीं पहुँचने देते बाधक होते हैं, घट उनको छोड़ देना ही व्योम्बर है । जहाँ तक हमें ज्ञात है संस्कृत के धाचायों ने भी इन नेहों का बिक नहीं किया । ये केवल केशव की ही ईजाद से घोर केशव ही तक रहे धावे न चस सके ।" (केशव-चरित नायिकाधिका पृ० १२१३) ।

इस सम्बन्ध में बहोवै बगवन्ती पाण्डे का कहना है कि वस्तुस्थिति समझा विपरीत है । उन्होंने बताया है कि 'एविकप्रिया' से कुछ ही पूर वयमुन्वर ने अपने मकबर-साहि शृंगार दर्पण ग्रन्थ में प्रच्छन्न घोर प्रकाश शृंगार के दो उपभेदों का वर्णन किया है घोर भोज ने 'शृंगार प्रकाश' में स्पष्ट रूप से बसा दिया है कि 'प्रकाश' से 'प्रच्छन्न' शृंगार अधिक बनी होता है । उनके विचार से शृंगार को 'प्रकाश' घोर 'प्रच्छन्न' के रूप में देखने का पाठ वस्तुतः भोज ने पढ़ाया है (केशवदास पृ० २२५ २२६) । पाण्डेजी के उपर्युक्त कथन के धाचार पर निदिष्ट रूप से कहा जा सकता है कि प्रच्छन्न घोर 'प्रकाश' यहाँ की सम्भावना के लिए केशव को भोज के 'शृंगार प्रकाश' से ही प्रेरणा मिली है ।

नायक-वर्णन

'एविकप्रिया' के दूसरे प्रकाश में नायक-वर्णन है । केशव के अनुसार नायक बह होता है जो धर्मिणी त्वागी तरण (पुषा) कोक-कलाओं में प्रवीण मध्य समाधीत सुन्दर, बनी धुनि (पवित्र) सदा-बहि (जसाही) घोर कुसीन होता है^२ । वर्णन के अनुसार नायक विनीत सुन्दर त्वागी बल प्रियभावी लोकागुरुत्त धुनि (पवित्र) बाप्पी कुनीन त्विर, मुखा मुनि जसाह, स्मृति प्रज्ञा कसा

१ जो प्रकाश संयोग धर कहें प्रकाश वियोग ।
अपने अपने चित्त में जानें तियरे सोय ॥

२ धर्मिणी त्वागी तरण कोक कला प्रवीण ।
मध्य क्षणी सुन्दर बनी धुनि बहि सदा कुसीन ।
हे नून केशव बाहि में छोड़ें नायक जान ॥

—र मि०, प्र १ अं २१ ।

—र मि० प्र० २ अं० १२ (मध्य)

तथा भविमान से मुक्त भूर बुद्ध, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ तथा धार्मिक पुरुष होता है^१ ।

मोक्ष में कुसीनता उदारता, भाग्यशालीनता कृतज्ञता रूप जीवन विद्यमता भीम गर्व सम्मान उपारवाणी दृष्टिानुरागिता धार्मि नायक के बारह गुणों का संक्षेप किया है^२ ।

सिगभूपरस के विचार से भाग्यशालीनता उदारता स्थिरता दक्षता प्रोज्ज्वल्य धार्मिकता कुसीनता वाग्मिता कृतज्ञता गयज्ञता सुविता मानधीनता तेजस्विता कमाविरता प्रजारणकता धार्मि नायक के साधारण गुण होते हैं^३ ।

विश्वनाथ के अनुसार नायक को त्वाणी कृती (पण्डित यन्त्रा पुण्यात्मा), कुसीन बन्ती रूप जीवन तथा उत्साह से युक्त भूर, लोकसेवक तेजस्वी विद्वान तथा सुधीस होना चाहिए^४ ।

संस्कृत भाषायों द्वारा दिए गए उपर्युक्त लक्षणों से केशव के लक्षण की तुलना करने पर विरहित होता है कि केशव ने किसी एक ग्रन्थ से सहायता लेकर अपना लक्षण नहीं लिखा है । केशव के लक्षण की परीक्षा के लिये 'वसन्तक' तथा 'साहित्य

- १ मैता विनीतो मधुरस्वामी दक्षः प्रियंवद ।
रक्तसोक सुविर्भागी स्वर्धरा स्विरो मुखा ॥
बुद्धुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकसामानसमन्वितः ।
धुरो बुद्धय तेजस्वी शास्त्रज्ञभूरध धार्मिक ॥

—दासक, प्र० २ श्लो १ और ३ पृ ३१ ।

- २ महाकुसीनवीर्यो महाभाग्य कृतज्ञता ॥
रूपवीरनर्दण्ड्यशीलसीमाम्यसपर ॥
मानितोदारवागमत्वम् दृष्टिानुरागिता ।
हावसेति कुमानाहुर्नाविकेवाधिगामिकान् ॥

—स कु० कचयमरक पृ ५१—५२ श्लो १११ ११२ ।

- ३ आसम्भवं मतं तत्र नायको गुणवान् पुमान् ।
तद्गुणास्तु महामाग्यवीर्यं स्वैर्यदसते ॥
प्रोज्ज्वल्य धार्मिकत्वं च कुसीनत्वं च वाग्मिता ।
कृतज्ञत्वं गयज्ञत्वं सुविता मानधाविता ॥
तेजस्विता कमावरत्वं प्रजारणकतापयः ।
एते साधारणा प्रोक्ता नायकस्य गुणा मुर्व ॥

—१० कु० पृ ६ श्लो ३१-३३ ।

- ४ त्वाणी कृती कुसीन सुधीको रूपवीरनोत्साही ।
वक्षोऽनुरक्तलोकस्तेषो नैवम्युसीनधाम्नेता ॥

—स्य० ६०, परि० ३, वा सं ३९ ।

दर्शन' से मिलती है। 'पदरूपक' से जो साठ बातें मिलती हैं उनके नाम ये हैं—
नायक का त्यागी मुख, मुग्ध, शुचि उत्साही अभिमानी तथा कुलीन होना।
इसी प्रकार भिन पाँच बातों की 'साहित्यदर्पण' से समानता है वे हैं—नायक का
त्यागी मुख, मुग्ध, उल्साही और कुलीन होना। 'भती का उत्प्रेत धनञ्जय ने नहीं
किया है। केशव ने इसे साहित्यदर्पण' के आधार पर ही लिया है। कोक-कसाधों
में प्रवीणता का उत्प्रेत केशव ने सम्भवतः धनञ्जय तथा दिगम्भपाल के क्रमशः
कलायुक्तों और 'कलाविज्ञता के स्थान पर किया है। 'अभिमान' को उन्होंने धनञ्जय
तथा भोज के अनुकरण पर लिया है।

सामान्य युक्तों का विवरण देकर वेछव नायक के चार भेद अनुकूल
दक्षिण छठ तथा बृष्ट बतमाते हैं^१।

दिगम्भपाल ने पहले बीरोहात बीरमलित बीरप्रधान तथा बीरोद्धत आदि
चार प्रकार के नायकों का उत्प्रेत किया है और उन्हें सभी रसों में माना है^२। पति
उपपति तथा बहिष्क को उन्होंने शृंगार रस के ही नायक बतसाया है^३। फिर पति
के अनुकूल छठ बृष्ट तथा दक्षिण आदि चार भेद किए हैं^४।

विश्वनाथ सामान्यतः नायक के चार भेद मानते हैं बीरोहात बीरप्रधान
बीरमलित और बीरोद्धत^५। फिर इनमें से प्रत्येक के चार-चार उपभेद किये हैं—
अनुकूल दक्षिण बृष्ट और छठ। इस प्रकार नायक १६ प्रकार के हो जाते हैं^६।
इतने प्रकार विश्वनाथ ने शृंगार रस के नायक के माने हैं, अन्य रसों में तो
वे बीरोहात आदि चार ही प्रकार मानते हैं^७। भोज ने प्रकृति के अनुसार नायक

१ अनुकूल बल छठ बृष्ट पुन चौविध साहि बलान् ।
—र वि प्र १ अ २ (पिण्डपद) ।

२ एते च नायका सर्वरससाधारणाः स्मृताः ।
—र तु रसो ७८ पृ० १६ ।

३ शृंगारोपेक्षया तेषां विविधं कथ्यते युक्तं ।
पतिरुचोपतिरनैव द्विपिठ्यवेति भवत ॥

४ अनुर्वा मोर्षि कथितो ब्रूया काम्यविषयान् ।
अनुकूल छठो बृष्टो दक्षिणवेति भवत ॥

—र तु रसो ७९ पृ० १६ ।
—र तु रसो ८० पृ० १६ ।

५ बीरोहातो बीरोद्धतस्तथा बीरमलितश्च ।
बीरप्रधान इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः ॥

६ एव द परी० १ का स ७२ । —एव द परी २, का स० १७ ।
७ शृंगारे पौड्यप्रकारक नायक रसास्त्रे तु अनुपकारक इति शेषम् ।
—एव द टीका पृ० १ ।

तथा अभिमान से युक्त घूर बुद्ध, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ तथा धार्मिक पुण्य होता है^१ ।

भोज ने कुलीनता उदारता भाग्यशालीनता, कृतज्ञता रूप यौवन विदग्धता भील मर्ष सम्मान उदारवाणी बरिदानुरागिता आदि नायक के बारह गुणों का संक्षेप किया है^२ ।

स्निग्धभूपास के बिचार से भाग्यशालीनता उदारता स्निग्धता बलता, भोग्यत्वस्य धार्मिकता कुलीनता धार्मिकता कृतज्ञता मयज्ञता क्षुब्धता मानसीनता तेजस्विता कलाविरता प्रचारकता आदि नायक के साधारण गुण होते हैं^३ ।

विरवनाथ के अनुसार नायक को रंगी कृती (पण्डित यक्षना पुण्यात्मा) कुलीन धनी रूप यौवन तथा उत्साह से युक्त, चतुर, भोकरंजक तेजस्वी विदग्ध तथा सुधीन होना चाहिए^४ ।

संस्कृत आचार्यों द्वारा दिए गए उपर्युक्त सत्यनों से केदार के सदाच की तुलना करने पर निश्चित होता है कि केदार ने किसी एक धर्म से सहायता लेकर अपना लक्षण नहीं लिखा है । केदार के सदाच की अधिकतम बातें 'व्यक्त्वा' तथा 'साहित्य'

- १ नेता विनीतो मङ्गुरस्त्वाभी बलः प्रियंवधः ।
रक्तसोकं क्षुब्धवाग्मी कङ्कषसं स्त्रियो युवा ॥
बुद्धसुखाहस्मृतिप्रज्ञाकसामानसमन्वितः ।
पूरो बुद्धश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

—रक्तसोक, प्र० २ श्लो० १ और ३ ५ १२ ।

- २ महाकुलीनवीर्यो महामायो कृतज्ञता ॥
रूपयौवनवैदग्ध्यसीससीमाग्यसंपन्नः ॥
मानिखोदारवाचकत्वम् बरिदानुरागिता ।
ज्ञावपीति गुणालाङ्गनैकैर्धार्मिकानि ॥

—स० कु कव्यमरक वृ० ३६-३६३ श्लो ११२-११३ ।

- ३ आसम्भवं मत्तं तज नायको गुणवान् पुमान् ।
तत्पुत्रास्तु महामायवीर्यो र्स्वयंवधते ॥
भोग्यत्वस्य धार्मिकत्वं च कुलीनत्वं च धार्मिकता ।
कृतज्ञत्वं मयज्ञत्वं क्षुब्धता मानसाभिता ॥
तेजस्विता कलावत्त्वं प्रचारकतायम् ।
एते साधारणा प्रोक्ता नायकस्य नृणां बुधैः ॥

—र० तु १० ६ श्लो ३१ ३२ ।

- ४ रयावी कृती कुलीनः सुधीको रूपयौवनेत्साही ।
बसोऽमुररक्तसोकस्तेजो वैदग्ध्यसीसवाम्नेता ॥

—स्य ६, परि ३, पा० लं० ३९ ।

दर्पण' से मिलती हैं। 'दसकम्पक' से जो सात बातें मिलती हैं उनके नाम ये हैं—
नायक का त्यागी तटस्थ सुन्दर शुचि उत्साही, धर्मिमान तथा कलीम होना
इसी प्रकार जिन पाँच बातों की 'साहित्यदर्पण' से समानता है वे हैं—नायक का
त्यामी, सुन्दर धनी उत्साही धीर कुलीन होना। 'धनी' का उल्लेख भनजय ने नहीं
किया है। केसव ने इसे 'साहित्यदर्पण' के आधार पर ही लिखा है। कोक-कम्पार्श्व
में प्रवीणता का उल्लेख केसव ने सम्भवतः भनजय तथा चिन्मूपात के कम्पार्श्व
कम्पार्श्वता' धीर 'कम्पार्श्वता' के स्थान पर किया है। धर्मिमान को उन्होंने भनजय
तथा मोक्ष के अनुकरण पर लिखा है।

सामान्य वृत्तों का विवरण देकर केसव नायक के चार भेद अनुकूल
वक्षिण छठ तथा बृष्ट बतलाते हैं^१।

चिन्मूपात ने पहले बीरोदात्त बीरलसित बीरप्रशान्त तथा बीरोद्धत आदि
चार प्रकार के नायकों का उल्लेख किया है धीर उन्हें सभी रवों में माना है^२। पति
उपपति तथा वैशिक को उन्होंने शृंगार रस के ही नायक बतलाया है^३। फिर पति
के अनुकूल छठ बृष्ट तथा वक्षिण आदि चार भेद किए हैं^४।

विश्वनाथ सामान्यतः नायक के चार भेद मानते हैं बीरोदात्त बीरप्रशान्त
बीरलसित धीर बीरोद्धत^५। फिर इनमें से प्रत्येक के चार-चार उपभेद किये हैं—
अनुकूल वक्षिण बृष्ट धीर छठ। इस प्रकार नायक १६ प्रकार के हो जाते हैं^६।
इसने प्रकार विश्वनाथ ने शृंगार रस के नायक के माने हैं, अन्य रवों में तो
वे बीरोदात्त आदि चार ही प्रकार मानते हैं^७। मोक्ष ने प्रकृति के अनुसार नायक

१ अनुकूल वक्षिण छठ बृष्ट पुन चौरिष्य साहि वक्षान् ।
—र मि प्र १ क १ (विलेख्य) ।

२ एते च नायका सर्वरससाधारणा स्मृता ।
—र तु स्तो० ७८ व १९ ।

३ शृंगारोपेक्षया तेषां वैविध्यं कथ्यते बुध ।
पतिवचोपतिवचैश्च [वैविध्यवचैश्च] भेदत ॥

४ अनुकूलं तोष्यं वक्षिणं वृत्त्या काव्यविशदार्ण ।
अनुकूलं छठं बृष्टं वक्षिणवचैश्च भेदत ॥

—र तु स्तो ७६ व १९ ।

५ बीरोदात्तो बीरोद्धतस्तथा बीरलसितश्च ।
बीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः ॥

—र तु स्तो ८०, व १९ ।

६ छ० ६ वरि १ क स०, ७२ ।
—छ ६ वरि १ क स ६० ।

७ शृंगारे दोषप्रकारक नायक रसागरे तु चतुष्प्रकारक इति शेषम् ।
—छ० ६०, वीर्य १ १० ।

के चार भेद छठ घृष्ट धनुकूल और वक्षिण बतलाए हैं^१ ।

मानुदत्त ने बीरोशास आदि भेदों का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने मायक तीन प्रकार के माने हैं पति उपपति और वैशिष्ट्य^२ । फिर उन्होंने धनुकलादि चार भेदों को पति के उपभेदों में दिया है^३ । वर्णजय में बीरोशासदि भेदों के प्रतिरिक्त वक्षिण, छठ घृष्ट और धनुकूल आदि भेदों का भी वर्णन किया है^४ ।

इस प्रकार निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि केसव ने मायक के धनुकूल आदि चार भेद किस ग्रन्थ-विशेष के आधार पर लिखे हैं ।

धनुकूल मायक

केसव धनुकूल मायक उसे मानते हैं जो परस्त्री है विमुख रहता हो और ममता बाधा तथा कमणा अपनी स्त्री से प्रेम करता हो^५ । केसव का यह सखण वर्णजय धियभुपास तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों के सखणों^६ से भिन्न मिलता है । हमें तो केसव के सखण का आधार मानुदत्त की 'रसमन्त्री' तथा रूपगोस्वामी की 'उत्सवमन्त्रीसमिति' नामक रचनाएँ ही प्रतीत होती हैं^७ । मानुदत्त तथा रूपगोस्वामी द्वारा दिया धनुकूल मायक का सखण उक्त तीनों आचार्यों की अपेक्षा अधिक पूर्ण है । भोज में सखण नहीं दिया है ।

वक्षिण मायक

केसव द्वारा दिया हुआ वक्षिण मायक का सखण विश्वनाथ द्विध भुपास रूपगोस्वामी तथा मानुदत्त के सखणों से नहीं मिलता । उनके सखणों का एक ही

१ छठी घृष्टोऽनुकूलवच वक्षिणवच प्रवृत्तिः ।

—सं. कु. कवचमन्त्र, पृ. १६७ ।

२ रसमन्त्री पृ. १७१ ।

३ धनुकूलवक्षिणघृष्टछठभेदात्पतिरिक्तगुणः ।

—रसमन्त्री, पृ. १७२ ।

४ वराहपद प्र. २, पृ. १६ ।

५. प्रीति करे निज नारि सौ परगारी प्रतिकूल ।

केसव मन बच कर्म करि, सो कहिये धनुकूल ॥

—र. प्रि० प्र. १ अ० १ ।

६ धनुकूलस्वेक्यायिक ।

—वराहपद, प्र० २, पृ० १६ ।

धनुकूलस्वेक्यायि ।

—रसमन्त्रिपद, पृ. १६ ।

धनुकूल एकनिरत ।

—सं. द०, परि. १, अ० सं. ७२ ।

७ सार्वकामिकपराङ्गमापराङ्गमुखरवे छति सर्वकालममुरकतोऽनुकूल ।

—रसमन्त्री पृ० १७१ ।

प्रतिरक्ततया नायां त्यक्ताप्यलसमात्सृहः ।।

—द० मन्त्रि पृ. ११ ।

भाव है कि दक्षिण नायक धनेक नाबिजाघों में समाग रूप से धनुरस्त रहता है^१ । धर्मजय ने दक्षिण नायक का लक्षण देते हुए लिखा है कि धपनी पूर पत्नी के प्रति भी प्रेम रखने वाला नायक दक्षिण कहलाता है^२ । रूपगोस्वामी दक्षिण नायक के द्वितीय मक्षण में लिखते हैं कि दक्षिण नायक वह है जो भय में धनुरस्त होने पर भी धपनी पूर पत्नी के प्रति प्रेम भय दाक्षिण्य एवं सम्मान का मात्र रखता है^३ । केसव ने धर्मजय और रूपगोस्वामी के भाव को कुछ धार्मिक बढ़ाकर प्रकट किया है^४ । दक्षिण नायक धपनी पत्नी पत्नी के प्रति प्रेम भय तथा सम्मान प्रपणा सम्मान भाव रखता है और विल के न्यायमार्ग होने पर भी अपने साधरण से विभक्त नहीं होता । इस प्रकार केसव का मक्षण सबमान्य मक्षण से कुछ बिभेपना लिए हुए है । भोज ने इस मर को छो माना है पर मखण छोड़ दिया है ।

घट नायक

जो मुह से भीठी-भीठी बातें करता है, मन में कपट रखता है और अपराध से नहीं डरता है उसे केसव घट नायक कहते हैं^५ ।

इरावपक में घट नायक का लक्षण इस प्रकार दिया है—जो पुष्ट रूप से प्रमिष करे वह घटनायक कहलाता है^६ । इस मक्षण से केसव का मक्षण नहीं मिलता । केसव का लक्षण विस्वनाथ और रूपगोस्वामी के मक्षणों का समन्वय सा जल पड़ता है । विस्वनाथ के अनुसार घट नायक वह होता है जो धासक्य से किसी धन्य

१ एषु लनेकमहिनासु समरायो दक्षिणः कश्चित् ।

—छ ६ परि ६ का० ७० अ२ ।

नायिकास्वप्नैकामु तुल्यो दक्षिणः सख्यते ॥५२॥

—१ सु ४ १८, तथा ३० अवि ६० ६० ।

सकलनायिकाविषयकसमसङ्गानुप्रायो दक्षिणः ।

—रसमंजरी, पृ० १४४ ।

२ दक्षिणोत्पत्ता सङ्ख्ययः ।

—इरावपक प्र० १ पृ० १६ ।

३ सो वीरर्ष भयं प्रेमदाक्षिण्यं पूर्वमोपिपति ।

न मुक्तवत्यप्यपिसोमपि सोमोऽप्यो जनु दक्षिणः ।

—३० मखि स्तो० १६ पृ० ६६ ।

४ पहिनी सो हिय हेतु कर रहस्य बड़ाई जाति ।

बिपत बर्षहू ना जते दक्षिण मलय जाति ॥

—२० पिय, प्र २ अ० ७ ।

५ मुह मीठी बातें कहै निपट कपट भिय जाति ।

जाहि न डर अपराध को, राग कर ताहि बसति ॥

—२० पिय, प्र० २ अ० ११ ।

६ मुहुविमिषकृच्छठः ।

—इरावपक पृ० १६ ।

में ही हो किन्तु प्रकृत नायिका में भी ऊपर से प्रेम-भाव दिखासाए धीर गुप्त रूप से उसका प्रिय करे^१ । रूमोस्वामी के अनुसार शठ नायक बहु कहलाता है जो सामने जो प्रिय बोझता है परोक्ष में बहुत ही अनिष्ट करता है धीर प्रच्छन्न रूप से अपराध करता है^२ । भोज ने इसके भी लक्षण का कोई उल्लेख नहीं किया है ।

धृष्ट नायक

केदार के धृष्ट नायक का लक्षण साहित्यदर्पण में समान है । केदार के विचार से धृष्ट नायक बड़ होता है जिसको नाभी धीर मार तक की लज्जा नहीं है जिसने भय को त्याग दिया है धीर जो अपने देखे हुए दोष को भी नहीं मानता है^३ ।

विश्वनाथ के लक्षण का भी यही भाव है^४ । शिखरभूषण का लक्षण केदार से नहीं मिलता^५ । भोज ने धृष्ट नायक का भी लक्षण नहीं लिखा है ।

नायिका-मेघ-वर्णन

जाति के अनुसार नायिकाएँ

‘रसिकप्रिया’ का तीसरा संपूर्ण प्रकाश नायिका-मेघ-वर्णन को ग्रहित है । इसका प्रारम्भ जाति के अनुसार नायिकाओं के पद्मिनी बिजिणी खंखिनी धीर हस्तिनी नामक चार भेदों के वर्णन से होता है^६ । इन भेदों का उल्लेख संस्कृत भाषा के किसी भी आचार्य के ग्रन्थ में नहीं उपलब्ध होता । कामशास्त्र-सम्बन्धी अनवरग रतिरहस्य आदि ग्रन्थों में अवश्य इनका वर्णन मिलता है । यत स्पष्ट है कि केदार

१ शठोऽप्येकत्र बहुभाषो यः ।

रहितबहिरनुरागो विप्रियमन्वजः पूढभाचरति ॥

—छा ६, पं. ४, अ. ७७ ।

२ प्रियं वक्षि पुरोऽप्यत्र विप्रियं कुर्वते धृष्टम् ।

निगूढमपराधं च शठोऽप्यं कथितो बुधैः ॥

—४ पं. १, अ. १८ ।

३ लाल न मारी मार की छाँड़ गई सब नास ।

देखो दोष न मानहीं धृष्ट सु केदारदास ॥

—र० प्रि० अ. १, पं. १४ ।

४ कृतानां अपि निःशंकस्तविजोऽपि न लज्जितः ।

धृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाकः कथितो धृष्टनायकः ॥

—छा ६, पं. १, अ. ७७ ।

५ धृष्टो व्यक्तान्वयबुधतिभोगसरमा विनिर्जयः ।

—र० सु० अ. १, पं. १८ ।

६ प्रथम पद्मिनी बिजिणी सुवर्ती जाति प्रमाण ।

बहुरिं खंखिनी हस्तिनी, केदारदास बखान ॥

—र० प्रि०, अ० १, पं० १ ।

ने इन दोनों को इन्हीं यन्त्रों के आधार पर मिखा है।

पद्मिनी

केदार के अनुसार पद्मिनी नायिका स्वकृपवती होती है। उसका शरीर सङ्ख-सुमन्वित होता है। उसका प्रेम मुखपायी तथा पुष्पस्वस्व होता है। वह मत्स्य भोजन करता है और रोप रति निद्रा तथा माग की भाषा भी उसमें बोधी ही रहती है। वह मज्जावती तथा बुद्धिमती होती है। उसका हृदय उदार और कोमल होता है। वह हंसमुख होती है और उसका शरीर निर्मल और वर्ण स्वर्ण के सदृश होता है। 'पद्मिनी' नायिका स्वच्छ वस्त्र धारण करती है और उसका मदनमन्दिर मोमरहित होता है^१। केदार के मक्षण की कुछ बातें 'धनगर' से मिलती हैं जैसे नायिका का स्वकृपवती होना उसका वर्ण स्वर्ण के समुदा होना मज्जावती होना मत्स्य भोजन और मद्य निद्रा करना तथा स्वच्छ और स्वेत वस्त्रों को पहनने की धर्मवर्षि प्रादि^२।

चित्रिणी

केदार के विचार से चित्रिणी नायिका की शक्ति मुख्य गीत और कविता में होती है। उसका चित्त स्थिर तथा दृष्टि चञ्चल होती है। बहिर्दृष्टि में उसे प्रेम होता है। मदनवत्त भाषा में अधिक होता है। मुख से सुगंध आती है। उसके शरीर तथा मदनमन्दिर पर रोम पर्यप्त ही विरल होते हैं और उसके शरीर की सुगंध सब को आती है। चित्रिणी

१ सङ्ख सुमन्व स्वस्व शुभ पुष्प प्रेम मुखपाय ।

तनु तनु भोजन रोप रति निद्रा माग वक्षान् ॥

धनक मुखि उदार मुख, हास वास सुनि मय ।

ममल भसोम धनगरमुख, पद्मिनी हाटक रस ॥

—८० प्रि०, म० १, अ० २ १ ।

२ प्रान्तास्त्रकुरंगदावनमना पूर्वोन्मुखस्यानना

पीनोत्तुङ्गमकुचा पिरीपमुख्या स्वस्वाधना वक्षिषा ।

पुष्पाम्भोजमुपशिकामसमिधा मज्जावती मायिनी

स्वामा चाति सुवर्णवम्पनिभा वेषादिपूवारता ॥

उन्मिद्राभुजकोष्ठतुल्यमदनच्छना मरामम्बना

तन्मी हंसमुखजि सुनतित वैषं सदा विप्रती ॥

मध्यं चापि वसिष्ठयावितमसी पुष्पाम्बराकाशिणी

सुपीवा शुभनासिकेति यक्षिता नामु तथा पद्मिनी ॥

—मकरन्द, १० १ ८, स्तो० ८, १ ।

नायिका को बिभों से घनुराय होता है^१ । केशव के राखण में नायिका की दृष्टि का अंश होना मुख की सुगंध घरीर पर रोमों का कम होना भवनजस का अधिक होना प्रादि बातों का आधार 'धर्मवरम' है^२ । मूल्य में रवि तथा बहिरुत्ति में घनुराय होना प्रादि बातें 'रतिरहस्य' के अनुकूल हैं^३ ।

राखिनी ।

केशव के बिभार से राखिनी नायिका कोपसीता घीर कपट करते में यही प्रवीण होती है । उसका घरीर सजस तथा समोम होता है । रक्त वर्ण क दस्तों को धारण करने एवं नखदान में उसे रवि होती है । वह निर्जङ्ग निबर तथा अघीर होती है । उसका भवनजस द्वार जी-सी सुगंध वासा होता है घीर वह घुरत में अधिक घनुराय रहती है^४ । केशव द्वारा दिये राखिनी नायिका के कुछ सजस जैसे उसका कोपसीता कपटी तथा अघीर होना घरीर का उप्य होना घुरत में नखदान तथा

- १ मूल्य मीत कविता कर्षे अचल चित्त जति सुष्ट ।
बहिरतिरत्त अति सुरतिजस मुख सुगंध की सुष्ट ॥
विरस लोम तन मदन-गूह, भावत सकस सुबाध ।
मित्र विचित्रिय विविची आनहु केशवदास ॥

—रं प्रि० म ३, व० १-२ ।

- २ तन्वठ घी नखगामिनी अपसवुकसंवीतविस्मान्विता
नो ह्रस्वा न बृहत्तराज्य सुकृषा मध्ये मयूरस्वर ।
पीनप्रोषिपयोधरा सुलसिते जने बह्वी कृषे
कामाभोमदुगन्धनीष्मपि सा विम्बोपम वत्ससा ॥
कामाचारमसान्द्रभोमसहित मध्ये मृदु प्रायघो
विभ्रापोलसित न वत्स लमचो रयम्मुनार्द्र तथा ।
भूमी स्यामसकृत्तना न जसजघीरोपभोमे रता
विना शक्तिमती रतेप्रपक्षिका अयोगना विविची ॥

—अनुराग, पृ ३, स्तो १०-११ ।

- ३ स्वरवचनविमामा मूल्यपीताविविक्षा । रतिरहस्य, स्तो १४ ।
तथा प्रकृतिचपलदृष्टिर्बाह्यसंभोगरक्ता ॥ रतिरहस्य, स्तो १२ ।
- ४ कोपसीता कोविद कपट सजस समोम घरीर ।
अरुण वसत नखदान रवि, निलज मिश्रक अघीर ॥
धारसंपवुत भारजस, उप्य मूर मन होह ।
घुरतारति अति राखिनी वरमत कविजन सोह ॥

—रं प्रि० म ३ व० ५, ११ ।

माल वस्त्रों के पहनने में रुचि होना यादि 'धनवरंग' के समान हैं।
हस्तिनी

केसर के धनुषार हस्तिनी नायिका की धनुषिणी चरण मुख धवर धीर
मुकुटी स्तन होती है। उसकी बायी बटु, बिना चर्म तथा पति मन्द होती है।
उसके स्वेद तथा मदनजल से हाथी के मर की-सी मय जाती है। उसके
केसर गुरे होते हैं धीर शरीर पर तीक्ष्ण धीर नायिक रोम होते हैं^१। वेसर द्वारा
बतसाए गए कुछ मुख तथा नायिका के केशों का भूरा होना कटु बोम मर पति
धमरों का स्तन होना मदनजल से हाथी के मर की-सी रंग का माना यादि
'धनवरंग' के अनुकूल हैं।

कर्मनुसार नायिकाएँ

केसर ने कर्मनुसार नायिकाओं के तीन प्रकार बतसाए हैं, स्वकीया
परकीया और सामान्या^२।

१ शीर्षं बाहुं शिरः कूर्चं पुण्ड्रयो रैर्हं बहन्ती तथा
पादौ शीर्षतरौ कटि च मुहूर्ती स्वस्मस्तनी कोपिनी ।
मुखं धारयिष्यन्तिना स्मरजलेनात्येनं सार्धं कर्णं
रामिन्मं कुटिलेन तथा हुतवति सन्तप्तयासा मृगम् ॥
सन्मोने करजसतानि बहुसो यच्छस्यमाकुता
न स्तोत्रं न च धुरि मलति तथा प्रायो मनेत् विपत्ता ।
समरन्नाभ्यस्त्वानि याम्छति यमाहीना च वैशुम्यपूर्व
पिया हुष्टमगादथ कर्षरमहाकास्वरा ध्वनिनी ॥

—धनराय १० १ स्तो १२ १३।

२ दूत धनुनी चरण मुख धवर मुकुटी कटु बोम ।
मदन-सदन रस कंचरा मर नात बिद्य लोम ॥
स्वेद मदनजल द्विरदमर नमिषि गुरे केसर ।
पति तीक्ष्ण बहु लोम तन मनि हस्तिनि इहि वेसर ॥

—र मि० प्र १ अ० ११ १२।

३ स्तूना पित्तकुण्डला च बहुमुखकूरा मपावजिता
गीरांती कुटिलापुनीचकरणा हस्ता नमत्कमरा ।
विभ्राणैर्ममवाम्भुयमि रतिर्जं शीर्षं भूर्धं मन्त्रा
हुसाय्या गुरवेति यक्षवरका स्तूनीच्छिका हस्तिनी ॥

—धनराय १ ४ स्तो १४।

४ सा नायक की नायका धनमि तीनि बसान ।
मुष्टिया परकीया धवर, सामान्या
मुप्रमान ॥

—र मि० प्र १ अ० १४।

वर्णन, विस्मय और आनुवत्त आदि नायिका-रूप पर मिलने वाले सभी भाषाय इन सबों को मानते हैं^१। केसव ने सामान्या का वर्णन नहीं किया है। उसका कारण है 'रसिकप्रिया' में केसव राधा को नायिका के रूप में देखता^२। वर्णन तो दूर रहा वे तो उसका नाम तक नहीं लेते^३।

स्वकीया नायिका :

केसव स्वकीया नायिका उसे कहते हैं जो सम्पत्ति विपत्ति तथा मरण में भी नायक के साथ मगसा पाया तथा कमना नायक से एक जैसा व्यवहार करती है^४। केसव का यह सख्त वर्णन विस्मय आनुवत्त आदि किसी भी भाषार्य से नहीं मिलता केसव शिष्ट वभुपास^५ से ही साम्य रखता है।

वर्णन विस्मय और आनुवत्त के समान केसवदास ने भी स्वकीया के मुग्धा मध्या और प्रीड़ा (प्रपत्ता) तीन भेद माने हैं^६।

मुग्धा के भेद

केसव मुग्धा का लक्षण न बंदर भेड़ों से ही धारण करते हैं। उन्होंने मुग्धा के चार भेद किए हैं नवतनय नवयौवनाभूषिता नवतर्पणा और नवप्राप्तरति^७।

१ स्वान्वा साधारणस्त्रीति तद्वगुणा नायिका विधा ।—रसक, ५ ४२।
सद्य नायिका विविधा स्वाग्या साधारणस्त्रीति ।

—सं ६० वरि १ का० सं० ६८।

सा च विविधा-स्त्रीया परकीया सामान्या चेति । —रसक, ५ ४।

२ वगनायक की नायका बरपी केसवदास ।

तिनके वरपण रस कहीं मुनहु प्रसन्न प्रकाश ॥

—र मि प्र १ व ७४।

३ और व तन्वी तीसरी क्यों बरणी इहि ठीर ।

रस में बिरस न बरनिसे कहत रसिक सिरमीर ॥

—र मि प्र १, वं० ४०।

४ सम्पत्ति विपत्ति जो मरणही सब एक अनुहार ।

ताको स्वकीया जानिए, भग कम बचन विचार ॥

—र मि प्र १ व १२।

५ सम्पत्तासे विपत्तासे या न सुम्पति बसमम् ।

जीवार्थवगुणोपेता सा स्त्रीया कविता बर्य ॥

—र सु, ५० २१।

६ मुग्धा मध्या प्रीड़ा गति तिनके तीनि विचार ।

—र मि, प्र १, वं १६।

७ नवतनय नवयौवना नवत तर्पणा नाम ।

सज्जा सिए नु रति करि सज्जाप्राह गुणाम ॥

—र मि, प्र १, वं १७।

फिर इनके अलग-अलग सत्तन सोदाहरण दिए गए हैं। केदार की दृष्टि में 'नवमवयु' मुग्धा ^१ होती है जिसके धरोर की धृति दिन प्रति दिन बूनी बढ़ती है^२। 'नवमीवना मृपिता' ^३ है जो वाक्यावस्था को पार कर वीवनावस्था में प्रवेश कर रही हो^४। 'नवमप्रनया' वह कहलाती है जो बालकों के समुच्च खेलती खेलती धीरे सविभाष हुईती तथा मय विखलाती है^५। 'सज्जाप्रावरित' वह है जो सज्जा के साथ सुरति में प्रवृत्त होती है और अपने पति की प्रीति को बढ़ाती है^६। इन भेदों के प्रतिरिक्त केदार मुग्धा नायिका के 'अयन' 'सुरति' और 'मान' का भी वर्णन सोदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं कि मुग्धा पहले तो नायक के साथ होती ही नहीं और यदि किसी प्रकार सखी के समुरोप पर तो भी काम तो फिर उसके बीजा सुख नहीं मिलता वह स्वप्न में भी सङ्घर्ष सुरति में प्रवृत्त नहीं होती और यदि असमय से रति की आय तो सुख और सोमा की हानि हो जाती है। वह या तो मान करती ही नहीं और यदि करे तो तो उसका मान अज्ञान की नाई ही उसे बचा कर छुड़ाना वा सकता है^७।

वर्तनय ने मुग्धा के चार भेद किए हैं नवमवयवा नवकामा रतिवामा और मृदुकोपा^८। वर्तनय ने इन भेदों के लक्षण नहीं दिए हैं परन्तु लक्षण नामों तथा उदाहरणों से स्पष्ट हो जाते हैं। केदार की 'नवमीवनामृपिता' और वर्तनय की 'नवमवयवा' एक ही हैं। केदार की 'नवमप्रनया' और वर्तनय की 'नवकामा' में केवल

१ जासों मुग्धा नवमवयु, बहुत उपायै लोह।

विन दिन धृति बूनी बढ़ै बरणि कहै कवि लोह॥

—र. दि० प्र० १ अं १८।

२ तो नवमीवनमृपिता मुग्धा को यह विषय।

बाल बधा निकरी बहौ वीवन को परवेश।

—र. दि० प्र० १, अं १।

३ नवम प्रनया होइ सो मुग्धा केदारवास।

खेले खेलै बाल विधि हँसै नर्स सविभाष।

—र. दि० प्र० १, अं० १२।

४ मुग्धा सज्जा प्रावरति बरगल है इहि रीति।

करै सुरति धति साथ सों पतिहि बढ़ावै प्रीति॥

—र. दि०, प्र० १ अं १४।

५ मुग्धा सोइ रहै नहीं, पियसय मुनो सुमान।

जो क्योंहुँ सोवै सखी सुख नहीं ताहि समान॥

मुग्धा सुरति करै नहीं अपनेहुँ सुख मान।

छनवस जीने होत है, सुखसोमा की हान॥

मुग्धा मान करै नहीं करै तो मनी सुमान।

रवों डरपाइ छुड़ाव्य ज्यों डरवै अमान॥

—र. दि०, प्र० १ अं १३, १४ तथा १५।

६ मुग्धा नवमवकामा रती नामा मृदु क्रुधि।

—र. दि०, प्र० १ अं १३।

नामसाम्य है । केदार की 'सज्जाप्रायरति' तथा 'नवसवधू' का उल्लेख वर्णन में नहीं किया है ।

शिवभूषण ने वर्णन द्वारा बतलाए हुए उनमें से दोनों के धतिरिक्त सतीक सुरतप्रयत्ना और शोभाभाषण रहती नामक दो और में दोनों का उल्लेख किया है^१ । भूषण के में नववयसा नवकामा तथा सतीकसुरतप्रयत्ना के केदार के में नवसवधू, नववयसा तथा सज्जाप्रायरति से क्रमशः नाम ही मिलते हैं ।

विश्वनाथ ने मुग्धा के पाँच में किए हैं, प्रथमावतीर्णयौवना प्रथमावतीर्ण मदनविकारा रतिवामा मानमूढ और समधिकसज्जावती^२ । विश्वनाथ ने भी इन में दोनों के सङ्ग नहीं दिए हैं किन्तु सदाओं का नामों से ही पता चल जाता है । विश्वनाथ की 'प्रथमावतीर्णयौवना' केदार की 'नवयौवनाभूषिता' से पुनर्तया मिलती है । विश्वनाथ की 'प्रथमावतीर्णमदनविकारा' का केदार की 'नववयसा' से केवल नाम साम्य है परन्तु विश्वनाथ के सहाह्वर से विहित होता है कि दोनों सदा भिन्न समझते हैं । विश्वनाथ की समधिकसज्जावती केदार की 'सज्जाप्रायरति' से सवय मिलती है । विश्वनाथ के 'रतिवामा' तथा 'मानमूढ' में दोनों को तो केदार ने छोड़ दिया है, पर उनके मुग्धा के सुरति और मान के सदा विश्वनाथ के में रतिवामा तथा मानमूढ के अनुकूल हैं । विश्वनाथ ने भी केदार की 'नवसवधू' का उल्लेख नहीं किया है ।

मानुदत्त ने मुग्धा के तीन में किए हैं धरुकरितयौवना, नवोदा और विषम्पनवोदा । धरुकरितयौवना के फिर दो उपभेद किए गए हैं सज्जातयौवना और ज्ञातयौवना^३ । केदार की सज्जाप्रायरति का राखन मानुदत्त की नवोदा से संबन्धित मिलता है । केदार की नवसवधू और मानुदत्त की नवोदा में कोई साम्य नहीं है ।

सम्प्रा के में

केदार ने सम्प्रा नायिका के चार में बतलाए हैं, धारुदयौवना प्रगल्भवना,

१ मुग्धा नववयसकामा रती वामा मूढ कृषि ॥६६॥

मठते रतचेष्टायाम् मूढ सज्जाभिनोहरम् ।

कृतादराभि रपिते भीसते करती सती ॥६७॥

धप्रियं वा प्रियं वापि न किञ्चिदपि भावते ।

—र० प० पृ० ११ ।

२ प्रथमावतीर्णयौवनामदनविकारा रती वामा ।

कविता मृगदन्त माने समधिकसज्जावती मुग्धा ।

—सा० पृ० परि १, का० पृ० १०१ ।

३ धारुकरितयौवना मुग्धा । सा च सज्जातयौवना ज्ञातयौवना च । सर्व क्रमयो सज्जाभयपराधीनरतिर्नवोदा । सर्व क्रमयो सप्रथमा विषम्पनवोदा ।

—रतनकरी, १ पृ० ८ ।

क्रान्ते तथा कचमपि प्रवितं मृगास्या ।

आतुर्यमुद्यतमनोमयया रतौयु ।

तत्कृजिताम्यगुबद्धभिरनेकवारं ।

विध्यायितं गृह्णोतस्तैर्यथाऽस्या^१ ॥

सुरति के सबसेर पर प्रवृत्तकामा मृगाक्षी ने इस प्रकार के अपूर्व कौशल का प्रदर्शन किया कि अनेक बार उसके रतिकृजित का अनुकरण करते हुए घर के (पाहतू) कमरत उसके विषय से जान पड़ने लगे । केसव की निम्नलिखित पंक्तियों में यही भाव प्रतिबिम्बित हो रहा है—

कृजि कृजि छठे रति कृजितनि सुनि जाय ।

सोई तौ घूरत छकि घोर विषहार है^२ ॥

सिद्धमूपास मध्या के केसव तीन भेद ही बतलाते हैं समानसंज्ञा मरना प्रोत्साह्यधालिनी घोर मोहान्तसुरतसमा^३ ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि केसव मध्या के विभाजन के लिए विषयनाय के ही स्वी प्रतीत होते हैं ।

सुरतिविधिना के प्रसंग में रति का वर्णन करते हुए केसव ने बहिरति और अन्तरति दो भेद किए हैं जिनमें से प्रत्येक के सात-सात प्रकार स्वीकार किये हैं^४ । भेद कामसूत्र के धातिगत विचार चुम्बन विक्रम मन्तरदन-वादि, विवरत धादि करणों के आधार पर लिये गए जान पड़ते हैं । इसी प्रसंग में केसव ने १६ मृगारों जनका उत्प्रेष कविप्रिया के विवेचन में किया जा चुका है, तथा सुरदान्त का भी वर्णन किया है । सुरदान्त वर्णन पर भी कामदास का ही प्रभाव परिलक्षित होता है ।

मध्या के घीरादि अम्य भेद

अर्थ गुण के आधार पर केसव ने मध्या नायिका के तीन घीर भेद किए हैं, घीरा घभीरा घीर घीराभीरा^५ । केसव के अनुसार घीरा नायिका नायक के प्रति

^१ छा ४, परि ३ म० १९१ ।

^२ र मि० म ३ अं ४ ।

^३ समानसंज्ञामरना प्रोत्साह्यधालिनी ।

मध्या कामयते क्रान्त मोहान्तरसुरतसमा ॥

—र० छ, १ २१ ।

^४ धातिगत चुम्बन परस गर्जन मन्तरदान ।

धरपान सा जातिये बहिरति सात सुमान ॥

पिति तिर्यक सनमुख विपुल धम ठरन उत्तान ।

सात अंतरति समुन्मिये कैयो सकल सुमान ॥

—र मि म० ३ अ ४१ ४२ ।

^५ घिमरी मध्या तीन बिधि घीरा घीर घभीरा ।

घीराभीरा तीसरी, बरणत सुकवि घभीर ॥

—र मि म ३ अं ४९

केसव का रीतिविशेषण

बकोवित का प्रयोग करती है, धधीरा नियम वचन बोलती है तथा धीराधीरा प्रिय को उपासम्म होती है^१ ।

नायिका भेद पर सिक्खने वाले सभी संस्कृत के धाभावों ने मध्या के इन भेदों को माना है । केसव की धीरा तथा धधीरा के लक्षणों का वर्णनय शिङ्गुपास तथा विश्वनाथ से साम्य है^२ । केसव ने ये भेद वर्णनय से लिए हैं और विश्वनाथ का धावार भी दक्षकपक ही है । परन्तु केसव का धीराधीरा का लक्षण वर्णनय विश्वनाथ शिङ्गुपास धावना मानुष्य किसी से भी साम्य नहीं रखता ।

केसवभास ने प्रथमा नायिका के समस्तरसकोविदा विविधविभ्रमा प्रजामति नायिका और लम्भापति नाम के चार भेद किए हैं^३ । जिसे प्रीति में जो स धच्छा सगे उसी रस की जान बन जाय उसे केसव 'समस्तरसकोविदा' इते है^४ । केसव का यह लक्षण धस्पष्ट है । उदाहरण से भी लक्षण का ठीक-ठीक बोध नहीं होता । केसव के विचार से विविधविभ्रमा यह है जिसके धरीर की धुति से धाकपित होकर इती उसके प्रिय से उसका निमाप करा है । प्रजामति नायिका यह होती है जो मन वचन और कर्म से अपने प्रिय को वध मे कर ले तथा 'लम्भापति

१ धीरा बोले नक विधि धधी विपम धधीर ।
प्रिय को भेद उदाहरो धो धीरा न धधीर ॥

२ धीरा सोत्प्रासवकोवत्या मध्या सामु इत्यावधम् ।
बेरमेवदमित कोपावधीरा पक्काक्षरम् ।

—र धि म १ ब ४० ।

प्रियं सोत्प्रासवकोवत्या बहुमुपा ।
धीरा तु हृदिर्तरीधरा पक्षोक्तिभिः ॥

—दशक स्रो १० १ ४२ ।

धीरा तु वन्ति बकोवत्या सोत्प्रासं सामर्थं प्रियम् ।
धधीरा पक्ष्यवर्गिणी बोरमेव वस्तुर्ध रपा ॥

—ध० ४ परि० १ का र्ध १ २

३ धुनि समस्तरसकोविदा विष्ट विभ्रमा जाति ।
धति प्रजामति नायका लम्भापति धुय भति ॥

—र० म ४० २४ ।

४ धो समस्तरसकोविदा कोविद कहल बधान ।
जो रस नारी प्रीति में ताही रस की जान ॥

—र धि म० १ ४ ११ ।

—र धि , म १ ब ० ११ ।

किए हैं ऊड़ा (विवाहिता) और धनुड़ा (अविवाहिता) १ ।

उक्त के सभी आचार्यों ने इन दोनों का निरूपण किया है। केसव ने परकीया के उपमेयों की ओर खींच नहीं दिखाई है। बर्नबय भूपाल और विश्वनाथ के समान ही केसव भी परकीया के दो भेदों के आगे उपमेयों में नहीं गए हैं।

चार प्रकार के दर्शन

केसव ने 'रसिकप्रिया' के चौथे प्रकाश में चार प्रकार के 'दर्शन' का बर्णन किया है साक्षात् दर्शन चित्र-दर्शन स्वप्न-दर्शन तथा भवण-दर्शन २ । केसव ने भवण को भी 'दर्शन' में सम्मिलित कर लिया है जब कि बर्नबय ने दर्शन के पाँच भेद करते हुए उसे भवण से भिन्न माना है। वे लिखते हैं कि 'दर्शन इन्द्रजाल के द्वारा साक्षात् चित्र छाया भवना स्वप्न में हो सकता है और भवण' सभी भवना बन्दी आदि के पुष्प-नीर्तन द्वारा भवना भीत द्वारा ३ । विश्वनाथ ने विप्रसम्भ सुन्दर के नेत्र 'भूवरान' के प्रसंग में लिखा है कि भवण कुछ बन्दी भवना सभी के मुख से हो सकता है और दर्शन इन्द्रजाल के द्वारा साक्षात् चित्र भवना स्वप्न में ४ । छाया दर्शन को छोड़कर दोष सभी दासों विश्वनाथ ने क्यों की त्यों बर्नबय से भी हैं। सिङ्गभूपाल ने भी पूर्वनिर्णय का बर्णन करते हुए भवण प्रत्यक्ष-दर्शन चित्र-दर्शन और स्वप्न-दर्शन का चर्चाल किया है ५ । केसव ने सिङ्गभूपाल के ही अनुकरण पर इन्हीं चार का बर्णन किया है। बर्नबय और विश्वनाथ के इन्द्रजाल-सम्बन्धी दर्शन को छोड़ दिया है। भानुवत्त और कपोतस्वामी दोनों ने दर्शन के तीन ही भेद किए हैं स्वप्न-दर्शन चित्र दर्शन और साक्षात् दर्शन ६ । कपोतस्वामी ने 'दर्शन' को भवण से पृथक् माना है।

१ परकीया हैं जाति पुनि उड़ा एक धनुड़ ।

बिन्हें देखि बरा होत हैं समस्त मूढ़ धनुड़ ॥

ऊड़ा होत विवाहिता अनविवाहिता धनुड़ ।

—र मि ५, अ ३८-४१ (प्रस्यार)

२ ये दोऊ बरछें बरछ होहि, सकाम शरीर ।

बरछन चारि प्रकार को, बरपत हैं मतिधीर ॥

एक तु नीको देखिये बूजो बरछन चित्र ।

ठीको छपनो जानिये नीको भवण सुमित्र ॥

—र मि, अ ४ अं० १२ ।

३ साक्षात्प्रतिकृतिस्वप्नच्छायाभामासु दर्शनम् ।

श्रुतिस्पर्शास्तस्त्रीगीतमागवादिपुणस्तुति ॥

—दशरूपक प्र० ४, स्तो० १४ पृ १०१ ।

४ भवणं तु भवेत्तत्र द्रुतवन्दितस्त्रीमुक्तात् ।

इन्द्रजाले च चित्रे च साक्षात्स्वप्ने च दर्शनम् ॥

—स्य० ५ परि १ पृ ११८ ।

५ रत्नार्णवचक्र, ११ अ० ।

६ स्वप्नचित्रसाक्षाद्भवेन दर्शनं विधा ।

—रत्नमयी, ११ ११० ।

साक्षाद्दृष्टस्य चित्रे च स्यात्स्वप्नारी च दर्शनम् ।

—उ मयि, १० १०६ ।

बास्तव में 'वचन' को दर्शन' के दान्यवर्त सेना नहीं चाहिए । केसव ने प्रत्येक प्रकार के 'वचन' के सखन' भी दिए हैं, जो संस्कृत के किसी साधारण ने नहीं दिये ।

हम्पति चेष्टा-वचन :

'रसिकप्रिया' का पाँचवाँ प्रकाश हम्पति-चेष्टा-वचन से प्रारम्भ होता है । इसके बाद नायक-नायिकाओं के स्वयंवृतत्व और प्रथम-मिलन-स्थानों का भी विवरण दिया गया है । सखी^१ नायक-नायिका की वधा को एक-दूसरे पर प्रकाश करने में बड़ी सहायक सिद्ध होती है । कभी तो सखी नायिका के मन की बात को उसकी चेष्टाओं से स्वयं भाँप लेती है और उसकी वधा को नायक से कह सुनाती है । और कभी नायिका स्वयं व्याकुल होकर प्रेमवध सखी से निवेदन कर लेती है^२ । नायिका की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए केसव लिखते हैं कि जब नायक किसी दूसरी ओर देखता है तब वह उसकी ओर निर्गन्ध होकर देखती है । जब वह उसकी ओर देखने लगता है तो उस समय वह अपनी सखी को धक से जगा लेती है^३ । इसी प्रकार कभी वह कान सुनाती है कभी घामस्य से घोंगड़ाई लेने लगती है और कभी खिन्नास बार-बार जमुहाई लेती है । कभी हँसती है और सखी से बातें करने लगती है । इस प्रकार किसी वधाने से

१ नींद भूख सुति बेह की गई सुनतहीं चाहि ।

को जाने कूँ है कहा केसव केबैं ताहि ॥

प्रकट काम कोक कल्पवृक्ष कहि न सकत भवि मूढ़ ।

निबहु में हरि मित्र की पति भवभूष गति बूढ़ ॥

केसव दर्शन स्वप्न को सदा दुरोह होय ।

कबहुँ प्रकट न देखिये यह जानत सब कोय ॥

धीन रूप पुन समुद्रि कै सखी सुनाई पानि ।

केसव ताको कहत हैं वरसन वचन बसानि ॥

—१० प्रि म ४ अ ४ १ १६ और १० ।

२ केसव ने सखी और वृत्ति में कोई भन्तर नहीं रखा है । जो जो उसी की एक वृत्ति हो सकती है, परन्तु दोनों के कार्य भिन्न हैं । अतएव ने 'समवर्ती' में दोनों के कार्यों का इस प्रकार वर्णन किया है,

भस्या (सख्या) मध्वमोपासम्भवितापरिहासप्रमृतीनि कर्माणि ।

—रसमंथरी ४ १६९ ।

वस्या (द्वत्या) सङ्गवट्टनविरहनिवेदनादीनि कर्माणि ।

—रसमंथरी, ४ १६८ ।

३ पिय के चित्त की जान सखि पिय सों कहै सुनाय ।

कहै सखी सों प्रीति में पापुन ते भक्तसाय ॥

—१ प्रि म ४ अ १ ।

४ जब चित्त की पिय भगवतुँ तब चित्त की निरलस ।

जान विनोक्त पापुसों धतिहि लगानै चक ॥

—१ प्रि, म ३, अ २ ।

नायक की अपने धर्म दिखाता है^१ ।

इसी प्रकार नायक भी अपना प्रेम व्यक्त करता है । नायिका की अनुप्रास प्रगट करने वाली श्रेष्ठियों का वर्णन साहित्यवर्णन कामसूत्र तथा धर्मशास्त्र नामक ग्रन्थों में किया गया है । केदार ने बिन-बिन श्रेष्ठियों का निरूपण किया है वे सभी इन ग्रन्थों में उपसम्पन्न हो जाती हैं । परन्तु हमने 'रसिकप्रिया' की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठियों का वर्णन किया गया है ।

स्वयंप्रवृत्त-वर्णन

श्रेष्ठिवर्णन के अन्तर्गत नायक-नायिका के स्वयंप्रवृत्त का वर्णन किया गया है । केदार लिखते हैं कि जब किसी प्रकार से भी नायक-नायिका का निम्न नहीं हो पाता तो दोनों स्वयं ही प्रवृत्त करते हैं^२ ।

भरत धनञ्जय मोक्ष चिन्मयूपास तथा भानुवत् किसी ने स्वयंप्रवृत्त का कार्य उल्लेख नहीं किया है । हाँ विश्वनाथ ने वृत्तियों का वर्णन करते हुए स्वयंप्रवृत्त का भी उदाहरण दिया है^३ । संभव है केदार ने स्वयंप्रवृत्त का वर्णन विश्वनाथ के ही अनुकरण पर किया हो ।

प्रथम भिन्न स्थान-वर्णन

प्रथम-भिन्न-स्थानों के उल्लेख के साथ पाँचवाँ प्रकार समाप्त होता है । केदार ने जमी (बासी) सब्जी तथा चाय के बचवा किसी सुने घर में भव, उत्सव बचवा व्याधि के बहाने तथा निर्मग्न के अन्तर्गत पर बचवा जनविहार में नायक नायिका के प्रथम-भिन्न का वर्णन किया है^४ । भव उत्सव बचवा व्याधि के बहाने

- १ जबहुँ मृति कहुँ करै, पारस सों ऐशाय ।
केदारनाथ निमास सों बार बार जमुहाय ॥
मूठक हँसि हँसि खटै, कहै सबी सों बात ।
ऐसै मिस ही मिस प्रिया पिमहि बिजानी बात ॥

—२० प्रि, प्र० १, अं १० ।

- २ जो बसोंहुँ न मिली कहूँ केदार बोळ ईठ ।
तो सब अपने आप ही बुधिमत्त करत बसीठ ॥

२ प्रि, प्र० १, अं ११ ।

- ३ सं० ६०, १ १७७ ।

- ४ जनी छहेनी पाइ घर, मुँह परपनि संचार ।
प्रति भय उत्सव व्याधि मिस मीतो सुमगविहार ॥
इतही ठौरन होत है प्रथम भिन्न संचार ।
केदार राजा रंक को रसि राजो कछार ॥

—२० प्रि प्र १, अं० २५, २६ ।

केदार ने निशि-भिन्न तथा जनविहार भिन्न का भी उल्लेख किया है ।

—२ प्रि, प्र १, अं ११ और १० ।

तथा निमग्न में नायक-नायिका का मिलन विभिन्न मानसिक स्थितियों एवं घबसरोँ का मिलन है अतः इन्हें मिलन-स्थानों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। अरुतु घनवम भोज तथा शिङ्गसुरास ने मिलन-स्थानों का उल्लेख नहीं किया है। विश्वनाथ ने अथर्व्य समितारिका नायिका के प्रसंग में समितार' (मिलन) स्थानों का विवरण दिया है। वे बैठ गृहीद्यान भग्नदेवास्य दूतीगृह वन पुष्पोद्यान वनद्यान नदी आदि का दृष्ट तथा विमिराच्छन्न कोई स्थल आदि स्थानों का निर्देश करते हैं^१। परन्तु केसव द्वारा निर्दिष्ट दो-एक स्थान ही विवचनाप से मिलते हैं। यथेष्ट मिलन है। कामसूत्र में उल्लिखित समान्य-स्थानों^२ का विवचनाप द्वारा वतभाप स्थानों की अपेक्षा केसव से अधिक साम्य है।

रस के प्रबन्ध—भाषादि

भाव

'रसिकप्रिया' के छठे प्रकाश में केसव ने भावों तथा हावों का अलग बड़ी स्वतन्त्रता के साथ किया है। मुख नेत्र तथा वचनों से जो मन की बात प्रकट होती है वही भाव है^३। वस्तुतः यह 'भाव' का अन्वयन होकर अनुभाव का ही अन्वय सा बन गया है। किसी भी संस्कृत के भाषाचार्य ने 'भाव' का ऐसा अन्वय नहीं दिया है। केसव भावों के पाँच प्रकार स्वीकार करते हैं विभाव अनुभाव स्वायीभाव सात्विक तथा व्यभिचारी^४।

अतएव सभी भाषाचार्य 'सात्विक' को अनुभाव' के ही अन्तर्गत स्वीकार करते हैं।

१ धर्म बाटी भग्नदेवास्यो दूतीगृह वनम्।

मानसञ्च वनद्यानञ्च नद्यादीनां दृष्टी तथा ॥

एवं कृताप्रमिताद्यानां पृथक्सीमा विनोदने।

स्थानमप्यष्टी तथा ध्यामस्तच्छले कुत्रचिदाश्रय ॥

—सू० ६० पद १ अ ३ १९।

२ स (समानम्) तु देवतामिममने यात्रामामुद्यानक्रीडायां जलावतरणे विनाहं यज्ञव्यसनीरसवेष्मण्युत्पाते नीरविभ्रमे जननरस्य वक्त्रोद्गते प्रेताभ्यापारेषु तेषु तेषु च कार्येतिवृत्तिं प्राप्नुवीमः।

—अमरसूत्र (भाग २), अक्षरान्तर २, अ ४ दृ २२२।

सतीमिश्रकौसपनिकातापसीमनेषु सुतोपाय इति शेषिकापुत्रः।

—अमरसूत्र (भाग २) अक्षरान्तर २, अ ४ दृ २२२।

३ ध्यान सोचन वचन भग्न प्रकटत मन की बात।

ताहीं से सब कहत हैं भाव कविन के तात ॥

—२० प्रि० अ ६, अं १।

४ भाव मु पाँच प्रकार को अनु विभाव अनुभाव।

अस्याई सात्विक कहैं व्यभिचारी कविराज ॥

—२० प्रि० अ ६, अं २।

विभाव

केदार के अनुसार विभाव में होते हैं जिनसे संसार में बनाया ही अनेक रस प्रकट होते हैं^१ । विभाव के दो प्रकार होते हैं आत्ममन और उद्दीपन^२ ।

सभी संस्कृत के आचार्यों ने केदार द्वारा बताया 'विभाव' के इन दोनों का माना है । रस 'प्रवर्ण' है वह जिसका सहारा होता है उसे आत्ममन और जिससे उद्दीप्य होता है उसे 'उद्दीपन' विभाव कहते हैं^३ । केदार का यह सत्य अपने ही हृदय का है । किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर केदार के आत्ममन तथा उद्दीपन विधान के लक्षणों का बड़ी भाव निकसता है जो निम्ननाम के लक्षणों^४ का है । निम्ननाम के 'विभाव' के सामान्य लक्षण का भी भाव केदार से मिलता है^५ । मानुष्य के विभाव के लक्षणों का भी यही भाव है^६ ।

केदार ने आत्ममन के अन्तर्गत इन वस्तुओं का उल्लेख किया है—युवा नायक नायिका, रूप जाति और लक्षणयुक्त सखियाँ कोकिला की कूक वसन्त ऋतु, फूल फल दल भ्रमर-मृगार, उपवन लवणरयुक्त सरोवर निर्मल कमल जातक मोरों का शब्द, विद्युद् सञ्जव वायव्य, आकाश रमणीय सेव शीतक सुगन्धित बृह पानचर्षप

१ जिनसे अनेक रस प्रकट होत बनाया ।

जिनसे विमति विभाव कहि, वर्णित केदारनाथ ॥

—र० वि०, म ६, अ० ३ ।

२ सो विभाव दो भाँति है, केदारनाथ बखान ।

आत्ममन एक दूसरो उद्दीपन मन मान ॥

—र वि म ६, अ० ४ ।

३ जिनहीं प्रवर्ण अवलम्ब है ते आत्ममन मान ।

जिनसे शीपति होत है, ते उद्दीप बखान ॥

—र० वि म ६, अ० ३ ।

४ आत्ममनो नायिकाविस्तमानमृग्य रसोद्दीपनात् ।

—स्य ६० परि० १ का० सं ३३ ।

उद्दीपनविभावास्ते रसोद्दीपयन्ति ते ।

—स्य० ६० परि २, का सं०, १३४ ।

५ रसाद्युद्भोषका सोके विभावा काव्यमाद्यमोः ।

—स्य० ६ परि ३ का सं ३३ ।

६ विद्येदेव भावयत्युत्पादयन्ति ये रसास्ते विभावा । ते च द्विविधा ।

आत्ममनविभावा उद्दीपनविभावास्तेति । यमात्मन्य रस उत्पद्यते त आत्ममनविभावः । यौ रसोद्दीपयति त उद्दीपनविभावः ॥

—रसतन्त्रिणी, सं० २ वृ० ११ १२ ।

सुन्दर वेशभूषा, नृत्य तथा गीणादि वादन* ।

वस्तुतः ये सभी वस्तुएँ घासम्बन न होकर उद्दीपन हैं। भरत ने शृंगाररस के उद्दीपन-विभावों के अन्तर्गत ऋतु माता प्रभुसेप आदि धर्षकार, प्रियजन गान काव्य उपवन विहार आदि वस्तुओं को गिनाया^१ है। केसव द्वारा बतलाई हुई प्रियजन उपवन ऋतु आदि वस्तुएँ ही भरत से मिलती हैं वीथ नहीं मिलती। भानुदत्त ने 'रसतरंगिणी' में भरत के इसी श्लोक को उद्धृत करके यह धीरे सिद्ध दिया है कि चन्द्रमा और चन्दन आदि को भी उद्दीपन-विभावों के अन्तर्गत समझ लेना चाहिए^२। भानुदत्त की ये वस्तुएँ भी केसव से नहीं मिलती। विषयनाथ ने घासम्बन की धेय्या आदि तथा वैद्यकास आदि को उद्दीपन विभावों में गिनाया है। धेय्या आदि में 'घादि' से जनका अग्निप्राय रूप धामुपवन से है और वैद्यकास आदि में 'घादि' से वे चन्द्रमा चन्दन कोकिमा का घासाप भ्रमरों की गुबार समझते हैं^३। इस प्रकार विषयनाथ की कोकिमा को घासाप भ्रमर-बहार आदि वस्तुएँ ही केसव से मिलती हैं, वीथ मिल हैं। भोज ने इनका कोई उल्लेख नहीं किया है। हाँ, शिङ्गमूषान ने प्रथम इनका सविस्तार वर्णन किया है। उन्होंने उद्दीपन के चार प्रकार माने हैं नायक-नायिका के मूल धेय्या अमकृति और तटस्थ उद्दीपन^४। गुणों के अन्तर्गत भूषण ने यौवन रूपसावध्य सौन्दर्य अभिक्रपता मार्दव तथा सीकमार्द को गिनाया है। अमकृति चार प्रकार की मानी है बास (बदन), धामुपवन (पुष्प) माता (चन्दन आदि का) प्रभुसेप और तटस्थ के अन्तर्गत चन्द्रिका चारानुह, चन्द्रोदय कोकिमा का घासाप मन्थपवन भ्रमर, सतामण्डप भूवेह, बारहरी मेघों का वर्जन संपीत

- १ इति लोकन रूप जाति सङ्गम मुत सङ्गिन ।
कोकिम कसित वसंत फूलि कप दल मलि उपवन ॥
असमुत अलवर अमल कमल कमला कमलाकर ।
आतक मोर सुसम्प सङ्गित वन पद्म पंवर ॥
गुन सैव वीथ सीवन्मगुह पान ज्ञान परिवान मनि ।
मथ नृत्य यैव गीणादि सब आलम्बन केसव करनि ॥

—र मि, १० व क्ष १ ।

- २ ऋतुमास्यासंकाटः प्रियजनगान्धर्वकाव्यसेवाभि ।
उपवनममविहारैः शृंगाररसः समुद्भवति ॥

—भा० रा० अ २, १ १६ ।

- ३ चन्द्रचन्दनादय उद्दीपना ।

—रसतरंगिणी तरव १, १ १३ ।

- ४ घासम्बनस्य धेय्याद्या वैद्यकालादयस्तथा । १६२

(धेय्याद्या इति घासघग्नाधुपमूषमादयः । कामादीत्यादिपञ्चमा
चन्द्रचन्दनकोकिमाजापभ्रमरध्वकारादयः । —स २० पु० १०० ।

- ५ उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाधायम् ।

मूलधेय्यार्जुतयस्तटस्थाश्चेति भेदतः ॥

—र० पु० १ ३८ स्तो० ११२ ।

श्रीङ्गा-पर्वत छरित् प्राप्ति वस्तुर्न बतसाई है^१ । केसव द्वारा भार्गव के प्रसंगत बतसाई हुई ध्विजोद्य वस्तुर्न भूपास के उद्दीपन के जेदों, गुण अर्थकृति तथा तटस्व उद्दीपन के प्रसंगत निविष्ट वस्तुओं से मिसती है । केसव ने उद्दीपन के प्रसंगत केवल प्रबलोकन (नायक-नायिका का एक दूसरे की ओर निहारना) आभास भासिमम लसदान, रसदान, सुम्बन मदन और स्पर्श को बतसाया है^२ । वे वस्तुर्न भूपास के उद्दीपन के मय 'चेष्टा' के प्रसंगत या जाती है ।

अनुभाव

आसम्बन और उद्दीपन के जो अनुकरण हैं उन्हें केसव 'अनुभाव' कहते हैं^३ । केसववाच का यह लक्षण स्पष्ट नहीं है । जहाँने इसका उदाहरण भी नहीं दिया है जिससे कुछ पता चल सकता है । यह लक्षण किसी भी संस्कृत के आचार्य से नहीं मिसता ।

स्वाधी भाव

केसव ने स्वाधीभावों के केवल नाम ही दिया है, उनका लक्षण नहीं दिया है । वे पाठ स्वाधी भाव मानते हैं, रति हास शोक क्रोध उत्साह मय भिन्ना तथा बिस्मय^४ ।

१ श्रीङ्ग पर्वत क्यसावधे सीन्धर्वमभिक्रमता ।

मार्दव्यं सीकुमार्द्वं केत्यासम्बनता गुणा ॥ १६१ ॥

—१० सु ५० १८ ।

वस्तुर्नानुवृत्तिर्नानु भूपासास्यानुमेपनं ।

—१ सु ५ ४४ ।

तटस्वावपमित्रका भारानुह्वनोदयावपि ॥ १८७ ॥

कोकिताभापमाकम्बमन्दमास्तपदपा ।

मलामम्बपमूगेहवीजिका जलहारणा ॥ १८८ ॥

प्रासादवर्धसंवीतश्रीङ्गात्रिपरिवाहक ।

एवमुक्त्वा यथाकामपमुनीपोषयोपि ॥ १८९ ॥

—१० सु ५ ४२ ।

२ ध्विजोक्त आभास परि रंभ लसदर रान ।

सुम्बनादि उद्दीपिये, मर्दन परस प्रभाज ॥

—१० दि० प्र० १, व० ७ ।

३ भार्गव उद्दीप के जो अनुकरण बलान ।

ते कहिये अनुभाव सब, रपति प्रीति समान ॥

—१० दि० प्र० १, व० ८ ।

४ रति हासि शब शोक भुनि, शोक उत्साह भुजान ।

मय भिन्ना बिस्मय सदा, स्थाई भाव प्रभाज ॥

—१० दि० प्र० १, व० ९ ।

भरत और भोज में भी इन्हीं पाठों का इसी क्रम से उल्लेख किया है^१ ।

सांख्यिक भाव

केदार में सांख्यिक भावों का भी उल्लेख न देकर केवल मामोत्सेह ही किया है । केदार में पाठ सांख्यिक भाव माने हैं जिसके भाव ये हैं—स्तम्भ स्वेह रोमांच, गुरभंग कंठ वीर्यं धनु तथा प्रसाप^२ ।

भरत भर्तृहर्य भोज धिक्कुभूपास और विस्वनाथ यादि सभी पाचार्यों ने सांख्यिक भाव तो पाठ ही स्वीकार किए हैं परन्तु उन्होंने केदार के प्रसाप के स्थान पर प्रलय का उल्लेख किया है । भरत और विस्वनाथ के श्लोक भी कुछ पाठान्तर से परस्पर मिलते हैं और दोनों ग्रन्थों में सांख्यिक भावों के सिधे नामों का नाम भी एक ही है^३ । भर्तृहर्य भोजराज तथा भूपास का क्रम केदार से नहीं मिलता^४ । केदार में भरत भूपास तथा विस्वनाथ के ही क्रम को रखा है ।

संचारी भाव

केदार का व्यभिचारी धवरा संचारी भाव का उल्लेख अपने ही श्लोक का है और भरत भर्तृहर्य भूपास भोज तथा विस्वनाथ यादि किसी पाचार्य से नहीं मिलता । केदार लिखते हैं कि जो भाव सभी रसों में बिना किसी नियम के उत्पन्न होते हैं व्यभिचारी कहलाते हैं^५ । सभी पाचार्यों ने ३३ व्यभिचारियों का निरूपण किया है, जैसे निर्वेद आनि एका यसूया मय भय धातस्य रीत्य विन्ता मोह स्मृति धृति धीका अपमता हर्ष आनेय वदता गर्व विषाद प्रोत्सुक्य निद्रा अपस्माद, कुपि, विबोध धमर्ष प्रवहित्या उपता मति व्याधि उन्माद मरण नास तथा वितर्क^६ । केदार के अनुसार व्यभिचारियों की संख्या ३४

१ रतिर्हासवत् प्रोक्त्वच मोहोत्साहो भयं तथा ।

कुपुष्पाभिस्मयवथेति स्वाभिभावा प्रकीर्तिता ॥

—ना० शा० म ३, १ ३१ तथा स क० कथ्यप्रमाण, पृ १५३ ।

२ स्तम्भ स्वेह रोमांच गुर, भय कंठ वीर्यं ।

धनु प्रसाप वदालिये पाठो नाम कुवण ॥

—र मि० प्र ३, अ १ ।

३ स्तम्भ स्वेहोऽय रोमांच स्वरवेहोऽय भवतु ।

वीर्यधमधु प्रलय इत्यष्टौ सांख्यिका मता ॥

—ना शासन पृ० १३ तथा स २ परि ३ का० सं १० ।

४ दशस्विक, १ क० स० ३ कथ्यप्रमाण, पृ ३५६ तथा र सु० पृ ५३ ।

५ भाव तु सब ही रस में उपजत केदारय ।

बिना नियम विनयों कहें व्यभिचारी कविदास ॥

—र मि० प्र० ३, अ ११ ।

६ ना शा० म ३, श्लो १६-२२ पृ० ३१ । दशस्विक म ४ श्लो० ८ पृ ३६ ।

७ सु० पृ० ३५ श्लो० ४-६ । शा० म० परि० ३ का० सं० १०३ । कथ्यप्रमाण श्लो ३१ ३५,

४ ५१ ५० । कथ्यश्लोक मण्डल ३, श्लो १३ १८, ४ ३२ ।

है, पर वा० दीक्षित ने उनकी संख्या ३३ ही मानी है (भाषावर्ष केसवदास पृ० २७७)। सम्भवतः वे 'आधि' को भूल गए हैं। केसव ने व्यभिचारियों के को नाम दिये हैं, वे इस प्रकार हैं—निर्वेद भ्रामि, शका, धासस, ईश्वर, मोह, स्मृति, भृति, धीका, अपसता, भ्रम, मर, चिंता, कोह, वर्ष, हर्ष, धावेन, निदा नीद, बिबाह जड़ता उत्कण्ठा, स्वप्न प्रबोध बिबाह, अपस्मार भति, उपता, धासतर्क अतिव्याध, सम्पाद मरण भय तथा आधि^१। ऊपर की गई वनों सूचियों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत भाषायों द्वारा दिए गये अनेक अर्थों, प्रभूता, सुप्ति, विचार, धीर, ज्ञान के स्थान पर केसव ने कथित कोह, बिबाह निदा स्वप्न, धासतर्क और भय अर्थों का प्रयोग किया है। संस्कृत भाषायों ने ३४वें व्यभिचारी 'आधि' का उल्लेख नहीं किया है। वह केसव की निजी कल्पना है।

हाव

केसव के हाव का ज्ञान स्पष्ट नहीं है। उनके विचार में शृंगार की उत्पत्ति प्रेम से होती है और शृंगार से ही हाव उत्पन्न होते हैं^२।

भरत धनंजय शिङ्गभुषाण और विष्णुनाथ^३ ने यह ज्ञान नहीं मिलता। केसव ने हाव के १६ प्रकार माने हैं, ऐसा चीला समित मर विभ्रम विहित विनास किस्किचित विशिष्ट (विच्छिन्न) विष्णोक मोटारत कुट्टमित और मोह। साथ ही केसव यह भी कहते हैं कि इनसे इतर 'हाव' और भी होते हैं^४।

धनंजय ने भरत^५ के समान ही स्त्रियों के २० अलंकारों का उल्लेख किया है। भाव हाव और ऐसा भवज अलंकार है। छोटा कान्ति, रोषित माधुर्य प्रगल्भता

- १ निर्वेद भ्रामि शका तथा धासस ईश्वर मोह।
स्मृति भृति धीका अपसता, भ्रम मर चिंता कोह।
वर्ष हर्ष धावेन पुनि, निदा नीद बिबाह।
जड़ता उत्कण्ठा सहित, स्वप्न प्रबोध बिबाह॥
अपस्मार भति उपता धासतर्क अति व्याध।
सम्पाद मरण भय तथा आधि हैं व्यभिचारी सुत प्राय॥

—१० मि० प्र० ६, पृ० ११ १३ तथा १४।

- २ प्रम रात्रिका कृष्ण को है ताते शृंगार।
ताके भाव प्रभाव से उपजत हाव विचार॥

—१० मि० प्र० ६, पृ० १५।

- ३ ऐसा चीला समित मर विभ्रम विहित विनास।
किस्किचित विशिष्ट मर कहि विष्णोक प्रकाश॥
मोटारत सुन कुट्टमित, बोधदिक यह हाव॥
अपनी अपनी बुनिबल वर्णत कवि कविराज॥

—१० मि०, प्र० ६, पृ० १६।

- ४ भास्वराज, पृ० २२, स्तो० १, ६, १४ तथा १२, १६ (अमर)।

घोदार्थ और बर्ष प्रयत्न है तथा सीसा बिलास, बिम्बित बिभ्रम बिम्बोक, किमकिचित मोदामित कुट्टमित ललित और विहृत स्वभाव है^१। केदार ने स्वभाव प्रसंगों तथा हेला को हाव का ही भेद माना है और प्रयत्न प्रसंगों को छोड़ दिया है। केदार के 'मव' और 'बोव' का मरत और प्रयत्न दोनों में ही उल्लेख नहीं किया है। शिङ्गभूपाल ने उत्पन्न प्रसंगों के अन्तर्गत भाव, हाव तथा हेला^२ और गान्न भावों में सीसा बिलास बिम्बित बिभ्रम किमकिचित मोदामित कुट्टमित बिम्बोक ललित और विहृत का निष्पन्न किया है^३। केदार के 'मव' तथा 'बोव' भूपाल में नहीं मिलते। भोज ने स्त्रियों के स्वभाव प्रसंगों के अन्तर्गत सीसा बिलास बिम्बित बिभ्रम किमकिचित मोदामित कुट्टमित बिम्बोक विहृत अङ्कित और केमि को लिया है^४। इनमें से 'अङ्कित' और 'केमि' केदार में नहीं मिलते। केदार के 'मव' तथा 'बोव' का भोज ने भी उल्लेख नहीं किया है। भोज ने केदार के 'हाव' तथा 'हेला' को स्वभाव प्रसंगों में नहीं लिया है। विश्वनाथ ने नायिकाओं के २८ प्रसंगों का वर्णन किया है जिनमें से तीन प्रयत्न हैं, सात प्रयत्न और दोष अठारह सात्विक^५। उनके भाव आदि तीन प्रयत्न घोमा

- १ यौवने उत्पन्ना स्त्रीणामप्रसङ्गास्तु विवृति ।
भावे हाववत् हेला च प्रयत्न चरीरवा ॥
घोमा कान्तिरथ शोभितरथ माधुर्यं च प्रयत्नता ।
घोदार्थं वर्णमित्येते सप्त भावा प्रयत्नवा ॥
सीसा बिलासो बिम्बितबिभ्रम किमकिचितम् ॥
मोदामितं कुट्टमितं बिम्बोको ललितं तथा ।
विहृतं भेति विह्वेया रस भावाः स्वभाववा ।

—दशरूपक प्र० २, सू० १०-११।

२. १ सु०, पृ ४८।

३ श्री. पृ १९-२१।

- ४ सीसा बिलासो बिम्बितबिभ्रम किमकिचितम् ।
मोदामितं कुट्टमितं बिम्बोको ललितं तथा ।
विहृतं अङ्कितं केमिचितं स्त्रीणां स्वभाववा ।

—उ० कु, कल्याण, पृ ११८।

- ५ यौवने उत्पन्नास्तथाप्यविवृतिर्लक्ष्यका ।
प्रलङ्घनस्तत्र भावहावहेलास्वयोऽङ्गवा ॥
घोमा कान्तिरथ शोभितरथ माधुर्यं च प्रयत्नता ।
घोदार्थं वर्णमित्येते सप्तैव स्वरूपलवा ।
सीसा बिलासो बिम्बितबिम्बोकिमकिचितम् ।
मोदामितं कुट्टमितं बिभ्रमो ललितं यद ॥
विहृतं तपनं योग्यं विलोचनं कुतूहलम् ।
हसितं चरितं कतिरियप्यप्यप्यलक्ष्यका ॥

—सा प्र० परि १ का प्र ११८।

आदि साठ अमलज तथा भीला, बिनाय विच्छिन्ति विम्बोक किमकिञ्चित्, मोदता मित कुट्टमिष्ठ विभ्रम सञ्चित और विहृत नामक यष्ट साहित्यिक अर्थकारों का आधार 'मादयसास्त्र' तथा 'वसुस्थक' ग्रन्थ हैं। उपर्युक्तता भव विशेष कृतुहम इतिष्ठ अक्षिप्त तथा केति, ये अर्थकार उन्हेनि अपनी धोर से जोड़े हैं। केदार ने विस्वनाथ द्वारा बतलाए इन साहित्यिक अर्थकारों में से केदार 'मर' का ही उल्लेख किया है। अतः स्पष्ट ही केदार ने 'मर' विस्वनाथ से लिया है। 'बोध' तथा 'मर' को छोड़ कर हाव के साथ भेद केदार ने भरत तथा वर्णजय के आधार पर ही लिखे हैं। 'बोध' का उल्लेख विस्वनाथ ने भी नहीं किया है। इसको केदार ने जीन से ग्रन्थ के आधार पर लिखा है, कहा नहीं जा सकता।

केदार ने भिन्न-भिन्न हावों के लक्षण भी दिए हैं। केदार का 'हैसा' का लक्षण 'भरत वर्णजय सिङ्गभूषण तथा विस्वनाथ आदि किसी आधार से नहीं मिलता। केदार के साथ लक्षणों का प्रायः वही मान है जो भरत वर्णजय तथा विस्वनाथ के लक्षणों का है। भरत के अनुसार अर्थ-संचालन, अर्थकार तथा प्रेमात्मक के द्वारा प्रिया की अनुकृति सीमा है^१। विस्वनाथ अर्थ-संचालन वेप अर्थकार तथा प्रेमसुखक मधुर वचनों के द्वारा प्रिया की अनुकृति को सीमा कहते हैं^२। वर्णजय के अनुसार प्रिय के वचन तथा वेप आदि की चेष्टाओं का प्रिया द्वारा अनुकरण 'सीमा' है^३। केदार ने भी प्रिय के द्वारा प्रिया का तथा प्रिया के द्वारा प्रियतम का रूप धारण कर सीमायें करने को 'सीमा' बतलाया है^४। विस्वनाथ तथा वर्णजय दोनों का 'समित' का लक्षण केदार के लक्षण से साम्य रखता है। वर्णजय और विस्वनाथ के अनुसार अर्थों का अनुसंचालन 'समित' हाव कहलाता है^५। केदार के विचार से वही मनोहरता के साथ बोधना, हैसना, वसना आदि चेष्टाओं का निष्पन्न हो वही 'समित' हाव होता है^६। केदार के 'मर' हाव का आधार

१ पुरय प्रम प्रताप ते, भूतत ताव समाज ।

सी हैसा मिहि हरत हिय, राजा भीरवराज ॥

—१० मि प्र ३, अ० १५।

२ मादयसास्त्र अ० २२, श्लोक १४।

३ साहित्यदर्पण, परि १, अ० १४।

४ वसुस्थक, अ० १, वृ ३४।

५ भरत वही सीमान को प्रीतम प्रिया बनाय ।

उपबत सीमा हाव छई वर्णय केदारदास ॥

—१० मि, अ० १, अ० ११।

६ सुकुमारकविम्यास मधुरो समित मनेत् ।

—वसुस्थक, अ० १, वृ १६।

सुकुमारतयाङ्गानां विम्यासो समित मनेत् ।

—सं० ६०, परि० १, अ० सं १४५।

७ बोधनि हैसनि विमोक्षिबो, वसनि मनोहर रूप ।

बंदे छंदे वरविबे समित हाव अनुक्य ।

—१ मि, अ० १, अ० १४।

विस्वनाथ ही है जैसा कि पहले बताया जा चुका है। विस्वनाथ सीमाय, यौवन प्रादि के गर्व से नायिका में उत्पन्न विकार को 'मद' कहते हैं^१। कैयव के अनुसार भी पूर्ण प्रेम के प्रभाव से प्रपञ्च सारथ्य के गर्व से उत्पन्न विकार 'मद' हाव है^२। दोनों लक्षण समग्र एक से ही हैं। चर्नबय^३ से विस्वनाथ के 'विभ्रम' हाव का लक्षण अधिक पूर्ण है। विस्वनाथ के अनुसार 'विभ्रम' हाव वहाँ होता है जहाँ प्रिय के धाममग पर हर्ष प्रपञ्च प्रेमवश नायिका अस्ती में धामभूषणादि जो जिस धन में पहुँचने चाहिए उससे भिन्न धन में पहुँच लेती है^४। कैयव के लक्षण का भी समग्र ऐसा ही भाव है। वे लिखते हैं कि जब नायिका प्रेमवश प्रिय के दर्शन के रस का प्राप्त्य होने की उत्कण्ठा में बाँकादि धामभूषण उससे पहुँच लेती है वहाँ 'विभ्रम' हाव होता है^५। यह लक्षण भरत के लक्षण से विस्तृत भिन्न है। चर्नबय ने बोलने के व्यवहार पर भी लज्जावश न बोल सकने को 'विहृत' हाव कहा है^६। कैयव ने भी 'विहृत' हाव का यही लक्षण दिया है^७। विस्वनाथ के 'विमोह' हाव का लक्षण भरत और चर्नबय की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। विस्वनाथ के अनुसार प्रिय के दर्शन के कारण छूटने, बैठने पीर चलने तथा युक्त नेत्र प्रादि की चेष्टाओं में उत्पन्न वैविध्य 'विमोह' हाव है^८। कैयव के लक्षण का समग्र यही भाव है। वे लिखते हैं कि खेलने बोलने हँसने, देखने चलने तथा वस-वस प्रादि में वहाँ विभिन्न विमोह उत्पन्न होते हैं वहाँ विमोह हाव होता है^९। चर्नबय के अनुसार भ्रम करने हर्ष तथा मम प्रादि का सम्मिश्र किमिच्छित हाव कहलाता है^{१०}। भरत ने चर्नबय की अपेक्षा अधिक बातों

१ मद्यो विकारो सीमाय्ययौवनाद्यवभेदजः ।

सा २, परि २, का सं १४६।

२ पुरतः प्रम प्रभावः सै गर्वः वदं बहु भावः ।

तिलके तत्त्व विकार तै, उपपत्तः मद हाव ॥

—र प्रि म २, सं २०।

३ विभ्रमस्तवत्या कानि भूषास्थानविपर्ययः । —रत्नक म २, पृ २४।

४ छदित्तरद्वय परि०, १, का सं १४०।

५ बाँकादिभूषण प्रेम से वहाँ होहि विपरीत ।

व्यसनरस तन मन रसत गति विभ्रम के गीत ॥

—र प्रि० म २, सं ३।

६ प्राप्तकालं न यद्बुधाद् वीज्या विहृतं हितम् ॥ —रत्नक म २, पृ २९।

७ बोलने के समये बिले बोलन है न साथ ।

विहृत हाव साँछों कहे, कैयव कवि कविराज ॥

—र प्रि० म २, सं ३४।

८ साहित्यरस्य परि० १ का सं १४१।

९ खेलत बोलत हँसत मद पितवत चलत प्रकाशः ।

जल जल कैयवदास कहि उपपत्त विविध विनाम ॥

—र प्रि म २, सं ३९।

१० भोवाभूहर्षभीत्यादेः संकरः किमिच्छितम् । —रत्नक, म २, पृ २९।

का उत्प्रेष किया है, जो प्रायः सभी केसव से मिल जाती हैं। भरत ने सिखा है कि हर्षातिरेक के कारण उत्पन्न स्मित (मुस्कराहट) रुदन हास, भय हुआ बर्ष भय धीर धमिलापा का एक ही साव सम्मिश्रण 'किन्निचित' हाव है^१। केसव ने कहा है कि वही भय धमिलापा गर्भ स्मित (मुस्कराहट), क्रोध, हर्ष तथा भय आदि एक साव ही उत्पन्न हों वही 'किन्निचित' हाव होता है^२। इसी प्रकार केसव तथा वर्णजय के 'विम्बोक' हाव के सञ्जन भी प्रायः मिलते हैं। केसव के अनुसार वही रूप तथा प्रेम के गर्भ से कपटपूर्ण घनावर होता है वही 'विम्बोक' हाव है^३। वर्णजय कहते हैं कि वही प्रतियर्ष के कारण दृष्ट वस्तु के प्रति भी घनावर प्रवृत्त किया जाता है वही 'विम्बोक' हाव होता है^४। वर्णजय तथा विश्वनाथ धीर के सौंदर्य की वक्क किञ्चित् वेष्टरचना को 'विञ्छिति' मानते हैं^५। दोनों आचार्यों का यह सञ्जन केसव के सञ्जन से नहीं मिलता। केसव ने सिखा है कि वही धामूपर्षों की सञ्जा के प्रति घना पर होता है वही 'विञ्छिति' हाव होता है^६। केसव के इस सञ्जन का आधार वर्णजय तथा विश्वनाथ दोनों न होकर भोजराज^७ है। विश्वनाथ द्वारा दिया मोट्टायित का सञ्जन वर्णजय^८ की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। विश्वनाथ के अनुसार त्रिय की कला आदि के प्रसंग में प्रेम से चित्त व्याप्त होने पर प्रेमिका की कान चुमाने आदि की चेष्टा मोट्टायित है^९। केसव भिन्नते हैं कि हेवा जीना आदि के कारण धमिम्यव होने

१ नाट्यशास्त्र अ० २२, स्तो० १८।

२ भय धमिलाप सर्वत्र स्मित क्रोध हर्ष भय भाव।

उपपन्न एकहि बार वहुं तहुं किन्निचित हाव ॥

—र० मि प्र १, व २६।

३ रूप प्रेम के गर्भ से कपट घनावर होय।

तहुं उपपन्न विम्बोक रस वहुं जानै सब कोय ॥

—र० मि प्र० ३, व० ४२।

४ धर्माभिमानादिष्टेऽपि विम्बोकोऽनावरकिम्या।

—रासकव प्र० २, पृ० २३।

५ धाकस्वरचनास्यापि विञ्छितिः कात्तिपोषकम्।

—रासकव प्र० २ पृ० २४।

स्तोकाभ्याऽऽकस्वरचना विञ्छितिः कात्तिपोषकम्।

—स० व० परि० ३, अ० सं० १४२।

६ भूपय भूपय को वही होहि घनावर मान।

सो विञ्छिति विचारिये केसवराज भुजान ॥

—र० मि०, प्र० ३, व ४२।

७. विभूपवादीनामनादरकिम्यासो विञ्छितिः।

—स० कु० वृत्तमाला, पृ० ३१८।

८ मोट्टायित तु तद्भावभावनेष्टक्यादियु।

—रासकव प्र० २, पृ० २३।

९ स्तिरितरंज, परि० १, अ० सं० १४५।

बाजे सात्विक भावों को जब बुद्धि-बल से रोका जाता है तो 'मोहुरित' हाव होता है^१। विरचनाय और केदार के लक्ष्यों में केवल इतना ही भेद है कि विरचनाय ने प्रेम भाव की अभिव्यक्ति को प्रदर्शित न होने देने के लिए स्पष्ट-रूप से कान खुलाने का चेष्टा का उल्लेख कर दिया है परन्तु केदार ने प्रेम-भाव प्रदर्शित न होने देने के लिए बुद्धि-बल से रोकना लिखा है। 'कटुमित' हाव के विषय में केदार ने लिखा है कि वहाँ केति-कलह में कलह का ऊपरी पिछावा हो वहाँ 'कटुमित' हाव होता है^२। केदार के इस भवज का तात्पर्य अनन्वय भोज तथा विरचनाय से भिन्न सा ही जाता है। वहाँ किसी एक के गूढ़ भाव को दूसरा समझ लेता है वहाँ केदार 'बोव' हाव मानते हैं^३। यह सूक्ष्मात्मकार जैसा ही है।

अवस्थानुसार नायिकाएँ

'रसिकशिक्षा' के सातवें प्रकाश में अवस्था के अनुसार नायिकाओं का वर्णन किया गया है। जिसकी नायिकाओं का उल्लेख पहले हो चुका है उन सबको केदार ने छठ प्रकार की माना है स्वाधीनपति का उत्कला भववा उत्कला वासकसम्पत्ता (वासकसम्पत्ता) अभिसंधिता खण्डिता प्रोषितप्रेमसी भववा प्रोषितपति का विप्रसम्पत्ता और अभिसारिका^४।

मानुरस को छोड़कर जिसने 'प्रवत्स्यत्पति का नामक एक मना भेद और माना है^५ उत्कल के भरत जननय भोज पिङ्ग भूषाल तथा विरचनाय आदि सभी आचार्यों ने अवस्था के अनुसार इसी छठ भेदों का वर्णन किया है। इन आचार्यों

१ ऐसा नीला करि वहाँ प्रकट सात्विक भाव।

बुद्धिबल रोकत सोहिसे सो मोहुरित भाव॥

—१ मि प्र० १, व० ४८।

२ कतिकसह में होमिये केतिकलह पट रूप।

उपवत्त है तह कटुमित, हाव कहत कवि भूप॥

—२ मि०, म १, व ११।

३ गूढ़ भाव के बोव जह, केदार समुद्धत कोह।

ताछी बोवक हाव यी कहत सयाने मोह॥

—३ मि०, म० १ व १४।

४ ये सब जिसनी नायिका बरनी मति अनुसार।

केदारनाथ बखानिये ते सब छठ प्रकार ॥

स्वाधीनपति का उत्कला वासकसम्पत्ता नाम।

अभिसंधिता बखानिये धीर खंडिता नाम ॥

केदार प्रोषितप्रेमसी भववाविप्र मुदान।

छट्ठनायिका ये सब अभिसारिका बखान ॥

—४ मि, म ३, व ११।

५ प्रवत्स्यत्पति का प्रिय नवयो नायिका अधिकुमर्हति।

—५ सम्यकी, व० १२१।

द्वारा दिए गए प्रत्येक भेद के लक्षणों का भी प्रायः भाष्य में साम्य है। अतः निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि केशव ने किस धातुओं के अनुकरण पर अपने लक्षण दिए हैं। केशव ने 'अभिचारिका' का विवरण देते हुए 'स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अभिचार का लक्षण अलग-अलग दिया है। जनक्य भोज तथा चिह्नभूषण ने 'अभिचारिका' के इस प्रकार के शेषों का कोई उल्लेख नहीं किया है। भरत ने भवश्च अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि कुलजा ब्रह्मा तथा प्रेय्या (बासी) किस प्रकार अभिचार के लिए जाती है^१। अतएव हो सकता है कि केशव ने प्राठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन भरत के आधार पर ही किया हो। साहित्यदर्पणकार के भी कुलजा ब्रह्मा तथा प्रेय्या के अभिचार के निष्पन्न^२ का आधार भरत ही है।

केशव के अनुसार 'स्वाधीनपत्रिका' नायिका वह कहलाती है जिसका पति उसके पुणों से सुख होकर तथा उसके साथ रहे^३। भरत की 'स्वाधीनपत्रिका' का भी प्रायः यही लक्षण है^४।

केशव की 'उत्का' का ही नाम भरत जनक्य भूषण तथा विश्वनाथ आदि ने 'विरहोत्कण्ठिता' रखा है। केशव के अनुसार 'उत्का' नायिका वह है जिसका प्रियतम किसी कारणवश उसके नर नहीं पाता और इस प्रकार वह प्रियतम के लोभ में हृदय में दुखी होती है^५। भरत के अनुसार 'विरहोत्कण्ठिता' नायिका वह होती है जिसका प्रिय बहुत से कार्यों में व्यस्त होने के कारण नहीं आ पाता और जो नायक के न आने पर दुःखित होती है^६। विश्वनाथ का लक्षण, भरत तथा अन्य धातुओं के द्वारा दिए गए लक्षणों की अपेक्षा केशव के लक्षण से अधिक विस्तृत है। विश्वनाथ के अनुसार 'विरहोत्कण्ठिता' वह नायिका है जिसका प्रिय आने के लिए दुःखित होने पर भी ईदबध नहीं आ पाता और जो उसके न आने पर दुःखित होती है^७।

'वासकसम्प्रा' केशव के मत में वह नायिका है जो विनाशयुक्त होकर प्रिय

१ भास्करप्रसन्न अ. २२।

२ साहित्यदर्पण परि०, अ० सं० ११६।

३ केशव आके पुनः बीज्यो सदा रहै पति संग।

स्वाधीनपत्रिका तासु को, करणत प्रम-प्रसथ ॥

—र० मि, अ ७, ब ४।

४ मुरतातिरसैर्बन्धो यस्याः पारस्वगतं प्रियः।

सामोदे मुनसंयुता यनेस्वाधीनभवत्का ॥

—जा० द्य० अ २२, रत्नो० २०७।

५ कौनहू हेत न धातयो प्रीतम जाके धाम।

ताको सोचति सोच हिय केशव उत्का नाम ॥

—र० मि, अ० ७, ब ७।

६ भास्करप्रसन्न, अ० २२ रत्नो० २०६।

७. साहित्यदर्पण परि० ३ अ सं० १२१।

के प्रागमन की धाया में गृह-द्वार की घोर देखती रहती है^१ । भरत वर्नजय तथा विद्वनाय द्वारा दिए सखों से केसव का यह सदाश नहीं भिसता । भोज का सखण या प्रतीखते^२ बाहि सखों^३ से केसव के सखण के भाव के काफी समीप पहुँच जाता है, पर इतना नहीं भितना कि शिङ्गभूपाम का । खूँने 'वासकसखिका' की चेष्टाओं में उसके प्रिय के प्रागमन-भाव की घोर देखने का भी छस्सल किया है^४ । हो सकता है कि केसव ने अपना सखण भूपाम के धनुकरण पर ही भिसा हो ।

केसव की 'धमिसंभिता' घोर भरत वर्नजय भोज विद्वनाय मानुवत बाहि की कसहातरिता^५ एक ही है । केसव का सखण धन्य धायाओं की अपेक्षा भोज के सखण में अधिक भिसता है । केसव के धनुसार 'धमिसंभिता' नायिका वह है जो मान करने पर मनाते वाले प्रिय का अपमान करती है परन्तु याद में उसके बिना हुनी दुखी होती है^६ । भोज लिखते हैं कि 'कसहातरिता' नायिका कोपवध मनाते हुए प्रागप्रिय की ठुकरा कर बाह में परचात्ताप करती है^७ । विद्वनाय के सखम^८ का भी भोज ही आधार है ।

केसव के धनुसार खण्डिता^९ नायिका वह होती है जिसका प्रिय (रात को) जाने को कहकर न आये और प्रातः उसके घर आकर धनेक प्रकार की बातें बनाये^{१०} । केसव का यह सखम भरत से नहीं भिसता पर वर्नजय तथा विद्वनाय की अपेक्षा भोज तथा शिङ्गभूपाम से अधिक साम्य रखता है । भोज के धनुसार 'खण्डिता' नायिका वह है जिसका पति मित्रा से पूर्व रवत नैर्भो सहित और धन्य स्त्री के नखादि

१ वासकसख्या होइ सो कहि केसव सविभास ।

चिटै रही गृह द्वार स्त्री, पिय आवन की प्रास ॥

—र मि०, म ७ पृ० १

२ हा तु वासकसख्या स्यात्सखिते वासवेदयति ।

प्रियमास्तीर्णपर्यन्तं भूयिता या प्रतीखते ॥

—स कु कथ्यमरस स्तो ११७ ।

३ सस्यास्तु चेष्टा सम्पर्कमनोरथविनिस्तनम् ।

सखीविनोदो हृत्सेको मुहुर्गुटीमिरीयमम् ॥१२७॥

प्रियाप्रियमनमार्पाभिबीजाप्रमत्तयो भता ।

—र० पु, पृ० ११ ।

४ मान मनावत हू करै, मानद को अपमान ।

दूनो दुख ता भिग लई धमिसंभिता बखान ॥

—र मि०, म ७ पृ० ११ ।

५ सस्यास्तु चेष्टा सम्पर्कमनोरथविनिस्तनम् ।

६ सहिचर्यन परि १ पृ० स १२१ ।

७ धावन कहि धावै नहीं, धावै प्रीतम प्रातः ।

ताके पर सों खण्डिता रहै सु बहुविध नाथ ॥

—र मि०, म ७ पृ० ११ ।

संभोग-चिह्नों से मुक्त नहीं से प्रातःकाल जाता है^१ । भोज के इस समय से भी चिह्नभूपास का लक्षण केशव के लक्षण से अधिक समानता रखता है । चिह्नभूपास के अनुसार 'लज्जिता' नायिका वह है जिसका प्रिय समय का उत्सर्जन करके प्रिय स्त्री के संभोग-चिह्नों से मुक्त प्रातः जाता है^२ । केशव ने अपने लक्षण में प्रिय के परस्त्री के संभोग-चिह्नों से मुक्त होने का निर्देश नहीं किया है ।

केशव के अनुसार प्रोपितपति का 'नायिका वह है जिसका प्रिय लीटने की नियत अवधि लेकर किसी कार्यवश बाहर जाता जाये^३ । वर्णन के अनुसार प्रोपित प्रिया' नायिका वह है जिसका प्रिय किसी कार्यवश दूर रेष गया हो^४ । सम्भवतः वर्णन का भी आधार मरत^५ है । नायक के दूर रेष जाने का उत्प्रेषण तो चिह्नभूपास भोज तथा विस्मय ने भी किया परन्तु केशव ने नहीं किया है । कार्यवश जाना स्पष्ट रूप से वर्णन ही ने सिखा है जो केशव ने भी सिखा है । वर्णन के अनुकरण पर ही बाद में विश्वनाथ ने भी अपने लक्षण में कार्यवश जाने का स्पष्ट उत्प्रेषण किया है^६ ।

केशव के विचार से 'विप्रसम्भा' नायिका वह है जिसका प्रिय दूरी से संकेत स्वात बना कर स्वयं उसके नायिका को सिवा जाने के लिए भेजे परन्तु आप न जाये और नायिका उसके वहाँ न जाने पर दुःखित हो^७ । वर्णन के अनुसार, 'विप्रसम्भा' नायिका वह है जो निमत संकेत स्वयं पर अपने प्रिय को न पाकर अत्यन्त ही अपमानित होती है^८ । चिह्नभूपास के अनुसार 'विप्रसम्भा' वह होती है जिसका प्रिय संकेत बतला कर वहाँ नहीं पहुँचता और इस प्रकार नायिका को दुःख होता है^९ । भोज

१ सत्यभिस्रकव्यामर, पृ० २६८, श्लो ११४ ।
२ उत्तरभूपास, पृ० ३२ ।
३ जाको प्रीतम वै अवधि गयो कीमहूँ काज ।
ता को प्रापितमेवसी कहि वर्णत कविराज ॥
—र० प्रि० प० ७ अ १२ ।
४ दूरवेदान्तरस्यै तु कार्यत प्रोपितप्रिया ।
—दशरूपक प्र० २, सू ४२ ।
५ गुरुकारान्तरवशात् यस्या विप्रोपित प्रिय ।
सा कदाभकके क्षान्ता भवेत् प्रोपितमयु का ।
—भा० रा० अ० २२ श्लो० १११ ।
६ नागाकार्यवशात् यस्या दूरवैद्यं यत पति ।
सा भगोभवदुःखार्ता भवेत् प्रोपितमयु का ॥
—सा० ६० परि० ३ अ० स १२१ ।
७ दूरी सीं संकेत बदि सीन पठाई आप ।
सम्पदिप्र सो जानिये, अनघाये संताप ॥
—र० प्रि० प० ७, अ० १२ ।
८ विप्रसम्भोस्तत्तमयमप्राप्तेऽतिविमानिता ।
—दशरूपक प्र० २ सू ४२ ।
९ उत्तरभूपास १० ११ ।

मिचते हैं कि 'विप्रसम्भा' नामिका वह है जिसका प्रिय पुत्री को संकेत-स्वाग बताकर और नामिका को बुलाने भोज कर भी सबसे नहीं मिसठा^१। बिस्वनाथ ने मिचता है कि 'विप्रसम्भा' वह होती है जिसका प्रिय संकेत-स्वाग बताकर भी उसके पास नहीं जाता और इस प्रकार वह प्रतीत तिरस्कृत होती है^२। इस प्रकार स्पष्ट है कि केसव ने सबसे धावाओं के ससन से कुछ-कुछ बाँट लेकर अपना लक्षण बताया है।

केसव के अनुसार 'प्रभिसारिका' नामिका वह है जो प्रेम से सर्व से धनवा काम के बधीमूढ हो प्रिय से स्वयं बाँकर मिलती है^३। भरत के अनुसार 'प्रभिसारिका' वह है जो लज्जा त्याग कर सर्व से धनवा कामवश प्रिय को बुलाती है^४। बनजय और बिस्वनाथ भी कामवश ही प्रभिसारण के लिए जाने वाली नामिका को 'प्रभिसारिका' का नाम देते हैं। बनजय भूपाल तथा बिस्वनाथ तीनों के अनुसार 'प्रभिसारिका' स्वयं जाती है धनवा प्रिय को बुलाती है^५। भोज ने 'प्रभिसारिका' के स्वयं जाने का ही वर्णन किया है प्रिय को बुलाने का नहीं^६। केसव का ससन भरत तथा भोज दोनों के ससनो का समन्वय प्रणीत होता है।

सामान्य ससन के अनन्तर स्वकीया परकीया और सामान्या धनवा वेदवा के प्रभिसार का केसव ने पूषक-पूषक लक्षण दिया है। केसव के अनुसार स्वकीया प्रभिसारिका धामूपधों से सब मज बंधुओं के साथ बहुत ही लज्जाती हुई मार्ग में डममय पय रखती हुई चलती है। 'परकीया' दासी छोली धनवा बहुतों तथा बंधुओं के साथ लज्जावहित मार्ग में लज्जाकर वीर रखती हुई चलती है तथा 'सामान्या' नामिका नीचे बस्त्र पहन कर अक्रिष्ट तथा साहसपूर्ण हृदय से सम्प्रा धनवा धावी रात के समय प्रभिसार के लिए जाती है। वह चारों ओर देखती हुई, ईँचती भावों के मन को सुग्न करती हुई, धमराग धामूपध धावि से गुसगित जाती है। 'सामान्या' हाथ

१ उत्तराधिकारकथनरत्न २७० ११५ ५० २५८।

२ लक्ष्मिकर्णव करि १ का सं १२२।

३ हित से के मदनवन ही प्रिय को मिले लु बाह।

४ सो कहिये प्रभिसारिका बरनी निमिष बनाह॥

५ बान्वाणर, अ २२ स्तो० ११२।

६ कामार्वाभिसरेत् कामं सारवेष्टाभिसारिका।

—र० मि० प्र० ७ अ० २५।

प्रभिसारयते कामं वा मन्मथवर्धनवा।

—रत्नकर प्र २ ५० ५२।

स्वयं वाप्रभिसारयेवा वीरस्ववाप्रभिसारिका।

—सं० ६० परि १ का सं० ११५।

मदनानलसंतप्ता प्रभिसारयति प्रियम् ॥११५॥

स्वयं वाभिसरेत् वा तु सा मदेवभिसारिका ॥११५॥

७ पुष्पे पु नीहिता कामं याति वा साभिसारिका।

—र सं १, ५ २२।

—सं पु कथ्यरत्न स्तो ११६ (प्रकार) ५० २५८।

में पुष्प मिले सखी, सहेली साथ है युक्त जारपति के साथ बीरे-बीरे बसती है^१। अनन्त भोज और शिङ्गमूपास ने स्वकीया परकीया और सामान्या के अभिचार का असंग निरूपण नहीं किया है। भरत तथा विश्वनाथ ने ध्वन्य वर्णन किया है कि कुनवा बेरमा तथा प्रख्या (बासी) किस प्रकार अभिचार के लिए जाती है भैया कि पीछे मिठा बा चुका है। कुनवा में स्वकीया तथा परकीया दोनों ही सम्मिश्रित हैं। कारण भरत तथा विश्वनाथ दोनों ने स्वकीया और परकीया के अभिचार का ध्वन्य असंग वर्णन नहीं किया है। हो सकता है केशव के स्वकीया परकीया तथा सामान्या के अभिचार के निरूपण का आधार भरत तथा विश्वनाथ ही हों। परन्तु मध्यम केशव के अपने हैं। वे भरत और विश्वनाथ द्वारा दिए सङ्गर्षों^२ नहीं मिसते। अभिचारिका के कुनवा (प्योत्तना) कुनवा (उमिठा) तथा बिबसा—इन तीन चेहों को जिन्हें भानुवत (रघुसङ्घरी रसो० ७१-८१) तथा केशव के परवर्ती आचार्य भी मानते हैं वेधव ने छोड़ दिया है।

गुणों के अनुसार नायिकाएँ

केशव ने गुणों के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद उत्तमा, मध्यमा और अधमा बतसाए हैं^३। केशव के विचार से 'उत्तमा' प्रिय के उपमान करने पर भी उसका मान करती है, सम्मानित किये जाने पर मान छोड़ देती है तथा प्रिय को देखने पर प्रसन्न होती है। मध्यमा प्रिय के बोड़े से बोप पर मान करती, और बहुत मनाने पर मान को छोड़ती है तथा अधमा बार-बार कटती-ममती है^४।

भरत ने अपने 'नट्यशास्त्र' के २२ में अध्याय में स्थियों के प्रकृति के अनुसार उत्तमा मध्यमा तथा अधमा भेदों का विस्तार वर्णन किया है। पर उनके बताए हुए सङ्ग केशव से भिन्न हैं। भोज विश्वनाथ और भानुवत ने उत्तमा मध्यमा तथा अधमा नायिकाओं का केवल उल्लेख ही किया है उनके सङ्ग नहीं दिए हैं। शिङ्गमूपास ने उत्तमा मध्यमा तथा नीचा के सङ्गर्षों का भी उल्लेख किया है^५।

१ रसिकप्रिया प्र ७, अ० २१ १०।

२ उत्तम मध्यम अधम ध्व तीन तीन विधि जान।

—२ प्रि०, प्र ७, अ० १८।

३ मान करै उपमान तैं तजै मान तैं मान।
प्रिय देखे मुख पाषरै, ताहि उत्तमा जान ॥
मान करै अपु बोप तैं छोड़ै बहुत प्रमाण।
केशवदास बखानिये ताहि मध्यमा नाम ॥
कटे बारहि बार जो तूटे बैठैहि काज।
ताही को अधमा वरण कहै महाकविराज ॥

—२ प्रि०, प्र ७, अ० ११ ४१ तथा ४२।

४ रसिकप्रिया, प्र ७, अ० ११ १०, रसो ११२ ११७।

केराव का रीतिविधान

वे लिखते हैं कि सप्तमा किसी कारणवश भेष करती है और मताने पर प्रसन्न होती है^१। केराव की उत्पत्ति का सञ्जन भूपाल के उपपुत्र संघ से मिलता है। केराव भी मध्यमा तथा धर्ममा के लक्षणों का चिह्नभूरास से कोई साम्य नहीं है^२। इस प्रकार रूप मिताकर केराव ने नायिकाओं के १६० भेद स्वीकार किये हैं^३। यहाँ सामान्या का उल्लेख न होने पर भी 'पुमि' शब्द के रूपन से स्पष्ट है उसका ग्रहण कर लिया गया है^४। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि देव काय बय यदि के अनुसार नायिकाओं के प्रत्येक भेद हो जाते हैं^५। वनजय ने नायिकाओं के १२८ विस्तारों में ३८४ और भानुवत्त ने ११५२ भेद माने हैं^६।

केराव धर्ममा (सहवास क धर्मोम्य) स्त्रियों के वर्णन के साथ साथमें प्रकाश को समाप्त करते हैं^७। वे लिखते हैं कि सम्मन्धी की स्त्री मित्र धर्ममा किसी ब्राह्मण की स्त्री जिसको पुत्र में प्राप्ति दिया हो धर्ममा भुखी होने पर जिसकी भोजन से सहान्विता की हो ऐसी स्त्रियों से दूर रहना चाहिए वर्णन करना चाहिए^८। इसी प्रकार जो धर्म से उत्पन्न वर्ण की स्त्री हो जिसका धर्म भय हो धर्ममा पुत्र की स्त्री हो तथा जो जिसका धर्ममा पुत्रनीया हो ऐसी स्त्रियों से सोच-विचार कर संयोग करना चाहिए^९।

धर्ममा स्त्रियों का वनन संस्कृत भाषाओं के ग्रन्थों में नहीं मिलता। केराव ने धर्ममा-वर्णन के लिए कामपात्र-सम्बन्धी वर्णों को ही धर्ममा आधार बनाया है। वात्स्यायन ने धर्ममा क धर्मवर्ण कृच्छिनी जम्बता पत्रिता मुष्ट बाव को प्रकट करने वाली बूडा अतिस्वेतवर्णा अतिहृन्वर्णा कुम्भा सम्बन्धी की स्त्री ब्राह्मण की स्त्री राज्ञी सम्पासिनी पत्नी की सहेली समाधा करने वाली धकुन परखने की स्त्री

१. मृदुपाति कारली गोपममुनीता प्रवीरति ॥

२. कपवशास मुतीन विधि करणी भुक्तिमा नारि ।
परकीया ई मीति पुमि पाठ पाठ अनुहारि ॥
उत्तम मध्यम धर्म धर्मम तीन तीन विधि जानि ।
प्रकट तीन ही पाठ विम कैरावशास ब्रह्मानि ॥

—२० मु १ ११।

३. पुन के कहिके सों व्यंग्यतें सामान्या निकसी नाय लियो सो ऊपर ही कहि पाये ।

—२ मि० प्र ३ अ १० १८।

४. देव काय बय भाव है केराव जानि धनैक ।

—२ मि सरारकृत १८० बें दोहे की धृष्ट १ १०१।

५. उजि लक्ष्मी सम्बन्धी की काय विम डिजराय ।
राय लेह कुय भूष से ताकी तिय ही भाव ॥
अभिष्ट नरप धर्म भगि धर्मपत्र जन की नारि ।
उजि निषदा धर्म भुक्तिता रमियहु रसिक विचार ॥

—२० मि० प्र ३ अ १५।

—२० मि प्र ३ अ १६ २०।

मासी तथा बाहु-टोना करनेवासी घाबि को गिनाया है^१। अस्यागमस्त ने भी अगम्या वर्जन में कन्या संन्यासिनी सखी अश्रुवधू, मित्र की स्त्री रोगिणी सिध्दा बाह्यन की स्त्री पतिता, सम्पत्ता सम्बन्धिनी बुद्धा, आचार्य-पत्नी गरिबी महापापिनी मूरे वर्ज वाली तथा अत्यन्त काली स्त्रियों का उल्लेख किया है^२।

विप्रसम्म शृंगार.

पूर्वानुराग

‘रसिकप्रिया’ के आठवें प्रकाश में विप्रसम्म शृंगार के सामान्य लक्षण का परिचय देकर कवि ने विप्रसम्म शृंगार के चार भेदों पूर्वानुराग कथन मान और प्रवास का उल्लेख किया है^३। फिर पूर्वनुराग और इस काय वधाधों का निरूपण किया गया है। नायक-नायिका के एक दूसरे से विमुक्त होने पर जो रस उत्पन्न होता है, वह विप्रसम्म शृंगार कहलाता है^४। केसव का यह लक्षण संस्कृत के किसी आचार्य से साम्य नहीं रहता।

केसव ने ‘पूर्वनुराग’ वहाँ माना है वहाँ नायक-नायिका के हृदय में एक दूसरे के रूप को देखते ही अनुराग उत्पन्न हो जाता है और बिना देखे कुछ होता है^५। शिखरभूषण ने पूर्वनुराग का लक्षण देते हुए लिखा है कि ‘पूर्वनुराग’ वह अवस्था है, वहाँ प्रेम-संयम से पूर्व नायक-नायिका के हृदय में नायक-नायिका के दृश्य भ्रमवा मुख-भजन से अनुराग उत्पन्न हो जाता है^६। केसव ने ‘पूर्वनुराग’ की उत्पत्ति केवल

- १ अगम्यास्तेर्वेता—कुण्डिभुग्मत्ता पतिता भिन्नरहस्या प्रकाशप्रार्थिनी पतत्राययीवनातिस्तेताठिकृष्णा दुर्गन्धा संवन्धिनी सखी प्रव्रविता सम्बन्धिसखि ओभियराजवापावध।

—कमलध्वज प्र. भा० अधिराज १ अ. ५, व. ११।

मिथुकीभमनाक्षपणाकुसुटाकुहकेलनिकामूलकारिकाभिर्ग संयुज्येत।

—अमरस्य भाग २ अधिराज ४ अ. १ पृ० १६८।

- २ कन्या प्रव्रविता सखी रिपुवधू मित्रांगना रोगिनि
शिध्दा बाह्यनवस्नयाश्च पतिशोभ्यता च सम्बन्धिनी।
बुद्धाचार्यवधूवधू परमसहिताज्ञाता महापापिनी
पिता कुम्भजमा तथा बुधवर्जस्त्वाम्या इमा योपिता ॥ १३ ॥

—अनवरंज, पृ० ४३।

- ३ १० मि., प्र० =, अ० १।

- ४ विमुक्त प्रीतम प्रीतमा, होत सु रस तिहि ठीर।
विप्रसम्म तासों कहूँ, केसव कवि धिरमौर॥

—१० मि०, प्र० = अ० १।

- ५ देखत हीं सुठि बंपतिहि उपम परत अनुराग।
बिन देखे कुछ देखिये सो पुरन अनुराग॥

—१० मि०, प्र० अ० १।

- ६ रसार्थानुराग, पृ० १७१।

बर्तन से मानी है क्योंकि इन्होंने 'अवयव' को भी बर्तन' के समतुल्य रखा है। यही कारण है कि उन्होंने इसका अलग से उल्लेख नहीं किया है। इस दृष्टि से चिन्तमूलात्मक केसव के सत्य परस्पर मिलते हैं।

इस काम बशाएँ

केसव का कहना है कि देखने अथवा बातचीत सुनने से नायक-नायिका एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल हो उठते हैं और फिर निम्नाप न हो सकने पर इस दशावस्था को प्राप्त होते हैं जिनके नाम ये हैं—अभिलाषा चिन्ता पुनःकथन स्मृति अथवा प्रसाप उन्माद व्याधि अड़ता तथा मरण^१। केसव ने इन दशावस्थाओं के प्रसाप-प्रसाप सत्य दिए हैं। अन्वय में इन्हीं सब दशावस्थाओं के नाम बिना हैं केवल अन्तर इतना ही है कि केसव की व्याधि के स्थान पर उन्होंने 'उन्माद' लिखा है^२। उन्होंने सत्य नहीं दिए हैं। मोक्ष में अभिलाष केसव से बिना दशावस्था का उल्लेख किया है। चिन्तमूलात्मक तथा विस्मयनाथ^३ द्वारा उल्लेख है कि इस दशावस्था के मिलने की प्रमाण में सभी दशावस्थाओं के सत्यों का उल्लेख किया है और विस्मयनाथ ने अति सत्य तथा उन्माद के सत्य नहीं दिए। केसव के अनुसार वैद्य वचन और मन के मिल जाने पर जब शरीर भी मिलना चाहता है तो वह दशा 'अभिलाषा' कहलाती है^४। यह सत्य केसव का अपना है जो प्रमाण अथवा विस्मयनाथ के सत्यों से भिन्न है। नायक से किंचित् प्रकार मिलन हो जिससे वह मिलना चाहती है पर उसे कभी दशा में रखा जाय अर्थात् बाटों की चिन्ता को केसव ने 'चिन्ता' कहा है^५।

१. अभिलाषा कालाप से मिलने को अकुलाहल ।
होय दशा दश दिन मिले केसव नयों कहि बाहिल ॥

अभिलाषा सुचिन्ता पुनःकथन स्मृति उन्माद प्रसाप ॥
उन्माद व्याधि अड़ता मये होय मरण पुनि प्राप ॥

—१ मि. प्र. = अ. = तथा है ।
—२ मि. प्र. = अ. = तथा है ।

२. दशावस्था स तथादावमिलापोऽप्यभिमतम् ॥२१॥
स्मृतिपुनःकथोऽप्यभिमतम् ॥२२॥
अड़ता मरणं चेति पुनःकथनं यथोक्तम् ॥२३॥

१. २. ३. ४. ५. ॥२०॥

४. ल. द. परि. १ का. सं. २१० (५) ।

५. नैन नैन मन मिलि रही बाहिल मिलन शरीर ।
कहि केसव अभिलाष यह, बर्तन है मतिभीर ॥

१. कहे मिलिये मिले हरि कहे भी वस होइ ।
यह चिन्ता चित्त केत कहे, वचन है सब जोई ॥

—२० मि. प्र. = अ. = २१ ।

केदार के ससन के पहले यश तथा विभवनाथ^१ के पूरे ससन का भाव प्राय एक ही है। चिङ्गभूपास ने 'बिन्ता' का व्यापक सञ्चय दिया है। परन्तु केदार के ससन का प्रथमोद्य भूपास^२ से भी भिन्नता है। केशव तथा चिङ्गभूपास के गुण रूपन के ससनो में पुन साम्य है। कामबस होकर धरीर की सोमा धामुपणों तथा गुणों प्रादि के वसन को केदार ने गुण-वचन^३ दत्तसाया है^४। केशव का यह ससन चिङ्गभूपास^५ के ससन से भिन्नता है। केदार द्वारा दिया स्मृति^६ का ससन^७ वस्तुतः स्मृति का ससन न होकर अभिसारा^८ का ससन जान पड़ता है। भूपास तथा केदार के 'उद्ग' के ससनो^९ में अन्तर है। प्रसाप का ससन केदार का नित्री है और भूपास प्रबवा विभवनाथ से भिन्न है^{१०}। इसी प्रकार केदार के 'उग्मा' का

१ बिन्ता प्राप्पुपाधाविभिन्तनम् । —स्र ६० परि० १ का० सं २१८ ।

२ केनोपायेन ससिद्धि कथा तस्य समागम ।
(किस उपाय से सिद्धि प्राप्त हो और उससे कींति भिन्नता हो ।)
—र सु ५ १०८ स्तो १८२ ।

३ अह गुणगण भणि वेह् धुति वरणत वचन विधीय ।
ठाकह् जानहु गुणकपन मनमथ मधम सुमेख ॥
—र मि प्र = सं० २१ ।

४ सोम्वर्पाविगुणदभाषा गुणकीर्तनमत्र तु । —र द ५ १७६ ।

५ और वस्तु न मुदाय अह् धुति बाहि सब काम ।
मन भिन्निवे की कामना ताहि स्मृति है नाम ॥
—र मि प्र = सं० ८, द २२ ।

६ मनस कम्प उद्ग' कवितस्तत्र विख्या ॥ १७८ ॥
—र सु ५ १७६ ।

दुलदायक ह् जानि अह् सुखदायक समयाय ।
सो उद्ग' दया दुसह, जानहु वेसवदास ।
—र मि प्र = सं० ११ ।

७ भमत रहै मन और ज्यों है तन मन परछाप ।
वचन कहै प्रियवस सों तासों कहत प्रलाप ॥
—र मि प्र = सं० १२ ।

इह मे पुरुषार्थ प्रापविहातिष्ठदिहास्य प ।
इहापविहावात्मीविहीन ग्यवृत्तत् तदा ॥ १६० ॥
इत्यादिवाचपविग्यामो विभाप इति नीतिव ।

—र सु०, ५० १०६ ।

(भूपास में 'प्रलाप' के स्थान पर 'विभाप' मिला है)

मनस्वदाक प्रलाप स्याच्चेतसो भ्रमनाद् भूषम् ।

—स्र ६० परि० १, का० सं० २१८ ।

समय भी दोनों प्राचार्यों से नहीं मिसता^१ । केदार की 'व्याधि' का सखण भूपाल की अपेक्षा विद्वनाय से अधिक मिसता है । भूपाल के अनुसार सखाय शीर्ष निश्वास शीठस वस्तुओं का सेवन जीवन की घोर संजवासीनता मोह मुमुर्षा भय हीनता आदि 'व्याधि' के लक्षण हैं^२ । विद्वनाय ने शीर्ष निश्वास शरीर की पाण्डूता तथा कुबलता आदि 'व्याधि' के सखण लिखे हैं^३ । केदार ने भी 'व्याधि' के सखण में शीर्ष निश्वास अय-वैकल्य तथा घ्राणों में घ्राणियों के घा जाने का वर्णन किया है^४ । विद्वनाय ने 'वदता' के सखण में शरीर तथा मन का निश्चेष्ट हो जाना लिखा है^५ । नद्य के सखण के प्रथम चरण के प्रथमांश 'मुनि जाय सुधि बुधि बह' का भी यही भाव है । केदार के प्रथम चरण के द्वितीयांश 'सुख दुख होय समान का आधार धिक्कभूपाल की 'व्याधि' के सखण का ह्यमिष्टमनिष्ट तन्ति बेतिन विरचन^६ यह अर्थ ही जान पड़ता है । इस प्रकार केदार की कड़वा का सपूर्ण लक्षण^७ धिक्कभूपाल तथा विद्वनाय के लक्षणों का समन्वय है । विद्वनाय ने 'मरण' का वर्णन नहीं किया है क्योंकि इसमें रसविच्छेद होता है^८ । धिक्कभूपाल ने 'मरण' का भी सखण दिया है । उन्होंने लिखा है कि बिबिध ज्ञाणों के करने पर भी जब नायक-नायिका का समापन सम्पन्न नहीं होता तो कामाग्नि से संतप्त होकर वे मरण का लोप करते हैं^९ ।

१ तर्कि उठै पुनि उठि बनी चितै रहै सुख बेचि ।

सो समाध यनागही रोबै हलै बिसेकि ॥

—र मि म = ख ४१ ।

समाधयथापरिच्छेद-चेतनाचेतनेष्वपि ।

—छ ६ का स २१ = ।

सर्वावस्थानु सर्वाय समस्तकथा सदा । १६२ ।

अर्थात्सर्वाय वि आश्लिष्यमात्रे विरहोन्मथन ॥

—र० गू ६ १७६ ।

२ रसार्पणवाक्य, स्तो १६२ १६६, पृ १८ ।

३ व्याधितु शीर्षनिश्वासापाण्डूताकुण्डलाश्रयः ।

—सा ४० परि० १ का ॥ २१ = ।

४ भग वरण विवरण जहाँ अति ऊँचो लक्ष्मणः ।

मैन गीर परताप बहु व्याधि मु केदारदास ॥

—र० मि म = ख ४६ ।

५ कड़वा हीनचेष्टस्यङ्गानां मनसस्तथा ।

—छ ६ परि० ६ का० सं० २१ = ।

६ र सु० ६ १८ ।

७ मुनि जाय सुधि बुधि बहै सुख दुख होय समान ।

तासों कड़वा कहत हैं केदारदास मुजान ॥

—र मि म = ख ४६ ।

८ रसविच्छेद-हेतुभूपाल मरण भैव कर्पितः ।

—सा ४० परि ६ का स २१६ ।

९ रसार्पणवाक्य, पृ १८० ।

केदार के सख्त का भाव भी इस प्रकार का ही है^१ । केदार ने सख्त तो दिया है, किन्तु साथ ही राधाकृष्ण घबर और घमर की जोड़ी की विरह रसा में 'मरण' का वर्णन न करने की विधि भी बतसाई है^२ ।

मान विप्रसम्भ

जबे प्रकाश में विप्रसम्भ के द्वितीय भेद 'मान' तथा उसके सबों का विवेचन है । वर्णजय ने 'मान' का सामान्य सख्त नहीं दिया है भोज, धिक्कमूपास तथा विस्वनाथ ने दिया है । किन्तु इनके द्वारा दिए गए तथा केदार के सख्त में अन्तर है । वर्णजय ने 'मान' के दो भेद बतसाए हैं प्रणयमान तथा ईर्ष्यामान^३ । ईर्ष्याजनित मान तीन प्रकार से होता है—(१) वर्धन नायक की अन्य नायिका में प्राप्त प्रत्यक्ष रूप से देखने से (२) श्रुति सखी के द्वारा सुन कर तथा (३) अनुमिति अनुमान से । अनुमान तीन प्रकार से होता है—(क) उत्सवप्राप्त स्वप्न में नायक के अन्य नायिका-सम्बन्धी बातों के बड़बड़ाने से (ख) भोगाकृष्णित नायक में अन्य नायिका के समीप-निष्ठ देखकर तथा (ग) गोचरस्नानकल्पित सहसा नायक के मुख से अन्य नायिका का नाम सुनकर^४ । धिक्कमूपास के अनुसार 'मान' के दो भेद हैं सहेतु तथा निहेतु । वे 'सहेतु' मान को ईर्ष्याजनित मानते हैं^५ । उनके ईर्ष्याजनित मान के प्रकार वर्णजय से ज्यों के त्यों मिलते हैं । विस्वनाथ ने वर्णजय के ही आधार पर मान के प्रणयमान तथा ईर्ष्यामान तथा ईर्ष्यामान के वर्धनजनित अनुमिति जनित (उत्सवप्राप्त भोगाकृष्णित तथा गोचरस्नानकल्पित) तथा श्रुति जनित भेदों का उल्लेख किया है^६ । केदार ने मान के तीन भेदों गुह्य, सधु तथा मध्यम का निर्देश किया है^७ । केदार के इन भेदों का उल्लेख वर्णजय भोज मूपास

१ बने न केहुँ मिलन जाहँ छन बज केदारदास ।

पूरख प्रेम प्रताप तैं मरण होहि अगवास ॥

—र प्रि० प्र० = अ १४ ।

२ मरण सु केदारदास वी बरनों जाह न मित ।

घजर घमर ताछों कहैं कैसे प्रेम भरित ॥

—र प्रि०, प्र० = अ १५ ।

३ मानोर्पि प्रथमेर्ष्ययो^१ ।

—दशकम्, १ १ १ ।

४ दशकम् १ १ १ ।

५ सोऽयं सहेतुनिहेतुमेवाह ईषाव हेतुज^२ ।

ईर्ष्या सम्बन्धेर्ष्या स्वग्यासङ्गिनि वस्समे ॥२०३॥

असहिष्णुत्वमेव स्याद् द्यूटेरनुमिटे श्रुते ।

—र० मु०, पृ १८१ ।

६ साहित्यरस्य, परि० ३, अ० सं० १२९, १२१ ।

७ मान भेद प्रकटहि प्रिया गुरु सधु मध्यम मान ।

प्रकटहि प्रीय प्रियान प्रति केदारदास गुजान ॥

—र० प्रि० प्र १ अ० १

घबरा बिस्वनाथ किसी घाबाराँ ने नहीं किया है। केसव, अग्य नायिका के संयोग चिह्नों को मायक में देख कर घबरा उससे अग्य नायिका का नाम सुनने पर प्रकट नायिका में मूढ मान की उत्पत्ति बतलाते हैं^१। केसव के इस मध्यम में धनञ्जय के ईर्ष्यामान के नेवों मोहस्तसनकस्थित तथा भोषाकूकस्थित का सम्मिश्रण है। केसव सिद्धते हैं कि प्रकट नायिका सधु मान तक करती है जब वह नायक को किसी दूसरी नायिका की ओर देखते हुए प्रत्यक्ष अपनी भाँखों से देख लेती है घबरा उसे धकी के द्वारा दूसरी नायिका में नायक का घाघरत होना किविच होता है^२। केसव का मूढ सत्यन वर्तनय के दर्शन ईर्ष्या तथा भुति-ईर्ष्या का सम्मिश्रण है। केसव के धनुषार मध्यम मान का उदय उस समय होता है जब प्रकट नायिका नायक को किसी अग्य नायिका से भाँते करते देखती है^३। केसव का मध्यम मान का मूढ सत्यन वर्तनय के दर्शन ईर्ष्या में ही सा जाता है। केसव के इन तीन नेवों का आधार मानुसत की 'रसमंजरी' बाल पड़ती है^४।

मानमोचन के उपाय

इसमें प्रकाश में मान-मोचन के उपायों तथा मान की रीति का विवरण दिया गया है। केसव ने मानमोचन के छ उपाय—साम वाम भेद प्रकृति उपेक्षा तथा प्रसंग-विपर्यय बतलाए हैं। रसविपर्यय होने के कारण रण्ड को छोड़ दिया है^५। धनञ्जय ने भी मानमोचन के इन्हीं उपायों का वर्णन किया है केवल अन्तर इतना ही है कि केसव के 'प्रकृति' तथा 'प्रसंगविपर्यय' के स्थान पर इन्होंने क्रमशः 'मति' तथा 'रसमंतर' शब्द प्रयुक्त किए हैं^६। विज्ञानभूषण तथा बिस्वनाथ ने

१ घानि नारी के चिह्न लखि, की सुनि घबराति नाउ।

उपजत है मूढ मान तहँ केसवदास सुभाउ ॥

—२ प्रि०, प्र० १, अ० ३।

२ देखत काहुँ नारि लीं देखी अपने नीन।

तहँ उपजै सधु मान की सुनी लखी के नीन ॥

—३ प्रि० प्र० २ अ० २।

३ बात कहुँ तिय भीर लीं देखी केसवदास।

उपजत मध्यम मान तहँ मानिनि के ललितदास ॥

—४ प्रि०, अ० २, अ० १५।

५ प्रिकारणविपर्यय के लिये यकः । त न लक्ष्यन्ते गुणवः । रसमन्तर, प्र० ४३।

६ साम वाम भेद भुनि प्रकृति उपेक्षा नाति।

भेद प्रसंगविपर्यय भुनि रण्ड होहि रसमन्तर ॥

—५ प्रि० प्र० १०, अ० २।

६ मयोसरं मूढः कश्मिन्पार्वस्तमुपाचरेत्।

साम्ना येनैव दानेन मत्पुण्येनारक्ष्यते ॥६१॥

—६ प्रि० प्र० ११।

भी जनबय का अनुसरण किया है^१। केशव जैसे-तैसे मन को मोह कर मान छुड़ाने को साम' कहते हैं^२। जनबय धिक्कभूपास तथा विश्वनाथ के अनुसार प्रिय बचनों का प्रयोग साम' कहलाता है^३। केशव द्वारा दिया सभ्रम अधिक विधिहीन है। केशव के अनुसार किसी बहाने से कुछ बेकर मान छुड़ाने को साम कहते हैं^४। जनबय धिक्कभूपास तथा विश्वनाथ किसी बहाने से आभूषण आदि देने को दान' बतलाते हैं^५। केशव का इसी प्रसंग में यह भी कहना है कि यदि नायिका किसी सोम वपवा दान के बधीभूत हो मान छोड़ती है तो उसकी गमना 'वारवधू' की कोटि में होती है^६। इस कथन का उत्प्रेषण न तो उपसृक्त दोनों व्याचार्यों ने घोर न संस्कृत के किसी घोर व्याचार ने ही किया है। जब नायिका की सब सखियों को मुक्त करके अपनी घोर कर के मान छुड़ावा जाता है तो केशव उसे 'मेव' उपाय कहते हैं^७। जनबय घोर विश्वनाथ के जगज्ज का भाव केशव से साम्य रखता है^८। धिक्कभूपास का सभ्रम भिन्न है^९। केशव ने अतिहिट अति कामवध वपवा अति वपराज समस्त

१ रत्नरत्नमुद्रका स्तो २ = ५ १८४ तथा सा० ६ परि १ का सं० १२४।

२ ज्यों केहू मन मोहिये छुटि जान बहू मान।

छोई साम उपाय कहि, केशवदास बखान ॥

—र प्रि० प्र० १० पृ० ३।

३ तब प्रियवचन साम।

—दशरत्नक ५ ११।

तब प्रियोक्तिकथनं यत्तु तत् साम मीबते।

—र सु ५ १८४।

तब प्रियवचन साम।

—सा ६ परि ३ का सं० १२४।

४ केशव कौनहुँ व्याज कहू, बे पू छुड़ावै मान।

बचन रचन मोई मनहि ताको कहिये दान ॥

—र प्रि० प्र० १ पृ० ३।

५ दान व्याजेल भूपावे।

—दशरत्नक ५ ११ तथा सा० ६ परि० ३ का सं० १२४।

व्याजेल भूपास जीना प्रदार्न दानमुच्यते।

—र सु ५ १८२।

६ बहाँ सोम ते दान ते लाई मागिनि मान।

वारवधू के सखियाहि पारि तबहि प्रमान ॥

—र प्रि० प्र० १० पृ० ३।

७ सुख द के सब सखिन कहू भाप मेह बनावाइ।

तब धु छुड़ावै मान कौ, बरनों मेह बनाइ ॥

—र प्रि० प्र० १० पृ० ११।

८ मेवस्तस्यक्युपार्जनम्।

—दशरत्नक ५ १०३ तथा सा० ६ परि० ३, का सं० १२४।

९ सखादिभिर्दत्तानामप्रयोगो मेव उच्यते ॥ ५०६ ॥

—र सु० ५ १८२।

कर प्रियतम या प्रियतमा के एक पुरे के वीरों में पड़ जाने को प्रणति कहा है^१। वर्णजय भूपाल तथा विश्वनाथ ने भी चरणों में पड़ने को 'नति माना है^२। जब मान लुझने वाली बातों को छोड़कर अथ ही प्रसंग की बातें छेड़ देने से मान छूट जाता है केद्यन वहाँ 'उपेक्षा' मानते हैं^३। भूपाल चुप रहने को उल्ला कहते हैं^४। धर्मजय तथा विश्वनाथ ने कहा है कि साम, दान आदि उपायों के निष्पन्न मित्र होने पर उल्ला का मान दिखाना जाता है^५। केद्यन का सज्जन अपेक्षाकृत अधिक स्वयं जान पड़ता है। केद्यन के 'प्रत्यक्षिर्ध्वंस' तथा वर्णजय और विश्वनाथ के 'रसान्तर' का सज्जन प्रायः समान ही है। केद्यन भय के कारण विल में प्रेम उत्पन्न हो जाने से मान छूट जाने को 'प्रसंगविध्वंस' कहते हैं^६। धर्मजय तथा विश्वनाथ के 'रसान्तर' का भी प्रायः यही भाव है^७। भूपाल का सज्जन नित न्त मित्र है^८। इस प्रकार साममोचन के उपायों के वर्णन के लिए केद्यन वर्णजय के ज़रूरी हैं और भूपाल तथा विश्वनाथ वर्णजय के। उपर्युक्त उपायों के प्रतिरिक्त केद्यन ने देशकाम मधुर सगीत सुन्दर वस्तुओं का वर्णन सीमन्त आदि कुछ साममोचन के सहज उपायों का भी उत्सख किया है^९।

मान की रीति

केद्यन इनी प्रकाश में मान की रीति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि

१. परिहित ते पतिकाम ते पति अपरायहि जान
पाँव पर प्रीतम धिया ताको प्रणति बलाम ।

—र वि प्र १ क १८।
—र सु १ १२५।

२. पादयो-पतनं नति । —रतकप १ १ १ तथा १४ १ १२५।

नति पादप्रक्षालनं स्वात् ।

३. मान मुखावन जात छभि कहिये धीर प्रसंग ।
छुटि जाइ जाइ मान तह कह्य उपेक्षा धर्म ॥

—र सु १ १२५।

४. तूजनी स्थितिलोचनम् ॥ २१० ॥ —र वि प्र १ क १ ।
—र सु १ १२५।

५. सामाही तु परिहीले स्वादुपेक्षावनीरम् ।

—र सु १ १२५।

६. जात्र परं मन विल भ्रम छट जाय जाइ मान ।
सो प्रसंग विध्वंस कवि देशबदास बघाम ॥

—र वि प्र १ क ११।

७. रमसनातहरदि कोपमनी रसान्तरम् ।

—रतकप १ १ १ तथा १४ १ १२५।

८. भावस्थिरकरसावीन। वत्पना त्याद् रसान्तरम् ।

—र सु १ १२५।

९. देश काम बुधि बचन ते कम वानि कोमल गान ।
सोमा सुम सीमन्त त मुख ही छूटन मान ॥

—र वि प्र १ क ११।

नायिका को नायक से प्रतिवृत्त नहीं करना चाहिए, संभव है कि प्रतिवृत्त से नायक उदास हो जाये और फिर हाव न भाये। बार-बार मान करना ठीक नहीं है। कभी कभी ही मान करना उचित है। उससे आपस में सम्मान बढ़ता है^१। मान में भय और प्रेम दोनों होते हैं। प्रेम के बिना भय तथा भय के बिना प्रेम संभव नहीं है। जहाँ प्रेम रहता है वहाँ भय रहता है^२।

कदरु विप्रसन्न

'रक्षिकप्रिया' के आधारों पर प्रकाश में कदरु तथा प्रवास विप्रसन्न का निकषण किया गया है। संस्कृत के धारामों ने कदरु विप्रसन्न नायक धारणा नायिका से किसी एक के लोकान्तर चले जाने पर दूसरे के शोक विह्वल हृदय से बिसाप करने की उस समस्या को कहा है जिसमें मरणान्तर भी इसी जन्म में संयोग की प्राप्ति रहती है। केदार ने कदरु विप्रसन्न वहाँ माना है जहाँ संयोग-मुख के सब उपाय छूट जाते हैं^३। केदार का यह मतान स्पष्ट नहीं है।

प्रवास विप्रसन्न

केदार तथा वर्तमान के प्रवास-विप्रसन्न का मतान प्रायः समान ही है। केदार की अपेक्षा वर्तमान का लक्षण अधिक विशिष्ट है। वर्तमान नायक के किसी कार्यवश घाप धारणा भय के कारण किसी अन्य देश में जाने को 'प्रवास' बतलाते हैं^४। केदार ने किसी कार्यवश प्रिय के परदेश चले जाने को 'प्रवास' कहा है^५। भूतान तथा विप्रनाय ने भी अपने 'प्रवास विप्रसन्न' का लक्षण वर्तमान के अनुकरण पर ही दिया है। केदार ने प्रवास-विप्रसन्न की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है। पहली

- १ प्रिया न प्रीतम सौ करे प्रतिवृत्त केदारदास ।
बहुर्यो हाव न भावई जो हूँ जाय उदास ॥
बारहि बार न कीजिये बारक कीजै मान ।
कहि केदार क्यों घाप में सदा बई सनमान ॥

—२० मि प्र १ अं २१ १५

- २ प्रीति बिना भय होय नहि भय बिन होहि न प्रीति ॥
प्रीति रही जह भय रही यह मान की रीति ॥

—२० मि प्र १० अं ३१ ।

- ३ छूटि जात केदार जहाँ मुख के सर्व उपाय ।
कदरु उपजत तहाँ धातुन से सकनाय ॥

—२ मि प्र ११, अं १ ।

- ४ कायत संभ्रमाभ्यापात् प्रवासो भिन्नदेष्टता ॥

—वदरुका, पृ० १०४ ।

- ५ केदार कीनहु काज सौ प्रिय परदेशहि जाय ।
तामों कहुत प्रवास सब कवि कीबिद समुप्राय ॥

—२० मि प्र ११ अं ७ ।

घबस्था तो वह है जब बिरही अपने प्रिय विमुक्त होता है किन्तु उसके बिना रहना अच्छा नहीं लगता । दूसरी घबस्था 'मय विभ्रम' की है जिसमें प्राकृतिक वस्तुओं को बेसुकर संयोग के दिनों का स्मरण हो जाता है और वह दुःख का हेतु बनता है । तीसरी घबस्था 'धनित्रा' की है जिसमें निद्रा भी जाती रहती है । चौथी 'बिरह-निवेदन' की है जिसमें विमोहिनी किसी के द्वारा अपनी बिरहावस्था का संदेश प्रिय के पास पहुँचाता है । इन घबस्थाओं का वर्णन केदार का अपना ही शील पढ़ता है ।

सखी निरूपण

'रसिकप्रिया' के बारहवें प्रकाश में सखी निरूपण है । केदार के अनुसार बाय बनी दासी नाइन, नटी पड़ोसिन मासिन, बरहान (तमोसिन), चिस्पिनी बुड़िहारिन (मनिहारिन) सुनारिन, रामबनी (भोसाइन) संन्यासिनी तथा पटवा की स्त्री—ये नामक-नायिका की सखी हो सकती हैं^१ । इनका सम्बन्ध संस्कृत के भाषाओं में से विश्वनाथ के साहित्य-वर्णन तथा कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में दूती के प्रसंग में मिलता है । विश्वनाथ सखी नटी दासी बाय पड़ोसिन बासा संन्यासिनी भोजिन तथा चिस्पिनी आदि को दूती का पद देते हैं^२ । बास्वायन ने 'कामसूत्र' में विषया दासी मिच्छारिन तथा चिस्पिनी आदि को ही दूती के अन्तर्गत विनाया है^३ । 'अनंगरंग' में मासिन सखी विषया बाय नटी, चिस्पिनी सैरग्री पड़ोसिन रंगरेजिन भोजिन दासी सम्बन्धिनी बासा संन्यासिनी मिच्छारिन ध्यानिन आदिन यमदा कुत्राहिन आदि का वर्णन दूती के अन्तर्गत किया गया है^४ । अनन्तर ने दूतियों में दासी सखी रजकी बाय पड़ोसिन

- १ बाय बनी मायन नटी प्रकट परोसिन नारि ।
मासिन बरहान चिस्पिनी बुड़िहरनी सुनारि ॥
रामबनी संन्यासिनी पटु पटवा की बाल ।
केदार नामक नायिका सखी करहि सब काल ॥

—२० पि म १२ ख० १ तथा २ ।

- २ दूत्य सखी नटी दासी बाजेवी प्रतिवेदिनी ।
बासा प्रवजिता काक चिस्पिग्यावा स्वयं तथा ।

—छा० ६ परि० १, का स १६१ ।

- ३ विषवेक्षयिका दासी मिशुकी चिस्मकारिका ।
प्रविष्टयापु विषवासं दूतीकार्यं च निवर्ति ॥६३॥

—कामसूत्र भाग २, अधिप्रत्य १, अ ४ पृ ८४१ ।

- ४ भासाकारकपु सखी च विषया बाभी नटी चिस्पिनी,
सैरग्री प्रतिगेहिकाज रजकी दासी च सम्बन्धिनी ।
बासा प्रवजिता च मिशुवनिता तत्रस्य विकटिका
माग्या काकबुविबन्धपुर्यं प्रेव्या हमा दूतिका ॥

—अनंगरंग स्त्री १६, पृ ४

‘भित्तिरित्ति तमा विनिर्मिता को रखा है’ ।

तत्प्रीजन-कर्म निरूपण

‘रसिकप्रिया कं तरुहर्षे प्रकाश यं सखी जन कर्म का निरूपण है । भरत मत्तव्य सम्प्रद भूगोल तथा विरचनाय धादि संस्कृत कं धाचार्यों में से किसी ने भी ऐसी ध्येया वृत्ती के कर्मों का निरूपण नहीं किया है । थोड़ा ने ध्येय ध्येय ‘शृंगार प्रकाश’ नामक ग्रन्थ के अष्टादशवें प्रकाश में प्रवेश विद्यासोत्पादन उपावर्तन अनुवर्तन, उपन्यास ध्येयस्थानिर्बेदन इतिहास-आच्छान उपायज्ञान प्रकरण ज्ञान प्रसारण समारम्भान ध्येयप्रतिष्ठा प्रयोगप्रपञ्च सन्धिस्था प्रतापध्यावर्तन, उपजाप पराक्रम बन्धुरत्नापहार मिथोपपन्न सुहृदिमर चारजाल मूढदण्डातिचार चार समाधान तथा समाधिभोज — इन २४ वृत्त कर्मों का उल्लेख किया है’ । वात्स्यायन ने ‘कामसूत्र’ में वृत्ती के कर्मों का विवरण दिया है । उन्होंने वृत्ती-कर्मों में पति से बिट्टेप करना नायिका के समक्ष धुन्वर वस्तुओं का उल्लेख करना चिन्तों तथा दुषरों के मूल उन्मोघ को दिखाना नामक क प्रथ रतिकोषण तथा प्रार्थना धादि का नायिका से निवेदन करना निर्या है’ । भामह ने ‘रसमञ्जरी’ में ध्येय ऐसी तथा वृत्ती के कर्मों का पृथक-पृथक वर्णन किया है । सखी-कर्म के अन्तर्गत भानुवत्त ने मञ्जन उपायज्ञान सिद्धा तथा परिहास’ एवं वृत्ती कर्म के अन्तर्गत सद्गुदत्त तथा विरहनिर्बेदन का उल्लेख किया है’ । कथन ऐसी का कार्य सिद्धा देना विनय करना भगवान् शृंगार करना भुङ्गना तथा उपायज्ञान देना वत्तनाते है’ । कथन के सिद्धा देना शृंगार करना तथा उपायज्ञान देना—इन तीन कर्मों के उल्लेख का आधार ‘रसमञ्जरी’ ही है । भामह के परिहास को कथन न छोड़ दिया है । कथन द्वारा निरिष्ट वीप कर्मों

१ इत्यो हापी सखी कारुण्यप्रयी प्रतिवेधिका ॥

निर्मितो विस्मिती त्वं च नेतुमिच्छामि ॥

—पराकर्म, लो २१ इ २० ।

२ मृगप्रमदाय याग १ (पञ्च कथन) इ २२ ।

३ विहृषं प्राहयेत्सखी रमणीयानि वर्णयेत् ।

वित्रागुरतसम्मोगान्म्यासामपि वक्षयेत् ॥६४॥

नामकस्यानुरागं च पुनरप रतिकोशमम् ।

प्रार्थना चाधिकस्त्रीनिरवष्टम्भं च वक्षयेत् ॥६५॥

—कामसूत्र, भाग २ अधिपर २, प ४ इ २४ ।

४ परया मञ्जनीपालम्भसिद्धापरिहासप्रमृतीनि कर्माणि ।

—रसमञ्जरी इ १६९ ।

५ तरया (इत्यो) सद्गुदत्तमपिरहनिर्बेदमादीनि कर्माणि ॥

—रसमञ्जरी इ १६५ ।

६ सिद्धा विनय मनारथो, मिलने करहि सिंगार ।

भुङ्गि यह वेद उराहणो यह सिङ्गका ध्येयहृत् ॥

—र प्रि० प्र० ११ अ० १ ।

का वर्णन उनका अपना है।

हास्य रस

‘रसिकप्रिया’ के बीरहमें प्रकाश में हास्य कबम रीति वीर भयानक बीररस ध्वनित तथा मम (शान्त) नामक रसों का वर्णन है। केशव के अनुसार यहाँ तैयों और बच्चों की भेटाओं से मोह उत्पन्न होता है वहाँ हास्य रस होता है^१। केशव का यह मत किती भी संस्कृत के आचार्य से साम्य नहीं रखता। मग्न मनमय धिक्कभूषण तथा विषवनाय ने हास्य के छ भेदों का उल्लेख किया है। भरत तथा मनमय के अनुसार हास्य के छ भेद हैं स्थित हसित विहसित उपहसित अपहसित तथा अतिहसित^२। धिक्कभूषण तथा विषवनाय द्वारा यद्यप्य छ भेद हैं किन्तु हसित विहसित अपहसित अपहसित तथा अतिहसित^३। मोह ने केवल तीन ही भेद स्थित हसित तथा विहसित बतलाए हैं परन्तु यदि शब्द का प्रयोग कर उन्होंने यह मान लिया है कि हास्य के इनके अतिरिक्त और भेद भी होते हैं^४। केशव ने हास्य के चार भेद किये हैं मन्दहास कन्दहास अतिहास तथा परिहास^५। केशव मन्दहास वहाँ मानते हैं वहाँ नेत्र कपोल दाँत और घोंठ कुछ कुछ विकसित होते हैं^६। केशव के मन्दहास का यह मत धिक्कभूषण तथा विषवनाय के ‘स्थित’ के मतों का सम्मिश्रण है। भूषण के मत में दाँत नेत्र और कपोल को कुछ-कुछ विकसित करने वाला हास स्थित कहलाता है^७। विषवनाय ‘स्थित’ वहाँ मानते हैं वहाँ नेत्र कुछ-कुछ विकसित होते हैं तथा घोंठों का स्पन्दन होता है^८। वहाँ हसने के साथ-साथ मधुर श्वसि भी घुनने में आती है और तन-मन मोहित हो जाता है उसे

१ मग्न मग्न कसु करत जहँ जन की मोह सरोत ।

बतुरचित पहिचानिये तहाँ हास्य रस होत ॥

—र० वि० म० १४ सं० १।

२ मादुराग्र्य पृ० ६७ तथा दासकृत रसो० ७७, ७७ व १०८।

३ रसकर्मसुसम्पन्न ॥ १६४ तथा छ व, परि० ३ का सं० २३२।

४ हास्य स्थितहसितविहसितादयः—मेदा आचम्ये।

—स० कु० कव्यप्रसाद व ६६।

५ मन्दहास कन्दहास पुनि कहि केशव अतिहास ।

कनि कोविद पर्वत सर्व धरु बीभो परिहास ॥

—र० वि० म० १४ सं० २।

६ विहसति मग्न कपोल ककु, दशन वसन के बास ।

मन्दहास ताका कहि कोविद केशवदास ॥

—र० वि० म० १४ सं० ३।

७ स्थित आनन्दवर्धन युक्तपोमविकातहृत् ॥२०॥ —र० कु० पृ० १६४।

८ ईपहिकास्तिनयनं स्थितं स्वात् स्पन्दितामरम् ।

—छा० ६०, परि० ३ का० सं० २३२।

केदार 'कसहास' कहते हैं^१। केदार का 'कसहास' वर्णन तथा विश्वनाथ का 'बिहसित' है। दोनों धावाओं के मत में 'बिहसित' बर्णन होता है जहाँ हंसने में मधुर ध्वनि होती है^२। केदार का 'प्रतिहास' भरत, वर्णनय छिन्न मधुपाल तथा विश्वनाथ प्रादि धावाओं द्वारा बतलाए 'प्रतिहसित' से केदार नाम में मिलता है, अग्न्या सङ्ग में प्रसर है। केदार के 'परिहास' को उपयुक्त सभी धावाओं ने छोड़ दिया है। हास्य का यह भेद केदार का निजी है।

विभिन्न रसों के बर्ण

विश्वनाथ ने शृंगार तथा हास्य से इतर रसों के सङ्ग में स्वविशेष के स्थायी भाव वर्ण धीर देवता का विवरण दिया है। भरत ने सङ्ग में इन बातों का उल्लेख न कर रसों के वर्ण एक देवता का प्रसन्न वर्णन किया है। यद्यपि केदार ने विश्वनाथ के अनुकरण पर अपने सङ्गों में विविध रसों के वर्ण भी लिखे हैं तथापि उनके इस वर्णन का आधार भरत का 'मादयघात्न' ही माना जाता है। विश्वनाथ ने वीररस का वर्ण 'हिम' बतलाया है^३ परन्तु केदार ने वीर रस का वर्ण 'वीर' लिखा है^४। भरत भी वीररस का वर्ण 'वीर' ही मानते हैं^५। भरत के अनुसार शृंगार हास्य कर्म रौद्र वीर भयानक बीमत्स तथा प्रभुसुत रस का वर्ण 'कमल' स्वाम स्नेह, कपोत रस वीर, हृत्पल नील तथा पीत है^६। केदार ने भी भरत का अनुकरण करते हुए कर्म रौद्र वीर भयानक बीमत्स तथा प्रभुसुत रस का वर्ण 'कमल' कपोत वरुण वीर, स्वाम, नील तथा पीत माना है। शृंगार वीर हास्य के समान ही केदार ने सम (प्राप्त) रस के वर्ण का भी उल्लेख नहीं किया है।

१ यह सुनिये कल ध्वनि कछु कोमल विमल विमल ।

केदार तन मन मोहिये बर्णतु कवि कसहास ॥

—र मि० प्र १४, पृ० ८।

२ मधुरस्वर बिहसितम्

—दत्तकर्म ५० १०० तथा ता० ४ परि० १ अ० सं २३२।

३ जहाँ हंसै निरर्थक हँस, प्रकटै मुख मुख बास ।

धार्मे धार्मे बरुण पथ उपर परत प्रतिहास ॥

—र मि० प्र १४, पृ० १२।

४ यह परिजन सब हंसि उठै छवि हस्यति की काम ।

केदार कीनहुँ बुद्धिजन सो परिहास बखान ॥

—र मि० प्र १४ पृ० १३।

५ सतिवर्त्तन परि १ का सं २३०।

६ होहि वीर उत्साहमय वीर वर्ण सुति धन ।

प्रति उदार गम्भीर वहि केदार पाइ प्रमय ॥

—र मि० प्र १४ पृ० १४।

७ गौरी वीररसु विमेष ।

—ना रा० श्लो० ३४, पृ० १५।

८ कर्पूररस ५ १३।

शुद्धार तथा हास्य से इतर रसों का निरूपण :

कदम रस

प्रिय के विप्रियकरण से 'कदम रस' की उत्पत्ति होती है^१ । इस सम्बन्ध में डा० मयोरन मिश्र का मत उल्लेखनीय है । उनका कथन है—“प्रिय के प्रनिष्ठ से कदम रस उत्पन्न होता है यथा—प्रिय के विप्रियकरण से घान कदम रस होत निश्चये ॥ भर्ष हो सद्यते है । प्रिय कोई धनवाही बात करता है यवना प्रिय का प्रनिष्ठ कोई करता है । कुछ भी हो केदम का विचार इस रस में पूजता भिजे हुए नहीं है क्योंकि कदमा का प्रभाव केवल प्रिय ही के प्रनिष्ठ से नहीं होता, अपरिचित के प्रनिष्ठ से भी कदमा प्राप्त हो जाती है^२ ।” भरत के अनुसार द्रष्टव्य के दर्शन यवना विप्रिय वचनों के यवम से कदम रस की उत्पत्ति होती है^३ । भरत का यह तथैव केदम की अपेक्षा अधिक व्यापकता मिले है । 'विप्रिय' शब्द ही भाषाओं के वचनों में मिलता है ।

रौद्र रस

केदम के अनुसार वहाँ क्रोध के कारण विग्रह तथा उग्र शरीर हो जाता है वही रौद्र रस होता है^४ । भरत ने लिखा है कि मुठ में प्रहार, पात विह्वलभेदन, विदारण, संभ्रम प्रादि से रौद्र रस की निष्पत्ति होती है^५ । भरत द्वारा बतसाई यई मुठ की विविध चेष्टाओं का केदम के 'विग्रह' शब्द में ही सम्मर्पित हो जाता है । भरत ने अपने सस्रम में रौद्र के स्वायी भाव का उल्लेख नहीं किया है परन्तु केदम ने रौद्र के स्वायीभाव 'श्लेष' का नाम दिया है । वही पर केदम ने विरचनाय का ही अनुसरण किया है ।

वीर रस

केदम वीर रस को उत्साहयम वीरवर्ण उदार तथा बम्भीर मानते हैं^६ । भरत के अनुसार उत्साह, अम्बवद्याय धविपाद धविस्मय तथा भमोह प्रादि से वीर रस उत्पन्न होता है^७ । उत्साह शब्द को दोनों ही भाषाओं ने अपने-अपने

१ प्रिय के विप्रियकरण से, घान कदम रस होत ।

ऐसे वरन बसानिये, जैसे तमन कपोत ॥

—र० मि० प्र० १४ अं० १५ ।

२ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ७० ।

३ कदमरस, पृ० ३६ ।

४ ह्रीहि रौद्ररस क्रोध में, विग्रह उग्र शरीर ।

यवम वर्ण वर्णत सर्वे, कहि केदम नतिवीर ॥

—र० मि०, प्र० १४ अं० १६ ।

५ काव्यशास्त्र, पृ० १० ।

६ ह्रीहि वीर उत्साहयम वीरवर्ण, युति अक्षय ।

यति उदार बम्भीर कहि, कदम पाह प्रसंग ॥

—र० मि०, प्र० १४, अं० १७ ।

७ काव्यशास्त्र, पृ० १०१ ।

केशव 'कलहास' कहते हैं^१। केशव का कलहास^२ बर्नबय तथा बिस्वनाथ का 'बिहसित' है। दोनों पापायों के मत में 'बिहसित' बर्ही होता है जहाँ हृदय में मधुर प्रवृत्ति होती है^३। केशव का 'अतिहास'^४ भरत बर्नबय छिड़ गमुपाल तथा बिस्वनाथ आदि पापायों द्वारा बरनाए 'अतिहसित' से केशव नाम में मिलता है धर्मना लक्षण में अन्तर है। केशव के परिहास^५ को उद्युक्त सभी पापायों ने छोड़ दिया है। हास्य का यह सेह केशव का निजी है।

बिभिन्न रसों के वर्ण

बिस्वनाथ ने शृंगार तथा हास्य से इतर रसों के लक्षण में रसविशेष के स्थायी भाव वर्ण और वैभवा का विवरण दिया है। भरत ने लक्षण में इन बातों का उल्लेख न कर रसों के बग एव वैभवा का समग्र वर्णन किया है। यद्यपि केशव ने बिस्वनाथ के अनुकरण पर अपने लक्षणों में बिभिन्न रसों के वर्ण भी लिखे हैं, तथापि उनके इस वर्णन का आधार भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही मान पड़ता है। बिस्वनाथ ने बीररस का वर्ण 'हैम' बरनाया है^६ परन्तु केशव ने बीर रस का वर्ण 'पीर' लिखा है^७। भरत भी बीररस का वर्ण 'गीर' ही मानते हैं^८। भरत के अनुसार शृंगार हास्य कथन रौद्र बीर, भवानक बीभत्स तथा अद्भुत रस का वर्ण 'कमल' स्वाम श्वेत कपोत रस, गौर, हृष्ण नील तथा पीठ है^९। केशव ने भी भरत का अनुकरण करते हुए कम्प रौद्र बीर भवानक बीभत्स तथा अद्भुत रस का वर्ण 'कमल' कपोत वरप गौर, स्वाम, नील तथा पीठ माना है। शृंगार और हास्य के समान ही केशव ने सय (शास्त्र) रस के वर्ण का भी उल्लेख नहीं किया है।

१ बहू मुनिये कम प्रवृत्ति कछु, कोमल विमल बिलास ।

केशव उन मय मोहिये बर्नहु कवि कलहास ॥

—र मि प्र १४ अ ८।

२ मधुरस्वरं बिहसितम्

—राकम्प १ १ ८ तथा सा ६ परि ३ का सं १३२।

३ जहाँ हंसै निरलं क छु प्रकटि मुख मुख बास ।

आये आये वरथ पब उपन परत अतिहास ॥

—र मि प्र० १४, अं १२।

४ बहू परिजन सब हंसि उठै तजि बम्पति की काज ।

केशव कौनहु मुखबन सो परिहास बखान ॥

—र मि प्र० १४ अं १३।

५ सविस्तरं परि ३ का सं० १३८।

६ होहि बीर उत्साहमय और वर्ण युति भंग ।

अति उदार बम्पीर कहि, केशव पाह प्रसंग ॥

—र मि० प्र १४ सं० १४।

७ गौरी बीरस्तु विज्ञेय ।

—भा श्य स्तो ४४ पृ ३५।

८ नाट्यशास्त्र १ ३३।

शुद्धार तथा हास्य से इतर रसों का निरूपण :

कथन रस

प्रिय के विप्रियकरण से कथन रस की उत्पत्ति होती है^१ । इस सम्बन्ध में डा० ममीरय मिश्र का मत अस्वेक्षनीय है। उनका कथन है— प्रिय के प्रनिष्ठ से कथन रस उत्पन्न होता है यथा—प्रिय के विप्रियकरण से धाम कथन रस होत जिसके दो भर्त्त हो सकते हैं। प्रिय कोई अनचाही बात करता है अथवा प्रिय का प्रनिष्ठ कोई करता है। कुछ भी हो केसव का विचार इस रस में पुनरा भिये हुए नहीं है क्योंकि कथना का प्रभाव केवल प्रिय ही के प्रनिष्ठ से नहीं होता अपरिचित के प्रनिष्ठ से भी कथना प्राप्त हो जाती है^२ ।^३ भरत के अनुसार दृष्टव्य के दर्शन अथवा विप्रिय वचनों के श्रवण से कथन रस की उत्पत्ति होती है^४ । भरत का यह मतान केसव की अपेक्षा अधिक व्यापकता लिये है। 'विप्रिय' शब्द ही आचार्यों के मतानों में भिन्नता है।

रौद्र रस

केसव के अनुसार वहाँ क्रोध के कारण विग्रह तथा उग्र शरीर हो जाता है वहाँ रौद्र रस होता है^५ । भरत ने लिखा है कि युद्ध में प्रहार बात विकृतशब्देन, विचारण संभ्रम आदि से रौद्र रस की निष्पत्ति होती है^६ । भरत द्वारा बतलाई गई युद्ध की विविध दृष्टियों का केसव के 'विग्रह' शब्द में ही सम्मर्पित हो जाता है। भरत ने अपने सप्तम में रौद्र के स्वाधीभाव का अस्तेज नहीं किया है परन्तु केसव ने रौद्र के स्वाधीभाव 'क्रोध' का नाम दिया है। यहाँ पर केसव ने विरचनाय का ही अनुसरण किया है।

वीर रस

केसव वीर रस की उत्साहमय वीरवर्ण, उदार तथा गम्भीर मानते हैं^७ । भरत के अनुसार उत्साह सम्भवसाम अविगाव अविस्मय तथा अमोह आदि से वीर रस उत्पन्न होता है^८ । 'उत्साह' शब्द की दोनों ही आचार्यों ने अपने अपने

१ प्रिय के विप्रियकरण से धाम कथन रस होत ।

ऐसे भरत बलानिये जैसे तथ्य कपोत ॥

—र मि प्र १४ अं० १५ ।

२ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ७० ।

३ मादुराग्रह, पृ० ६१ ।

४ होहि रौद्ररस कोष में विग्रह उग्र शरीर ।

अथर्व वर्ण वर्णत सर्व कहि केसव गतिवीर ॥

—र मि० प्र १४, अं० २१ ।

५ काव्यशास्त्र, पृ० १०० ।

६ होहि वीर उत्साहमय वीरवर्ण युति अरुण ।

यति उदार गम्भीर कहि, कथन पाह प्रसंग ॥

—र मि०, प्र० १४, अं० २४ ।

७ मादुराग्रह, पृ० १०१ ।

संज्ञा में लिखा है। भरत द्वारा निरूपित क्षेत्रों में केशव के 'अक्षर' तथा 'गम्भीर' शब्दों में ही प्राप्ति हुई। केशव ने उसके भीत नहीं दिए हैं।

भयानक रस

केशव भयानक रस की उत्पत्ति किसी मयावह वस्तु के वर्णन प्रथमा भयान से बताते हैं^१। भरत लिखते हैं कि विह्वल (घोर) ध्वनि करने वाले जीव के वर्णन सदास्य ध्वनि प्रीत श्रुति गृह में जाने एवं गृह प्रीत रूप के ध्वनि करने के फलस्वरूप उत्पन्न भय से भयानक रस की उत्पत्ति होती है^२। भरत का यह मत केशव की अपेक्षा अधिक पूर्ण है।

बीमत्स रस

केशव के अनुसार बीमत्स रस निरामय होता है और उसकी उत्पत्ति तब होती है जब किसी वस्तु के वर्णन प्रथमा भयान से तब मन में उसकी घोर से प्रतीति होती है^३। भरत किसी भीमत्स वस्तु के वर्णन उसकी रस रस शब्द प्रथमा शब्दों से एवं ध्वनि वस्तु से उक्त भयानक वस्तुओं से बीमत्स रस की उत्पत्ति मानते हैं^४। भरत का यह मत केशव की अपेक्षा अधिक निरूपित है।

अद्भुत रस

केशव के मत में अद्भुत रस की उत्पत्ति वही होती है जहाँ किसी वस्तु की देखने प्रथमा सुनने से आश्चर्य होता है^५। भरत प्रतिभयाच्युत शब्दावली शिल्प काय एवं रूप प्राप्ति को अद्भुत रस के विभाजन-रूप बताते हैं^६। भरत का यह मत केशव से अधिक व्यापक प्रत्यक्ष है परन्तु मात्र केशव के समान ही है।

१. होहि भयानक रस सदा केशव स्थाप्य शरीर ।
जाको देखत सुनत ही उपनि परे भय भीर ॥

—र मि. म. १४ अ. १४।

२. नाट्यशास्त्र पृ. ११।

३. निरा भय बीमत्स रस नील धरज वपु तापु ।
केशव देखत सुनत ही तन मन होइ उषामु ॥

—र मि. म. १४ अ. १५।

४. नाट्यशास्त्र पृ. ११।

५. होहि अच्युत देखि सुनि सो अद्भुत रस जान ।
केशवदास विभास निधि पीत वर्ण वपु मान ॥

—र मि. पृ. १४, अ. १६।

६. नाट्यशास्त्र पृ. ११।

मम (साम्त) रस

कैलाश न 'धमरस' वहाँ माना है जहाँ मन सब धोर से जवासीन होकर भबवा हुटकर एक ही स्थान पर टिक जाता है^१ ।

भरत धान्य रस का लक्षण देते हुए लिखते हैं कि बुद्धीश्रिय धीर कमैश्रिय के सम्मक निरोध के द्वारा व्यथासमस्मिन् एवं सब बीबों के मुक्त धीर हित का चिन्तन करने वाली, सब प्राणियों पर समदृष्टि रखने वाली तथा जहाँ न मुक्त हो न दुष्ट हो, न डेय हो धीर न मत्सर हो ऐसी स्थिति में धान्यरस होता है^२ । भरत का यह लक्षण कैलाश की अपेक्षा बहुत स्पष्ट एवं व्यापक है ।

वृत्ति-वर्णन

'रसिकमित्रा' के पत्रहवें प्रकाश में वृत्तियों का वर्णन किया गया है । कैलाश ने वृत्तियों के चार प्रकार, कौशिकी, भारती, भारभटी तथा सात्विकी बतसाकर उनके लक्षण तो दे दाने हैं^३ किन्तु 'वृत्ति' का सामान्य लक्षण नहीं दिया है । कैलाश ने इस बात का भी ज़रूरत नहीं किया कि जहाँकि काव्य को ही वृत्तियों में बाँटा है नाटक को नहीं^४ । कैलाश के विचार से 'कौशिकी' वृत्ति वही होती है जहाँ कल्प हास्य भबवा श्रृंगार का वर्णन हो सरल भयर हो तथा भाव सुन्दर हो^५ । जहाँ ध्वंसुत हास्य भबवा बीर रस का निष्पन्न हो एवं धुम धर्ष का चोत्पन्न हो वहाँ 'भारती' वृत्ति होती है^६ । जहाँ रीर भवानक तथा बीमल रस का वर्णन हो एवं पद-पद में समकालकार हो वहाँ 'भारभटी' होती है^७ । 'सात्विकी' वृत्ति में ध्वंसुत बीर, श्रृंगार धीर

१ सब से होइ उदास मन सब एक ही ठीर ।

ताही सी समरस कहै कैलाश कविधिरजीर ॥

—१० दि०, पृ १५ अं १५ ।

२ सांस्कृत्य पृ १०४ ।

३ प्रथम कौशिकी भारती, भारभटी त्रिभि निति ।

कहि कैलाश सुन सात्विकी नतुर नतुर विधि निति ॥

—१० दि०, पृ १५, अं १ ।

४ कौशिकी वृत्ति कविता की, कहि कैलाश विधि निति ।

—१० दि०, पृ १५ अं ४२ ।

५ कहिये कैलाशास कहै कल्या हास श्रृंगार ।

सरल धर्ष धुम भाव जहाँ सी कौशिकी विचार ।

—१ दि०, पृ १५, अं १ ।

६ भरने जामें बीर रस धर ध्वंसुत रस हास ।

कहि कैलाश धुम धर्ष जहाँ सी भारती प्रकाश ॥

—१० दि०, पृ १५, अं ४ ।

७ कैलाश जामें नर रस, मय बीमलक धाम ।

भारभटी भारभम यह पद पद समक बसान ॥

—१ दि०, पृ १५, अं १ ।

सम (छान्त) रस का वर्णन होता है एवं सुनते ही धर्म समझ में आ जाता है^१ ।

केदार ने उक्त कृतियों में प्रायः यही उल्लेख किया है कि किम-किम रसों के वर्णन में कौन-कौन सी वृत्ति प्रयुक्त होती है। वस्तुतः उनके द्वारा दिये कृतियों के सक्षम कृतियों के वर्णन नहीं कहे जा सकते। भरत धनञ्जय भोज, मम्मट शिङ्गुभूषण तथा विश्वनाथ धारि संस्कृत के सभी भाषाओं में कृतियों का वर्णन किया है। भोज ने अपने 'शृंगार प्रकाश' के २७वें प्रकाश तथा सरस्वतीभुजकण्ठमरण के पाँचवें परिच्छेद में कृतियों का वर्णन तो किया है परन्तु यह नहीं बतलाया कि किम-किम रसों के वर्णन में कौन कौन सी वृत्ति का प्रयोग होता है। भरत धनञ्जय शिङ्गुभूषण तथा विश्वनाथ ने इसका निर्देश किया है। धनञ्जय विश्वनाथ तथा शिङ्गुभूषण के अनुसार शृंगार रस के लिए 'कौशिकी' वृत्ति और रस के लिए 'सात्वती' वृत्ति रौद्र तथा भीमस्त रसों के लिए 'भारमटी' वृत्ति एवं सभी रसों के वर्णन के लिए 'भारती' वृत्ति उपयुक्त है^२। मम्मट द्वारा उल्लिखित तीन प्रकार की कृतियाँ उपनामरिका पदपा एवं कोमला केदार से मिली हैं^३। भरत के अनुसार शृंगार और हास्य के लिए 'कौशिकी' वृत्ति रौद्र और घोर प्रवृत्त रसों के लिए 'सात्वती' वृत्ति भयानक, भीमस्त और रौद्र रसों के लिए भारमटी वृत्ति एवं कथ और प्रवृत्त रसों के लिए 'भारती' वृत्ति प्रयुक्त होती है^४। केदार ने (मम्मट को छोड़कर) संस्कृत के उपर्युक्त भरताकि सभी भाषाओं की 'कौशिकी' तथा 'सात्वती' के स्थान पर क्रमशः 'कौशिकी' तथा 'सात्विकी' लिखा है। केदार के इस कृति-वर्णन का आधारभूत ग्रन्थ भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही मान पड़ता है। केदार ने 'कौशिकी' वृत्ति में कथ सात्वती में शृङ्गार और सम रस तथा 'भारती' में हास्य और घोर रस का वर्णन करने का उल्लेख भरत की अपेक्षा अधिक किया है, वीथ वर्णन दोनों भाषाओं का मिसला है। भरत ने 'भारती' वृत्ति में कथ 'सात्वती' में रौद्र का वर्णन केदार से अधिक लिखा है।

धनरस-वर्णन

केदार ने 'रसिकप्रिया' में सोमहर्षे धनरस अन्तिम प्रकाश में धनरस (रस-वीथ) का वर्णन किया है। केदार ने धनरस के पाँच प्रकार बतलाए हैं—प्रत्यनोक औरस

१ प्रवृत्त और शृंगार रस धनरस बरनि समान।

सुनतहि समुद्र भाव बिहि, सो सात्विकी सुजान ॥

—रं मि० प्र २६, अं ८।

२ दशक ५ व ३१ सखिप्रवृत्त परि ३, अ १० ४१४ तथा ॥ सुभाकर, ५ ८०।

३ अन्त्यप्रकाश, अन्त्य ६ ५ २ २।

४ शृंगारे चैव हास्ये च वृत्ति स्यात् कौशिकीति सा।

सात्वती नाम सा वेया वीररीद्रावृत्तमया ॥६२॥

भयानके च भीमस्ते रौद्रे भारमटी भवेत्।

भारती चापि विज्ञेया कथमावृत्तसंभया ॥६३॥

विरस दुःखवान तथा पात्रादुष्ट^१ । केशव के विचार से 'प्रत्यनीक' वही होता है जहाँ विरोधी रसों, यथा भृङ्गार वीरस रीत-कवच आदि का साथ-साथ वर्चन हो^२ । केशव का यह दोष केशवमित्र द्वारा उल्लिखित 'प्रकान्तरसवैरित्' ही है^३ । 'वीरस' वही होता है जहाँ नायक-नायिका मुँह से (शौलिक रूप में) तो मिले काम करें परन्तु हृदय में कपट भरा रहे^४ । 'विरस' वही होता है जहाँ शोक में मोय का वर्चन होता हो^५ । केशवमित्र ने इस दोष को 'धनोचिती' माना है । ये इसभी संस्थिति घनेक स्थलों पर बतलाते हैं । द्विज-पार्ष्णी यज्जना माता-पिता के केलि-वर्चन, स्तनादि के प्रतिश्रुति-वर्चन एवं नायिका के मानादि यज्जना वरनप्रहारादि के कारण नायक के प्रत्यक्ष शोक के वर्चन में यह दोष ही छुपता है^६ । केशवमित्र का यह मतलब केशव की प्रवेसा शक्तिक व्यापक है । 'दुःखवान' वही होता है जहाँ एक की धन्युत्सता तथा प्रत्य की प्रतिकुलता का वर्चन हो^७ । जहाँ जिसको जैसा न समझे उसको वैसा कहने

१ प्रत्यनीक वीरस विरस केशव दुःखवान ।

पात्रादुष्ट कवित बहु करहि न मुकवि बखान ॥

—२० मि० प्र० १३, अ० १ ।

२ जहाँ भृङ्गार वीरस मय विरसहि बरने कोह ।

रीत सु कवचा निमत ही, प्रत्यनीक रस होह ॥

—२० मि० प्र० १३, अ० २ ।

३ प्रकान्तरसवैरित् तैवां व्यक्तिविपर्यय ।

धनोचिती च वर्चन रसे दोषा स्मुरीवृक्षा ॥

—मल्लभारतेकर, मरिचि २१, श्लो० २ ।

४ जहाँ सम्पत्ती मुँह मिली, तथा रहे यह रीति ।

कपट रहे अपनान मन, वीरस रस की प्रीति ॥

—२० मि० प्र० १३, अ० ४ ।

५ जहाँ शोक बहि मोय को बरनि कहै कवि कोह ।

केशववास हुताव छौं तहूँ ही वीरस होह ॥

—२० मि० प्र० १३, अ० ५ ।

६ यज्जानीलंकरादीनां पिबोर्वा केलिवर्चनम् ।

धन्युक्तिर्वा नम-साम्यं स्तनादी स्यादधीचिती ॥

नायिकाया मानादिना वरनप्रहारादिना वा ।

नायकस्यात्यन्तिकोपवर्चनम् ॥

—मल्लभारतेकर, मरिचि २१, २० व० और २१ ।

७ एक होह धन्युत्स जहाँ धूगो है प्रतिफल ।

केशव दुःखवान रस शोभित तहाँ समूल ॥

—२० मि० प्र० १३, अ० ५ ।

पर विचारहीन बचन में 'पाशापुष्ट' दोष की संस्थिति मानी गई है^१। 'असंकारसेखर' में इसे 'अप्यन्तिविपर्यय'^२ दोष माना गया है। केदार के 'भीरस' का भी अन्तर्भाव इसी दोष में हो जाता है। इस प्रकार केदार के 'अनुरस-वर्जन' का आधार 'असंकारसेखर' प्रतीत होता है। केदार के रस-दोष वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक नहीं जान पड़ते।

मुष्परस

केदार के अनुसार मुख्य रस चार हैं बीभत्स, शृङ्गार, भीर तथा रीत्र। सात रस को छोड़कर दोष रसों की उत्पत्ति इन्हीं से होती है। बीभत्स से भय, शृङ्गार से हास्य, भीर से अद्भुत और रीत्र से कम्पा^३। यह धारणा मौलिक न होकर भरत^४ का अनुवाद-भाव ही है।

मौलिकता

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केदार ने अपने रस एवं नायिका-भेद के वर्जन का आधार भरत, वनंजय, भोज शिङ्गुपुपात्र, विश्वनाथ मानुस्य आदि संस्कृत के आचार्यों को बनाया है। नायिका-भेद में निरूपित मध्या, प्रोक्ता आदि नायिकाओं के कुछ उपभेदों का तो विश्वनाथ से पूर्व साम्य है और कुछ के नाम भीति कथा ज्ञाने की दृष्टि से बचस बिये गए हैं। नायक-नायिकाओं एवं रस के विविध भवनों के सक्षम प्रस्तुत करते हुए भी केदार ने मौलिकता से काम लिया है। इतिव नायक मध्या भीराभीरा नायिका प्रोक्ता मभीरा नायिका परकीया नायिका मध्यमा तथा मध्यमा नायिका स्वकीया परकीया तथा सामान्या के समिधार, मात्र अमिधारी मात्र हैला हाव विप्रसम्भ शृंगार समिधारा प्रसाप तथा उग्माव हास्य रस आदि के सक्षम केदार के निजी हैं और संस्कृत के किसी भी आचार्य से साम्य नहीं रखते। इनमें भी परकीया नायिका का लक्षण केदार की विशाल प्रतिभा का परिचायक है। केदार के आदि के अनुसार पद्मिनी विविधी संक्षिप्ती और हस्तिनी तथा प्रमत्ता नायिकाओं के वर्जन का आधार कामयास्य-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। संस्कृत के साहित्याचार्यों में से किसी ने भी आदि के अनुसार नायिकाओं का वर्गीकरण प्रथम भयम्ना नायिकाओं का विवरण नहीं दिया है। केदार द्वारा वर्णित नायक-नायिका के प्रथम-मिलन-स्थानों

१. जैहो कहीं न भूमिजे लैसो करिये गुष्ट।

दिनु विचार जो नरभिये सो रस पातरपुष्ट ॥

—र० वि०, म १६, अं १।

२. मद्भ्यक्तो नवर्णनमनुषितं तत्र तद्वर्णनम्।

—कर्मभरतेकर, मटीवि २१, पृ २०।

३. भय उपजै बीभत्स से भय शृंगार है हास।

केदार अद्भुत भीर से कम्पा कोप प्रकाश ॥

—र वि म० १६, अं १४।

४. शृंगारादि मयेहास्यो रीत्राण्य कवनी रस।

भीराभीरापुस्तोत्पत्तिर्भीरव्याण्य भयानकः ॥४०॥

—पृ २४, पृ २४।

को भी उपर्युक्त संस्कृत के साहित्याचार्यों ने छोड़ दिया है। इसी प्रकार १६ मञ्जारों तथा सप्तियों के कर्मों के धस्तारों दिया देना, बिनय करना, मनाना तथा मिमाना आदि बार कार्यों का वर्णन भी केशव की मौलिक उत्प्राप्ति है। 'बोब' हाथ 'भापि' स्वामीभाव तथा हास्य रस के भेद 'परिहास' का भी उल्लेख उपर्युक्त संस्कृत साहित्याचार्यों में से किसी ने नहीं किया है।

यद्यपि रस तथा भाविका-भेद के निरूपण में केशव को धर्मकार निरूपण की धमेजा अधिक सफलता प्राप्त हुई है, किन्तु फिर भी उन्हें पूर्ण सफल नहीं कहा जा सकता। इसका प्रथम कारण तो यह है कि केशव के मञ्जर्यों में से कुछ मध्यम ऐसे हैं जिनका भाव स्पष्ट नहीं है, यथा धनुभाव, हाव विभाव तथा कुट्टमित हाव सम स्तरसकोविता प्रोढ़ा नायिका आदि के लक्षण। केशव ने 'विभाव' का जो लक्षण दिया है वह भी प्रास्थवीय नहीं है। दूसरे, उनके दो-एक लक्षण अपूर्ण भी हैं, जैसे केशव का कल्याण-विरह का लक्षण^१। इसके अतिरिक्त सबसे मुख्य दोष जो उनके रसविवेचन में दिखाई पड़ता है वह यह है कि दृष्ट-दृष्ट कर विभाव आदि की योजना से केशव के विभिन्न रसों के उदाहरणों में रसविशेष का यथार्थ स्वल्प प्रामाण्य नहीं हो सका है। उदाहरणार्थ उनके हास्य रस के उदाहरणों में हास्य की भावना जाग्रत नहीं होती है। एक छन्द नीचे दिया जाता है—

भेद की बात तुने से कहूँ वह भासिक ते पुसुफानि लबी है।
 कंठति है तिन में हठि के बिन की तुम सों भति प्रेम पनी है।
 जानति हौँ नलराज बरंती की ब्रुत कवा रस रंग रंसी है।
 पूजनी साथ सबै सुख की बहुभाय की केशव क्योति जपी है^२ ॥

यह हास्य रस का उदाहरण न होकर मञ्जार रस का ही उदाहरण बन गया है। इसी प्रकार उनका भीमत्स रस का उदाहरण^३ न तो भीमत्स रस का उदाहरण बन पाया है और न मृदार का ही।

१ छूटि जात केशव जहाँ सुख के सबै उपमः।

करना रस उपजत तहाँ, मानुन ते अकुसाम ॥

—८ मि०, म० ११ अ० १।

२ र मि म १४ अ० १।

३ मञ्जा ही को भास छोड़ि जागनु है मीठो मुख
 पियत पिता को मोहूँ बैकु न मचाति है।
 भयन के कंठनि को काटत न कसकति
 तेरो हियी कँसो है चू कहत विहाति है ॥
 जब जब होति जेट मेरी मटू तब तब
 ऐसी सोई दिन कठि जाति न मचाति है।
 प्रतिनी पिशाचिनी मिशाचरी की जाई है तु,
 केपोराह की सों कहु तेरी कीन जाति है ॥

—१० मि म १४ अ० ११।

(इ) केसव के काव्य-सम्बन्धी विचार

केसव ने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' के प्रतिरिक्त अपने काव्य ग्रन्थों में भी यन्-तन् इतना कुछ कह दिया है कि उसके आधार पर उनके काव्य-सम्बन्धी विचारों को सही भाँति जाना जा सकता है। केसव 'रामचन्द्रिका' तथा 'बीरविहङ्गेन भरित' में लिखते हैं कि कोमल सख्यों से युक्त सुन्दर छन्द में रचित धर्षकारमय तथा मन को मोहित करने वाली रचना काव्य कहलाती है^१। मोहनचित्त शब्द इस बात का प्रतीक है कि केसव काव्य में रस के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। इसका और भी स्पष्ट प्रमाणों में समर्थन उन्हीं के अपने कवन से हो जाता है। वे 'रसिकप्रिया' में लिखते हैं कि रसास बाणी के बिना कवि वृष्टि विहीन विद्यास मेरों के सदृश सोमा नहीं पाता अतः उस सोम-समझकर अपनी रचि के अनुसार सरस काव्य की रचना करनी चाहिए^२। साथ ही कवि को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि काव्य सर्वथा बोध से युक्त हो^३। केसव ने काव्य में धर्षकारक पक्ष का समर्थन 'कविप्रिया' में भी किया है^४।

इस प्रकार केसव की दृष्टि में यह रचना जो बोध रहित कोमल सख्यों से युक्त सुन्दर वृत्त में रचित और रसात्मक हो तथा जिसमें धर्षकार भी हो काव्य कहलाती है।

- १ कोमल सख्यनिबन्ध सुवृत्त । धलक कारमय मोहनचित्त ।
काव्य सुपद्धति सोमा यहै । इनके बाहुपाश कवि कहै ॥

—रा. प्र. म. २१ अ. २२।

- कोमल सख्यनिबन्ध सुवृत्त । धर्षकारमय मोहनचित्त ॥
काव्य पद्धतिहि सोमा यहै । तिन से बाहु कोस कवि कहै ॥

—बी० रे. च. ५ १३४।

- २ ज्यों दिन डीठ न शोमिये लोचन सोल विद्यास ।
त्यों ही केसव सकल कवि दिन बाणी न रसास ॥
पाते रचि सुचि सोचि पचि कीर्त्त सरस कवित्त ।
केसव ब्यास मुजान को सुगठ होइ बस चित्त ॥

—र. प्रि. प्र. १ अ. १३-१४।

- ३ राजस रंज न बोधयुत कविता वनिता मित्र ॥
बुद्धक हाथा परत ज्यों रंभा बट अपवित्र ॥

—क. प्रि. ॥ १ अ. २५।

- ४ बरहि मुजाति सुभसाणी सुवरण सरस सुवृत्त ।
धुपण बिनु न विराजई, कविता वनिता मित्र ॥

—क. प्रि. प्र. ४ अ. १।

केशव तथा हिन्दी के परवर्ती आचार्य

प्रमुख आचार्य-कवि

हम पहले कह आये हैं कि हिन्दी साहित्य में रीतिग्रन्थों की रचना का सूत्रपात केशव के पुत्र हो चुका था परन्तु उनमें काव्य के विभिन्न धर्मों का सांगोपांग विवेचन नहीं हुआ था। काव्य के प्रायः सभी धर्मों का सम्यक् और शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण कर हिन्दी में रीति प्रवाह के लिए निर्वाच्य मार्ग खोजने का श्रेय केशव को ही है। इसके उपरान्त इनके द्वारा प्रवर्धित मार्ग का अनुसरण करने वाले अनेक आचार्य कवि हुए जिन्होंने काव्य के प्रायः सभी धर्मों का विस्तृत विवेचन किया। ऐसे आचार्यों में चिन्तामणि यदिराम कुलपति मिश्र देव दास तथा पद्माकर प्रमुख हैं। इस अध्याय में हम उपर्युक्त आचार्यों से आचार्य केशवदास की तुलना करने का प्रयास करेंगे।

तुलनात्मक अध्ययन

(१) अस्कार विवेचन के क्षेत्र में

चिन्तामणि तथा केशव

डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार चिन्तामणि बिपाठी की पचना केशव के दाद के सब से पहले आचार्यों में ही नहीं, सब से पहले बड़े आचार्यों में है^१। इनका जन्म काल संवत् १६६९ के लगभग और कविताकाल संवत् १७०० के आसपास माना जाता है^२। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इनके काव्यविवेक 'कविकुलकल्पतरु' 'काव्यप्रकाश' 'विंगत' 'रामायण' तथा 'रसमंजरी' नामक रचनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से चिन्तामणि का सब से प्रमुख और प्रशंसनीय ग्रन्थ 'कविकुलकल्पतरु' है। इसका रचनाकाल संवत् १७०७ है। इस ग्रन्थपूर्व ग्रन्थ में उन्होंने काव्य-शास्त्र के पुत्र अस्कार शेष शब्दसहित रस एवं भाविका श्रेय आदि प्रमुख धर्मों का विवेचन किया है। यहाँ इन्हीं के आधार पर आचार्य केशव से चिन्तामणि का मितान किया गया है।

'कविकुलकल्पतरु' ग्रन्थ में चिन्तामणि ने शब्द और अर्थ दो प्रकार की वृत्तियों के कारण शब्द और अर्थ दो प्रकार के अस्कारों का उल्लेख किया है^३। केशव ने इस

१ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृ० ७३।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६६।

३ शब्द अर्थवृत्ति अब ही अस्कार हैं जति।

प्रकार का कोई विभावन नहीं किया है। दूसरे तथा तीसरे अध्याय में नम्र विनयार्थकारों और प्रशंसक कारों का चिन्तामणि में विवरण दिया है, उनके नाम निम्नलिखित हैं—

अभ्यासकार

१ बन्धोक्ति २ अनुप्रास ३ जाटानुप्रास ४ यमक ५ श्लेष
६ पुनस्तनयामास, तथा ७ विनय^१।

अर्थासकार

१ उपमा २ मासोपमा ३ रत्नोपमा ४ धनगवय ५ उपमेयोपमान,
६ छन्दोमा ७ स्मरण ८ कपक ९ परिणाम १० सन्देह ११ भ्रातृत्वानु
१२ अपङ्गुति १३ छन्दोका १४ अतिशयोक्ति, १५ समाशोक्ति, १६ स्वमा
योक्ति १७ व्याजोक्ति १८ सङ्गोक्ति १९ विनोक्ति, २० सामान्य २१ तद्
गुण २२ अतद्गुण २३ विरोध २४ विशेष २५ अधिक २६ विभावना
२७ विशेषोक्ति २८ अर्थवति २९ विविध ३० अण्योन्य ३१ विषय ३२ सम,
३३ तुल्योपमा, ३४ शीपक ३५ माताशीपक ३६ प्रतिबस्तुपमा, ३७ वृष्टात
३८ निवर्तना ३९ व्यतिरेक ४० अर्थशेष ४१ परिकर ४२ आक्षेप
४३ व्याजस्तुति ४४ अर्थस्तुतप्रशंसा ४५ पर्यायोक्ति ४६ प्रतीप ४७ अनुमान
४८ काव्यसिद्धि ४९ अर्थान्तरम्यास ५० यथासंख्य ५१ अर्थवति ५२ परि
संख्या ५३ समुच्चय ५४ समाधि ५५ आधिक ५६ व्याघात ५७ पर्याय
५८ कारणमात्रा ५९ एकावली, ६० परिवृत्त ६१ प्रत्यनीक ६२ सूक्ष्म ६३ छार
६४ उदार (उदात्त)^२ ६५ संक्षिप्त तथा ६६ संकर।

‘कविकुलकल्पतरु’ में वर्णित अर्थकारों में से बन्धोक्ति यमक श्लेष चित्र उपमा मासोपमा छन्दोमा कपक अपङ्गुति स्वमायोक्ति सङ्गोक्ति विरोध विशेष विभावना विशेषोक्ति शीपक माताशीपक निवर्तना व्यतिरेक आक्षेप व्याजस्तुति पर्यायोक्ति अर्थान्तरम्यास परिवृत्त तथा सूक्ष्म केचन की ‘कविप्रिया’ में भी मिलते हैं। चिन्तामणि द्वारा बतलाए हुए शीप अर्थकारों का केचन ने कोई उल्लेख नहीं किया है। चन्द्रार्थकारों के अन्तर्गत चिन्तामणि ने जो सात अर्थकार बिनाए हैं, उनमें से केचन ने बन्धोक्ति यमक, श्लेष और चित्र—इन चार अर्थकारों का ही वर्णन किया है। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित ‘बन्धोक्ति’ के दो भेद काल और श्लेष बन्धोक्ति केचन को मान्य नहीं हैं। सामान्य ज्ञान का मान दोनों का समभाग एक ही है। केचन ने इसे

१ सात अर्थ अर्थकार ये तिनमें अर्थ जो होइ ॥

—क कु० पृ० १०१ वृ० १।

२ कहीं उहाँ सम्पत्ति कबल सो उदार मन धामि ।

जो उपमसग बहिन को बही बहू पहिचानि ॥

—क कु० पृ० १ १४ वृ० १००।

‘वसित’ का भेद माना है। केशव के विभिन्न भेदों तथा रूपों का वर्णन करते हुए केशव ने इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, जो बिन्तामणि ने नहीं किया है। केशव द्वारा वसित ‘यमक’ के प्रादिपद, द्वितीयपद प्रादि तथा सम्मयेत और असम्मयेत प्रादि भदों को बिन्तामणि ने छोड़ दिया है। केशव ने ‘यमक’ का भी बहुत विस्तार से वर्णन किया है। अनुप्रास को केशव प्रसंकार मानते ही नहीं हैं। ‘पुनश्चतुर्थाभास’ को उन्होंने छोड़ दिया है। ‘विनासंकार’ का भी केशव ने बड़ा ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया है परन्तु बिन्तामणि ने केवल लक्ष्यबन्ध कपाटबन्ध कमलबन्ध, प्रसंगति गो मूषिका बन्ध कामकैतू तथा चर्चतोमत्र का उल्लेख करते हुए लिखा है कि विनासंकार प्रत्येक प्रकार के होते हैं। इनके केवल उदाहरण ही दिये गये हैं सङ्ग नहीं। केशव द्वारा वसित निरोध रचना प्रमाणिक रचना नियमाक्षर रचना, अन्तर्भाषिका महि र्भाषिका गूढोत्तर प्रादि को बिन्तामणि ने छोड़ दिया है। ‘कविप्रिया’ और ‘कविकुल कल्पतरु’ नामक ग्रन्थों में विन प्रसंकारों का समान-रूप से निरूपण है उनमें दोनों प्राचायों द्वारा दिए कुछ प्रसंकारों के लक्षण का मात्र समान है और कुछ में अन्तर परिलक्षित होता है। बिन्तामणि तथा केशव दोनों प्राचायों के ‘उपमा’ के लक्षण का मात्र एक ही है। बिन्तामणि ने ‘उपमा’ के पहले दो भेद शीर्षी और प्राची बताकर फिर दोनों के पूर्वोपमा और सुप्तोपमा दो-दो भेद किए हैं (क० कु० तब पृ० २२ छं० २, १)। केशव ने ‘उपमा’ के २२ भेदों का उल्लेख किया है। ‘मातोपमा’ का दोनों ही प्राचायों ने वर्णन किया है। केशव ने उसे ‘उपमा’ का भेद माना है और बिन्तामणि ने उसे पृथक् प्रसंकार माना है। दोनों के लक्षण भिन्न हैं। केशव के अनुसार ‘मातोपमा’ का लक्षण है—

जो जो उपमा बीजिये, सो सो पुनि उपमेय ।

सो कहिये मातोपमा केशव कवि कुल गेय ॥

(क० छि०, प्र० १४ छं० १३)

बिन्तामणि की ‘मातोपमा’ का लक्षण है—

किताय कहिय उपमेय जहँ सो उपमान धनिक ।

सो मातोपम जानिये मिनपरम के एक ॥

(क० कु० तब, पृ० २३, छं० १४)

बिन्तामणि द्वारा उल्लिखित ‘मातोपमा’ के दो भदों, भिन्नधर्मा तथा समानधर्मा को भी केशव ने छोड़ दिया है। उल्लेख्य विभावना स्वभावोक्ति, विशेषोक्ति व्यतिरेक धारोप व्यावस्तुति अपह्लाति सूक्ष्म तथा रूपक प्रादि प्रसंकारों के दोनों प्राचायों के सामान्य लक्षणों का मात्र एक है। बिन्तामणि ने ‘उत्प्रेक्षा’ के दो भेदों आध्या और प्रतीयमाना के अलग अलग चार-चार प्रकार (गुणयत आतिवत क्रियायत तथा द्रव्य यत) तथा वस्तु (उत्पत्तिविषया और अनुवर्तविषया) हेतु और फल (सिद्धविषया और

१ विनासंकरुत बहुत विविध वरमत्त शुक्रवि प्रमादि ।

—क० कु० तब पृ० २, छं० १३ ।

प्रसिद्धविषय) यदि भेद बतसाए हैं। केदार ने इनका कोई उल्लेख नहीं किया है। चिन्तामणि ने 'विभावना' का कोई जेब नहीं दिया है। केदार ने इसके दो भेद बतसाए हैं। चिन्तामणि की 'विभावना' का सामान्य सखन केदार की प्रथम विभावना से मिलता है, द्वितीय से नहीं। दोनों भाषाओं के 'स्वभावोक्ति' धर्मकार के सधर्मों में साम्य है। केदार की स्वभावोक्ति का सखन है—

जाको जैसो रूप मुख कहिये ताही धाम ।

तसों जानि स्वभाव सब बहि परलत करिराव ॥

(क० छं० प्र० २, सं० ८)

और चिन्तामणि उसका सधर्म यों देते हैं—

जाको रूप स्वभाव धर्म किया खु जैसी होइ ।

ताको तैसोई कर्मन सु स्वभावोक्ति कहि कोइ ॥

(क० कु० तट, पु० १३, सं० १२२)

केदार ने विशेषोक्ति को 'उक्ति' का भेद माना है परन्तु चिन्तामणि ने इसे पूर्व ही धर्मकार समझा है। केदार द्वारा बतसाए गए 'व्यतिरेक' के सङ्ग और युक्ति 'व्यतिरेक' नामक भेदों को चिन्तामणि ने छोड़ दिया है। केदार ने भाषण का वर्णन करते हुए 'प्रतिषेध' भावी भूत और वर्तमान तीनों ही कालों में माना है, परन्तु चिन्तामणि ने विवक्षित धर्म का 'निषेध' वक्ष्यमाण भावी तथा उपलब्ध विषय (भूत) में ही माना है। केदार द्वारा वर्णित 'आशेष' के प्रथम तीन प्रकारों का चिन्तामणि ने कोई विवरण नहीं दिया है। चिन्तामणि की 'व्यावस्तुति' में केदार के 'व्यावस्तुति' और 'निन्दास्तुति' दोनों ही धर्मकारों का अन्तर्भाव हो जाता है। चिन्तामणि तथा केदार दोनों ने ही 'व्यस्तुति' के भेद नहीं दिये हैं। चिन्तामणि ने 'सूक्ष्म' का निम्नलिखित सखन दिया है—

होइ खु कोनो धर्म तें सुख्य धर्म प्रकास ।

सूक्ष्म नाम प्रसिद्ध यह धर्मकार सुख बात ॥

(क० कु० तट, पु० ६३, सं० १०३)

केदार का 'सूक्ष्म' का सखन अधिक पूर्ण है। देखिए—

कोनहु भाव प्रभाव ते, जानै विष की बात ।

इति ते धाकार तें कहि सूक्ष्म धर्मदात ॥

(क० छं० प्र० ११, सं० ४६)

चिन्तामणि का विरोध "धर्मकार केदार के 'विरोधाभास' से मिलता है किन्तु केदार

१. स्तुति निन्दा मिथि करै धस्तुति निम्बा होइ ।

चिन्तामणि कवि कहत है व्यावस्तुति खोइ ॥

—क० कु० तट पु० २९, सं० २१८ ।

२. सो विरोध अधिक्य में वह विरोध अधिकान ।

सु ती जाति भुन किया धर्म प्रभाव मार्ग सजान ॥

—क० कु० तट पु० ४६, सं० २१० ।

ने जाति शुभ श्रेष्ठ और किया धादि के विरोध का अपने सङ्ग में कोई उल्लेख नहीं किया है। दोनों प्राचार्यों द्वारा दिए 'रूपक' के सामान्य सङ्ग का भाव एक ही है। केदार के 'रूपक' का सङ्ग है—

जपमा ही के रूप सों निस्थो बरनिधे रूप।

साही सों सब कहत है, केदार रूपक रूप ॥

(क० प्रि० प्र० १६, पं० १२)

चिन्तामणि ने 'रूपक' का सङ्ग इस प्रकार दिया है—

जहाँ बिबई सब विषय को बरन्यो होइ प्रमेद।

धर्मकार रूपक तहाँ समझो सुजन धमेद ॥

(क० कु० तद० पु० १२ पं० ७७)

चिन्तामणि ने 'रूपक' के सामान्य (सर्ववस्तुविषयक एकदेशविधर्ती और परम्परित) और निरवयव (केवल और भासात्मक) धादि शेषों का उल्लेख किया है। केदार ने मधुसूत विषय और रूपक-रूपक का।

सहोक्ति विरोध विशेष वीचक भासावीचक निदर्शना पर्यायोक्ति धर्मस्तर न्यास तथा परिवृत्त धादि धर्मकारों के दोनों प्राचार्यों के सङ्ग मिले हैं। कुछ बराबरम यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

सहोक्ति का सङ्ग

हानि बृद्धि शुभ अशुभ कसु कहिये गूढ़ प्रकास।

होय सहोक्ति सु साध ही बरखत केदारवास ॥

(केदार—क० प्रि० प्र० १२ पं० २०)

संन धर्म के धर्म बल है वाचक पर एक।

तहाँ सहोक्ति होति है यों कवि करत विवेक ॥

(चिन्तामणि—क० कु० तद० पं० १२६)

धर्मस्तरन्यास का सङ्ग

धीर धानिये धर्म जहाँ धीरे वस्तु बजानि।

धर्मस्तर को न्यास यह बार प्रकार सुजान ॥

(केदार—क० प्रि० प्र० १९, पं० ६९)

करत बरखपर भी मदन को सामान्य विरोध।

तो धर्मस्तरन्यास कहि लखि पंडितयन लेख ॥

(चिन्तामणि—क० कु० तद० पं० २४६)

परिवृत्त का सकारण

बहु करत वस्तु और ही उपनि भरति कसु और ।
ताछो परिवृत्त आवियो, केसर कवि सिरमौर ॥

(केसर—क० प्रि, प्र० १३, छ० १६)

बहु समाप्त सम अर्थ को बरसो बरस्यो होइ ।
चिन्तामणि परवृत्त बहु बरसत है कवि सोइ ॥

(चिन्तामणि—क० कु० तब, छ० २६८)

निर्दर्शना का लक्षण

कौनहु एक प्रकार से सत अथ अस्त समान ।
करिये प्रयत्न, निर्दर्शना समुन्नत सकल सुखान ॥

(केसर—क० प्रि० प्र० ११, छ० ४६)

अनहोरी जब वस्तु को कसु सम्बन्ध नु होइ ।
उपमा परकल्पक इत निर्दर्शना कहि सोइ ॥

(चिन्तामणि—क० कु० तब, छ० १६८)

‘दीपक’ के केसर ने दो भेदों मजिदीपक और मासा दीपक का ही वर्णन किया है। साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि ‘दीपक’ के अनेक भेद होते हैं। परन्तु चिन्तामणि ने इसे पृथक् वर्णन माना है। चिन्तामणि ने विशेष के तीन प्रकार बतसाए हैं, जो केसर ने छोड़ दिए हैं। ‘अर्धान्तरम्यास’ के अक्षर चार भेद युक्त अयुक्त अयुक्तयुक्त तथा युक्त-अयुक्त स्वीकार करते हैं जिनका चिन्तामणि ने कोई उल्लेख नहीं किया है। वे सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्पण किए जाने को ही ‘अर्धान्तरम्यास’ कहते हैं।

केसर ने कम यत्ना आश्रित शेष प्रेम अर्थस्वरूप अन्वेषित व्यधिकर भोक्ति अमित समाहित युक्त प्रसिद्ध सुखि, विपरीत तथा प्रहेलिका आदि वर्णनकारों का ‘कविकुसुमस्यतव’ में कोई उल्लेख नहीं है।

मतिराम तथा केसर

मतिराम रीतिशास्त्र के प्रमाण आचार्य-कवियों में माने जाते हैं और चिन्तामणि तथा भूपय के भाई परम्परा से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म संवत् १६७४ के समय बताया जाता है। वे बीबी के महाराज मार्कण्डेय के यहाँ बहुत दिनों तक रहे और जहाँ के आश्रम में ‘समित्तमसाम’ नामक ग्रन्थ संवत् १७१६ और १७४२ के बीच रचा। इसके अतिरिक्त इनके फुल मंजरी रसराम अन्व-सार विजय मति राम सतसई, साहित्यसार, कलाक शृंगार, वर्णनकार-व्यापिका तथा वृत्त कौमुदी (१) आदि ग्रन्थ और बतसाए जाते हैं (मतिराम ग्रन्थावली भूमिका पृ० २२५ २३२)। ‘रसराम’ में मात्र रत तथा भाषिका-भेद आदि का निरूपण है। ‘समित्तमसाम’ वर्णन ग्रन्थ है। मतिराम के आचार्यत्व की प्रतिष्ठापक मुख्यतया ये ही दोनों

कविप्रां है। यहाँ पर 'सहितसभाम' के आचार पर मतिराम की केदार से तुलना की गई है।

मतिराम ने अपने 'सहितसभाम' नामक ग्रन्थ में ११२ अक्षरों का विवेचन किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ उपमा, २ मासोपमा, ३ रसोपमा, ४ अलङ्कार, ५ उपमेयोपमान ६ प्रतीप ७ रूपक ८ परिणाम ९ उल्लेख, १० समुक्ति ११ अम, १२ अन्वेष १३ मुद्रापङ्कति, १४ हेत्वपङ्कति १५ पर्यस्ता पङ्कति १६ आत्ययपङ्कति १७ छेकापङ्कति १८ असापङ्कति १९ उत्प्रेक्षा २० रूपकान्तरयोक्ति, २१ सापङ्कतिप्रयोगोक्ति, २२ भेदकान्तरयोक्ति २३ सम्बन्धान्तरयोक्ति २४ अक्षमातिशयोक्ति, २५ अक्षमातिशयोक्ति २६ अत्यन्तान्तरयोक्ति २७ तुल्ययोक्ति २८ वीपक २९ वीपकान्ति ३० प्रतिवस्तुपमा ३१ दृष्टान्त ३२ निवर्तना, ३३ व्यतिरेक ३४ सहोक्ति ३५ विनोक्ति ३६ समासोक्ति ३७ परिकर ३८ परिकराङ्कुर, ३९ श्लेष ४० अप्रस्तुतप्रसङ्ग ४१ प्रस्तुताङ्कुर, ४२ पर्यायोक्ति, ४३ व्यावस्तुति, ४४ व्यावमिन्दा ४५ आश्लेष ४६ विरोधमास ४७ विभावना ४८ विशेषोक्ति ४९ अक्षम ५० अक्षमति ५१ विषम ५२ सम, ५३ विविध ५४ अधिक, ५५ अल्प ५६ परस्पर ५७ विषय, ५८ व्याघात ५९ हेतुमात्रा ६० एकावली, ६१ मात्तादीपक, ६२ सार, ६३ मयार्थक्य ६४ पर्याय ६५ परिचूति ६६ परिसंख्या ६७ निरूप्य ६८ समुच्चय ६९ कारकरीपक ७० समाधि ७१ प्रत्ययीक ७२ काव्यावधि ७३ अक्षान्तरम्यास ७४ विरुद्ध, ७५ प्रीतिोक्ति ७६ संभावना ७७ मिथ्या व्यवहित ७८ समित ७९ प्रहर्षण ८० विषय ८१ उल्लास, ८२ अक्षमा ८३ अनुज्ञा ८४ लेश ८५ मुद्रा ८६ रत्नावली ८७ लक्ष्य ८८ अतद्वृत्त, ८९ पूर्वक्य ९० अनुवृत्त ९१ भीषित ९२ सामान्य ९३ उन्मीलित ९४ पूर्वोत्तर ९५ विषय ९६ सूत्र ९७ पिहित ९८ व्यावोक्ति ९९ गूढोक्ति १०० विवृत्तोक्ति १०१ मुक्ति १०२ लोकोक्ति, १०३ छेकोक्ति १०४ वक्रोक्ति, १०५ भाति १०६ आधिक, १०७ उदात्त, १०८ आत्युक्ति १०९ निरूपित, ११० प्रतिवेक, १११ विधि, तथा ११२ हेतु।

उपमयुक्त अक्षरों में उपमा मासोपमा रूपक (मुद्रा), अपङ्कति, उत्प्रेक्षा वीपक निवर्तना व्यतिरेक सहोक्ति श्लेष पर्यायोक्ति व्यावस्तुति व्यावमिन्दा आश्लेष विरोधमास, विभावना विशेषोक्ति विषय मात्तादीपक परिचूति अक्षान्तरम्यास लेश चित्र, सूत्र, वक्रोक्ति भाति तथा हेतु केदार की कविप्रिया में भी वर्णित हैं। मतिराम द्वारा उल्लिखित शेष अक्षरों का केदार ने वर्णन नहीं किया है। केदार द्वारा उल्लिखित वर्णित 'यमक' अक्षर को मतिराम ने छोड़ दिया है। 'विभासकार' के अन्तर्गत केदार ने विस्तार के साथ विवेचन किया है किन्तु मतिराम ने 'विष' के केवल दो ही अर्थों प्रथम तथा द्वितीय विष के लक्षण सोदाहरण लिखे हैं (सहितसभाम अं० ३५ ३५३ पृ० ४३१)। केदार के कम गणना, आश्लेष प्रेम अर्थसंख्यक अत्योक्ति व्यधिकरणोक्ति अमित युक्त प्रविष्ट, मुष्टि विष रीत यमक तथा प्रहेलिका आदि अक्षरों का केदार ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

‘कविप्रिया’ तथा ‘मत्तितल्लभा’ नामक ग्रन्थों में विन भर्तृकारों का समान रूप से वर्णन है जिनमें दोनों भाषायों द्वारा बतलाए गए कुछ भर्तृकारों के समान मिलते हैं और कुछ सख्त भिन्न हैं। मतिराम ने ‘उपमा’ के दो ही भेद पुरुषोपमा और मातोपमा का उल्लेख किया है^१। केदार ने ‘उपमा’ के बाईस भेदों का वर्णन किया है। ‘मातोपमा’ की मतिराम पृथक् भर्तृकार मानते हैं। केदार ने इसे ‘उपमा’ का ही एक भेद माना है। मातोपमा के दोनों भाषायों के भक्त्यों में फर्क है। केदार ने ‘मातोपमा’ का निम्नलिखित अर्थन किया है—

जो जो उपमा बीजिये सो जो पुनि उपमेय।

सो कहिये मातोपमा केदार कविकल गेय ॥

(क० प्रि० प्र० १४ पं० ४९)

तथा मतिराम का ‘मातोपमा’ का अर्थन है—

जहाँ एक उपमेय की होत बहुत उपमान।

तहाँ कह्य मातोपमा कवि मतिराम सुखल ॥

(संक्षिप्तसंग्रह पृ० ४८)

रूपक सुट (अपह्नूति) उत्प्रेक्षा आतिरेक स्तेप व्याजस्तुति निम्नास्तुति विरोधाभास विक्षेपोक्ति सूक्ष्म बन्धोक्ति तथा आवृत्ति^२ आदि भर्तृकारों के दोनों भाषायों के सामान्य लक्षणों में आच-आप्य है। मतिराम ने ‘रूपक’ के पहले दो भेद अतिरिक्त और तत्पुनः किए हैं और फिर इन दोनों में से प्रत्येक के तीन और भेद किए हैं समोक्ति हीनोक्ति और अतिरिक्त^३। केदार ने अद्भुत विरुद्ध तथा रूपक रूपक का उल्लेख किया है। मतिराम की ‘पुष्पापह्नूति’ और केदार की ‘अपह्नूति’ के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है। केदार ने मतिराम द्वारा बतलाए ‘अपह्नूति’ के अग्य भेदों हेतुपह्नूति पथस्तापह्नूति आरुपह्नूति छेकापह्नूति तथा कलापह्नूति को छोड़ दिया है। केदार ने ‘उत्प्रेक्षा’ के भेद नहीं किए हैं। मतिराम ने ‘उत्प्रेक्षा’ के तीन भेदों वस्तुत्प्रेक्षा हेतुत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा का उल्लेख कर वस्तुत्प्रेक्षा के उत्प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा तथा फलोत्प्रेक्षा दोनों में से प्रत्येक के उत्प्रेक्षा और अतिउत्प्रेक्षा नामक और भेदों का वर्णन किया है^४। केदार के अनुसार ‘निदर्शना’ का अर्थन है—

कीमत्त एक प्रकार से सत अथ अतत समान।

करिये प्रपद निदर्शना समुक्त सकल सुखल ॥

(क० प्रि० प्र० ११ पं० ४८)

१. मत्तितल्लभा पृ० ४१ तथा ४४, ४ ११२।

२. केदार ने इसका नाम ‘अव्याज’ लिखा है।

३. मत्तितल्लभा पृ० ६८ पृ० १०४।

४. मत्तितल्लभा, पृ० १ ०-१०६, ४ १०२।

मतिराम ने सत अथवा सत भाव के एक ही क्रिया द्वारा चोड़ित कराये जाने को तृतीय निदर्शना माना है। उन्होंने इसका सख्य इस प्रकार दिया है—

करत सत अतत अर्थ को एक क्रिया सों बोधः
निहरसना यह घोर हू कहत बुद्धि गति सोध ॥

(अभितरुणाय ख० १५२)

मतिराम ने इनके प्रथम तथा द्वितीय दो घोर भेद बतलाए हैं। केराव ने इस धर्मकार के कोई भेद नहीं किये हैं। दोनों व्याख्याओं द्वारा दिए गए 'व्यतिरेक' के सत्यों का भाव एक ही है। मतिराम ने इसके भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। केराव ने इसके दो भेद सहज तथा युक्ति व्यतिरेक बतलाए हैं। मतिराम ने 'स्तेय' के केवल प्रकृत अग्रकृत घोर प्रकृताग्रकृत भेदों का ही वर्णन किया है^१। केराव ने इसके विभिन्न भेदों का उल्लेख करते हुए इस धर्मकार का विस्तृत विवेचन किया है। केराव के 'माझेय' धर्मकार के सामान्य सख्य तथा मतिराम के प्रथम 'माझेय' के सख्य में साम्य है। मतिराम ने 'माझेय' के तीन भव प्रथम द्वितीय तथा तृतीय बतलाए हैं परन्तु केराव ने 'माझेय' के नौ प्रकारों का वर्णन किया है। केराव ने 'विभावना' के प्रथम तथा द्वितीय दो भेद किये हैं। मतिराम ने प्रथम द्वितीय तृतीय चारि स. भेदों का उल्लेख किया है। केराव तथा मतिराम दोनों व्याख्याओं की 'प्रथम विभावना' के अन्तर्गत परस्पर मिलते हैं। केराव की 'दूसरी विभावना' मतिराम की 'चतुर्थ विभावना' है। निम्नान् कौचित्य—

कारण कीनहु प्राग है कारण हीय नु सिद्ध
जानो सग्य विभावना कारण झड़ि प्रसिद्ध।

(केराव—क० वि० प्र० ८, पं० ११)

हेतु काव को जो नहीं ताते काव बरोत।

माझी घोर विभावना कहत सकल कबिनोत ॥

(मतिराम—अभितरुणाय, ख० २०२)

मतिराम की 'द्वितीय विभावना' का सख्य केराव के 'विषय' के सख्य के समान है। मतिराम की 'द्वितीय विभावना' का सख्य है—

घोरे हेतुनि सों जहाँ प्रकट होत है काव।

तहू विभावना घोरऊ बनत बुद्धि क्यूँ ॥

(अभितरुणाय ख० १८०)

यही भाव केराव के 'विषय' के सख्य का भी है।

साधक कारण विकल जहूँ होय साध्य की सिद्धि।

केरावदास ज्ञानिये, सो विशेष परिचिद्धि ॥

(क० वि० प्र० ८, पं० २४)

बीपक सहोक्ति पर्यायोक्ति विधौ मासाबीपक परिवृत्ति, यथास्तिरम्यास
लेख तथा हेतु बादि भर्तृकारों के दोनों प्राचायों के मतनों में धातर है। कुछ मसल
मीने दिये जाते हैं।

लेख का सारस

बनुराई के लेख ले, बनुर न लपुर्ब लेख ।

बरनत कवि कोविद सब ताको केयब लेख ॥

(केयब—क० छि० प्र० ११ छ० ४०)

जहाँ बीप पुन होत है जहाँ होत पुन बीप ।

तहाँ लख यह नाम कहि बरनत कवि मति-बीप ॥

(मतिराम—कलितकलाप, छ० १२४)

परिवृत्त का सारस

जहाँ करत कपु धीर ही उपदि वरत कपु धीर ।

ताहीं परिवृत्त जानियो केसव कवि विरलौर ॥

(केयब—क० छि०, प्र० १३, छ० ३६)

बादि बादि ई बात को जहाँ पसदियो होय ।

तहाँ कहत परिवृत्ति हैं कवि कोविद सब कोय ॥

(मतिराम—कलितकलाप, छ० २७०)

सहोक्ति का सारस :

हानि बदि धुम प्राणम कपु कहिये नूढ़ प्रकास ।

होय सहोक्ति सु साप ही बरनत केसवदास ॥

(केयब—क० छि० प्र० १२, छ० २०)

काज हेतु को छोड़ि कई धीरनि के सहभाष ।

बरनत तहाँ सहोक्ति हैं कविजन बुद्धि प्रयास ॥

(मतिराम—कलितकलाप छ० १६४)

दोनों प्राचायों द्वारा दिया 'बीपक' का सामान्य लक्षण परस्पर नहीं मिलता,
जैसा कि पहले बताया जा चुका है। केयब ने 'बीपक' के दो ही अर्थों मति तथा माता

१ केयब का यह लक्षण मतिराम की 'मुनि' से मिलता है। मतिराम—

परम छावन की जहाँ भिया मान संभान ।

तहाँ मुनि बरनन करत कवि कोविद सजान ॥

—कलितकलाप, बं १२४, पं ४२४ ।

२ केयब का यह लक्षण मतिराम के 'विचार' के लक्षण से साम्य रखता है। केयब—

मन दृष्टि के धर्म की प्रापति जहाँ विच्छ ।

तहाँ विपादहि कहत हैं जो कविजन मति-मुख ॥

—कलितकलाप, बं ६२ प ४२४ ।

दीपक का वर्णन किया है परन्तु यह स्वीकार किया है कि दीपक के घनेक रूप हो सकते हैं। मतिराम ने 'मणिदीपक' का कोई उल्लेख नहीं किया है और 'भामादीपक' को पृथक् ही धनकार माना है। 'सहोमित' को केशव ने 'उत्ति' का भेद बतलाया है किन्तु मतिराम इसे धनकार ही धनकार मानते हैं। 'धर्मस्तरस्यास' के केशव ने बार भेदों युक्त धर्मयुक्त धर्मयुक्तयुक्त तथा धर्मयुक्त-धर्मयुक्त का वर्णन किया है मतिराम ने इसके दो भेद सामान्य से विशेष का समर्पण और विशेष से सामान्य का समर्पण बतलाए हैं (मतिवत्तलाम छं० २८६)। केशव ने 'हेतु' धनकार का सामान्य लक्षण न देकर केवल समाज तथा धनार्थ हेतु नामक भेदों का वर्णन किया है। मतिराम ने भी 'हेतु' का सामान्य लक्षण न देकर उसके तीन भेदों प्रथम द्वितीय और तृतीय का विवेचन किया है।

कुलपति मित्र तथा केशव

ग्रन्थ के ही समकालीन धामरा-निवासी माधुर चौबे कुलपति मित्र की मचना काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्यों में होती है। इनका कविताकाल संवत् १७२४ और १७४२ के बीच माना गया है। काव्यशास्त्र पर लिखे इनके दो ग्रन्थ 'रसरहस्य' और 'गुरुरसरहस्य' प्रसिद्ध हैं। 'रसरहस्य' की रचना संवत् १७२७ में हुई थी। यह समस्त रचना ११६ पृष्ठों में समाप्त हुई है। प्रारम्भ के ७० पृष्ठों में काव्य की परिभाषा काव्य का प्रयोजन काव्य का विभाजन शब्दशक्ति, ध्वनि रस गुण, शेष आदि विषयों का निरूपण हुआ है। पिछले ४६ पृष्ठों में धनकारों का विचार विवेचन किया गया है। यहाँ पर 'रसरहस्य' में निरूपित धनकारों ही के आधार पर आचार्य केशव से कुलपति मित्र की तुलना की गई है।

शब्दासकार

१ कश्चेति २ धनुषास, ३ साहानुषास ४ धनक ५ स्तेय तथा ६ चित्र।

उभयासकार

१ पुनस्तववामास।

धर्मस्तरकार

१ उपमा, २ मातोपमा ३ रसोपमा, ४ एकशेषविधर्ती उपमा, ५ धनक्य (धनमय) ६ उपमेयोपमा ७ प्रतिवस्तुपमा, ८ प्रतीप ९ उत्प्रेक्षा

१ संवत् सत्रह सी भरस धन बीते सत्ताईस।

काठिक बरी एकादसी बार बरनि बानीस ॥

—रसरहस्य पृ० ११६, अं० २११।

२ नहि पश्ये समता जगत जाकी तब उपमान।

उपमेय कीर्ति तहां धनमय जान ॥

—रसरहस्य, अं० ११६ पृ० २११।

१० सन्नेह ११ स्मक १२ परिणाम १३ उल्लेख^१ (उल्लेख) १४ भातिमान,
१५ स्मरण, १६ अपहृनुति १७ स्नेह १८ समाधोषित १९ अपस्तुतप्रसंग^२,
२० प्रतिध्वयोषित २१ दुष्प्राप्त २२ दीपक, २३ भासादीपक, २४ तुल्ययोगिता,
२५ व्यतिरेक, २६ धाक्षेय २७ विभावना २८ विधेयोषित, २९ यथावस्थ
३० पर्यान्तरग्यास ३१ विरोधामास ३२ स्वभावोषित ३३ व्याजस्तुति,
३४ सहोषित ३५ विनोषित ३६ विधिमय ३७ भाविक ३८ काम्यलिङ्ग
३९ पर्यायोषित ४० उदात्त ४१ समुच्चय, ४२ पर्याय ४३ अनुमान ४४ परि
कर ४५ व्याजोषित ४६ परिध्वन्या ४७ कारणमात्रा ४८ धर्म्योष्य ४९ उत्तर,
५० सूचन ५१ सार, ५२ प्रसंगति ५३ समाधि ५४ अनुमान ५५ विषम
५६ ध्वज ५७ प्रत्यगीक ५८ मिश्रण (मीलित)^३ ५९ विधेय ६० उद्गुल
६१ अतद्गुल तथा ६२ व्यापात ।

वक्रोक्ति यमक, स्नेह^४ चित्र उपमा नामोपमा उल्लेख रूपक अपहृनुति
दीपक भासादीपक व्यतिरेक धाक्षेय विभावना विधेयोषित पर्यान्तरग्यास विरोधा
मास स्वभावोषित व्याजस्तुति सहोषित पर्यायोषित सूचन तथा विधेय प्रसंगार्थों
का वर्णन 'रसरहस्य' तथा 'कविप्रिया दोनों ग्रन्थों में मिलता है। परन्तु विविध प्रसं
कारों के भेद तथा सङ्घन प्रायः भिन्न हैं। 'रसरहस्य' में वर्णित दीप प्रसंकार केवल ने
छोड़ दिए हैं। केवल के कम यमना धाक्षिय केष हेतु, प्रेम ऊर्ध्व रसवत व्यधि
करणोक्ति धमिठ समाहित युवत प्रसिद्ध सुसिद्ध विपरीत तथा प्रहेलिका भादि
प्रसंकारों का 'रसरहस्य' में कोई उल्लेख नहीं है।

कुलपति मिश्र द्वारा उल्लिखित शब्दांशकारों में से केवल ने वक्रोक्ति यमक
स्नेह और चित्र का ही निरूपण किया है। वक्रोक्ति का सामान्य ज्ञान दोनों धाक्षियों
का प्रायः एक ही है। तुलना कीजिए—

केवल सूची बात में वररत बेड़ो नाव ।
वक्रोक्ति तासीं बड़े लही लवे कविराज ॥
(केवल—क० ५० प्र १२ अ० ३)

-
- १ बहुत एक को कहि जब बहुत जाति उपमान ।
एके बहु रूप कहि कही सो वसेय बसान ॥
—रसरहस्य ५ अ० अ ३१ ।
२. अपस्तुतप्रसंग को ही मिश्रजी ने 'धर्म्योष्य' कहा है, जिसका लक्ष्य रस मकर है—
जही बारि धिर धीर के कही धीर की बात ।
वरणत पाँच प्रकार सो सो धर्म्योषित बात ॥
—रसरहस्य ५ अ० अ ३१ ।
- ३ धाये कर के सतज के कहि मिथिते प्रति धीर ।
—रसरहस्य ५ अ० ११ ।
- ४ कुलपति 'स्नेह' को शब्दांशकार और प्रसंगिकार दोनों ही मानते हैं ।

कहै बात धीरे कहु घब कर कहु धीर ।

बक जमित ताकी कहै इलेय सुप है धीर ॥

(कुलपति—रसरत्न खं० ४)

केदार ने कुलपति द्वारा निर्दिष्ट 'बक्रोक्ति' के दो भेदों इलेय धीर काहु बक्रोक्ति को छोड़ दिया है। केदार द्वारा दिए 'इलेय' के विविध भेदों तथा कर्तों का कुलपति मिथ ने कोई उल्लेख नहीं किया है। मिथ जी ने 'इलेय' के वर्णगत बचनगत भिन्नगत परमगत आदि ग्रन्थ घाठ भेदों का वर्णन किया है। केदार द्वारा वर्णित 'यमक' के आदि पद ग्रन्थ पद धीर द्वितीय पद तथा सम्मिश्र धीर सम्मिश्र आदि भेदों का मिथ जी ने कोई विवरण नहीं दिया है। केदार एक चरण धर्म चरण आदि 'यमक' का ही उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'यमक' के घनेक भेद हैं पर ग्रन्थ-विस्तार के भय से नहीं दिए गए हैं^१। केदार ने 'यमक' का बहुत विस्तार के साथ निरूपण किया है। 'मनुष्य' की मरना केदार धर्मकारों में करते ही नहीं हैं। 'पुनश्चर्यदामास' को केदार ने छोड़ दिया है। 'विश्रासकार' का केदार ने बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया है किन्तु मिथ जी ने ब्रह्मवच मोक्षनिकायक धीर सांठधनु के ही उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। साथ ही मिथ जी 'विश्रासकार' के घनेक भेद भी स्वीकार करते हैं। केदार ने मिथ जी द्वारा निर्दिष्ट 'रम-वर्म-विम' का कोई उल्लेख नहीं किया है। दूसरी धीर मिथ जी ने केदार द्वारा उल्लिखित विश्रासकारों के अंतर्गत निरोध रचना धर्माधिक रचना आदि को छोड़ दिया है।

कुलपति मिथ तथा केदार के जिन धर्मकारों के सामान्य लक्षण समान हैं वे हैं स्वभावोक्ति विभावना धातुप विरोधमास व्यतिरेक सुख मपहुनुति विरोधोक्ति व्यावस्तुति तथा रूपक। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

विशेषोक्ति का लक्षण

विद्यमान कारण सकल कारण होय न सिद्ध ।

सोई जमित विशेष सब, केदार परम प्रसिद्ध ॥

(केदार—क० प्रि प्र० १२, खं० १४)

सब कारण कारण नसे जमित विशेष सुमान ।

(कुलपति—रसरत्न पृ० १००)

रूपक का लक्षण

उपमा ही के रूप सों मिथो बरनिये रूप ।

ताही सो सब कहत हैं केदार रूपक रूप ॥

(केदार—क० प्रि, प्र० १३ खं० १२)

१ चरन जमक धर्मचरन पुनि धरतु धर्म प्रकार ।

कहत मल सक्षय सब होय ग्रन्थ विस्तार ॥

—रसरत्न खं० ७४ पृ० १० ।

२. रसरत्न, पृ० ७०, खं० ४५४५१ ।

उपमा धन उपमेय करे, मेव परे नाहि जानि ।
समता धर्म यहै कह्यो, रूपक ताहि बखानि ॥

(कुसुमपति—रसरहस्य, अं० १६)

(विषय भी का यह सत्य अधिक पूर्ण है ।)

सूक्ष्म का लक्षण

कौनहु भाव प्रभाव ते जानै विषय की बात ।
इति ते आकार ते कहि सुलभ व्यवसाय ॥

(केशव—क० प्रि०, प्र० ११ अं० ४२)

बात कुराई होय जो, ताकी करे प्रकाश ।
इति ते आकार ते जो सुलभ व्यवसाय ॥

(कुसुमपति—रसरहस्य अं० १७८)

कैवल्य तथा विषय की द्वारा दिए 'उत्प्रेक्षा' और 'उपमा' प्रवर्णकारों के समर्थों में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है, भाव भाव एक ही निकसता है । देखिए—

उत्प्रेक्षा का लक्षण

केशव और वस्तु में और कीजिये तर्क ।
उत्प्रेक्षा तासों कहै जिनको बुद्धि लपक ॥

(केशव—क० प्रि०, प्र० २, अं० २०)

संलय में जो लोच सों देखि विषय को उपमान ।
अधिक होय उपमेय ते तो उत्प्रेक्षा जान ॥

(कुसुमपति—रसरहस्य अं० १४)

उपमा का लक्षण

रूप चीत गुण होय सब जो वही है अनुसार ।
तासों उपमा कसूत कवि कैदाव बहुत प्रकार ॥

(केशव—क० प्रि०, प्र० १४ अं० १)

वस्तु धर्म समता कहै बोजन की जेहि डीर ।
नाहि कतपित उपमान जेहि, सो उपमा तिरमौर ॥

(कुसुमपति—रसरहस्य अं० १)

कुसुमपति विषय में उपमा के चौती धारों (पूर्ण तथा तुल्य) आदि मेव बतलाए हैं, जो केशव ने छोड़ दिये हैं । दूसरी ओर उन्होंने 'उपमा' के आलोचना संश्लेषण, हेतुपमा भ्रूणपमा मोहोपमा अतिशयोपमा आदि बाईस भेदों का उल्लेख किया है । 'आलोचना' को कुसुमपति विषय में अत्यंत अत्यंत माना है । 'आलोचना' का दोनों आचार्यों ने बखान किया है । केशव ने इसका सत्य उदाहरण प्रस्तुत किया है पर कुसुमपति विषय में इसके केवल दो उदाहरण ही दिए हैं सत्य नहीं किया है । कुसुमपति

मित्र के 'भ्रातिमान्' 'सम्बन्ध' और 'प्रमथय' (प्रमथय) भ्रमंकार क्रमशः केसव को 'मोहोपमा' 'संघबोपमा' और 'अतिशयोपमा' हैं। दोनों आचार्यों के सप्तकों का प्रायः समान है। मित्र जी ने 'उत्प्रेक्षा' के हेतुत्वता तथा कमोत्प्रेक्षा दो भेदों का उल्लेख किया है जो केसव ने नहीं किया है। केसव ने 'रूपक' के प्रथम, द्वितीय तथा रूपक-रूपक—ये तीन भेद किए हैं। मित्र जी को ये भेद मान्य नहीं हैं और उन्होंने इसके प्रायः सभी द्वारा स्वीकृत छाप और निरर्थक प्रादि भेदों तथा अन्तर भेदों का उल्लेख किया है। कृतपति मित्र की 'प्रथमप्रवर्तना' में 'रूपक' की धर्मोक्ति है। मित्र जी ने 'व्यतिरेक' के २४ भेदों का उल्लेख किया है और केसव ने केवल दो सहज और वृत्ति का ही जो मित्र जी से नहीं मिलते। मित्र जी के वाक्य के दोनों भेद, शब्दमात्र विषय निवेद्य और उक्त विषय-निवेद्य के क्रमशः 'मात्री' निवेद्य और मूल निवेद्य से मिल जाते हैं। मित्र जी ने विशेषोक्ति के तीन प्रकारों का कथन किया है, उक्तिनिमित्ता, धनुक्तिनिमित्ता और अतिशयोक्तिनिमित्ता। मित्र जी ने इन भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। 'विरोधान्तर' का केसव ने कोई भेद नहीं बताया है। कृतपति मित्र ने जाति भूय प्रादि भेद से उसके १० प्रकारों का वर्णन किया है। (सरस्वत्य ५० १०२, छं० १२४ १२५)।

दोनों आचार्यों द्वारा दिये विशेष सहोक्ति, पर्यायोक्ति शेषक मासारीपक, अन्तरान्तराद्य प्रादि अलंकारों के सप्तक प्राप्य मैं नहीं मिलते। केसव के 'मासारीपक' का सारा है—

सर्वे मिले बहु करलिये देखाकल कुचिर्बलः।

मासारीपक कहत हैं ताके भेद शक्य ॥

(क० प्रि० प्र० १३, छं० २७)

कृतपति मित्र जी इसका साराण यों दिते हैं—

अपने अपने जोय जहाँ, प्रथम अधिक भुन होय।

मासारीपक कहत हैं ताहि सब कवि सोय ॥

(सरस्वत्य, अं० २४)

केसव ने इसे 'शेषक' का भेद माना है। परन्तु मित्र जी ने इसे प्रथम भ्रमंकार बताया है। केसव ने 'अन्तरान्तराद्य' के मूल प्रथम प्रादि चार भेदों का कथन किया है। मित्र जी ने भी उसके भेदों की संख्या तो चार ही बताई है परन्तु उनके भाग भिन्न हैं। उनका साराण इस प्रकार है—

जहाँ अर्थ आकाश को चोचन करे विशेष।

जुनि सामान्य विशेष की ओरि हैं पोषण भेद।

तो अन्तरान्तर ग्याह है, और अर्थ जहाँ होय।

स्वार्थ निवर्त भेद करि, चार भाँति है सोय ॥

(सरस्वत्य, छं० ११८ ११९)

केशव के 'अपमिदरग्यास' का सङ्ग्रह है—

घोर आगिये धर्म जहँ घोरें बसतु बजानि ।

अर्थात्तर को ग्यास यहु बार प्रकार सुधान ॥

(क० छि० प्र० ११ ख० ६५)

देव तथा केदाव

देव का जन्म उनके अपने सादय के अनुसार संवत् १७९० वि० ठहरता है^१ । उनका रचनाकाल संवत् १७४६ से १७६० तक माना जा सकता है । देव अपने कालावधि के साधय में रहे घोर इनकी अविर्भाव रचनाएँ भी साधयव्यवस्थाओं के लिए ही हुई हैं । ऐतिहासिक कवियों में सम्भवतः देव ने ही सबसे अधिक ग्रन्थ लिखे हैं । स्व० रामचन्द्र शुक्ल ने देव के २२ ग्रन्थों के नाम दिये हैं जो उनके अनुसार उपलब्ध हैं^२ । मिथवन्धुओं ने उनके १४ ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो ज्ञात होते हैं^३ । डा० लक्नेर के मत में देव के प्राप्य ग्रन्थ १५ १६ हैं^४ । देव के देवे-मुने ग्रन्थों में बहुत से रोचक ग्रन्थ हैं यथा भावविभास भवानीविभास सुबानविनोद कुसलविभास रस विभास सुखसागरचरण शम्बरसायन इत्यादि । सभी रसों का पूर्ण विवेचन मुख्य रूप से 'शम्बरसायन' और 'भवानीविभास' में हुआ है । 'भावविभास' में रस के विभिन्न अवस्थाओं का विशद विवेचन है परन्तु उसमें केवल भुङ्गार को ही लिया गया है । भावविभास भवानीविभास रसविभास कुसलविभास सुबानविनोद तथा सुखसागरचरण में नायिका भेद का विस्तृत वर्णन है । अलंकार निरूपण 'भाव विभास' में संक्षेप में घोर 'शम्बरसायन' में कुछ विस्तार के साथ किया गया है । यहाँ 'भावविभास' और 'शम्बरसायन' के आधार पर केशव से देव की तुलना की गई है ।

'भावविभास' में देव ने केवल ३६ अलंकारों के बहुत ही कमते ढंग से सङ्ग्रह कहाकरन दिए हैं । उनके अनुसार मुख्य अलंकार ३६ ही हैं । प्राच्य कवियों (भाषाओं) द्वारा माने गए प्राप्य अलंकारों को देव इनका ही जेब मानते हैं^५ । देव ने पंचम विभास के आधार में ही अलंकारों की जो सूची दी है, उसके अनुसार अलंकारों के नाम निम्नलिखित हैं—

१ ध्रुव सङ्घर्ष छिमाणीस बहुत घोरही धर्म ।

कही देव मुक्त देवता भावविभास ग्रन्थ ।

—भावविभास प० १३५ ।

२ हिन्दी छन्दस का इतिहास पृ० २६४ ।

३ हिन्दी कवयित्री पृ० २६६ ।

४ देव और उनकी कविता (अष्टाङ्क) पृ० ७२ ।

५ अलंकार मुख्य जगतालीस हैं देव जहाँ ।

यहाँ बुरानि मुनि यतनि में पाइये ।

प्राच्य कवि के संगत अनेक घोर

इनही के भेद घोर विविध बताइये ॥

—भावविभास पृ० १४१ ।

३३ मयिक ३४ धर्मोन्म, ३५ सामान्य, ३६ विषय ३७ सम्मिलित,
३८ विहित ३९ वर्णनित, ४० विवि ४१ निवेद्य, ४२ प्राप्ति, तथा
४३ सम्मोक्त ।

अव्यक्तकारों में देव ने अनुप्रास यमक और चित्र का वर्णन किया है । इनमें भी एक प्रकार से 'चित्र' का ही प्रमाण रूप से ग्रहण है, क्योंकि 'अनुप्रास तथा 'यमक' को तो देव ने 'चित्र' का आधार-स्वरूप माना है^१ । 'यमक' के अन्तर्गत उन्होंने 'सिद्धा-बलीकृत' का भी वर्णन किया है किन्तु उसका लक्षण नहीं दिया है । 'चित्र' के सूझाने चित्र प्रवर्तन चित्र कामधेनु, सर्वतोमह पर्वत द्वार कपाट वनु, कमल आदि अनेक भेदों का उल्लेख किया गया है जिनमें एकाक्षर अनुसोम-विशोन गतान्त अमलानिका प्रहेमिका आदि का वर्णनकार दिखाया गया है ।

केदार ने देव द्वारा किए गए वर्णनकारों के दो भेद, वर्णनकार और लक्षणकार और फिर वर्णनकारों के भी मुख्य तथा गौणमित्र नामक उपभेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है ।

देव तथा केदार ने चित्र वर्णनकारों का समान-रूप से वर्णन किया है वे इस प्रकार हैं स्वभावोक्ति उपमा रूपक जम्भेचित पर्वमोक्षि सङ्गोक्षि विधेयोक्ति व्यतिरेक विनाशना उद्योखा घासेय दीपक, अपहृनुति स्तेय वर्णनकाराद्यत व्याज स्तुति, व्याकृतिन्ना निदर्शना विरोध, विरोधानास, परिवृत्त रसवत ऊर्जस्व प्रेम समाहित भ्रम शेष सुकम हेतु, मायावीर्य तथा धर्मोक्ति । 'मानविज्ञास' और 'अम्बरसामन' में वर्णित इनसे अंतर वर्णनकारों का केदार ने कोई उल्लेख नहीं किया है । केदार के पचना व्यधिकरणोक्ति समित पुस्त, प्रसिद्ध सुसिद्ध विपरीत आदि वर्णनकारों का केदार ने कोई उल्लेख नहीं किया है । चित्र वर्णनकारों का समान रूप से वर्णन है इनमें दोनों प्राचायों द्वारा दिये कुछ वर्णनकारों के लक्षण का मात्र एक ही है और कुछ लक्षणों में अंतर है । दोनों प्राचायों के 'स्वभावोक्ति' प्रपञ्च 'आदि' के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है किन्तु केदार का लक्षण अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण है । देव के अनुसार 'स्वभावोक्ति' का लक्षण है—

जहाँ स्वभाव ज्ञानमिदं, स्वभावोक्ति तो नाम ।

सुकवि आदि वर्णन करत, कृत्य सुमत अनिराम ।

(अम्बरसामन पृ० १४२)

प्रपञ्च—

देवता जहाँ सुभास विधि वरतत रस आसन्न ।

जो स्वभाव आती सर्व समुन्नत सुमत आसन्न ॥

(अम्बरसामन, पृ० ६४)

१ अनुप्रास यह यमक ये चित्र काव्य के मूल ।

इन्हीं के अनुसार तो प्रकृत चित्र अनुप्रास ॥

भाषायों के द्वारा निरूपित 'सम्बेह' धर्माकार से मिलता है। केदार ने 'सम्बेह' को छोड़ दिया है और 'संशय' को 'उपमा' का भेद बतलाया है।

दोनों भाषायों के 'रूपक' के सामान्य लक्षण का भाव समान है। देव ने 'रूपक' के तीन भेद समस्त धर्मसमस्त तथा समस्त-व्यस्त बतलाए हैं। केदार ने भी 'रूपक' के भेदों की संख्या तो तीन ही भागी है किन्तु उनके नाम देव से भिन्न हैं यथा अद्भुत विषय तथा रूपक रूपक। बभ्रोक्षित व्यतिरेक उत्प्रेसा अपह्नुति स्तेप म्यावस्तुति निम्वास्तुति निम्वा विरोधमास, रखत सूक्ष्म समाहित यादि धर्मकारों के दोनों भाषायों के लक्षण का भाव एक ही है। 'बभ्रोक्षित' तथा 'अभ्योक्षित' को केदार ने 'उक्षित' का भेद माना है और देव ने इनका पुनः धर्मकार के रूप में वर्णन किया है। केदार ने बभ्रोक्षित तथा 'अभ्योक्षित' दोनों के लक्षण उदाहरण दिए हैं परन्तु देव ने 'बभ्रोक्षित' का ही लक्षण उदाहरण दिया है और 'अभ्योक्षित' का केवल उदाहरण ही दिया है लक्षण नहीं दिया। देव ने 'भावविज्ञात' में 'विशेषोक्षित' का लक्षण इस प्रकार दिया है—

जाति कर्म पुन भेद को विकल्पता करि नाहि।

वस्तुनि करनि विज्ञादये, विशेषोक्षित कहि नाहि॥

(भावविज्ञात पृ० ११०)

यह लक्षण केदार की 'विशेषोक्षित' के लक्षण से नहीं मिलता। केदार का 'विशेषोक्षित' का लक्षण है—

विद्यमान कारण सकल, कारण होय न सिद्ध।

सोई शक्ति विशेष नय केदार वरम प्रसिद्ध।

(६० प्रि० पृ० ११, अं० १४)

यह लक्षण देव द्वारा 'अध्वरसायन' में दिए हुए 'विशेषोक्षित' के लक्षण से साम्य रखता है। देव ने इस धर्माकार का लक्षण वही पों लिखा है—

कारणह कारण न जाह विशेषोक्षित कहि सोह। (अध्वरसाम्य पृ० १०१)

देव की 'प्रथम विभावना' के लक्षण का भाव केदार की 'प्रथम विभावना' से मिलता है। 'उत्प्रेसा' और 'अपह्नुति' के भेदों का अन्वेषण दोनों ही भाषायों में नहीं किया है। देव ने 'स्तेप' के भेदों का अन्वेषण नहीं किया है। केदार ने इसके विभिन्न भेदों का विस्तृत विवेचन किया है। 'व्यतिरेक' के केदार द्वारा बतलाए गए और भक्ति नामक भेदों को भी देव ने छोड़ दिया है। केदार और देव के 'आशेष' धर्माकार के सामान्य लक्षणों में परस्पर भावसाम्य है। देव ने 'आशेष' के कोई भेद नहीं किए हैं। केदार ने इस धर्माकार के अनेक भेदों का वर्णन किया है। 'धीपक' के दो भेद मणि तथा मासादीपक बतलाते हुए केदार ने यह स्वीकार किया है कि 'धीपक' के अनेक भेद होते हैं। देव ने इसका कोई भेद नहीं लिखा है। 'मासादीपक' को देव ने

पुष्प ही धर्मकार माना । उन्होंने इस धर्मकार का केवल उदाहरण ही दिया है सदाग नहीं दिया है । 'दीपक' का सामान्य समझ दोनों आचार्यों ने भिन्न ही दिया है^१ । 'धर्मान्तरन्यास' की सामान्य परिभाषा दोनों आचार्यों की भिन्न है । वेद ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है—

पुस्त धरय बृद्ध करम कीं, वाग्य सु कहिये धीर ।
तो धर्मान्तरन्यास कहि बरनत रस बस भीर^२ ॥

केदार ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है—

धीर ध्याये धर्म जहं धीरै वस्तु पद्यानि ।
धर्मान्तर को न्यास यह, बारि प्रकार सुधानि^३ ॥

केदार द्वारा बतलाए इस धर्मकार के मुक्त धमुक्त धारि बार मेरों को वेद ने छोड़ दिया है । वेद ने केदार के ही समान व्यावस्तुति तथा 'व्यावनिन्दा' (स्तुतिनिन्दा) को प्रमग धर्मकार माना है । केदार ने निदर्शना धर्मकार की परिभाषा यह की है^४ । उन्होंने इसके भेद नहीं किये हैं । वेद ने इसके तीन भेद माने हैं—(१) जहाँ दो वाग्यों के धर्म की समानता हो (२) जहाँ एक के गुण दूसरे में स्थापित कर एकता साईं जाती हो तथा (३) किसी कार्य की धीर देखकर उसके कमस्वरूप जब कुछ बुरा-मला कहा जाता है । उन्होंने इसकी परिभाषा धीर विभिन्न रूप इस प्रकार दिए हैं^५ । दोनों आचार्यों ने 'विरोध' का लक्षण भिन्न-भिन्न दिया है । वेद का 'विरोध' का लक्षण है—

जहाँ विरोधी पदारथ मिलै एकही धीर ।
धर्मकार सु विरोध विनु, विप विमूय विष कोर ॥

(भादनिहास, पृ० १६०)

- १ धरय कहै एकै किया जहाँ धारि मधि धरत ।
धरया जहं प्रतिपद किया दीपक कहत सुसंत ।

—व्यावनिहास पृ० १५४

वाग्य किया गुन द्रव्य को बरनहु करि एक ठीर ।
दीपक दीपति बहत है, केदार कवि सिरसीर ॥

—क मि० प्र १३, अ ११ ।

- २ धर्मान्यास पृ० १३१ ।

- ३ क मि, प्र ११, अ ३५ ।

- ४ कौनहु एक प्रकार से सत सब धरत समान ।
करिये प्रवैट निदर्शना समुच्चय सकल सुधान ॥

—क मि प्र ११ अ ४३ ।

- ५ कहिये विविध निदर्शना वाग्य धर्म सब होइ,
एकहि ये पुनि धीर मुनि धीर वस्तु में होइ,
कहिये कारण देखि बह भलो बुरो कत होइ ॥

—शङ्करसाधन पृ० ११८ ।

यथा जहाँ विरोध पदार्थ कहि कहिये विरोध तातु ।

(गुम्बरसायन पृ० १०२)

यस का लक्षण इस प्रकार है—

केदारदास विरोधयस रजियत बचन बिधारि ।

तासों कहुत विरोध सब कहिकुन सुनुनि सुकारि ।

(क० वि० प्र० २ अ० १६)

तोनों ही भाषायों में 'विरोध' के शब्दों का वर्णन नहीं किया है। 'हेतु' प्रसंगकार दोनों भाषायों में माना है किन्तु केदार ने सामान्य लक्षण न देकर इसके तीन शब्दों का वर्णन किया है। इस में शब्दों का सम्बन्ध नहीं किया है।

पर्यायोक्ति सहोक्ति परिपुष्ट ऊर्धस्वि प्रथ (श्रेय) तथा कम आदि प्रसंगकारों में दोनों भाषायों के लक्षण मिले हैं। केदार के श्रेय ऊर्धस्वि तथा कम प्रसंगकारों के लक्षण कमस्त भीचे दिए जाते हैं—

कन्द निपट भिदि भाग, जहाँ उचर्य कुरख लम ।

ताहीं सों तब कहुत हैं, केदार उत्तम श्रेय ॥

(क० वि० प्र० ११ अ० २७)

तब न निज हुकार, जो बचनि कई सहाय ।

ऊन नाम तासों कहें केदार तब कविराय ॥

(क० वि० प्र० ११, अ० २१)

तथा आदि श्रेय भरि बरहिउये सो कम केदारदास ॥

(क० वि० प्र० ११ अ० १)

इस में इन्हीं प्रसंगकारों के लक्षण यों दिये हैं—

कम से कम विष श्रेय अति, रतयत रसनि उदात्त ।

अति सम्पत्ति में प्रथ जल प्रहृकार प्रविकात ॥

(गुम्बरसायन, प० ११५)

यथा प्रहृकार प्रविकात बचन जो ऊर्धस्वत होइ ।

कहिये जो अति विष बचन श्रेय बखानी ताहि ॥

(भावमिश्रित, पृ० १६२)

बचन प्रथ उपमेय को कम लुप्योमती आदि ॥

(भावमिश्रित, प० १६६)

यद्यपि केदार के 'कम' का उदात्त लक्षण स्पष्ट नहीं है, फिर भी दोनों भाषायों के द्वारा दिए इस प्रसंगकार के उदाहरणों में विहित होता है कि दोनों ने लक्षण मिले ही समझा है। केदार की 'व्यपिकरकोशित' (उक्ति का वेध) इस की व्यप्यवर्ति है।

प्रसंगकारों में 'यमक' तथा 'बिन्द' का दोनों ही भाषायों में वर्णन किया है। दोनों भाषायों के 'यमक' के लक्षणों

का भाव समान है। केसव के 'सम्प्रेत तथा 'असम्प्रेत एवं 'सुखकर' तथा 'दुःखकर' आदि शब्दों का देव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। देव ने यह अवश्य माना है कि 'यमक' के अन्त में देव है। 'यमक' के अन्तर्गत देव द्वारा निरूपित 'विद्याभक्तिक' का केसव ने कोई बयान नहीं किया है। विद्याभक्तिक में सर्वतोमय प्रवृत्ति द्वारा कला, कामधेनु, मनु, कमल वतागत अन्तर्मायिका का शोभा आचार्यों ने निरूपण किया है। देव द्वारा वर्णित शुद्धार्थ-विषय प्रयत्नार्थ-विषय वैराग्य रस-विषय आदि का केसव ने वर्णन नहीं किया है और केसव द्वारा निरूपित निरोध रचना अभाविक रचना नियमात्तर उच्च रचना बहिर्मायिका शुद्धोत्तर एकान्तोत्तर, व्यस्त समस्तोत्तर साधनोत्तर आदि की देव ने छोड़ दिया है। देव के मत में विषय-काम्य अत्यन्त हेतु है। धर्म का अभाव प्रवृत्ति निवृत्ति होने के कारण के विषयक को 'मृतक-काम्य' अथवा 'मृत-काम्य' ही मानते हैं।^१ केसव ने इस प्रकार का कोई बयान नहीं किया है। केसव ने 'अज्ञेयिका' का स्वतन्त्र अर्थकार के रूप में वर्णन किया है जब कि देव ने उसका 'विद्याभक्तिक' के अन्तर्गत उल्लेख किया है।

बास (मिहारीबास) तथा केसव

बास रीतिकाल के उन आचार्यों में से हैं जिन्होंने काम्य के रस, अर्थकार, रीति गुण शेष अन्तर्मायिका अन्त आदि सभी धर्मों का विवेचन किया है। रस चारों अन्तर्मायिका-विषय काम्य-निर्णय शृङ्गारनिर्णय नाय-अकाश (कोश), विष्णुपुराण भाषा (बोहे चौपाइयों में) अन्त अकाश, अन्तर्मायिका तथा अन्त-अकाश (अन्तर्मायिका-अकाश भाषा पद्य में) नामक अन्त इनके रस कहें जाते हैं। इनका कविताकाल संवत् १८०७ तक माना गया है।^२ 'काम्य-निर्णय' और 'शृङ्गारनिर्णय' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'काम्य-निर्णय' में काम्य-अर्थकार काम्य की भाषा काम्य की भाषा अथवा अर्थकार रस भाषा अनुभाव अर्थकार शुद्धोत्तरार्थकार, अन्तर्मायिका अर्थकार आदि सभी काम्यार्थों का वर्णन है। यहाँ रस तथा उसके अर्थकारों का निरूपण अन्त ही संक्षेप में किया गया है। रस का वर्णन इनके 'शृङ्गारनिर्णय' तथा 'रसचरित्र नायक' ग्रंथों में हुआ है। 'काम्यनिर्णय' अन्तर्मायिका अर्थकारों का ग्रंथ है। इसमें अर्थकारों का संक्षेप पाप एवं विस्तृत विवरण दिया गया है।

बास ने बर्त के प्रथम अर्थकार के नाम से एक बर्त बनाकर जैसे उपमादि उपेक्षादि अन्तर्मायिका अर्थकारों को उस बर्त में सम्मिलित किया है। उपमादि बर्त के अन्तर्गत अन्तर्मायिका अर्थकारों, पुष्पोपमा लुप्तोपमा अन्तर्मायिका उपेक्षोपमा अन्तर्मायिका उपमा, लुप्तोपमा अन्तर्मायिका, विवरण, निवर्तना लुप्तोपमा तथा प्रतिवस्तुपमा की रक्षा है और इनको अन्तर्मायिका अर्थकार के ही विभिन्न विवरण अन्तर्मायिका

१ अन्त यमक करि यमक के, बरतत येर अन्त ।

—रसचरित्र, पृ. ८६।

२ मृतक-काम्य विन्तु धर्म के अन्तर्मायिका धर्म के अन्त ।

—रसचरित्र, पृ. १०।

३ हिन्दी अर्थकार का अर्थकार, पृ. १००।

है। हास जी ने इस वर्ण के अन्तर्गत जिन बारह धर्मकारों को गिनाया है उनमें यद्यपि 'मातोपमा' का उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु फिर भी उगहोंने इस धर्मकार का विशेषण उपमादि वर्ण के अन्तर्गत ही किया है और उसे स्वतंत्र धर्मकार नहीं माना है। 'तुष्टोपमा' के धर्म-तुष्टोपमा, उग्रमान तुष्टोपमा बाणक-तुष्टोपमा उपमेय-तुष्टोपमा नाथकधर्म-तुष्टोपमा उपमेय-धर्म-तुष्टोपमा तथा उपमेयबाणकधर्म तुष्टोपमा—इन साठ धर्मों का वर्णन किया गया है। प्रतीप के पीछे भेर प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ और पंचम बतसाय गए हैं। दृष्टान्त, धर्मांतरगमास निरुद्धांग तथा तुल्यमोचिता नामक धर्मकारों का भी इस वर्ण में सविस्तार विवेचन किया गया है। केदार ने हास की पूर्वोपमा तथा उपमेयों-सहित 'तुष्टोपमा' को नहीं गिना है। उगहोंने 'उपमा' के बाईस धर्म ही भेर बतसाय हैं। दोनों भाषाओं के 'उपमा' के सामान्य लक्षणों का भाव समान है^१। 'मातोपमा' का वर्णन दोनों भाषाओं ने ही किया है, किन्तु दोनों के लक्षण आपस में नहीं मिलते। केदार ने 'मातोपमा' का लक्षण भी गिना है^२। हास ने 'मातोपमा' के चार रूपों का उल्लेख किया है। कहीं धनेक उपमेयों का एक उपमान होता है कहीं जितने धर्मों से एक उपमेय के धनेक उपमान बनवा एक धर्म से एक उपमेय के धनेक उपमान होते हैं तो कहीं धनेक उपमेयों के धनेक उपमानों का वर्णन होता है।^३

उदाहरणों से विदित होता है कि हास के 'अनन्तधर्म' तथा 'उपमेयोपमा' धर्मकार केदार की क्रमशः 'अतिशयोपमा' तथा 'परस्परुपमा' हैं। इसी प्रकार केदार के 'संशयोपमा' तथा 'मोहोपमा' नामक धर्मकार हास के क्रमशः 'सत्येह' तथा 'भ्रम' के मिलते हैं। केदार की 'धूयनीपमा' का सामान्य लक्षण हास जी के प्रतीपासकार के सामान्य लक्षण से बहुत कुछ साम्य रखता है। केदार उपमानों को दूषित ठहरा कर

१ कहीं जीव गुण होय सम जो क्यों है अनुसार ।

पासो उपमा कहत कवि केदार बहुत प्रकार ॥

—क. जि. प्र. १४, पं. ११

नहुँ काहु कम बरजिये उपमा सोई मान ।

—कालिदास, अं. २, पं. २१।

२ जो जो उपमा बीजिये, सो सो पुनि उपमेय ।

सो कहिये मातोपमा केदार कवि कुल नीय ॥

—क. जि. प्र. १४, पं. ४१।

३ कहुँ धनेक भी एक है कहुँ है एक धनेक ।

कहुँ धनेक धनेक की मातोपमा विवेक ।

बाहूँ एक की धनेक तहुँ, जितन धर्म से जोह ।

नहुँ एक ही धर्म से पूरन भासा होह ॥

—कालिदास, अं. १४, पं. १७, १८, २१-२२।

उपमेय की प्रशंसा करने में ही 'वृषजोपमा' मानते हैं^१। दास के प्रतीप' असंकार के सहाय का भी प्रायः यही मान है।^२ किन्तु केसव के उदाहरण के अन्तिम शब्दों को देखने से तो 'वृषजोपमा' का रूप दास के 'धर्मव्यय' का-सा ही बन जाता है। केसव द्वारा उल्लिखित 'उपमा' के शेष श्रेणियों की दास के अन्य किसी असंकार से समानता नहीं है। 'धर्मांतरव्यास' का सामान्य लक्षण दोनों व्याख्याओं में मिल गया है। केसव के 'धर्मांतरव्यास' का लक्षण यह है^३। उनके अनुसार धर्मांतरव्यास के जिन चार प्रकारों का निर्देश हुआ है वे ये हैं—युक्त अयुक्त अयुक्त-युक्त तथा युक्त अयुक्त। दास ने इसका लक्षण धीरे रूप इस प्रकार दिया है—

साधारण कहिए बचन कष्ट धरलोकि सुभाष ।
 साक्षी पुनि कुछ कीजिये प्रपद विसेयहि स्थाप ॥
 की विधेय ही कुछ कर साधारण कहि दास ।
 साधर्महि वैचर्य कर यह धर्मांतरव्यास ॥

(काव्यनिर्णय अ० ६० पृ० ११)

- १ सामान्य का विधेय से साधर्म्य से समर्पण ।
- २ विशेष का सामान्य से साधर्म्य से समर्पण ।
- ३ सामान्य का विधेय से वैचर्य से समर्पण ।
- ४ विधेय का सामान्य से वैचर्य से समर्पण ।

केसव के मेर भी दास द्वारा दिए उपयुक्त श्रेणियों से नहीं मिलते। केसव ने निवर्तना' असंकार के लक्षण में लिखा है—

कोनहु एव प्रकार से सत अथ असत समान ।
 करिये प्रपद निवर्तना समुक्त सकल सुभाष ॥

(क० प्रि० प्र० ११ अ० ४६)

१ वह वृषज लक्ष्य बचनिये वृषज भाष कुराय ।
 वृषज उपमा होति यह वृषज कह्य बनाय ॥

२ तो प्रतीप उपमेय को बन कीजै उपमान ।
 की काहु बिधि वर्ण को करो अनादर ठान ॥

३ अथ अनुपम वा प्रिय के जगकी उपमा कहूँ बेई रहे हूँ ॥

४ धीरे धानिये धर्म कहूँ धीरे बस्तु बखानि ।
 धर्मांतर को व्यास यह चार प्रकार सुजाय ॥

—क प्रि० प्र० ११ अ० ४६

बास ने इसका भक्षण और विविध रूप इस प्रकार दिये हैं—

एक किया है दैत जहाँ बुझी किया लजाय ।
 तत प्रसन्न हो कहत हैं, निरस्तमा कबिराय ।
 ज्ञान समेक नाममार्ग को एक कहै बरि डोक ।
 एक यह के मार्ग को पारि यह वह एक ॥

(काव्यनिर्णय, अं० ७१-७२)

केसव ने इसके भेदों का उल्लेख नहीं किया है । बास द्वारा बतलाए धनमय उपमेयोपमा प्रतीप श्रीती उपमा बुध्दान्त विकल्पर तुल्ययोकिता तथा प्रतिबस्तूपमा नामक प्रसंगकारों का केसव ने कोई उल्लेख नहीं किया है ।

दूसरे वर्ग में उत्प्रेक्षा अपहृन्नुति स्मरण ज्ञान तथा सन्नेह आते हैं । 'उत्प्रेक्षा' के पहले वस्तुप्रेक्षा, हेतुप्रेक्षा कर्मोत्प्रेक्षा तथा गुणोत्प्रेक्षा (गम्योत्प्रेक्षा) का वर्णन किया गया है । फिर 'अपहृन्नुति' के दो उपभेदों उत्पन्न विषया तथा अनुपपन्न विषया एवं 'हेतुप्रेक्षा' तथा 'कर्मोत्प्रेक्षा', प्रत्येक के दो-दो उपभेदों सिद्धविषया तथा अतिरिक्त विषया का निर्देश किया गया है । बास ने अपहृन्नुति के छ भेद छुड़ापहृन्नुति हेतुपहृन्नुति अर्थात्पहृन्नुति आनन्दपहृन्नुति कैलापहृन्नुति और कैतनापहृन्नुति बतलाये हैं । केसव तथा बास दोनों प्राचायों द्वारा दिये उत्प्रेक्षा के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है । केसव ने 'उत्प्रेक्षा' के भेदों को छोड़ दिया है । दोनों प्राचायों के (दुष्ट) 'अपहृन्नुति' प्रसंगकार के लक्षण का भाव प्रायः मिलता है । बास द्वारा बतलाए गए 'अपहृन्नुति' के जहाँ जहाँ का केसव ने कोई उल्लेख नहीं किया है । केसव ने स्मरण ज्ञान तथा सन्नेह प्रसंगकारों को छोड़ दिया है ।

तीसरे वर्ग में व्यतिरेक रूपक तथा उत्प्रेक्षा—इन तीन प्रसंगकारों को रखा गया है । 'परिणाम' प्रसंगकार का भी विवेचन इसी वर्ग में किया गया है । 'व्यतिरेक' प्रसंगकार के चार भेद बतलाए गए हैं^१ । केसव ने 'व्यतिरेक' के दो भिन्न ही भेद युक्ति तथा लक्ष्य बतलाए हैं । दोनों प्राचायों का 'व्यतिरेक' का लक्षण भी प्रायः में नहीं मिलता । 'रूपक' के अधिक तत्त्व हीनतत्त्व धर्म तत्त्व अधिक अनेक तथा हीन अनेक प्राक् पाँच भेदों के अतिरिक्त तीन अन्य भेद, निरूप परम्परित तथा समस्त विषयक भी बतलाए गए हैं । 'समस्तविषयक-रूपक' के प्रसंगकार बास ने उपमा

१ केसव और वस्तु में श्रीर कीजिये लक्ष ।

—क मि०, अ २ अ० १ ।

जहाँ कष्ट कष्ट सों नय समुच्छिन्न हैकत उत्पन्न ।

—काव्यनिर्णय, अं० १, पृ० २४ ।

२ पोषण करि अपमेय को रूपम है उपमान ।

नहि समान कहिये तहाँ है व्यतिरेक नृमान ।

कहु पोषण कहु रूपन कहु नहि नहि होत ।

बारि नाति व्यतिरेक है, यह जानत सब कोत ॥

—काव्यनिर्णय, अं० २, पृ० २७ ।

उत्प्रेसा परिणाम बादि भय भर्त्सकारों के आधार पर प्राये रूपक के उगमावाचक उत्प्रेसावाचक अपहृन्ति-वाचक परिणाम-वाचक तथा रूपक-रूपक बादि मिश्रित भेदों का भी उल्लेख किया है। उल्लेख भर्त्सकार के दो भेदों का वर्णन किया गया है। 'अतिरेक' का सक्षण तथा उसके भेद दोनों आचार्यों ने भक्षण प्रत्यय दिये हैं। दोनों आचार्यों के रूपक के सामान्य सक्षण का भाव प्राप्त में भिन्नता है यद्यपि दास का सक्षण अधिक स्पष्ट है। 'रूपक-रूपक' का दोनों आचार्यों ने समान रूप से निरूपण किया है, शेष भेद दोनों के भिन्न हैं। दास ने 'रूपक-रूपक' का केवल उदाहरण ही दिया है सक्षण नहीं दिया और इसे उस वर्ण के अन्तर्गत रखा है जिसमें अपना उल्लेख बादि भय भर्त्सकारों के आधार पर प्राये रूपक का वर्णन है। केवल ने इस प्रकार का कोई वर्गीकरण नहीं किया है। उन्होंने 'परिणाम' और उल्लेख भर्त्सकारों का वर्णन नहीं किया है।

दोनों वर्ण में प्रतिस्थायोक्ति उदात्त अधिक सख्य तथा विशेष नामक भर्त्सकार रखे गये हैं। 'प्रतिस्थायोक्ति' के पाँच भेदों भेदकातिस्थायोक्ति सम्बन्धातिस्थायोक्ति भवसाविस्थायोक्ति अक्रमातिस्थायोक्ति और अत्यन्तातिस्थायोक्ति का उल्लेख किया गया है। 'अत्युक्ति' का भी 'प्रतिस्थायोक्ति' के अन्तर्गत ही विवरण दिया गया है। 'प्रतिस्थायोक्ति' के अन्तर्गत सम्मानना प्रतिस्थायोक्ति अपना प्रतिस्थायोक्ति सापहृन्तिवादि धायोक्ति अक्रमातिस्थायोक्ति तथा अत्यन्तातिस्थायोक्ति भी बतलाये गए हैं। 'उदात्त' तथा 'अधिक' के दो-दो भेदों एवं 'विशेष' के तीन भेदों का भी उल्लेख किया गया है। केवल ने 'विशेष' के प्रतिरिक्त इस वर्ण के अन्तर्गत सभी भर्त्सकारों को छोड़ दिया है। दोनों आचार्यों के 'विशेष' का सक्षण भिन्न है।

अप्रस्तुतप्रमाण प्रस्तुताङ्कुर समाधोक्ति व्यावस्तुति आक्षेप पर्यायोक्ति तथा धायोक्ति को पाँचों अन्वयोत्प्रेसादि वर्ण में रखा है। दास ने अप्रस्तुतप्रमाण के पाँच भेद माने हैं, (१) कारण भिन्न कारण कथन (२) कारण भिन्न कारण कथन, (३) सामान्य भिन्न विशेष कथन (४) विशेष भिन्न सामान्य कथन तथा (५) मुख्य प्रस्ताव कथन (काम्यनिषेध छं० १, ४ पू० ११८)। 'आक्षेप' के दास द्वारा बतलाए गए तीन भेद ये हैं, उदात्तप्रमाण आक्षेप तथा व्यावस्तुति। समाधोक्ति के वाचकअन्वय तथा निरूपण एवं 'पर्यायोक्ति' के रचना से कथन तथा भिन्न करके कार्यवाहन बादि भेद दिए गए हैं। केवल ने अप्रस्तुतप्रमाण प्रस्तुताङ्कुर तथा 'समाधोक्ति' का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास ने केवल के व्यावस्तुति तथा निष्ठास्तुति (व्यावस्तुति) नामक दोनों भर्त्सकारों को अपनी 'व्यावस्तुति' में ही जपा दिया है। कदाच के 'आक्षेप' भर्त्सकार के सामान्य सक्षण का भाव दास से नहीं भिन्नता। केवल का सक्षण है—

कारण के कारण ही नहीं जीवत प्रतिवेध ।
आक्षेपक तात्तों कह्य बहु निबि बरनि तुमेय ॥

१ एवं में बहु मोह के बहुगुण सो उल्लेख ।
(क० प्रि प्र० १० अं० १)

—काम्यनिषेध, अं० ४६, १० १०१ ।

दास ने इसका सक्षम घोर रूप इस प्रकार दिया है—

जहाँ बरजिये कहि हँ अवाधि करो यह काज ।
मुकर परत कहि यात को मुख्य नहो कहँ राज ।
हुयि अपने कबन को फेरि कहँ कसु घोर ।
आसेपासकार को जानो लीनों और ॥

(काव्यनिर्णय, अं० ३२ ३६)

दास ने इसमें केवल छेद ही भेद बतसाए हैं। केवल ने नो कहे हैं। केवल ने 'पर्यायोक्ति' को 'उक्ति' धर्मकार का एक भेद माना है और दास ने इसे पृथक् ही धर्मकार बतसाया है। दोनों धावाओं द्वारा दिए 'पर्यायोक्ति' धर्मकार के लक्षणों का मात्र एक ही है। निमाहय—

घोरहि प्रतिबु धसानिये, कसु घोर की बात ।

अथ उक्ति तोहि कहत हैं बरनत कवि न अघात ।

(केवल—क० प्रि० ३० १२ अं० १)

अथ उक्ति घोरहि कहै, घोरहि के तिर कारि ।

(दास—काव्यनिर्णय अं० २ पु० २३)

'पर्यायोक्ति' का सक्षम दोनों धावाओं ने मिल दिया है। केवल की 'पर्यायोक्ति' दास का प्रथम प्रहर्षण (बिना यत्न के बितबाही दास का होना-काव्यनिर्णय अं० १६) है।

छठा धर्म विरुद्ध, निमाहना व्याघात विरुद्धोक्ति धर्मवति तथा विपम धर्म कारों का है। विरुद्ध धर्मकार के नौ भेदों (१) जाति से जाति का विरोध (२) जाति से क्रिया का विरोध (३) जाति से द्रव्य का विरोध (४) गुण से गुण का विरोध (५) क्रिया से क्रिया का विरोध (६) गुण से क्रिया का विरोध (७) गुण से द्रव्य का विरोध (८) क्रिया से द्रव्य का विरोध तथा (९) द्रव्य से द्रव्य का विरोध का उल्लेख किया गया है। निमाहना के प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ पंचम तथा षष्ठ भेद बतसाए गए हैं। 'व्याघात घोर' 'विपम' दोनों के प्रथम तथा द्वितीय दो-दो भेदों का वर्णन किया गया है। असंगति के प्रथम द्वितीय तथा तृतीय नामक तीन भेदों का उल्लेख हुआ है। दास जी का विरुद्ध धर्मकार केवल का 'विरोध' है किन्तु दोनों धावाओं द्वारा दिए सक्षम मिले हैं। दास द्वारा उल्लिखित 'विरुद्ध' के नौ भेदों का केवल ने कोई वर्णन नहीं किया है। केवल के 'विरोधमात्र' को दास ने छोड़ दिया है। केवल ने 'निमाहना' के दो भेद माने हैं दास ने छ। केवल तथा दास

१. कहत गुनत देखत जहाँ है नसु धनमिल बात ।

अनकारनुत धर्मनुत सो विरुद्ध अघात ॥

—काव्यनिर्णय, अं० १, पु० १२५।

केवलदास विरोधमय रचित बचन विचारि ।

ताओं कहत विरोध सध, कविहुल मुमुक्षु बुचारि ।

—क प्रि०, अ ६, अ १६।

केसवदास : जीवनी कला और कृतित्व

दास ने जमीनसे उन्मास में गुण-निजय-वर्णन के अन्तर्गत 'धनुप्रास का निरूपण किया है। इसी प्रकार में पुनर्निरूपण प्रकाश, यमक, भीष्मा और सिंहाबनोक्त आदि घट्टासंस्कारों का भी निरूपण किया गया है। बीसवें उन्मास में दास ने 'श्लेष' अर्थकार को विरोधाभास मुद्रा ब्रह्मोक्ति एवं पुनरुत्पन्नभासा के साथ लेकर घट्टा संस्कार स्वीकार किया है और साथ ही यह भी कहा है कि इसे कोई भी अर्थसंस्कार नहीं बतलाता। इसीसे उन्मास में विभासकारों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। आसिसे उन्मास में 'युक्त' का वर्णन है।

अन्मासकारों में दास ने धनुप्रास के ठिकानुप्रास तथा लाटानुप्रास दोनों का विवरण किया है। केसव धनुप्रास को अर्थकार ही नहीं मानते हैं। दास द्वारा उल्लिखित पुनर्निरूपण प्रकाश भीष्मा तथा सिंहाबनोक्त आदि अन्य अर्थसंस्कार भी केसव को मान्य नहीं हैं। अतएव उन्होंने इनको छोड़ दिया है। यमक ब्रह्मोक्ति और श्लेष का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है। 'यमक के सम्मिश्र' तथा 'अव्यय' 'युक्त' तथा 'युक्त' आदि अनेक अर्थों का उल्लेख कर केसव ने इस अर्थकार का विस्तृत विवरण किया है। दास ने इन दोनों का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास ने श्लेष के अर्थों का वर्णन नहीं किया है। केसव ने इसके विभिन्न अर्थों के हुए इस अर्थकार का बड़े विस्तार के साथ विवरण किया है। दोनों आचार्यों के 'ब्रह्मोक्ति' के अर्थों का साथ विवरण किया है। दोनों आचार्यों के अर्थों का वर्णन भी दिया है—

केसव सुखी बात में, बरखत देहो साथ ।
ब्रह्मोक्ति तासों कहै, लही सबे कविराय ॥

(क. प्रि. प्र. १२ पं. १)

तथा दास का वर्णन है—

यमक कालू है अर्थ को खेरि लगावै लख ।
ब्रह्मोक्ति तासों कहै, जो मुख अमृत अर्थ ॥

(काम्यनिर्घण्टु पृ. २०६)

विभासकारों का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है परन्तु दास ने कुछ अधिक विस्तार के साथ किया है। दास ने विभासकारों में प्रसन्नोत्तरविध, गुप्तोत्तर, व्यस्तोत्तर, एकान्तोत्तर, मानपासोत्तर, कमलवत्सोत्तर, कमलवत्सोत्तर, अमृतोत्तर, विप्रोत्तर—(१) अन्तरात्मिका तथा (२) बहिरात्मिका आकाशविज—(१) आकाशविज

१ श्लेष विरोधाभास है अर्थसंस्कार दास ।
मुद्रा एवं ब्रह्मोक्ति पुनः पुनरुत्पन्नभासा ॥

इन पाँचों को अर्थों में मूल्य नहीं म कोइ ।
अरवि अर्थ मूल्य सकल अर्थसंस्कार में होइ ॥

—काम्यनिर्घण्टु पृ. १, २, ३, ४

केसवदास : श्रीमती कला और कृतित्व

[illegible]

जो जो अपना शीर्षक, जो जो पुनि उपदेश ।
जो किये मासोपमा, केवल कहि सुन गेय ॥
(६० प्र० प्र०)

वा पचाकर की मासोपमा' का लक्षण है
मासोपमा उपमेय इह,

मासोपमा' का लक्ष्य है, तब बहुत उपमान ॥
मासोपमा उपमेय एक, तब बहुत उपमान ॥ (बदमा)

ना पपाकर की मासोपमा' का लक्षण है (पदमातर ५० ४१)
मासोपल उपमेय इक, तर्क बहुत उपमान ॥
इसी प्रकार केषव द्वारा उल्लिखित श्लेष रूपक व्यतिरेक दीपक भासेप हेतु तथा
अन्तराख्यास धातुकारों के भेद पपाकर के इन्हीं धातुकारों के भेदों से नहीं मिलते।
पपाकर में श्लेष क धनेक वर्षों धनेक धातु तथा धनेक-अन्तराख्यास रूपक के धातु
सम धीर श्रुत धनेक रूपक तथा धातु सम धीर श्रुत तदुप एवं साधयधरूपक
व्यतिरेक के धातु श्रुत तथा सम धातु के प्रथम द्वितीय तथा तृतीय हेतु के
प्रथम तथा द्वितीय, धीर धातुकारों के (१) सामान्य से द्वितीय का समर्थन तथा
(२) विशेष से सामान्य का समर्थन आदि भेद बतलाए हैं। पपाकर में 'दीपक' के

१. हमने निम्न में कौ-समकर्म दान की जिक्र की है कि इसमें कदाकर की को नाम
सम्बन्धी सचकता नहीं मिली है, समझ है कदाकर न हो।—द्विती सार्वजन्य का इतिहास पृ. ३३६।

कोई भेद नहीं दिए हैं। धातुतिथीपक भासादीपक तथा कारकदीपक धातु ही धातु
कार माने गए हैं। केदार ने 'उत्प्रेक्षा' 'परिवृत्ति' तथा 'अपहृत' के कोई भेद नहीं
किए हैं किन्तु पद्याकर ने 'परिवृत्ति' के प्रथम तथा द्वितीय उत्प्रेक्षा के वस्तुप्रेक्षा
हेतुप्रेक्षा तथा कर्मप्रेक्षा भेद बतलाते हुए 'वस्तुप्रेक्षा' के उक्त-विषया तथा अनुक्त
विषया और दोष दोनों प्रकार की उत्प्रेक्षाओं के सिद्ध विषया तथा अविद्ध विषया दो
हो दे दिए हैं और अपहृत के छ भेद बतलाए हैं। केदार के विरुद्ध कम, बचना
प्राचिन अयोधित्वाधिकारकोक्ति अमिठ, पुस्त सुविद्ध प्रविद्ध विपरीत समक
तथा प्रहेसिका प्राचि धर्मकारों का पद्याकर ने वर्णन नहीं किया है। केदार ने बिना
लंकार के अनेक धेरी एवं कर्णों का वर्णन किया है पर्याकर ने केवल इसके दो धेरी
का ही उल्लेख किया है^१। पद्याकर ने विशेष धर्मकार के प्रथम द्वितीय तथा
तृतीय—इन तीन धेरी का वर्णन किया है। केदार ने इसके कोई भेद नहीं दिए हैं।
केदार द्वारा दिए इस धर्मकार के सामान्य लक्षण का भाव पद्याकर के किसी भेद
से नहीं मिलता है। केदार ने 'पर्यायोक्ति' का कोई भेद नहीं बतलाया है पद्याकर ने
इसके दो भेद^२ दिए हैं। केदार की 'पर्यायोक्ति' का सामान्य लक्षण पद्याकर के किसी
भेद से साम्य नहीं रहता है। पद्याकर ने 'व्याजस्तुति' के तीन भेद दिए हैं^३। केदार
ने 'निम्ना में स्तुति' को ही 'व्याजस्तुति' माना है और 'स्तुति में निम्ना' को व्याजनिम्ना
(निम्नास्तुति)। तीसरे प्रकार (अग्न्य-स्तुति में अग्न्य-स्तुति) को केदार नहीं मानते
हैं। उन्होंने 'व्याजस्तुति' को व्याजनिम्ना (निम्नास्तुति) से भिन्न धर्मकार बतलाया
है। केदार की 'व्याजनिम्ना' (निम्नास्तुति) का लक्षण पद्याकर की 'व्याजनिम्ना'^४
के लक्षण से नहीं मिलता है। केदार ने 'विभावना' के दो भेद प्रथम तथा द्वितीय दिए
हैं पर्याकर ने ३ प्रथम द्वितीय, तृतीय चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ। दोनों भाषाओं
की 'प्रथम विभावना' का लक्षण परस्पर मिलता है। केदार की 'द्वितीय विभावना'
पर्याकर की 'तृतीय विभावना' है। पर्याकर के दोष धेरी को केदार ने छोड़ दिया
है। निर्वर्णनात्मक लक्षण केदार ने इस प्रकार दिया है :

१ बिना बचन को प्रत्य को उत्तर नहीं प्रकार ।

—पर्याकर ज = १४७, पं ६६।

२ पर्यायोक्ति सुगम नहीं पुरे बचन रचाना ।

साधन निमित्त करि काव को यो है विधि सर मान ॥

—पर्याकर ज = १२१ सू २४।

३ निम्ना में स्तुति है नहीं, स्तुति में निम्ना बन ।

अग्न्य-स्तुति में अग्न्य की, स्तुति मापत है तब ॥

या बिना तीव्र प्रकार की व्याजस्तुति पदमान ॥

—पर्याकर ज = १२१ १२१ (प्रमाण) पं २४।

४ नहीं एक की निम्ना किये, निम्ना और ही होत ।

कहत व्याजनिम्ना तहाँ से कवियन के धेन ॥

—पर्याकर ज = १२०।

कीनहु एक प्रकार है, सत धव असत समान
करिये प्रगट निबर्हना, समुझत सकल सुखान ॥

(क० वि० प्र० ११ अ० ४२)

कदाच ने इससे मेव नहीं किए हैं । पद्माकर ने इसका लक्षण और विभिन्न रूप इस प्रकार लिखे हैं—

जु सम-बाध्य जुम धरव को, करव एकसारोप ।
को सो परनि निबसना ताहि कहत करि सोप ॥
बर्ण-वम जु धरव्य में बर्य जु बर्णहु माहि ।
धर्म धरव्य हु को कहत बिय निबसना ताहि ॥

(पद्मामरख अ० ५१ और ५७)

जु निज धवस्या बों करे, मनो-पुरो फल-बोव ।
सो सबर्ण-धरवर्ण जुत, यों निबसना सोव ।

(पद्मामरख अ० ५२)

उपमृक्त २७ धवकारों को छोड़कर बिनका वर्णन दोनों ही धात्रियों ने समान रूप से किया है, रसभोगमा धनम्वय उपमेवोपमा प्रतीप परिणाम उन्नेख स्मरण भ्रांति सन्नेह हेत्वपङ्कति पर्यस्तापङ्कति मेवकातिषयोक्ति सम्बन्धातिषयोक्ति धक्कातिषयोक्ति चपमातिषयोक्ति धत्पन्थातिषयोक्ति तुल्यमागिता धावृत्तिदीपक प्रतिबस्तूपमा वृष्टान्त विनोक्ति समासोक्ति परिकर परिकरचक्रुर अपस्तुवप्रसंसा प्रस्तुवाङ्कुर धसंभव धसंगति विषम सम विविध धधिक धस्य धग्योव्य व्याघात, कारणमात्रा एकावली छार यथासक्य पर्याय परित्यक्ता विकल्प समुच्चय कारक-दीपक समाधि प्रत्यनीक काव्यार्वापति काव्यलिंग विकस्वर प्रौढोक्ति संभावना मिथ्याभ्यवसित ललित प्रह्वय विपारम उल्कास धवज्ञा धनुज्ञा मुद्रा रत्नावली तद्बुध धतब्धुन धनुधुन भीलित सामान्य जग्गीलित विधीयक गूढोत्तर पिहित, व्यामोहित गूढोक्ति विदूढोक्ति मुणित लोकोक्ति लैकोक्ति भाविक उदात्त धत्पुक्ति निवक्ति प्रतिषेध तथा विधि (८७) धर्माकारों का पद्माकर ने केशव से धधिक वर्णन किया है । उदाहरणों तथा लक्षणों के देखने से विहित होता है कि पद्माकर के भ्रांति सन्नेह तथा उपमेवोपमा धर्माकार केशव की कमजब मोहोपमा 'संभवोपमा' तथा 'परस्पररोपमा' हैं । केशव का व्यधिकरणोक्ति धर्माकार पद्माकर की 'प्रथम धसंगति' से मिलता है । इसी प्रकार केशव का 'पर्यायोक्ति' धर्माकार पद्माकर का प्रथम

१. जु धसंगति कारन कहूँ कारने धीरे ठाहि ।

तिम उरबनि नक-छत लगे बिषा सीति उर माहि ॥

—पद्मामरख अ० १४५, गु २१ ।

धीरहि में कीर्त प्रगट धीरहि को गुन होय ।

उक्ति नई व्यधिकरण की सुगत होत संतोष ॥

—क वि० प्र० १२ अ० ८

ग्रहर्पण' है। केदार ने 'पर्यायोक्ति' का लक्षण भी दिया है^१। पद्याकर के 'प्रथम ग्रहर्पण' के लक्षण का भी यही भाव है^२। रूपक व्यङ्ग्युक्ति, उल्लेख इत्यादि व्यतिरेक विरोधाभास विरोधोक्ति व्यासस्तुति वक्रोक्ति तथा सूक्ष्म आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के सामान्य लक्षणों का भाव एक ही है। बीपक सहोक्ति मामादीपक व्यासनिन्दा तथा विरोध स्वमात्रोक्ति अर्थान्तरम्यास आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के लक्षण भिन्न हैं।

पंचदशांशकार प्रकरण के अन्तर्गत पद्माकर ने रसवत्, प्रेम ऊर्ध्वस्थित समाहित भावोदय भावसन्धि और भावसम्बन्धता आदि सात रस एवं आचार्यलंकारों तथा प्रत्यक्ष अनुमान उपमान ध्वज्य (द्युतिवाक्य स्मृतिवाक्य मायम आचार्य और प्रत्यक्ष तुष्टि) अर्थापत्ति अनुपमत्व्य दितिह्य तथा संभव आदि आठ प्रमाणालंकारों का विवेचन किया है। केदार ने रसवत् प्रेम ऊर्ध्वस्थित तथा समाहित का वर्णन किया है किन्तु दोनों आचार्यों के लक्षणों में अन्तर है। भावोदय आदि आचार्यलंकारों तथा अष्टप्रमाणालंकारों को केदार ने छोड़ दिया है। पद्माकर द्वारा वर्णित सृष्टि-संकर प्रकरण का भी केदार ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

(२) रस तथा नायक-नयिका-भेद विवेचन के क्षेत्र में

चिन्तामणि तथा केदार

चिन्तामणि ने अपने 'कविकुसुमकल्पतरु' ग्रन्थ के एकादश प्रकरण में अमिषा लक्षणा और व्यञ्जना के अन्तर्गत भाव भेद का साधारण कथन कर शृङ्गार रस के आलम्बन नायक-नयिका और उद्दीपन विभाव का विस्तृत वर्णन किया है। छठे और सातवें प्रकरण में क्रमशः अनुमान सात्त्विक और संचारी भाव तथा हास भाव का वर्णन किया गया है। आठवें में शृङ्गार रस तथा अन्य आठ रसों का उनके प्रयोगों के सहित विरोध विवेचन है।

चिन्तामणि ने नायिका का सामान्य लक्षण देते हुए उसके सर्वप्रथम दिव्य धरिद्व्य और दिव्यादिव्य आदि तीन भेद किये हैं^३ जो केदार ने छोड़ दिये हैं। नायिकाओं के तीन सामान्य भेद स्वकीया परकीया और सामान्या चिन्तामणि तथा केदार

१ कीर्तन एक अष्टुष्ट से अनन्त किये जा होय ।

सिद्धि आपनै इष्ट की पर्यायोक्ति होय ॥

—क० प्रि प्र० १९ पं० ११ ।

२ आश्रित-कन सिद्धि-वचन विन प्रथम ग्रहर्पण होय ॥

—रसप्रकरण प्र० २१ पं० ११ ।

३ आलम्बन शृङ्गार को त्रिप नायका भवति ।

कतमि प्रीति विधासिनी सुन्दरता की भावि ।

दिव्य धरिद्व्य कही सुकवि दिव्यादिव्य विचारि ।

निदिप नायका जगत में प्रथम बहु निहारि ।

—क० प्रि प्र० ११ पं० ११ पं० ११ ।

दोनों ही शाखाओं को माय्य है। केदार के ही समान चिन्तामणि ने भी सामान्या का विवरण नहीं दिया है। 'स्वकीया' के मुग्धा मय्या और प्रीड़ा मेरों का भी दोनों शाखाओं ने समान-रूप से वर्णन किया है किन्तु अन्तर्गत मेरों में अन्तर है। चिन्तामणि ने 'मुग्धा' के छः भेद बतलाए हैं, यय-समिध अभिविहितपीवना अभिविहितकामा विदितमनोमयपीवना मयोद्धा और विभयमनयोद्धा (क० कु० तृ० छं० ७८-८२)। केदार के अनुसार 'मुग्धा' के चार भेद हैं, नवनमनु, नवपीवना नवसधनगा और लज्जा प्रादुरति। केदार ने 'मुग्धा' की सुरति और मान का पृथक् वर्णन किया है जो चिन्तामणि ने छोड़ दिया है। चिन्तामणि ने 'मय्या' के धाक्यपीवना धाक्यमयना विविध मुरटा तथा प्रगल्भमयना नामक भेद किए हैं (क० कु० तृ० छं० १०१)। ये चारों भेद केदार द्वारा उल्लिखित क्रमशः धाक्यपीवना प्रादुर्भूतमनोमया विविधमुरटा तथा प्रगल्भमयना से मिलते हैं। चिन्तामणि के अनुसार प्रीड़ा के भेद हैं प्रीक्षपीवना मदनमय्या रतिप्रीतिमयी तथा सुरतिमोक्षपरमया (क० कु० तृ० छं० ११५-११८)। केदार ने प्रीड़ा के समस्तसकोविदा विविधविभ्रमा यक्यमति नायिका तथा मय्या पति भेद किए हैं जो चिन्तामणि से नहीं मिलते। चिन्तामणि ने मुग्धा मय्या तथा प्रीड़ा धारि तीनों सामान्य मेरों के लक्षण उदाहरण-सहित दिए हैं परन्तु अन्तर्गत मेरों के केवल उदाहरण ही दिए हैं। केदार ने मुग्धा मय्या तथा प्रीड़ा धारि सामान्य मेरों के लक्षण नहीं दिए हैं, केवल उदाहरण दिए हैं किन्तु अन्तर्गत मेरों के लक्षण और उदाहरण दोनों ही दिए हैं। 'मान' की वधा में मय्या तथा प्रीड़ा के बीरा अधीरा और बीराधीरा धारि भेद दोनों ही शाखायें मानते हैं अन्तर केवल इतना है कि चिन्तामणि ने 'प्रीड़ा बीरा के अन्तर्गत सावहिन्वा बीरा सादराबीरा और रसु बाहीना बीरा के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। चिन्तामणि द्वारा बतलाए ज्येष्ठा-कनिष्ठा मेरों को केदार ने स्वीकार नहीं किया है।

'परकीमा' नायिका क ऊद्धा और अनुद्धा मेरों का वर्णन दोनों ही शाखाओं ने किया है। चिन्तामणि ने ऊद्धा के अन्तर्गत सुरतिमोपना चतुरा कुलटा सखिता अनुद्यमना और सुखिता मेरों (क० कु० तृ० छं० १२६) तथा चतुरा और अनुद्यमना के क्रमशः नवनमचतुरा और क्रियाचतुरा (क० कु० तृ० छं० १२८) एवं प्रथम द्वितीय और तृतीय अनुद्यमना (क० कु० तृ० छं० १३७) उपमेरों का उल्लेख किया है। चिन्तामणि ने प्रथम पाँच मेरों के लक्षण-उदाहरण-सहित दिए हैं छठी सुरिता का केवल उदाहरण ही दिया है (क० कु० तृ० छं० १४१)। केदार ने इन मेरों को छोड़ दिया है।

अवस्था के अनुसार चिन्तामणि ने केदार के ही समान प्रसिद्ध स्वाधीनपठिका नासकसम्भा विरहोत्फण्टिता विप्रसम्भा खण्डिता कलहातरिता प्रोषितमयु का अथवा प्रोषितपठिका और अभिसारिका धारि पाठ नायिकाओं के नाम दिया है (क० कु० तृ० पृ० १४४-१४५)। केवल अन्तर इतना है कि केदार ने चिन्तामणि द्वारा निरिष्ट विरहोत्फण्टिता तथा कलहातरिता के स्थान पर क्रमशः खल्ला और अभिसंधिता नाम दिये हैं। चिन्तामणि ने पाठों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा, मय्या प्रीड़ा तथा प्रीक्षा और सामान्या धारि मेरों के अन्तर्गत उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, केदार ने

केवल धर्मसारिका मेव के अन्तर्गत स्वकीया परकीय तथा सामान्या नायिका के धर्म सार का सङ्ग्रह दिया है और प्रेमामिसारिका, कामामिसारिका तथा गर्वामिसारिका के उदाहरण दिए हैं। चिन्तामणि ने इन में से कोई वर्णन नहीं किया है। चिन्तामणि ने धर्मसारिका के अन्तर्गत ज्योत्स्नाधिसारिका तयोमिसारिका तथा त्रिभामिसारिका के सङ्ग्रह उदाहरण-सहित उपस्थित किए हैं (क० कु० पृ० ७१०-२१६)। केसव ने इन तीनों का कोई उल्लेख नहीं किया है। उसमा, मध्यमा और धनमा नायिकाओं के मेरों का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है। केसव के भाति के अनुसार विदे वद मेरों पद्मिनी विभिषी संक्षिप्ती और इतिमयी दर्शन के मेरों तथा नायक नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं एवं प्रथम मिलन स्थानों का वर्णन चिन्ता मणि ने नहीं किया है।

चिन्तामणि ने सर्वप्रथम नायक का सामान्य वर्णन^१ देकर नायक के बीरोदात्त बीरोदात्त बीरवर्धित और बीरप्रधान मेरों का उल्लेख किया है। फिर शृंगार रस के नायकों में अनुकूल वक्षिण शठ और मृष्ट के नाम लिए हैं। केसव ने अनुकूल धारि चारों का तो वर्णन किया है किन्तु बीरोदात्त धारि मेरों को छोड़ दिया है। चिन्तामणि ने केसव द्वारा उल्लिखित अनुकूलादि नायकों के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' रूपमेरों का वर्णन नहीं किया है।

सखी, दूती धारि का वर्णन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आता है। केसव ने सखी तथा उसके कर्मों का वर्णन किया है। चिन्तामणि ने इनका कोई उल्लेख नहीं किया है। चिन्तामणि ने चार प्रकार के उद्दीपन बतलाए हैं आसम्भन (नायक नायिका) के पुनः, इषित (चेष्टा), अलङ्कृति और लटस्य उद्दीपन^२। पुनः के अन्तर्गत रूप दीर्घ धारि का उल्लेख किया गया है। अलङ्कृति में आभूषण हार धारि और चेष्टा में हाव भाव धारि का वर्णन किया गया है और लटस्य के अन्तर्गत अलम्बन धारि वस्तुओं को गिनाया है^३। केसव ने उद्दीपन के अन्तर्गत केवल नायक नायिका का एक दूसरे की ओर देखना आसम्भन, आतिथन, लज्जान्न रश्मिन् पुनः मदन तथा स्पर्श का उल्लेख किया है। वे वस्तुएँ चिन्तामणि द्वारा निदिष्ट उद्दीपन के 'चेष्टा' नामक मेर के अन्तर्गत आ जाती हैं।

चिन्तामणि ने सात्विक भावों के अन्तर्गत स्नेह स्तन, रोमांच, स्वरमय, कंप, वैभवं, धाम्नी और धनवीर्य का उल्लेख किया है और उन सब को केवल एक ही

१ सकल वरम पूत निपुत जन निष्कम पुरो होइ।

ठाकी नायक कहत हैं कवि पंडित सब कोइ।

—क० कु० पृ० ७१, नायक-वर्णन अ० १ पृ० १४४।

२ आलम्बन पुन इषिती अलङ्कार ए तीन।

पुनि लटस्य बीबी कह्यो उद्दीपन ए बीन।

—क० कु० पृ० ७१, पृ० १४४ अ० ४२।

३ क० कु० पृ० ७१, पृ० १४४ अ० ४२-४३।

उदाहरण में दिखता दिया है^१। कैसव ने 'अवसीन' के स्थान पर 'प्रसाप' पाठवाँ सात्त्विक भाव माना है। उन्हींमें इनका कोई उदाहरण नहीं दिया है, कैसव नाम ही गिनाए हैं। कैसव द्वारा उल्लिखित संचारीभावों में मित्रा बोहू विवाद और आशयार्थ के स्थान पर चिन्तामणि ने क्रमशः ईर्ष्या धर्म्य अवहित्वा तथा निवर्तक शब्दों का प्रयोग किया है। कैसव के १४वें संचारी 'आदि' को छोड़ कर छेपे संचारी भाव दोनों आचार्यों के समान हैं। चिन्तामणि ने प्रत्येक के अक्षरों और उदाहरण दिए हैं पर कैसव ने केवल सामान्य लक्षण देकर उनके नामों का उल्लेख-गान ही किया है। स्वामीभावों की संख्या एवं नाम भी दोनों आचार्यों के आपस में मिलते हैं। कैसव ने 'स्वामीभाव' का उल्लेख नहीं किया है केवल नाम ही दिया है। किन्तु चिन्तामणि ने उसके स्वरूप का खुब बोलकर वर्णन किया है (क० कु० तब पृ० १७)। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित रसमात्र भावाभास भावोदय भावसन्धि तथा भावसंयमता (क० कु० तब पृ० २१६-२१९) आदि का कैसव ने वर्णन नहीं किया है। इनके के अन्तर्गत चिन्तामणि ने मान हाव माधुर्य हेमा वम सीमा विनास विच्छिन्नि विभ्रम क्लिप्तकषित मोह्यामित क्लृप्ति विभ्रोक नसित कुतूहल चकित विह्वल और हास (क० कु० तब, छं० १३) — इन प्रचारों का उल्लेख उनके अक्षरों और उदाहरण के साथ किया है। इनमें भी कैसव के 'मव' और 'बोव' हाव नहीं हैं। कैसव क वर्णन से इसमें 'मान', हाव माधुर्य वम कुतूहल चकित और हास अधिक है।

भूमांर रस के दो भेद संयोग और वियोग दोनों आचार्यों को ही मान्य हैं, किन्तु चिन्तामणि कैसव द्वारा बतसाए दोनों भेदों के 'प्रकाश' और 'अच्छन्न' उपभेदों का वर्णन नहीं करते हैं। चिन्तामणि और कैसव दोनों ही वियोग भूमांर के चारों भेदों पूर्वानुराग मान प्रवास और कक्षा को मानते हैं। 'पूर्वानुराग' के अन्तर्गत विरह की स्वीकृत दस रसार्थों 'मान' के लघु मध्यम और बृहत् भेदों तथा मान-मोचन के छ' उपायों का वर्णन भी दोनों ही आचार्यों ने समान रूप से किया है अन्तर केवल इतना है कि चिन्तामणि ने कैसव के छेठे मान-मोचन क उपाय 'असंगविषय' के स्थान पर 'रसान्तर' लिखा है (क० कु० तब छं० १८)। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित 'मान' के अन्य दो भेदों प्रणय तथा ईर्ष्या मान (क० कु० तब, छं० २९) का कैसव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। चिन्तामणि के बतसाए हुए प्रवास के भेदों 'मविष्य' और 'मृत' (क० कु० तब छं० ५१) को कैसव ने छोड़ दिया है। कैसव द्वारा उल्लिखित प्रवास की भयविभ्रम धमिहा विरहनिवेदन आदि अवस्थाओं का चिन्तामणि ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

१ स्वेद तम रोमाणि कृहि, पुनि शूर भंग बनाइ।

बहुरि कम्प वैषम्य गति भयू अवसीनाइ ॥५॥

आठ सात्त्विक ए कृत सज्जन जन मन धानि।

इनके दैव उदाहरण एक कवित में आनि ॥६॥

विभिन्न रसों का वर्णन करते हुए केशव ने प्रत्येक रस का सक्षम उदाहरण सहित संक्षेप में दिया है। साथ ही कदम्ब रीति भीर, मयानक भीमत्स और मद्भुत—इन छः रसों के कपोल धरुम गौर, वयम नील तथा पीत वर्णों का भी उल्लेख किया है। चिन्तामणि ने प्रत्येक रस का लक्षण देते हुए उसके स्वाधी मान विभान अनुभाव, संचारी भाव तथा रस विशेष के वर्ण और रसता का सुविस्तार वर्णन किया है। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित कदम्ब रीति भीर मयानक भीमत्स और मद्भुत—इन पाँच रसों के वर्ण केशव के समान ही हैं। केशव ने शेष तीन रसों के वर्णों का उल्लेख नहीं किया है। केशव ने हास्य रस के चार भेद मंदहास कमहास अतिहास और परिहास बतलाये हैं। चिन्तामणि ने हास्य रस के छ भेदोन्मिष्ट हसित विहसित उदसित अपहसित तथा अतिहसित का उल्लेख किया है और साथ ही यह भी बतलाया है कि सप्तम कोटि के शेष 'स्मित' और 'हसित' प्रकार की हँसी हँसते हैं मध्यम कोटि के शेष 'विहसित' और 'उदसित' प्रकार की तथा सप्तम कोटि के 'अपहसित' और 'अतिहसित' प्रकार की (क० कु० टक छं० १३ १७)। केशव के मंदहास कमहास तथा अतिहास भेद चिन्तामणि के क्यस स्मित विहसित और अतिहसित से मिलते हैं। केशव ने केवल भेद ही मिले हैं। चिन्तामणि ने केशव के 'परिहास' को छोड़ दिया है। दूसरी ओर चिन्तामणि के भीर रस के तीन घेयों मुखभीर हामभीर और दयाभीर (क० कु० टक पू० २०५ २०७) का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। चिन्तामणि तथा केशव दोनों भाषाओं के अधिकांश लक्षण भिन्न हैं। इस प्रकार के कुछ सवाल अभी प्रस्तुत किये जाते हैं।

स्वकीया का लक्षण

सम्पत्ति विपत्ति जो परलक्ष्णें तथा एक अनुहार।

तारको स्वकीया जानिये, मन कम बचन विचार ॥

(क० छि० प्र० ३, छं० १५)

जो अपने ही बुद्ध में प्रीतिबंध निरधारि।

कहत स्वकीया नायका अंगन मुकनि विचारि।

(क० कु० टक, छं० ७३)

परकीया का लक्षण

सब तैं पर परतिद जो ताकी पिया नु होइ।

परकीया तातों कहूँ, परन पुराने मोइ ॥

(१० छि०, प्र० ५, छं० १७)

प्रीति करे पर-पुद्गल छों परकीया तो नारि।

(क० कु० टक, छं० १२५)

भाव का लक्षण

मानन लोभन बचन मन प्रकटत मन की बात।

ताही सों भव कहत है भाव कविन के ताठ ॥

(१० छि०, प्र० १, छं० १)

मन बिकार कहि मान सों बरम बासनाकूप ।
बिबिध प्रणय करता कहत ताको रूप धनुष ॥

(क० कु० ठर, छ० ५०)

हेला का लक्षण :

पूरख प्रेम प्रताप सैं धुलत मान लनाय ।
सो हेला बिहि हरत हिय राखा बीचजराय ॥

(२० भि, प्र० १, छ० १८)

जहाँ देख दृग जोई मुख इमिअ प्रति धनिकत ।
अधिक प्रगट मन भाव सैं हेला सो कहि जात ॥

(क० कु० ठर, छ० १७)

पूरानुराग का लक्षण

देखति हीं [पुति बंधतिहि] उपचल परत अनुराग ।
दिन देखे दुख देखिये, सो पुरख अनुराग ॥

(२० छि, प्र० ५, छ० १)

होइ मिलन सैं प्रपम ही सो पुरख अनुराग ॥

(क० कु० ठर, छ० १२)

शृङ्गार रस का लक्षण

रतिमति की प्रति जगुरी, रतिमति बंध बिचार ।
ताही सों सब कहत हैं कवि कोविद शृंगार ॥

(२० छि, प्र० १, छ० १७)

जानें बाई रति सुखी मन की लयन धनुष ।
बिम्बामनि कवि कहत हैं सो शृंगार सङ्ग ॥

(क० कु० ठर, छ० १)

दोनों पाषाणों के कुछ लक्षणों के भाव आपस में मिलते हैं। किन्तु ऐसे लक्षण कम ही हैं। भाव-साम्य रखने वाले कुछ लक्षण भी यहाँ दिए जाते हैं।

मध्या धीरा का लक्षण

बीरा जोसै बळ बिनि वाली बिधम धवीर ।

(२० छि०, प्र० १, छ० ५७)

अप्य जोप प्रगट कु तिब मध्या बीरा होइ ।

(क० कु० ठर, छ० २०२)

ऊढ़ा-ममूदा परकीया का लक्षण

पड़ा होत बिबाहिता धनब्याहिता धनुष ।

(२० छि०, प्र० १, छ० १५)

ऊढ़ा होइ बिबाहिता, अविबाहिता धनुष ।

(क० कु० ठर, प्र० १११)

मंदाहास का लक्षण

विकर्ताहि नयन कपोल कस्तु वसन वसन के बास ।

मन्दाहास^१ ताको कहै कोविद मेषावशात ॥

(२० प्रि०, प्र० १४, छं० ३)

सिमत कहि विकसित वृषन कस्तु जल परै ज वसत ।

(क० कु० तव, प० २११)

उद्दीपन विभाव का लक्षण

जिनते वीपति हाति है ते उद्दीपन दखान ।

(२० प्रि०, प्र० ६, छं० २)

जे रस उद्दीपित करै ते उद्दीपन जानि ।

(क० कु० तव छं० ३)

चिन्तामणि के लक्षण प्रायः अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट हैं ।

मतिराम तथा केसव

महाँ 'रसराज' के आचार पर ही केसव की मतिराम से तुलना की गई है । मतिराम ने अपने 'रसराज' नामक ग्रन्थ में शृङ्गार रस तथा उसके विभिन्न अवयवों का ही निरूपण किया है । अन्य रसों का वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं है । शृङ्गार नायक और नायिका का आलम्बन प्राप्त करके होता है । इस कारण यहाँ नायक-नायिका भेद का भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है^१ । मतिराम ने नायिका की सामान्य परिभाषा यह दी है^२ । केसव ने नायिका के लक्षण का उल्लेख नहीं किया है । नायिकाओं के स्वीकृत तीनों भवों स्वकीया परकीया तथा वनिका अथवा सामान्या का मतिराम ने निरूपण किया है (रसराज, छं० १) । केसव ने सामान्या अथवा वनिका का वर्णन नहीं किया है केवल उल्लेख मात्र कर दिया है । 'स्वकीया' के भेद मुग्धा मध्या तथा प्रीड़ा दोनों ही आचार्यों ने माने हैं परन्तु दोनों आचार्यों द्वारा दिए गए उपभेद भिन्न हैं । मतिराम ने 'मुग्धा' के चार भेद किए हैं अज्ञातबीबना ज्ञातबीबना नजोड़ा तथा विध्वंसनजोड़ा (रसराज पृ० २७६-२७८) । उन्होंने मध्या तथा प्रीड़ा के कोई अन्तर्भेद नहीं किए हैं । केसव ने मुग्धा मध्या तथा प्रीड़ा तीनों प्रकार की नायिकाओं के चार-चार उपभेदों का वर्णन किया है । उन्होंने मुग्धा के लक्षणावली

१ केसव का 'मन्दाहास चिन्तामणि का 'सिमत' है ।

२ जेठ नायका नायकहि आसंविता तिवार ।

ताते भरनो नायका-नायक भति अनुसार ॥

—रसराज पृ० २७१ अं० ४ ।

३ उपजत जाहि विलोक नै चित-बीच रम भाव ।

ताहि बखानत नायका जे प्रवीन कविराम ॥

—रसराज पृ० २७१ अं० ५ ।

नवमौनाभूषिता नवजगन्मन्त्रा श्रीर लज्जाप्राहरति मध्या के प्राक्कृषीवना प्रमत्त
पचना प्राङ्मूर्तमनोमन्त्रा श्रीर सुरतिविधिना, तथा श्रीका के समस्तरसकोविदा, विधिना
विज्जना प्रकामतिनायिका श्रीर लज्जापति मेव बतसाए हैं। 'मध्या' और श्रीका के
श्रीरा प्रकीरा श्रीर श्रीराश्रीरा मेवों का विवरण दोनों ही भाषाओं में दिया है।
मठिराम ने 'स्वकीया' के ज्येष्ठा तथा कमिष्ठा मेवों का भी उल्लेख किया है*। केसव
ने ये मेव छोड़ दिए हैं। केसव द्वारा दिया 'मुग्धा' की सुरति तथा मान का वर्णन भी
मठिराम के ग्रन्थ 'रसराम' में नहीं मिलता।

'परकीया' के कला तथा अनुका मेवों का विवरण दोनों ही भाषाओं में प्रस्तुत
किया है। मठिराम द्वारा उल्लिखित 'परकीया' के ग्रन्थ मेवों मुष्ठा विदग्धा
(बचन विदग्धा और भिया विदग्धा) लक्षिता मुद्रिता तथा कुमटा अनुशयना
(पहली दूसरी और तीसरी अनुशयना) का केसव ने कोई वर्णन नहीं किया
है। मठिराम द्वारा दिए गए ग्रन्थसंशोधनद्वारा प्रेमपण्डिता अपगण्डिता और
मानवती मेवों (रसराम अं १७) को भी केसव ने छोड़ दिया है। मठिराम
ने केसव द्वारा निर्दिष्ट जाति के अनुसार पथिनी शशिनी विमिनी तथा हसिनी
प्रादि नायिका के मेवों नायक-नायिका के प्रथम मिलन-स्थानों एवं प्रेम-प्रकाशन की
केष्टाओं एवं सुरतिविधिना मध्या नायिका के सुरदान्त-वर्णन का कोई उल्लेख नहीं
किया है। नायिका के उत्तमा मध्यमा तथा अधमा मेव दोनों ही भाषाओं को
नाम्य है।

मठिराम ने प्रवस्था के अनुसार नायिकाओं के इस प्रकार बतसाए हैं प्रोविठ
पठिका संविठा कमहाठरिता विप्रसम्भा उत्कण्ठिता, वासकसम्भा स्वाधीनपठिका
अभिसारिका प्रवच्छति प्रेमसी (प्रवत्स्यतप्रेमसी) तथा आपतपठिका (रसराम, अं
११०)। केसव ने पहले पाठ मेवों का ही वर्णन किया है, शेष दोनों मेवों को छोड़
दिया है। मठिराम ने वसों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा मध्या श्रीका एवं परकीया
और पठिका प्रादि उपमेवों के अन्तर्गत अलग उदाहरण दिये हैं। केसव ने इतना
अधिक विस्तार नहीं किया है। 'परकीया' के अन्तर्गत मठिराम ने कृष्णामिसारिका
बालामिसारिका तथा विद्याभिसारिका के उदाहरण भी दिए हैं (रसराम अं ११७-
२२)। केसव ने ऐसा कोई विभाजन नहीं किया है। केसव ने 'अभिसारिका' के
अन्तर्गत स्वकीया परकीया और सामान्या अभिसारिका के वर्णन दिए हैं उदाहरण छोड़
दिए हैं। केसव द्वारा निर्दिष्ट पष्टनायिकाओं के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपमेवों का
मठिराम ने कोई वर्णन नहीं किया है।

मठिराम के अनुसार नायक के तीन प्रकार हैं, पति उपपति तथा वैदिक
(रसराम अं २४०) और फिर पति के अनुकूल बसिन शठ तथा बूष्ट प्रादि चार

१ वरगत वैष्ट-कनिष्ठिका यह है व्याही नारि।

—रसराम, पृ २७८ अं २७।

प्रथम पिपाठी, दूसरी मति व्याठी निरकारि।

—रसराम, पृ २७४ अं २६।

शेद किए गए हैं। इन्होंने नायक के घोर भेदों मानी वधन-बनुर और क्रिया-बनुर तथा प्रोक्त का भी निरूपण किया है। केशव ने समुद्रम बलिम घट और घुट्ट का ही उल्लेख किया है और उन्हें नायक के ही भेद बताया है, पति के नहीं। मतिराम के दर्शन के बार भेदों अवश्य स्वयं किन्तु तथा प्रत्यक्ष का वर्तन केशव के समान है किन्तु केशव द्वारा उल्लिखित प्रकाश और प्रच्छन्न खगभेदों का चिन्तामणि ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

मतिराम ने 'उद्दीपन के प्रसारण' के

इन्होंने सभी को

महिराम ने 'उड़ीपन' के अन्तर्गत सखी-बूती आदि का वर्णन किया है।
इन्होंने सखी के चार कामों का उल्लेख किया है यथा— छिटा उपासना और
परिहास (रसराम सं० २८६)। केसव के अनुसार 'सखी' के सात कार्य हैं छिटा देना
बिनय करना ममाना, मित्रन करना शृंगार करना मुकुना और उसाहना देना।
केसव ने 'परिहास' का उल्लेख नहीं किया है। केसव लिखते हैं कि बाप बनी माइम
नटी पड़ोसिन मातिन बरइन छिन्निनी बुडिहारिम रामबनी संयासिनी उषा
पटइन घाबि को नावक-नामिका सखी बनाते हैं। महिराम ने इनका निरूपण नहीं
किया है। महिराम ने बूती के तीन मेर सप्तम मध्यम तथा अथम माने हैं^१। केसव
ने 'बूती' और उसके मेरों का उल्लेख नहीं किया है। केसव ने केवल मैत्रों से ही और
बचन से ही मन की बात प्रगट करने को 'माव' कहा है किन्तु महिराम ने 'माव' को
अन्यत्र करने वाले उपकरणों की संख्या और भी बढ़ा दी है^२। महिराम ने नौ सात्विक
माव माने हैं, यथा स्वप्न स्वैर रोमांच स्वरमय कंठ ईर्ष्या धनु, प्रलय तथा
बु मा^३। उन्होंने इन सबके लक्षण उदाहरण-सहित लिखे हैं। केसव ने 'बु मा'

१ वररुचि धारमंजनहि मे कवि मतिराम सुमान ।
समस्त स्वप्न अथ विष त्यों पनि पण्डित

सर्वत्र स्थापनं भवति तस्यै पुनः प्रत्येकं स्थानम् ॥

१ सही-दुष्टिका कागज पर चर्चों के मोह । —सत्य १२१ व १२२।

—सुप्रसन्न व हृदय भवति ।

१ निपुण कूटता में सदा कूटी चाहि बखान । —रसखान पृ० १११ अ० १८० ।
उत्तम मध्यम प्रथम यों तीन भाँति हैं ।

—संख्या पु. १११ अ. १२०।
म ।

सुखी राहिए मैं सब सुखी राहिए बखान ।
सुखी राहिए सब सुखी राहिए बखान ।

४ सोपन, बबन प्रसाद मुकु हास भाव भूति मोय ।
इनते प्रपट भाव रति करनहि नहि ।

रसराज पु० ११८, व० २६६ ।
पृष्ठ १०५ ।

स्वर्ग स्वर्ग मोक्ष
इत्ये प्रपद्य माय रति वरणादि मुक्ति मोक्ष विनाद ॥

—रसमय १५ २२८ क २१ ।
वीथी :

१ स्वर्ग स्नेह, रोमांच मुरमग, कंव —रसप्रसन्न
 भावु धीरी प्रलय कहि, जाठों संवनि वैभव ।
 वृ मा हों कवि वर्ण ॥

—रसमय १५ २२८ क २१ ।
वीथी :

माझा पीरी प्रलय काहि, माळों संवनि
व मा लों वनि

—सुखं पृ २२८ व २२९।
भाष।

वृत्तों का निरूपण है नवयों साहित्यिक भाषा ।
 जिनमें भाषाशास्त्र आदि हैं वरनाम आदि ।

है नवयों सात्विक भाव ।
करनत सब कबिराज ॥

—सप्तम, ११ अक्षर, अ. १२८।

को छोड़ दिया है घोर मतिराम के 'प्रलय' के स्थान पर 'प्रलाप' घाटवों सात्विक भाव स्वीकार किया है। केसव ने सलग घोर प्रबाहरण दोनों ही नहीं दिए हैं घट 'प्रलाप' का केसव क्या भय समझते हैं इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। मतिराम ने सीमा, विसात विमिश्रित विभ्रम, किमकिचित मोट्टाइट मुट्टमित दिक्कोक समित घोर विहित धादि दस हावों का विवरण दिया है (रसराम छं० ३४८-३४९)। केसव ने इनके प्रतिरिक्त तीन घोर हावों हेला मर तथा रोम का उल्लेख किया है। केसव द्वारा उल्लिखित व्यभिचारी एवं स्थायी भावों का मतिराम ने कोई वर्णन नहीं किया है।

विशेष भुंवार के तीन भेदों पूर्वाभिराग मान घोर प्रबाध का मतिराम ने निरूपण किया है (रसराम छं० ३५१)। केसव ने इनके प्रतिरिक्त बीजा बंद 'कहन' घोर बतसाया है। 'मान' के भेदों मधु मध्यम घोर गुद का दोनों ही प्राचावों के विवरण दिया है। केसव द्वारा निरूपित मानमोचन के उपायों का उल्लेख मतिराम ने नहीं किया है। मतिराम ने पप्रिभाप बिठा स्मृति पुष-वर्धन उद्येय प्रमाप उगमाद ध्यावि तथा बड़ता धादि विभोग की नौ बसाधों का वर्णन किया है^१। केसव ने इसकी बसा 'मरण' भी बतसाई है। केसव के द्वारा बतसाए प्रकार घोर 'प्रच्छन्न' उपभेदों को मतिराम ने भी छोड़ दिया है।

नायिका-मर तथा रस के समयवों का निरूपण करते हुए कुछ यवों तथा यव यवों के सलग केवल मतिराम ने ही दिए हैं, केसव ने नहीं दिए हैं घोर कुछ के सलग केसव ने ही दिए हैं मतिराम ने नहीं दिए हैं। मुग्धा भव्या प्रीड़ा धादि नायिकाओं सभी एवं सात्विक भावों के सलग मतिराम ने प्रस्तुत किए हैं केसव ने नहीं किए। 'वर्धन' के चार प्रकार के भेदों के सलग केसव ने दिए हैं, मतिराम ने नहीं दिए।

दोनों प्राचावों द्वारा दिये प्रबिकाध लयवों में कुछ भन्तर प्रथम परिलक्षित होता है फिर भी प्राच भाव एक ही है। कुछ इस प्रकार के सलग नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।

मम्या घीराघीरा नायिका का लसरण

मिम को हेह उराहनी ली भीरा न अपीर ॥

(रं० छं० प्र० ३ छं० ४०)

मम्या घीराघीर मिम ताहि कहत सब कोय ।

मिम सों कहिके बचन कपु, रीत जतावे रोय ॥

(रसराम, छं० ४३)

१ होत विभोग सिवार में प्रवट बसा नम जानि ।

प्रथम कहे पप्रिभाप पुनि बिठा समुति बजाणि ॥

बुन वर्धन उदवेग पुनि कह प्रमाप उगमाद ।

ध्यावि बहुति बड़ता कहत कवि-कोविद धादिबाव ॥

केसव तथा शिखी के परबर्त्तों आचार्य
स्वकीया नायिका का सकारण

सम्पति विपति को भरस हूँ सदा एक अनुहार ।
ताको स्वकीया जानि मग कम बचन बिचार ॥

(२० छि० प्र० ३ छं० १२)

नामवती नितदिन पपी निम्न पति के अनुहार ।
कहत स्वकीया सीलमय ताको पति बड़नाय ॥

(रसराम, छं० १०)

कलहार्तरिता नायिका का सकारण

मान मनावत हूँ करे मानव को अपमान ।
हुनो दुख ता जिन लहै धर्मसंविता बलान ॥

(२० छि० प्र० ७ छं० ११)

कहूँ न माने कंत को पुनि पीछे पक्षिनाथ ।
कलहार्तरिता नायिका ताहि कह्य कबिराय ॥

(रसराम, छं० १११)

छठ नायक का सकारण

मुख लौठी बातें कहे निपट कपट जिय जान ।
जाहि न डर अपराध को छठ कर ताहि बखान ॥

(२० छि० प्र० २ छं० ११)

डरे करत अपराध नहि कर कपट की रीति ।
बचन क्रिया में धति बनुर छठ नायक की पीति ॥

(रसराम, छं० २२०)

सीता ह्रास का सकारण

करत जहाँ सीतान को प्रीतम प्रिया बनाय ।
उपगत सीता ह्रास तहँ, बलुत केसवराय ॥

(२० छि० प्र० १ छं० २१)

पियभूषण बचनावि की सीता करे जो बान ।
तासों सीता ह्रास कह बरमत सुकवि रसान ॥

(रसराम, छं० १३)

दोनों आचार्यों के कुछ लक्षण आपस में बिस्तृत ही नहीं मिलते यद्यपि इस प्रकार के लक्षण अधिक नहीं हैं यथा:

परकीया का सकारण

सब तें पर वरतिछ जो ताकी प्रिया नु होइ ।
परकीया तासों कह परम पुराणे मोइ ॥

(२० छि० प्र० ३ छं० १७)

प्रेम करै पर-पुरुष सों, परकीया सो जान ।

(रसराम, छं० ३८)

बिम्बित हाव का लक्षण

भूषण भूषण को जहाँ होहि पनाहर जान ।

सो बिम्बित बिचारिये केदारनाथ सुजान ॥

(रं प्रि० प्र० १ छं० ४१)

बोरे ही भूषण बसन जहाँ सोमा सरनाथ ।

साहि कहत बिम्बित हैं जो प्रवीण रसराम ॥

(रसराम, छं० १११)

बलिरूप नायक का लक्षण

पहिली सों हिय हेतु डर, सहज बढ़ाई कामि ।

धित जस हैं ना जस बलिरूप लक्षण जानि ॥

(रं प्रि० प्र० २ छं० ७)

एक जाति सब तियन सों जाको होय सबेह ।

सो बलिरूप भतिराम कहि बरनत हैं नतिवेह ॥

(रसराम, छं० २४७)

नीचे दिए हुए लक्षण दोनों प्राचायों के विस्तृत ही समान हैं ।

स्वाधीनपतिका का लक्षण

केदार जाके बुलु बंध्यो सदा रहै पति संव ।

स्वाधिनपतिका तानु को बरसत प्रेम प्रसंग ॥

(रं प्रि० प्र० ७ छं० ४)

सदा कप-मुन रोम पिय जाके रहै प्रवीण ।

स्वाधीन पतिका तिये बरनत कवि परवीण ॥

(रसराम, छं० १७८)

किन्नकिन्नित हाव का लक्षण :

धम धमिताय सवर्ध रिगत कोब हरथ धम भाव ।

उपगत एकहि बार जहु, तहु किन्नकिन्नित हाव ॥

(रं प्रि० प्र० १, छं० १६)

हरथ परथ धमिताय धम हात रोप धम बोति ।

होत एक ही संव हैं किन्नकिन्नित यह रीति ॥

(रसराम, छं० १६२)

दोनों प्राचायों के लक्षणों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि भतिराम के लक्षण प्रोवाहण अधिक स्पष्ट हैं । केदार के गृन्धार रस भाव धनुमान और हावादि के लक्षण अस्पष्ट हैं ।

बेह तथा केशव

यह पहले बताया जा चुका है कि बेह ने सभी रसों का सम्पन्न विवेचन मुख्यतः 'छन्दरसावन' तथा 'महानीविमल' में किया है। 'भावविमल' में सब रसों के सात शृंगार रस^१ तथा उसके विभिन्न धर्मों का संगोपांग वर्णन किया गया है। अन्य रसों के केवल नाम ही लिनाए गए हैं। नायिका-भेद भावविमल, महानीविमल, रसविमल आदि ग्रन्थों में संविस्तार वर्णित है। यही भावविमल, महानीविमल रसविमल तथा छन्दरसावन ग्रन्थों के आधार पर आचार्य केशव की देन से तुलना की गई है।

नायिका-भेद के अन्तर्गत नायिकाओं के तीन सामान्य भेद स्वकीया परकीया तथा सामान्या प्रमया केया देव तथा केशव दोनों ही आचार्य मानते हैं। 'स्वकीया' के भेद मुग्धा मध्या धीर प्रीड़ा भी दोनों को मान्य हैं और इन तीन भेदों के अन्तर्गत भेद भी अधिकार दोनों आचार्यों के भाष्य में मिलते हैं। देव के अनुसार 'मुग्धा' के पाँच उपभेद हैं वयः सन्धि नववधु, नववीरवा नवस धनया तथा सतजगरति^२। केशव ने 'वयः सन्धि' को छोड़ दिया है। शेष चार भेद भी केशव स्वीकार करते हैं। केशव के मार्गों में कुछ अन्तर अवश्य है। केशव ने नववधु, नववीरवासुपिता नवस धर्मया, सज्जाप्रादुरति—ये नाम बतलाए हैं। 'मुग्धा' नायिका की सुरति तथा भाग का उदाहरण दोनों आचार्यों ही ने दिया है। केशव ने सस्य भी दिए हैं। केशव के मध्या के चारों भेद भावविमल, प्रवहमवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा सुरतिविमला देव के कपटाः स्ववीरवा प्रवहमवचना प्रादुर्भूतमनोभवा तथा विविधमुरता (भावविमल पृ० १०७) भेदों से मिलते हैं। देव ने मध्या की सुरति तथा सुरतान्त का वर्णन किया है। केशव ने भी 'विविधमुरता' भेद के अन्तर्गत रसि के १४ प्रकारों का बख्तेब करते हुए सुरतान्त का वर्णन किया है 'सुरति' को छोड़ दिया है। 'प्रीड़ा' के भेद भी दोनों आचार्यों के एक ही हैं। केशव ने 'प्रीड़ा' के समस्तरसकोविदा विविध विमला प्रवहमतिनायिका तथा सम्भाषति भेद बतलाए हैं। देव के अनुसार भी यही भेद हैं, रसिकोविदा खविमला सम्भाषति तथा आक्रान्त-नायका ('महानी विमल' में इसका नाम 'वसवस्तमा' दिया है पृ० ६८)। देव के प्रीड़ा की सुरति तथा सुरतान्त के वर्णन को केशव ने छोड़ दिया है। भाग करने की स्थिति में केशव ने 'मध्या' तथा 'प्रीड़ा' के तीन भेदों पीरा अपीरा धीर पीरापीरा का वर्णन किया है। 'महानी

१ नवरस सार विचार रस सुख सार विचार ।

—छन्दरसावन पृ० ३

सकल सार विचार है सुरस भावुरी धाम ॥

—भावविमल, पृ० ४४ ।

२ वयः सन्धि यह नववधु, नववीरवा विचार ।

नवस धर्मया सतजगरति मुग्धा पाँच प्रकार ॥

—भावविमल पृ० १०४।

विभास' में तो ये तीनों भेद क्यों के क्यों मिलते हैं ? पर 'भावविभास' में पहले दो भेद ही मिलते हैं और केदार के तीसरे भेद 'वीराधीरा' के स्थान पर वहाँ 'मध्यमा' का उल्लेख हुआ है^१। देव ने स्वकीया' भावि नायिकाओं के मनोदया के अनुसार चार भेद और बतलाए हैं यथा पररतिदुःखिता प्रेमगविता क्लमगविता तथा मानवती^२। केशव ने इनका वर्णन नहीं किया है। 'भवानीविभास' में वर्णित स्वकीया के क्लमगविता (भवानीविभास पृ० ६३) तथा ज्येष्ठा धीर कलिष्ठा (भवानीविभास छं० १३) आदि भेदों का भी केदार ने कोई उल्लेख नहीं किया है। देव द्वारा बतलाए गए परकीया के दुष्टा विदग्धा (कलम विदग्धा तथा क्लम विदग्धा) कलिष्ठा कुकटा सुदिता धीर धनुषयना आदि भेदों का भी केदार ने कोई वर्णन नहीं किया है।

अबस्था के अनुसार देव द्वारा निरूपित स्वाधीना उत्कण्ठिता प्रोवितप्रेयसी वासकसज्जा कलहान्तरिता कलिष्ठा विप्रसज्जा तथा धमिसारिका (भावविभास पृ० १२५, १२६ तथा भवानीविभास पृ० ७१) भेद केशव ने क्रमशः स्वाधीनपठिका उत्तरा प्रोवितप्रेयसी धनका प्रोपितपठिका वासकसज्जा धमिसारिका कलिष्ठा विप्रसज्जा तथा धमिसारिका भेदों के समान हैं। केवल केदार की उत्क्रा' धीर धमिसारिका के स्थान पर देव ने क्रमशः उत्कण्ठिता धीर कलहान्तरिता' नाम दिए हैं। देव ने 'भवानीविभास' में प्रोपितपठिका' के चार उपभेदों का उल्लेख किया है,^३ किन्तु केशव ने उन्हें छोड़ दिया है। 'रसविभास' में 'प्रवत्स्यतभक्तिका' तथा धानमपठिका' नामक ३१ धीर भेदों का वर्णन मिलता है (रसविभास छं० २१, २३) जिनका भी उल्लेख केदार ने नहीं किया है। नायिकाओं के मध्य भेद उत्तमा मध्यमा तथा अधमा का निरूपण देव तथा केदार दोनों भाचार्यों ने ही किया है। केशव द्वारा

१ मध्या धर प्रीड़ा पुषी होहि विविध करि मान ।

धीराधीरा धीर धर नारि धधीर बखान ॥

—भवानीविभास पृ० ८७ अ १।

२ मध्या धी प्रीड़ा पुषी होहि विविध करि मान ।

धीरा धर मध्यम कल्लो धीर धधीर बखान ॥

—रसविभास, पृ० ११३।

३ पररतिदुःखित प्रेम धर रूप वर्णितता जानु ।

मानवती धर चारि विभि स्वीयारकनु बखानु ॥

—भावविभास पृ० १२६।

४ विप्र विदग्ध जाहे चरयो जसै धरवि विरधारि ।

धर मानत यहि विभि विविध प्रोवितपठिका नारि ॥

पुनइ विरुत, नहि सहि परयी जमि फिरि घाये मीन ।

बीयो भइ बखानिये प्रीतय जमना मीन ॥

—भवानीविभास पृ० ८८ अ० २३।

षष्टनायिकाओं के उपभोग 'प्रकाश' और 'अच्छन्न', देव ने छोड़ दिए हैं। 'महानी विमास' तथा 'रसविमास' नामक ग्रन्थों में देव के जाति के अनुसार भी नायिकाओं का विभाजन किया है। जाति के अनुसार पद्मिनी, बिचिषी घञिनी तथा हस्तिनी भेदों का वर्णन केसव ने भी किया है। अंश-भेद के अनुसार नायिकाओं के भेद—सात वर्ष तक देवी सात से चौदह वर्ष तक देव-गन्धर्वी, चौदह से इसकीय वर्ष तक गन्धर्वी इसकीय से अट्ठाईस तक गन्धर्व-मानुषी और अट्ठाईस से पैंतीस तक सुष्ठ-मानुषी तथा देवी का साढ़े दस वर्ष तक पूज्या होने गन्धर्वी का साढ़े दस से साढ़े बीबीस वर्ष तक भोग के लिए और मानुषी का साढ़े बीबीस से पैंतीस वर्ष तक सुष्ठ-सन्तान के लिए होने प्रायि का वर्णन देव ने ही किया है^१। केसवने इन बातों का वर्णन नहीं किया है। देव से पूर्व इस प्रकार का वर्णन हिम्वी-साहित्य में आया है। 'रसविमास' में देव ने प्रकृति, सत्त्व और रस के अनुसार भी नायिकाओं का प्रस्तार किया है। प्रकृति के तीन (रसविमास पृ० ७१-७३), वात पित्त और कफ और सत्त्व के दो (रसविमास ७७-८१), घुर किन्नर, ब्रह्म नर पिशाच, नाग खर, कपि और काक आदि प्रकार बतलाए गए हैं। देव के अनेक भेदों के आधार पर यक्ष देव-बधु, मय-देव-बधु, कौशल-बधु, पादस बधु, कुंज (कौंज) बधु आदि नायिकाओं का विस्तार वर्णन हुआ है (रस विमास पृ० १२-१४)। इनके अतिरिक्त देव ने जाति अर्थात् वर्णव्यवसाय तथा वास की दृष्टि से भी नायिकाओं के भेदों का वर्णन किया है तथा (घ) नागरी—(१) देवम (देवी पूजनहारी प्रायि) (२) रावम (राजकुमारी नाय खसी प्रायि), (३) राजनगर (बौहिरिन, छीपिन पटवाहन, गुमारिन प्रायि) (घा) पुरवाधिन (बाहुनी, राजपुत्री, नाहन प्रायि) (द) ग्रामीणा (ग्रहीरिन, कहा रिन प्रायि) (ई) वनवाधिन (मुनिपिय प्रायि) (उ) सन्ना (वृषसी वैस्या प्रायि) (ऊ) पबिकतिव (बोगिन, वनमारिन प्रायि)। केसव ने प्रकृति सत्त्व अथ तथा वर्ण व्यवस्था एवं वास के अनुसार नायिकाओं का कोई व्यवस्था नहीं किया है। वस्तुतः साहित्यशास्त्र की दृष्टि से इन सब का विस्तार अनुचित ही है। केसव ने देव भेद का केवल संकेत मात्र ही किया है^२।

- १ सुकिया देवी प्रथम देव गन्धर्वी सुवी ।
गन्धर्वी गन्धर्वमानुषी नारि अह्वी ॥
सुष्ठ मानुषी सात सात वय वर्ष महानी ।
अवधि वर्ष पैंतीस तकनि ती ही तो जाली ॥
घुर अंश प्रवानी पूज्य अग गन्धर्वी संभोग पिय ।
कुल वर्ष कर्म सन्तानहित सरस्वती नर-अंश पिय ॥

—अष्टमीविमास पृ० १४ अ० १।

॥ इन सब के विस्तार वर्णन के लिए देखें अष्टमीविमास पृ० १४-१६ ।

- २ इहि विधि नायक-नायका वर्षों सहित विवेक ।

देव काल वय नाव तें केसव प्रायि अनेक ॥

—२० वि अ० ७, अ० ४१ ।

देव ने 'महानीबिसास' तथा 'रसबिसास' ग्रन्थों में अष्टांगवती नायिका का भी वर्णन किया है। अष्टांगवती नायिका यौवन रूप कुस प्रेम क्षीन, गुण बेमर और भूपन—इन आठ गुणों से युक्त होती है^१ और ये आठों अंग 'स्वकीया' ही में सम्मिलित हैं। परकीया में कुस और क्षीन का अभाव रहता है। 'सामान्या' में क्षीन कुस, प्रेम तथा बेमर का^२। केसर ने यह सब वर्णन छोड़ दिया है।

नायक के चार भेदों अनुरूप आठ दक्षिण तथा बृष्ट का वर्णन दोनों ही प्राचार्यों ने किया है। नायक के सहायक (नर्मदक्षिण) पीठमर्द बिट तथा विद्रुपक का वर्णन देव के 'माहबिसास' ग्रन्थ में ही मिलता है, केसर की 'रसिकप्रिया' में नहीं मिलता। केसर ने नायक-नायिकाओं की सखियों के अत्यन्त भाव बनी नाइन मटी पड़ोसित बरहान मालिन सिलिनी रामबनी प्रादि को गिनाया है। देव ने माहबिसास में सखियों का वर्णन नहीं किया है। देव केसर की 'सखी को ही 'बूटी' मानते हैं। देव के अनुसार भाव मटी मालिन सिलिनी मालिन नाइन बामिका बिहवा संन्यासिनी भिन्नारिन तथा सम्मन्विनी बूटी हो सकती है (माहबिसास छं० ११४ ११५)। देव ने 'महानीबिसास' नायक ग्रन्थ में नायिका की सुमन्विता सखी तथा नायक की सुमन्विता 'बूटी' का केवल बतलाया ही उल्लेख किया है (माहबिसास ५० ६६)। सखी के कार्यों का दोनों ही प्राचार्यों ने निरूपण किया है और दोनों ने प्रतिकोश एक जैसे कार्य ही बतलाए हैं। केसर ने शिक्षा देना नियम करना मताना मिमाना शृंगार करना मुकुना तथा जमाहना देना प्रादि कार्यों का निर्देश किया है। देव के अनुसार सखियों के कार्य हैं विनोदपूर्ण वातचीत से प्रसन्न करना आभूषण पहिनाया श्रिय से मिताप कराना उपदेश देना पति को उपासक बनना तथा विपरीतावस्था में दारुण बचाना। कथन द्वारा वचन-व्यपत्ति चेट्टाओं स्वयं ब्रूतत्व तथा प्रथम मिलन-स्नानों का देव ने कोई वर्णन नहीं किया है। केसर ने 'बर्हान' के चार भेद माने हैं बिन्न स्वप्न प्रत्यक्ष तथा अवय। देव ने 'बर्हान' के बिन्न स्वप्न तथा प्रत्यक्ष—इन तीन भेदों को ही स्वीकार किया है और अवय का 'दर्शन' से

- १ आ कामिनि में देखिये पुरन आठु अंग ।
ताही बरनी नायिका तिसुवन मोहन रम ॥
पहिने जोवन रूप गुन क्षीन प्रेम पहिचानि ।
कुस बेमर भूपन बहुरि आठों अंग बखानि ॥

—रसबिसास, पृ १५, अं० १-०।

- २ भूपन जोवन रूप गुन विमर क्षीन कुस प्रेम ।
आठों अंग स्वकियाहि के परकिय बिन कुमनेम ॥
सामान्या बिन तीन कुस प्रेम बिनी पहिचानि ।
भूवन जोवन रूप गुन सहित बतमा बानि ॥

—महानीबिसास ६० १५, अं० १५ २५।

प्रत्यय उत्प्रेष किया है^१। केदार ने देव द्वारा निर्दिष्ट 'धवन' के देव काम तथा बचन नामक देवों को छोड़ दिया है। दूसरी ओर देव ने केदार के 'धवन' के 'प्रकाश' तथा 'प्रच्छन्न' देवों का कोई उल्लेख नहीं किया है।

केदार और देव दोनों के अनुसार स्वायीभाव विभाव धनुमात्र सात्विक भाव तथा संचारी भाव 'भाव' के भेद हैं। देव ने 'हानों' को भी 'भाव' का ही भेद बत साया है^२। केदार ने हानों का त्रिकपय स्वतंत्र रूप से किया है। देव ने 'मावविभास' तथा 'रसविभास' शब्दों में स्वप्न स्वेद, रोमांच वेपथु स्वरमज्ज नैबर्ध्य भासू तथा प्रसव—इन पाँच सात्विक भावों का वर्णन किया है। 'यवानीविभास' में 'प्रसव' के स्थान पर 'मूरछा' दिया है^३। केदार ने प्रसव शब्दवा मूरछा के स्थान पर 'प्रलाप' लिखा है औप भेद दोनों भाषाओं के एक ही हैं। देव ने संचारी भावों के दो भेद माने हैं 'सरीर' तथा 'आंतर'^४ शब्दवा जनसंचारी और मनसंचारी। इस प्रकार देव के अनुसार सत्त्व्यादि सात्विक भाव तथा निर्बेदादि संचारी भाव कनरा उन संचारियों तथा मन-संचारियों के अन्तर्गत आते हैं। केदार ने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। केदार और देव दोनों ने ही संचारियों शब्दवा व्यभिचारियों की संख्या ३४ मानी है। केदार के अनुसार ३४वाँ संचारी भाव 'दाहि' है और देव के मत में 'छल'^५। केदार के बौद्ध बोध, निरा विषय, प्रबोध विषय तथा प्राद्यतर्क

१ देव काम ना बचन नर बचन तीनि विधि जानु ।

चिन स्मृत्त साक्षात् हू बरखन तीनि बखानु ॥

—यवानीविभास पृ ३० अं० १ ।

२ विविभाव धनुमात्र पाँच कहौं सात्विकी भाव ।

संचारी और हान ये रस कारण पटसाय ॥

—यवानीविभास पृ २, अं० १४ ।

३ स्वप्न स्वेद रोमांच पाँच वेपथु पाँच स्वरमज्ज ।

विचरन भासू मूरछा ये सात्विक रस पंच ॥

—यवानीविभास पृ० = अं० ३० ।

४ ते सरीर व आंतर द्विविध कहत भरतादि ।

सत्त्व्यादिक सारीर पाँच, आंतर निर्बेदादि ॥

—यवानीविभास, पृ० २७ ।

कायक बस सात्विक प्रभर मानस निर्बेदादि ।

संचारी विषय के भाव कहत भरतादि ॥

—यवानीविभास पृ २८, अं० ३३ ।

५. धनुमात्रादिक कारण को, कौनै किया छिपाव ।

बक उक्ति धनुतर कपट, सी बरमे छल भाव ॥

—यवानीविभास, पृ ३० ।

१४ आचार्य तुलसी जी के अनुसार 'धवन' का अन्वयार्थ 'जलविष्णु' से ही हो गया है (हिंदी साहित्य का इतिहास पृ० २४२)। देव ने 'साधारण्यव' नामक मन में केवल ३३ ही संचारी भावों का उल्लेख किया है, 'बल' को छोड़ दिया है (पृ ३)।

सूत्रों के स्थान पर वेब ने क्रमशः जाब कोष प्रसूया बुद्ध अशेष, उपलब्ध तथा तर्क सूत्रों का प्रयोग किया है। केदार के 'स्वप्न' का वेब ने तथा 'प्रवृत्ति' का केदार ने कोई उल्लेख नहीं किया है। वेब द्वारा उल्लिखित 'वितर्क' के अन्तर्गत मेहों विप्रतिपत्ति विचार, संशय और अस्पष्टता (महानीविज्ञापन पृ० १७) तथा 'बाध' के दो रूपों 'बाध' (जो अकस्मात् उत्पन्न होता है) और 'अर्थ' (जो पूर्वपर विचार से उत्पन्न होता है) को भी केदार ने छोड़ दिया है। वेब ने केवल दस भागों का ही उल्लेख किया है^१। केदार ने हेला यह और जोब तीन प्रतिरिप भागों का भी वर्णन किया है।

केदार द्वारा निरूपित शृंगार रस के मेहों संयोग एवं वियोग के अन्तर्गत प्रकाश संयोग और प्रच्छन्न संयोग तथा प्रकाश वियोग और प्रच्छन्न वियोग वेब ने भी बतलाए हैं। सम्भवतः वेब ने केदार के ही अनुकरण पर इन प्रकाश और प्रच्छन्न अन्तर्गत मेहों को लिखा हो क्योंकि केदार को छोड़ हिन्दी के किसी आचार्य ने इन उपमेहों का उल्लेख नहीं किया है। 'वियोग शृंगार' के चार मेहों पूर्वाश्रय, मान प्रवास तथा कदम का उल्लेख 'भावविज्ञापन' (पृ० ७५) और 'रसिकप्रिया' (प्र० ५ छं० २) दोनों ही ग्रंथों में मिलता है। किन्तु वेब ने 'महानीविज्ञापन' में वियोग शृंगार की चौथी अवस्था 'कदम' के स्थान पर 'संयोग' मानी है। इनके अनुसार संयोग आनन्दमय होता है और यह वियोग के बीच में आता है। प्रथम अवस्था पूर्वाश्रय की होती है, जिसके अन्तर्गत अभिजापादि दस वियोग की बसाई आती है और फिर संयोग होता है जिसके बाद मान प्रवास और संयोग की अवस्थाएँ (महानीविज्ञापन पृ० १९) होती हैं। केदार ने यह वर्णन छोड़ दिया है। पूर्वाश्रय के अन्तर्गत दस बसाई मान के दुर, मध्यम और मधु मेहों तथा मान-शोचन के उपायों का निरूपण दोनों आचार्यों का एक जीसा है। 'रसविज्ञापन' में वेब ने 'मरण' को छोड़कर प्रत्येक काम-बसा के अनेक भेद कर डाले हैं यथा अभिजाप के पाँच भेद—अवगाभिजाप, उत्कंठाभिजाप, दर्शनाभिजाप, लब्धाभिजाप तथा प्रेमाभिजाप (पृ० ५८ छं० १), चिन्ता के चार भेद—साधारण-चिन्ता, दुष्ट चिन्ता, संकल्प-चिन्ता और विकल्प चिन्ता

- १ पहिली लीला हाथ बहुरि सुविज्ञापन करनिये ।
 तारें कहु विद्विष्टि बहुरि विभ्रम कहि बनिये ॥
 किष्किषित तब कह्यो तब भीटास्तु मानहु ।
 तारें कहु कुटमित बहुरि विभ्रोकु जानहु ॥
 कविद्वय कहैं फिर ललित कहु तारें विद्विष्ट कहैं सरस ।
 इहि भाँति विविध विधि विभुबनर वरनत कविबर हाथ दस ॥

—भावविज्ञापन पृ० ७०

महानीविज्ञापन, पृ० ५१ व ११ १४ तत्पर रसविज्ञापन, पृ० ५२, व १।

- २ ई प्रकार सियार रस है संयोग वियोग ।

जो प्रच्छन्न प्रकाश करि कहत चारि विधि सोय ॥

—भावविज्ञापन, पृ० १५।

(पृ० १० छं० १६), स्मरण के घाट मेह—स्वेद-स्मरण स्तम्भ-स्मरण रोमान-स्मरण, कप-स्मरण स्वरमय-स्मरण, बेबन्ध-स्मरण और प्रलय-स्मरण (पृ० ११ छं० ४१), युवकवन के घाट मेह—हृषिकेश-कवन ईर्ष्यागुण-कवन विमोह-युवक-कवन और अपस्मार युव-कवन (पृ० ११ छं० १३) उद्यम के तीग मेह—वस्तु-उद्यम वैद्य-उद्यम और काल उद्यम (पृ० १५ छं० ५६), प्रसाप के घाट मेह—जान प्रसाप बेराग्य प्रसाप उपदेश-प्रसाप प्रेम प्रसाप संघम प्रसाप भिन्न प्रसाप और निश्चय-प्रसाप (पृ० १०० छं० १४) उद्यम के घाट मेह—मनोमोहाय मोहोमोहाय विस्मयोमोहाय और विस्मयोमोहाय (पृ० १०१, छं० ७१) तथा व्याधि के तीग मेह—उद्यम-व्याधि ताप व्याधि और पक्षा ताप-व्याधि (पृ० १०१ छं० ८१)। केवल में इन सभी उपदेशों का कोई सम्बन्ध नहीं किया है। 'माविकलास' में वर्णित कल्यात्मक विषयों के तीग मेह लघु, मध्यम और दीर्घ भी कोशक को मान्य नहीं हैं।

केवल में भी रसों का कथन किया है। रसों की संख्या ती वेद में भी ती ही मानी है। किन्तु उन्होंने काव्य और नाटक में रसों की संख्या का मेह स्वीकार किया है। देवदास निर्दिष्ट रस के मौखिक तथा मौखिक थर (माविकलास पृ० १३) केवल में नहीं माने हैं। केवल में 'उत्तिक्रिया' में भूतार रस से इतर रसों का भी वर्णन किया है। देव ने भी 'मवालीविमाल' तथा 'अक्षरसाधन' में अन्य रसों का निरूपण किया है। विभिन्न रसों के पारस्परिक सम्बन्ध को दृष्टि में रखते हुए 'मवाली विमाल' तथा 'अक्षरसाधन' दोनों ग्रन्थों में देव ने दो भिन्न स्थापनाएँ की हैं। पहली स्थापना के अनुसार मुख्य रस तीन माने गए हैं, भूतार, वीर तथा शांत। शेष छ रस इन तीनों के ही धारित हैं। हास्य और भय भूतार के धारित हैं, कथन और रोह वीर के तथा मधुसूत और बीमल शांत के। साथ-साथ देव वीर और शांत का भी भूतार में ही धारित कर देते हैं और इस प्रकार उठे रसराज ठहरते हैं। इसी

१ जो रस नव विधि विदुष कवि, वरगत मत प्राचीन ।

—राजतरंगिणी पृ० १८ ।

२ वहि नाति घाट विधि कहत कवि, नाटक मत परताहि सब ।

अथ सात वरगत मत काव्य के मौखिक रस के मेह नव ॥

—माविकलास पृ० १८ ।

३ तीनि मुख्य भी हैं रसनि हँ हँ प्रथम निमीन ।

प्रथम मुख्य तिम तिमहुँ में बोक पैहि धापीन ॥

हास्य भय व विमल संय रोह कथन संय वीर ।

मधुसूत अथ बीमल संय शांतहु वरगत वीर ॥

—माविकलास पृ० १००, अं० ११, १४ तथा राजतरंगिणी, पृ० ११ (चम्पक) से ।

४ ते बोक तिम दुहनि धुत वीर शांत रस भाद ।

संय होत विमल के साते जो रसराज ॥

—माविकलास, पृ० १०० अं० १३ तथा राजतरंगिणी, पृ० ११ (चम्पक) से ।

मन का देव में 'शब्दरसायन' में दूसरे देव से प्रतिपादन किया है। शृंगार रस के दो भेद हैं संयोग तथा वियोग। इनमें 'संयोग' के अन्तर्गत हास्य और भीरु भव्य तथा भाते हैं और 'वियोग' के अन्तर्गत रीति कलन और मयागक तथा बीभत्स और शान्त का दोनों में अन्तर्भाव हो जाता है (शब्दरसायन पृ० १८)। केशव ने भी धन्य रसों को शृंगार के ही अन्तर्गत दिखाया है और इस प्रकार शृंगार को ही रसरत्न माना है। देव की दूसरी स्थापना के अनुसार मुख्य रस चार होते हैं शृंगार और रीति और भीभत्स। शृंगार से हास्य की उत्पत्ति होती है रीति से कलन की और से भव्य की और बीभत्स से मयागक की^१। 'शान्त' को यहाँ छोड़ दिया गया है। केशव को भी यही सिद्धान्त मान्य है^२। देव ने हास्य रस के तीन भेदों उत्तम मध्यम और अधम का उल्लेख किया है (मयानीविज्ञान छ० २१)। केशव ने हास्यरस के चार भेद मंदाहास कलाहास घटिहास तथा परिहास बतसाए हैं जो स्पष्ट ही देव के भेदों से नहीं मिलते। केशव ने धन्य रसों के अन्तर्गत भेदों का कोई वर्णन नहीं किया है। देव ने भीरु, कलन तथा शान्त रस के भेदों के उदाहरण भी दिए हैं। देव ने तीन प्रकार के 'भीर' का उल्लेख किया है सुखभीरु, वानभीरु तथा दयाभीरु (शब्दरसायन पृ० ४१)। कलन के देव ने पाँच उपभेद किए हैं कलन 'घटिकलन महाकलन लघुकलन और सुखकलन (शब्दरसायन पृ० ३५)। 'बीभत्स' में कुकुप्सा के दो भेद देव ने बतसाए हैं शारीरिक घृणा तथा शान्ति (मानसिक)^३। देव ने 'मयानीविज्ञान' में शान्त रस के दो विभाग किए हैं—नक्तिमूलक शान्त तथा सुखशान्त। इनमें से पहले के तीन अन्तर्गत भेद किए गए हैं, प्रेम नक्ति सुख नक्ति तथा सुख-प्रेम (मयानीविज्ञान छ० १२२)। 'शब्दरसायन' में शान्त के केवल एक ही भेद सुख-शान्त (पृ० ४१) का उल्लेख है। इसके प्रतिरिक्त रीति मयागक और भव्य के भी केशव तथा देव दोनों ही भावार्थों ने एक ही भेद का वर्णन किया है। 'शब्दरसायन' में 'रसरोप' के अन्तर्गत देव ने रस के सरस मीरस स्वनिष्ठ परनिष्ठ सदास यादिक कुछ और भेद भी दिए हैं (शब्दरसायन पृ० १०) जो केशव ने छोड़ दिये हैं। केशव के प्रत्यनीक विरस मीरस कुसंज्ञान

१ होत हास्य विचार से कलन रीति से जानु।

भीरनक्ति भव्यरस कहौ बीभत्स से मयानु ॥

—शब्दरसायन, पृ० ४०।

२ भव जननी बीभत्स से यह शृंगार से हास।

केशव भव्यरस भीर से कलना कोप प्रकाश ॥

—र० वि०, प्र १४, अं० ११।

३ वस्तु विमोही वैचि धुति चित्त उपजै जिय माहि।

पिन बाई बीभत्स-रस चित्त की चलि भिटि जाहि ॥

निश-कर्म करि निश-पति सुनै कि देखे कोय।

तन संकोच मन संभयन विविधि सुमुप्सा होय ॥

—शब्दरसायन प्र ४१-४४ तथा मयानीविज्ञान, प्र १२३, अं० ४८।

तथा पानाशुष्ट आदि रस-योगों का वर्णन देव ने नहीं किया है। समु (बिरोधी) रसों (को बिरोधी भावों के आधार पर ही भाषित है) के नाम दोनों ही के समान हैं। देव ने बिरोधी रसों के उल्लेख दिए हैं और केचन ने उनका उल्लेख मात्र किया है। केचन और देव दोनों ही ने कौशिकी, भारती भारमटी तथा सात्वती वृत्तियों का वर्णन किया है। 'रसिकप्रिया' में ठीक उसी क्रम से इनका रसों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया है, जिस क्रम से 'अम्बरसामन' में बेटाया गया है। केचन ठीक सा अन्तर यह है कि सात्वती के अन्तर्गत 'शृंगार' के स्थान पर देव 'रीति' को मानते हैं। स्पष्ट ही देव के 'वृत्ति-वचन' का आधार केचन है।

नायिक नेर तथा रस के विभिन्न धर्मों का निरूपण करते हुए कुछ धर्मों तथा धर्मों के लक्षण केचन छोड़ गए हैं और कुछ के देव छोड़ गए हैं। मुग्धा मध्या प्रीड़ा आदि नायिकाओं स्थायी एवं सात्विक भावों सभी और वृत्ति आदि के सामान्य लक्षण केचन ने नहीं दिए हैं। मुग्धा मध्या एवं प्रीड़ा परकीया नायिकाओं के रूपमें मुग्धा के मुरति और मान तथा धर्मन के यों आदि के लक्षण देव ने नहीं दिए हैं। तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दोनों भाषाओं द्वारा दिए भविकांश लक्षण परस्पर नहीं मिलते। ऐसे कुछ लक्षण नीचे दिये जाते हैं—

संक्षिप्ती का लक्षण

कोन सीत कोविद कथन सजस सलोम धरीर ।

अवस वसन नख वलनधि, निलस निशंक धरीर ॥

(२० वि० प्र० १, श्ल० ८)

हीरस सिर कर करन कठि लघु नितम्ब कुच नन ।

अलस समा अलोप मुख संक्षिप्ती सीतल वन ॥

(भ्यानीनिरास, श्ल० २८)

वसिल नायक का लक्षण

वहिली सों हिय हेतु उर सहुन बढ़ाई कावि ।

चित्त बलनै न बलै वसिल ललल जावि ॥

(२० वि० प्र० २ श्ल० ७)

सब नातिन अनुकूल सों यही बस की रीति ।

म्यारी हूँ सब ली मिलै कर एक ही प्रीति ॥

(मानसिकार, पृ० १८)

१ अद्भुत और शृंगार रस समस्त बरबि समान ।

मुगधहि समुप्य भाव बिहि सो सात्विकी जान ।

—२० वि०, प्र० १२ अ० ५।

बीर, रीति, अद्भुत परी, जहाँ सात सबित ।

इस प्रीति, अचरज क्या प्रपट सात्वती वृत्ति ।

—शङ्कराचार्य, पृ० १६।

प्रववा एक गारि-धनुकृत कृत सकल विषय सम बल ।
(भवन्तीविज्ञास, पृ० ६६)

अनुभाव का लक्षण

आनंदन उड़ीय के को अनुकरल बजान ।
ते कहिये अनुभाव सब बंति प्रीति बिधान ॥
(२० प्रि, प्र० १ छ० ४)

जिनको निरखत परस्पर रस को अनुभव होइ ।
इनही को अनुभाव पब, कहत स्याने सोइ ॥
आपुहि ते उपकाय रस पहिले होहि बिभाव ।
रसहि जगज्ज को कहुनि, सो छेक अनुभाव ॥
(भावविज्ञास, पृ० १४)

विम्बोक हाव का लक्षण

कय प्रेम के बर्न ते कबह जनाहर होय ।
तहु उपलब्ध विम्बोक करत यमु बाने सब कोय ।
(२० प्रि०, प्र० १ छ० ४२)

प्रिय अपराध बनादि नह, उपर्ये यर्ज की बाह ।
कृष्टिल डीठि अवयव बलन, सो विम्बोक बिभाव ॥
(भावविज्ञास, पृ० ७६)

मान का लक्षण

पुरुष प्रेम प्रताप ते उपलब्ध परत अविमान ।
ताको छवि के जोभ सो, केसव कहियत मान ॥
(२० प्रि०, प्र० ६, छ० १)

पति परपतिनी रति करत पतिनी करतु नु मान ।
नृप मन्वन नयु नेव करि, ताहु विविध बजान ।
(भावविज्ञास, पृ० ७५)

दोनों आवायों के कुछ लक्षणों के नाम समान हैं, किन्तु ऐसे लक्षणों की संख्या कम ही है। कुछ छन्द भीषे प्रस्तुत किए जाते हैं।

स्वाधीनपतिका का लक्षण

केसव जाके पुरुष बंध्यो लवा रह्ये पति लय ।
स्वाधीनपतिका तासु को बरखत प्रेम प्रसंग ॥
(२० प्रि० प्र० ७ छ० ४)

बंध्यो रह्ये शुन कय सो, जाको पति आबोन ।
स्वाधीनता सो नाहका बरखत परम प्रवीन ॥
(भावविज्ञास, पृ० १२६)

सीता हाव का सहाय

करत जहाँ सीमान को प्रीतम प्रिया बनाय ।

अपगत सीता हाव तहाँ चलत केशवराय ॥

(२० प्रि०, प्र० ६ छं० २१)

बोमुक्त से पिय की करे पुपन नय उद्धार ।

प्रीतम सों परिहाय जहाँ सीता सैज बिचार ॥

(मत्स्यविहारा पृ० ७०)

प्रवास विधोग का सहाय

कश्य कीनहु काज से पिय पररेयाहि आय ।

तासों कहत प्रवास सब, कवि कोविद समुदाय ॥

(२० प्रि०, प्र० ११ छं० ७)

प्रीतम काहु काज है, अचनि गयो परदेस ।

सो प्रवास जहाँ बुहुन को कष्टक ॥ विमुचैस ॥

(मत्स्यविहारा पृ० ८१)

प्रोषितप्रेमसी का सहाय

बाको प्रीतम है अचनि गयो कीनहु काज ।

ताको प्रोषितप्रेमसी, कहि चलत कपिराज ॥

(२० प्रि० प्र० ७ छं० १६)

सो पिय प्रोषितप्रेमसी, बाकी पति परदेस ।

काहु कारण से गये, ईके अचनि प्रवेस ॥

(मत्स्यविहारा, पृ० १३१)

अथवा पति बिदेस क्यों हूँ गयो अगम सींचि छिछाप ।

प्रोषितपतिका रैन दिन बिच्छु बसा अकुलाय ॥

(रत्नविहारा, पृ० १६)

कौशिकी वृत्ति का सहाय

कहिजे केशवराज जहाँ कस्या हाव न्युगार ।

तरत बसै पुन जाय जहाँ सो कौशिकी बिचार ॥

(२० प्रि० प्र० ११ छं० २)

हास्य करन न्युगार में नृप कोतनन गान ।

मुजर बन्धुरति मजुर-पद वृत्ति कौशिकी जान ॥

(शब्दरसावन पृ० २६)

कुछ सहाय ऐसे भी देखने में पाते हैं जिनके भाषों में बहुत जोड़ा हो अन्तर
होते हैं वही दया अथवा कुदृष्टि हाव का सहाय ।

उद्देग का सारा

कुकरायक हूँ जात कहें, पुकरायक धनपास ।
 सो उद्देग रहा कुसह जानहु केदारनाथ ॥
 (२० प्रि०, प्र० ६, छं० ११)
 कहूँ प्रिय जान के धनमिले होइ धनदर प्राप्त ॥
 जसी वस्तु जागा लखे सो उद्देग बजान ॥
 (मानविकार, पृ० ८४)

कुद्वमित का सारा

कैनि कतह में जोनिसे, कैनि पठक्य ।
 कपमत है तह कुद्वमित हय कह्य कवि मुइ ॥
 (२० प्रि० प्र० ६, छं० ११)
 कुच पावन रवबाव से उतकपटा धनुराय ।
 कुकहू में मुक होइ कह कुद्वमित कहै समाय ॥
 (मानविकार पृ० ७५)

बास तथा केदार

बास में 'शृंगारनिर्भय' (रचनाकाल संवत् १८०७)^१ में शृंगार रस तथा उसके विभिन्न धर्मों का वर्णन किया है। नायक-नायिका शृंगार रस के धामात्मन प्रीति की पूरी प्राप्ति उद्दीपन है। अतएव 'शृंगारनिर्भय' में नायक-नायिका प्रेम, सखी व प्राप्ति का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है। शृंगार से इतर रसों का निरूपण इस ग्रन्थ में नहीं हुआ है।

बास में नायक के दो प्रेम पति और उपपत्ति बतलाये हैं (शृंगारनिर्भय छं० २) और फिर उनके पुनः-पुनः धनुकृत बसिय घट और बूट नामक चार प्रेयों के धामात्मन उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। बसिय नामक के बचन चातुर तथा क्रिया चातुर प्रेम भी किए गए हैं। बास में केदार द्वारा दिए गए धनुकृत प्राप्ति के इन चार प्रेयों का ही वर्णन किया है। बास ने केदार द्वारा दिए गए धनुकृत प्राप्ति के 'प्रकाश' और 'अन्धकार' प्रेयों का कोई उल्लेख नहीं किया है। दूसरी ओर विद्योत शृंगार के पूर्वानुसार निरूपण मान तथा प्रकाश प्रेयों के धामात्मन वर बास द्वारा दिए गए धनुकृत निरूपण मानो तथा प्रोपित नामकों (शृंगारनिर्भय छं० २८३) का केदार ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

बास ने नायिका का पहला वर्ण 'धारमजमानुसार' किया है और उसके तीन भव किए हैं धामात्मन स्वकीया तथा परकीया (शृंगारनिर्भय छं० २७)। 'स्वकीया' और परकीया प्रेम वालों ही धामात्मनों को मान्य है। बास ने केदार के धामात्मन प्रेम

१ संवत् विजय भूष को मधुकरहू से बास ।
 नायक मुदि तेरस पुरी धरवर बस निष्काश ॥

का उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः उन्होंने इसके स्थान पर 'साधारणा' लिखा है जिसका सञ्जन इस प्रकार है^१। यह सञ्जन केदार की सामान्या से नहीं मिलता है। दास ने 'स्वकीया' के पठित्वता सहायिक तथा माधुर्य—ये तीन श्रेय किए हैं जो केदार ने नहीं माने हैं। दास 'स्वकीया' के अन्तर्गत 'भोग्यामिनियों' (रखेस) को भी सेते हैं^२ जो केदार को अमान्य है। इसके पश्चात् दास ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा का कथन किया है जिसके छ' उपशेख किए गए हैं तथा साधारण ज्येष्ठा अत्रिण की ज्येष्ठा-कनिष्ठा सङ्ग की ज्येष्ठा सङ्ग की कनिष्ठा बृष्ट की ज्येष्ठा तथा बृष्ट की कनिष्ठा। केदार ने इन श्रेयों का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास द्वारा किए गए स्वकीया के ऊँड़ा तथा धनूडा श्रेयों (श्रृंखारनिधय छं० ७४) का भी कथन केदार ने नहीं किया है।

दास ने सर्वप्रथम 'परकीया' के प्रथमा धीर धीरा धर किए हैं (श्रु० नि० छं० ७६) फिर उसे धनूडा धीर ऊँड़ा दो श्रेयों में विभक्त किया है। इनमें 'धनूडा' के अन्तर्गत उब्बुडा तथा उब्बोधिता लिखकर उब्बुडा के दो उपशेख धनुरागिनी धीर प्रेमासक्ता किए हैं^३। फिर 'ऊँड़ा' के असाध्या कृच्छसाध्या तथा साध्या नामक तीन उपशेख धीर भी लिखे हैं। अथवा के धनूडार प्रायः सभी व्याचार्यों द्वारा किए गए श्रेयों में से उन्होंने विदग्धा (बचन-विदग्धा धीर किया विदग्धा) सञ्जिता (सुरति हेतु तथा धीर सञ्जिता) मुदित धीर धनुरागना—इन चार श्रेयों का कथन किया है^४। पाँचवें श्रेय गुप्ता (भूत, अविष्य धीर वर्तमान गुप्ता)^५ को 'विदग्धा' के अन्तर्गत रखा है और छठे श्रेय 'कुसटा' को छोड़ दिया है। उन्होंने मुदित (केविस्वाननि नाधिता भाबीस्वान अभाव तथा संकेत निःश्राव्य) धीर धनुरागना में भी विदग्धत्व

१ जामें स्वकिया परकिया रीति न जानी जाय ।

तो साधारणा नायिका बरमत सब बरिदाय ॥

—नवसरनिर्णय, पृ ८, अं २८।

२ भीमागिन के भीन जो भीम भागिनी धीर ।

तिनहु को स्वकीया ॥ में गर्न सुकवि विरमोर ॥

—नवसरनिर्णय, पृ २२ अं० ६३।

३ उब्बुडा उब्बोधिता इ' परकिया विसेखि ।

—नवसरनिर्णय, पृ २६ अं० ८४।

प्रथम धनुरागिनी श्रेय अक्षता करि

—नवसरनिर्णय, पृ २६ अं० ८६।

४ परकीया के श्रेय पुनि चारि विचारों जाहि ।

होत विदग्धा सञ्जिता मुदित धनुरागनाहि ॥

—नवसरनिर्णय, पृ ३४ अं० १० ।

५ जब तिय मुरति कषाबहो करि विदग्धता नाम ॥

मूढ भविष ब्रह्ममान ॥ गुप्ता ताको नाम ॥

—नवसरनिर्णय, पृ ३४ अं० १३।

स्थापित किया है^१। केशव ने कवल उड़ा घोर धनुषा—इन दो ही भेदों का वर्णन किया है। दास द्वारा वर्णित अन्य दोनों घोर उपभेदों का कोई विवरण नहीं दिया है।

उसका दूसरा वर्ण 'अयकमानुसार' है जिसके मुग्धा मध्या घोर प्रोढ़ा तीन भेद किए गए हैं। इन भेदों को उन्होंने साधारणा स्वकीया घोर परकीया तीनों में लिखा है। केशव ने इन तीनों को स्वकीया के ही भेद माना है। 'मुग्धा' के दो भेद अज्ञात यौवना घोर ज्ञातयौवना को भी साधारणा स्वकीया घोर परकीया तीनों में लिखा गया है परन्तु नबौढ़ा विमलनबौढ़ा घोर तीसरे नवीन भेद अधिमन्धनबौढ़ा^२ में साधारणा स्वकीया तथा परकीया का भेद नहीं किया गया है। केशव ने दास के 'मुग्धा' के अज्ञातयौवना घोर ज्ञातयौवना के स्थान पर बार भेदों का उल्लेख किया है। यथा नवलनबु, नवयौवना नवल धर्नगा तथा मज्जाप्राहरति जिनमें से कोई भी दास के उक्त भेदों से नहीं मिलता। नबौढ़ा आदि भेदों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। दास ने केशव द्वारा निकृष्ट 'मध्या' के धाकड़वीवना प्रगल्भनबुना प्रावृत्त मनोमहा तथा विविधमुग्धा एवं प्रोढ़ा के समस्तरसकोविता, विविधविभ्रमा प्राकृ-मतिनायिका तथा मध्यापति भेदों को छोड़ दिया है। केशव के मध्या तथा प्रोढ़ा के अष्टगुण बीरा, धवीरा तथा बीराधीरा भेदों को दास ने 'अविता' में माना है। दास ने मुग्धा तथा प्रोढ़ा की सुरति का भी वर्णन किया है (शृंगारनिर्णय पृ० ४८ २०) किन्तु केशव ने केवल मुग्धा की ही सुरति का वर्णन किया है।

तीसरा वर्ण दास ने अष्टनायिकाओं का लिखा है। इन नायिकाओं को उन्होंने संयोग शृङ्गार तथा विषोय शृङ्गार में विभक्त किया है^३। संयोग शृङ्गार में पहले 'स्वाधीनपतिका' को लिखा गया है जिसके अग्तमंत रूपमविता प्रेममविता घोर गुणमविता का उल्लेख किया गया है^४। फिर 'वासकसज्जा' को बतसाकर उसी के अन्तर्गत आगतपतिका^५ को लिखा है। तीसरी नायिका 'अभिसारिका' है जिसमें

१ मुद्रिता अनुसयनाहु में विद्यमानाह मिमि जाय।

—शृंगारनिर्णय, पृ २६ अ ११०।

२ मुग्धा त्रिष संयोग में कही लबौढ़ा जाहि।

अविमन्ध विमन्ध हूँ वे न पतिहि पतियाहि॥

—शृंगारनिर्णय, पृ० ४८ अ ४९।

३ होत संयोग विषोय की अष्टनायिका भेदि।

तिमके भव मनैक में कछ कछ कही बिसेलि॥

—शृंगारनिर्णय पृ २१ अ० १५०।

४ स्वाधीनपतिका है कही जाके बस है पीठ।

होय गविता रूप मुग प्रेम पय सहि बीठ॥

—शृंगारनिर्णय पृ० २१ अ० १५१।

५ पिय आगम परदेस तें आगतपतिका भाउ।

है वासकसज्जाहि में कही कही निठ जाउ॥

—शृंगारनिर्णय, पृ० २४ अ० १५२।

पुस्तका शीर कृष्णा यो भेद किए गए हैं। उन्होंने संयोग श्रृंगार की उभय तीनों भाषा काव्यों को स्वकीया और परकीया दोनों में लिखा है। विशेष श्रृंगार में उत्कृष्टता, कविता कस्तुर्वाचिता, विप्रसम्भा और प्रोपितभय का—इन पाँच भेदों का उल्लेख किया गया है। इनमें कविता के अन्तर्गत नीरा घभीरा, शीराभीरा भेद और मानिनी नाविका का वर्णन कर मानिनी में लघु, मध्यम और गुरु मात्रा योर्धों (श्रृंगार निर्णय छ० १८२) को भी लिखा है। 'कस्तुर्वाचिता' में भी तीनों मात्रा योर्धों का वर्णन किया गया है। 'विप्रसम्भा' में अन्तर्गत अन्त्यसंयोगद्विजिता और प्रोपितभय का के अन्तर्गत प्रवत्सवत्पत्नी प्रापितपतिका धायच्छपतिका तथा धायतपतिका का उल्लेख किया गया है^१। बास ने फिर सभी नायिकाओं के उत्तम मध्यम और प्रथम—ये तीन नाम और बतलाए हैं (श्रृंगारनिर्णय छ० २०३ २०४)। केदार ने स्वाधीनपतिका उल्का (विरहोत्कृष्टता) बागकम्पमा धमिसिद्धि (कस्तुर्वाचिता) कविता प्रोपित पतिका, विप्रसम्भा तथा धमिसारिका—इन पाठ नायिकाओं का तो वर्णन किया है पर उनकी दास के समान संयोग तथा विशेष श्रृंगार में विभावित नहीं किया है। वे 'स्वाधीनपतिका' के अन्तर्गत कर्णविलासि या विराजकम्पमा के अन्तर्गत धायतपतिका 'कविता' के अन्तर्गत धीराधि तथा 'विप्रसम्भा' के अन्तर्गत प्रवत्सवत्पतिका धादि उपभेदों में नहीं गए हैं। बास द्वारा वर्णित सुवर्णाधिसारिका तथा कृष्णाधिसारिका नामक भेद केदार ने नहीं दिए हैं। उन्होंने प्रमामिच्छाङ्गिका गर्भाधिसारिका तथा कामाधिसारिका नवीन सबों की सृष्टि की है जिसको दास ने छोड़ दिया है। 'धमिसारिका' को केदार ने स्वकीया, परकीया तथा सामान्या दोनों में लिखा है और दास ने कस्तुर्वाचिता और परकीया में ही। केदार ने कविता के अन्तर्गत मात्रा योर्धों का भी वर्णन नहीं किया है। केदार ने इन अष्टनायिकाओं तथा 'धमिसारिका' के 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' नामक दो-दो उपभेद किए हैं जिसका उल्लेख बास ने नहीं किया है। बास ने 'स्वाधीनपतिका' और 'बासकम्पमा' को स्वकीया और परकीया में लिखा है किन्तु केदार ने इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास द्वारा वर्णित उत्तम मध्यम तथा प्रथम भेद केदार को भी मान्य हैं। अन्त्य द्वारा बतलाए जाति के अनुसार नायिकाओं के वर्णनी विभिनी धादि भेद बास ने छोड़ दिए हैं।

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सखी बूती आदि का वर्णन किया गया है। बास ने 'बूती' को 'सखी' के अन्तर्गत ही माना है और उसके तीन भेदों का वर्णन किया

१ मिसन बास ने पति करी नीरहि रत हूँ जाह।

विप्रसम्भ यो कृष्टिता परसंयोग मुमाह ॥

—श्रृंगारनिर्णय, पृ० १२, पं० १६५।

२ कहिये प्रोपितभय का पति परदेसी जानि।

अमल रहत धायत मिसत जाहि भेद समानि ॥

प्रथम प्रवत्सवत्पत्नी प्रोपितपतिका केरि।

धायच्छपतिका बहुरि धायतपतिका हेरि ॥

—श्रृंगारनिर्णय, पृ० १२ पं० १६७-१६८।

है, तथा उत्तम भयम और अधम (शृंगारनिर्णय छ० १०८) । केशव जी 'सूती' की 'सूती' के सम्बन्धित हो मानते हैं पर वे इन गीतों का उल्लेख नहीं करते । केशव ने लिखा है कि नायक-नायिका बाध बनी मादल गटी पड़ोछिन मासिन बरइन, घिन्धिनी कुड़िहारिन रामबनी संयाधिनी पटइन धादि को सूती बनाते हैं । बाध ने इनका वर्णन नहीं किया है । इन्होंने सूती के मण्डन सम्बन्धित परिहास संवदटन, मान प्रबजन (मान-मोजन) पथिका देना उपासम्भ सिखा स्तुति विनय बहुला (यदुला) तथा विरहनिवेदन धादि कार्यों का उल्लेख किया है (शृंगारनिर्णय छ० २१५-२१६) । केशव ने सखियों के साथ कर्मों का उल्लेख किया है यथा सिखा देना विनय करना मनाता सिखाना शृंगार करना मुकुना तथा उभाहुना देना । केशव ने सम्बन्धित परिहास पथिका देना स्तुति बहुला तथा विरहनिवेदन को 'सूती' के कार्यों में परिचित नहीं किया है । केशव ने स्वयंभूतत्व का भी वर्णन किया है । बाध ने केशव द्वारा वर्णित नायक-नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन की विधियों तथा प्रथम मिलन स्थलों को छोड़ दिया है ।

बाध ने 'उड़ीपन' विभाव का लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही दिया है परन्तु केशव ने लक्षण और उदाहरण दोनों दिए हैं । केशव ने 'उड़ीपन' के सम्बन्धित नायक-नायिका का एक दूसरे की ओर देखना प्रमाण धातियन मखवान रहवान भुम्भ मर्न तथा स्पर्श का उल्लेख किया है । बाध ने इनका वर्णन नहीं किया है । दोनों प्राचावों के अनुभाव' के लक्षण परस्पर नहीं मिलते । बाध ने घाठ प्रसिद्ध सात्विक भावों स्तम्भ स्नेह रोमांच सुरम्य कंठ वीर्य्य धनु तथा प्रलय धादि को अनुभाव' के सम्बन्धित ही माना है^१ । केशव ने 'प्रलय' के स्थान पर 'प्रताप' को विनाकार इन घाटों को 'भाव' के प्रकारों में माना है । बाध ने व्यभिचारी भावों का सामान्य लक्षण न देकर उनके नाम एक छन्द में गिना दिये हैं । उन्होंने व्यभिचारियों की संख्या तीस ही मानी है (शृंगारनिर्णय छ० २१८) । केशव ने 'व्यभिचारी भाव' का लक्षण दिया है और उनकी संख्या ३४ बतलाई है । केशव के 'धावि' नामक १४वें संचारी भाव का उल्लेख बाध ने नहीं किया है । केशव के निम्ना कोह धास ठकं तथा विभाव धावों के स्थान पर बाध ने कमल धासुवा धमरय (धमर्य) वितर्क तथा धमहिता धावों का प्रयोग किया है । 'स्वायी भाव' का लक्षण दोनों प्राचावों ने नहीं दिया है । बाध ने केवल शृंगार रस के स्वायी भाव 'प्रीति' का ही उल्लेख किया है (शृंगारनिर्णय छ० २४०) । किन्तु केशव ने शृंगार रस के स्वायी भाव 'रति' के प्रतिरिक्त धम साठ रतों के स्वायी भावों हास धोक कोव उजाह, धय निम्बा तथा विस्मय को भी गिनाया है । शृंगार के दोनों भेद संयोग और वियोग दोनों प्राचावों को मान्य हैं । केशव के संयोग और वियोग के दो-दो भेद प्रकाश' और

१ याही में बरनं मुकुनि घाटों सात्विक भाव ।

स्तम्भ स्नेह रोमांच स्वरमहय कम्प वीर्य्य ।

धनु प्रलय सात्विकी भाव के उदाहरण ॥

‘प्रच्छन्न’ बास में नहीं माने हैं। केसव का श्रृंगार का लक्षण भी बास से नहीं मिलता। समीप श्रृंगार के धर्मार्थ वनिताओं के धर्मकारों का वर्णन करते हुए बास ने वस हारों का वर्णन किया है यथा सीसा समित विमास किस्तकिमित विहित निष्कित मोटाएत कुट्टमित विष्कोक तथा विमोहित (श्रृंगारनिर्घम २४९ २४७)। बास ने वसकर हेसा (श्रृंगारनिर्घम छ० २७८) तथा विभ्रम हारों का भी उन्हीं उल्लेख किया है। केसव ने १३ हारों का उल्लेख किया है। उनके ‘भर’ तथा ‘बोम’ हारों को बास ने नहीं रियाया है। बास के ‘विमोहित’ को केसव ने नहीं रिया है। बास ने ‘विभ्रम’ के धर्मार्थ कीटहल विष्कोक तथा सुग्न हारों को भी रिया है।

विमोघ श्रृंगार के धर्मार्थ बास ने पूर्वाश्रित्य विरह मान तथा प्रवास—इन चार भेदों का कथन किया है जो केसव को भी मालूम हैं। केसव ने इन चारों के ‘प्रकाश’ और ‘प्रच्छन्न’ दो-दो उपभेद और किए हैं जो बास ने नहीं माने हैं। केसव ने बास के ‘विरह’ के स्थान पर कवचा सख्य का प्रयोग किया है। पूर्वाश्रित्य के धर्मार्थ बास ने ‘वृष्टि’ तथा ‘भुति’ दो प्रकार के वर्णनों का उल्लेख किया है और फिर वृष्टि-वर्णन के प्रत्यक्ष स्वप्न छाया माया तथा चित्र नामक पाँच प्रकारों का वर्णन किया है^१। उन्हीं विरह, मान तथा प्रवास भेदों में सभी प्रकार के वर्णनों को माना है^२। केसव ने समीप श्रृंगार के धर्मार्थ केसव चार प्रकार के वर्णनों का वर्णन किया है यथा साक्षात् स्वप्न चित्र तथा भवण। भवण को केसव ने ‘वर्णन’ का ही भेद बतलाया है पर बास ने उसे धर्मार्थ ही रिया है। केसव ने प्रत्येक प्रकार के वर्णनों के ‘प्रकाश’ और ‘प्रच्छन्न’ दो-दो और उपभेद किए हैं जो बास ने छोड़ दिये हैं। केसव ने सभी वर्णनों के लक्षण तथा उदाहरण दिए हैं पर बास ने केवल ‘वृष्टि वर्णन’ का ही लक्षण रिया है। केसव ने ‘पूर्वाश्रित्य’ के धर्मार्थ धर्मिणाया धर्मिणस कामरसार्थों

१ कथित विभ्रम हार जहाँ भुति काज छँ बाह ।
कौमुदस छिन्नेन विधि याही में ठहराय ॥

—श्रृंगारनिर्घम, पृ० ६२ व २७२।

भानि वृष्टि की औरई जहाँ भरत है नाम ।
सुग्न हार छावों कई विभ्रम ही के धाम ॥

—श्रृंगारनिर्घम पृ० ६२, वं० २७५।

२ वृष्टि सुती है माति बरसन जानी भिज ।
वृष्टि दरस परतक सखन छाया माया चित्र ॥

—श्रृंगारनिर्घम पृ० ६२ व २८२।

३ दरसन सकस कुकार भुति इन तिहुन में माति ।
प्रजन सुन पभी मिले जब तब सुमिरन ध्यान ।

—श्रृंगारनिर्घम पृ० १० वं० २०० (श्लोक)।

वृष्टिदरस चित्र होत है भुति दरसन में नाम ॥

—श्रृंगारनिर्घम पृ० ६७, वं० २६२।

का वर्णन किया है और प्रत्येक के प्रकाश और प्रच्छन्न हो-बो उपभोग किए हैं। दास ने विद्योम भूगार के चारों ही भेदों में इन सब दशाओं को माना है^१। केशव द्वारा निद्विष्ट प्रविष्टापा के स्थान पर दास ने लाभस शब्द का प्रयोग किया है। केशव ने उसी दशा 'भरण' के वर्णन न करने की विधि बतलाई है^२। दास ने 'भरण' को तिरी निराशा की दशा के समतुल्य रखा है और कहा है कि उसके वर्णन करने में रसमय होता है^३। केशव के मान के कुछ भ्रमम और लघु भेदों एवं मानमोक्षण के उपायों का वर्णन दास ने नहीं किया है।

दोनों धाकाओं द्वारा दिये प्रसिद्धास सफल निम्न हैं। इस प्रकार के कुछ सफल यहाँ दिए जाते हैं।

रसिण नायक का सफल

पहिनी सो हिय हेतु कर, सहज बढ़ाई कामि ।

बिस जलहूँ ना जसे रहिए सफल जाति ॥

(२० प्रि. म. २ खं. ७)

बहुनारिन को रसिक पै सब पै प्रीति सपान ।

बचनक्रिया में प्रति अनुर रन्ध्रिय सच्यन जान ॥

(नृनारनिर्घय, खं. १९)

स्वकीया का सफल

सम्पति बिपति में सरलहूँ सदा एक अनुहार ।

ताको स्वकीया जानिये मन कम बचन बिचारि ॥

(२० प्रि. म. १, खं. ११)

कुल जगता कुल जानिनी स्वकीया सच्यन जाव ।

(नृनारनिर्घय खं. १२)

अनुभाव का सफल

आत्ममान उदीप के ले अनुकरण बखान ।

ते कहिये अनुभाव सब संपति प्रीति बिधान ॥

(२० प्रि. म. १ खं. ५)

१ चहुँ भेद में दास पुनि वसी दसा पहिचानि ।

लाभस चिन्ता कुलकपन स्मृति उद्भग प्रसाप ।

उन्मादहि व्याविहि मनो बढ़ता मरल संताप ॥

—नृनारनिर्घय, १ १ खं. १ (अपठ्य)-१०२ ।

२ भरण भु केशवदास पै वरनों जाइ न भिस ।

अजर अजर ताहीं कहै कैसे प्रेम चरित ॥

—२ प्रि. म. २, खं. १२ ।

३ मरण दसा कम मांति सो छुँ निरास मरि जाय ।

बीजन मुठ के बरनिने छहँ रसमय बराय ॥

—नृनारनिर्घय १ १ २, खं. १५ ।

धु धनुमाव बिहि पाइये मन को प्रेम प्रभाव ।
(शुभारनिर्णय, छं० २१४)

बिम्बित हाव का संस्करण

भूयल भूयव को जहाँ होहि अनावर घान ।
सो बिम्बित बिचारिये केशवराय सुमान ॥
(२० छि० प्र० ६ छं० ४५)

जम भूयन क बोहरी भूयन छवि सरसाय ।
कहत हाव बिम्बिति हैं जो प्रवीन कबिराय ॥
(शुभारनिर्णय, छं० २६१)

जड़ता का संस्करण

भूति पाय सुधि बुधि जहाँ सुख दुख होय समान ।
तासों जड़ता कहत हैं केशवराय सुमान ॥
(२० छि० प्र० ८ छं० ४६)

जड़ता में सब व्यापन भूति जात धनपास ।
सम निद्रा मोलनि हंसनि सुख प्यास रसवास ॥
(शुभारनिर्णय, छं० ३२९)

दोनों भाषाओं के कुछ सङ्घर्षों में भाव-साम्य है यद्यपि इस प्रकार के संसर्ग अपेक्षाकृत बहुत ही कम हैं। कुछ अन्य नीचे उपस्थित किए जाते हैं।

घुल्ट नायक का संस्करण

साज न गारी वार की, झाड़ु बई सब जात ।
देख्यो शोष न मानहीं, घुल्ट धु केशवजात ॥
(२० छि० प्र० २, छं० १४)

साज व गारी वार की छोड़ बई सब जात ।
देख्यो शोष न मानई नायक घुल्ट प्रकाश ॥
(शुभारनिर्णय, छं० २४)

ऊढ़ा तथा झगूड़ा का संस्करण

ऊढ़ा होत बिबाहिता अनप्याहिता झगूड़ा ।
(२० छि० प्र० ३ छं० ६६)

ऊढ़ झगूड़ा नारि हँ ऊढ़ा व्याही जानि ।
बिन व्याह सो धर्मरत ताहि झगूड़ा जानि ॥
(शुभारनिर्णय, छं० ७४)

उद्देग वशा के लक्षण

कुसुमायक तुं जात अहं सुसुमायक धनपात ।
सो उद्देग वशा कुसुह जानहु केसावदास ॥

(२० धि० प्र० ८ छ० ११)

यहाँ कुसुमयो लये सुसुम नु वस्तु धनेय ।
रहिबो कहुं न सोहात सो कुसुह वशा छद्ग ॥

(शुभारनिर्णय छ० ३१३)

नायिका-भेद तथा शृंगार रस के प्रयवर्णों का वर्णन करते हुए कुछ जेबों तथा प्रयवर्णों के लक्षण केसव ने नहीं दिए हैं और कुछ के बाव ने नहीं दिए हैं । सुम्पा मध्या ग्रीष्म साधारणा आदि नायिकाओं स्थायी भावों एवं सात्विक भावों और लची आदि के लक्षण केसव ने नहीं दिए हैं । इसी प्रकार बीरा धीरा और बीराधीरा नायिकाओं व्यभिचारी एवं स्थायी भावों तथा उद्दीपन बिम्ब के लक्षण 'शृंगार निर्णय' में नहीं मिलते । पुरछान्त का लक्षण दोनों भाषाओं ने नहीं दिया है केवल उदाहरण ही दिया है ।

पद्माकर तथा केसव

पद्माकर के भाषाश्रवण के प्रतिष्ठापक दो ही ग्रन्थ हैं पद्मामरण और जग द्वितीय । पद्मामरण के भाषार पर आचार्य केसव से देव की तुलना पूर्ववृद्धों में की जा चुकी है । यहाँ 'जगद्वितीय' के भाषार पर दोनों भाषाओं की तुलना की गई है ।

पद्माकर ने 'जगद्वितीय' में केसव की ही भाँति सुख्यत तब रस के राजा 'शृंगार' तथा सप्तक विभिन्न धर्मों का वर्णन किया है । नायक-नायिका शृंगार रस के प्रार्मर्शन माने गए हैं (जगद्वितीय छ० ६) । अतएव 'जगद्वितीय' में नायक-नायिका भेद का भी सविस्तार वर्णन किया गया है । शृंगार से इतर रसों का वर्णन 'रसिकप्रिया' के समान ही यहाँ भी बहुत ही संक्षेप में किया गया है । नायिका-भेद के अन्तर्गत पद्माकर ने पहिले नायिका का सामान्य लक्षण दिया है जो इस प्रकार है^१ । केसव ने 'नायिका' का सामान्य लक्षण नहीं दिया है । 'नायिका' के स्वकीया परकीया तथा मयिका प्रथमा सामान्या जेबों का वर्णन दोनों ही भाषाओं ने किया है परन्तु केसव ने 'नायिका' का उल्लेख करना अर्थात् न समझ केवल भाव भर ही मिला दिया है । 'स्वकीया' के लक्षणों में अग्न सामान्य बातों के अतिरिक्त पद्माकर ने यह भी बत भाया है कि स्वकीया यदि से पीछे जाती पीछी तथा छोटी है और पहले जागती

१ रस विचार को भाव पर उपलब्ध बाहि मिह्वारि ।

याही की कवि नायिका वर्णन विविध विचारि ॥

है। इस विषय में डा० सगीरस मिश्र का कथन है कि 'इसको स्त्रीया का लक्षण नहीं माना जा सकता है। ये पवित्रता के गुण हैं। कछ स्त्रीया नायिकाएँ ऐसी होती हैं सभी नहीं क्योंकि यह तो सब आदर्श है और स्त्रीया एक यमार्थ-वर्ग'। केसव ने अपने 'स्त्रीया' के लक्षण में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया है। 'स्त्रीया' के जेदों मुग्धा मध्या तथा प्रीड़ा का दोनों ही आचार्यों ने निरूपण किया है परन्तु उपमयों में भिन्नता परिभाषित होती है। पद्माकर ने 'मुग्धा नायिका के जातवीरता और प्रजातवीरता (अवहितोद्यो ७० २६) तथा नबोका और विभध्य-नबोका भद्रो (अवहितोद्यो ७० ३६ ३६) का उल्लेख किया है। 'मध्या' के पद्माकर ने कोई भेद नहीं किया है। इनके विचार से 'प्रीड़ा' के दो प्रकार हैं रति प्रीता और आनन्द संमोहिता (अवहितोद्यो ७० ४८)। केसव ने मुग्धा मध्या तथा प्रीड़ा आदि प्रत्येक प्रकार के चार चार उपमयों का विवरण दिया है। केसव द्वारा दिया 'मुग्धा' की सुरति तथा मान का वर्णन पद्माकर ने छोड़ दिया है। मान करने की वधा में मध्या तथा प्रीड़ा के भीरा अवीरा और बीरावीरा जेदों का निरूपण दोनों आचार्यों ने किया है। 'स्त्रीया' के व्येष्ठा और कनिष्ठा दोनों भेदों को केसव ने छोड़ दिया है। 'परकीया' नायिका के ऊड़ा तथा धनुषा जेदों का विवरण दोनों ही आचार्यों ने प्रस्तुत किया है। पद्माकर द्वारा वर्णित 'परकीया' के ७ भेदों (अवहितोद्यो ७० १ २ १ ८) मुष्ठा (मूननुरतिधनोपना बर्तमाननुरतिधनोपना और अविष्परतिधनोपना) विहगा (बचन विहगा और क्रिया-विहगा), कूटा मक्षिता मुक्षिता तथा धनुषयना (पहली दूसरी और तीसरी धनुषयना) का केसव ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

पद्माकर के विचार से उपर्युक्त सभी नायिकाएँ तीन प्रकार की हो सकती हैं धन्यनुरतिदुःखिता मानवती तथा बन्धोक्ति-वर्धिता (ब० वि० ७० १२४ १२५) और फिर बन्धोक्ति-वर्धिता के भी दो अन्वयत भेद प्रेमवर्धिता और कर्मवर्धिता किए गए हैं (ब० वि० ७० १३४)। केसव ने इन भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। जाति के अनुसार केसव द्वारा बतलाए गए पश्चिमी, बिभिनी, धक्षिनी और हस्तिनी जहाँ मायक-नायिका की प्रेम प्रकाशन की केष्याओं और प्रथम मिलन-स्वानों का बचन पद्माकर ने नहीं किया है।

प्रबन्धा के अनुसार पद्माकर ने मतिराम के सदृश ही इस प्रकार की नायिकाएँ बतलाई हैं (ब० वि० ७० १४० १४२)। केसव ने उनके घाठ ही भेद माने हैं और पद्माकर द्वारा उल्लिखित प्रणयप्रप्रेमसी तथा 'आधतपठिका' का कोई उल्लेख नहीं किया है। पद्माकर ने मतिराम के ही समान दसों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा, मध्या प्रीड़ा एवं परकीया तथा पणिका आदि भेदों के धन्यगत उदाहरण दिए

१ आन-वान पीछ करति सोमठ निछिसे छोर ।

प्रान-पियारे ते प्रथम जायति जावती छोर ॥

—अवहितोद्यो १ २ ब० १६ ।

२ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १६३ ।

है। केदार ने केवल 'अभिसारिका' के अन्तर्गत स्वकीया परकीया और सामान्या के अभिसार का लक्षण प्रस्तुत किया है और प्रेमाभिसारिका भर्माभिसारिका तथा कामाभिसारिका के उदाहरण दिए हैं, लक्षण नहीं दिए हैं। पद्माकर ने केदार द्वारा बतसाए इन सबों तथा इनके प्रकाश और प्रच्छन्न भादि उपमेयों का वर्णन नहीं किया है। पद्माकर ने 'अभिसारिका' के तीन अन्य ही भेदों विभाभिसारिका कृष्णाभिसारिका और सुकसाभिसारिका का उल्लेख किया है। केदार ने इनका वर्णन नहीं किया है। नायिकाओं के भेदों उत्तमा मध्यमा और अधमा का वर्णन दोनों ही भाषाओं में किया है।

पद्माकर ने नायकों का विभाजन कई प्रकार से किया है। पहले उन्होंने नायक के तीन भेद पति उपपति और वैधिक बतसाए हैं (ज वि छ० २८२) और फिर चार और भेदों धनुकूल वक्षिण खठ मोर वृष्ट का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने मानो बभ्रव वतुर, क्रिया वतुर प्रोपित तथा धनमित्र^१ नायकों का भी विवरण उपस्थित किया है। 'प्रोपित नायक' के पति उपपति और वैधिक के अन्तर्गत उदाहरण भी दिए गए हैं। केदार ने नायक के धनुकूल भादि चार भेदों का ही वर्णन किया है। केदार द्वारा वर्णित धनुकूल भादि भेदों के प्रकाश और 'प्रच्छन्न' भेदों को पद्माकर ने छोड़ दिया है। पद्माकर ने उन्हीं चार प्रकार के दर्शनों यवन शिव स्वप्न और प्रत्यक्ष का उल्लेख किया है (जगद्विजय छ० ३२३) बिना कि केदार ने किया है। पद्माकर ने केदार द्वारा उल्लिखित चार प्रकार के दर्शनों के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपमेयों का कोई विवरण नहीं दिया है।

शृंगार रस के आसम्बन्ध विभाव के अन्तर्गत पद्माकर ने केदार के समान नायक और नायिका को तो माना है^२ किन्तु केदार द्वारा वर्णित नायक-नायिका के जीवन रूप भादि का वर्णन नहीं किया है। शरीरपन विभाव के अन्तर्गत उन्होंने नायक के सप्ता नायक-नायिका की सखी वृत्ती भादि का निरूपण किया है। पद्माकर के धनुचार सप्ता के चार भेद हैं पीठमर्द विट चेट और विद्रूपक। केदार ने इनका वर्णन नहीं किया है। पद्माकर ने सखी के भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। केदार ने 'सखी' के अन्तर्गत बनी बाय पडोसिन भादि का बड़ा ही विस्तार के साथ वर्णन किया है। 'सखी' का लक्षण यद्यपि पद्माकर ने केदार से अधिक दिया है। पद्माकर ने सखी के कार्यों में मंडन सिद्धा उपासम्भ और परिष्कार को विनाया

१ यहाँ जो न तियान के ठान विविध विभास ।

यु धनमित्र नायक कह्यो वही नायका भास ॥

—जगद्विजय, पृ १४७ अ० ३१८।

२ आसम्बन्ध शृंगार के, कई भेद समुच्छास ।

सकल नायका नायकहि सच्छन्न लच्छ बनाइ ॥

—जगद्विजय पृ १४८, अ ३१९।

है^१। केसव ने परिहास का कोई उल्लेख नहीं किया है और उसके कामों में विनय माना जाय और भुक्तमा तीन और कामों का निर्देश दिया है। पद्माकर तीन प्रकार की दूतियों (अग्निलोच छं० ३२६) उत्तमा मध्यमा और अधमा और उनके दो काम बिरहनिवेदन और सपदटन (अग्निलोच छं० ३७०) बतलाते हैं। पद्माकर ने स्वयं दूती का लक्षण^२ उदाहरण-सहित दिया है। केसव ने स्वयंदूतीत्व का विवरण तो दिया है परन्तु दूती और उसके कामों का कथन नहीं किया है। पद्माकर ने केसव द्वारा निर्दिष्ट स्वयंदूतीत्व के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों नामक-नायिका की प्रेम प्रकाशय की केन्द्राओं खर प्रथम मिलन-स्थलों को खोज दिया है। खर खरी, दूती आदि के प्रतिरिक्त पद्माकर ने उपवन पद्मस्तु आदि को भी उद्दीपन के अन्तर्गत दिखाया है। केसव ने इन्हें न दिखाकर नायक-नायिका के एक दूसरे की ओर देखना आभास, आलोकन मलयान रसवान सुम्बन, नयन स्वर्ण आदि का उल्लेख किया है।

पद्माकर ने 'अनुभाव' के अन्तर्गत सात्विक भावों एवं हावों का वर्णन किया है। स्वयं स्वेद रोमाञ्च स्वरञ्च कम्प बभर्ष्य धामू और प्रसव—इन पाठ सात्विक भावों के प्रतिरिक्त के 'ज मा' नामक एक भाव सात्विक भाव और मानते हैं। उन्होंने इसका लक्षण उदाहरण-सहित दिया है। केसव ने इस नवें सात्विक भाव का कोई उल्लेख नहीं किया है और 'प्रसव' के स्थान पर 'प्रसाप' पाठवाँ सात्विक भाव माना है। पद्माकर ने इनके लक्षण और उदाहरण भी दिये हैं। परन्तु केसव ने न तो लक्षण ही दिए हैं और न उदाहरण ही। हावों के अन्तर्गत पद्माकर ने बीमा बिभास बिच्छित्त बिभ्रम किराकिचित्त तलित मोट्टापित बिष्णोक बिहृत कुट्टमित हेमा (ब० वि० छं० ४२६) तथा बोवक (ब० वि० छं० ४२२) को पित्तया है। केसव ने पद्माकर से 'यव' नामक हाव अधिक लिखा है। संचारी भावों में केसव द्वारा निरूपित कोह निदा बिपाव और आसतर्क के स्थान पर पद्माकर ने बमघा धमय (धमरक) धसूबा, धवहिरवा और वितर्क धम्यों का प्रयोग किया है। केसव के ३४वें आदि नामक संचारी भाव का उल्लेख पद्माकर ने नहीं किया है और नाव दोनों आचार्यों के समान ही हैं। केसव ने अविचारी धमवा संचारी भावों के केवल नाव ही पित्तया है लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही नहीं दिए। पद्माकर ने उनके लक्षण उदाहरण-सहित दिए हैं। पद्माकर ने रति हास चोक आदि प्रसिद्ध भी स्थायी भावों

१ काम सधिम के चारि मे मंडन सितामान ।

उवासम्म परिधास बुनि, भरनत मुकवि मुवान ॥

—अग्निलोच, ५ (३९ अं० ३४६)।

२ आपुहि सपगो दूतपन करे जु धपये काम ।

ताहि स्वयंदूती कहत धम्यन में कबिराव ॥

—अग्निलोच ५ (३३० अं० ३७२)।

३ जुना नयन बलानही जे कपीन के राय ।

—अग्निलोच ५० (४३३ अं० ३२३)।

का उल्लेख करते हुए उनके लक्षण सोदाहरण दिए हैं। केशव ने स्थायी भाव तो पद्माकर के समान ही नौ माने हैं पर उनके लक्षण धीर उदाहरण नहीं दिए।

पद्माकर ने केशव के ही समान नौ रस माने हैं धीर शृंगार को रसों का राजा कहा है^१। शृंगार रस के दो भेद संयोग धीर वियोग दोनों ही व्यापार्य मानते हैं। पद्माकर ने केशव के दोनों प्रकार के शृंगार के प्रकाश^२ धीर 'प्रच्छन्न' उपभेदों को छोड़ दिया है। पद्माकर ने वियोग शृंगार के तीन भेदों पूर्वाभिरुचि मान धीर प्रवास का उल्लेख किया है। केशव ने बीया भेद 'कथन' धीर माना है। पद्माकर ने केशव द्वारा उल्लिखित पूर्वाभिरुचि मान धीर प्रवास के प्रकाश^३ धीर 'प्रच्छन्न' उपभेदों को छोड़ दिया है। मान के प्रकारों मय मयन धीर गुह का दोनों ही व्यापार्यों ने निरूपण किया है परन्तु केशव के 'प्रकाश' धीर 'प्रच्छन्न' उपभेदों का पद्माकर ने कोई विवरण नहीं किया है। केशव द्वारा निदिष्ट मानमोहन के छ उदाहरणों का पद्माकर ने कोई उल्लेख नहीं किया है। पद्माकर द्वारा निदिष्ट प्रवास^४ के भेद^५ 'मविष्य' तथा 'भूत' केशव ने नहीं बतलाए हैं। वियोग की दस वशाओं का निरूपण दोनों ने ही किया है। चरित्रापा पुन-कथन उद्योग धीर प्रभाप का तो पद्माकर ने वर्णन किया है पर दोष छ के सम्बन्ध में भिन्नते हैं कि चित्रा प्रादि विरह की छ वशाओं का विवरण चंचारी भावों के धन्यार्पण दिया था बुका है^६। पद्माकर ने 'मुर्छा' नामक वशा का केशव से अधिक वर्णन किया है। पद्माकर ने इन दसों वशाओं के केशव द्वारा बतलाए 'प्रकाश' धीर 'प्रच्छन्न' उपभेदों को छोड़ दिया है।

विभिन्न रसों का निरूपण करते हुए केशव ने प्रत्येक रस का लक्षण उदाहरण सहित संक्षेप में दिया है। साथ ही कथन रीति बीर, भयानक बीभत्स धीर धनुमुत—इन छ रसों के कपोल घटक गीर, वयान भीम तथा पीत वर्णों का भी उल्लेख किया गया है। पद्माकर ने प्रत्येक रस का लक्षण देते हुए उसके स्थायी भाव विभाव अनुभाव संचारी भाव तथा रस-विषय के रंग धीर देवता का विस्तारपूर्वक विवरण प्रस्तुत किया है। पद्माकर द्वारा उल्लिखित कथन रीति बीर, भयानक, बीभत्स धनुमुत—इन पाँच रसों के रंग केशव के समान ही हैं। केशव ने दोष तीन रसों के रंग नहीं बतलाए हैं। केशव द्वारा निदिष्ट हास्य रस के चार भेदों मयहास कसहास, घटिहास धीर परिहास

१ सो शिंगार रसरत्न ।

—अधिनोद, १० ३ १, अ० २२१।

२ सो प्रकाश है यीति को, एक मविष्य एक भूत ।

—अधिनोद, १० १०९, अ० २१६।

३ एक वियोग-शृंगार में इसी प्रवस्था भाप ।

चरित्रापा पुन कथन पुनि पुनि उद्योग प्रभाप ॥

चित्राधिक जे पट कही विरह-व्यवस्था जानि ।

संचारी भावन विषे ही पायहु जो बखानि ॥

—अधिनोद, १ १०० अ० २४२-२४३।

का पद्माकर ने वर्णन नहीं किया है और पद्माकर के बीर रस के भेदों (अग्निनोद
छं० १८१) युद्धवीर, द्वाभोर, दामवीर और बर्मवीर का कथन ने कोई उल्लेख नहीं
किया है। केदार के वृत्ति तथा रस-दोषों के वर्णन को पद्माकर ने छोड़ दिया है।

पद्माकर और केदार दोनों प्राचार्यों के विभिन्न सधनों में योड़ा घस्तर तो
अवश्य है। यद्यपि प्रविर्भाव सधनों का मरव प्रायः समान ही है। कुछ
सधन ऐसे भी हैं जो दोनों प्राचार्यों के विभिन्न हैं। उनमें से कुछ उदाहरणार्थ यहाँ
दिए जाते हैं।

संविता नायिका का सधन

प्रायन कहि पार्थ नहीं पार्थ प्रीतम प्राप्त ।

ताके घर तो संविता कहै सु बहु विधि जात ॥

(२० छं०, प्र० ७ छं० १६)

अनत रने रति-विह्वल मति, बीतन के लुप जात ।

हुकित होइ तो संविता, बरनत मति-प्रबदात ॥

(अग्निनोद छं० ११६)

विभिन्नति हाव का सधन

बूदल बूदल को जहाँ होइ अनावर प्रान ।

तो विभिन्नति विचारिये केतवराय पुनाय ॥

(२० छं०, प्र० ६ छं० ४२)

कनक सिंघारहि मैं बहुरे, तबहि बहुरासि हैत ।

कोई विभिन्नति हाव को बरनत बुझि निकेत ॥

(अग्निनोद, छं० ४१३)

बसिख नायक का सधन

पहिलो तो दिय हेतु घर, चाहत बहाई कानि ।

बसि खलै हूँ ना बलै बसिख सधस जानि ॥

(२० छं०, प्र० २ छं० ७)

जु बहु तिरन को सुखर सम, तो बसिन मुनबाधि ।

(अग्निनोद, छं० २६८)

सीमा हाव का सधन

करत जहाँ सीमान को प्रीतम प्रिया बनाय ।

उपगत सीमा हाव तहँ बस्यत कोशकराय ॥

(२० छं०, प्र० ६, छं० २१)

पिय तिय को तिय पोष को बरै जु युवन बीर ।

सीमा हाव बजानहीं ताही को कवि पीर ॥

(अग्निनोद, छं० ७०७)

बोध (क) हाथ का सलारण

मूढ़ भाव से बोध जहाँ कोयल समुझ कोइ ।

सासों बोधक हाथ यों कहत सायासे सोइ ।

(१० प्रि० प्र० ६, छ० १४)

ठानि किया कबु तिय पुष्य बोधन करै जु भाव ।

रस-प्रगति में कहत हैं सासों बोधक हाथ ॥

(आदिनाद, छ० ४६२)

अभिसंधिता का लक्षण

मान पनावत हैं करे मानव को अपमान ।

बुनो बुन ता बिन सहे अनिर्लभिता बखान ॥

(१० प्रि० प्र० ७, छ० १३)

प्रथम कछु अपमान करि पिय को फिरि पक्ष्ताप ।

कनहातरिता बाधिका, ताहि कहत कबिराय ॥

(अमरिनीय, छ० १६८)

मनो अभ्यास

केशव का हिन्दी के परवर्ती शृङ्गारी कवियों पर प्रभाव

केशव का प्रभाव हिन्दी के परवर्ती प्रायः सभी शृङ्गारी मुक्तक कवियों पर मोड़ा-बहुत पड़ा है। यहाँ बिहारी मतिराम दास, देव तथा बेनी प्रवीण—इन पाँच कवियों को ही हमने अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

केशव और बिहारी

केशव का बिहारी के कवि-रूप पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सतसई के दोहों की रचना करते समय बिहारी के मन में निश्चय ही केशव के छन्द घूम रहे थे। इसके प्रमाण-स्वरूप बहुत से छन्द उपस्थित किये जा सकते हैं। उनमें से कुछ यहाँ बिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि बिहारी ने केशव से भाव रूपक आदि का ग्रहण किया है।

केशवदास ने आश्रम का वर्णन करते हुए लिखा है कि यहाँ भृगु शिषु तथा बाबु सपें तथा मोर आवि परस्पर-विरोधी होकर भी मिल-जुलकर शान्तिपूर्वक रहते हैं—

केशोदास भृगव बड़ेक पूर्वे आधिमीन
 बाटत सुरभि बाबु बातल बदन है।
 तिहुन की सदा दुँई कलम करनि करि,
 तिहुन की आसन धरव को रचन है।
 कली के कलनि पर नाबत भुवि भोर,
 कोष न विरोध बहाँ भव न भवन है।
 बानर किरत छोरे छोरे सब तापसन,
 आदि को निवास कैयो मित्र को सदन है।

(क० दि० प्र० ७ छ० ११)

बिहारी के दिग्गमिष्ठित दोहे से भी ऐसे ही भाव की अभिव्यक्ति हो रही है। देखिए—

कहलाने एकत बसत यहि मधुर भृगु बाप।
 जगतु तपोवन सी कियो बीरव-बाप-निबाध ॥

(बिहारी रत्नाकर, क० ४५६)

कहीं-कहीं बिहारी ने केशव के रूपकों को भी ग्रहण किया है। केशव ने एक स्थान पर नाथ का बड़ा ही सुन्दर रूपक बोधा है जिसमें 'नेत्र' काष्ठनी है 'पुतरी' (पुतली) पानुरी (मटी) तथा 'नेह' (प्रेम) नायक (उस्ताव) है।

कान्हे धितासित काष्ठीनी केशव पामुर कयी पुतरीन बिचारी।
कोटि कटाक्ष नहीं पति भेद नबावत नायक नेह बिहारो ॥
बावत हैं मुहु हास मूर्ख सो बीपति बीपति को उजियारो।
देखत हों हरि देखि सुम्हें यह होतु हैं आबिन बीच मझारो ॥

(र० प्रि प्र० १४, अ० ६)

इस बिधान को बिहारी ने भी अपनाया है और उनका दोहा एक प्रकार से केशव का अनुवाद सा ही बन जाता है।

सब संग करि राखी सुख नायक-नेह सिखाइ।
रस-कुत भेति अनंत गति पुतरी पामुरराइ ॥

(बिहारी रत्नाकर, अ० २८४)

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर केशव ने 'मुकुटी' को कमल तथा 'कुटिल कटाक्ष' को बाध बनाया है। बिहारी ने भी उनका अनुसरण करते हुए 'मोह' को कमल तथा 'बंक-बिलोकनि' को बाध ठहराया है। मिलाइये—

पत्र की कुमारिका वें सीमें मुक आरिका

देखता सी बीरि बीरि पाई जोरा जोरी चाहि ॥
बिन पुन तेरो आन मुकुटी कमल तानि
कुटिल कटाक्ष बाध यह अबरज चाहि।
एते मान बीठ, ईठ मेरे को असीठ मन,
पीठ वें ई मारती ये चुकती न कोऊ ताहि।

(क० प्रि०, प्र० ६, अ० २८)

तिय कित कमलैती पड़ी बिनु बिहि मोह कमल।
अन बिल-बेनी चुकत नाह बंक-बिलोकनि-बाध ॥

(बिहारी रत्नाकर, अ० १२६)

इनके प्रतिरिक्त (निघाना) न चुकने का उल्लेख भी दोनों ही ने समान-रूप से किया है।

केशव की नायिका इतनी सुकुमार है कि उसे महावर तथा धंगिका भी जो शृंगार की वस्तुएँ हैं मार जान पड़ती हैं, सोमा ही उसके लिए शृंगार है।

गति को नाथ महावर, आधि-अध को भाव।

केशव नकाशाख सीमिर्न सोमाई सियाव ॥

(रा० प्रि प्र० ६, अ० ४४)

बिहारी ने इस भाव को अपने ही हँस पर इस प्रकार प्रकट किया है—

मृगन बार संभारि है क्यों इहि तनु सुसुमार ।
सूखे नाइ न घर पर, सोमा ही के भार ॥

(बिहारी रत्नाकर, अं० १२२)

सतसई के मंगलाचरण सति दोहे का पुनोर्द्ध तक केसव के काव्य को देखकर हो बनाया गया जान पड़ता है । निम्नरूप—

राधा केसव कुंवर की, बाधा हरहु प्रवीन ॥

(क० प्रि० अ० १५, अं० ७)

मेरी भव-बाधा हरी राधा भारति सोम ॥

(बिहारी रत्नाकर, अं० १)

केसव और मतिराम

मतिराम पर केसव का प्रभाव बहुत हो पड़ा है । केसव और मतिराम के छन्दों में कहीं-कहीं मात्र साम्य दृष्टिसे प्रकट होता है जिससे प्रकट होता है कि मतिराम ने केसव के काव्य को भी पढ़ा था । उदाहरणार्थ दो छन्द यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं—

बामा के मृग हास्य को लेकर दोनों ही कवियों ने खूब ही कल्पना की उड़ानें सवाई हैं । जिस प्रकार केसव के हृदय में 'भोरी भोरी की भोरी भोरी हूँसी' को देखकर विविध प्रकार के छन्दे उठते हैं वही प्रकार मतिराम के मन में भी ऐसे ही भरे-भरे छन्दे उठे हैं । यों तो मृग हास्य के सम्बन्ध में 'भो-भो भी छन्दे केसव ने निम्नांकित छन्द में उठाए हैं सभी घनूटे हैं, किन्तु इस मृग हास्य के सम्बन्ध में 'गिरा की मोराई' और 'मोहन की मोहनी' होने के छन्दे का उठाना कवि की प्रखर प्रतिभा का परिचायक है ।

किन्हीं मुख-कमल में कमला की क्योति होती,

किन्हीं नाच मुख बन्ध बगिका बुराई है ।

किन्हीं मृगलोचनि, मरीचिका मरीचि किन्हीं,

रूप की बजिर रसि मुखि तों बुराई है ।

सीरम की सीमा की बलन मनदाबिनी की

केसव बसुर बिल ही की बसुराई है ।

एरी भोरी भोरी तेरी भोरी-भोरी हूँसी मेरी,

मोहन की मोहनी कि गिरा की मोराई है ।

(क० प्रि० (मूख) मरुभोज, अं० ४२)

मतिराम बामा के उही मृगहास्य को लेकर इस प्रकार लिखते हैं—

बानी की बलन लोचों बात के बिलात मोल

कौनों मुखबन्ध नाच-बगिका प्रकाश है ।

कवि 'मतिराम' कौनो काम को सुखत कैं ?

मराग पुन प्रकृतित मुमन सुखात है ।

नाक मयुनी के मजबोतिय को घाना कौनो ?

देहबन्त प्रवर्तित किए को हुलासत है ।

सीरे करिबे कौ पिमर्नन घनसार कौनो ?

बान के बहन बिनकत मुहु हासत है ॥

(कवित्तल्लाम छं० ५६)

इसमें समझ नहीं कि मतिराम की अंतिम तीन पंक्तियाँ व्यत्यस्त ही सुन्दर बन पड़ी हैं तो भी यह मानना ही पड़ेगा कि इस छन्द की रचना करते समय मतिराम के सामने केदार का उसका छन्द विद्यमान था । यही कारण है कि जहाँकि केदार से प्रच्छेद कल्प नाएँ हुई निकालने का प्रयास भी किया है ।

एक धर्म स्वस पर बोलों ही कवियों ने नायिका की सुकुमारता का बड़ा ही प्रच्छेद वर्णन किया है । केदार की नायिका इतनी सुकुमार है कि जब बासों के मार से ही उसकी कमर लचक जाती है तो स्तन कुर्बों का बोझ वह किस प्रकार बहन कर सकेगी । देखिए—

दुरिह नयों सुखम बसन दुति घौचन की,

देह ही की जोति होति सीत ऐसी राति है ।

नाह को सुखात नाये हूँ कौनो 'केदार',

सुभाव ही को बास नीर-नीर फारे जाति है ।

देखि ऐसी सुरति की मूरति निरुरति है,

जासन के दुग देखिबे को ललजाति है ।

बलिह नयों बग्नमुखी कुवन के भार भए,

कवन के मार ही लचक लंक जाति है ।

(२० छं०, प्र० १२ छं० १३)

दुसरी ओर मतिराम की नायिका भी कम सुकुमार नहीं है । नायिका की कमर पंखे की बानु से भी लल खा जाती है अतएव उसका बाहर जाना असंभव है । मतिराम भी लिखते हैं—

बरन करे न झुनि बिहरे तहांई जहां

फूले-फूले फूलन बिघायो परबंक है

भार के बरनि सुकुमारि बाब धंक्नि से

करत न संवराग कुकुन की पंक है ।

कहूँ 'मतिराम' देखि बासायन बीच घायो

घातप नसीन हीत बहन-भयक है

कैसे बहु बाल-लाल बाहुर बिजन धाई

बिजन बपारि लार्ने लचकति सक है ॥

(कवित्तल्लाम, छं० १२१ तथा रसराम, छं० ६०४)

‘कमर के लचकने के नाच को मतिराम ने क्याचित् केदार से ही लिया है।

केदार और देव :

देव ने आचार्य तथा कवि दोनों रूपों में ही केदार का प्रभाव ग्रहण किया है। टीलिविदेवन में उन्होंने यही-उही केदार को किश प्रकार अपना आचार बनाया है, इसका वर्णन पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। आचार्यी पृष्ठों में उनके कवि रूप पर पड़े केदार के प्रभाव का सिद्धान्तोक्त किया जायेगा।

दोनों आचार्यों के छन्दों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि छन्दों की रचना करते समय देव के सामने केदार के बहुत से छन्द निश्चय ही वर्तमान थे। स्व० साता भयवानदीन ने देव के यहाँ से केदार का बहुत-सा ‘पात बरानद’ किया है। यह ठीक है कि कहीं कहीं बेचारे देव भूके सुने में भी बुरी तरह पकड़े गए हैं, किन्तु फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि लाला जी की तल्लीलात बहुत कुछ कामयाब हुई है। देव ने निःसन्देह ही केदार से भाव, शब्द उचित श्लोक उपमा आदि का ग्रहण किया है।

भाव-ग्रहण

केदार बिलते हैं—

सजियानि मिली सजियानि मिली बसियान मिली बसियां सजि मने ।

ध्यान बिबाव मिली मन ही मन क्यों मिले एक मनो मिल सोने ॥

केदार बोलहुं बनि मिली तन छुँ है बहै हरि जो कछु होने ।

पूरन प्रन समाधि मिली मिलि बहै सुनै मिली तब कोने ॥

(२० छि०, प्र० न सं० २१)

यहाँ बूटी नायक से नायिका का विरह निवेदन करते हुए कहती है कि जब नायिका पूर्व प्रेम-समाधि लाभकर आप में लीन हो जायेगी अर्थात् घर जायेगी तब आप पहुँचने तो किससे मिलेंगे ? अतः मृत्यु हो जाने के पूर्व ही उसके भावों को बचा लीजिए।

देव की बूटी भी इसी प्रसंग में नायक से यही बात कहती है कि जब वह नायिका पंचत्व में मिल जायेगी अर्थात् घर जायेगी तब आप किसे मिलेंगे ? अतएव आप समय पर ही जाकर उसकी रक्षा कर लें।—

मुपत हो पयिगामे कसू किरि कीये से परबक ही को मिलीये ।

काल की हान में बुरति जात बिलोकि हलाहल ही कोहि सीने ।

सीमिते जाय सुप्रा ननु जाय कि व्याय ही बिप मोली बिलोये ।

पंचनि पंच मिले परपच में बाहि मिले सुय काहि मिलीये ॥

(सुखसागरांग, पृ० २०२)

निश्चय ही देव ने इन छन्द की रचना केदार के उपर्युक्त छन्द को देखकर ही की है।

कैवल्य ने मान के प्रसंग में लिखा है कि छबीली राधा मान किए बँठी है और कृष्ण के बार-बार अनुनय विलय करने पर भी मान नहीं छोड़ती है। किन्तु उन्हीं समय आकाश में मेघों की काही बटा के धुमड़ धाने से वह सहसा बामिनी के समान खपक कर कृष्ण के वल्लभत्व से वा बिलटती है।

यदि तों छबीली कृपमानु को कृचरि धानु रही हृषी कृपमद मानमद स्रुति कै ।
 मारु से सुकुमार नद के कुमार ताहि धाये री मनावन सपान सब तकि कै ।
 हंसि हंसि तोहँ करि करि बाँध परि परि जोगोराम की तों अब रहै जिय बकि कै ।
 ताहि समैं कटे घनघोर बामिनी सो बाह उर साथी घनधाम तन तों लपटि कै ॥
 (२० प्रि० ५ ६, छं० २८)

देव भी नायिका के मान मोहन के लिए कैवल्य की ही वृत्ति से काम लेते हैं। देखिए—

कठि रही बिन इँक तें बामिनि भाभी नहीं हरि हारे पनाइलै ।
 एक बिन कहुँ कारी संसारी घटा बिरि छाई घनी बहराइलै ॥
 और बहूँ पिक जातक मोर के तोर सुन तु छठी सकुमाइलै ।
 मेरो भद्रु पठि भामते को घन बोले की वाम अँधरे में बाइलै ॥
 (नायिकावत, पु० ८८)

कैवल्य ने बिरहिनी नायिका के जड़ों का निरूपण करते हुए लिखा है—

पूत न दिखाउ सुन पूतत है हरि बिनु,
 बुरि करि जाला जाला प्यास सी सपति है ।
 अँवर जलाउ बिन बीजन हलाउ मति
 कैवल्य सूर्यय बापु बाह सी सपति है ।
 अग्न अड़ाउ बिन ताप सी अकृति तन
 कूकुम न लाउ अँग धाय सी सपति है ।
 बार बार बरबसि बाबरी है बारीं भान,
 बीरो न जवाउ बीर बिय सी सपति है ।
 (२० प्रि०, प्र० ८ छं० ४)

यहाँ नायिका अपनी अंतरंग सभी से कहती है कि नायक के बिना उसे पूरा माता सुगन्धित बापु, कूकुम अंगन (पान का) बीड़ा धादि कुछ भी नहीं सुहाता अतः उन्हें दूर ही रखो। छीक इसी प्रसंग में देव ने सगमय इसी प्रकार का ही भाव दिखाना है—

देखे बुझ देख भेत अग्रिका अवेत करि,
 अँग न बितोत बहूँ अग्न को तारि ब ।
 बीजन लयी है यदि बीजन करै न देव
 बीजन सुहात ये सखीजन निवारि ब ।

सौंदर्य सखि सेंग न करेवन में घुस छठे
 बारि ये निकट कुटी राजखे जगारि है ।
 छूले बगों फगो री घुस गालाकों न भीरो बरि
 ये बीरी बरीयै जात ये बगारि है ॥

(सुकुमारवर्ण, पृ० १६२)

केदार के कवित्त को भाव को लेकर ही इस कवित्त की रचना की गई बात पड़ती है । यह बात अवश्य मादगी पड़ेगी कि केदार के कवित्त पर केदार के उपर्युक्त कवित्त की छाया कुछ ही अंश तक पड़ी है ।

केदार कृष्ण को 'स्मृति' दया का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

धुमे ॥ डोलत डोलत हूँ उत जात किसे मन संभ्रम भूख्यो ।
 जानति हों यह काहु को मानु मनोहर हार हिकोरन भूख्यो ॥

(१० प्रि० प्र० = छ० २६)

यहाँ कोई सखी नायक से कहती है कि मैं आपको बुझा रही हूँ और आप खोत-खोए से हो गए हो कि उबर बने जा रहे हो । बात पड़ती है कि आपका मन किसी के मनोहर हार के हिकोरे में भुन रहा है । ठीक यही भाव केदार ने भी निम्नांकित छन्द में दर्शाया है, अलग अवस्थ भिन्न है ।

या विधि भूलत हैकि मयो
 तब ते कबि हैन सनेह के जोरे ।
 भूलत है हियरा हरि को
 हिय नाहि सिहारे हरा के हिकोरे ॥

(सुकुमारवर्ण, पृ० १६)

केदार नायिका को सखी से पिछा दिसवाते हैं कि 'नाह' से 'नेह' निबाहने में ही तुम्हारी भलाई है उससे तुम्हें सबैक ही सुख प्राप्त होगा रहना । 'नाही' (मुह मोड़ने) से 'नेह' कैसे निभ सकेगा ।

नाह लयें सीति बहो दुख नाहि सय सुख बेह रह्यो ।
 नाहि अंश सुख बेत है केदार नाह सदा सुख बेत रह्यो ।
 नाहि से नाहि रो नाहि भलाई भलो सब नाहि ते प रह्यो ।
 नाह सों नेह निबाहि भलाई ल्यों नाहीं सों नेह नहा निबह्यो ॥

(१० प्रि० प्र० १६ छ० २)

एक प्राम्ग क्कल पर भी केदार ने ऐसा ही भिक्का है—

ये ही लड़क्यावरी धहीर ऐसी बूझो तोहि,
नाहूँ सों समेह कीबै, नाही सों न कीजिये ॥

(१० प्रि०, प्र० ४ छं २२)

देव न केदार के इस भाव को ठीक उठी प्रसंग में क्यों का ल्यों प्रपनाया है
अन्तर केवल इतना ही है कि केदार ने सखी द्वारा कहनाया है और देव ने बूटी से ।

बोरिये को नै कुरै सरिकाई,
न तोरिये क्यों लखनाई को नातो ।
नेहूँ निहोर निहारी नहीं गहि
श्रोमुख क्यों मुख कीबै पमातो ।
देव नू देखो बिचारि यहो तुन्हें,
नाही सों नातो कि 'नाहूँ' सों नातो ॥

(सुखसम्पत्ति, प० १५१)

केदार सहेली के घर में मिलने का प्रस्निक करते हुए कहते हैं—

नैनन के तारिम में राखो प्यारे पूतरी के
पुरतो क्यों लाइ राखो बखन-बखन में ।
राखो मुख कीबै बनयासी बनमान कर,
बखन क्यों बतुर बड़ाव राखो तन में ।
केधोराइ कलकण्ठ राखो बलि कटुता के,
करम करम कैतु आनी है बखन में ।
बखन कली क्यों चुपि चुपि कान्हू देखता-सी
नेहूँ जेरे सात इन्हें नैलि राखो मन में ॥

(१० प्रि०, प्र० १ छं० २८)

इस छन्द में नायिका की छोटी नायक से कहती है कि नवस-नवेसी को क्यों ल्यों
करके यहाँ लाया गया है 'घर' उसे अपने मेव की पुतली तथा कण्ठ का कटुता बना
कर अपने हृदय में धारण कीजिये । देव ने भी ठीक ऐसा ही भाव प्रकटित किया है ।
यहाँ तक कि देवद्वारा प्रकृत 'नेहूँ सात' का सम्बोधन भी देव ने प्रकृत कर
लिया है ।

नेहूँ लता उठि जाई हों नासहि सोक की नासहि सो जरि राखी ।
केरि इन्हें गुपेन्हें न पयसु से अपने घर में जरि राखी ॥
देव लता बबला नवना यह, बखनता कटुता करि राखी ।
घाटहु बिडि लखी निधि नै घर बाहर भीतर हूँ जरि राखी ॥

(रसमिश्र, छं० २३)

वों एवं उक्तियों का ग्रहण

देव के छन्दों में यत्र-तत्र केचन द्वारा प्रयुक्त छन्द तथा उक्तियाँ भी देखने में आती हैं। निम्नलिखित छन्दों में जिन छन्दों एवं उक्तियों को दोनों ने समान-वन में रूपा किया है उन्हें इतिवृत्त में दिया गया है।

(८) जो प्रति उत्तर देह सखी बुध प्रभुन की प्रवर्ती उपरही।

उर साथ लई प्रभुसाय लख अपि रागक ली दितकी न रही।

(२० दि० प्र० ६ अ० ४४)

अंक में धाय अयंक मुझी लई

लाल को अंक बिज बुध कोरन।

प्राप्तुन बूझो उसाध उझो दियो

साय गयो दितकी के हिमोरन ॥

(मुक्तानन्दवर्ग, प० २८०)

(९) गेरु को ली नवा को ली मोहि कि बार लयी कहि मेरी ली कोही।

(२० दि० प्र० = अ० ३६)

बाझल को ली नवा को ली मोहन मोहि नवा की ली गेरु की ली।

(मुक्तानन्दवर्ग, पृ० ८६)

(१०) जाति बजावति ही बु विरी बु रही मुझ की मुझ शय की दायदि।

(२० दि० प्र० ८, अ० १)

देव कप रद बीरी बयो पी बु दाय की दाय रही मुझ की मुझ।

(महानीसिद्धांत अ० १६)

हपक तथा उपमा का ग्रहण

भावों, वस्तुओं तथा उक्तियों के प्रतिरूपित देव ने केचन के कपकों तथा उपमाओं का भी अपने हण से ग्रहण किया है।

केचन ने निम्नलिखित छन्द में 'नाच' का कपक बोधा है जिसमें उन्होंने 'नच' का काछनी 'पुतरी' को पातुरी (नटी) धीर 'निह' को नाचक बनाया है।

काछे तिसातित काछनी केअव नाचुर कों पुतरीन विचारो।

कीटि कटाज नच गति भव बजावत नाचक मेहु निहारो ॥

बाझत है मुहुहात मुकग लो बीपति बीपति को उपचारो।

देखत हो हरि बेजि तुम्हें यह होयु है पाछिन बीज बनारो ॥

(२० दि०, प्र० १४ अ० १)

देव ने केचन मृग-कपक को ही लिया है। उन्होंने 'मुहुटी' का नटी एवं 'प्रम' को पुटकी बनाने वाला कल्पित किया है।

बाबी बसै रसना बसनाइ नु नुपुर नाय की नुपर भारे ।
 धौन के ताग मनोव के बाग सौ धौन के पाग परे अनुसारे ॥
 नाव सुटी खिन एक छरी लह देव कटाक्ष-कुटीर के द्वारे ।
 प्रेम बुरी मुख योग बुरी, सु नवी मूकुरी निकुरी के खसारे ॥

(सुखसागरतरंग, पं० १४८)

केशव ने एक स्वप्न पर रात्रि को सात मुखवासी 'प्रेम' की मारि बणित किया है। देखिए—

प्रेम की मारि क्यों लारै अनेक बहाय बसै वितन बहूँ पायो ।
 कोहिलि ली कुकरे करि-हंजनि केशव अनेक सबै लन लायो ॥
 भेंट ही बरखी धबहूँ ली बरपाइ गई ही मुखै मुख सलयो ।
 भँसो करौ कति लैले वषों बहुरी निधि भाइ बिदे मुख राखो ॥

(२० प्रि० प्र ११ छं० ११)

हैव ने प्राची को सातमुखवासी पिशाचिनी कहा है। इस प्रकार वेव ने स्वप्न रूपक में केशव के उपमा का ही उपयोग किया है।

का बरखई को भयो बिल बौरो
 धितीति बहूँ निधि बाइ लौ नाची ।
 झ मई धीम धपाकर की धनि
 धामिनि कोल्ल मनो मन पाची ।
 बोलत बँरी बिहुँमन वेव
 सु बँरिन के घर संपति लाची ।
 लोहू वियो लो वियोबनि को मु,
 कियो मुख लाल विद्याविनि प्राची ॥

(सुखसागरतरंग छं० २११)

वेव ने रूपक के उपास केशव की उपमाओं का भी कही-कही प्रहसन किया है। वेव ने 'वासुदेव' नामिका का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रिय के प्रागमन की वेष-वेखने निकुनों के भूरभूर में छिपी हुई नामिका की बसा पित्रे में पड़ी हुई विधिया के सद्यु हो गई है।

लग्नलाल भागव बिलोके कुबलाय बास

लीगुहीं पति तेही फास पंजर फांग की ।

(२० प्रि०, प्र० ७ छं० ११)

हैव ने इसी उपमा का उपयोग दो स्थलों पर किया है एक तो कविमयी की कथा के वर्णन में यथा—

चेति फिर हेरि मयु बाछ हिय बंधी पूर्ष,
बंधी हूँ मुरखी बंधे बंधो पीनरा पर्यो ।

(मुक्तामरतरंग, छ० १०)

पूर्वरे मय्या नायिका के स्वप्न-बर्णन के प्रसंग में, बैसे

मु फिर करके पिनरा की बिरी क्यों ।

(मरानीविलास, छ० ८६)

केदार और बास

बास पर केदार का प्रभाव है अत्यन्त बर बड़ बहुत ही चौड़ा है। बास के कुछ छन्द ऐसे हैं जिन पर केदार के भावों एवं उक्तियों की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। यही कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं।

कदम नायिका की चिन्तक का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

राहु बँसो रजन राहो है क्षिति जलमार्गहि ।

समी को सुहाय कियो ।

(क० प्रि० (मुख), मन्थिर, छ० ११)

इसी प्रसंग में बास ने भी भाव दर्शाया है। देखिए—

जगद में राहु को बल लप्पी के

चिरी बलि भग सोहाय लिपारे ।

(श० नि० छ० ४४)

इसी प्रकार ललाट का वर्णन करते हुए केदार लिखते हैं—

नामिनी को भगत कियो भाग बाध जगद को ।

(क० प्रि० (मुख), मन्थिर, छ० १६)

इसी प्रकार के भाव को बास ने इस प्रकार प्रपञ्चित किया है—

भाग लखे हिमवान् को भाव

लिपार कियो बुधवान् लखी को ।

(श० नि०, छ० १५)

हृत्प की भी 'प्रसाय' शब्द का वर्णन करते हुए केदार उनके मुख से 'सी' शब्द का तीन बार प्रयोग करते हैं।

घोरस की सी बवा की सी लोहि कि

बार लखी कहि बेरी सी की ही ।

(१० प्रि० प्र० ८, छ० १६)

बास ने भी प्रपञ्चित श्रुतक नायक तथा नायिका के भाव प्रत्यय के प्रसंग में 'सी' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है। देखिए—

पंकज करन की सौ जानु सुवरन की सौ
 लंक तनु की सौ बाकी अलक महति है ।
 त्रिवली तरंग कृष्ण सन्नु अनु रंग की सौ
 हारावलि यव को सौ जो उत महति है ।
 सुति सनुवारी बा बदन द्विजराज की सौ
 एरी प्राणप्यारी कोप कोपे तू महति है ।
 छाँची हूँ कहति तूब बेनी सौ कमलनेनी
 तेरी सुनि सुषा मोहि क्यावति रहति है ।

(म० नि० छ० २२४)

रुपा तो बिन राग सौ रंग कृपा
 तुम रंग सनय की जीवन की सौ ।
 मुसकान मुखारत जीवन की,
 तुम मानव मानव जानवि की सौ ॥
 बास के प्रास की पाहूँ तू
 यह तेरे करेरे उरीजन की सौ ।
 तो बिन बीबो न बीबो प्रिया
 मुँहि तेरई नैन सरोजन की सौ ॥

(म० नि० छ० ११)

कहीं कहीं दोनों ने समान उपमाओं का भी प्रयोग किया है। 'अन्निका' को मामिका के हाव का और 'शु गार लता' को उसकी रोमावली का उपमान बतलाया गया है, यथा

(१) बास मुसकान की सौ अन्निका ।

(म० नि०, छ० ४७)

किबो बासमुख अन्निका बुराई है ।

(क० नि० (मू.) मलमिक, छ० ४२)

(२) किबो काम बासबाज बोई है सिंगार बेनि ।

(वही, छ० २३)

यह रोमावली के सिंगारलता ।

(म० नि०, छ० १८)

केशव और मैनी प्रवीण

मैनी प्रवीण पर केशव का प्रभाव बहुत ही सीमित है। कारण प्रवीण मतिराम की परम्परा के कवि हैं। वो-एक छन्दों में ही मान-वाम्य एवं उल्लि-वाम्य परि मलिय होता है। ऐसे कुछ सहाहरण भीचे उपस्थित किए जाते हैं।

केदार में नायिका की उन्मा दीपमालिका से भी है। विविध प्रकार के समुच्चय धामुष्यों से सुसज्जित नायिका बचसमा रही है। नीले वस्त्रों से घाञ्छावित होने से साम्ब शीर भी पूरा उतरता है। धमाकस्या की तिभिराञ्छल राशि में जिस प्रकार दीपमालिका बचसम करती है उसी प्रकार नीले वस्त्रों में धुष्यों से भूषित नायिका भी सुसज्जित है।

विदिमा समीह बकि धुधुध बराय बरी
 बेहरी झुबीनी घुग्घटिका की आलिका।
 मृन्मरी लघार पौबी कंकण बसप जूरी
 कंक कंठमाज पहिरे पुपानिका ॥
 बेछीकूल झोछकूल कछुंकूल नागफूल
 बुबिला सितल नकमीसी सोहू आलिका।
 केदारदास मोनबाल झोति अवि मनि रही
 देहुबरे ह्यामर्तय मानी दीपमालिका ॥

(६० प्रि० (मूल) नवप्रिया, छं० ८८)

इसी प्रकार का भाव अपने ही रूप पर बेनी प्रवीन ने भी प्रदर्शित किया है। नायिका सज बन कर बचन में बेटी अपने प्रिय के धायमन की प्रतीक्षा कर रही है। धामुष्य तथा सज-बोधि का विकास हुआ प्रकाश भरोहों में से बाहर की ओर झनक रहा है। यदि को ऐसा लपटा है मार्गों किसी मणिमहल में दीपमालिका लगा गई हो।

लकल लिंगार लालि राबिकें प्रवीन बेनी,
 धायमन आवि लिय प्रेम प्रतिपालिका।
 समकल पदन मदन की कर्मय धन
 केलि के लवन बेटी बदन विद्यालिका ॥
 गग अणमकल जगत जोति जोवन की
 लारी लरजारी धन लीखी लन आलिका।
 मलक मलक मलकति छोई मालरीन
 मालो मनिमहल लगानी दीपमालिका ॥

(मदरसनाम, छं० ११३)

बेनी प्रवीन ने केदार की उक्ति 'बन की लो' (२० प्रि०, पं० ८ छं० १६) का भी अपने ग्रन्थ में एक स्थान पर प्रयोग किया है। देखिए—

काम्हि हि मूँचि बडा ति ली मैं,
 मममोतिन बहिरी प्रति आला।
 धाई कहीं ते इहाँ बुराय की,
 लख गई अमुना छल बाला ॥

(मदरसनाम, छं० ११)

दसवीं अध्याय

केशव का स्थान

(प्र) अलंकार विवेचन के क्षेत्र में

पूर्वपृष्ठों में दिए गए तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निर्णय करना सरल हो जाता है कि केशव के प्रतिबोधी उपबन्ध भाषायों में केशव का क्या स्थान है। अलंकार विवेचन के क्षेत्र में चिन्तामणि मतिराम देव और पद्माकर का स्थान केशव से नीचा है। केशव ने अपनी 'कविप्रिया' में जिस मीलिकता का परिचय दिया है वह 'कविप्रसन्नस्य' 'अलितललाम' भावविनाश' 'खण्डरसावन' तथा 'पद्मा सरण' में देखने में नहीं आती। चिन्तामणि ने शब्द और अर्थ दो प्रकार की मतिराम के आधार पर शब्द और अर्थ दो प्रकार के अलंकार माने हैं। इन्होंने लगभग सभी अलंकारों तथा प्रायः सभी मुख्य अर्थकारों का वर्णन किया है परन्तु भेदों-उपभेदों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। विनाशकार का भी बहुत ही संक्षेप में विवेचन किया गया है। प्रेक्षक केवल भाषा रसालंकारों का चिन्तामणि ने ग्रहण नहीं किया है। इन्होंने केशव के 'अभ्योक्ति' अलंकार को भी छोड़ दिया है। चिन्तामणि द्वारा दिए गए अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही स्पष्ट तथा मोलभाव की भाषा में व्यवहृत हैं पर उनका आधार संस्कृत के काव्यप्रकाश साहित्यदर्पण आदि अनेक ग्रन्थ ही हैं और उनमें कोई विशेष नवीनता दिखलाई नहीं पड़ती।

'अलितललाम' में मतिराम ने अलंकारों के अलग बड़े ही बसठाऊ ढंग से दिए हैं। उदाहरण अवश्य सुन्दर हैं। इस ग्रन्थ में अलंकारों का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया है और अधिकोद्य अर्थालंकारों का भी वर्णन है। अलंकार में केवल 'चित्र' को ही लिया जा सकता है किन्तु इसका भी लक्षण बड़ा ही संकुचित है। 'अभ्योक्ति' अलंकार तथा रसालंकारों को मतिराम ने भी छोड़ दिया है। भाषाईय की दृष्टि से 'अलितललाम' का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। सभी बातें संस्कृत-ग्रन्थों पर ही आधारित हैं और ग्रन्थ में कोई प्रमुख विशेषता बुझनेपर नहीं होती।

'रसदहस्य' में कुतपति मिश्र द्वारा निरूपित अलंकारों की संख्या यद्यपि मतिराम आदि भाषायों की अपेक्षा काफ़ी कम है किन्तु तो भी केशव की अपेक्षा अधिक ही है। कुतपति मिश्र ने अलंकारों का विभाजन शब्द और अर्थ के आधार पर किया है। इन्होंने मुख्य अर्थालंकारों तथा लगभग सभी प्रधान अर्थालंकारों का वर्णन किया है किन्तु वे भेदों-उपभेदों में नहीं गए हैं। 'अभ्योक्ति' तथा रसालंकारों का विवेचन कुतपति मिश्र ने भी नहीं किया है। 'विनाशकार' का भी बहुत ही कम विस्तार किया गया है। कुतपति के लक्षण यद्यपि अधिकोद्य काव्यप्रकाश के आधार पर हैं फिर

भी हिन्दी धर्मकारदास में इस ग्रंथ का महत्त्व बताया नहीं जा सकता। मौलिकता की दृष्टि से इसमें कोई विशेष महत्त्व चाहे न हो पड़े पर यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन्होंने धर्मकारों का विवेचन बड़ी पूर्णता के साथ किया है। इस प्रकार इन्हें केदार से बढ़कर नहीं तो समकाल निःसंकोच ही रखा जा सकता है।

देव ने 'भाषविज्ञान' ग्रन्थ में ३६ धर्मकार मुख्य बतलाए हैं जो प्रायः दण्डी के अनुसार ही हैं। दण्डी से केदार ने धीरे केदार से देव ने उन्हें लिया है। 'धर्मरसायन' में उन्होंने धर्मकारों का विभाजन छन्द धीरे धर्म के आधार पर किया है। धर्मालंकारों के दो वर्ग किए गए हैं—मुख्य तथा मीन। उन्होंने ४० मुख्य धर्मकार धीरे ३० मीन माने हैं। इनमें मुख्य धर्मकार कीन से हैं धीरे मीन कीन से हैं इसका भी स्पष्ट रूप से कोई निर्देश नहीं किया गया है। 'भाषविज्ञान' में बतित रसालंकार तथा 'धर्मरसायन' में बतित 'धर्मोक्ति' का आधार भी केदार ही है। 'धर्मरसायन' में एक प्रकार के छन्दों को एक ही छन्द में स्पष्ट कर दिया गया है जिससे लक्षण के समझने में कठिनाई होती है। वहीं-वहीं केवल नाम से ही लक्षण का ग्रहण करने के लिए निर्देश किया गया है। केवल धर्मकारों की संख्या में बुद्धि करने के लिए नए धर्मकार भी बना दिए गए हैं जैसे 'संघम' धर्मकार। देव ने 'संघम' को 'सन्देश' से भिन्न माना है। वास्तव में 'संघम' तथा 'सन्देश' धर्मकार एक ही हैं केवल लक्षण के धर्मों में भिन्नता है। देव के धर्मकारों का आधार संस्कृत के ग्रन्थ हैं धीरे उनमें कोई विशेष मनीषता नहीं है। अनेक बातों के लिए देव केदार के मनीषी हैं।

पद्याकर ने धर्मालंकारों का ही प्रमुख-रूप से वर्णन किया है। यमक अनुप्रास आदि धर्मालंकारों को छोड़ दिया है। विभासंकार का भी अलंकार रूप से ही वर्णन किया गया है। केदार द्वारा निर्दिष्ट 'धर्मोक्ति' का भी 'पद्याकरण' में कोई उल्लेख नहीं है। इस ग्रन्थ के प्रधान आधार 'जगन्नाथोक्त' धीरे वीरसास का 'भाषाकरण' है। वास्तव में कहा कि डा० भगोराम मिश्र ने कहा है यह धर्मकारों पर आधारित ग्रन्थ है धीरे इसमें न विवेचन की विशेषता है धीरे न उदाहरणों की समोहरण ही।

केदार ने जो 'सामान्य' तथा 'विशिष्ट' वर्गों में धर्मकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है वह हिन्दी साहित्य के लिए मनीष है। इसके अतिरिक्त उन्होंने मुद्रिक, प्रसिद्ध विवरित तथा धर्मोक्ति आदि कुछ मनीष धर्मकारों की भी दृष्टि की है। हिन्दी साहित्य में 'धर्मोक्ति' का तो केदार को ज्ञानात्ता ही मानना चाहिए। इस धर्मकार का केदारदास से पूर्व हिन्दी साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इतना ही नहीं बताया यमक, रसम आलोक आदि धर्मकारों का मनीषमैत्री के साथ जितना संयोगान्न विवेचन आचार्य केदारदास ने किया है उतना चिन्तामणि देव पद्याकर आदि आचार्यों ने नहीं किया है। विभासंकार का भी जितना विस्तृत विवेचन केदार ने किया है उतना उपर्युक्त आचार्यों के ग्रन्थों में नहीं मिलता।

धर्मकार-विवेचन की दृष्टि से आचार्य जिज्ञापीशास का स्थान केदार के बाद है। धर्मकारों का वर्गीकरण वहीं तक नाम का सम्बन्ध है वहीं तक तो

दसवीं अध्याय केशव का स्थान

(घ) अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में

पूर्वपृष्ठों में दिए गए तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निर्णय करना सरल हो जाता है कि केशव के प्रतियोगी उद्युक्त भाषायों में केशव का क्या स्थान है। अलंकार विवेचन के क्षेत्र में चिन्तामणि मतिराम देव और पद्माकर का स्थान केशव से नीचा है। केशव ने अपनी 'कविप्रिया' में विभिन्न मौलिकता का परिचय दिया है वह 'कविकुलकल्पतरु' 'ललितलसाम' 'माधविलास' 'सम्बरसायन' तथा 'पद्मा मरण' में देखने में नहीं आती। चिन्तामणि ने सत्तर और अर्ध हो प्रकार की गतियों के आधार पर सत्तर और अर्ध हो प्रकार के अलंकार माने हैं। इन्होंने समग्र सभी शब्दालंकारों तथा प्रायः सभी मुख्य अर्थालंकारों का वर्णन किया है परन्तु मेरों उपमेरों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। चित्रालंकार का भी बहुत ही संक्षेप में विवेचन किया गया है। श्रेय ऊर्ध्वस्त्री आदि रसालंकारों का चिन्तामणि ने निरूपण नहीं किया है। उन्होंने केशव के 'अन्योक्ति' अलंकार को भी छोड़ दिया है। चिन्तामणि द्वारा दिए गए अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही स्पष्ट तथा बोधगम्य की भाषा में प्रवर्णित हैं। पर उनका आधार संस्कृत के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि अनेक ग्रन्थ ही हैं और उनमें कोई विशेष लचीलता दिखालाई नहीं पड़ती।

'ललितलसाम' में मतिराम ने अलंकारों के लक्षण बड़े ही समताक ढंग से दिए हैं। उदाहरण प्रवक्ष्य सुन्दर हैं। इस ग्रन्थ में अलंकारों का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया है और अधिकतर अर्थालंकारों का ही वर्णन है। शब्दालंकार में केशव 'चित्र' को ही लिया जा सकता है किन्तु इसका भी लक्षण बड़ा ही संकुचित है। 'अन्योक्ति' अलंकार तथा रसालंकारों को मतिराम ने भी छोड़ दिया है। भाषावैल्य की दृष्टि से 'ललितलसाम' का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। सभी बातें संस्कृत-ग्रन्थों पर ही आधारित हैं और ग्रन्थ में कोई प्रमुख विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

'उदाहरण' में कुसुमपति मिश्र द्वारा निरूपित अलंकारों की संख्या यद्यपि मतिराम आदि भाषायों की अपेक्षा काफ़ी कम है किन्तु तो भी केशव की अपेक्षा अधिक ही है। कुसुमपति मिश्र ने अलंकारों का विभाजन शब्द और अर्थ के आधार पर किया है। इन्होंने मुख्य शब्दालंकारों तथा लगभग सभी प्रधान अर्थालंकारों का वर्णन किया है, किन्तु वे मेरों उपमेरों में नहीं गए हैं। 'अन्योक्ति' तथा रसालंकारों का विवेचन कुसुमपति मिश्र ने भी नहीं किया है। चित्रालंकार का भी बहुत ही कम विस्तार किया गया है। कुसुमपति के लक्षण यद्यपि अधिकतर 'काव्यप्रकाश' के आधार पर हैं फिर

भी हिन्दी प्रसंस्कारवादीय में इस ग्रंथ का महत्त्व भुसाया नहीं जा सकता। मौलिकता की दृष्टि से इसमें कोई विशेष महत्त्व चाहे न दीख सके, पर वह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उन्होंने प्रसंस्कारों का विवेचन यही पूर्णता के साथ किया है। इस प्रकार उन्हें कसब से बढ़कर नहीं तो समकक्ष निःसंकोच ही रखा जा सकता है।

देव ने 'भाषाविज्ञान' ग्रन्थ में १६ प्रसंस्कार मुख्य बतसाए हैं, जो प्रायः सभी के अनुसार ही हैं। सभी से केदार ने धीरे-केदार से देव ने उन्हें लिया है। 'सम्प्रदायन' में उन्होंने प्रसंस्कारों का विभाजन शब्द धीरे प्रसं के आधार पर किया है। प्रसंस्कारों के दो वर्ग किए गए हैं—मुख्य तथा गौण। उन्होंने ४० मुख्य प्रसंस्कार धीरे १० गौण माने हैं। इनमें मुख्य प्रसंस्कार तीन से हैं धीरे गौण तीन से हैं इसका भी स्पष्ट रूप से कोई निर्देश नहीं किया गया है। 'भाषाविज्ञान' में वर्णित प्रसंस्कार तथा 'सम्प्रदायन' में वर्णित 'अन्योक्ति' का आधार भी केदार ही है। 'सम्प्रदायन' में एक प्रकार के शब्दों को एक ही शब्द में स्पष्ट कर दिया गया है जिससे सत्य के समझने में कठिनाई होती है। कहीं-कहीं केवल नाम से ही सत्य का ग्रहण करने के लिए निर्देश किया गया है। केवल प्रसंस्कारों की संख्या में नृति करने के लिए गए प्रसंस्कार भी बना दिए गए हैं जैसे 'संघर्ष' प्रसंस्कार। देव ने 'संघर्ष' को 'सम्बन्ध' से भिन्न माना है। वास्तव में 'संघर्ष' तथा 'सम्बन्ध' प्रसंस्कार एक ही हैं, केवल सत्य के शब्दों में भिन्नता है। देव के प्रसंस्कारों का आधार संस्कृत के ग्रन्थ हैं धीरे उनमें कोई विशेष नवीनता नहीं है। प्रत्येक बातों के लिए देव केदार के शब्दों हैं।

पद्याकर ने प्रसंस्कारों का ही प्रमुख-रूप से वर्णन किया है। यमक अनुप्रास प्रादि सम्प्रदायकारों को छोड़ दिया है। विभासकार का भी पसंसादन रूप से ही वर्णन किया गया है। केदार द्वारा निर्दिष्ट 'अन्योक्ति' का भी 'पद्याकरण' में कोई उल्लेख नहीं है। इस ग्रन्थ के प्रधान आधार 'चन्द्रालोक' धीरे वरीशाल का 'भाषाभरण' हैं। वास्तव में जैसा कि डा० मणीराम मिश्र ने कहा है यह प्रसंस्कारों पर साधारण ग्रन्थ है धीरे इसमें न विवेचन की विशेषता है धीरे न उदाहरणों की मनोहरता हो।

केदार ने जो 'सामान्य' तथा 'विशिष्ट' वर्गों में प्रसंस्कारों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है वह हिन्दी साहित्य के लिए नवीन है। इसके परिचित उन्होंने सुष्ठु प्रक्रिया विपरीत तथा अन्योक्ति प्रादि कुछ नवीन प्रसंस्कारों की भी दृष्टि की है। हिन्दी साहित्य में 'अन्योक्ति' का तो केदार को जन्मदाता ही मानना चाहिए। इस प्रसंस्कार का केदारदास से पूर्व हिन्दी साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इतना ही नहीं उन्मा यमक प्रत्येक प्रादि प्रसंस्कारों का प्रयोगमें के साथ जितना सामान्य विवेचन प्राचार्य केदारदास ने किया है उतना चिन्तामणि देव पद्याकर प्रादि प्राचार्यों ने नहीं किया है। विभासकार का भी जितना विस्तृत विवेचन केदार ने किया है उतना उपर्युक्त प्राचार्यों के ग्रन्थों में नहीं मिलता।

प्रसंस्कार-विवेचन की दृष्टि से प्राचार्य विशादीदास का स्थान अवश्य केदार से ऊंचा है। प्रसंस्कारों का वर्गीकरण यहाँ तक नाम का सम्बन्ध है यहाँ तक तो

रम के उपनदों का वर्णन भी बिम्बामणि ने केशव से अधिक किया है किन्तु विषय-क्षेत्र की व्यापकता तथा भाषाव्यक्त की मौलिकता की दृष्टि से केशव बिम्बामणि से उच्च दर्जे के ठहरते हैं। नायक-नायिकाओं की प्रेम-केष्टाओं तथा उनके प्रथम-मिलन-स्थानों घणम्या-वर्णन तथा आदि के अनुसार नायिकाओं का वर्गीकरण सही भेद, शृङ्गार रस के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' भेद आदि का वर्णन केशव की मौलिकता का परिचायक है।

मतिराम तथा कश्यप दोनों पात्राओं के अधिकारी सत्त्यों में कुछ भिन्नता अवश्य परिभक्षित होती है। तो भी प्रायः भाव समान ही हैं। मतिराम के लक्षण केशव से अधिक स्पष्ट हैं। उदाहरणों की सुन्दरता में मतिराम की समता केशव ही क्या अन्य कोई पात्राय भी कहाचित् ही कर सके। कश्यप द्वारा दिए गए लक्षण स्पष्ट हैं तथा शृङ्गार का लक्षण अनुभाव, हाव का सामान्य लक्षण और कटुमिद बिभाल आदि हावों का लक्षण तथा करण विप्रलम्भ का लक्षण आदि। केशव ने स्वामी भाव, सारिख तथा अभिचारी भावों आदि का केवल उल्लेख किया है उनके लक्षण छोड़ दिए हैं। मतिराम ने इनके प्रत्यक्ष-लक्षण लक्षण भी लिखे हैं। इस प्रकार रस के विविध भवों के लक्षण एवं नायक-नायिकाओं के भवों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मतिराम के 'रसराम' का महत्त्व केशव की 'रसिकप्रिया' से अधिक है। परन्तु विषय-क्षेत्र की व्यापकता तथा भाषाव्यक्त की मौलिकता के विचार से केशव का स्थान मतिराम से ऊँचा है। नायक-नायिकाओं के सुष्ठु भवोपभेदों नायक-नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन की केष्टाओं नायक-नायिकाओं के प्रथम-मिलन-स्थानों घणम्या नायिकाओं सही भेदों तथा शृङ्गार रस के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' भवों आदि के निरूपण में केशव की मौलिक उद्गमना परिगणित होती है। केशव द्वारा दिए गए अस्ति नायक परकीया नायिका भाव, अभिचारी भाव हेला हाव प्रभाव दया आदि के लक्षण भी उनकी मौलिकता के परिचायक हैं।

देव का स्थान केशव से ऊँचा है। केशव द्वारा दिए गए शृङ्गार रस अनुभाव हाव कदम विप्रलम्भ समस्तरमकोविश नायिका आदि के लक्षण स्पष्ट नहीं हैं और बहुत-बहुत हैं। लक्षणों एवं उदाहरणों में भी समन्वय नहीं है, किन्तु देव के प्रायः सभी लक्षण स्पष्ट हैं और उदाहरण भी लक्षणों के भेद में ही प्रस्तुत किए गए हैं। विषय-क्षेत्र की व्यापकता और मनोवैज्ञानिक विवेचन तथा मौलिकता के विचार से भी देव केशव से ऊँचे दर्जे के ही ठहरते हैं। मनोवैज्ञानिक के सुष्ठु विवेचन में लिखते देव गए हैं उद्यमे केशव नहीं गए हैं। इस केशव की 'रसिकप्रिया' में घणम्या-नायिकाओं नायक-नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन केष्टाओं तथा उनके प्रथम-मिलन-स्थानों का वर्णन अवश्य देव से अधिक है किन्तु दूसरी ओर नायक के नमस्त्रिभु स्वकीया के परस्त्रिभुजिता प्रेमविविधता करुणविता मानवती और कृतविविधता एवं ज्येष्ठा-जनिष्ठा नायक भेद परकीया के सुष्ठु, बिम्ब्या अत्रिष्ठा आदि का भेद अवस्था के अनुसार नायिकाओं के प्रवस्तरमजिष्ठा तथा वापमपतिष्ठा आदि भेद, प्रोपिनुपतिष्ठा नायिका के चार उदमर विष्ठा स्मरण उद्यमे आदि काम दयाओं के उपभेद और कश्यप एवं वास्त आदि रसों के उपभेदों का विवरण देव ने केशव की अपेक्षा अधिक किया है। देव द्वारा

निर्दिष्ट नायिकाओं के ग्रंथानुसार भेद करण तथा वास्तव रस के भेद और कल्याणमक वियोग का निरूपण हिन्दी-साहित्य के लिए मनीम ही है।

प्राचार्यत्व की दृष्टि से दास का स्थान केशव से ऊँचा है। केशव द्वारा दिए गए शृङ्गार रस अनुभाव, हास आदि के लक्षण प्रस्पष्ट हैं। उदाहरण भी लक्ष्यों के पूरे मैत्र में नहीं हैं। दास के प्रायः सभी लक्षण स्पष्ट हैं एवं लक्षणों तथा उदाहरणों में पूर्ण सामंजस्य है। भेदोपभेदों का बितना सूक्ष्म विवेचन दास ने किया है उतना केशव ने नहीं मिलता। भगव्या एवं भाषक-नायिकाओं की प्रेम चेष्टाओं का वर्णन केशव ने हास से अधिक किया है किन्तु दूसरी ओर 'परकीया' नायिका के पतिव्रता, उदारिण तथा मादुर्य नामक तीन भेद ज्येष्ठा-कमिष्ठा के छ' उपभेद 'परकीया' के प्रवहमा तथा बीरा, अनुहा (परकीया) के उबुबुहा (अनुपविनी एवं प्रेमासक्तता) तथा उबुबो-विता और ऊहा (परकीया) के प्रसाध्या, कुसुमाध्या तथा साध्या और विदग्धा लक्षिता मुरिता तथा अनुसक्तता नामक चार अन्य भेद वर्णन के दो भेद तथा दृष्टि वर्तन के अन्तर्गत छाया तथा पाया उपभेदों आदि का वर्णन दास ने केशव से अधिक किया है। नायिका भेद के विवेचन में दास ने किसी भी प्राचार्य का अनुकरण न कर अपनी स्वतंत्र प्रणाली ही बनाई है जिसमें उनकी मौलिकता की छाप दृष्टिपोषक होती है। निश्चय ही हिन्दी साहित्य में दास का यह प्रभाव अनुठा है। इस दृष्टि से तथा विषय-कर्म के वैज्ञानिक विवेचन के विचार से दास का स्थान केशव से महत्त्वपूर्ण है।

पद्याकर के सभी लक्षण स्पष्ट हैं किन्तु केशव के कुछ लक्षण प्रस्पष्ट हैं। जहाँ तक लक्ष्यों के व्यावहारिक ज्ञान का सम्बन्ध है पद्याकर के 'अष्टविभोद' का केशव की 'पञ्चकप्रिया' से अधिक महत्त्व है। मौलिकता के विचार से केशव का स्थान पद्याकर से ऊँचा है। पद्याकर ने अपने 'अष्टविभोद' नामक ग्रन्थ में रस तथा नायिका भेद आदि विषय पर रचित संस्कृत-साहित्य के लक्षण-ग्रंथों से अधिक कोई विवेचना नहीं दिखलाई है। दूसरी ओर शृङ्गार रस के 'प्रच्छन्न' एवं 'प्रकाश' भेद, भाव व्यवचारी भाव हेला हास प्रसाप और उन्माद आदि कामवसाओं के लक्षण आदि के अनुसार नायिकाओं का वर्गीकरण परकीया का लक्षण भगव्या-वर्णन नामक-नायिकाओं की प्रेम चेष्टाओं एवं उनके प्रथम मिलन-स्थानों तथा उसी भेद वर्णन आदि में केशव की मौलिकता परिलक्षित होती है।

(ख) शृङ्गारी कवियों में

केशव के परवर्ती हिन्दी के शृङ्गारी युक्तक कवियों की परम्परा में मुख्य-रूप से बिहारी मरिचाम देव दास तथा बेनीप्रवीन का नाम उल्लेखनीय है—दोनों के अन्तर्गत रीति मुक्त प्रेमी कवि भी आते हैं जिनमें यमागम सुख्य हैं किन्तु उनका काम्यस्तर केशव से निरवय ही ऊँचा है।

केशव का प्रभाव बिहारी पर पर्याप्त पड़ा है इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। जहाँ तक पाण्डित्य की सम्प्रीप्ता का प्रश्न है केशव निश्चय ही बिहारी से बड़े-बड़े हैं किन्तु अनुभावों तथा हासों की सुन्दर योजना कल्पना की सम्राट् बिहारी, शान्तिरस्य एवं मादुर्य-व्यापी में बिहारी केशव से बढ़कर हैं। भावस्यन्तता तथा

भाषा की सरसता एवं सरलता की दृष्टि से कोशव बिहारी से पीछे नहीं हैं। इसके प्रतिरिक्त बिहारी को यमलकार के आग्रह के कारण उचित की वक्रता के लिए यमक स्वरों पर रस की भी उपेक्षा कर गए हैं किन्तु कोशव की 'रसिकप्रिया' में इस प्रकार के स्वप्न इतने मिले ही हैं। हाँ प्रेम के उच्च परावर्तन पर दोनों का ही काम्य नहीं पहुँच सका है।

कोशव का मतिराम पर बहुत ही सीमित प्रभाव है। जहाँ कहीं भी भाव-साध्य देखने में आता है वह भावस्थिक ही जान पड़ता है। दूसरे भाव साध्य रहने वाले स्वरों पर भी मतिराम के छन्दों में कोशव की अपेक्षा अधिक भाव सीख्य पाया जाता है। मतिराम की भाषा घण्टाबन्ध से सर्वथा मुक्त है और उसमें हमें सानुभाविक मधुर सन्दाबली एवं सरस कोमल व्यञ्जना के वर्णन होते हैं। यद्यपि कोशव की 'रसिक-प्रिया' की भाषा भी माधुर्य तथा प्रसाद-युग्म-युग्म है और उसमें आश्चर्यजनक भी सुन्दर ही हुई है फिर भी मतिराम की भाषा में जो नैसर्गिक स्वच्छता, मधुरता एवं सभी तारमकता पाई जाती है वह कोशव में अपेक्षाकृत म्यून ही है।

कोशव तथा देव दोनों ही कवियों के काम्य की आत्माएँ सर्वथा भिन्न होते हुए भी कोशव का प्रभाव देव के काम्य पर प्रभुत्व भाषा में दिखलाई पड़ता है। स्व० सुक्त भाषि बहुत से विद्वानों ने 'रामचरित्र' के कुछ धार्मिक-धनीधर्मों के कारण ही कोशव को हृदयहीन कह आया है किन्तु उनकी 'रसिकप्रिया' के छन्दों के यमलोज्ज्वल करने से यह धारणा भ्रान्त सिद्ध हो जाती है और यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि जिनमें रसिकता पूरी-पूरी भाषा में विद्यमान थी। फिर भी यह मानने में आपत्ति न होगी चाहिए कि देव में रसानुभूति एवं संगीतारमकता कोशव की अपेक्षा अधिक थी।

कवित्व की दृष्टि से बास का 'शृंगारनिर्णय' कोशव की 'रसिकप्रिया' से किसी प्रकार भी कम नहीं है। बास का भावपल और कलापल दोनों ही कोशव के समान पुष्ट हैं। वे न तो सम्बन्धभरकार में पड़ते हैं और न दूर की सूझ में ही उलझे हैं।

जैनी प्रवीण पर कोशव का प्रभाव लयन्य ही है। जो एकाम छन्दों में भाव-साध्य दृष्टिगोचर होता भी है वह धार्मिक ही है। ये मतिराम की परम्परा के कवि हैं यद्यपि उनसे ही अधिक प्रभावित हुए हैं। भाव तथा भाषा के माधुर्य में ये कोशव हैं टक्कर लेते हैं।

इस प्रकार समग्र रूप से विचार करते हुए कवय देव, मतिराम, धनात्मक धार्मिक इने-विने कवियों को छोड़कर बास किसी भी परवर्ती शृंगारी कवि से भिन्न धेनी के नहीं ठहरते। बास सभी परवर्ती कवियों के सम्मुख कोशव अनुकरणीय महा कवि के रूप में खड़े हैं इसमें सन्देह नहीं।

परिशिष्ट

गुरुमुखी लिपि में प्राप्य 'छन्दमाला' का देवनागरी लिप्यन्तर

एक पौंकार श्रीगणेशाय नमः । एक पौंकार सति गुरुप्रसादि ॥ अथ केशव
दासपित छन्दमाला लिख्यते ॥

सुखप्रसाद छन्द ॥ अतगारि है पै सरी सग मारि । हिये रुखमाला कहै
मंजवारि । सरी कामकूट सरी सीस चन्द ॥ कहा एक हो चाहि नैनो क चन्द ॥ १॥
महादेव जाके न जार्न प्रमान । महादेव के देव को चित्त मानै । महाभाग सोई सदा
देहमागा । महामावर्तनी करौ छन्दमाणा ॥ २॥ दोहरा ॥ माया कबि समझै सरी
सगरे छन्द सुमाह । छन्द की माया करी सोमन कैसवराह ॥ ३॥ एक बरन को पद
प्रगट कबिस लौ मरवत । तबपरि केशवराह कहि बहक छन्द अमन्त ॥ ४॥ ली छन्द ॥
दोहरा ॥ बीरव एक ही बरन को बीर पै पद सुखकंद । मंगल सकल निधान जग नाम सुनहु
ली छन्द ॥ ५॥ ली ली ली ली ॥ नारमय छन्द ॥ सय बीरधु को बह बरन है
पछर पन सेहु ॥ बह नारायण छन्द है सुखदायक ली सेहु ॥ ६॥ रमा समा हरी करी ॥
रम्य छन्द ॥ है सय बीर पै भावहि एक अन्त गुर जान । रमनरमन के रमन को रमन
छन्द मन मान ॥ ७॥ जग जी तनिये हरि ली मजिप ॥ तरन छन्द ॥ मगन भादि गुर
अन्त है तरन छन्द यह मान । बरनबो बरन सो जगत को तरन जो ॥ मदन छन्द ॥
रगन भादि ताहु अन्त है मदन छन्द यह मान ॥ ८॥ रामचन्द्र । लोकरव । वित्तचाहि ।
दुखदाहि ॥ माया छन्द ॥ रमन अन्त है भादि सधु माया छन्द बखान ॥ केशवदास
प्रकाश सो पंचवरन परिमान ॥ ९॥ सुखकंद है । रत्नबन् । जयसोक है । जगबन् ॥
अमलमाला ली छन्द ॥ भादि जयन पुन जगन रवि बरन कदाछर बान । अमलमाला ली
छन्द यह कबिनु को सुखदान ॥ १०॥ बरन तजै न । मगत करै न । अरव बिकास ।
बिरव सुमास ॥ लीमराजी छन्द ॥ ययन होय छट बरनपुत सोमराजी पुन छन्द । सरी
बोय छाडी । हिये प्रीति मायो । सदा राम रामी । रमी छाड कामी ॥ ली छन्द ॥
रयन जयन छट बरनमय सो सकर जगबंद ॥ ११॥ बाठ छाप मान । चित्त माह
मान । एक राम सत । दूसरो अतत ॥ बिजय छन्द ॥ रगन होय छट बरनपुत सो
बिजयहा परिमान । संभुकोरंड है । राजपुत्री किरी । दूक है लीन कै । बाठ सका जित ॥
रमान छन्द ॥ दगन युपन छट बरन कर मानो मन मवान ॥ १२॥ लीराम सोई पु ।
लीता लती ली पु माई । लती है पु । लीने लने है पु ॥ सुख छन्द ॥ भादि प्रंत के
रंड गुर होय है मय होय सधु मान । कह केशव छट बरन को सुख छन्द
बखान ॥ १३॥ माया छह कडी । जानो जय मूठी । एकै हरि साधो । बीरीयन पाधो ॥
ललित छन्द ॥ भादि जयन के ययन पुन अंत एक गुर सेख ॥ १४॥ ली जगत

मारै । बिरंज समुझ्यै । ठळ न समुझे रे । हिए न हरि हेरे ॥ प्रमथका छन्द ॥ घादि
 एक दुर सोनिये जगन रगन सिह पाहि । कीनी प्रबट प्रमाथिका सपठ बरन कवि
 ताहि ॥११॥ छाड बेह रे हठै । संन छाड रे सठै । पित हाथ कीजिये । मुक्त छीन
 सीजिये ॥ मस्तका छन्द ॥ रगन जगन रधि घादि दुर एक भव मधु मेख ॥ मुनो
 मस्तका छन्द यह घाठ बरन पद बेख ॥१२॥ बेख बेख के मरेख । सोनिये समा मुवेख ।
 जानिये न घादि भव । कौन पास कौन कन्त ॥ नमस्तकपणी छन्द ॥ घाठ बरन को
 बरन बिह भ्रमही मधु दुर होव ॥ कहिए मगस्तकपणी छन्द सगल कवितोय ॥१३॥
 सुमित्र ते न भागिये । अमित्र ते न रागिये । बिचार देखियो हिये । मनी परै कहा
 किये ॥ मदन मदन छन्द ॥ सपन घादि वै जगन पुन दुर मधु दीवतु भंत । मदन
 मोहनी छन्द यह घाट बरन मुठ कन्त ॥१४॥ बाको सब जान ठग । ताको ठकहो
 नु पय्य । जारे किनि बीकु बुक्य । सोर्य यह पाइ बुक्य ॥ बोवळ छन्द ॥ घाडी घट
 दुर वै ई मय्य रथो सहु चार । घट बरन को सब कह्य बोवळ छन्द बिचार ॥१५॥
 मूठे हय पय तेरे । सख्खमी हय पय तेरे । सीतापति पति साचे । तासो कहन राखे ॥
 तुल्य छन्द ॥ नयन दोय दुर भव ई रथो दुरगम छन्द । घटबरन का एक पद
 केसन घाटदकर ॥१६॥ बहुत बचन बाके । बिषय बचन ठाके । बहुमुजपुत जोई ।
 सबल कह्य सोई ॥ नागस्तकपणी छन्द ॥ घादि भव रधि जगन मुन मय्य रगन रधि
 मित । प्रपटहो नागस्तकपणी नव घछर भर पित ॥१७॥ भरी बुरै जपो नु ईस ।
 बिराजमान बंद सीस । सिबा बिभास सोममान । नु सिद्ध निष्प बेत दान ॥
 ठोमर छन्द ॥ सपन घादि पुन ई जगन रधि बहुमुलकंद । बरन चार नव बरन को
 प्रपटहो ठोमर छन्द ॥१८॥ रचबंछ को घबलंछ सुन दान मानस-ईस । मन माह जो
 पति मेहु । इक बाठ मानस बेहु ॥ हरनी छन्द ॥ मगन तीन रधि घादि पुन भंत देहु
 दुर एक । हटनी छन्द बसानिये बसबा बरन बिबैक ॥१९॥ सीरधुनाथ बल बम को ।
 नै संग सीतहु सख्खन को । सिन्धु जमे हरि हेर हिये । सिन्धुहि सिन्धुहि संग तिये ॥
 अमित्र छन्द ॥ मदन रथो बुह जगन मय्य बेहु एक दुर भंत । कह ममित्रमठ छन्द
 इह इस घछर पुनबंछ ॥२०॥ सुमति महारिखि मुनिजै । सबल बवा मुनि मुनिजै ।
 कुमति सवा मति ठविये । तन मन केसन भविये ॥ ठोमर छन्द ॥ नगन घादि पुन
 सपन ई भंत एक मधु मान । इस घछर को बरन कह ठोमर छन्द बजान ॥२१॥
 समरत सख्खमन राम । बहुविध किये परमान । भिष रिखिबु धातिब बीन । नर
 मजम हो परबीन ॥ संजुता छन्द ॥ सपन एक रथ जगन ह भव एक दुर घान । इसबा
 बरन बजानिये संजुत सो परमान ॥२२॥ बन मेहु नेहु खरीद सी । मज साधु संगम
 पीर सी । जय के प्रनवहु मेखिये । तब घाप सो सम देखिये ॥ मस्तका छन्द ॥
 मदन सपन पुन नगन रे ई दुर भवह देख । मनकृसा यह छन्द ई प्यारहि घछर
 मेख ॥ २३॥ सीहरि नू को भिमबन मोहै । देखो सोमा तन नमहु सोहै ॥ जाबिन
 देखे तन मन बाबा ॥ सो यह पा जानत मुन राबा ॥ सुपरमप्रवात छन्द ॥ सपन तीन
 दुर भव ई नर कविता भविषात ॥ प्यारह घछर स्वछ पद वै सुपरमप्रवात ॥२४॥
 एक यह सब संसार जाख्यो । हे लोक को मंड बहोड जाख्यो । मार्यो इसप्रीव संगराम
 बीरयो । श्रीराम श्रीराम श्रीराम जीयो ॥ इन्द्रजा छन्द ॥ घादि सपन ई जगन पुन

भक्त देहु मुर होय । भ्यारहु धरहर को मुमति इग्नवध कह सोय ॥१६॥ राधा सुनो
 बात बड़ी बखानो । साधारनो भाप कहू बखानो । बाबहु छाडी बडवाय जायो ॥
 धाधार बी को हरिपाय साग्यो ॥ अनेत्रवन्ता छन्द ॥ अगत लगन पुन जयन करई
 मुर धत प्रकास । उपेन्द्रवन्ता छन्द कर ग्यारहु धरहर तास ॥ १७ ॥ अगत देवादि
 न भक्त पायो ॥ अनेकमा बेसन गीत गायो । निजैछिया भूतल देखपारी । धम्म
 संहारक भ्रमपारी ॥ मोदकदास छन्द ॥ तीन भवन हैं यादि भक्त भक्तहु मुर मनु
 देख । छन्द स मोदकदास भन हैं बस बरन सरोख ॥ १८ ॥ गये सब राम कहा सुन
 पाठ । कही यह बात सुनो बन पाठ । कहु बिन बी पुन पावहु माई ॥ सुदेह धरिष
 मिर्न सिर धाई ॥ ठोपक छन्द ॥ रच पद बारहु बरन को कठवरस सुकान । बार
 लगन को बारमति ठोपक छन्द प्रमाण ॥ १९ ॥ रघुनाथ धनाबहि राखत है । सब बैव
 मठ मठ माखत है । वहि कौन कहै तबि धान रर । जिनकी बरनो कह ईस बर ॥
 सुन्दरी छन्द ॥ बार मदन को सुन्दरी छन्द कबीनो होय । रच पद बारहु बरन को
 बरनत कबिकुसमोय ॥ २० ॥ राव तबै धन नाम तबै सब । बार तबै मुन सोच तबै
 धन । धापुर बी अप भूठहि निरह । संतह एक भनो हरिभगवत ॥ मोदक छन्द ॥
 बारहु बरन बखान बी प्रतिपद धानबखन । बारि सवन को कीबिये केठव मोदक
 छन्द ॥ २१ ॥ समही बन मे सब को बुझ है । बार धामेव को स महा बुझ है । यह
 सो पद बैव पुरान ररे । कहनै सु कसु न बिचार पर ॥ सुन्दरवत छन्द ॥ बरनत
 बारहु बरनम केसव कवि प्रबवाठ ॥ बार मदन का जाननै छन्द भुजंप्रपाठ ॥ २२ ॥
 बरै एक बैनी मिर्न मीनसारी । मूलामी मनो नकसोपाविधारी । सदा राम राम रर
 हीनबानी । बहु धीर है राकसी केवानी ॥ ठामरस छन्द ॥ यादि बारि सहु मय ई
 भवन भक्त मुर होय ॥ केसव बारहु बरन को छन्द ठामरस होव ॥ २३ ॥ तन मन
 में पति सीम बसाई । पुन बिन परोवन रे बुझवाई । तपकन केहु न पावन पारै ।
 पदवन बासिहि बुझ विचारै ॥ त्वरतविनिवित छन्द ॥ लगन यादि पुन मदन ई रमनहि
 भक्त विचार । त्वरतविनिवित छन्द यह कह कसव मति बार ॥ २४ ॥ विपनमारन
 राम विचारही । सुकस सुन्दर सोवर सावही । बिबन भिन्न फल हुमनी फल । सबन
 साधन तटपर भी नही ॥ कुसमविधिना छन्द ॥ बार कसा मुर होय पुन बार कसा मुर
 होय । रच पद बारहु बरन को कुसमविधिना होय ॥ २५ ॥ सब कपिराजा रघुपति
 बैके । मन तर नारायण सम बैके । विजयपवारी हुमति धाए । बहुविध धाडीक
 दि बन भाए ॥ अन्तरात्मना छन्द ॥ रगत नयन पुन मदन कह भक्त लगन को धान ।
 अन्तरात्मना छन्द है बारहु बरन बखान ॥ २६ ॥ स्नान दान जप जाप कु करियो ।
 सोय सोय मन को कर करियो । जाप जोय हूय बी लय पहियो । रामभक्त सम को
 जप सहियो ॥ मारुठी छन्द ॥ बीकन रच पुन भवन हू लख मुर भक्त बनाउ । होय
 मानकी छन्द यह बारहु बरन प्रमाउ ॥ २७ ॥ विपन विनोद विनोद बरी । बिबर
 विमोर बिकाठ न करी । बन निरखे न रई सुप धरी । हुमह न हू बरगो इत हरी ॥
 अन्तरात्मना छन्द ॥ जवन जवन पुन जवन कर भक्त रगत रच भिन्न । बरनविदित छन्द
 यह बारहु बरन विविध ॥ २८ ॥ धामेकसा पुनन धामकु क्रिये । कृपाम हो कीरमनाथपु
 दिये । सुमुख सीता बुझवा गई तहा । पतिवता बेनी महिरास की बहा ॥ प्रमिताठरा

छन्द ॥ आदि सयन पुन जगन रवि सवन होय है अन्त । छन्द होम प्रमताछरा
 बरन सु द्वावस छन्द ॥४२॥ हुरबाह आह सिम पाह परी । रिखनारि सु न छिर पंक
 भरी । बहु प्रमराग सभ भय रये । भर मात भात उपदेस हये ॥ सिम्तरी छन्द ॥
 रयन बार को सिम्तनी छन्द छनीसी होय । केसवरास प्रकास सब बरनत कविज
 लीय ॥४३॥ राम आये जसे मध्य सीता चली । बध पीछे भये सोम सोमा भली ।
 देव देही सब कोटवा कैं भनो । बीच बीनेस के मध्य साया भनो ॥ पंकजवाटका
 छन्द ॥ आदि एक पुर नयन हँ अन्त भयन हँ देख ॥ छन्द सु पंकजवाटका ठेरह
 छछर मेख ॥४४॥ राम चलत निप कें कुब लोचन । बारन निटवहु बारनलोचन ।
 पापम पर रिक्त के भय मोनह ॥ केसव जड़ पय भीतर भीनह ॥ तारक छन्द ॥ बार
 सयन पुन एक दुख तारक छन्द बनाव । सोमन ठेरह बरन को केसव छाहि
 सुनाव ॥४५॥ यह कीरत धीर नरेसन सोई । सुम देव चदेवन के मन मोई । हुमको
 बपुरा सुनजे रिखराई । सब गाव छसातक की ठकुराई ॥ कछईस छन्द ॥ आदि
 सयन पुन जगन ठह सयन दोय दुख एक । छन्द मनो कनईस यह ठेरह बरन
 बिबेक ॥४६॥ तब राम भाव भर ते बन बीर्य । कह कीन भात परमानन्द पैर्य ।
 निपनाव आदि सयना मन कीर्य । यव पापकन सपने पर कीर्य ॥ हरिकीष्ठा छन्द ॥
 रयन रयन रवि नयन पुन जयन अन्त ननु जान ॥ बीरह छछर आदि पुर हरि
 लीला कर मान ॥४७॥ हा राम हा राम ॥ अथवाय भीर । लंकाविनायेस जानी
 सुम ओ मुबीर । ए देख कोळ छुड़ाईय भोह बीर । आतंजबसेस की सब न तोह
 भीर ॥ वस्तुपेक्षिका छन्द ॥ लगन मयन जयनी जयन हँ दुख अन्त निहार । वस्तु
 तिलका यह आनिये बीरह बरन विचार ॥४८॥ लीराम लक्ष्मन प्रवस्त सनार देखे ।
 स्वाहासमेत निज पावकन मेके । अस्ताय छिन्न समिवादन जाय कीनो । सीस्तेन
 आदिब्रमसेव रिखीस बीनो ॥ मनोरमा छन्द ॥ बार सयन हँ अन्त लनु बीरह बरन
 प्रमल । मनोरमा यह छन्द है केसवरास सुनाम ॥४९॥ जर में प्रति कोप सरा पुन
 जायक । बहुमानत सागर को मुखशायक । सब ताकहि तू किरकें किन दाहहि ।
 कबहु भवतारन को निठ जाहहि ॥ मासली छन्द ॥ आदि छँ लपु पुन तीन बुर भाव
 मयन हँ मित । हिय मासली छन्द यह पगह बरन निमित्त ॥५०॥ प्रति तब बन
 रेखा नेकि लानी न बाकी ॥ लम लम सरबारा को सई लीछ ताकी । विकट बन सु
 पूरे मछम को बासु भीर्य ॥ सिद्धिदिव प्रति सी को दुष्ट कसि ॥ सीर्य ॥ सुप्रिय छन्द ॥
 बीरह लपु पुन एक भय सुप्रिय छन्द प्रकास ॥ छछर प्रतिपद पंचरस मानहु
 केसवरास ॥५१॥ बन महि विविध विष्ट कुब सुनिर्ज । गिर यहवर मय प्रति
 मति सुनिर्ज । कह यहि हरि बहु निषपर रहरी । कह दब बहन दुख दुख सहरी ॥
 निषपाठका छन्द ॥ मयन जयन रव सयन पुन नयन रयन हँ अंत । छन्द कहो
 निषपाठका पगह बरन नईव ॥५२॥ राजतनवा सबह कोल सुनि यो कहो । बाहु
 जल देवर न आह हय पै रहो । हेमभिग होय यहि राछस मुजानिये । दीन सुर राम
 बिह मात मुख मामिये ॥ जानर छन्द ॥ प्रतिपद नुन लहु देह रूप नईव बरन नाक ।
 जानर छन्द कहित कह केसव याह सुनाक ॥५३॥ देख देख कैं घघोक राखनका
 कही । मोह घाय देख भय भय हँ रही । ठीर पाई पौनपुन मुदरी गई । घावपाव

देवकी उठाई हाथ मैं सई ॥ माराच छन्द ॥ केसव नामर छन्द के एक घावि सधु देहु ।
 प्रतिपद खोइस बरनमय करे माराच कवि नेहु ॥५४॥ प्रसन्न गर्व पर्वताय पुस्त पुस्त
 है चढ़ै । समुत् कोप सम सोहु मोहु बात ते बई । असंत काम बाग संग गुम गुम का
 नबै । प्रकालमेय बालपुस्तपुस्त होय तो बचै ॥ मनहजन छन्द ॥ अथ एक मुख बँ
 करो खोइस घट्टर बरन । पंच जयन को होत है छन्द मनो मनहजन ॥५५॥ साधु कथा
 कही जब केसवदास जहा । निग्रह केवल है मन को विनमाम तहा । पावन बास सगा
 रिखि को घुल सो बरतै । का बरने कवि ताहि बिनोक्त ही हरबै ॥ मकरपद छन्द ॥
 पुन महु कम ही देहु पद खोइस बरन निहार ॥ छन्द प्रहसक करो केसव बरन
 बिचार ॥५६॥ घन देहु सील देह राख मेह प्रान बात ॥ राखबाय मोल सँ करै
 बु बीह पोखपात । बास होइ पुन होइ सिख्य होइ कोइ माइ । सासना न मानई
 सुकोटि जगम नर्क जाई ॥ कम्पाका छन्द ॥ घावि देहु र स जयन बँ जयन मुख सधु
 संत । प्रपट बपमासा करी सज्जन लोक कहंत ॥५७॥ रामचन्दपरिम को नु पुनै
 सदा मुख पाइ । ताहि पुन कज्ज संतत देत है रघुराइ । स्नान बाग घसेस तीरप
 जाम को फल होइ । नाहि का मर विप्र छत्रिय बैस्य पूर नु कोइ ॥ शिखी छन्द ॥ जयन
 सगन जयन समम जयन महु मुख संत । बरन सप्तदश घावि सधु शिखी छन्द
 कहंत ॥५८॥ प्रगस्य रिखिराखनू बचन एक मेरो सुनौ । प्रसस्त सभ नाति सुनस
 पुरेस बी मैं सुनौ । सुनीस तरखण्ड सो घति सन्निध सोमा बरै । जहा हम निबास को
 बिमल प्रमसासा करै ॥ चंचरी छन्द ॥ सगन जयन बँ जयन पुन रमन घावि मर
 संत । मस्तावस घटराम को चंचरी छन्द कहंत ॥५९॥ सुनिसे नहि ग्राम घामहि बास
 मूँबर देण कैं । पुन मित्र कसब सज्जन बधु लोक बिसेक कैं । पाइ पुन नाति जोवन मीर
 मुन्करता बनी । रामसक्तिबिहीन हीनहि देहु होत न घापी ॥ कला छन्द ॥ कस्त मगन
 रवि संत मुख जमिस घटर जान । प्रतिपद केसवराइ यह करना छन्द बखान ॥६०॥
 देव मदेव बिते नरदेव बड़े गुन मानत है । सबत है बिनही तिन सो बधु पावत जानत
 है । की रघुनाथ बिना परमानंद की जनि जानहि रे ॥ बारक पू तिन केसव काहि
 घामह मानहि रे ॥ मूलनन छन्द ॥ सयन जयन पुन जयन भनि जयन रमन करि मेक ।
 सयन संत सधु मूल जनि घटर देक ॥६१॥ कर दान पूरन जानकी पति
 जान देत घटेक । बहु हीर बीर सनीर मानक बरख बारद देक । मुन प्रमराव सबाय
 बापनि बाज रय बहु नाति । घति नील भुज्ज भूमि जोजम मुर बाघर राति ॥
 बीतका छन्द ॥ घावि चंचरी छन्द के सधु बँ देहु मुज्जान । हार गीतरा छन्द यह
 घटर बीत प्रमाण ॥६२॥ मुख एक है नत लोल लोचन क बिभूजन एन पूजन
 जानरी संघ सोमये गुम लाय देहन को धरै । तिह एक मोहन क बिभूजन एन पूजन
 के किये । जन बैठागन छीरसापर छीर की छिटकी सिये ॥ घरम छन्द ॥ बीरम
 प्रति मुद रचहु पुन घावि देहु मुर घोर । एकीस घटर को धरो घग्ग छन्द
 मिराजीर ॥६३॥ कीरति घति पावनि मति सीपति रत नू न गह्य रे । पावत मग
 जान जयत बाज नुख जान सहत रे । काम भरहि पूर मीर बरई हो मु कहनु रे ।
 मेर मरम कोह करम भुरि जनम को न दहत रे ॥ मरदा छन्द ॥ सात भगन कर
 संत मुर बादम घटर छन्द । केसव मरिदा छन्द यह कुसमस्तव मकरंद ॥६४॥

बाप तन्नाम तरेपनि तीर तमास कि छाहि बिभोक यसी । तो बटका एक बटल है
 मुख पाह रिसाह सु कास यसी । श्री भग को लम दूर करं छिय को सुभ बाकल
 संवस कं । हे भग ते हिय ते तिमको कह केसववास दर्पवस कं ॥ चितै छन्द ॥ सात
 भयम कर होन मुख तिनके दीअहु संत । तेइस छछर को करो बिनी छन्द बुधिवत ॥६१॥
 प्राशन ज्ञान बास मुबास विभास रये अनुराग प्रिये हूँ । बारन बाजि गुनी गुन नाम
 न नाम री नन ह्यान भिए हूँ । भौवनि भौवनि भाजन भाजन मुछम भूर भये न
 निवृत्त । हे भित केत कहा पर केतहि जानकिनापहु घाम हिये नू ॥ मुखा छन्द ॥
 मधरा छिर कहु एक है मुखा छन्द मन घाम । घत एक लख बैतही वसुधा छन्द
 बलान ॥६२॥ हरी हरिबाह मनोहर को मन मायत है कर पाह धनी । मुकाठ न
 केसव को कहि देह दुपड न धवन मी सजनी । समारहि बूबट बचस बार उत्रारक
 ककट तोर लगी । न पाइहु तो छिर जाइ नदु घट पाइहु तो सब बात बनी ॥
 कनुका छन्द ॥ जा दिन के बिबनाथ बसि तब ते जय जानत भूठ कि येह । भूठहि
 केतव परम सब भर भूठ यह बरनाबत देह । बसव पापहि रयो सुरह भिमये दिन
 जानिय ताब वनेहु । बाठप के भिस मा ज्ञान मी गुन पाइहु उचव मन तुयेहु ॥
 माकरी छन्द ॥ बसवा के छिर एक लख होइ भावनी छन्द । बसव बीबिस बरन को
 अतिवद दानवकंद ॥६३॥ सपुरम प्रेम मुभावन कोन मुनी समझे न ज्ञानन देस ।
 प्ररोध बियोध बिसेस असमनि केसव सी बिसरो उपदेस । बरं सम बात कि काम
 तपापि बिभोक बिदेहुन को नूरवेस । मुभावहु उचव पापिन पाठ नु धाह सिताजन
 सीक जेस ॥ अत्रकथा छन्द ॥ घाठ सवन को बरन एक बार बरन बीबीस ॥
 काजकला केसव करो मरी भास भव सीस ॥६४॥ मवसगल को जन सेत उजानर
 सुन्दरता सगरी बन की । तिरु बेवन की हुन सुन्दर सो पति सोप बिदासन के रस की ।
 कहि केसन देववपी पति सी परतापनी लम को यसरौ । सब रस विकास निनीक
 बिबेनहि केसव विक्रम के बस की ॥ अमलकमल छन्द ॥ घाठ सवन का बरन रघु
 छछर सम बीबीस । भयमकमल यह छन्द है छछर केसव रस ॥६५॥ मारत है
 मुहुमार मनोहर मानिनि कामिनि मानस संव । सोमन सुभ सुपानिनि सीतस मूर
 सरा सब दूर निकंदन । हे सुन दास कमानिनि कोमल केनकता कुह की बगबदन ।
 ए सक का हिय साव करे रजनीकर के सजनी नरनरन ॥ मकरंद छन्द ॥ सात
 भयन कर छन्द एक संत रवन सुलकंद । बीबिस छछर के सुनो छन्द भलो
 मकरंद ॥६६॥ भक्त हिये प्रियवैजसु को सति सी उपमा सु तहा पबरेबिये । पंकज में
 कमला बिजस सुलनीन तहा अलकस बिदेबिये । धानसपूर रस बरस सति एछम
 क सति शीर न बैबिये । यास कथाछ भगुन करै सति सो सय बनक तोहि न बैबिये ॥
 मनेदत छन्द ॥ घाठ रयव छछर रयो जलहु बीबिस बरन । नयोदक यह छन्द है
 कसव पाठकहून ॥६७॥ राय राकाय के राय साए हहा नाम तरे मशामान बावे
 सबै । बैनि मनोपरी कुंजकरनाय रं भिन मंत्री बिठे पूछ बेयो सबै । राखन जात को
 भोत्र को कोत्र को बस को साधन लोक पतोक को । घान रं पा परो देसु रं कोस रं
 प पही रस सीताहि रं थोक को ॥ ठनी छन्द ॥ भयन सवन कपनी मरी सवन
 सवन फिर जान । नयन यगन बीबिस बरन लगी छन्द बलान ॥६८॥ बीसठ केस

प्रियपति सुतजी सो कहिनि तन मन बन प्राबै । भावि बड़े हो बड़पनि रसिये जाहि
को जग जन सुख पावै । जदन ही में पति तन परसै प्रापि उठे यह सब मृग सीजै ।
हृदय भारे सु निपति सहारे को बस मै किन लुप पीजै ॥ विनया छन्द ॥ १७३॥
बड़ी प्रतिमंहर सीम बड़ी तरनी धनलोभ की रजुनंजन । मनो ग्रह दीपत बेह भरे
सु किमो ग्रह देख कि सोइत है मन । किमो कुमदेव विपै कहि केसव कुरदेव को
बरसो तन । बेही सुतही इह माँत मरै विनयन को मर पासत है जग ॥ मदन-
मनोहर छन्द ॥ घाठ समन को एक पद घँत एक गुर देख । मदनमनोहर छन्द यह
पञ्चस प्रकर देख ॥७४॥ पञ्चियाल मिली सञ्चियाल मिली पति प्रापत जान मिली
तबि नीनै । सुम प्र्याम विद्याल मिली मनही मन ज्यो मिल रंक मनोमय सीनै ।
कह केसव कँठहु कैय मिलै नव छहि बहै हरि को कसु हीनै । तहि पूरन प्रेम समानि
मिलै मिमिनी हि सु मै मिलहो फिर कीनै ॥ मान्नी छन्द ॥ घाठ समन के घँत मनु
नहुहु माननी छन्द । बार छन्द केसव बरन पंचवीस धार्यव ॥७५॥ सब प्राइह एक
रिबीर के मरवेकुमार कि देवकुमार । सरकोर कसे करिहा इ भरै धनमान
मनोबह के प्रबतार । घतिरीरब जोचन बाल बहिन्नि स्यामल सीर सीर उदार ।
इनहु महु एकह देख सुता निप ऐति बिक्योह करै करतार ॥ हार छन्द ॥ घाठ रगत
को होत पद ऐन धन मनु जान । हार छन्द केसव बरन छविस प्रकर ठान ॥७६॥
सुधि सोबि सबी मरि लेत बयोबन कापत देखत पूष तमातहि । घति मृति सि
बोलत माहित बाय मये किमु तरहि तामहि । मुख देख्यनि बाहिय देखन प्रापत ऐति
मि हो न दिखाव रि मातहि । कहि प्रापु कहा विजसाव मयी जब देख्य सुहाइ
कसु न सुपातहि ॥ बरनजित इह माँति करि मुयबल बिय मै प्रात । छविस प्रकर
तै उपर केसव बंडक जान ॥७७॥ कमही जय मृद देह पद बलित प्रकर जान ।
धरनसेकर छन्द यह केसव भर मन प्रात ॥७८॥ कनकीनार छन्द ॥ तबाम होननार
के सनीर होत केसवबास पुढरीक भुंन और मंडलीन मंडही । तनामबस्तनी सयेत
सुख सुखि के रहेत बाय फूल फूलके समून सुल लंडही । चितै बकोली बकोर मोरली
समेत मोर हुँस हुँसनी सुकावि लारिका सबै पई । जही जही विराम लेत राम बी
तही तही प्रनेक माँत के प्रनेक भोग भोग से बई ॥ इति बटविद्याविद्यानिघाति प्रथम
बारने धनप्रियम विनोक्त बंडकेति प्रसिद्ध ॥ ७८ ॥ इति श्रीकेसवराइ विरचितामा

छन्दमालाया बरनजित समापत ॥
अथ छन्दनामानि ॥ सी १ नाटयन २ रमय ३ तरल ४, मदन ५, माया ६,
मातली ७ सोमराजी ८, सकर ९ सुखकर १०, विजहा ११ मंजान १२ सनत १३
प्रमायका १४ मन्मका १५ मगस्वरणी १६ मदनमोहन १७ मोरक १८ सुरंगम
१९, नागस्वरणी २० सोमर २१ हारजी २२, प्रमितयत २३, सोमर २४, संकुटा
२५ धनकूस २६ सुपयप्रयात २७ हज्रवत्या २८ उग्रवत्या २९, सुमितकदाय ३०,
षोडक ३१ सुन्दरी ३२ मोरक ३३ भुजंगप्रयात ३४ तामरस ३५, द्रुतविमंजित ३६
कुमुदविमंज ३७ अग्रवर्तमा ३८ मातली ३९, बंसवनिता ४०, प्रमिताछर ४१
चमिनी ४२, बंजवताटा ४३ तारक ४४ कमहुँस ४५, हारजीमा ४६ बसंततिलका

४७ मलौरमा ४८ भासली ४९ सुप्रका ५० निसपालक ५१ चामर ५२ माराध
५३, मनहर ५४, ब्रह्मक ५५, कपयासा ५६ प्रथमी ५७, नवरी ५८, कटना ५९
मृगमयी ६० पीतका ६१ वरम ६२ मविरा ६३, विजय ६४ सुधा ६५, वसुधा ६६,
माधवी ६७ प्रमत्तकमल ६८ मकरप ६९, नवोदक ७०, तन्वी ७१ विजय ७२
मवमयमोहर ७३ मानकी ७४ हार ७५ यत्ता ७६ रोसा ७७, मरहटा ७८ खोरठा
७९, सिहावलोफन ८०, मनमतेहार ८१ यमन ८२ उपमास ८३ भूमना ८४ ।

एक धौंकार श्रीगुरुके नाम ॥ नामती छन्द ॥ विचनयन विनाई बुधिवाता
बरा है । सुर मर मुनि बनी सीह बोलीन दाई ॥ बदन रदन एकै एक करै बठावै ।
जयत विरत माया विजयीवै दिखावै ॥१॥ सकल सुखयराजा विषमो एक बानै ।
विष विष लुखमठा बुझकठा निकरै । सुमर करन चाके सुगम नीका विचारै ।
विषय विविध माना कर्म को पार छारै ॥२॥ बोहा ॥ भाखा मुरतक की प्रगट साखा
तीन प्रकार । सुरमाखा भाखासय नरमाखा सखार ॥३॥ सुरमाखा के प्रथमही बास
मौक बब्रयाम ॥ यहिमाखा के महामु नरमाखा विषय नाम ॥४॥ भापा तीनहु के
सुकविई विधि करत कवित । बरनवित है एके घर कसावित छिर मित ॥५॥
बरनवित के छम बरन चारै बरन प्रकाश । कसावित के छम विषय पर कर
कैसबरास ॥६॥ कनकमुखा ज्यो सख्य नहि छोनस अवितित यंग । अमनमुखा ते
जातिबो कैसब छन्दोनाम ॥७॥ बबुख बुधनि यै वरवही निष्कण्ड सकमहीन । भिन्नुटी
सम करम छिर कटत लपावि धरीन ॥८॥ बरनवित के बरन विषय विषय भौति के
छन्द । कसावित कह कहत छम सुनिबहु मानवकण्ड ॥९॥ गनायन के दोखबुध पुन
कटयव मति बुध्य । पीतकाहि के छन्द मित सब हूँ बात समुध्य ॥१०॥ यय ग्या
॥ बोहा ॥ प्रथम बरन बारह कसा दूबै दस सब साठ । तीसै बारह पंचदस चौद
पचिस पाठ ॥११॥ रामचन्द्रपदपदं विम्बारिक विन्नामि बरनोय । कैसबमतिबुधनया
विमोचन नवरीनायते ॥१२॥ सताइस गुर तीन सह सछमी नावा जान । गुरदुई
बहु सह बई सगरीस परमान ॥१३॥ सछमी १ सिम्पि २ बूधि ३, साव ४ विद्या
५, ज्ञान ६ वैद्य ७ पीती ८, वागी ९, गुरमा १०, ज्ञाना ११, कान्ति १२, महा
बाबा १३, कीर्ति १४, सिम्मा १५, मनोरमा १६, रामा १७, ग्राहणी १८, विद्या १९,
वसिष्ठा २०, सीता २१, हरपी २२, पिता २३, सारिणी २४, कुररी २५,
सिद्धी २६, ईसा २७ ॥१०॥ तेरह सह भी भंमनी सत्रिया साहू इकरित । सताइस सह
बेसिका छोर सुप्रका तीस ॥११॥ आ साहू के प्रथम कम तीसै अपमहि जान । पाँच
छाई मुख यहित ताहि पुरविनी जान ॥१२॥ कम सिद्धा ॥ बसव हरि पद प्रथम
मठा सताइस ॥ विद्याहा बस दूसरे करो मर तीस ॥१३॥ सुनहु सुहायन सुम्बरी
भीतमपाइ परो सिद्धि देखा । कंठ छठाव सगावहि सत्वर सखि यमन कफन करि
सेखा । ॥ विधि छम गायन के जानहु जेव अपार । जँच बई तेह ते म यै बरने
एकिहि बार ॥१४॥ कम दोहा ॥ प्रथम पाह तेरह कसा दूबै प्यारह जान । तीसै तेरह
कानिबे चौबे ग्याह जान ॥१५॥ दोहा जेद करै ॥ प्रथम भावध सरम तीन मंडक
१ ४ ८ २ १० ११ १२ १३ १४ १५
मरबठ मर करम मराम । मनुक्य मलयबराज पयोहर बस जानर पुन निकल । मीन

१६ १७ १८ १९ २० २१ २२

कण्ठ कर देखहु छारदूस धनूर धर बिबास । पुन आग्रहि लेखहु कह केसव संवर

२२ २३

अप स्वात ॥१८॥ बोहुमनेव बबानियो ॥ धर जो गुर दूर समु बड़े सो सो नामहि
 बानियो ॥१९॥ अमर होइ सनु बार को बट सनु नामर जान । सरन पाठ सनु सोन बर
 कमही नाम बलान ॥२०॥ बारहु सनु को बिप्र कह जिय बाइस जान । बतिस सनु
 को बेस है पीर मूढ़ कर मान ॥२१॥ आ सोहा के प्रथम पद जयम तीसरे देख । जानी
 ताहि बिबास के मन कम बचन बिसेख ॥२२॥ धर कवित ॥ प्रतिपद केसवदास मन
 कर मत्ता जीवीस । बीपब करहु कवित जग प्रगट कर्यो ग्रहि ईस ॥२३॥ रामचन्द्र
 संग्राम बुरे रावन जय राबा । नाम बलत परिमान बीन पुसहु बुबदासम । कटत
 शिख पुन उचटत पबान गिरि बटत बीहु मन । उठत अपनि मूछत समुद्र बल होत
 छीन छन ॥ अथ अतुल्यो ॥ सात जगुर कल को बरन संत एक गुर जा । ऐसे
 बारो बरम रच बीपईया छन्द बलान ॥२४॥ बिनको जसहुंदा बाग प्रसंसा मुनिजन
 मानवरंत । तोवन धनकपन स्यामसत्पन संजम संजत संत ॥ कामनियदरसी त्रियमुन
 परसी होत बिसम्भ न सार्व । तिनको गुन कह्यो सब सुख महुंदा पाप पुरातन भानी ॥
 अथ बत्ता ॥ सात बार कल प्राप्ति ई संत तीन सनु देख । पुन बरन केसव कला जग
 मत्ता भबसेत ॥२५॥ मन मति कहु रोकहु जय धरकोकहु माप रूप बहा संत गुन ।
 परमानंद पावहु जनम नसाबहु रामकप जह होइ तन ॥ अथ मन्द ॥ ग्यारह कला
 बिराम रचि बहुर सात वै जान ॥ तेरहु कला बिराम पुनि छपइ मन्द परमान ॥२६॥
 सरि साधुनि के संगे एकहु रंगा काम कामना संव कहि ॥ होइ सकुन संसार निरि
 निहार । पुन पगइ तेरहु त्रिपद लसालहि मुनिवार ॥२७॥ सुम कम बरं सी रामनू
 स्र बरनत केसवदास । जनु मूरतवंत सिंगार सरि सुम कीनो सुजस प्रकास ॥ अथ
 छटपद ॥ पहले बरन कवित कह पुन लसाला देख । हरचरनोवक शिख कुंद
 नेहु ॥ २८॥ मिलाबान कर कवित जलज धसत सरि सोई । हरचरनोवक शिख कुंद
 दुति मति मन मोई । संय विभूति विभूतिसहित यनपति मुखदायक । विखबाहन
 संगमतिवि केसव जसदायक । उर जगुर और बनी बसनु संम कुमार नामावति ॥
 जयकारन हर संकटाटन पारबतिपति विममति ॥ बबानीन गुर कवित के लसालाहि
 छडीत । एकवहु दुहु छन्द केसव गुरु सत्तरईस ॥२९॥ बारहु मत्ता धरम
 सनु उचार । जो गुरु दूटे सनु बड़ी सो सो नाम बिचार ॥३०॥ बारहु मत्ता धरम
 बिजय बीरहु कम जानहु । सोरहु सनु बरिबंर बीर पठारहु मानहु । बीस कला बेतान
 होइ बाइस बिहुंकर । मरकट कर बीवीस छबीस कलाहु । हरि पठाईस कला करहु
 कल १५ स्वात ४० सिंह ४२ सात ४४ कूरम ४६ कोकिल, ४८ घर, ५० कुंवर
 ५२ मदन ५४ मत्स्य ५६ ताल ५८ सर, ६० शारंग ६२ पयोहर, ६४ कमल,
 ६६ कंठ ६८ बागर, ७० सरम, ७२ घरम ७४ जड़ ७६ जंगम ७८ मुरमुद,
 ८० समर, ८२ मारस ८४ करम ८६ मेव, ८८ मन्दर ९० मसप ९२ सम ९४

सिद्धि २६ बुद्धि, २८ कलाकर, १०० जयसाकर, १०२ सुख १०४ धर्म, १०६ भरत १०८ हरि ११० पीठ ११२ भिन्न, ११४ रत्न ११६ मोह ११८ वर १२० सति १२२ मूर १२४ मबर १२६ मन १२८ रत्न १३० हीर, १३२ अमर १३४ सेहर, १३६ कुसुमकर, १३८ विप्र १४० सवि १४२ बंस १४४ सुख १४६ मूक, १४८ मल्लो १५० धर्म १५२ मुनि । अथ जति ॥ बतिस मनु सो विप्र पति सवि यालिस बार । बंस्य मठानीस श्री सेकन सुद विचार ॥३२॥
 दोह महुमल अधिक बार । मल बट पंगु यनि । बरि त्रि सवदविश्व धर्म पति यस्त मनि । धर्मबार विन नगम धर्म विन भित कहा । नामक वन पुनद्वत मरन नमहीनहि नार ॥ अतिमित धर्मि सु पुरव पर धर्म विरोध न धर्मियो । दोहसह रसरह सब छप इमित बलानियो ॥३३॥ अथ कथिका ॥ प्रथम चतर कस तीन कर एक जपन है मल । इति विधि कथिका करहु केचन कवि मुकन ॥३४॥ हरिकन सोमसरसी सुरंग । सुठ कमसर्न मासातरय । सुम भिक्कुटि भि म सोरन प्रस । सुम जवन मुक्याकप सुई । अति धर्म कमसनीदन कपो । दिन पर समम सीकर समो । सब जवनमन मति सीन सीन । दो केचनपमहि मर प्रमीन ॥ अथ कथिका ॥ दोहा ॥ अमल मयन मति पाय पुन बारह मल बलाम । चौसठ मल पाय अहुँ मी भरिल मल मान ॥३५॥ दोह बाय अनुपय उपजिय । बोलत कोविन कस बुनि छवि । रावत रति की सरिय सुबेसनि । कहत मनमन मनु मुरेदनि ॥ अथ कथिका ॥ बारह मल प्रथम चरन दोई है सुद मल । सोरह मल चरन अति पासाकुल अहुँ ॥३६॥ बहुवनवारी सोमल भारी । उपमह देवी ग्रहति विदेवी । सुम सर सोम मुनिमन मोर । सरस फूल धनि रसपूने । राखेमीनवपरी ॥ तीर पावे प्रथम पय मनु मल प्रमा । चौथे मारह हूसे बारह कस बमा ॥३७॥ पावे दोहा देह एक नय पय लके बान । रामसेव की एक श्री सोरह मल प्रमान ॥३८॥ इम मल कमल फूल सरनि । बुद्धि विदिसहि उपरंग । सब देख देख सति कृतिपो । मर मनीहर सं । हस मोरन श्री किम मुनिपो । सवि केनकुल रामिके । सीतिन के डर बाहु । पावे पूर पुन है मुक्याकप हरिनाहु ॥ अथ परमान्दी ॥ मल मलार विरम कर पुन बीरु हरिमान । प्रतिपद केवल बतिस पदमावती बलान ॥३९॥ रघुनन्दन माय सुन सब बाये पुरव जेहे रति कहु । दरसनरस मूने तन मन फूले बरने बाहि न रति कहु । पिय के संम मारी सब मुक्याकप तिन श्री री दिदकोटी । बहु वह बहु धोरन मिसी बकोरन ज्यों बाहि बन् बकोरी ॥ सोमल सद्य धोहना ॥ जमदो दोहा पडपही रही छोटा होद । केचनवात प्रकासही समस्त है सम को ॥४०॥ जय वसवत बिसाल राजा वसरण की पुरी । अमलसिद्धि सुम काल मास बनी जनु ईश की ॥ कुण्डलिया ॥ कीर दोहा प्रथमही भरन कवि बलान । अमल सोरठा सोहिये कुंभमिया परिमान । कुंभमिया परमान चरन बीयो फिर पदिये । मारह मल अमल तहा त्री विधि बिये । हरिगन मनु धर्म अमल अमल पद बी । केचनवात प्रकास पादि पद पाठि कीर ॥४१॥ देही अविमासी सदा देह विनाय विचार । जटल मल विधि देखिये मल मल नहीं बार ॥ अमल मल नहि बार बारमति कवि देखिये ॥ वेद पुरान समस्त शास्त्र मयमल सिधि सब । बय पुरान

संज्ञांक	ग्रन्थ	विशेष विवरण
----------	--------	-------------

- | | |
|---|---|
| १२ कविप्रिया (सटीक) | टीकाकार सरदार कवि नवल किशोर प्रेस सतनरु सन् १८८६ ई० । |
| १३ काव्य कलाद्रुम (उत्तरार्द्ध) | लेखक बन्हीरामाण पोद्दार प्रकाशक पं० अगन्नाथ प्रसाद शर्मा मथुरा संवत् २००२ वि० । |
| १४ काव्य निर्णय | लेखक मिस्त्रीराय केसवेडियर प्रस प्रयाग सन् १९३७ ई टीकाकार पं० महावीर प्रसाद भास्वीय बीर । |
| १५ केसव की काव्यकला | लेखक कृष्णचंद्र शुक्ल साहित्य-अन्य माला कार्यालय काशी संवत् २००६ वि० । |
| १६ कछव प्रभावली कव्य १ और २ | सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हिन्दु स्तानी एकेडेमी इलाहाबाद सन् १९४४ ई० सन् १९४६ ई० क्रमशः । |
| १७ केसवदास | लेखक जगन्नाथ पांडे व्यक्ति कार्यालय इलाहाबाद सन् १९५१ ई० । |
| १८ कछव-वर्णरत्न | सम्पा० सा० भगवानदीन रामनारायण काम, इलाहाबाद सं० १९८६ वि० । |
| १९ कोशोत्सवस्मारक संग्रह ('केसवदास' शीपक रोस) | सम्पा० राय बहादुर म० भ० श्रीराम शर्मा श्रीराम शर्मा प्रचारिणी-सभा, काशी, सं० १९८५ वि० । |
| २० गोस्वामी तुलसीदास | लेखक रामचन्द्र शुक्ल इण्डियन प्रेस मिमिटेड प्रयाग सन् १९३२ ई० । |
| २१ छन्दमासा (हस्तलिखित) | लेखक केसवदास प्राप्ति-स्थान जैनमुनि विनय सागर संग्रह बिहार । |
| २२ छन्द प्रभाकर | लेखक जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' अगन्नाथ प्रेस बिलासपुर सं० १९८६ वि० । |
| २३ जगदिनोद (पञ्चाकारणकामृत) | सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र श्रीराम रतन पुस्तक मंडल काशी सं० १९९२ वि० । |
| २४ जहाँगीर-अहम-अशिका(हस्तलिखित) | लेखक केसवदास सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्राप्ति-स्थान विश्वनाथ प्रसाद मिश्र बिलासपुर, काशी । |
| २५ जहाँगीरनामा (प्रथम भाग) | अनु० मुहम्मद बेबी प्रसाद मारव मिश्र प्रेस कलकत्ता, सं० १९६२ वि० । |

क्रमांक	ग्रन्थ	विषय विवरण
२६	दरबार-ए-मकबरी (गाय पदुमा)	लेखक मीसामा मोहम्मद हुसैन आजाद नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी सं० २००४ वि० । अनु० रामचन्द्र वर्मा ।
२७	देव और बिहारी	लेखक कृष्णबिहारी मिश्र संया प्रभ्यामार ससनऊ, सं० २००६ वि० ।
२८	देव और उनकी कविता	लेखक डा० गवेन्द्र पोतम बुक डिपो, दिल्ली सं० १९४९ ई० ।
२९	देव प्रभावली	लेखक गणेश बिहारी मिश्र नागरी प्रचारिणी-सभा, काशी, सं० १९१२ ई० ।
३०	नवरसतरंग	लेखक कृष्णबिहारी मिश्र प्राचीन कवि माला कार्यालय काशी सं० १९२१ ई० ।
३१	पद्माभरण (पद्माकर संभामृत)	सम्पा० विरवनाथ प्रसाद मिश्र, श्री राम रत्न पुस्तक-प्रघन काशी सं० १९९२ वि० ।
३२	बारहमासा (हस्तलिखित)	लेखक केदारदास प्राप्ति-स्थान गृह्य ज्ञान प्रसार, बीकानेर ।
३३	बिहारी	लेखक विरवनाथ प्रसाद मिश्र प्रकाशक स्वयं लेखक बापी-बिठान ब्रह्मनाथ बनारस, सं० २००७ वि० ।
३४	बिहारी की सतसई (पदुमा भाव)	लेखक पंडित पद्मसिंह वर्मा प्रकाशक काशीनाथ वर्मा लाल कुटीर नायकन पत्नी पोस्ट बाम्बपुर बिना बिबनीर सं० १९८२ वि० ।
३५	बिहारी की वाग्विभूति	लेखक विरवनाथ प्रसाद मिश्र प्रकाशक स्वयं लेखक बापी-बिठान ब्रह्मनाथ, बनारस, सं० २००७ वि० ।
३६	बिहारी और देव	लेखक डा० भवमानदीन साहित्य भूषण कार्यालय मद्रास प्रेम तैलिया-बाय, काशी, सं० १९८३ वि० ।
३७	बिहारी दर्शन	लेखक लोकनाथ द्विवेदी राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल पटना सं० २००७ वि० ।
३८	बिहारी रत्नाकर	लेखक बसन्ताय दास रत्नाकर संया पुस्तक-माला कार्यालय ससनऊ, सं० १९८३ वि० ।
३९	बीरसिंहदेव चरित	लेखक केदारदास नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, सन १९११ दिया है ।

क्रमांक

सं०

विषय विवरण

- १२ कविप्रिया (सटीक) टीकाकार सरदार कवि भवन विशार प्रेस लखनऊ, सन् १८८६ ई० ।
- १३ काव्य कसरहुम (उत्तरार्द्ध) लेखक बन्हेयासात दोहार, प्रकाशक पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा मधुरा संवत् २००२ वि० ।
- १४ काव्य निर्मल लेखक मिश्रारीदास वैमकेश्वर प्रेस प्रयाग सन् १९१७ ई०, टीकाकार पं० महावीर प्रसाद भागवीर भीर ।
- १५ केसव की काव्यकसा लेखक कुल्लुपकर सुनत साहित्य-बंध भासा कार्यालय काशी संवत् २००६ वि० ।
- १६ कदाच प्रभावनी सप्त १ भीर २ सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हिन्दु स्वामी एकेकेमी इलाहाबाद, सन् १९२४ ई० सन् १९२६ ई० कलकत्ता ।
- १७ केसवदास लेखक चन्द्रबही पांडे धार्मिक कार्यालय इलाहाबाद सन् १९२१ ई० ।
- १८ केसव पञ्चरत्न सम्पा० सा० भयवानबीर रामनारायण सात इलाहाबाद सं० १९८६ वि० ।
- १९ कोसोत्सवस्मारक सप्तह (‘केसवदास’ शीघ्रक लक्ष) सम्पा० राम महादुर म० म गौरी प्रकर हीराचन्द घोषा नागरी प्रचारिणी-सभा काशी सं० १९८२ वि० ।
- २० मास्वामी तुलसीदास लेखक रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग सन् १९३२ ई० ।
- २१ छन्दमाला (हस्तलिखित) लेखक केसवदास प्राप्ति-स्वाग बँनमुनि विनय शावर संघ, बिहार ।
- २२ छन्द प्रसाकर लेखक जयगंगा प्रसाद ‘भानु’ जगन्नाथ प्रेस बिलासपुर सं० १९८६ वि० ।
- २३ जगदिमोद (पद्माकरपंचामृत) सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र श्रीराम रत्न पुस्तक भवन काशी सं० १९९२ वि० ।
- २४ जहाँभीर-बस चन्द्रिका (हस्तलिखित) लेखक कदाचदास सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्राप्ति-स्वाग विश्वनाथ प्रसाद मिश्र बङ्गाल, काशी ।
- २५ जहाँगीरनामा (प्रथम भाग) अनु० मुसी बेबी प्रसाद धारत विन प्रेस कलकत्ता सं० १९६२ वि० ।

क्रमांक	ग्रंथ	विवरीय विवरण
२१	बरबार-ए-शकरी (भाग पहला)	लेखक मीराना मोहम्मद हुसैन आझाद भागरी-प्रचारिणी-सभा काशी सं० २००४ वि० । अनु० रामचन्द्र शर्मा ।
२७	देव और बिहारी	लेखक कुम्हारबिहारी मिश्र गया प्रभावहार संलग्न, सं० २००६ वि० ।
२८	देव और उनकी कविता	लेखक डा० मयेश मोहम्मद हुक डिरो विन्नी सन् १९४९ ई० ।
२९	देव प्रभावानी	लेखक गरीब बिहारी मिश्र भागरी प्रभा रिणी-सभा काशी सन् १९१२ ई० ।
३०	नवरत्नरंग	लेखक कुम्हारबिहारी मिश्र प्राचीन कवि माला कार्यालय काशी सन् १९२४ ई० ।
३१	पद्मामरण (पद्माकर पंचामृत)	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र श्री राम रत्न पुस्तक-मण्डल काशी सं० १९६२ वि० ।
३२	बारहमासा (हस्तलिखित)	लेखक केशवदास प्राप्ति-स्थान बृहत् ज्ञान-मंडार, बीकानेर ।
३३	बिहारी	लेखक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रकाशक स्वयं लेखक, बायी-विद्यान ब्रह्मनाथ जनारथ सं० २००७ वि० ।
३४	बिहारी की सतसई (पहला भाग)	लेखक पंडित पद्मसिंह शर्मा, प्रकाशक काशीनाथ शर्मा काष्ण कुटीर नायकन वली पोस्ट बामपुर जिला बिजनौर, सं० १९८२ वि० ।
३५	बिहारी की नागिनमृति	लेखक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रकाशक स्वयं लेखक बायी-विद्यान ब्रह्मनाथ, जनारथ सं० २००७ वि० ।
३६	बिहारी और देव	लेखक डा० मयवानदीन साहित्य मंदण कार्यालय धर्मनाम प्रेम, तैलिया-नाथ काशी सं० १९८१ वि० ।
३७	बिहारी दर्शन	लेखक लोक नाथ द्विवेदी राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल, पटना सं० २००७ वि० ।
३८	बिहारी रत्नाकर	लेखक जगन्नाथ दास रत्नाकर मंगा पुस्तक-माला कार्यालय संलग्न, सं० १९८१ वि० ।
३९	बीरसिंहदेव चरित	लेखक केशवदास भागरी प्रचारिणी-सभा काशी, संवत् नहीं दिया है ।

क्रमांक	ग्रंथ	विषय विवरण
४०	मीरसिद्देय-चरित	लेखक केसवदास भारत जीवन प्रेस काशी सन् १९०४ ई० ।
४१	मुन्देसखन्द का संक्षिप्त इतिहास	लेखक गारे सात ठिबारी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० १९९० वि० ।
४२	मुन्देस वमन (प्रथम भाग)	लेखक वीरीशकर द्विवेदी 'अंकर पी रायेस्वर प्रसाद द्विवेदी मुन्देस वमन सम्प्रभासा टीकमगढ़ सं० १९९० वि० ।
४३	भवाभीषिलास	लेखक देव, सम्पा० रामकृष्ण वर्मा भारत जीवन प्रेस काशी, सन् १८९१ ई० ।
४४	भारत का इतिहास	लेखक ईश्वरी प्रसाद इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग सन् १९४९ ई० ।
४५	भावविलास	लेखक देव सम्पा० सस्मीनिधि चतुर्वेदी, लखन भारत-सम्भावसी कार्यालय बाग पर्व प्रयाग सं० १९२१ वि० ।
४६	महिराम सम्भावनी	लेखक कृष्णबिहारी मिश्र गंगा सम्भावना, लखनऊ सं० १९९६ वि० ।
४७	मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था	लेखक धनबाबा धन्युक्ता युगुक्त धनी, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, सन् १९२९ ई० ।
४८	महासिद्ध-समरा (भाग १ और २)	अनु० लखनवात नागरी प्रचारिणी सभा काशी सं० १९५० १९९३ वि० (कम्परा) ।
४९	मिथलबुदिगोद (भाग १, २ तथा ३)	लेखक मिथलबु, संपा मुस्तकमाला लखनऊ, सं० १९०० वि० ।
५०	मून योसाई-चरित	लेखक बाबा बीबी साधवदास पीठा प्रेस, मोरलपुर सं० १९९१ वि० ।
५१	मोपबाधिष्ठ (पुस्तुकी)	लेखक रामप्रसाद निरंजनी मुषी मुलाव सिंह एण्ड सन्स नामक सं० ४४७ ।
५२	मोपबाधिष्ठ (भाषा)	लेखक रामप्रसाद निरंजनी कैफटेस्वर प्रेस नमई सं० १९९१ वि० ।
५३	रसरहस्य	लेखक कृष्णपति मिश्र सम्पा० पं० बलदेव मिश्र इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, सं० १९५४ वि० ।
	सविलास	लेखक देव सम्पा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस काशी सन् १९०० ई० ।

कम्पाक

ग्रंथ

विशेष विवरण

११. रसिकप्रिया (घटीक)

सेखक केसवदास टीकाकार सरदार कवि
नवम किशोर प्रेस सज्जनक सन् १९११ ई० ।

१६. रसिकप्रिया (घटीक)

सेखक केसवदास टीकाकार सरदार कवि
बैकटेश्वर प्रेस बम्बई, सं० १९७१ वि० ।

१७. रसिकप्रिया (घटीक)

सेखक केसवदास टीकाकार सकमीनिधि
बभुर्वेदी मातृ भाषा-मन्दिर प्रयाग सन्
१९२४ ई० ।

१८. रतनबावनी (केसव पंचरत्न)

सम्पा० सा० भगवानदीन रामनारायण
लास इलाहाबाद, सं० १९८६ वि० ।

१९. रतनबावनी (हस्तलिखित)

सेखक केसवदास प्रतिनिधिकार धी
नारायण मिथ प्राप्ति-स्थान नागरी
प्रचारिणी समा काशी प्रतिनिधिकार
धाराण सं० २००४ वि० ।

२०. राधाकृष्ण ज्ञानावली

सम्पा० क्यामगुम्बरदास इण्डियन प्रेस
प्रयाग सन् १९१० ई० ।

२१. रामचन्द्रिका

सेखक केसवदास टीकाकार जानकी
प्रसाद नवमकिशोर प्रेस सज्जनक सन्
१९११ ई० ।२२. रामचन्द्रिका (केसव कौमुदी)
(पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध)टीकाकार सा० भगवानदीन रामनारायण
लास—एकलक्षक इलाहाबाद पूर्वार्द्ध सं
२००४ वि० उत्तरार्द्ध सन् १९२० ई० ।

२३. रामचन्द्रिका (संक्षिप्त)

सम्पा० जमनाथ तिवारी गया प्रसाद
एण्ड सन्स सन् १९४९ ई० ।

२४. रामचरितमानस

सेखक तुमसीदास बीठा प्रेस गोरखपुर
सं० १९९७ वि० ।

२५. रीतिकाम्य की भूमिका

सेखक डा० मनेन्द्र वीरम शुक् डिपो
दिल्ली सन् १९४९ ई० ।

२६. विमयपत्रिका

सेखक तुमसीदास सम्पा० बिबोवी हरि
साहित्य सेवा सदन बभारस सं० २००७
वि० ।

२७. विज्ञानपीठा

सेखक केसवदास बैकटेश्वर प्रेस बम्बई,
सं० १९२१ वि० ।

२८. विज्ञानपीठा (घटीक)

सेखक केसवदास धनु० क्यामगुम्बर
द्विवेदी मातृभाषा-मन्दिर, प्रयाग सं०
२०११ वि० ।

क्रमांक	ग्रंथ	विषय विवरण
६१	सम्बरसाधन	लेखक देव, सम्पा० डा० जामकी भाष सिंह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रभाव सं० २००४ वि० ।
७०	चिन्तनक (हस्तलिखित)	लेखक केसवदास प्राप्ति स्थान बृहत् ज्ञान भंडार, बीकानेर ।
७१	शिवसिंह सरोज	लेखक शिवसिंह सेंगर, सम्पा० कपलारायण पांडेय, नवम किछोर प्रेस, सलनऊ, उन् १९२१ ई० ।
७२	भूतार निर्णय	लेखक दास सम्पा० बाबू रामकृष्ण वर्मा भारत जीवन प्रेस काशी उन् १८९३ ई० ।
७३	सुकवि सरोज (प्रथम और द्वितीय भाग)	लेखक गौरी शंकर द्विवेदी 'शकर' सना द्वारा सर्व ग्रन्थमाला, टीकमगढ़ सं० १९८४ वि०, सं० १९९० वि० (क्रमशः) ।
७४	सुखसागरतरेण	लेखक देव प्रकाशक छेठ छोटवाल लखनौ बन्द बम्बई, सलनऊ प्रिंटिंग प्रेस उन् १८९८ ई० ।
७५	सूरसागर (दूसरा भाग)	सम्पा० लाल दुमारे बाबनेमी नागरी प्रचारिणी सभा काशी सं० १९८० वि० ।
७६	हितसरणिनी	लेखक कृपाधर भारत जीवन प्रेस काशी सं० १९३२ वि० ।
७७	हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास	लेखक डा० मवीरच मिश्र, सलनऊ विश्व विद्यालय सलनऊ, सं० २००३ वि० ।
७८	हिन्दी के कवि और काव्य (प्रथम भाग)	लेखक वनेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद उन् १९१७ ई० ।
७९	हिन्दी नवरत्न	लेखक मिथकम्पु, धंधा-मुस्तकमासा, सलनऊ, सं० १९९४ वि० ।
८०	हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	लेखक प्रबोधासिंह उपाम्याय पुस्तक भण्डार, सहैरिया सराव पटना सं० १९९७ वि० ।
८१	हिन्दी साहित्य	लेखक डा० त्यागमुन्दरदास हथिबन प्रेस मिमिटक, इलाहाबाद, उन् १९२१ ई० ।

क्रमांक संव

विषय विवरण

८२ हिन्दी साहित्य

लेखक डा० हजारी प्रसाद अक्षर जन्म
कपुर एण्ड सन्स दिल्ली सन् १९३२
ई० ।

८३ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का
संक्षिप्त विवरण

लेखक डा० राममधुसूदन नायरी
प्रचारिणी समा काशी सं० १९८०
वि० ।

८४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक
इतिहास

लेखक डा० रामकृष्ण वर्मा प्रकाशक
रामनारायण भास इलाहाबाद सन्
१९४८ ई० ।

८५ हिन्दी साहित्य का इतिहास

लेखक रामचन्द्र सुख नायरी प्रचारिणी
समा काशी सं० १९९९ वि० ।

८६ हिन्दी साहित्य का विशेषमात्मक
इतिहास

लेखक डा० सुमकांत घासी प्रकाशक
मेहरबाद लक्ष्मणदास साहीर सन् १९३९
ई० ।

८७ हिन्दुई साहित्य का इतिहास

लेखक नारसी द घासी अनु० लक्ष्मीधर
बाप्योय हिन्दुस्थानी एकेडमी इलाहाबा
सन् १९३९ ई० ।

१ ग्रामात्मिक हिन्दी कोष

कोष

सम्पा० रामचन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य
कुटीर, साहित्य रत्नमाला बनारस सं०
२००८ वि० ।

१ धनगरंय

संस्कृत भाषा के ग्रन्थ

२ धनकारसूत्र

लेखक कल्याण मल्ल सम्पा० जयदेव
विद्यालंकार, प्रकाशक मेहरबाद लक्ष्मण
दास साहीर सन् १९२७ ई० ।

३ धनकारवेखर

लेखक राजानक कृष्ण द्वावनकोर यवन
मेट प्रेस सन् १९१२ ई० ।

४ उग्रजसमीक्षमणि

लेखक केमल मिश्र निर्णय सागर प्रेस
बम्बई, सन् १८९९ ई० ।

५ कामसूत्र (भाषा टीका)

लेखक कपयोत्तमी निर्णय सागर प्रेस
बम्बई, सन् १९३२ ई० ।

लेखक वात्स्यायन टीकाकार भाष्यभाष्य
वर्मा बेंकटेश्वर प्रेस बम्बई सं० १९९९
वि० ।

क्रमांक	ग्रंथ	विशेष विवरण
६६. अम्बरसामन		लेखक देव, सम्पा० डा० जामकी भाष सिंह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००४ वि० ।
७०. सज्जनक (हस्तलिखित)		लेखक केसवदास प्राप्ति स्वान बृहत् ज्ञान भंडार बीकानेर ।
७१. शिवसिंह सरोज		लेखक शिवसिंह सेंगर सम्पा० कृपाराम पांडेय, नवल किछार प्रेस, सज्जनक, सं० १९२९ ई० ।
७२. भूषार निर्णय		लेखक दास सम्पा० बाबू रामकृष्ण वर्मा भारत जीवन प्रेस काशी सं० १८६५ ई० ।
७३. सुकवि सरोज (प्रथम गीर द्वितीय भाग)		लेखक गीरी चंदर द्विवेदी 'चंदर' समा इयादर्स ग्रन्थमाला टीकमगढ़ सं० १९८४ वि० सं० १९९० वि० (कमरा) ।
७४. सुखसामरसंघ		लेखक देव प्रकाशक छोटेलाल लक्ष्मी नन्द बम्बई सज्जनक प्रिंटिंग प्रेस सं० १८९८ ई० ।
७५. सूरसामर (दूसरा भाग)		सम्पा० नन्द कुशारे वाकपेयी नागरी-प्रचारिणी समा काशी सं० १९८० वि० ।
७६. हितचरंदिनी		लेखक कृपाराम भारत जीवन प्रेस काशी सं० १९३२ वि० ।
७७. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास		लेखक डा० नवीरच मिश्र, सज्जनक विश्व विद्यालय सज्जनक, सं० २००३ वि० ।
७८. हिन्दी के कवि गीर काव्य (प्रथम भाग)		लेखक नरेंद्र प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद सं० १९३७ ई० ।
७९. हिन्दी गणरत्न		लेखक भिमबन्धु, संया-पुस्तकमाला, सज्जनक, सं० १९९८ वि० ।
८०. हिन्दी भाषा गीर साहित्य का विकास		लेखक मनोभवादिह उपाध्याय, -पुस्तक मण्डाल, सहैरिया सराय पटना सं० १९९७ वि० ।
८१. हिन्दी साहित्य		लेखक डा० श्यामसुन्दरदास इन्द्रियन प्रेस मिमिटक इलाहाबाद, सं० १९३३ ई० ।

क्रमिक संक्षेप
८२ हिन्दी साहित्य

विशेष विवरण

- ८३ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण
- ८४ हिन्दी साहित्य का प्राचीनतात्मक इतिहास
- ८५ हिन्दी साहित्य का इतिहास
- ८६ हिन्दी साहित्य का विशेषतात्मक इतिहास
- ८७ हिन्दुई साहित्य का इतिहास
- लेखक डा० हजारी प्रसाद अक्षर भन्द
कनूर एण्ड सन्स दिल्ली सन् १९५२ ई० ।
- लेखक डा० दयामन्दरदास मागरी
प्रचारिणी समा काशी सं० १९८० वि० ।
- लेखक डा० रामकुमार वर्मा प्रकाशक
रामनारायण सास इलाहाबाद सन् १९४८ ई० ।
- लेखक रामचन्द्र शुक्ल मागरी प्रचारिणी
समा काशी सं० १९९९ वि० ।
- लेखक डा० भूपकाश घास्नी प्रकाशक
मेहरबाग मदनमदास साहीर, सन् १९११ ई० ।
- लेखक पार्श्व द वाघी सन् ० मदनमदास
बाण्योय हिन्दुस्थानी एण्डनी इलाहाबाद
सन् १९११ ई० ।

कोश

१ प्राथमिक हिन्दी कोश

सम्पा० रामचन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य
कुटीर साहित्य छलमासा बनारस सं
२००८ वि० ।

संस्कृत भाषा के ग्रन्थ

- १ धर्मपरम
- २ धर्मकारमूत्र
- ३ धर्मकारपौखर
- ४ उग्नवतनीलमणि
- ५ कायमूत्र (भाषा टीका)
- लेखक कल्याण मत्स्य सम्पा० जयदेव
विद्यार्थकार, प्रकाशक मेहरबाग सदन
दास साहीर सन् १९२७ ई० ।
- लेखक राजागक स्यक दामनकोर मदन
मैट प्रस सन् १९११ ई० ।
- लेखक कैमल मिश्र निर्णय सागर प्रस
बम्बई सन् १८९१ ई० ।
- लेखक रूपगोस्वामी निर्णय सागर प्रस
बम्बई, सन् १९१२ ई० ।
- लेखक भास्वामन टीकाकार भाषाकार्य
धर्मा बेंगलूर प्रस बम्बई, सं० १९९१
वि० ।

कर्मिक

प्रब

६ काव्यकल्पसत्तावृत्ति

विशेष विवरण

७ काव्यादर्श

८ काव्यानुशासन

९ काव्यानुशासन

१० काव्यप्रकाश

११ काव्यालंकार

१२ काव्यालंकार

१३ काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

१४ कुसुमसामग्र्य

१५ चन्द्रावोक

१६ वपकुम्भ

१७ नाट्यशास्त्र

१८ प्रबोधचन्द्रोदय

१९ प्रयत्नराज

२० रतिरहस्य

सेखक धर्मरत्नग्रंथ मति चौधममा सस्कृत
धीरीक काव्याभिय विद्याविज्ञास प्रेस
बनारस सन् १९११ ई० ।

सेखक दण्डी मेहरराज्य लक्ष्मणदास
साहीर, सन् १९२५ ई० ।

सेखक बाग्यट (त्रितीय) निर्णय सागर
प्रेस बम्बई, सन् १९१५ ई० ।

सेखक हेमचन्द्र निर्णय सागर प्रेस बम्बई,
सन् १९१४ ई० ।

सेखक मम्मट, विद्याविज्ञास प्रेस बनारस
सं० २००८ वि० ।

सेखक भाषाह, विद्याविज्ञास प्रेस बनारस
सन् १९२८ ई० ।

सेखक छोट निर्णय सागर प्रेस बम्बई
सन् १९०८ ई० ।

सेखक नामन सम्पा० नारायण नाम
कृतकर्त्ता धोरियष्टन बुक एजेन्सी पुना
सन् १९२७ ई० ।

सेखक धम्मय दीक्षित निर्णय सागर प्रेस
बम्बई, सन् १९४७ ई० ।

सेखक जयदेव सम्पा० महादेव पंसागर
वाकरे पुनरुत्थी प्रिंटिंग प्रेस बम्बई
सन् १९१४ ई० ।

सेखक भर्तृहरि निर्णय सागर प्रेस बम्बई
सन् १९४१ ई० ।

सेखक भरत मुनि सम्पा० केदारदास
साहित्यसूचक निर्णय सागर प्रेस बम्बई,
सन् १९४३ ई० ।

सेखक कृष्णमिश्र निर्णय सागर प्रेस
बम्बई सन् १९१६ ई० ।

सेखक जयदेव मास्टर सेसाड़ी सास एण्ड
सन् बनारस सन् १९४७ ई० ।

सेखक कोमलोक तार यंत्रासय काशी
प्रिंटेर एण्ड कम्पनी सन् १९२२ ई० ।

क्रमांक	ग्रन्थ	विशेष विवरण
२१	रसायनमुपाकर	संस्कृत शिखरभूषण टाकमकार गवतमंद प्रेत विवेकग्रन्थ धनन्तसप्तम संस्कृत ग्रन्था वर्षी म० ३० सन् १९१९ ई० ।
२२	रसतरंगिणी (भाषा टीका)	लेखक मानुसप्त टीकाकार प० बीबनाथ शोभा बेंकटेश्वरप्रसन्न बम्बई सं० १९७१ वि० ।
२३	रसमञ्जरी	लेखक मानुसप्त श्री हरिकृष्ण निबन्ध यवन, बनारस, सं० २००० वि० ।
२४	रसतरंगिणी	लेखक केशारभट्ट विद्याविनायक प्रेस बनारस सन् १९२७ ई० ।
२५	रसमञ्जरी (२२ २४)	लेखक भोजदेव सम्पा० ए० रमास्वामी सरस्वती सा प्रिण्टिंग हाउस भाटल रोड मद्रास सन् १९२६ ई० ।
२६	श्रीमद्भगवद्गीता	लेखक स्वामी स्वकृपावन्ध, प्रिण्ट माधव धनमोरा सन् १९४० ई० ।
२७	श्रीमद्भाष्य	लेखक म्यास बेंकटेश्वर प्रसन्न बम्बई, सं० १९१६ वि० ।
२८	सरस्वतीकुसुममञ्जर	लेखक भोजदेव निगम सागर प्रेस बम्बई सन् १९३४ ई० ।
२९	साहित्यदर्पण	संस्कृत विश्वनाथ सम्पा० बीबनाथ बाबुलाल मन्मथ कनकता सन् १९१६ ई० ।
३०	हनुमन्नाटक (भाषा टीका)	टीकाकार रामस्वयं चर्मा धर्मपताका सम्पादक बेंकटेश्वर प्रेस बम्बई सं० १९१० वि० ।

पत्र तथा पत्रिकाएँ

- १ नागरी प्रचारिणी-समा खोज-रिपोर्ट—सन् १९०० १९०३ १९२९ ई० ।
- २ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका—भाग १ संक ४ सं० १९७९ वि०, भाग ८ सं० १९८४ वि० भाग ११, सं० १९८७ वि० ।
- ३ विज्ञान भारती—मई सन् १९३७ जून १९३२ ई० ।
- ४ सरस्वती भाग २ संख्या ८ तथा ९, सन् १९०१ ई० भाग ३१ खण्ड १ सन् १९३० ई० भाग ३२ खण्ड १ सन् १९३१ ई० भाग ११ संख्या १ सन् १९१० ई०, संख्या १२, भाग ४ दिसम्बर सन् १९०३ ई० ।
- ५ मुद्रा वर्ष ७ खण्ड १ संख्या १२, सन् १९३४ ई० ।
- ६ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन पत्रिका—भाग १ संख्या १ भाग १९८२ वि० ।
- ७ हिन्दुस्तानी—प्रबुद्ध-दिसम्बर भाग १७ संक ४, सन् १९४७ ई० ।

क्रमांक	ग्रंथ	विषय विवरण
६	काव्यकल्पसूत्रावृत्ति	लेखक धर्मरत्न यति श्रीरामा सस्कृत दीर्घा काव्यमय, विद्याविभास प्रेस बनारस सन् १९३१ ई० ।
७	काव्यादर्श	लेखक दण्डी, मैथिलरत्न सस्कृतवास लाहौर, सन् १९२५ ई० ।
८	काव्यानुशासन	लेखक भाग्यट (द्वितीय) निरुप सागर प्रेस बम्बई, सन् १९१२ ई० ।
९	काव्यानुशासन	लेखक हेमचन्द्र निरुप सागर प्रेस बम्बई सन् १९३४ ई० ।
१०	काव्यप्रकाश	लेखक मम्मट विद्याविभास प्रेस बनारस सन् २००८ वि० ।
११	काव्यालंकार	लेखक भाग्यट विद्याविभास प्रेस बनारस सन् १९२२ ई० ।
१२	काव्यालंकार	लेखक खट्ट, निर्मल सागर प्रेस बम्बई सन् १९०९ ई० ।
१३	काव्यालंकारसूत्रावृत्ति	लेखक बालम सम्पा० नारायण भाव कुसुमार्थी मोरियण्टल बुक एजेन्सी पुना सन् १९२७ ई० ।
१४	कुसुमयानत्र	लेखक धर्मरत्न दीक्षित निर्मल सागर प्रेस बम्बई, सन् १९४७ ई० ।
१५	अमृतालोक	लेखक जयदेव सम्पा० महादेव गंगाधर बाकरी, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बई, सन् १९३४ ई० ।
१६	वसन्तक	लेखक वर्णचय निर्मल सागर प्रेस बम्बई, सन् १९४१ ई० ।
१७	मादुश्यासत्र	लेखक भरत मुनि सम्पा० केदारनाथ साहित्यभूषण निर्मल सागर प्रेस बम्बई, सन् १९४६ ई० ।
१८	प्रवीणचन्द्रोदय	लेखक कृष्णमिश्र निर्मल सागर प्रेस बम्बई, सन् १९१६ ई० ।
१९	वसन्तदायक	लेखक जयदेव भास्कर सेताड़ी सात एम्ब संस बनारस सन् १९४७ ई० ।
२०	रतिरहस्य	लेखक कोयकोक वार यंत्रालय काशी प्रोसीन एण्ड कम्पनी सन् १९२२ ई० ।

क्रमांक

सम्ब

विषय विवरण

२१ रसार्णवमुवाकर

२२ रसतरनिनी (भाषा टीका)

२३ रसमञ्जरी

२४ मुचरलाकर

२५ भृगुार प्रकाश (२२ २४)

२६ श्रीमद्भयवन्वीता

२७ श्रीमद्भाष्यवत

२८ सरस्वतीकुमकण्ठाभरण

२९ साहित्यदर्पण

३० हनुमन्नाटक (भाषा टीका)

सखक धिक्कभूराण टायनकोर मयनर्मेट

प्रस निवेगम् भनम्ससयनससृष्टय द्रम्या

मसी म० १० सन् १९१६ ई० ।

लेखक मानुत्त टीकाकार प० जीवनाय

घोभा बेंकटेश्वरप्रस बम्बई सं० १९७१

वि० ।

लेखक भामुदत्त श्री हरिकृष्ण निबन्ध

भवन बमारस स० २००८ वि० ।

लेखक केदारमट्ट विद्याविषय प्रेस

बनारस सन् १९२७ ई० ।

लेखक भोजदेव सम्पा० ए० रमास्वामी

सरस्वती सा प्रिण्टिंग हाउस माबम्ब

रोड मद्रास सन् १९२६ ई० ।

लेखक स्वामी स्वकृपानन्द धर्मस धामम

मलमोरा सन् १९४० ई० ।

सखक म्यास बेंकटेश्वर प्रस बम्बई

सं० १९१६ वि० ।

लेखक भोजदेव निषय सागर प्रस

बम्बई सन् १९३४ ई० ।

सखक विरचनाय सम्पा० जीवनाय

बाबसाय मद्रास कलकत्ता सन्

१९१६ ई० ।

टीकाकार रामस्वरूप धर्मा धर्मपञ्चाङ्ग

सम्पादक बेंकटेश्वर प्रेस बम्बई सं०

१९९ वि० ।

पत्र तथा पत्रिकाएँ

१ नायरी प्रचारिणी-समा खोम रिपोर्त्—सन् १९० १९०३ १९२२ ई० ।

२ नायरी प्रचारिणी पत्रिका—भाष ३ सं० ४ सं० १९७९ वि० भाग ८ सं० १९८४ वि० भाष ११ सं० १९८७ वि० ।

३ विज्ञान मारत—मई सन् १९३७ जून १९३२ ई० ।

४ सरस्वती भाष २ संख्या ८ तथा ९ सन् १९०१ ई० भाष ३१ संख्या १ सन् १९१० ई० भाष ३२ संख्या १ सन् १९३१ ई० भाष ११ संख्या ६ सन् १९१० ई० संख्या १२ भाष ४ विमम्बर सन् १९०३ ई० ।

५ मुपा-वय ७ संख्या १ संख्या १२ सन् १९३४ ई० ।

६ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका—भाग १ संख्या १ भाष १९८५ वि० ।

७ हिन्दुस्तानी—मन्सूर-दिसम्बर भाग १७ सं० ४ सन् १९४७ ई० ।

- c Calcutta Review (Third Series, Vol. XI) May & June 1924
(Bir Singh Deo Lala Sitā Ram B.A.)
- d University of Allahabad Studies (Hindi Section) 1943 A.D.
(Was Bir Singh Deo Bundela a "Bandit" and "Treacherous
murderer of Abul Fazl ? Ram Prasad Nayak, M.A.)

मध्यमरी भाषा के ग्रन्थ

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	प्रत्यकार	प्रकाशक और संस्करण
1	A History of the Bhoodelas	Capt. W R. Pogson	Baptist Mission Press, Park Street, Calcutta, 1828 A.D
2	Akbar the Great Mogul	Vincent A Smith	Clarendon Press, Ox ford 1919 A.D
3	A Short History of Muslim Rule in India.	Ishwari Prasad	Indian Press Ltd Allahabad 1929 A.D
4	A Short History of the Indian People	Dr Tara Chand	Macmillan & Co Ltd., 1944 A.D
5	Central India States Gazetteer (Eastern States Orchha) Vol. VI A Text	Compiled by Capt C.E. Luard	Nawal Kishore Press, Lucknow 1907 A.D
6	History of Hindi Literature	F.E. Keay	Association Press Calcutta, 1933 A.D
7	History of India	Ishwari Prasad	Indian Press Ltd., Allahabad, 1947 A.D
8	History of Jahan gir Vol. I.	Boni Prasad	Allahabad University Studies in History 1922 A.D
9	History of Middle- val India	Ishwari Prasad	Indian Press Ltd., Allahabad, 1948 A.D
10	Influence of Islam on Indian Culture	Dr Tara Chand	Indian Press Ltd. Allahabad 1946 A.D
11	Kāvyaśāstra	Edited & Transla- ted by Belvalkar	Oriental Book Agency, Poona, 1924 A.D
12.	Kāvyaśāstrakāra rasaśāstra	Uṇbhaja	Bombay Sanskrit & Prakrit Series LXXIX, Arya Bhushan Press, 1925 A.D

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	प्रत्यकार	प्रकाशक और संस्करण
13.	Kāyā Prakāśa	Translated by Dr Ganga Nath Jha	Medical Hall Press Benares 1918 A.D
14	Medieval India under Mohammedan Rule	Stanely Lane-poole	Y Flaber Unwm Ltd. New York 1916 A.D
15	Medieval Mysticism of India	Kabiti Mohan Sen	Luzac & Co 46 Great Russell Street, London 1935 A.D
16.	Memoirs of the Emperor Jahan-gueir	Translated by Major David Price	N Chakravarti Bang-basi Electric Machine Press, Calcutta 1829 A.D
17	Moghul Empire in India, Part I	S.R. Sharma	Karnatak Printing Press Bombay 1934 A.D
18.	Niti Śāstra & Vairāgya Śāstra	Edited & translated by M.R. Kale	Oriental Publishing House Bombay 1902 A.D
19	Selections from Hhadi Literature Book I & V	Sita Ram Shastri	University of Calcutta, Book I—1921 A.D Book V—1924 A.D
20.	Some Concepts of Alamkāra Śāstra	Dr Raghavan	The Adyar Library Series No. 33 1942 A.D
21	Śringāra Prakāśa Vol. I (Part I & II)	Dr Raghavan	Karnatak Publishing House, Bombay Year of publication not stated.
22.	The Cambridge History of India, Vol. IV (Akbar & Jahangir)	Planned by Lt. Col. Wolsey Haig & Edited by Sir Pichard Burn	Cambridge University Press Cambridge 1937 A.D
23	The History of India as told by its own Historians, Vol. VI.	Elliot & Dawson	Trubner & Co., London 1875 A.D
24.	The Modern Vernacular Literature of Hindustan	Sir G.A. Grierson	Asiatic Society of Bengal Calcutta, 1889 A.I

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	अनुवादक	प्रकाशक और संस्करण
25	The Sāhitya Darpa of Vāhva nātha & the History of Sanskrit Poetics	Dr P V Kane	Nirmaya Sagar Press, Bombay 1951 A.D
26.	Tuzuk-i-Jahangiri Vol. I & II.	Translated by Alexander Rogers	London Royal Asiatic Society Vol I, 1909 A.D., Vol. II 1914 A.D

हमारे अनुसंधान की विशेषताएँ

१ अभी तक हिन्दी साहित्य में आचार्य केदारदास द्वारा रचित 'अनुमाना' की गुरुमुखी लिपि में प्राप्त हस्तलिखित प्रति का कहीं भी संस्केत उल्लेख नहीं होता।

२ हमने केदार और बिहारी में पिता-पुत्र सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है और अपने मत की पुष्टि में केदारदास के बंधुवरों से प्राप्त बलबुद्ध का भी सहारा लिया है।

३ केदार के रामचरितका बीरसिंहदेव चरित जहाँगीर बंस चरितका तथा रतनबाबरी नामक ग्रन्थों को प्रबन्धकाव्य की श्रेणी में रखा गया है और प्रत्येक का आत्मस्वीय प्रबन्धकाव्य के तर्कों के आधार पर गंभीर दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है।

४ केदार के प्रबन्धकाव्यों एवं रीतिकार्यों के काव्यपक्ष पर पृथक्-पृथक् विचार करते हुए आत्मव्यवस्था भ्रमंकार, छन्द गुण आदि के विवेचन में गंभीर दृष्टिकोण रखा गया है।

५ केदार के रीतिविवेचन के अन्तर्गत स्थान-स्थान पर बहुत सी गंभीर बातों का उल्लेख किया गया है तथा काव्य-रस निरूपण और उसका आधार 'आशि' नामक १४वीं संवारी नाम आदि।

६ आचार्य केदारदास की हिन्दी के अन्य प्रमुख आचार्यों—विष्णुनाथ कुलपति मिश्र, मतिराम देव दास तथा पद्माकर से गहरे दृष्टिकोण से तुलना की गई है।

७ हिन्दी के परवर्ती शृंगारी मुक्तक कवियों पर केदार के प्रभाव का सिद्धात्मकान किया गया है।

८ केदार का हिन्दी के आचार्यों तथा शृंगारी मुक्तक कवियों में स्थान निर्धारित किया गया है।

